जायसी का
पदमावत : शास्त्रीय भाष्य

(जायसी के पदमावत का सूक्ष्म,
साङ्ग और विस्तृत शास्त्रीय भाष्य)

लेखक
गोविन्द त्रिगुणायत

१९८५
एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि०
रामनगर, नई दिल्ली-११००५५

एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि०

मुख्य कार्यालय : रामनगर, नई दिल्ली-११००५५

शोरूम : ४/१६ बी, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-११०००२

शाखाएँ :

माई हीरां गेट, जालन्धर-१४४००८

अमीनाबाद पार्क, लखनऊ-२२६००१

२८५/जे, बिपिन बिहारी गांगुली स्ट्रीट, कलकत्ता-७०००१२

ब्लैकी हाउस, १०३/५, वालचन्द हीराचन्द मार्ग, बम्बई-४००००१

खजांची रोड, पटना-८००००४

सुल्तान बाजार, हैदराबाद-५००००१

१५२, अन्ना सलाए, मद्रास-६००००२

३, गांधी सागर ईस्ट, नागपुर-४४०००२

के० पी० सी० सी० बिल्डिंग, रेस कोर्स रोड, बंगलौर-५६०००९

६१३-७, महात्मा गाँधी रोड, एर्नाकुलम् कोचीन-६८२०३५

मूल्य : १५०.००

एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि०, रामनगर, नई दिल्ली-११००५५ द्वारा प्रकाशित तथा राजेन्द्र रवीन्द्र प्रिंटर्स (प्रा०) लि०, रामनगर, नई दिल्ली-११००५५ द्वारा मुद्रित ।

समर्पण

युग के महान् पण्डित
आचार्य हजारी प्रसाद
द्विवेदी के कर
कमलों में
सादर
समर्पित

प्राक्कथन

'बोल अरथ सो बोले सुनत सीस सब डोलें'।

पदमावत की यह पंक्ति स्वयं उसी पर लागू होती है। पदमावत में इतना अधिक अर्थ-माधुर्य है कि सहृदय पाठक उसको पढ, आनन्द-विभोर हो सिर धुनने लगता है। इसीलिए जायसी ने गर्वोक्ति की थी—

एक नयन कवि मुहमद गुनी।
सोइ विमोहा जेहि कवि सुनी॥

कहना न होगा कि इस प्रकार के अर्थ-माधुर्य का प्रमुख उत्स ध्वनि तत्त्व है। आचार्य आनन्द वर्धन ने उसी को इसीलिए काव्य की आत्मा कहा है—

'काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्वः' ध्वन्यालोक १।१

अर्थात् काव्य की आत्मा ध्वनि है ऐसा मेरे पूर्ववर्ती विद्वानो ने माना है। इस प्रतीयमान ध्वनि तत्त्व की ही अवस्थिति जिस कवि मे पाई जाती है उसके अनुसार वही महाकवि पद का अधिकारी होता है।

प्रतीयमान पुनरन्यदेववस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनां।
यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु॥

अर्थात् प्रतीयमान कुछ और ही वस्तु है जो रमणियो के प्रसिद्ध अवयवो से भिन्न उनके लावण्य के समान अनिर्वचनीय तत्त्व के रूप मे कवियो की वाणी मे भासित होती है। यही कारण है कि महाकवियो की वाणी उस रसमयी अर्थवस्तु की वर्षा करती है। इसी से उन कवियो की प्रतिभा प्रकट होती है।

सरस्वतीस्वादु तदर्थवस्तुनिष्यन्दमानां महतां कवीनाम्।
आलोक सामान्यमभिव्यनक्ति परिस्फुरन्तं प्रतिभाविशेषम्॥

इस ध्वनि तत्त्व का स्वरूप और उसके शास्त्रीय भेद-प्रभेदो का विवेचन वडा जटिल है। आचार्यो ने उसके १०४५५ भेदो तक की विवेचना की है। इन सवको हृदयगम करके यथास्थल निर्देश करना कितना कठिन है इसका अनुमान विद्वान लोग स्वय कर सकते है। फिर भी मैने स्थूल ध्वनि भेदो का पदमावत की व्याख्या मे यथास्थान निर्देश करने का प्रयास किया है।

शास्त्रीय दृष्टि से ध्वनि के वाद अलंकारो का विपय जटिल है। अलकारो के स्वरूप और भेदो के सम्वन्ध मे आचार्यो मे वडा मतभेद रहा है। संस्कृत के सर्वप्रथम

शास्त्रीय ग्रन्थ नाट्य शास्त्र मे भरत मुनि ने केवल चार अलंकारो का उल्लेख किया था। अग्नि पुराण मे इनकी सख्या १६ हो गई। भामह ने ३८ अलंकारो का निरूपण किया। दण्डी उद्भटादि ने ५२ अलकार निर्दिष्ट किए। आगे चलकर आचार्यो ने १०३ अलकारो का अनुसधान किया। १८वी शताब्दी मे आकर यह सख्या १६१ हो गई। अब तो सख्या दो शतको को भी पार कर गई है। रूपो एव भेदो की सख्या के साथ-साथ मतभेद भी वढे। जैसे श्लेष के सम्वन्ध मे रुय्यक का मत है कि सभग श्लेष शब्दालंकार है और अभग श्लेष अर्थालिकार है। उद्भट ने सभंग को शब्द श्लेष, अभंग को अर्थ श्लेष वताकर दोनो को अर्थालकार वताया है। आचार्य मम्मट ने अभंग और सभग दोनो प्रकार के श्लेपो को शब्दालकार ही माना है। इसी प्रकार वहुत से आचार्यो ने उदाहरण को उपमा का भेद माना है किन्तु पण्डितराज जगन्नाथ ने उसे स्वतन्त्र अलकार कहा है। प्रतीप के सम्वन्ध मे भी मतभेद है। वहुत से आचार्यो ने उसे उपमा का ही एक भेद वताया है। किन्तु वहुत से दूसरे आचार्य उसे स्वतन्त्र अलकार मानते है। यही हाल दीपक का भी है। कुछ आचार्य उसे तुल्ययोगिता का ही एक भेद मानने के पक्ष मे है जवकि दूसरो ने उसे स्वतन्त्र अलकार वताया है। इस प्रकार के सैकडो मतमतान्तर हमारे अलकार शास्त्र के क्षेत्र मे दिखाई पडते है। इन सव का सूक्ष्म और सही ज्ञान वडा कठिन है। फिर उनका निर्देश उससे भी कठिन है। अत. वह विवादास्पद हुए विना रह ही नही सकता।

ध्वनि और अलकारो के समान ही साहित्य शास्त्र के अन्य सिद्धान्त भी वड़े गूढ, जटिल एव उलझे हुए है। इन सवका परिज्ञान ही वडा कठिन है फिर उनका निर्देश तो और भी अधिक कठिन है। इन कठिनाइयो के होते हुए और जानते हुए भी मैंने प्रस्तुत प्रयास किया है। इस प्रयास मे मैने पदमावत के ध्वनिगत, अलकार-गत, वक्रोक्तिगत तथा अन्य शास्त्रीय चमत्कारो एव वैशिष्ट्यो का निर्देश किया है। भाष्य वहुत वडा है, शास्त्र की जटिलताएँ भी कम दुरूह नही है। ऐसी स्थिति मे कुछ त्रुटियो और भूलो का रह जाना असम्भव नही है। यह भी सम्भव है कि कुछ भ्रांतिपूर्ण मान्यताये स्थान पा गई हो। यह भी हो सकता है कि कुछ विवादास्पद सिद्धान्तो के सम्वन्ध मे एकपक्षीय दृष्टिकोण के कारण कुछ धुरन्धर विद्वानो को भी भ्रम हो जाए। अतएव मै अपनी त्रुटियो के लिए तो करवद्ध क्षमा प्रार्थी हूँ, साथ ही यह भी नम्र निवेदन करता हूँ कि सहृदय विद्वान मेरी भूलो के लिए मुझे और मेरे भाष्य को कोसने से प्रथम मुझे अपने दृष्टिकोण से परिचित कराएँ और मेरे दृष्टिकोण और मत को भी समझ ले। मै उनके सुझावो का हृदय से स्वागत करूँगा और उनके प्रति हृदय से आभारी होऊँगा।

एक शब्द मै पाठ के सम्वन्ध मे भी कह देना चाहता हूँ। इस समय पदमावत के तीन प्रतिष्ठित पाठ हमारे समक्ष है—एक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का, दूसरा डा० माता प्रसाद गुप्त का और तीसरा डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का। ये तीनो ही पाठ प्रामाणिक प्रतियो के आधार पर तैयार किए गए है, अन्तर केवल दृष्टिकोणो का है।

आचार्य शुक्ल का दृष्टिकोण साहित्यिक था। उन्होने उन्ही पाठो को महत्त्व दिया है जो साहित्यिकता की दृष्टि से सुन्दर और उदात्त है। एक उदाहरण से बात स्पष्ट हो जाएगी। एक उक्ति है 'नैन चित्र एहि रूप चितेरा' यह पाठ शुक्ल जी का है। इसका अर्थ है नेत्र बड़े ही विलक्षण रूप से सुन्दर है और उन अनिर्वचनीय सौन्दर्यशाली नेत्रों (एहि) का चितेरा स्वयं रूप ही है। यहाँ पर 'एहि' मे अर्थान्तर सक्रमित वाच्य ध्वनि से रूप की अनिर्वचनीयता व्यंजित की है। वक्रोक्ति की दृष्टि से यहाँ पर सवृतिवक्रता है। रूप को चित्रकार वताकर कवि ने उपचार वक्रता की योजना तो की ही है, साथ ही कवि प्रौढ़ोक्ति निवद्ध मानवीकरण अलंकार से वस्तु व्यंग्य भी है। नेत्रो के सौन्दर्य की अनिर्वचनीयता ही व्यंग्य है। अपने इसी साहित्यिक सौन्दर्य के कारण शुक्ल जी ने उपर्युक्त पाठ स्वीकार किया है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने डा० माता प्रसाद के अनुसरण पर उपर्युक्त अर्धाली का पाठ इस प्रकार दिया है—

'नैन चतुर वै रूप चितेरे'

इसका अर्थ उन्होंने इस प्रकार किया है—अवश्य ही रूप के किसी चतुर चित्रकार ने उन नयनो को वनाया है। इस उक्ति में कोई विशेष साहित्यिक चमत्कार नहीं दिखाई पड़ता है।

डा० गुप्त का पाठ अति वैज्ञानिकता के दोष से दुःखी है। इसीलिए मैने उनके पाठ को केवल उन्ही स्थलों पर महत्त्व दिया है जहाँ कोई सौन्दर्य विशेष है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने अधिकतर डा० गुप्त के पाठ को ही महत्त्व दिया है। किन्तु वहुत से स्थलो पर उन्होने अपना अलग पाठ भी दिया है। उनका दृष्टिकोण ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अधिक रहा है। कही-कही वह भाषा-वैज्ञानिक भी हो गया है। उनकी टीका भी इन्हीं दृष्टिकोणो से लिखी गई है। इसमे कोई सन्देह नही कि उपर्युक्त दृष्टिकोणों से लिखी गई डा० वासुदेवशरण अग्रवाल की टीका निश्चय ही वड़ी अनुसंधानपूर्ण और अद्वितीय है। मेरा अपना दृष्टिकोण शुद्ध साहित्यिक रहा है इसीलिए मैंने शुक्ल जी के पाठ को ही स्वीकार किया है। भाष्य मे भी सर्वत्र साहित्यिक सौन्दर्य के उद्घाटन का प्रयास ही किया गया। अन्य दृष्टिकोण गौण है। जहाँ शुद्ध ऐतिहासिक या सास्कृतिक विवरण आ गए है वहाँ डा० अग्रवाल की टीका के तथ्यो का पिष्ट पेषण करने के वजाय मैंने उनकी टीका के सदर्भ देकर पृष्ठ निर्दिष्ट कर दिए है।

साहित्यिक विशेषताओं को निर्दिष्ट करते समय प्रायः वडे-वडे अभिधानो को संक्षिप्त करके ही लिखा गया है। जैसे कवि प्रौढोक्ति निवद्ध उपमा अलकार से वस्तु व्यजना है, इसका विस्तार न करके सीधे-सादे ढंग से कहा गया है कि 'उपमा अलंकार से वस्तु व्यग्य है।' इसी प्रकार नाम निर्देश करते समय सक्षेप और संकोच से काम लिया है। इतने वड़े भाष्य मे वार-वार शास्त्रीय अभिधानो को दुहराना ठीक ऐसा है जैसे अपने अधिकारी पुत्र का घर मे वार-वार पूरा नाम पुकारना। फिर भी यदि विद्वानो को यह वात खटके तो मैं करवद्ध क्षमा प्रार्थी हूँ।

मैंने भाष्य को कम-से-कम दुरूह और जटिल वनाने की चेष्टा की है। फिर

भी शास्त्रीय भाष्य होने के कारण वह दुरूह और जटिल हो गया है, जिससे यह सामान्य विद्यार्थियो के लिए बहुत उपयोगी हो सकेगा यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। एक बात और है। व्यावहारिक समीक्षा के लिए शास्त्र ज्ञान बडा आवश्यक होता है। शास्त्र ज्ञान के प्रकाश मे ही पाठक शास्त्रीय वैशिष्ट्यो को सरलता से समझ सकते है। इस सत्य को ध्यान मे रखकर कही-कही मैंने शास्त्रीय वैशिष्ट्यो के शास्त्रीय स्वरूपो को भी यथास्थान समझाने की चेष्टा की है। किन्तु इस नियम का निर्वाह मैं सम्पूर्ण भाष्य मे सर्वत्र नही कर सका हूँ। ऐसा करने से ग्रन्थ का आकार और कलेवर व्यर्थ ही बढ जाता और बार-बार उन्ही बातो को दोहराने से पिष्ट-पेषण दोष भी आ जाता। अतः शास्त्रीय वैशिष्ट्यो के शास्त्रीय स्वरूपो को समझने के लिए विद्वान् लोग लेखक की 'शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त' शीर्षक कृति का प्रथम भाग देख सकते हैं।

अन्त मे मैं अपनी भूलो और त्रुटियो के लिए विज्ञ विद्वानो से पुनः बार-बार क्षमा-याचना करूंगा। सागर मे रत्न भी होते है और घोघे भी। रत्न-पारखी उसे रत्नाकर कहते है, सामान्य मनुष्य जलनिधि। इसी प्रकार मेरे भाष्यरूपी सागर मे शास्त्रीय वैशिष्ट्यरूपी रत्न भी है और घोघा रूपी त्रुटि और दोष भी। तुलसी के मत मे यह विधाता का विश्व ही गुण-दोषमय है, 'जड चेतन गुण दोषमय विश्व कीन्ह करतार' फिर इस छोटी-सी मानव कृति की तो बात ही क्या है। मैं तो जायसी के इस कथन से पूर्णतया सहमत हूँ कि दूषण भी भूषण का कारण बन जाते है और वस्तु की सौन्दर्य-वृद्धि करते है—

चाँद जैस जग विधि औतारा दीन्ह कलंक कीन्ह उजियारा।
जौं लहि घरी कलंक नहि परा काँच होइ नहि कंचन करा।।

त्रुटियाँ और भूले बड़े-बडे पण्डितो से भी हो जाती है। फिर मेरी बात ही क्या है? मैं तो एक साधक विद्यार्थी मात्र हूँ। मै तो जायसी के शब्दो मे अपने को केवल पण्डितो का 'पछलगा' मात्र मानता हूँ 'हौ तो पडितन केर पछलगा' अत. मेरी भूले उनकी भूले है, मेरी त्रुटियाँ उनकी त्रुटियाँ है और मेरे दोष उनके अपने दोष है। मुझे विश्वास है वे मेरी भूलो, त्रुटियो एव दोषो को अपना समझ कर क्षमा करेंगे।

१-१-६६
भारती भवन
सिविल लाइन
मुरादाबाद

—गोविन्द त्रिगुणायत

विषय सूची

पदमावत का शास्त्रीय भाष्य

स्तुति खण्ड

सुमिरौं आदि एक करतारू। जेहि जिउ दीन्ह कीन्ह संसारू ।।
कीन्हेसि प्रथम जोति परकासू। कीन्हेसि तेहि पिरीत कैलासू ।।
कीन्हेसि अगिनि, पवन, जल खेहा। कीन्हेसि वहुतै रंग उरेहा ।।
कीन्हेसि धरती, सरग, पतारू। कीन्हेसि वरन बरन औतारू ।।
कीन्हेसि दिन, दिनअर, ससि राती। कीन्हेसि नखत, तराइन-पांती ।।
कीन्हेसि धूप, सीउ औ छांहा। कीन्हेसि मेघ, वीजु तेहि मांहा ।।
कीन्हेसि सप्त मही बरम्हंडा। कीन्हेसि भुवन चौदहो खंडा ।।
कीन्ह सबै अस जाकर दूसर छाज न काहि।
पहिलै ताकर नावं लै कथा करौं औगाहि ।। १ ।।

[प्रस्तुत अवतरण मे कवि ने मगलाचरण के रूप मे उस एक आदि कर्त्ता का स्मरण किया है। इसमे कवि ने इस्लामी और भारतीय विचारों का ऐसा समन्वित रूप सामने रखा है, जिसे हिन्दू और मुसलमान दोनो ही अपना-अपना समझते है।]

मैं उस एक आदि कर्त्ता का स्मरण करता हूँ जिसने हमे प्राण प्रदान किए है और इस ससार की सृष्टि की है। उस आदि कर्त्ता ने सर्वप्रथम ज्योति का प्रकाश किया। फिर उस ज्योति के लिए कैलाश की रचना की। उसी आदि कर्त्ता ने अग्नि, पवन, जल और पृथ्वी तत्वो का निर्माण किया। उन तत्वो के सयोग से उसने और अनेक विविध रूपी भौतिक वस्तुओ की रचना की। उसने पृथ्वी, स्वर्ग और पाताल की भी रचना की। उसने वर्ण-वर्ण की अनेक वस्तुएँ निर्मित की। उसने द्वीप वाले ब्रह्माण्डो का सृजन किया। चौदह भुवनो का विधाता भी वही है। दिन और सूर्य, चन्द्रमा और रात्रि भी उसी की सृष्टि है। नक्षत्र और तारो की पक्तिया भी उसी ने वनाई है। धूप, शीतलता और छाँह का भी वही विधाता है। उसने ही मेघों की सृष्टि करके उनके अन्तराल मे विजली उत्पन्न की है।

इस प्रकार की विविध रूपी सृष्टि का जो रचयिता है, जिसके अतिरिक्त इन वस्तुओ का दूसरा कोई रचयिता हो भी नही सकता, उस आदि एक कर्त्ता का नाम लेकर मैं अपने प्रवन्ध विधान मे अग्रसर होता हूँ।

टिप्पणी—सुमिरौ—जायसी मुसलमान थे। मुसलमान लोग ईश्वर के सगुण और निर्गुण दोनो स्वरूपो मे आस्था रखते हुए भी, सगुण परमात्मा के न तो दर्शन ही प्राप्त कर सकते है और न सामीप्य लाभ ही कर सकते है। ऐसी अवस्था मे 'सुमिरौ' शब्द वहुत उपयुक्त प्रतीत होता है। स्मरण की भावना, हिन्दू और मुसलमान दोनो मे समान रूप से मान्य है।

आदि—हिन्दू और मुसलमान दोनो ही परमात्मा को ही परम आदि स्वरूप मानते है। उससे परे न कोई था, न है और न होगा। कवि ने आदि शब्द का प्रयोग करके अनादि परमात्मा का, उसके सादि मुहम्मद, देवदूत, देव एव मनुष्यादि रूप से स्पष्ट भेद व्यजित किया है।

एक—एकेश्वर की भावना इस्लाम और वैदिक मत दोनो मे मान्य है। कुरान मे सैंकडो स्थलो पर कहा गया है कि "अल्लाह के अतिरिक्त और दूसरा कोई नही है। वही एक परमात्मा है।" वैदिक साहित्य मे भी "एक सद् विप्रा वहुधा वदन्ति" "एकं सन्त विप्रा वहुधा पूजयन्ति" 'एकमेव अद्वितीय सत' जैसी उक्तियाँ मिलती है।

करतारू—परमात्मा मे कर्तृत्व भाव का आरोप इस्लाम और हिन्दू दोनो धर्मो मे किया गया है। कुरान मे दसो बार उसके कर्तृत्व भाव की चर्चा की गई है। एक स्थल पर लिखा है—"उसने सृष्टि की रचना की और उसको सतुलित किया।"[१] हिन्दू धर्म मे भी ईश्वर के कर्तृत्व भाव का अनेक प्रकार से वर्णन किया गया है। मुण्डकोपनिषद् मे लिखा है जिस प्रकार मकडी अपने जाल का उपादान और निमित्त कारण दोनो होती है उसी प्रकार ब्रह्म इस सृष्टि का उपादान और निमित्त कारण दोनो है। वृहदारण्यकोपनिषद् मे भी लिखा है 'जव उसकी इच्छा होती है तव वह सृष्टि का निर्माण करता है'।[२]

प्रथम जोति परकासू—ज्योतिवाद का सिद्धान्त इस्लाम और हिन्दू मतों मे समान रूप से मान्य है। इस्लाम मे उसे नूर रूप कहा गया है और सर्वप्रथम उसी की उत्पत्ति वताई गई है। हिन्दू धर्म मे उसे प्रकाश रूप, अग्नि रूप या हरिण्यगर्भ रूप कहा गया है। तैत्तिरीय उपनिषद् मे "अग्नि हि पूर्व रूपम्" और पुरुष सूक्त मे "हिरण्यगर्भ., समवर्ततताग्रे" लिख कर इसी वात की व्यजना की गई है।

कैलासू—कैलास शब्द का प्रयोग पदमावत मे कई अर्थो मे किया गया है। जैसे ब्रह्मरन्ध्र, शिवलोक, स्वर्गलोक, ब्रह्मलोक आदि। इसकी विषद व्याख्या हमारे 'पदमावत का काव्य और दर्शन" मे देखिए। जायसी ने ही नही अन्य सूफी कवियो ने भी इस शब्द का प्रयोग प्राय इन्ही अर्थो मे किया है। "मधुमालती मे भी कविलास शब्द

१. दि कुरान, मिर्जा अवुल फजल, पृष्ट ३६, सन् १९११ का सस्करण।
२. वृहदारण्यकोपनिषद् ३, ४।३.

का प्रयोग इन सब अर्थों मे बार-बार किया गया है। ब्रह्मरन्ध्र के अर्थ मे मंझन कृत यह प्रयोग देखिए—

कोटि माँह बिरला जन भोगी बसे काविलास ।[1]

वास्तव मे कविलास शब्द योगियो की परम्परा मे प्रचलित था। प्रेमाख्यान लिखने वालों को यह शब्द वही से प्राप्त हुआ। इसके अर्थ को उन्होने मनमाने ढंग से तोड़ा मरोड़ा है।

अगिन पवन जल खेहा—इस्लाम मे केवल चार तत्वो की ही मान्यता है। फारसी मे 'कानून चा' नामक पुस्तक के पृष्ठ २ पर इसका स्पष्ट विवेचन है। कुरान शरीफ में भी इन चार तत्वो का ही प्रधान रूप से वर्णन पाया जाता है। आकाश तत्व सम्भवत. इनके यहाँ मान्य नही था। हिन्दू धर्म में पाँच तत्वो की मान्यता रही है। बौद्ध लोग अवश्य केवल चार तत्व मानते है। हो सकता है कि इस्लाम को चार तत्वो की मान्यता की प्रेरणा इन्ही से मिली हो। चित्रावली मे उसमान ने चार तत्वो का ही वर्णन किया है—अगिनि पवन रज पानि के भाँति-भाँति व्योहार।'[2]

बरन बरन अवतारू—सुधाकर द्विवेदी के मतानुसार जायसी ने यहाँ पर भगवान के दशावतारो का सकेत किया है। हमारी समझ मे जायसी की दृष्टि इतनी दूर नही गई थी। अवतारू शब्द से उनका अभिप्राय अवतरण या निर्माण से ही है।

सप्त मही बरम्हडा—यहाँ पर सम्भवत· पृथ्वी पर के सात द्वीपो की ओर सकेत है। पुराणो मे सात द्वीपो के नाम इस प्रकार बताए गए है—जम्बू, शाक, शाल्मल, कुश, क्रौच, गोमेदक, तथा पुष्कर द्वीप।

भुवन चौदहों खण्डा—भारतीय दर्शन मे चौदह लोको की कल्पना की गई है। सात ऊपर है और सात नीचे। ऊपर के लोकों का नाम है—भू लोक, भुव· लोक, स्वः लोक, महा लोक, जन. लोक, तपः लोक, तथा सत्य लोक। नीचे के लोको के नाम है। अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल। चौदहो लोको की कल्पना इस्लाम मे भी मान्य है। उसमे सात आसमान और सात ब्रह्माण्ड बताए गये है—

कीन्ह सबै औगाहि—यहाँ पर जायसी के अन्तर्मन मे कुरान की कुछ आयते मालूम होती है। कुरान मे एक स्थल पर लिखा है—"उस परमात्मा का नाम लो, और उसी के नाम मे पूर्ण आसक्त हो जाओ।" (पृ० ४७) इसी प्रकार दूसरे स्थल पर लिखा है "वह परमात्मा ही पूर्व मे है, वही पश्चिम मे है। उसके अतिरिक्त और कोई

---

१. मधुमालती, मझन, पृष्ठ १२।

२. सूफी कवियों मे इनके विकास का क्रम भी उल्लिखित है।
यूसुफ जुलेखा मे कविवर निसार ने लिखा है—
अगिनि ते पौन पौन ते पानी पुनि पानी ते खेह उडानी।
इन चारों ते सब संसारा धरती सूर ससि तारा॥

ईश्वर नही है। उसी को अपना नियामक समझना चाहिये। उसके समान और दूसरा कोई नही है।" (कुरान पृष्ठ ४७)।

प्रस्तुत दोहे मे सर्वसमर्थ परमात्मा के नाम स्मरण की बात कह कर जायसी ने हिन्दू और इस्लाम दोनो विचारधाराओ से सम्बन्ध बनाए रखा है। नाम स्मरण की बात जिस प्रकार इस्लाम मे मान्य है, उसी प्रकार हिन्दू मत में भी ग्राह्य है।

साहित्यिक विशेषताएं

(१) इसमे कीन्हेसि क्रिया की पुनरावृति होने के कारण वीप्सा अलंकार है।

(२) पदमावत मसनवी शैली मे लिखा गया है और उसके अनुकूल सर्वप्रथम एक अल्लाह का वर्णन होना चाहिए था। जायसी ने उसका निर्वाह एक कर्त्ता का वर्णन करके किया है।

(३) भारतीय महाकाव्यो के अनुसार महाकाव्य के प्रारम्भ मे मंगलाचरण होना चाहिए। एक कर्त्ता का स्मरण करके जायसी ने भारतीय महाकाव्यो की इस परम्परा के भी निर्वाह की चेष्टा की है।

(४) इसमे पैगम्बरवाद की भावना भी व्यजित की गई हे। "कीन्हेसि प्रथम जोति परकासू।" और "कीन्हेसि तेहि पिरीत कैलासू" मे मुहम्मद साहब के प्रति आस्था की भावना भी प्रकट की गई है। प्रेमाख्यानक काव्यो मे मुहम्मद को ज्योति रूप बताया गया है और उस परमात्म ज्योति से ही उसकी अभिव्यक्ति मानी गई है। सृष्टि की रचना उसी के हेतु बताई गई है, मझन ने मधु-मालती मे लिखा है·

वाही ज्योति प्रकट सब ठाऊं, दीपक सिस्टि जो महंमद नाऊं।
वोहि लागि दैअ सिस्टि उपराजी, त्रिभुवन पेम दुंदुभी वाजी॥

—मधुमालती, पृ० ४

इस परम्परा का निर्वाह जायसी ने भी निम्नलिखित पक्तियो मे किया है :—

कीन्हेसि पुरुष एक निरमरा। नाम मुहम्मद पूनो कला॥
प्रथम जोति विधि ताकर साजी। औ तेहि प्रीति सिहिटि उपराजी॥

—जा० ग्र०, पृ० ४

कीन्हेसि सात[1] समुद अपारा। कीन्हेसि मेरु खिखिद पहारा॥
कीन्हेसि नदी, नार औ झरना। कीन्हेसि मगर मच्छ[2] बहु बरना॥
कीन्हेसि सीप, मोति जेहि[3] भरे। कीन्हेसि बहुतै नग निरमरे॥
कीन्हेसि वनखड औ जरि मूरी। कीन्हेसि तरिवर तार खजूरी॥
कीन्हेसि साउज आरन रहई। कीन्हेसि पखि उडहि जहँ चहई॥

---

१. अग्रवाल—हेवं गुप्त। २. अग्रवाल—मंछ। ३. अग्रवाल—बहु।

कीन्हेसि बरन सेत औ स्यामा। कीन्हेसि भूख नीद विसरामा॥
कीन्हेसि पान फूल बहु भोगू। कीन्हेसि बहु ओषद, बहु रोगू॥
निमिख न लाग करत ओहि, सबै कीन्ह पल एक।
गगन अंतरिख राखा, बाज खंभ बिनु टेक॥ २॥

[इस अवतरण मे कवि ने परमात्मा के कर्तृत्व भाव का ही विस्तार से वर्णन किया है।]

उस परमात्मा ने सात अपार समुद्रों की सृष्टि की। उसने सुमेरु और किष्किन्धा नामक महान पर्वत श्रेणियाँ बनाई। नदी, ताल और झरनो की भी उसने रचना की। मगर तथा विविध प्रकार की मछलियो का सृष्टा भी वही है। उसने सीपियाँ बनाई और उसने अन्तराल मे मोती प्रतिष्ठित कर दिए। विविध प्रकार के नगो की रचना भी उसने की। वनसमूहो की रचना भी उसने की और उनमे पाई जाने वाली जड़ी बूटियाँ भी उसी की बनाई हुई है। ताड, खजूर और अन्य प्रकार के उत्तम वृक्ष भी उसके रचे हुए है। अरण्यो मे पाए जाने वाले जगली पशु भी उसी के बनाए हुए है। पक्षियों को, जो मनवाछित रूप से उडते है, भी उसी ने रचा है। श्याम और श्वेत वर्ण भी उसी के बनाए हुए है। भूख, नीद और विश्राम का क्रम भी उसी ने बनाया है। पान, फूल और अनेक प्रकार के अन्य खाद्य पदार्थ भी उसी की रचना है। विविध प्रकार की औषधियो और रोगो का नियामक भी वही है।

इस प्रकार के बहुरूपी एव द्वन्द्वात्मक ससार की रचना करने मे उसे एक निमष भी नही लगा। निमेष के साठवे भाग या पल भर मे ही उसकी इच्छा से यह जगत उत्पन्न हो गया। यह आकाश अन्तरिक्ष मे बिना किसी खम्भे के अथवा अन्य किसी प्रकार की टेक के उसके प्रताप से ही ठहरा हुआ है।

टिप्पणी—(१) **सात-समुद्र**—पुराणो मे सात समुद्रो के नाम इस प्रकार गिनाए है—क्षार, दुग्ध, दधि, घृत, इक्षुरस, मद्य, स्वाद और जल। किन्तु जायसी ने सात समुद्रो के नाम इनसे भिन्न दिए है। वे है—क्षार, क्षीर, दधि, उदधि, सुरा, किल-किला, और मानसर। जायसी द्वारा कल्पित नाम सम्भवत. सूफी साधना से अधिक सम्बन्धित है। कुछ को उन्होने जानबूझ कर तोडा-मरोड़ा है। ऐसा उन्होने क्यो किया, स्पष्ट नही कहा जा सकता। मेरी धारणा है कि उन्हे सात समुद्रो के नाम स्मरण न थे। जो नाम स्मरण थे, उन्हे उन्होने ग्रहण कर लिया और शेष नाम कल्पित कर लिए।

डा० अग्रवाल ने सात के स्थान पर हेव पाठ दिया है। हेव का अर्थ हिम है। हेवं का अर्थ स्वर्ण भी लिया जा सकता है।

(२) **साउज**—इसका अर्थ पशु है। संस्कृत के श्वापद शब्द का यह अपभ्रष्ट रूप है।

(३) **निमिष**—पलक मारने भर के समय को निमिष कहते है। साधारण पल

निमिप से बड़ा होता है। किन्तु यहाँ पर पल का अर्थ निमेप का साठवां भाग लिया जायेगा।

(४) **गगन**—भारतीय दर्शनो मे आकाश शून्य का वाचक माना जाता है। किन्तु इस्लाम मे आकाश अधिकतर स्वर्ग का वाचक है। और एक ठोस स्थान का सूचक है। कुरान मे सैकडो बार इस प्रकार की उक्तियाँ आई है कि उस परमात्मा ने आकाश और पृथ्वी की रचना की। ठोस तत्त्व होने के कारण उसका निराधार होना वास्तव मे आश्चर्यजनक है। इस आश्चर्यजनक सृष्टि का रचयिता भी आश्चर्यजनक ही हुआ।

(५) **अन्तरिख**—आकाश और पृथ्वी के वीच के स्थान को अन्तरिख कहा गया है। कुरान मे कई बार आया है कि परमात्मा ने आकाश या स्वर्ग की तथा पृथ्वी की रचना की और उन दोनो के वीच अन्तरिक्ष की रचना की।

(६) **बाज**—यह सस्कृत वर्ज का अपभ्रष्ट रूप है। इसका अर्थ है विना।

साहित्यिक विशेषताएँ—इस अवतरण के अन्तिम दोहे मे विनोक्ति और विभावना का सकर व्यग्य है।

आध्यात्मिक विशेषताएँ—यहाँ पर सृष्टि के रचना क्रम का संकेत है। कुरान और वेद दोनों मे लिखा है कि जिस क्षण परमात्मा ने सृष्टि रचना की इच्छा की, उसी क्षण सृष्टि उत्पन्न हो गई। कुरान मे लिखा है—सृष्टि उस परमात्मा की इच्छा का परिणाम है। अल्लाह जो चाहता है, वही वनाता है, वह जिस वस्तु का निर्माण करना चाहता है, उसी के प्रति कह देता है—कुन अर्थात् वन जा। उसी क्षण वह वन जाती है। (कुरान ३।४७)

इसी प्रकार उपनिपदो मे मिलता है—"सो अकामयत। एकोह वहुस्यामः···· इत्यादि"

कीन्हेसि अगर कसतुरी वेना। कीन्हेसि भीमसेन औ चीना॥
कीन्हेसि नाग, जो मुख[1] विप बसा। कीन्हेसि मंत्र, हरै जेहि डसा॥
कीन्हेसि अमृत, जियै जो पाए। कीन्हेसि विक्ख, मीचु जेहि खाए[3]॥
कीन्हेसि ऊख मीठ-रस-भरी। कीन्हेसि करू-वेल[4] वहु फरी॥
कीन्हेसि मधु लावै लै माखी। कीन्हेसि भौर, पंखि[5] औ पांखी॥
कीन्हेसि लोवा इंदुर[6] चांटी। कीन्हेसि वहुत रहहि खनि माटी॥
कीन्हेसि राकस भूत परेता। कीन्हेसि भोकस देव दएता[7]॥
कीन्हेसि सहस अठारह बरन बरन उपराजि।
भुगुति दिहेसि पुनि सवन[8] कह सकल साजना साजि॥ ३॥

अग्रवाल—१. मुखहि, २. अमिअ, ३ कीन्हेसि विप जो मीचु तेहि खाए। ४ करुइ, ५. पतग, ६. उदुर, ७. दयंता, ८ सव।

नोट—जहाँ शुक्ल जी की प्रति में 'ए' की मात्रा है, वहाँ प्रायः डा० अग्रवाल ने 'इ' का प्रयोग किया है—यथा शुक्ल—हरै, अग्रवाल—हरइ। सवै—सवई आदि।

[इस अवतरण मे परमात्मा की कर्तृत्व शक्ति का ही वर्णन किया गया है।]

उस परमात्मा ने अगर, कस्तूरी, खस, और भीमसेनी तथा चीनी कपूर बनाए है। उसने विषैले सर्पो की रचना की। इन सर्पो के विप के उतारने वाले मत्रो का भी विधाता वही है। वह अमृत का सृष्टा भी है। इस अमृत को पाकर प्राणी शाश्वत जीवन को प्राप्त करते है। विप का बनाने वाला भी वही है। इस विप के खाने से जीव को मृत्यु के मुख मे जाना पडता है। उसने रस से भरी हुई ऊखे बनाई है। इनके विपरीत उसने बहुत सी कडवी वेले भी उत्पन्न की है। उसने मधु की सृष्टि की है। यह मधु मक्खियो के द्वारा एकत्रित किया जाता है। उसने भवर, पतिगे और पक्षी रचे है। लोमड़ी, चूहे और चीटियाँ भी उसी की बनाई हुई है। बिल बना कर रहने वाले सैकडो जीवो को भी उसी ने रचा है। राक्षस, भूत, प्रेत, दैत्य और दानव सभी उसके बनाए हुए है।

इस प्रकार उस परमात्मा ने अठारह सहस्र प्रकार के विविध जीव बनाए है। उन सबकी भोग्य सामग्री भी उसी ने रची है।

टिप्पणी—(१) यहाँ पर भी जायसी इस्लाम से प्रभावित है। इस्लाम मे अठारह सहस्र प्रकार के जीवों की कल्पना मान्य है। उनकी हदीस मे आया है 'हिशद हजार आलम' अर्थात् अठारह हजार योनि या ब्रह्माण्ड है। इसके विपरीत हिन्दू धर्म मे ८४ लाख योनियाँ कल्पित की गई है। जायसी ने ८४ लाख की चर्चा न करके १८ सहस्र की चर्चा की है। यह धारणा स्पष्ट रूप से इस्लाम से ली गई है।

(२) यहाँ पर जायसी का विश्वास पक्ष ही मुखरित हो गया है। वे भूत, प्रेत, राक्षस, दैव, दानव इन सब मे विश्वास करते थे।

(३) **बेना**—यह संस्कृत बीरण का अपभ्रश रूप है। इसका अर्थ 'खस' होता है।

(४) **चीना**—यह कपूर की एक जाति है।

(५) **भौकस**—यह सस्कृत पुक्कश का अपभ्रष्ट रूप है। इसका अर्थ दानव होता है।

(६) तुलना करिए उसमान कृत चित्रावली पृष्ठ एक का निम्नलिखित वर्णन—आदि बखानौ.·· ····गोसाई।

कीन्हेसि मानुष दिहेसि[1] वड़ाई। कीन्हेसि अन्न, भुगुति तेहि पाई॥
कीन्हेसि राजा भूजहि राजू। कीन्हेसि हस्ति घोर तेहि साजू॥
कीन्हेसि दरब गरब जेहि होई। कीन्हेसि लोभ, अघाई न कोई॥
कीन्हेसि जियन, सदा सव चहा। कीन्हेसि मीचु, न कोई रहा॥
कीन्हेसि सुख ओ कोटि अनंदू। कीन्हेसि दुख चिन्ता और धंदू[3]॥
कीन्हेसि कोइ भिखारि, कोइ घनी। कीन्हेसि संपति विपति पुनि घनी॥

अग्रवाल—१. दिहिस, २. कोड, ३. दंदू।

कीन्हेसि कोई निभरोसी, कीन्हेसि कोइ वरियार।
छारहि ते सव कीन्हेसि, पुनि कीन्हेसि सव छार ॥ ४ ॥

जायसी ने ७ पक्तियो के वाद दोहा रखा था। किन्तु शुक्ल जी ने यहाँ ६ पक्तियो के वाद दोहा दिया है। सभवत. इसीलिए वासुदेवशरण अग्रवाल जी ने दूसरी पक्ति के वाद निम्नलिखित पक्ति और दी है :—

कीन्हेसि तिन्ह कंह वहुत वेरासू। कीन्हेहि कोई ठाकूर कोई दासू।

[इस अवतरण मे भी परमातमा के महान कर्तृत्व का ही विस्तार किया गया है।]

उस परमातमा ने मनुष्य का निर्माण किया। और उसे प्रतिष्ठित किया। उसके लिये उसने अन्न तथा अन्य भोग्य पदार्थ रचे। उसने राजा वनाए जो राज्य का भोग करते है। हाथी घोडे तथा अन्य ठाठ-वाट भी उसी के वनाए हुए है। मानवो के लिए उसने अनेक प्रकार की विलास सामग्री रची। उसने कुछ मनुष्यो को राजा वनाया और कुछ को उनका सेवक। उसके धन का निर्माण किया जो गर्व का कारण वना। लोभ भी उसी की सृष्टि है। इस लोभ के कारण मनुष्य की कभी तृप्ति नही होती। उसने सव प्राणियो को जीवन दिया है जिसकी कामना प्राणीमात्र को सदैव वनी रहती है। मृत्यु का नियामक भी वही है। प्रत्येक प्राणी इस मृत्यु का शिकार बनता है। उसने सुख और करोडो प्रकार के आनन्दो का विधान किया। दुख चिन्ता और भव द्वन्द्व का प्रेरक भी वही है। उसने किसी को भिखारी वना रखा है और किसी को धनी वना रखा है। उसने सम्पत्ति और कटु विपत्तियाँ भी वनाई है।

उसने किसी को निराश्रित वनाया है। और किसी को आश्रय देकर महा शक्तिशाली वना दिया। मिट्टी से ही उसने सव वस्तुये वनाई है। और अन्त मे सव मिट्टी मे ही मिल जाती है।

टिप्पणियाँ—छारहि ते सव····सव छार—यहाँ पर जायसी कुरान से प्रभावित प्रतीत होते है। हमारे यहाँ त्रिवृत्तीकरण या पचीकरण का सिद्धान्त मान्य है। मनुष्य की उत्पत्ति केवल मिट्टी से नही मानी गई है। मिट्टी पचतत्वो मे से एक है। किन्तु कुरान मे मनुष्य की सृष्टि मिट्टी से वताई गई है। उसमे लिखा है—उसने मानव का निर्माण उसी प्रकार कच्ची मिट्टी से किया है जिस प्रकार कुम्हार कच्ची मिट्टी से खिलौने वनाता है। (कुरान, अवुलफजल, पृष्ठ १४१)

कोटि अनंदू—इसका सीधा सादा अर्थ करोडो प्रकार के काल्पनिक सुख है क्योकि जायसी ने ऊपर सुख शब्द का प्रयोग किया है जिससे उनका अभिप्राय ठोस भौतिक सुखो से है। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने कोड पाठ दिया है और उसको कौतुक का देशज रूप माना है।

उपर्युक्त पक्तियो मे कुरान की Surah LXXX का भाव प्रतिध्वनित किया गया है। देखिए 'Kuran' Eng. Tr. by Abul Fadal Page 28.

धनपति उहै जेहिक संसारू। सबै देइ निति, घट न भंडारू॥
जावंत[1] जगत हस्ति औ चांटा। सब कहं भुगुति राति दिन बाँटा॥
ताकर दीठि जो सब उपराही। मित्र सत्रु कोइ बिसरै नाहीं॥
पंखि पतग न बिसरै कोई। परगट गुपुत जहाँ लगि होई॥
भोग भुगुति बहु भाँति उपाई। सबै खवाइ, आप नहि खाई॥
ताकर उहै जो खाना पियना। सब कहं देइ भुगुति औ जियना॥
सबै आस-हर ताकर[4] आसा। वह न काहु के आस निरासा॥
जुग जुग देत घटा नहि, उभै हाथ अस कीन्ह।
औ जो दीन्ह जगत महं सो सब ताकर दीन्ह॥ ५॥

[इस अवतरण मे कवि ने परमात्मा को अलौकिक समृद्धिसम्पन्न और उदार बताया है।]

इस ससार का स्वामी वह परमात्मा ही सच्चा धनपति कहलाने का अधिकारी है। वह नित्य प्रति सबको दान देता है किन्तु उसका भडार कभी खाली नही होता। चीटी से लेकर हाथी तक जितने जीव है वह रात-दिन उन्हें भोजन देता है। उसकी दृष्टि सभी प्राणियो के ऊपर रहती है। शत्रु और मित्र वह किसी को नही भूलता है। पक्षी से लेकर पतिंगे तक का उसे ध्यान रहता है। वास्तव मे जितने भी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष जीव है उन सबका भर्ता वही है। वह अनेक प्रकार की खाद्य और भोग्य सामग्री उत्पन्न करता है और समस्त प्राणियो को खिला देता है, किन्तु स्वय कुछ नही खाता। सबको भोजन देना ही उसका अपना भोजन है। प्रत्येक जीव अपनी प्रत्येक साँस मे उसी के आश्रित है। किन्तु वह न किसी से कुछ आशा करता है और न किसी से निराशा ही रखता है। वह आशा निराशा से तटस्थ है।

वह अपने दोनों हाथो से युग-युग से बाँट रहा है किन्तु उसकी विभूति लेश-मात्र भी कम नही हुई है। ससार के लोग जो दान देते है वह भी सब उसी के दिए हुए दान का भाग है। वह उनकी अपनी वस्तु नही है।

टिप्पणी—(क) धनपति····भंडारू। यहाँ पर रूढ़ि-वैचित्र्य वक्रता है। वक्रोक्तिकार के अनुसार यह वक्रता वहाँ होती है जहाँ कवि अपनी प्रतिभा के द्वारा रूढ़ अर्थ पर किसी कमनीय असम्भाव्य अर्थ का अध्यारोप अथवा किसी उत्तम धर्म के अतिशय का गर्भित रूप मे आरोप कर देता है। वहाँ एक विचित्र सौन्दर्य या चमत्कार उत्पन्न हो जाता है। वहाँ वास्तव मे कोई लोकोत्तर चमत्कार उत्पन्न करने के लिए रूढ़ अर्थ का किसी अन्य अर्थ मे संक्रमण कर दिया जाता है। यहाँ पर धनपति शब्द का सीधा-साधा धनी अर्थ न लेकर धन का अलौकिक अधिष्ठाता या उसका एकमात्र

अग्रवाल—१. जावंत, २. खियावइ, ३. इहइ, ४. सबहिं आस ताकरि हर स्वांसा।

स्वामी अर्थ लिया गया है। इस अर्थ विशेष के आरोप के कारण ही यहाँ पर रूढ़ि-वैचित्र्य वक्रता है।

(ख) यहाँ पर ध्वनिकार के अनुसार अर्थान्तर सक्रमित वाच्य ध्वनि है। यह धनपति पद मे होने के कारण पदगत है। यह ध्वनि वहाँ पर मानी जाती है, जहाँ मुख्यार्थ का बाध होने पर वाचक शब्द का वाच्यार्थ लक्षणा द्वारा अपने दूसरे अर्थ के सक्रमण कर जाये। पद मे होने पर यह पदगत होती है। यहाँ पर धनपति शब्द के साधारण मुख्यार्थ धनी का बोध हो जाने के कारण तथा लक्षणा से धन के अलौकिक अधिष्ठाता या परमात्मा के दूसरे अर्थ मे सक्रमण हो जाने के कारण पदगत अर्थान्तर सक्रमित वाच्य ध्वनि मानी गई है।

उपर्युक्त पक्तियो मे कुरान की निम्नलिखित पक्ति का भाव स्पष्ट रूप से प्रतिध्वनित किया गया है। Verily my Lord is Rich and Generous—Kuran Tran by Abul Fadal, Page 504.

अर्थात् परमात्मा सच्चा धनपति और महा उदार है।

आदि एक बरनौ सोइ राजा[१]। आदि न अत राज जेहि छाजा॥
सदा सरवदा राज करेई। ओ जेहि चहै राज तेहि देई॥
छत्रहि अछत, निछत्रहि छावा। दूसर नाहि जो सरवरि पावा॥
परवत ढाह देख सब लोगू। चाटहि करै हस्ति-सरि[२] जोगू॥
वज्रहि तिनकहि[३] मारि उड़ाई। तिनहि वज्र करि[४] देइ वड़ाई॥
ताकर कीन्ह न जाने कोई। करै सोई जो चित्त न होई[५]॥
काहु भोग भुगुति सुख सारा। काहू वहुत भूख दुख मारा[६]॥
सबै नास्ति दह अहथिर, ऐसा साज जेहि केर।
एक साजै औ भाजे, चहै सवारै केर॥ ६ ॥

[इस अवतरण मे कवि ने परमात्मा का वर्णन एक स्वेच्छाचारी स्वतन्त्र राजा के रूप मे किया है।]

मै उस एक महान राजा का वर्णन करता हूँ जिसके साम्राज्य का कोई न आदि है और न अन्त। उसका राज्य शाश्वत है। तीनो कालो मे वह उसका शासन कर्त्ता है। जिसको चाहता है, उसी को राज्य देता है। वह छत्रधारी राजाओं को रक और रको को छत्रधारी सम्राट वना देता है। उसकी समता किसी भी लौकिक सम्राट से नही की जा सकती। वह देखते-देखते पर्वतो को ढहा देता है और चीटियो को इतनी शक्ति दे देता है कि वह हाथियो से भी अधिक शक्तिशालिनी हो जाती है। वह

अग्रवाल—१. आहि सोइ वरनौ वह राजा। २. कर, ३. तिन कै, ४. वज्र की, ५. जो मन चित होई, ६. काहू भीख भवन दुख भारा।

वज्र को तिनका और तिनके को वज्र के समान बनाने की क्षमता रखता है। उसकी रचना का रहस्य कोई नही जानता। वह ऐसी वस्तुओं का भी निर्माण करता है जिसकी कभी किसी ने कल्पना ही नही की हो। किसी के लिए वह अनन्त सुख भोग की सामग्री जुटा देता है और किसी को भूखो मार डालता है।

ससार मे सब कुछ नश्वर है, केवल वही अमर और चिरन्तन है, जिसकी महिमा का वर्णन ऊपर किया गया है। वह किसी को बनाता है और किसी को बिगाडता है और जब चाहता है तो विगडे हुए को फिर बना देता है।

टिप्पणी—उपर्युक्त अवतरण में कुरान की निम्नलिखित पक्तियो की स्पष्ट छाया दिखाई पडती है—"ईश्वर ही महान है। वही सच्चा सम्राट है। उसके अतिरिक्त और कोई ईश्वर नही है। वही शक्तिशाली महान सिहासन का स्वामी है।" (कुरान—अबुल फजल, पृष्ठ ४०८)

इसी प्रकार एक दूसरे स्थल पर लिखा है कि वह परमात्मा समस्त, ससारों का स्वामी है। (कुरान पृष्ठ ५९२)

कुरान मे ससार की नश्वरता पर भी लिखा गया है। उसमें एक स्थल पर लिखा है—"यह सासारिक जीवन एक प्रकार का खेल तमाशा है। यह वाह्य आडम्बर है जो मनुष्य के अन्दर उन्माद उत्पन्न करता है। (पदमावत काव्य और दर्शन, पृष्ठ २१३ से उद्धृत)

(१) **सोइ राजा**—यहाँ पर सोइ शब्द मे सवृत्ति वक्रता है। सवृत्ति वक्रता वहाँ पर होती है जहाँ वैचित्र्य कथन की इच्छा से किन्ही सर्वनाम आदि के द्वारा वस्तु का संवरण किया जाता है। यहाँ पर 'सोइ', शब्द उस परमात्मा की अनन्त महिमा का संवरण किए हुए है। इसलिए यहाँ पर सवृत्ति वक्रता है।

(२) **सदा सर्वदा**—यहाँ छेकानुप्रासजन्य वर्ण-विन्यास वक्रता होते हुए भी पुनरुक्ति दोष माना जायेगा। किन्तु यह दोष भी कवि की अनुभूति की तीव्रता के कारण गौण बन गया है। कवि ने वल देने के लिए ही दो पर्यायवाची शब्दो का एक साथ प्रयोग किया है। वह अपने इस लक्ष्य मे सफल भी हुआ है। ऐसे अवसरो पर दोष भी गुण वन जाता है।

अलख अरूप अबरन सो कर्त्ता। वह सब सों, सब ओहि सों वर्त्ता ॥
परगट गुपुत सो सरबविआपी। धरमी चीन्ह, न चीन्हे[1] पापी ॥
ना ओहि पूत, न पिता न माता। ना ओहि कुटुब न कोई संग नाता ॥
जना न काहु, न कोइ ओहि जना। जहं लगि सब ताकर सिरजना ॥
वै सब कीन्ह जहाँ लगि कोई। वह नहि कीन्ह काहु कर होई ॥
हुत पहिले अरु अब है सोई। पुनि सो रहै रहै नहि कोई ॥

अग्रवाल—१. चीन्ह नहिं।

और जो होइ सो बाउर अंधा। दिन दुइ चारि मरै करि धंधा ॥
जो चाहा[1] सो किन्हेसि, करै जो चाहै कीन्ह।
बरजनहार न कोई, सबै चाहि जिउ दीन्ह ॥ ७ ॥

[इस अवतरण मे परमात्मा का वर्णन कवि ने मुसलमानों, वेदान्तियो और नाथ-पंथियो के ढग पर किया है।]

वह परमात्मा जिसने सृष्टि की रचना की है, अलख, अरूप और वर्णहीन है। वह सबसे परे होते हुए भी सबमे परिव्याप्त होकर सबको चेतन बनाए हुए है। वह प्रत्यक्ष भी है और अप्रत्यक्ष भी। उसको धार्मिक वृत्ति के लोग पहचानते हैं। पापी उसे नहीं देख पाते। उसके न पिता है, न माता है और न स्वय ही कोई पुत्र है। उसका किसी से कोई सम्बन्ध और नाता भी नही है। उसका अपना कोई कुटुम्ब भी नही है। उसको किसी ने न जन्म दिया है और न उसने किसी को जन्म दिया है। फिर भी जहाँ तक सृष्टि है, वह सब उसी की रची हुई है। किन्तु उसको किसी ने नही रचा है। वह अनादि और अनत है। वह पहले भी था, अब भी है और आगे भी रहेगा। उसके अतिरिक्त और जितने मनुष्य है, वे बावरे और अंधे है। वे दो चार दिन भव-बन्धो मे फँस कर के नष्ट हो जाते है।

वह जो चाहता है, वह करता है और उसने जो चाहा था वही किया भी था। उसे रोकने वाला कोई नही है। अपनी इच्छा से ही उसने सब प्राणियो को जीवन दिया है।

टिप्पणी—इस अवतरण के विचारो पर एक ओर वैदिक प्रभाव दिखाई पड़ता है और दूसरी ओर कुरान शरीफ का।

(१) **अलख अरूप अबरन सो कर्त्ता**—इस पर नाथपथियो की उक्तियो की छाया दिखाई पडती है।

(२) **ना ओहि....माता**—यह निषेधात्मक शैली हमें उपनिषदो में और नाथ-पथियो मे बराबर प्रयुक्त मिलती है। परमात्मा का निरूपण करते हुए श्वेताश्वेतर उपनिषद् मे लिखा है—"नैष स्त्री न पुमानेष न चैवाय नपुसक।" इसी प्रकार नाथ-पथी ग्रथ अकुलवीर तन्त्र मे भी अकुल वीर अर्थात् परमात्मा के निरूपण में निषेधात्मक शैली का प्रयोग किया गया है :—

न रसो विरसश्चैव न कृतो न जायते।
नच्छाया न च तापस्तु न शीतो न च उष्णवान्।

(३) **जना न काहू....जना**—इस पर कुरान की निम्नलिखित पक्ति की छाया दिखाई पडती है। "वह किसी को उत्पन्न नही करता और न किसी ने उसे उत्पन्न किया है। उसके समकक्ष कोई और दूसरा नही है।" (कुरान, अबुल फजल, पृष्ठ

अग्रवाल—१. जो ओइं चहा।

१५०) इसके अतिरिक्त कुरान में एक स्थल पर इसी भाव की व्यजना निम्न प्रकार से की गई है 'कलवल्लाहो अहदल्लादुस्समद लमयलिद वलम यू लद वलम यकल्लई कोफीवन अदह' ।

(४) **जो चाहा** इत्यादि—यहाँ पर कुरान का प्रभाव स्पष्ट है । कुरान में परमात्मा को एक स्वतन्त्र और स्वेच्छाचारी सम्राट के रूप मे चित्रित किया गया है । उसमें लिखा है "जव उसकी जो इच्छा होती है, वह आज्ञा देता है और वह वात हो जाती है । उस परमात्मा की जै हो जिसके हाथ मे समस्त वस्तुओ का शासन है । (कुरान, पृष्ठ ३५०)

विशेषः—(१) प्रस्तुत वर्णन कुरान मे प्राप्त परमात्मा के वर्णनो से वहुत साम्य रखता हैं । 'हिन्दी के सूफी कवि और काव्य' पृ० ३१ प्रथम सस्करण देखिए ।

(२) कुरान शरीफ के अध्याय दो की आयतो मे वडा साम्य है ।

(३) हंस जवाहिर के 'पृष्ठ ३ के' निम्नलिखित वर्णन से तुलना कीजिये :—

न वह माता पिता नहि भाई ।
ना वाके कोई कुटुम्ब सगाई ॥
न वह होय कि होकर बारा ॥
वह किन रचा रचा वह सारा ॥
वह साजै भजै वही, वही सोहै उजियार ॥
प्रति पाले वह जन्म दै वही मिलावे छार ॥

कासिम साह—हंस जवाहिर, पृ० ३

नूर मुहम्मद की इन्द्रावती पृष्ठ १ पर देखिए ।

अहइ अकेल सो सिरजन हारा ॥
जानत परगट गुपुत हमारा ॥

मझन कृत मधुमालती, पृ० १

गुपुत रहै परगट जो वेलसै सरव्यापी सोइ ॥
दूजा को न आहै और भया नहि कोई ॥

एहि विधि चीन्हहु करहु गियानू । जस पुरान महं लिखा वखानू ॥
जीउ नाहि, पै जियै गुसाई । कर नाही, पै करै सवाई ॥
जीभ नाहि, पै सव किछु वोला । तन नाही, सव ठाहर डोला ॥
स्रवन नाहिं, पै सव किछु सुना । हिया नाहि, पै सब किछु गुना ॥
नयन नाहि पै सव किछु देखा । कौन भांति अस जाइ विसेखा ॥
है नाहि कोइ ताकर रूपा । ना ओहि सन कोइ आहि अनूपा ॥
ना ओहि ठाउं, नओहि विन ठाउउं । रूप रेख बिनु निरमल नाऊं ॥

ना वह मिला न वेहरा, ऐस रहा भरिपूरि।
दीठिवंत कहं नीयरे, अंध मूरुखहि दूरि ॥ ८ ॥

[इस अवतरण मे भी परमात्मा के स्वरूप का ही निरूपण किया गया है। उसके स्वरूप निरूपण मे यहाँ पर विरोधात्मक और द्वैताद्वैत-विलक्षणवादी शैली अपनायी गई है।]

इस प्रकार धर्म-ग्रन्थो मे निरूपित उस परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान करना चाहिये। वह परमात्मा यद्यपि साधारण जीव नही है, किन्तु फिर भी वह जीव के सदृश चेतन है। उसके हाथ नही है, किन्तु फिर भी वह सबका कर्ता है। उसके जीभ नही है लेकिन फिर भी वह सब कुछ बोलता है। उसके शरीर नही है किन्तु फिर भी वह सर्वगामी है। उसके कान नही है किन्तु फिर भी वह सब कुछ सुनता है। उसके हृदय नही है, किन्तु फिर भी वह सब कुछ समझता है। उसके नेत्र नही है, किन्तु फिर भी वह सब कुछ देखता है। इस प्रकार के विलक्षण परमात्मा की विशेषताओ का वर्णन कैसे किया जाये। उसका कोई स्वरूप नही है, किन्तु फिर भी उससे अनुपम रूपवान भी कोई नही है। उसका कोई स्थान नही हे किन्तु फिर भी कोई ऐसा स्थान नही है, जहाँ वह नही है। वह रूप रहित होते हुए भी, निर्मल नाम वाला है।

वह सम्पूर्ण ससार मे इस प्रकार परिव्याप्त है, कि न तो हम यह कस सकते है कि वह समवाय या अभिन्न रूप से मिला हुआ है और न उसे भिन्न रूप से मिला हुआ ही कह सकते है। ज्ञान दृष्टि वालो के लिए वह समीप है और अज्ञानी मूर्खो के लिए वह दूर है।

टिप्पणी—जीउ विसेखा—यहाँ पर प्रत्येक पक्ति मे विभावना अलङ्कार है। इससे परमात्मा की अपरिमेय महिमा व्यञ्जित की गई है। अतः यहाँ स्वतः सम्भवी अलङ्कार से वस्तु व्यग्य है।

है नाही—अनूपा—यहाँ पर विरोधाभास अलङ्कार से वस्तु व्यंग्य है। परमात्मा की अद्वैतता एव अनन्तता ही व्यग्य है। अतएव यहाँ पर स्वत सम्भवी अलङ्कार से वस्तु व्यंग्य है।

नावह....पूरि—यहाँ पर कवि ने उस अद्वैत सर्वव्यापी परमात्मा की दिव्य महिमा व्यञ्जित की है।

दीठिवन्त कहे नीयरे—दीठिवन्त का अर्थ यहाँ पर दिव्य दृष्टि सम्पन्न साधक है। यहाँ पर अर्थान्तर सकमित वाच्या ध्वनि है।

अंध मूरखहि दूर—यहाँ पर कवि का अभिप्राय है, कि वह परमात्मा भौतिक दृष्टि वादियो को नही दिखाई देता है। यह अर्थ लक्षण लक्षणा जन्य है।

विशेष—यहाँ पर परमात्मा के दिव्य स्वरूप की व्यजना ही प्रधान है।

अउर जो दीन्हेसि रतन अमोला। ताकर भरम न जानइ भोला ॥
दीन्हेसि रसना औ रस भोगू। दीन्हेसि दसन जो बिहसइ जोगू ॥

दीन्हेसि जग देखइ कहं नैना । दीन्हेसि स्रवन सुनइ कहं बैना ।।
दीन्हेंसि कंठ बोल जेहि माहाँ । दीन्हेसि कर पल्लौ बर बाँहा ।।
दीन्हेसि चरन अनूप चलाही । सोई जान जेहि दीन्हेसि नाही ।।
जोवन मरम जान पै बूढा । मिला न तरुनापा जव ढूँढा ।।
सुख कर मरम न जानइ राजा । दुखी जान जा कह दुख वाजा ।।
कया मरम जान पै रागी भोगी रहइ निचित ।
सब कर मरम गोसाई जानइ जो घट घट महं नित्त ।। ६ ।।

[इस अवतरण मे उपनिषदो की शैली मे परमात्मा का निरूपण किया गया है ।]

उस परमात्मा ने मनुष्य को जो अनमोल रत्न दिए है, उनके महत्व को यह भोला मनुष्य नही जान पाता । उसने जिह्वा दी है जिससे वह स्वाद लेता है । उसने उसे दाँत दिए है, जिससे हँसी बिखरती है । ससार को देखने के लिए उसने नेत्र दिए है । मधुर वचन सुनने के लिए उसने श्रवण दिए है । उसने कण्ठ दिया है, जिससे वाणी फूटती है । उसने कर पल्लव और सुन्दर वाहे दी है । उसने सुन्दर चरण दिए है, जिनसे वह चलता है । इन अमोल रत्नो का महत्व वही जान सकता है, जिसे ये प्राप्त नही है । यौवन का महत्व वृद्ध पुरुप ही जानता है, क्योकि प्रयत्न करने पर भी उसे तरुणाई नही मिल सकती । सुख का महत्व राजा नही समझ सकता । उसके रहस्य का ज्ञान तो दुख उठाने वाले दुखिया को ही होता है । शरीर के महत्व को रोगी ही जानता है । भोगी उसके प्रति उदासीन सा ही होता है । वह परमात्मा सर्वज्ञ है । वह घट-घट मे सदा वास करता है । और सबका मर्म जानता है ।

टिप्पणी—इस अवतरण मे और शुक्ल जी के अवतरण मे पाठभेद वहुत कम है । केवल दोहे के अन्तिम चरण मे विशेप अतर दिखलाई पड़ता है । शुक्ल जी ने पाठ दिया है—"जान जो घट घट रहे नित्त ।"

इस अवतरण मे कवि ने यह व्यञ्जित किया है कि उस परमात्मा की महिमा को वही समझ सकता है जो परमात्मा तक नही पहुँचा है । वहाँ तक जो पहुँच जाता है, वह तन्मय और तद्रूप हो जाता है ।

अति अपार करता कर करना । वरनि न कोई पारइ वरना ।।
सात सरग जौ कागर करई । धरती सात समुद मसि भरई ।।
जावंत जग साखा वन ढाँखा । जावत केस रोव पखि पाँखा ।।
जावंत रेह खेह जह ताई । मेघ बूंद औ गगन तराई ।।
सव लिखनी कइ लिखि ससारू । लिखि न जाइ गति समुँद अपारू ।।
एत कीन्ह सव गुन परगटा । अवहूँ समुँद बूँद नहि घटा ।।
अइस जानि मन गरव न होई । गरव करइ मन बाउर सोई ।।

वड गुनवंत गोसाई चहइ सो होइ तेहि वेगि ।
औ अस गुनी सँवारइ जो गुन करइ अनेग ॥ १० ॥

[इस अवतरण मे परमात्मा की अनन्त महिमा की व्यजना की गई है ।]

उस स्रष्टा की करनी अनिर्वचनीय है। कोई वर्णन करना भी चाहे तो उसका वर्णन नही कर सकता । सात आसमानो को यदि कागज वनाया जाये और सातो समुद्रो की स्याही वनायी जावे तथा ससार मे जितने वन और ढाँख है उनकी टहनियो की तथा जितने केश है और पक्षियो के रोम और पक्ष है, तथा जितने वालू और मिट्टी के कण है, तथा मेघो की जितनी वूंदे और आकाश के जितने तारे है उन सवकी यदि लेखनी वनाई जावे और सम्पूर्ण ससार मिल कर उस परमात्मा की महिमा लिखना चाहे तो नही लिख सकता क्योकि उसकी महिना अनन्त समुद्र के समान है। इतने प्रयास से जो महिमा लिखी जायेगी वह समुद्र मे वूंद के समान होगी । उसकी इस महती महिमा को जानकर हमे गर्व नही करना चाहिए । वास्तव मे जो गर्व करते है वे मूर्ख है । वह परमात्मा वडा गुणी है । जैसा चाहता है, तुरन्त वैसा ही कर लेता है। वह ऐसे गुणी को जन्म दे देता है जो ससार मे अनेक गुणो का विस्तार कर देता है।

टिप्पणी—सात सरग··· " यहाँ पर जैसा कि डा० अग्रवाल ने निर्दष्ट किया है, पुष्पदन्त कवि के निम्नलिखित श्लोक का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पडता है—

असित गिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे,
सुर तरुवर शाखा लेखनी पत्रमुर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं,
तदपि गुणानामीश पारं न याति ॥

कवीर का भी एक दोहा इसी प्रकार का है—

सात समुंद कि मसि करूँ, लेखनि सव वनराय ।
सव पृथ्वी कागद करूँ, हरिगुन लिखा त जाय ॥

यहाँ पर जायसी ने मनुष्य के गर्व भाव की निन्दा की है । ऐसा लिखते समय सभवत वे कुरान की निम्नलिखित आयतो से प्रभावित थे :—

'Say where the sea ink for the words of my Lords, the sea would surely fail before the words of my Lord fail, though we bring as much ink again.
—Cave Sura—Verse 109

कीन्हेसि पुरुष एक निरमरा । माउ मुहम्मद पूनिउ करा ॥
प्रथम जोति विधि ता कर साजी । औ तेहि प्रीत सिहिर उपराजी ॥
दीपक लेसि जगत कहं दीन्हा । भा निरमल जग मारग चीन्हा ॥
जों न होत अस पुरुष उजारा । सूझि न परत पथ अँधियारा ॥

ढोसरे ठाँव दई ओइं लिखे। भए धरमी जो पाढित सिखे ॥
जगत वसीठ दई ओइ कीन्हे। दोउ जग तरा नाउं ओहि लीन्हे ॥
जेहि नहि लीन्ह जनम भर नाऊँ। ताकहं कीन्ह नरक महं ठाऊँ ॥
गुन अवगुन विधि पूँछत होइहि लेख औ जोख।
वह विनउव आगे होइ करव जगत कर मोख ॥ ११ ॥

[इस अवतरण में जायसी का इस्लामी प्रभाव वहुत प्रत्यक्ष है। यहाँ पर मुहम्मद की पैगम्वर रूप में वर्णना की गई है। और उनकी उत्पत्ति का हेतु व्यजित किया गया है।]

उस परमात्मा ने एक पुरुष का निर्माण किया। उसका नाम मुहम्मद रख दिया। वह पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सर्वगुणसम्पन्न था। परमात्मा ने पहले उसकी अभिव्यक्ति ज्योति या नूर के रूप मे की। फिर उस ज्योति के हेतु उसने सृष्टि की रचना की। उसने दीप के सदृश ज्ञान की ज्योति से प्रकाशित उस मुहम्मद नामक पैगम्वर को संसार की भेट किया। ससार उन्हे पाकर निर्मल हो गया और उसने अपना सन्मार्ग खोज लिया। यदि इस प्रकार के पुरुष की रचना न होती तो अंधकार मे सन्मार्ग न दिखाई पडता। अल्लाह ने इन मुहम्मद को अपने वाद दूसरा स्थान दिया। जिन्होने मुहम्मद के उपदेशो का पालन किया वे सच्चे धर्मी कहलाये। परमात्मा ने पैगम्वर वना कर उन्हे ससार मे भेजा। जिसने उस पैगम्वर का नाम लिया, वह दोनो ही लोको मे सुखी हुआ और जिसने जन्म भर उसका नाम नही लिया, उसे नरक भोगना पड़ा।

'आखिरत के दिन' जव प्राणियो के गुणो-अवगुणो का लेखा-जोखा होगा, उस समय मोहम्मद साहव ही उनका लेखा-जोखा देंगे, और परमात्मा से प्रार्थना करके ससार को दु खों से मुक्त करायेंगे।

टिप्पणी—मसनवियों की परम्परा के अनुसार ग्रन्थ के प्रारम्भ में पैगम्वर की वन्दना भी आवश्यक होती है। इसीलिए सूफी कवियो ने अपने ग्रन्थो मे प्राय इस परम्परा के निर्वाह करने का प्रयास किया है। जायसी के सदृश मुहम्मद के आविर्भाव और महत्त्व की व्यजना करते हुए मंझन ने "मधु मालती" मे लिखा है—

वाकी जोति प्रगट सब ठाऊँ। दीपक सिस्टि जो मुहंमद नाऊँ ॥
वोहि लागि दैअ सिस्टि उपराजी, त्रिभुवन पेम दुंदुभी वाजी।
नांव महंमद त्रिभुअन राऊ, वोहि लागि भौ सिस्टि क चाऊ ॥ इत्यादि

यहाँ पर सूफियो के नूरवाद के सिद्धान्त की ओर भी सकेत किया गया है। इन पंक्तियो से स्पष्ट प्रकट होता है कि जायसी कट्टर मुसलमान थे। कुरान की

शरायतो में उनकी पूरी आस्था थी। इन पक्तियों में उन्होने पैगम्वर मुहम्मद और आखिरत के दिन के विषय मे पूर्ण आस्था प्रगट की है।

(३) **दीपक-लेसु**—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार है। दीपक मुहम्मद का उपमान होता है।

(४) **गुन-अवगुन**—यहाँ पर मुसलमानो के आखिरत के दिन के प्रति आस्था की दृढ़ता के साथ व्यजना की गई है। अन्य सूफी कवियो ने इस आस्था की।

विशेष—तुलना कीजिये—

वाही ज्योति प्रगट सब ठाँव।
दीपक सृष्टि मुहम्मद नाँव॥

—मझनकृत मधमालती से

जो अस रतन रचा उजियारा।
तेहि कर प्रीति रचा संसारा॥

—कासिमशाह—हस जवाहिर

तू निज जोत से कर कछु न्यारा।
ताहि मोहम्मद नावँ पुकारा।
तह कारन भई सिरष्टी।
जो कछु आवत नैन दिरष्टी॥

—प्रेम-दर्पण—निसारकवि

चार मीत जो मुहम्मद ठाउँ। चहुँक दुहूँ जग निरमर नाउँ॥
अबावकर सिद्दीक सयाने। पहिलइँ सिदिक दीन ओइँ आने॥
पुनि जो उमर खिताब सुहाए। भा जग अदल दीन जौ आए॥
पुनि उसमान पडित बड़ गुनी। लिखा पुरान जो आयत सुनी॥
चौथइँ अली सिध बरियारू। सौंह न कोई रहा जुझारू॥
चारिउ एक मतइँ एक बाता। एक पथ औ एक सँघाता॥
वचन जो एक सनाएन्हि साँचा। भए पखान दुहूँ जग बाँचा॥
जो पुरान विधि पठवा सोई पढ़त गिरंथ।
अउर जो भूले आवत ते सुनि लागत तेहि पंथ॥ १२॥

[प्रस्तुत अवतरण मे कवि ने अपने चार मित्रो का वर्णन किया है।]

चार मित्र मोहम्मद के उत्तराधिकारी हुए। उनके नाम दोनो लोको मे निर्मल थे। उनमे सवसे प्रथम अबूवकर थे। वे वडे बुद्धिमान थे। उन्होने सर्वप्रथम सिद्दीक

ने दीन अर्थात् इस्लाम धर्म का प्रचार किया था। दूसरे मित्र उमर नाम के थे। वे खलीफा की पदवी से विभूषित थे। वे जब दीन अर्थात् इस्लाम धर्म मे आये तो संसार मे न्याय की प्रतिष्ठा की। इनके बाद उस्मान का नाम आता है। वे बड़े विद्वान और गुणी थे। उन्होने इलहाम हुई आयतो को लिपिबद्ध कर कुरान की रचना की। चौथे अली हुए जो वीरता मे सिंह के समान थे। उनसे लोहा लेने वाला कोई योद्धा नही था। चारो का एक मत था, एक बात थी, एक पथ था और एक संघात सम्प्रदाय था। उन्होने एक सत्य बचन का उपदेश दिया। उससे वे प्रमाण भूत हुए। फलस्वरूप दोनो लोको मे वे कलमे पढ़े गये।

जिस कुरान को विधाता ने भेजा था उसी ग्रन्थ को लोग पढते थे। जो पथ भ्रष्ट थे वे कुरान की आयते सुन-सुन कर सन्मार्ग पर लग गये।

टिप्पणी—(१) इस अवतरण मे हिन्दू परिधान मे इस्लाम के प्रचार की भावना का सकेत मिलता है। कवि ने विद्वान को पण्डित, कुरान को पुरान, कलमे को वचन, अल्लाह को विधि और किताब को ग्रन्थ कहा गया है।

(२) **अबूबकर इब्न खौफा**—वह मोहम्मद साहब के सबसे प्रिय मित्र और ससुर थे। वे इस्लाम स्वीकार करने वालो मे अग्रगण्य थे। इन्हे अज सिद्दीकी भी। वे प्रथम खलीफा कहलाये। इनकी मृत्यु ६३४ ई० मे हुई थी। यह ६३२ से लेकर ६३४ तक प्रथम खलीफा रहे थे।

उमर इब्न अलखत्ताब—यह ६१५ ई० मे इस्लाम मे परिणत हुए थे। कहते है इन्होने इस्लाम मे पहली बार जनता के साथ नमाज पढ़ने की रवाज डाली थी यह सन् ६३४ मे द्वितीय खलीफा हुए थे। वह मदीने मे ६४४ मे कत्ल कर दिए गए थे।

उस्मान इब्न अरफान—यह मुहम्मद साहब के पहले शागिर्द थे। उनसे इन्होने अपनी लडकी की शादी भी कर दी थी। ८२ वर्ष की आयु मे इन्हे भी मार डाला गया था। कुरान अपने वर्तमान रूप में इन्ही के समय मे सकलित की गई थी। इनका समय ६५५ ई० के आस-पास है।

अली इब्न आबू—यह मुहम्मद साहब के भतीजे थे। वे उनके पहले अनुयायियो मे से थे। यह उसमान के बाद चौथे खलीफा हुए थे और ६५५ से लेकर ६६० तक शासन करते रहे थे।

नोट—उपर्युक्त चार मित्रो के वर्णन की परम्परा सूफी काव्यो मे बराबर रही है। मझन ने मधुमालती मे भी इनका वर्णन किया है।

> अब सुनु चहुँ मीत कौ धाता। सत्य न्याय सास्तर के दाता।
> सत्य गुरु वचन सत्य जो जाना प्रथमहि अबाबर्क प्रधाना।
> दूजे उमर न्याय कर राजा जे सुत पिता हना विधि काजा।
> तीजे उस्मान निश्चै अस्थाना जो रे भेद बहु-भेदक जाजा।
> चौथे अलीसिंह बड़ गुनी, दान सरग औ साधी दुनी॥ इत्यादि

सेरसाहि देहली सुलतानू । चारिउ खंड तपइ जस भानू ॥
ओही छाज छात औ पाट । सब राजा भुइँ धरहि लिलाटू ॥
जाति सूर औ खाँडइ सूरा । औ बुधिवत सबइ गुन पूरा ॥
सूर नवाई नवउ खँड भई । सातउ दीप दुनी सब नई ॥
तँह लगि राज खरग कर लीन्हा । इसकदर जुलकरों जो कीन्हा ॥
हाथ सुलेमा केरि अँगूठी । जग कहँ जिअन दीन्ह तेहि मूठी ॥
औ अति गरू पुहुमिपति भारी । टेकि पुहुमि सब सिस्टि सँभारी ॥
दीन असीस मुहम्मद करहु जुगहि जुग राज ।
पात साहि तुम्ह जग के जग तुम्हार मुहताज ॥ १३ ॥

[इस अवतरण मे कवि ने मसनवियो की परम्परा के अनुसार शाहे वक्त का वर्णन किया है ।]

शेरशाह दिल्ली का सुलतान है । चारो दिशाओ मे उसके प्रताप का सूर्य तप रहा है । छत्र और सिहासन उसे ही शोभायमान करते है । सब राजा उसके आगे पृथ्वी पर सिर टेकते है । उस का वश भी सूर है और वह स्वय भी खड्ग चलाने मे बडा शूर है । वह बडा बुद्धिमान और सर्वगुणसम्पन्न है । उसने नवो खण्डो के योद्धायो को परास्त कर रक्खा है । सातो द्वीपो की पृथ्वी भी उसके आगे झुकी हुई है । उसने अपनी खडग के बल पर वहाँ तक राज्य जीत लिया है जहाँ तक सिकन्दर जुलकरनैन ने किया था । उसके हाथ मे सुलेमान की अँगूठी है । उस मुट्ठी से उसने लोगो को जीवन दे रक्खा है । वह अति गौरवशाली महान् पृथ्वीपति है । उसने समस्त पृथ्वी को सहारा दे रक्खा है जिससे सारी सृष्टि की धारणा बनी हुई है । मुहम्मद ने उसे आशीर्वाद दिया है कि "हे राजन् तुम जुग-जुग राज्य करो । तुम ससार के सम्राट हो । सारा ससार तुम्हारे अधीन रहेगा ।

टिप्पणी—(१) सूर—यह अफगानो की एक जाति थी ।

(२) **नव खण्ड**—नव खण्डो के नाम क्रमश इस प्रकार है—भारतवर्ष, किन्नर वर्ष, हरि वर्ष, कुरु वर्ष, हिरण्यमय वर्ष, राम्यक वर्ष, भद्राश्व वर्ष, केतु मालक वर्ष और इला वर्ष । विष्णु प्रराण २.२ ।

कुछ लोगो के अनुसार ९ खण्डो से कवि का अभिप्राय प्राचीन भारत के नौ खण्डो से है जिनके नाम इस प्रकार है—(१) पाञ्चाल, (२) कलिङ्ग, (३) अवन्ती, (४) आनर्त, (५) सिन्धु, (६) सौवीर, (७) हर हौरा, (८) मद्र, (९) कौणिण्ड ।

कुछ लोग ९ खण्डो के नाम इस प्रकार बताते है—(१) इन्द्र, (२) कसेरु, (३) ताम्रवर्ण, (४) मस्तिमत, (५) कुमारिक, (६) नाग, (७) सौम्य, (८) वरुण, (९) गान्धर्व—Ancient Geography of India कनिङ्घम Page ४ और ६६ ।

(३) **सात द्वीप**—सात द्वीपो के नाम क्रमश इस प्रकार है—जम्बू द्वीप, शाक द्वीप, शाल्मल द्वीप, कुश द्वीप, क्रौञ्च द्वीप, गो मेदक द्वीप और पुष्कर द्वीप ।

(४) **इसकन्दर जुलकराँ**—जुलकराँ फारसी शब्द जुल कर नैन का विकृत रूप है। इसका शाब्दिक अर्थ है, दो सीगो वाला। यह सिकन्दर की उपाधि थी।

किम्वदन्ती है कि सिकन्दर के सिर मे सीग थे। एक दिन सिकन्दर बीमार पडा। उसने वव्वन नामक नाई को वाल काटने बुलवाया। उसने उसके सीग देख लिये। सिकन्दर ने उससे कह दिया कि यदि यह वात उसने किसी से कही, तो उसका सिर कटवा लिया जायगा किन्तु उससे न रहा गया उसने एक पेड से कह दिया। बाद को उस पेड की सारगी तवले वने और सिकन्दर के दरबार मे वजाने को लाए गए। सारंगी मे सीग-सीग ध्वनि निकलती थी और तवले से ध्वनि निकलती थी, बव्वन हज्जाम। सिकन्दर इस पर वड़ा क्रुद्ध हुआ। वडी प्रार्थना के बाद उसे मुक्ति मिली।

एक दूसरी किम्वदन्ती के अनुसार मिश्र देश मे एक देवता थे उनके दो सीग थे। सिकन्दर ने एक बार उस देवता के मन्दिर के दर्शन किये। उसके पुजारियो ने सिकन्दर का स्वागत एक दो सीगों वाले मुकुट को पहना कर किया था। तभी से उसकी उपाधि जुलकरनैन हो गई।

(५) **सुलेमाँ केरि अँगूठी**—सुलेमान एक वहुत बड़ा दानी राजा था। उसको एक फकीर ने एक ऐसी अँगूठी दी थी जिसमे चार रत्न थे जो चार तत्वो के देवताओ के द्वारा दिए गए थे। इसके प्रभाव से वह जितना अधिक दान देता था उतनी ही सम्पत्ति वढती जाती थी। शेरशाह के हाथ मे भी यही विशेषता थी कि जितना अधिक दान देता था उतनी ही सम्पत्ति वढती जाती थी। यहाँ कवि ने प्रयोजनवती साध्यवसाना गौणी लक्षण लक्षणा का प्रयोग कर शेरशाह की अत्यधिक दानशीलता व्यञ्जित की है। (इसके लिए देखिए वर्टन साहवकृत-एरिबियन नाइट)।

जग का जियन दीन्ह तेहि मूठी—अभिधेयार्थ है उस मुट्ठी मे जग का जीवन है। जीवन तो मुट्ठी मे हो नही सकता। अत मुख्यार्थ का वाध करना पडा और उपादान लक्षणा से जीवन का अर्थ जीवन सामग्री लिया गया है। इस प्रकार लाक्षणिक प्रयोगो से उक्ति मे एक विशेष चमत्कार आ जाता है।

(६) सम्पूर्ण अवतरण मे अत्युक्ति अलंकार है।

(७) मसनवियो मे शाहे वक्त की प्रशस्ति लिखने की परम्परा रही है। जायसी ने यहाँ उसी परम्परा का पालन किया है। मंझन ने तो मधुमालती मे 'पातिशाह की सिफति' नामक एक स्वतन्त्र अध्याय ही रख दिया है और शाह सलीम का वर्णन इस प्रकार किया है।

साहि सलेम जगत भुअ भारी जेइ भूंज बर मेदनी तारी।

'अनुराग वासुरी' मे भी शाहे वक्त का निम्नलिखित वर्णन द्रष्टव्य है—

कहै मुहम्मद साह वखानू है सूरज दिल्ली सुलतानू। इत्यादि।

इसी प्रकार हंस जवाहिर में कासिमशाह ने इस प्रकार लिखा है—

मुहम्मद साह देहली सुलतानू कामिल गुण बहु कीन्ह बखानू ।

इस प्रकार सूफी काव्यो मे इस परम्परा का पालन सर्वत्र मिलता है ।

बरनौ सूर पुहुमिपति राजा । पुहुमि न भार सहइ जो साजा ॥
हय गय सेन चलइ जग पूरी । परबत टूटि उड़हि होइ धूरी ॥
रेनु रइनि होइ रविहि गरासा । मानुस पंखि लेहि फिरि बासा ॥
ऊपर होइ छावइ महि भंडा । षट खंड धरति अष्ट ब्रह्मण्डा ॥
डोलइ गगन इन्द्र डरि काँपा । वासुकि जाइ पतारहि चाँपा ॥
मेरू धसमसइ समुँद सुखाई । बन खंड टूटि खेह मिलि जाई ॥
अगिलहि काहि पानि खर बाँटा । पछिलेहि काहि न काँदहु आँटा ॥
जो गढ नए न काऊ चलत हेंहि सत चूर ।
जबहि चढइ पुहुमीपति सेरसाहि जगसूर ॥ १४ ॥

[इस अवतरण मे कवि ने शेरशाह के दिव्य वैभव का वर्णन किया है ।]

मैं सूरवशी पृथ्वीपति शेरशाह का वर्णन करता हूँ । वह इतना महान् है कि पृथ्वी उसके साज सामान के भार को वहन नही कर पाती । जब उसकी सेना के हाथी, घोडे ससार मे फैल कर चलते है तब पर्वत टूट-टूट कर धूल हो कर उड़ जाते है । उस सेना की धूल रात बनकर सूर्य को आवृत्त कर लेती है जिसके फलस्वरूप इतना अँधेरा हो जाता है कि मनुष्य और पक्षी अँधेरा जान कर लौट कर बसेरा लेने लगते है । पृथ्वी धूल बनकर ऊपर उठकर छा जाती है । फलस्वरूप पृथ्वी के छः खण्ड और आकाश के आठ खण्ड हो जाते है । आकाश दोलाय मान हो जाता है और इन्द्र डर कर काँपने लगता है । वासुकि जाकर पाताल मे दुबक जाता है । मेरु अपने स्थान से च्युत होने लगता है । समुद्र सूख जाता है और वनखण्ड खण्ड-खण्ड होकर धूल मे मिल जाता है । हाथी की फौज की अगली टुकडियो को तो पानी और घास का भाग मिल पाता है । पिछली टुकडियो के लिए कीचड़ भी पर्याप्त नही होता ।

जब पृथ्वीपति और ससार के महान् योद्धा शेरशाह आक्रमण करते है तब वे गढ जो किसी से परास्त नही हुए थे उसके चलने मात्र से चूर-चूर हो जाते है ।

टिप्पणी—(१) सम्पूर्ण अवतरण मे अत्युक्ति अलकार है ।

(२) **रेनु रइनि होइ रविहि गरासा**—यहाँ पर द्वितीय विभावना अलकार और अत्युक्ति का संकर है ।

(३) चौथी पक्ति को शुल्क जी ने फिरदौसी के शाहनामे की निम्नलिखित पक्ति का रूपान्तर माना है ।

जो सुम्मे सितौराँ दराँ पह्न दश्त ।
जमी शश शुदों आस्म गश्त हस्त ।

(४) सातवी पंक्ति के सम्वन्ध में डा० अग्रवाल ने लिखा है कि तारीख-ए-शेरशाही मे जोधपुर के राव मालव देव के विरुद्ध कूच करती हुई शेरशाह की सेना का ऐसा ही वर्णन किया गया है।

(५) **चलत होंहि सत चूर**—यहाँ अक्रमातिशयोक्ति अलंकार है।

अदल कहौं जस प्रिथिमी होई। चाँटहि चलत न दुखवइ कोई॥
नौसेरवाँ जो आदिल कहा। साहि अदल सरि सोउ न अहा॥
अदल कीन्ह उम्मर की नाई। भइ अहान सिगरी दुनि आई॥
परी नाथ कोइ छुअइ ना पारा। मारग मानुस सोन उछारा॥
गउव सिघ रेंगहि एक वाटा। दूअउ पानि पिअहि एक घाटा॥
नीर खीर छानइ दरबारा। दूध पानि सो करइ निरारा॥
धरम निआउ चलइ सत भाषा। दूवर बरिअ दुनहुँ सम राखा॥
सब पिरथिमी असीसइ जोरि जोरि कै हाथ।
गाँग जउँन जौ लहि जल तौ लहि अम्मर माथ॥ १५॥

[इस अवतरण मे शेरशाह के न्याय का वर्णन किया गया है।]

कवि ससार में शेरशाह के न्याय की जो स्थिति है उसका वर्णन करता है। (उसके शासन मे) चलती चीटी को भी कोई दु.ख नही देता। नौशेरवाँ का न्याय लोक प्रसिद्ध है किन्तु वादशाह के न्याय के आगे वह भी फीका था। उसने खलीफा उमर की भाँति न्याय किया जिससे सारे संसार मे उसकी ख्याति फैल गई। कोई नाक की नथ भी न छू सकता था। लोग मार्ग में सोना उछालते हुए चलते थे। गऊ और सिह मार्ग मे साथ-साथ चलते थे और एक ही घाट पर जाकर पानी पीते थे। वह अपने दरवार मे नीर और क्षीर को अलग करता था। वह धर्म से न्याय करता, वह सत्य वोलता है और दुर्वल और वलवान दोनो की एक समान रक्षा करता था।

सारी पृथ्वी उसे हाथ जोड़-जोड कर आशीर्वाद देती थी कि 'जव तक गंगा जमुना में जल है तव तक तुम्हारा मस्तक अमर रहे।'

टिप्पणी—(१) **नौसेरवाँ**—यह एक फारस का वादशाह था। यह वडा न्याय-प्रिय था। वह ५३१ ई० से लेकर ५७९ ई० तक राज्य करता रहा था।

(२) द्वितीय पंक्ति मे प्रतीप अलकार है।

(३) **उमर खलीफा**—इस्लामी जगत खलीफा उमर अपने न्याय के लिए प्रसिद्ध है।

(४) **आहन**—प्रसिद्ध।

(५) **नाथ**—नथनी नामक एक आभूषण।

(६) पाँचवी पक्ति में—लोकोक्ति अलंकार है।

(७) **सब पिरथिमी असीसई**—यहाँ पर उपादान लक्षणा से सब पृथ्वी के प्राणी अर्थ लिया गया है।

(८) **गग जमुन.......अम्मर नाथ**—इस पंक्ति मे भी लोकोक्ति अलंकार है।

पुनि रूपवंत वखानौ काहा। जावँत जगत सबइ मुख चाहा॥
ससि चौदसि जो दइअ सँवारा। तेहूँ चाहि रूप उजियारा॥
पाप जाइ जौ दरसन दीसा। जग जोहारि कइ देइ असीसा॥
जइस भान जग ऊपर तपा। सबइ रूप ओहि आग छपा॥
भा अस सूर पुरुष निरमरा। सूर चाहि दह आगरि करा॥
सौह दिस्टि कइ हेरि न जाई। जेई देखा सो रहा सिर नाई॥
रूप सवाई दिन दिन चढा। बिधि सरूप जग ऊपर गढ़ा॥
रूपवंत मनि माथे चन्द्र घाट वह बाढि।
मेदिनि दरस लुभानी अस्तुति विनवइ ठाढि॥ १६॥

[इस अवतरण मे कवि ने शेरशाह के अतुलनीय सौन्दर्य का वर्णन किया है।]

मै उस अतुलनीय रूपवान का क्या वर्णन करूँ। सारा संसार उसका मुख जोहा करते है। परमात्मा ने चौदस का जो चन्द्रमा वनाया है उससे भी अधिक उस के रूप का प्रकाश है। उसके दर्शनो से पाप नष्ट हो जाते है। ससार उसे प्रणाम कर के आर्शीर्वाद देता है। वह सूर्य के सदृश संसार के ऊपर तप रहा है। सव रूप उसके आगे छिप जाते है। सूर वश मे ऐसा निर्मल पुरुष उत्पन्न हुआ जो सूर्य से भी दस कला आगे है। सामने दृष्टि करके उसे कोई देख नही सकता जो देखता है वही दृष्टि झुका लेता है। उसका रूप सवाया वढता जा रहा है। परमात्मा ने उसे ससार मे सवसे अधिक सुन्दर वनाया है।

वह ऐसा रूपवान है कि मानो उसके मस्तक पर मणि दमकती हो। चन्द्रमा घटकर, वह वढ़ कर है। सारी पृथ्वी उसके रूप पर मुग्ध हुई खड़ी-खड़ी प्रार्थना करती है।

टिप्पणी—(१) **रूपवंत वखानौ काहा**:—यहाँ पर काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यग्य है।

(२) दूसरी पक्ति मे प्रतीप अलङ्कार है।

(३) चौथी पक्ति के पूर्वार्ध मे उपमा अलकार है।

(५) पाचवी पक्ति मे 'सूर' पर यमक अलकार है।

(६) **जेइ देखा सो रहा सिर नाई**—इसमे अक्रमातिशयोक्ति अलकार है।

(७) **चाँद घाटि वह बाढ़ि**—मे प्रतीप अलकार है।

(८) **मेदिनि दरस लुभानी** इत्यादि—इस पक्ति मे उपादान लक्षणा मूलक

उपचार वक्रता है। उपादान लक्षणा तो इसलिए है कि मेदिनी मे जीव का उपादान करना पड़ा है। अचेतन पर चेतनता का आरोप करने के कारण उपचार वक्रता है।

पुनि दातार दइअ बड़ कीन्हा। अस जग दान न काहूँ दीन्हा ॥
वलि औ विक्रम दानि वड़ अहे। हातिम करन तिआगी कहे ॥
सेरसाहि सरि पूज न कोऊ। समुँद सुमेर घटहि नित दोऊ ॥
दान डाँग बाजइ दरवारा। कीरति गई समुद्रहँ पारा ॥
कँचन वरिस सोर जग भएऊ। दारिद भागि देसंतर गएऊ ॥
जौ कोइ जाइ एक बेरि माँगा। जनमहु होइ न भूखा नाँगा ॥
दस असुमेध जग्गि जेइँ कीन्हा। दान पुन्नि सरि सेउ न दीन्हा ॥
अइस दानि जग उपना सेरसाहि सुलतान।
ना अस भएउ न होइहि ना कोइ देइ अस दान ॥ १७ ॥

[इस अवतरण मे कवि ने शेरशाह की अद्वितीय दानशीलता का वर्णन किया है।]

दैव ने उसे वडा दानशील बनाया है। संसार मे ऐसा दान किसी ने भी न दिया। राजा बलि और राजा विक्रम बड़े दानी प्रसिद्ध रहे है। हातिम और कर्ण अपनी दानशीलता के लिए प्रसिद्ध है। किन्तु इनमे से कोई शेरशाह की समता नही कर सकता। समुद्र के रत्न और सुमेरु का स्वर्ण उसके दान से नित्य घटते जाते है। उसके दरवार में दान का डंका बजता रहता है। उसके दान की कीर्ति समुद्र के उस पार तक फैल गई है। लोक मे ऐसी प्रसिद्धि है उसके यहाँ कचन वरसता है। दारिद्रय भाग कर परदेश चला गया। यदि कोई जाकर एक बार उससे माँग लेता तो जन्म भर नंगा-भूखा नही रहता। जिसने दस अश्वमेघ यज्ञ भी किये होगे उसने भी शेरशाह के सदृश दान नही दिया होगा। शेरशाह ससार में ऐसा दानी उत्पन्न हुआ है कि ऐसा न कोई हुआ न होगा और न इस समय कोई है। जो ऐसा दान दे।

टिप्पणी—बलि और विक्रम।

(क) **राजा बलि**—राजा वलि अपनी दानशीलता के लिए प्रसिद्ध है। उन्होने वामन भगवान को साढ़े तीन पग पृथ्वी के रूप मे अपना सारा साम्राज्य दे दिया था।

विक्रमादित्य—अवन्ती के महाराजा विक्रमादित्य वड़े भारी दानी थे। उनकी दानशीलता की सैकडो कहानियाँ प्रसिद्ध है। सिहासन वत्तीसी मे इनका वर्णन है।

हातिमताई—इनकी कथा वागोवहार मे दी हुई है। यह एक वडे दानी महात्मा थे। इनकी दानशीलता की परीक्षा लेने के लिए एक राजा ने, जिसने रात्रि मे उनकी कब्र के पास पड़ाव डाल रक्खा था, हातिमताई की कब्र से याचना की कि हमें खाने के लिए भोजन दो। उसी समय उनका एक ऊँट मर गया। उन्होने उसका माँस खाकर भूख बुझाई। हातिम ने अपने पुत्र को स्वप्न दिया कि जुलकारा को एक ऊँट

पहुँचा दो क्योंकि मैंने एक ऊँट मार कर उनकी भोजन की याचना पूरी की थी। इसी प्रकार की सैकडो कहानियाँ उनके सम्बन्ध मे प्रसिद्ध है।

इस्लामी साहित्य मे रूप की उपमा मे पूर्णिमा के चाँद को न लाकर चौदहवी के चाँद को लाते है। इसका कारण सम्भवतः यह कि पूर्णिमा के चांद मे कालिमा की झलक रहती है किन्तु चौदहवी का चाँद सर्वथा निर्मल होता है।

अस जग दान न काहू दीन्हा—यहां पर असम अलकार है।

तीसरी पंक्ति मे—प्रतीप अलकार है।

कीरत गई समुन्दर पारा—यहाँ पर उपचार वक्रता का सौन्दर्य है। अमूर्त पर मूर्तता आरोपित की गई है।

दारिद भाग देसन्तर गएऊ—यहाँ पर भी अमूर्त मे मूर्तता का आरोप किए जाने के कारण उपचार वक्रता है।

दोहे की अन्तिम पक्ति मे असम अलकार है। उपमान के सर्वथा अभाव वर्णन मे असम अलकार होता। प्रस्तुत पक्ति मे उपमान की असम्भवता व्यञ्जित की गई है।

कंचन बरिस सोर जग भएऊ—सोना बरसना एक मुहावरा है। जिसका अर्थ है अत्यधिक सुख समृद्धि का होना या प्रजा को अनन्त धन दान करना। प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थो मे कही-कही स्वर्ण वर्षा की चर्चा की गई है जैसे कालिदास ने रघु के सम्बन्ध मे लिखा कि उसके कोश मे सोने का मेघ बरसता था। दिव्यावदान नामक प्राचीन ग्रन्थ मे राजा मान्धाता के सम्बन्ध मे लिखा है कि उसके राज्य मे एक सप्ताह तक सोने की वृद्धि हुई थी। इसी प्रकार तारीखे शेरशाही मे लिखा है—शेरशाह अपनी उदारता और दान के लिए विख्यात हो गया था। वह सारे दिन सूर्य की तरह सोना और मेघो की भाँति मोती बरसाता था'। (डा० अग्रवाल)

यह सब प्रयोग लाक्षणिक है।

सैयद असरफ पीर पिआरा। तिन्ह मोहि पंथ दीन्ह उजियारा॥
लेसा हिएँ पेम कर दिया। उठी जोति भा निरमल हिया॥
मारग हुत अँधियार असूझा। भा अँजोर सब जाना बूझा॥
खार समुद्र पाप मोर मेला। बेहित धरम लीन्ह कइ चेला॥
उन्ह मोर करिअ पोढ कर गहा। पाएऊँ तीर घाट जो अहा॥
जा कहँ अइस होहि कंधारा। तुरित बेगि सो पावइ पारा॥
दस्तगीर गाढे के साथी। जहँ अवगाह देहि तहँ हाथी॥
जहाँगीर ओइ चिस्ती निहकलक जस चाँद।
ओइ मखदूम जगत के हौं उन्हके घर बाँद॥ १८॥

[इस अवतरण मे कवि ने अपनी गुरु परम्परा का निर्देश किया है।]

सैयद-अशरफ बड़े लोकप्रिय महात्मा थे। उन्होने मुझे उज्ज्वल मार्ग का उपदेश

किया। उन्होने मेरे हृदय मे प्रेम का दीपक प्रज्वलित किया। उससे उद्भूत ज्योति से मेरा हृदय मिर्मल हो गया। मेरा जीवन-मार्ग अज्ञान के अन्धकार से असूझ था। उसमें प्रेम की ज्योति का प्रकाश भर गया जिससे जीवन मार्ग परिचित हो गया। मेरे पाप ने मुझे खारे समुद्र मे डाल रक्खा था। उन्होने मुझे चेली बनाकर धर्म की नाँव पर बिठा दिया। उन्होने मेरी पतवार दृढता से पकड ली जिसके परिणामस्वरूप मुझे किनारे पर का घाट मिल गया। जिसका ऐसा कर्णधार हो वह तुरन्त ही शीघ्रता से पार पहुँच जाता है। वे विपत्ति मे हाथ पकड कर सहायता करते हैं। जहाँ जल अगाध होता है वहाँ भी वे सहारा देते है।

वे जहाँगीर चिश्ती वश के थे और चाँद की तरह निष्कलक थे। वे ससार के स्वामी है और मैं उनका सेवक हूँ।

टिप्पणी—(१) इस अवतरण मे सूफी मत के प्राणभूत तत्व प्रेम के महत्त्व की स्पष्ट व्यन्जना की गई है।

(२) **पंथ दीन्ह उजियारा**—कवि ने सूफी मत के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की है। वे उसे प्रकाशयुक्त मार्ग मानते हैं।

(३) **लेसा हिए प्रेम को दिया**—सूफी साधना मे प्रेम को सबसे महान् तत्त्व माना गया है। देखिए लेखक का 'जायसी का पद्मावत काव्य और दर्शन' पृ० १४७-१४८। यहाँ पर कवि ने प्रेम को ज्योति स्वरूपी व्यञ्जित किया है। ज्योति ज्ञान का प्रतीक है। इससे प्रगट है जायसी जिस प्रेम के समर्थक थे, वह ज्ञानस्वरूपी सी था। अत. उसमे अज्ञान के अन्धकार को नष्ट करने की शक्ति थी।

(४) **उठी जोति भा निरमल हीया**—यहाँ पर प्रथम असंगति अलंकार है। जोति उठने का कार्य दीए मे होता है और निरमल हृदय होता है।

ओहि घर रतन एक निरमरा। हाजी शेख सबै गुन भरा॥
तेहि घर दुइ दीपक उजियारे। पथ देह कहँ दैव सँवारे॥
सेख मुहम्मद पून्यो-करा। सेख कमाल जगत निरमरा॥
दुऔ अचल ध्रुव डोलहि नाही। मेरु खिखिद तिन्ह हुँ उपराही॥
दीन्ह रूप औजोति गोसाई। कीन्ह खम्भ दुइ जग के ताईं॥
दुहूँ खम्भ टेके सब मही। दुहूँ के भार सिहिर थिर रही॥
जेहि दर से औ पर से पाया। पाप हरा, निरमल भइ काया॥
मुहमद तेइ निचित पथ जेहि सँग मुरसिक पीर।
जेहि के नाव औ खेवक बेगि लागि सो तीर॥ १९॥

[इस अवतरण मे कवि ने अपनी गुरु परम्परा का निर्देश किया है।]

उनके सैयद अशरफ के घर मे निर्मल रूप सौभाग्यशाली शेख हाजी हुए इनके घर मे भगवान पन्थ को प्रदर्शित करने के लिए दो दीपक के सदृश पुत्र दिये—एक का

नाम शेख मुबारक था। उनकी शोभा पूर्णिमा के चाँद जैसी थी दूसरे शेख कमाल, जो संसार मे बडे निर्मल थे अर्थात् इनमे किसी प्रकार के दुर्गुण नही थे। दोनो ध्रुव की भाँति अचल थे वे डोलते नही थे अर्थात् उनका मन बडा पवित्र और दृढ था मेरू जिसके उपर ध्रुव है और खिखिद जिसके ऊपर दक्षिणी ध्रुव है इन दोनो से भी ऊँचे शेख कमाल और शेख मुबारक थे। ईश्वर ने दोनो को रूप और ज्योती दी थी। वे दोनो ससार के स्तम्भ रूप थे इन्होने ही सारी पृथ्वी को रोक रक्खा था। जिन्होने उनके दर्शन किये और पैर छूये उनके पाप दूर हो गये और काया निर्मल हो गई।

मौहम्मद कवि कहते है कि जिसके सग मे उपर्युक्त प्रकार के मुरशिद और पीर हो उनका मार्ग निश्चिन्त रहता हूँ। जिसकी नाव मे पतवरियाँ और खिवैया दोनों होते है वह शीघ्र तीर पर लग जाता है।

टिप्पणी—मेरू—बहुत प्रसिद्ध पहाड है यह उत्तरी गोलार्द्ध मे है उत्तरी ध्रुव के पास है यहाँ देवता निवास करते है।

खिखिन्द—सुमेरु को कहा गया है यह पहाडी दक्षिणी गोलार्द्ध के पास है कहते है यहाँ दैत्य लोग रहते है।

टिप्पणी—तिन्ह घर..........उजियारे—यहाँ पर दीपक मे रूपकातिशयोक्ति है। इनका अर्थ है युग रूपी दीपक।

टिप्पणी—मेरू खिखिन्द तिनहु उपराही—यहाँ पर प्रतीप अलकार है।

टिप्पणी—दुहु के भार सिस्टि थिर रही—यहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा अलंकार है।

टिप्पणी—मुहम्मद.... ..... तीर—यहाँ पर दृष्टान्त अलकार है।

करिआ—कर्णधार।

गुरु मोहदी खेवक मै सेवा। चलै उताइल जेहि कर खेवा॥
अगुवा भयउ शेख बुरहानू। पथ लाइ मोहि दीन्ह गियानू॥
अलहदाद भल तेहि कर गुरू। दीन दुनी रोसन सुरखूरू॥
सैयद मुहमद कै वै चेला। सिद्ध पुरुष-संगम जेहि खेला॥
दानियाल गुरू पथ लखाए। हजरत ख्वाज खिजिर तेहि पाए॥
भए प्रसन्न ओहि हजरत ख्वाजे। लिए मेरह जहँ सैयद राजे॥
ओहि सेवत मै पाई करनी। उधरी जीभ, प्रेम कवि वरनी॥
वै सुगुरु, हौ चेला, नित विनवौ भा चेर।
उन्ह हुत देखै पायहँ दरस गोसाई केर॥ २०॥

[इस अवतरण मे कवि ने गुरू का वर्णन किया है।]

गुरु मोहीउद्दीन खेवक है और मै सेवक हूँ। उनका खेवा बडी शीघ्रता से चलता है शेख बुरहान उनके मार्ग दर्शक थे। उन्होने ही मुहीउद्दीन पन्थ मे दीक्षित कर ज्ञान दिया था। बुरहान के श्रेष्ठ गुरु अहलदाद थे जो दीन और दुनियाँ दोनो मे बड़े प्रसिद्ध

और सफल थे। वे सैय्यद मुहम्मद के शिष्य थे। उनकी सत्संगति मे पहुँचे हुए लोग रहते थे। उन्हें दानियाल पीर ने मार्ग दिखलाया था। हजरत ख्वाजा खिज्र से उनकी कही भेंट हो गई थी वे हजरत ख्वाजा उन पर प्रसन्न हो गये उन्होने सैय्यद राजे नामक सन्त से मिला दिया उन गुरू मोहिउद्दीन से सूफी विधानो की दीक्षा पाकर मेरी जिह्वा पवित्र हो गई। उनका सेवक जानकर नित्य उनकी विनती करता हूँ। उनकी कृपा से ही मैं भगवान का दर्शन पा सकूँगा।

टिप्पणी—ख्वाजा खिज्र—इस्लामी पौराणिकता मे इनकी बडी ख्याति है कुछ लोग उन्हे सेट जार्ज नामक संत ही मानते है और ख्वाजा खिज्र उनका इस्लामी नाम बताते है। कहते है यह अमर है और अब भी जीवित है। यह प्राय हरे वस्त्रो मे घोड़े पर सवार दिखाई पड़ते है इसीलिए इन्हें हरा पैगम्बर कहते है। इनकी मान्यता मुसलमानो मे ही नही हिन्दुओ मे भी लाल वेगी मेहतर इनके प्रति बडी श्रद्धा रखते है। देखिये (Knight of broom Page 45 By Gieeven) यह जन के देवता के रूप मे भी पूजे जाते है। कुछ लोग कहते हैं वह केकूबाद का वजीर था इनके सम्बन्ध मे टेम्पल साहब ने लिजेण्डस ऑफ पजाब मे पाई जाने वाली बहुत सी दन्तकथाएँ सजोयी है।

टिप्पणी—ओहि सेव... ....कवि बरनी—इस पक्ति मे कवि ने अपनी रचना को प्रसाद काव्य बताया है तुलसी ने भी अपने काव्य को प्रसाद काव्य कहा था।

शम्भु प्रसाद सुमति हिय हुलसी।
रामचरित मानस कवि तुलसी॥

जायसी की गुरु परम्परा का अध्ययन करने पर पता चलता है कि कवि सैय्यद अशरफ का शिष्य नही था। इनका उल्लेख उन्होने केवल आध्यात्मिक पूर्वज के रूप मे किया है। कुछ लोग उन्हे उनका मन्त्र गुरु कहते है। मुहीउद्दीन उनके विद्या गुरु थे। एक ने उन्हे दीक्षा दी थी और दूसरे ने उन्हे शिक्षा दी थी।

एक नयन कवि मुहम्मद गुनी। सोइ बिमोहा जेहि कबि सुनी॥
चाँद जैस जग विधि औतारा। दीन्ह कलंक कीन्ह उजियारा॥
जग सूझा एकैं नयनाहाँ। उआ सूक जस नखतन्ह माँहा॥
जौ लहि अबहि डाभ न होई। तौ लहि सुगन्ध बसाइ न सोई॥
कीन्ह समुद्र पानि जो खारा। तौ अति भयउ असूझ अपारा॥
जौ सुमेरु तिरसूल बिनासा। भा कचन गिरि, लाग अकासा॥
जौ लहि घरी कलंक न परा। काँच होइ नहि कञ्चन करा॥
एक नयन जस दरपन औ निरमल तेहि भाउ।
सब रूप वंतई पाउ गहि मुख जोहहि कै चाउ॥ २१॥

[इस अवतरण मे कवि ने अपने व्यक्तित्व का आत्मश्लाघापूर्ण वर्णन किया है।]

मोहम्मद कवि कहता है यद्यपि मेरे एक ही नेत्र है किन्तु फिर भी मै गुणी हूँ (अर्थात् लोकदृष्टा महाकवि हूँ)। जिसने मेरा काव्य सुना वही मोहित हो गया। परमात्मा ने मुझे ससार मे चन्द्रमा के समान अमर वनाया है। उसने मुझे कलक देकर भी प्रकाशमय कर दिया। (जिस प्रकार चन्द्रमा कलक युक्त होते हुए भी अपनी कोमुदी से लोक को रजित करता है उसी प्रकार मैने भी एक नेत्र वाला होने से कलकित होते हुए भी अपनी कविता से लोक का रजन किया है। एक ही नेत्र से विश्व दर्शन कर रक्खा है। वह एक नेत्र ही ऐसा प्रकाशमान है जैसे नक्षत्रो मे शुक्र दैदीप्यमान रहता है। आम मे जव तक नुकीली डाल नही निकलती तव तक उसमे सुगन्धि नही आती है। इसी प्रकार परमात्मा ने समुद्र का पानी अगर खारा वनाया तो अपूर्व विस्तार और विशालता दी। सुमेरु पर्वत त्रिशूल से मारा गया तभी तो वह स्वर्ण गिरि कह-लाया। जब तक घरिया मे कालिख नही पडती तव तक कच्ची धातु मे सोने जैसी चमक नही आती है। मेरे एक नेत्र है किन्तु वह दर्पण के समान है। उसका भाव निर्मल है। वडे-वडे रूपवान मुझ जैसे कुरूप को प्रणाम करते हे। और मेरी वाणी सुनने के लिए मेरा मुख जोहा करते है।

टिप्पणी—(१) एक नैन कवि मुहम्मद गुनी—यहाँ पर द्वितीय विभावना अलकार है। काव्याध्ययन के लिए दो नेत्र होने चाहिए किन्तु केवल एक ही है। अत. कारण अपूर्ण है फिर भी कार्य हो गया है। यहाँ कवि शब्द काव्य के अर्थ मे प्रयुक्त है।

(२) **दीन्ह कलंक कीन्ह उजियारा**—यहाँ पर विरोधाभास अलकार है।

(३) **जग सूझा एकै नैन हाँ**—यहाँ पर भी द्वितीय विभावना अलकार है।

(४) **उआ सूक अस नहतन्ह मांहाँ**—यहाँ उपमा अलकार है।

(५) **जो लहि अंबहि डाभ न होई** इत्यादि—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाक्यगत वाच्य ध्वनि है। यह ध्वनि प्रयोजनवती लक्षणा का आधार लेकर खडी होती है। इसमे वाच्यार्थ का सर्वथा त्याग रहता है और एक दूसरा ही अर्थ निकलता है। यहाँ पर दूसरा अर्थ है जव तक पुरुप मे दोप नही होता तव तक उसमे गरिमा नही आती है।

डाभ—मजरी आने से पहले आम के वृक्ष मे नुकीले टोसे निकल आते है।

(६) **कीन्ह समुद्र पानि जौ खारा** इत्यादि—यहाँ पर प्रतीयमाना हेतूत्प्रेक्षा व्यंग्य है।

(७) **जो सुमेरु·······अकासा**—यहाँ पर प्रतीयमाना हेतूत्प्रेक्षा व्यंग्य है।

(८) तीसरी चौथी पाँचवी छठी एवम् सातवी पक्ति मे मिलाकर अर्थान्तिरन्यास अलकार है। क्योकि विशेप का कई सामान्यो के द्वारा समर्थन किया गया है। अर्थान्तिरन्यास से वस्तु व्यग्य है कि जायसी कुरूप होते हुए भी अत्यधिक प्रतिष्ठित हुए है।

घरी—लोहा सोना चाँदी आदि गलाने की घरिया होती है। आग पर रखने धातु का मैल कटकर ऊपर उतरा आता है।

काँच—कच्ची धातु।

कञ्चन करा—सोने की चमक ।

चारि मीत कवि मुहमद पाए । जोरि मिताई सिर पहुँचाए ।।
युसुफ मलिक पंडित बहु जानी । पहिले भेद बात वै जानी ।।
पुनि सालिर कादिम मति माहा । खाडै दान उभत नित वांहा ।।
मिया सलोने सिह वरिआरू । वीर खेत रन खडग जुहारू ।।
सेख वड़े वड़ सिद्ध वखाना । किये आदेस सिद्ध वड़माना ।।
चारिउ चतुर दसा गुन पढ़े । औ संजोग गोसाईं गढ़े ।।
विरिछ होइ जो चन्दन पासा । चन्दन होइ वेधि तेहि वासा ।।
मुहमद चारिउ मीत मिलि, भए जो एकहि चित्त ।
एहि जग साथ जो निवहा जोहि जग विछुरन कित्त ।। २२ ।।

[इस अवतरण मे कवि ने अपने चार मित्रो का वर्णन किया है ।]

मुहम्मद कवि के चार मित्र थे । उन्होने उनसे मित्रता कर उन्हे अपने समान वना दिया । युसुफ मलिक पडित और ज्ञानी थे । उसने सबसे प्रथम ही रहस्यमय का साक्षात्कार किया था । दूसरे मित्र का नाम सालार था उनका मन मार-काट मे लगता था । वे दोनों हाथो से खडग दान करते थे । अर्थात् दोनो हाथो से खडग चलाते थे । तीसरे मिया सलोने थे । वह विलक्षण वीर थे । युद्ध क्षेत्र मे वडी वीरता से खडग युद्ध करते थे । चौथे मित्र वड़े शेख थे । वे बड़े भारी सिद्ध थे । सिद्धो ने उन्हे प्रणाम कर गौरव प्रदान किया । चारो ने चौदह विद्याएँ पढ़ी है । परमात्मा ने उन्हे मित्रता के योग्य वनाया है । चन्दन के पास जो वृक्ष होते है वे भी चन्दन की सुगन्धि से सुगन्धित हो जाते है ।

मुहम्मद कवि कहते है चारो मित्र मिलकर एक चित्त हो गए । जव इस ससार मे साथ निभाया गया तो फिर उस संसार मे विछुडन क्यो और कैसे होगा ।

टिप्पणी—(१) चतुरदसा गुन पढ़े—यहाँ पर चौदह विद्याओ की ओर सकेत है । भारतीय परम्परा के अनुसार वही व्यक्ति पडित माना जाता है जो चौदह विद्याओ मे पारगत हो । श्री हर्ष ने नैषधीय चरित मे नल को भी चौदह विद्याओ मे पारंगत बताया है :—

अधीतिवोधा चरण प्रचारणैः ।
दशाश्चतस्त्रः प्रणयन्नुपाधिभिः
चतुर्दशत्व कृतवान् कुतः स्वयं ।
न वेद्मि विद्यासु चतुर्दशस्वयम् ।

चौदह विद्याओं के अन्तर्गत चार वेद, ६ वेदाङ्ग और मीमांसा न्याय धर्मशास्त्र और पुराण यह चौदह विद्याएँ प्रधान बनाई गई है ।

(२) छठी सातवी पक्ति में अर्थान्तिरन्यास अलंकार है।

(३) विरिख जो ··················बाँसा।

यहाँ पर अर्थान्तिरन्यास से वस्तु व्यग्य है। व्यग्यार्थ है जो मनुष्य सत्संगति मे रहते है वे भी सज्जन हो जाते है।

जायस नगर धरम अस्थानू। तहाँ आइ कवि कीन्ह वखानू ॥
औ विनती पंडित सन भजा। टूट सॅवारहु, मेरवहु सजा ॥
हौ पडितन केर पछलागा। किछु कहि चला तवल देई डगा ॥
हिय भंडार नग अहै जो पूँजी। खोली जीभ तारु कै कूँजी ॥
रतन पदारथ वोल जो वोला। सुरस प्रेम मधु भरा अमोला ॥
जेहि के वोल विरह कै धाया। कह तेहि भूख कहाँ तेहि माया ॥
फेरे भेख रहै भा तपा। धूरि लपेटा मानिक छपा ॥
मुहमद कवि जौ विरह माना तन रकत न माँसु।
जेइ मुख देखा तेइ हॅसा सुनि तेहि आयउ आँसु ॥ २३ ॥

[जायसी ने इस अवतरण मे अपने निवास स्थान अपने कवि और कवित्व शक्ति का परिचयात्मक एवम् प्रशसात्मक वर्णन किया हे।]

जायस नगर धर्म का स्थान है। वहाँ मेरे कवि ने काव्य का सृजन किया। मैं पडितो से विनती कर रहा हूँ कि इसमे जो भी कमी या त्रुटि हो उसे सँवार दे। और जो विगडी वात हो उसे ठीक कर दे। मै पडितो का पिछलगा हूँ। मै भी डंके की चोट पर कुछ कहने का साहस कर रहा हूँ। हृदय के भडार मे रत्नो की जो सम्पत्ति है उसे मैने जिह्वा रूपी ताले की कुँजी से खोला है। वह जिह्वा रत्नसेन और पद्मावती के गीत गा रही है। वे गीत प्रेम के मधुर रस से आप्लावित है। जिसकी वाणी मे विरह का घाव रहता है उसे अन्न की भूख और मायामोह नही रहता है। वह वेश वदल कर तपस्वी रहता है। वह धूल से लिपटा हुआ माणिक्य-सा है।

मोहम्मद कवि प्रेम का कवि है उसके शरीर मे न रक्त है और न मांस है। जिसने उसका कुरूप रूप देखा वह हँस दिया, किन्तु जब उसकी वाणी सुनी तो विरह विह्वल हो कर रो दिया।

टिप्पणी—(१) जायस·········वखान।

इस पक्ति मे कवि ने अपने ग्रन्थ के रचना स्थान का वर्णन किया है। जायस रायवरेली जिले मे एक कस्वा है। पदमावत काव्य की रचना वही हुई थी।

कवि—यहाँ पर कवि काव्य का वाचक है।

किछु कहि चला तबल देई डगा—यहाँ पर लोक सम्भव वस्तु से वस्तु ध्वनि है। तवल एक वहुत वडा नगाडा होता है। सेना मे कूच के समय बजाया जाता है। उसी ध्वनि पर पिछले सैनिक भी अगले सनिको की भाँति कदम मिला कर चलते है।

इस लोक सम्भव वस्तु ध्वनि से व्यंग्यार्थ रूप वस्तु ध्वनि है कि मुझे भी कवियो का पिछलगा होने के नाते उनके ही सदृश पद्मावत जैसे ग्रन्थ की रचना करनी पडी।

हिय.........कुंजी—यहाँ रूपक रूपकातिशयोक्ति आदि अलकार स्पष्ट है। उनसे कवि ने अपनी वाणी के महत्त्व की व्यजना की है। अत यहाँ कवि प्रोढोक्ति सिद्ध अलकार से वस्तु व्यग्य है।

रतन पदारथ....... वाला—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। यह प्रयोजनवती लक्षण लक्षणा पर आधारित है। वाच्यार्थ है वह रतन और पदार्थ रूप बोल बोलती है। लक्ष्यार्थ है कि पद्मावत मे जो उक्तिया है वे प्रेम और सद्भाव से युक्त है। पद्मावत की प्रेम साधना और रतन सेन की त्याग भावना ही यहाँ व्यग्य है। अत यहाँ रतन और पदारथ मे अत्यन्त तिरस्कृतवाच्य ध्वनि है'

कुछ लोग रतन पदारथ का अर्थ रतनसेन और पद्मावती से लेते है। यह अर्थ शव्द शक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि रूप है।

जिह के बोल बिरह के घाया—यहाँ अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। बोल विरह के घाव नही हो सकते अतः प्रयोजनवती लक्षण लक्षणा से अर्थ लिया कि उसकी उक्तियाँ विरहजनित गूढ़ वेदना देने वाली है। वचनो की विरहमूलक अत्यधिक मार्मिकता ही यहाँ व्यग्य है।

धूरि लपेटा मानिक छपा—यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलकार व्यग्य है। व्यग्य सम्भवा आर्थी व्यजना से दूसरा व्यग्यार्थ हुआ—वह ऐसा महा कवि है जो परिस्थितिवश अभी अज्ञात है किन्तु जब ख्याति फैलेगी तो उसका मूल्य ज्ञात होगा।

जेहि...............आसु—यहाँ स्वत सम्भवी वस्तु से वस्तु ध्वनि है। व्यग्यार्थ उनकी कुरूपता है।

सुनि तेहि... ...... आसु—यहाँ पर भी स्वत सम्भवी वस्तु से काव्य की मार्मिकता रूप वस्तु व्यग्य है। अत यहाँ पर स्वत सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यग्य है।

सन नव सै सत्ताईस अहा। कथा अरम्भ-बैन कवि कहा॥
सिघलदोप पदमिनी रानी। रतनसेन चितउर गढ आनी॥
अलउदीन देहली सुलतानू। राघौ चेनन कीन्ह बखानू॥
सुना साहि गढ छेका आई। हिन्दू तुरकन्ह भई लराई॥
आदि अन्त जस गाथा अहै। लिखि भाखा चौपाई कहै॥
कवि वियास कँवला रस पूरी। दूरि सो नियर, नियर सो दूरी॥
नियरे दूर, फूल जस काँटा। दूरि जो नियरे, जस गुड चाँटा॥

भँवर आइ वनखण्ड सन लेइ कँवल कै वास।
दादुर वास न पावई भलहि जो आछै पास॥ २४॥

[इस अवतरण मे कवि ने अपने ग्रन्थ का रचना काल और वर्ण्य कथा का निर्देश किया है ।]

यह वर्ष ९४७ हिजरी का था । इसी वर्ष मे कवि ने अपने ग्रन्थ की रचना का श्रीगणेश किया था । सिंघल देश मे पद्मावती का नाम रानी थी । राजा रतनसैन उसे चित्तौड गढ ले आये थे । अलाउद्दीन दिल्ली का सुल्तान था । राघव चेतन ने उसके आगे पद्मावती के सौन्दर्य का वर्णन किया । सुल्तान ने उसके अतिशय रूप का वर्णन सुनकर चित्तौड गढ को घेर लिया । हिन्दू और मुसलमानो मे घनघोर युद्ध हुआ । आदि से अन्त तक जो भी कथा थी कवि ने हिन्दी मे वह दोहा चौपाइयों मे वर्णित की ह । कवि और व्यास के क्रमश· लिखी गई और पढी गई कथा रस का कटोरा होती है । दूरस्थ रसिक के लिए तो वह समीप होती है (अर्थात् वे उसे पढ कर या दूर से आ कर रस लेते है । किन्तु अरसिक के लिए पास होते हुए भी दूर है । कवि इस पर दृष्टान्त देता है । जिस प्रकार काँटा फूल के समीप होते हुए भी उसकी सुरभि को नही पाता उसी प्रकार अरसिक कवि और व्यास के समीप रहते हुए भी उनकी वाणी के रस को नही पाते हैं ।

भौरा वनखण्ड से आकर कवल सुरभि लेता है । किन्तु दादुर पास रहते हुए भी कमल की सुरभि नही पाते । व्यग्यार्थ है कि मेरी कविता का रस मेरे समीपवर्ती अरसिक नही पाते है । किन्तु कोई सहृदय काव्य प्रेमी दूर से आकर भी इसका आनन्द लेगा और महत्त्व को पहचानेगा ।

टिप्पणी (१) कवि वियास—यहाँ पर कवि प्रोढोक्ति मात्र सिद्ध वस्तु से वस्तु व्यग्य है कवि प्रोढोक्ति सिद्ध वस्त ि कवि और व्यास की कृति में रस का कटोरा भरा हुआ है । व्यग्य रूप वस्तु है कि ·न बहुत मधुर काव्य रचा है ।

कुछ लोग इसमे अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि भी मान सकते है उस अवस्था 'रस का भरा कटोरा' वाच्य.थ होगा व्यग्यार्थ रूप ध्वनि होगी—रस की अतिरेकता । यही प्रयोजन है ।

दूर सो नियर-नियर सो दूरी—यहाँ पर उपादान लक्षणा से दूरस्थ रसिक नियर का समीपस्थ अरसिक अर्थ लिया गया है ।

नियरहि दूर..................चाटा—यहाँ उदाहरण अलंकार है ।

भँवर आइ..................पास—यहाँ अन्योक्ति अलकार है । भौरा और दादुर आदि अप्रस्तुतो के सहारे प्रस्तुत रसिक अरसिक का वर्णन किया गया है ।

सिहल द्वीप वर्णन

सिहल दीप कथा अव गावौ । औ सो पदमिनि बरनि सुनावौं ।।
निरमल दरपन भाँति विसेखा । जो जेहि रूप सो तैसइ देखा ।।
धनि सो दीप जहँ दीपक वारी । औ पदमिनि जो दई सवारी ।।
सात दीप वरनै सव लोगू । एकौ दीप न ओहि सर जोगू ।।
दिया दीप नहि तस उँजियारा । सरन दीप सर होइ न पारा ।।
जँवू दीप कहौ तस नाही । लक दीप सरि पूज न छाही ।।
दीप गभस्थल आरन परा । दीप महुस्थल मानुस हरा ।।
सव ससार परथमैं आए सातौ दीप ।
एक दीप नहि उत्तिम सिघल दीप समीप ।। १ ।।

[इसमे कवि ने सिहल दीप का वर्णन किया है । इसमे उसने पद्मावती का वर्णन भी किया है ।]

कवि कहता है कि अव मे सिहल गढ का वर्णन करता हूँ और पदिमनी, स्त्री पद्मावती की कथा भी कह रहा हूँ । महाकवि के वर्णन या प्रवन्व की यही विशेपता होती है कि जिसका जैसा रूप होता है वह उसमे वैसा ही चित्रित रहता है । वह द्वीप वन्य है जहाँ वालाएँ दीपक के समान दैदीप्य मान है तथा पद्मावती जैसी स्त्री जन्मी है । सव लोग सात द्वीपो का वर्णन करते हे किन्तु उस सिहल गढ के समकक्ष एक भी द्वीप नही था । दिया दीप मे वैसा प्रकाश नहीं था जैसा कि सिहल द्वीप मे था । सरन दीप उसकी समता कर ही नही सकता था जम्वू दीप भी वैसा नहीं कहा जा सकता । लका द्वीप तो उस सिहल दीप की परछाई भी नहीं है । गभस्थल दीप तो जंगलो से भरा हुआ हैं । महुस्थल दीप मनुष्यो को हरने वाला है ।

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मे सर्व प्रथम सात दीप आए थे किन्तु सिहल गढ़ की तुलना मे एक दीप भी सुन्दर नही है ।

टिप्पणी—(१) निरमल—विशेखा (इसके स्थान पर डा० अग्रवाल ने वरनक दिया है । वरनक का अर्थ—कवि पक्ष मे) वर्णन और (स्त्री पक्ष मे) वर्ण का अर्थ होगा ।

यहाँ पर उपमा अलङ्कार है। 'विशेपा' में संवृत्ति वक्रता है। संवृत्त अर्थ है कि वह ऐसा दर्पण है जिसमे रूप विकृत नही दिखाई पडता है।

धनि सो दीप जहँ दीपक बारी—वाच्यार्थ है वह द्वीप धन्य है जहाँ वह बाला रूपी दीपक है। यहाँ रूपक अलङ्कार से वस्तुव्यंग्य है पद्मावती का रूपातिशय्य।

सात दीप बरनै सब लोग—लोग सात दीपो की चर्चा करते है। पुराणो मे सप्त दीपो के नाम क्रमश. जम्बू, शाक, शालम्ल, कुश, कौञ्च, गो, मेदक, पुष्कर है। जायसी के सात दीप पुराणो के न होकर लोक कथाओं के सप्त दीप है उनके नाम हैं .—

(१) **दिया दीप**—डा० अग्रवाल के अनुसार दोउ नामक दीप वह है जो काठियावाढ के समुद्र के किनारे स्थित है।

(२) **सरन दीप**—सरन दीप स्वर्णा द्वीप मध्य युग मे सुमात्रा सरन दीप के नाम से प्रसिद्ध था।

(३) **लंक दीप**—डा० अग्रवाल के अनुसार लंक वालूस नामक द्वीप द्वीपान्तर मे था।

(४) **कुश दीप**—इसका उल्लेख पुराणो मे दिया गया है।

(५) **जम्बू दीप**—इसका वर्णन पुराणो मे मिलता है। यह सम्भवतः एशिया का वाचक है क्योकि जम्बू दीप का ही एक खण्ड भारतवर्ष है।

(६) **कुशस्थल दीप**—यह पौराणिक कुशा द्वीप का दूसरा नाम है।

(७) **महुस्थल**—यह दीप भी काल्पनिक मालूम पडता है। शिरेफ के मतानुसार यहाँ पर कवि ने पद्मिनी नारी के सात अगो का सकेत किया है—(१) दियाद्वीप=नेत्र, (२) सरन दीप=श्रवण या कान, (३) जम्बू दीप जामुन जैसे काले केश, (४) लक द्वीप=कटि, (५) कुम्भस्थल=स्तन, (६) महुस्थल=गुह्याङ्ग, (७) कुश द्वीप=गुह्याङ्ग के वालो से भरा प्रदेश। कवि की व्यन्जना है कि सिहल दीप अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र के महत्व की समता पद्मावती के सात द्वीप रूप सात प्रमुख अग नहीं कर सकते।

एक ' समीप—यहाँ पर प्रतीप अलङ्कार व्यग्य है।

गंध्रवसेन सुगध नरेसू। सो राजा, वह ताकर देसू॥
लका सुना जो रावन राजू। तेहु चाहि वड़ ताकर साजू॥
छप्पन कोटि कटक दल साजा। सवै छत्रपति औ गढ राजा।
सोरह सहस घोड घोडसारा। स्याम करन अरू वाँक तुखारा॥
सात सहस हस्ती सिघली। जिनु कविलास एरावत वली॥
अस्वपतिक सिरमौर कहावै। गजपतीक आँकुस गज नावै॥
नरपतीक कहँ और नरिदू। भूपतीक जग दूसर इंदू॥
एस चक्कवै राजा चहुँ खंड भय होई।
सवै आई सिर नावहि सरवरि करै न कोई॥ २॥

[इस अवतरण मे गन्धर्व सेन के प्रताप एवम् ऐश्वर्य का वर्णन किया गया है ।]

गन्धर्व सेन यशस्वी राजा थे वह राजा थे और सिंहल गढ उनका देश था । राजा रावण की लका की बडी ख्याति रही है किन्तु उसका राज्य उससे भी वडा था । छप्पन करोड उसकी सैना थी । उस सैना के सभी सरदार क्षत्रपति और गढ़पति थे । सोलह हजार तो घोड़े और घुड सवार थे । वे घोडे या तो श्याम वर्ण जाति के थे या तुषार देश के थे । उसके यहाँ सात हजार सिंहली हाथी थे । वे इन्द्र के ऐरावत के समान बलशाली थे । वह राजा अश्व पतियो मे सिरमौर माना जाता था । उसका अकुश वड़े-वडे गजपतियो को उस प्रकार झुका देता था जैसे पीलवान अकुश से वडे-वडे हाथियो को झुका देता है । नरपतियों मे वह नरेन्द्र कहा जाता था । भूपतियो मे वह अपर इन्द्र था ।

टिप्पणी—(१) यहाँ पर पर कवि ने यौगिक दृष्टि से ब्रह्मरन्ध्र के अधिष्ठाता का वर्णन गन्धर्व सेन के रूपक से किया है । अत्युक्ति अलङ्कार व्यग्य है ।

(२) दूसरी पक्ति में व्यतिरेक अलङ्कार है ।

(३) सोरह सहस्त्र—यहाँ पर यह सख्या साकेतिक है ।

(४) इस अवतरण मे राजा के महान् वैभव का वर्णन किया गया है ।

जवहि दीप नियरावा जाई । जनु कविलास नियर भा आई ॥
घन अमराउ लाग चहुँ पासा । उठा भूमि हुत लागि अकासा ॥
तरिवर सवै मलयगिरि लाई । भइ जग छाँह रैनि होइ आई ॥
मलय समीर सोहावन छाँहा । जेठि जाड़ लागै तेहि माँहा ॥
ओही छाँह रैनि होइ आवै । हरियर सबै अकास देखावै ॥
पथिक जो पहुँचै सहिकै घामू । दुख विसरै सुख होई विसरामू ॥
जेहि वह पाई छाँह अनूपा । फिरि नहिं आइ सहै यह धूपा ॥
अस अमराउ सघन घन, वरनि न पारौ अन्त ।
फूलै फरै छवौ ऋतु, जानहु सदा वसंत ॥ ३ ॥

[इस अवतरण मे कवि ने सिंहल द्वीप के रहस्यात्मक वैभव की व्यंजना की है ।]

जव द्वीप के समीप आये तो ऐसा लगा कि कैलाश समीप आ गया हो । चारो ओर घनी अमराइयाँ लगी थी । वह इतनी विशाल थी कि ऐसा लगता था कि पृथ्वी से उठकर आकाश को स्पर्श करना चाहती है । वहाँ के सव वृक्ष ऐसे सुरभित है मानो कि मलय गिरि से लाये गये हैं । उनकी छाया इतनी सघन है कि संसार मे उन्ही के कारण रात्रि होती है । उस छाया में मलय वायु सुहावनी लगती है । वहाँ जेठ के महीने मे भी जाडा रहता है । वही छाँह रात्रि होकर छा जाती है । आकाश से अर्थात् ऊँचे स्थान से सर्वत्र हरियाली ही दिखाई देती है । जो पथिक घाम सह कर पहुँचता है उनके सारे दुख दूर हो जाते हैं और सुख एवम् शान्ति मिलती है । जिसने वह

अनुपम छाँह प्राप्त की उसने फिर लौटकर आकर सासारिक धूप नही सही। वहाँ ऐसा सघन आम कुञ्ज है कि मै उसका वर्णन नही कर सकता। वह आम कुञ्ज छहो ऋतुओं मे फलता फूलता है। वहाँ सदा वसन्त रहता है छहो ऋतुएँ फलती फूलती है।

आध्यात्मिक अर्थ—कवि ने उपर्युक्त पंक्तियो मे संवृति वक्रता और अर्थान्तर सक्रमित वाच्य ध्वनि से एक आध्यात्मिक एव हठयौगिक अर्थ की व्यञ्जना की है। यहाँ पर सिहल द्वीप से कवि ने सहस्त्रार की ओर सकेत किया है। जब साधक सहस्त्रार रूपी सिहल द्वपि के समीप पहुँचता है तो उसे अनुभव होने लगता है कि ब्रह्मरन्ध्र (कैलास समीप आ गया है) सुषम्ना ही अमराई है यह अमराई मूलाधार रूपी पृथ्वी से उठकर सहस्त्रार तक पहुँचती है। उस सुषुम्ना रूपी अमराई के वृक्षो मे उसकी कर्णिकाएँ मलय गिरि की सुरभि से सुरभित है। वहाँ पर पहुँचकर साधक को ससार शीतल छाँह युक्त दिखाई देने लगता है। उस छाँह मे मलय समीर की सुरभि और शीतलता रहती है। जेठ के महीने मे भी वहाँ शीतलता रहती है। वहाँ शतदलो की इतनी छाँह है कि अन्धकार-सा रहता है। सम्पूर्ण सहस्त्रार हरा-भरा दिखाई देता है। साधक रूपी पथिक जो सासारिक तापो से दुखित होकर पहुँचता है तो उसके दु ख विसर जाते है और सुख और विश्राम प्राप्त होता है। जिनको ब्रह्मरन्ध्र की दिव्य छाया प्राप्त हो जाती है वे फिर कभी इस संसार रूपी कुएँ मे आकर नही पडते। सुषुम्ना की वह अमराई ऐसी सघन है कि उसका वर्णन नही किया जा सकता।

टिप्पणी—(१) कविलास जायसी मे यह शब्द कई अर्थो मे प्रयुक्त मिलता है कही यह स्वर्ग का वाचक कही ब्रह्मरन्ध्र का पर्याय और कही शिवस्थान को बोधक है। इसके लिए देखिए लेखक का 'जायसी का पद्मावत काव्य और दर्शन' पृष्ट २६२।

(२) यह सम्पूर्ण अवतरण पूर्ण रहस्यात्मक है यहाँ पर उस रहस्यात्मक लोक का वर्णन किया गया है जिसकी साधना मे रहस्यवादी लगे रहते हैं। यह रहस्यलोक भावमूलक भी है और योग परक भी। भावना की दृष्टि से इसे हम कवि की रहस्य-पूर्ण भावमयी कल्पना मानते है। यौगिक दृष्टि से यह सहस्त्रार का वर्णन है जो निश्चय ही बडा रहस्यपूर्ण है।

उठे पुहुमि हुति लाग अकासा—जो इस द्वीप के समीप जाता है वह पृथ्वी से उठकर आकाश का स्पर्श करता है यह तो वाच्यार्थ हुआ यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यार्थ ध्वनि है कि वह भौतिक वातावरण से उठकर दिव्य रहस्यात्मक लोक की अनुभूति करने लगना है।

तखिर सबै मलैगिरि लाए—यहाँ पर प्रतीयमाना उत्प्रेक्षा अलङ्कार वस्तु व्यङ्गय है। उन वृक्षो से उठने वाली शीतल मन्द सुगन्धमय वायु एक दिव्य सुख शान्ति की अनुभूति प्रदान करती है।

भए जग छाँह रैन होय ध.ए—यहाँ निर्णीयमाना सम्वन्धातिशयोक्ति अलङ्कार से हेतूत्प्रेक्षा अलङ्कार व्यङ्गय। इस प्रकार अलङ्कार से अलङ्कार ध्वनि हुई।

जेठि जाड़ लागै तेहि माहा—यहाँ पर भी निर्णीयमाना सम्बन्धातिशयोक्ति

अलङ्कार है। जेठ और जाड़े का सम्बन्ध नही किन्तु कवि ने असम्बन्ध से निश्चित सम्बन्ध कल्पित किया है।

ओहि छाँह रैनि होई आवै—ओहि मे संवृति वक्रता है। पूरी पंक्ति मे हेतूत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

पथिक जो पहुँचे सहिकै धाम—बिसराम—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। अर्थ है जो साधक सासारिक तापो से सतप्त होकर उस रहस्यमय लोक मे पहुँचता है वहाँ उसे सुख शान्ति और शीतलता मिलती है।

वह छाह—सवृति वक्रता है वह दिव्यता का व्यञ्जक है।

यह—सवृति वक्रता है।

दोहे मे असम्बन्धातिशयोक्ति अलङ्कार है क्योकि सामान्यतः।

वगीचे के फूलने फलने का सम्बन्ध एक ऋतु से होता है छहो ऋतु से नही।

फरे आम अति सघन सुहाए। औ जस फरे अधिक सिर नाए॥
कटहर डार पीड सन पाके। वड़हर, सो अनूप अति ताके॥
खिरनी पाकि खाँड़ अस मीठी। जामुन पाकि भंवर अति डीठी॥
नरियर फरे फरी फरहरी। फुरै जानु इन्द्रासन पुरी॥
पुनि महुआ चुअ अधिक मिठासू। मधु जस मीठ, पुहुप जस वासू॥
और खजहजा अनवन नाऊ। देखा सब राउन अमराउ॥
लाग सवै जस अमृत साखा। रहै लोभाइ सोइ जो चाखा॥
लवंग सुपारी जायफल सव कर फेरे अपूर।
आसपास घन इमिली औ घन तार खजूर॥ ४॥

[इस अवतरण में कवि ने अमराउ का सश्लिस्ट वर्णन किया है।]

अति सघन रूप से फूले हुए आम वडे सुन्दर लग रहे थे। जैसे फलते फूलते जाते थे वैसे ही भुकते जाते थे। कटहल की डाले ही क्या तना तक फलो से लदा हुआ था। वडहर के फल देखने मे वड़े प्यारे लगते थे। पकी हुई खिरनी खाँड की भाति मीठी थी। पके हुए जामुन काले मोर की भाँति दीख रहे थे। नारियल के फल खूब फले थे। रसभरी भी खूव फली थी वह वगीचा वास्तव मे इन्द्रासन पुरी का वगीचा लगता था मधु महुआ चू रहा था वह मधुर और पुष्प की भाँति सुरभित था। इसी प्रकार और अनेक प्रकार के फल फल रहे थे जिनका मुझे नाम तक नही आता। वे सव राजा के वगीचे मे फल रहे थे। वे सव शाखाओ मे ऐसे लग रहे थे मानो अमृत फल फले हो उन्हे जो भी चखता था वह लुब्ध हो जाता था।

लवंग सुपारी जायफल आदि सव फल प्रचुरता मे फले थे। आसपास में घनी इमलियाँ लगी थी और ताड़ और खजूर के वृक्ष भी थे।

टिप्पणी—(१) औ अस फेर अधिक सिर नाए—यहाँ रूपक अलंकार है। यहाँ

वृक्ष उपमेय है पुरुष उपमान है। दोनो का आरोप किया गया है इसलिए रूपक है। इस पक्ति मे शब्द गत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। मनुष्य सिर झुका सकता है वृक्ष नही। इससे फलाधिक्य व्यञ्जित किया है। यहाँ उपचार वक्रता भी है। अचेतन वृक्षो पर चेतन पुरुष का आरोप किया गया है।

(२) इस अवतरण मे जायसी की वस्तुपरिगणन की प्रवृत्ति स्पष्ट परिलक्षित है।

(३) पीड—तना कटहल की यह विशेपता है कि वह डार और पेडी मे ही लगता है।

(४) खुर हुरी या फरु हरी—यह एक प्रकार का छोटा-सा जगली फल होता है।

(५) खजहजा—एक प्रकार का मधुर फल।

(६) रावन—इसके स्थान पर राउन पाठ होता तो अच्छा था उस अवस्था मे अर्थ होगा राजाओ का।

(७) इस अवतरण मे भी जायसी की वस्तुपरिगणान की प्रवृत्ति दिखाई पडती है।

वसहि पंख वोलहि वहु भाखा। करहि हुलास देखि कै साखा॥
भोर होत वोलहि चुह चूही। वोलहि पाँडुक "एकै तुही"॥
सारौ सुआ जो रह चह करही। कुरहि परेवा औ कर वर ही॥
"पीव पीव" कर लाग पपीहा। "तुही तुही" कर गडुरी जीहा॥
"कुह कुह" करि कोइल राखा। औ भिगराज वोल वहु भाखा॥
"दही दही" करि महरि पुकारा। हारिल विनवै आपन हारा॥
कुहकहि मोर सोहावन लागा। होइ कुराहर वोलहि कागा॥
जावत पखी जगत के भरि बैठे अमराउँ।
आपनि आपनि भाषा लेहि दई कर नाउँ॥ ५॥

[इस अवतरण मे कवि ने सिहल गढ के वगीचो मे वास करने वाले पक्षियो का वर्णन किया है।]

इस वगीचे मे अनेक पक्षी रहते थे और अनेक प्रकार की भापाएँ वोलते थे। वे वृक्षो की शाखएँ देखकर हुलसित होते थे। सवेरा होते ही चुहचुही वोलने लगती थी। पाण्डुकी 'एकै तुही' वोलती है। तोता और मैना हुलसित होकर वोलते है। कवूतर ऊपर उडकर गिरता है और पक्षी खरभर करते है। पपीहे पिउ पिउ वोलना आरम्भ कर देते है गुडरू चिडिया 'तुही' 'तुही' कह कर खीजती है। कोयल ने कुह कुह की रट लगा रक्खी है। भुजग पक्षी वहुत प्रकार की वोली वोलता है। ग्वालिन चिडियाँ 'दही' 'दही' पुकारती है। हरियल वोल कर अपना हाल कह

रहा है। कुहकुते हुए मोर सुहावने लगते है किन्तु जब कौए बोलते है तब कोलाहल होता है।

ऊपर जितने भी पक्षी वर्णित है बगीचा उन सब से भरा हुआ है और सब अपनी-अपनी भाषा मे परमात्मा का नाम लेते है।

टिप्पणी—इस अवतरण में कवि ने पक्षियो की जानकारी का परिचय दिया है।

. बसहि पख—यहाँ पख का अर्थ है पखधारी पक्षी यह अर्थ उपादान लक्षणा से लिया गया है।

चुह चुही—फुल सुघनी नामक चिड़िया।

सारउ—सारिका।

गिरिह परेवा—यहाँ पर कुरीह परेवा पाठ भेद है जो अधिक उपयुक्त है।

खीहा—खीजना।

गुडरू—एक प्रकार का बटेर।

भिंगराज—यह एक प्रकार का बडा मूल्यवान पक्षी है इसकी विशेपता यह है कि जिसकी बोली सुनता है उसी की नकल करने लगता है।

इस अवतरण से स्पष्ट प्रमाणित है कि जायसी को पक्षिशास्त्र एव पक्षियो की बोलियो आदि का अच्छा ज्ञान था।

पैग पैग पर कुआँ बावरी। साजी बैठक और पाँवरी॥
और कुँण्ड बहु ठावहि ठाऊँ। औ सब तीरथ तिन्ह के नाऊँ॥
मठ मडप चहुँ पास सँवारे। तपा जपा सब आसन मारे॥
कोई सु ऋषीसुर कोई सन्यासी। कोई रामजती बिसवासी॥
कोई ब्रह्मचार पथ लागे। कोइ सी दिगम्बर विचरहि नागे॥
कोई सु महेसुर जगम जती। कोई एक परखै देवो सती॥
कोई सुरसती कोई जोगी। कोई निरास पथ बैठ वियोगी॥
सेवरा, खेवरा, बानपर, सिध साधक अवधूत।
आसन मारे बैठ सब जारि आतमा भूत॥ ६॥

[इस अवतरण मे कवि जलाशयो और तपस्वियो का वर्णन किया गया है।]

कदम कदम पर कुआँ और बावलिया बनी है। उनमे बैठक, कुआँ की जगत पर पानी के बर्तन रखने के स्थान तथा बावलियाँ के पाँवरिया सुचारु रूप से बनी है। स्थान स्थान पर कुण्ड बने है उनके नाम भी सब तीर्थो पर रक्खे हुए है। चारो ओर मड और मण्डप बने हुए है जिनमे जप करने वाले और तप करने वाले बैठे है। कोई बड़े ऋपी है, कोई सन्यासी है, कोई राम के भक्त है; कोई महीना भर उपवास करने वाले है, कोई ब्रह्मचर्य साधना मे सलग्न नैष्ठिक ब्रह्मचारी है, कोई दिगम्बर मतानुयायी होने से नगे रहते है। किसी को सरस्वती सिद्ध है कोई जोगी है मानो कि निराश प्रेमी हो

कर वियोगी वन वैठे है। कोई महेश्वर है ; कोई जगम है ; कोई यती है ; कोई देवी के भक्त और कोई सतियों के उपासक है।

सेवरा खेवरा वाणप्रस्थी सिद्ध साधक अवधूत आदि आसन लगाये वैठे रहते है और अपनी आत्मा जला डालते है।

टिप्पणी—सब तीरथ औ तिन्ह के नाऊँ—उनके नाम तीर्थो के नाम पर रक्खे गये है इस सम्बन्ध मे डा० अग्रवाल का कहना है गुप्त काल मे यह विशेपता थी कि प्रत्येक वडे तीर्थ मे वहुत से ऐसे स्थल स्थापित किये जाते थे जिनके नाम दूसरे तीर्थो के नाम पर होते थे। जैसे काशी मे कामच्छा आदि है। मेरी समझ मे यहाँ पर जायसी को सीधा-साधा अभिप्राय यही है कि उसमे वहुत से कुण्ड थे उनके नाम भी तीर्थो पर थे।

तपा—वे साधू जो पञ्चाग्नि तपस्या आदि कठोर साधनाएँ करते है उन्हे तपा कहते है।

जपा—ये जप करके किसी देवता आदि की सिद्धि कर लेते थे।

रिखेसुर—जो मनुष्यो की शक्ति को उलघन कर जाते है। ऋपियो की कई श्रेणियाँ होती है जैसे ऋपी, परम ऋपी, महर्पि, राज ऋपि, ब्रह्मर्पि, देवर्पि आदि।

रामजन—वे वैरागी जो राम की उपासना मे अपना जीवन व्यतीत करते है यह अयोध्या मे वहुत पाये जाते है।

मसवासी—एक प्रकार की साधुओं की जाति जो एक स्थान पर एक महीने से अविक नही रहते। कुछ लोगो के अनुसार मासोपासक साधुओ को भसवासी कहते है। डा० अग्रवाल ने लिखा है कि "मथुरा की ककाली टीले से प्राप्त एक जैन शिला लेख मे तपस्विनी विजय श्री जैन श्राविका को एक माँग का उपास करने वाली कहा गया है। गरुड पुराण मे अध्याय १२२ मे मासोपास वृत का विधान है। इसके अनुसार यह वृत आश्विन शुक्ल एकादसी से कार्तिक शुक्ल ११ तक रक्खा जाता है। महाभारत के शुक्ल पर्व मे मासोपवास करने वाले जोगी का उल्लेख है।"

ब्रह्मचर्य पथ लागे—वर्णी नाम के वे साधु जो ब्रह्मचर्य धारण को सवसे वडा तप समझते है।

सुमहेसुर—भगवान शिव की साधना करने वाले साधु।

जंगम—दक्षिण मे दशवी शताव्दी से वासव नामक व्यक्ति ने लिगायत सम्प्रदाय स्थापित किया था। इन्होंने अपने समाज को तीन वर्गो मे वॉट रखा है—पचमशाली और अपचमशाली। प्रथम वर्ग से अन्तर्गत जगम साधू आते है यह विविध घटियो से युक्त एक लम्वा सा चोलना पहनते है और उन घटियो को वजाते चलते है। यह शिव के उपासक होते है।

दिगम्वर—जैनियों मे दो वर्ग होते है—दिगम्बर और श्वेताम्वर। दिगम्वर साधू वस्त्र नही धारण करते इनके देवता भी दिगम्वर होते है।

सुरसती—यह योगियो की एक कोटि है।

सिद्ध—वज्रयानी सिद्ध ।

निरास वियोगी—कुछ सूफी सन्त है जो ससार से उदासीन होकर वियोगी बनकर उस प्रियतम के वियोग मे साधना करते रहते हैं ।

देवी सती—वे साधू जो देवी या सती की साधना करते है ।

सेवरा—यह एक प्रकार के शैव साधू होते है । यह गेरुआ वस्त्र जटा धारण करते है । यह अपने लिंग की एक नस तोड़ डालते है और उसमे एक सिकडी बाधे रहते है । कुछ लोग इन्ही को स्वेताम्वरा जैन साधू मानते है यह ठीक नही है ।

खेवरा—यह भी शैव साधुओ का एक भेद है । यह हाथ मे खप्पड लिए रहते है । यह लोग हाथ की हथेलियो को मल मलकर अनाज खाते है ।

वानपरस्ती—यह वाणप्रस्थाश्रम मे रहने वाले साधू ।

सिद्ध साधक—सिद्धियो की साधना करने वाले साधू । सिद्धियाँ आठ होती है उनके नाम है अणिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्रकाम्य, ईश्वरत्य, वशित्य ।

अवधूत—नाथ पथी साधु को अवधूत कहते है ।

मान सरोदक बरनौ कहा । भरा समुद्र अस अति अवगाहा ।।
पानि मोति अस निरमल तासू । अमृत आनि कपूर सुवासू ।।
लंकदीप कै सिला अनाई । बाँधा सरवर घाट बनाई ।।
खँड खँड सीढ़ी भई गरेरी । उतरहि चढ़हि लोग चहुँ फिरी ।।
फूला कँवल रहा होइ राता । सहस सहस पखुरिन कर छाता ।।
उलथहि सीप, मोति उतराही । चुगहि हंस औ केलि कराही ।।
खनि पतार पानी तहँ काढ़ा । छीर समुद्र निकसा हुत बाढा ।।
ऊपर पाल चहुँ दिसि अमृत-फल रूख ।
देखि रूप सरवर कै गै पियास औ भूख ।। ७ ।।

[इस अवतरण मे मान सरोवर के वैभव का वर्णन किया गया है ।]

कवि कहता है कि मानसरोवर के वैभव का वर्णन क्या करूँ, वह सर्वथा अनिर्वचनीय है । वह अगाध समुद्र की भाँति भरा हुआ है । उसका पानी मोती जैसा निर्मल और अमृत जैसा मधुर हैं । कपूर की सुरभि है । लक द्वीप से शिलाएँ लाकर उस सरोवर घाट बनाया गया हैं । सरोवर के प्रत्येक खण्ड मे घुमावदार सीढी बनी हुई है । लोग चारो ओर उतरते चढ़ते है । वहाँ वह सहस्त्र दल कमल खिला हुआ है । सीपीजल मे उलट जाती है—उन मे भरे हुए मोती बाहर जल मे उतरने लगते है । वहाँ हंस उन मोतियो को चुगते है । क्रीड़ा करते हैं । स्वर्ण वर्ण के पंखों वाले पक्षी तैरने मे बड़े प्यारे लगते है । वे ऐसे सुन्दर लगते है मानो कि सोने के बने हुए हो ।

चारों ओर ऊँचे पाल है और ऊपर वृक्षो मे अमृत जैसे मधुर फल लगे हुए है । सरोवर की शोभा देख कर भूख और प्यास मिट जाती है ।

टिप्पणी—(३) पूला कँवल रहा होई राता,
सहस सहस पखुरिन कर छाता ।

यहाँ पर स्पष्ट रूप से सहस्रार या शत दल कमल का वर्णन किया गया है। हंस से कवि ने सिद्ध साधको की ओर सकेत किया है। कवि ने यह व्यञ्जित किया है कि जीवन्मुक्त साधक सहस्रारस्थ ब्रह्मरन्ध्र मे जाकर समाधि अवस्था मे आनन्द मग्न हो जाता है। वहाँ दिव्य दृष्य देखने को और दिव्य सुरभि सूँघने को मिलती है।

(१) **मानसरोदक देखिय कहा**—यहाँ पर मान सरोदक की अनिवचनीयता व्यङ्गय है। अत यहाँ काकु वैशिष्ठ्य व्यङ्गय है।

(२) **हंस**—यहाँ पर शब्द शक्ति उद्भव स्वतः सिद्ध वस्तु ध्वनि है। हस से कवि ने जीवन मुक्ति की व्यञ्जना की है।

(३) सम्पूर्ण वर्णन मे हठ यौगिक रहस्यात्मकता है।

(४) सरोवर के दिव्य वर्णन मे उदात्त और अत्युक्ति अलङ्कार का सकर है।

पानि भरै आवहि पनिहारी। रूप सुरूप पदमिनी नारी॥
पदुमगंध तिन्ह अंग वसाही। भँवर लागि तिन्ह संग फिराही॥
लंक—सिघिनी, सारँगनैनी। हँस गामिनी कोकिल बैनी॥
आवहि झुंड सो पाँतिहि पाँती। गवन सोहाइ भाँतिहि भाँती॥
कनक कलस मुखचद दिपाही। रहस केलि सन आवहि जाही॥
जा सहुँ वै हरै चख नारी। वाँक नैन जनु हनहि कटारी॥
केस मेघावर सिर ता पाई। चमकहि दसन बीजु कै नाई॥
माथे कनक गागरी आवहि रूप अनूप।
जेहि के असि पनहारी सो रानी केहि रूप॥ ८॥

[इस अवतरण मे सिहल गढ की स्त्रियो का वर्णन किया गया है।]

वहाँ जो स्त्रियाँ पानी भरने आती है वह रूप सरूप मे पद्मिनी जाति की है। उनके अग मे कमल की सुरभि आती है। भौरे उनके साथ फिरते है। उनकी कटि सिह जैसी है। उनके नेत्र हिरण जैसे है। उनकी गति हंसो जैसी है। वे कोकिल जैसी मधुर वाणी बोलती है। वे झुण्ड मे पक्ति के बाद पक्ति बनाकर चलती है। उनका चलना अनेक प्रकार से रमणीय लगता है। उनके मुख-मुख चन्द्रो पर कनक के कलश दैदीप्यमान होते है। वे केलि, कीडा करती हुई आती जाती है। वे स्त्रियाँ जिसकी तरफ देखती है तो ऐसा लगता है मानो कि वे कटाक्ष की कटारी मारना चाहती है। उनके सिर पर मेघ जैसे काले केश है। उनके दाँत बिजली की भाँति चमकते है।

उनके मस्तक पर सोने की गगरी शोभित है। इस प्रकार की अनुपम रूप वाली वे नारियाँ आती हुई शोभायमान होती है। जिसकी पनिहारियाँ इतनी रूपवती है। उसकी रानी कितनी रूपवती होगी।

टिप्पणी—(१) पद्मिनी नारी। स्त्रियाँ काम शास्त्र मे चार प्रकार की बताई गई है—पद्मिनी, चित्रणी, शखिनी, हस्तिनी। इसमे पद्मिनी नारी सर्वश्रेष्ठ बताई गई हैं। रति रहस्य मे पद्मिनी नारी का वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है—

भवति कमल नेत्रा नासिका, क्षुद्र रन्ध्रा
अविरल कुच युग्मा दीर्घ केशी कृशाङ्गी
मृदु वचन सुशीला नृत्य गीतानुरक्ता,
सकल सुतनु वेशा पद्मिनी पद्मगन्धा,

अर्थात् पद्म गन्ध वाली पद्मिनी के नेत्र कमल सदृश नासिका के छिद्र छोटे, युगल कुच अविरल, केश दीर्घ, शेष अग दुर्बल होते है। वह सुशीला नायिका मधुर वचन बोलने वाली नृत्य गीतादि मे अनुरक्त और सुडौल शरीर वाली होती है। जायसी के उपर्युक्त वर्णन पर रति रहस्य के वर्णन की छाप है।

बाँक नयन जनु हनहि कटारी—यहाँ पर असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा है।

जेहि के अस पनिहारी सो रानी केहि रूप—यहाँ पर काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यङ्ग्य है। कवि का अभिप्राय है कि वह रानी निश्चय ही परम रूपवती होगी।

ताल तलाव वरनि नहि जाही। सूझै वार पार किछू नाही॥
फूले कुमुद सेत उजियारे। मनहु उए गगन महँ तारे॥
उतरहि मेघ चढहि लेइ पानी। चमकहि मच्छ बीजु कै वानी॥
पौरहि पंख सुसंगहि संगा। सेत पीत राते वहु रगा॥
चकई चकवा केलि कराही। निसि के विछोह, दिनहि मिल जाही॥
कुररहि सारस करहि हुलासा। जीवन मरन सो एकहि पासा॥
बोलहि सोन ढेक वगलेदी। रही अवोल मीन जल-भेदी॥
नग अमोल तेहि तालहि दिनहि वरहि जस दीप।
जो मरजिया होइ तहँ सो पावै वह सीप॥ ९॥

[इस अवरण मे कवि ने सिंहल द्वीप के जलाशयो की सुषमा आ वर्णन किया है।]

सिहलदीप की ताल तलैय्यो का वर्णन नही किया जा सकता। उनका पार नही दीखता। वहाँ श्वेत कुमुद खिले हुए है। वे ऐसे लगते है मानो की आकाश मे तारे उदित हुए हो। मेघ उन जलाशयो मे उतरते है और पानी लेकर चढ़ जाते है। उनमे मछलियाँ बिजली की भाँति चमकती है। सफेद, पीले, लाल आदि कई वर्ण के पक्षी साथ ही साथ तैरते है। वे बडे ही सुहावने लगते है। उनमे चकवा चकई क्रीडा करते है। रात्रि मे उनका विछोह हो जाता है किन्तु दिन मे मिल जाते है। सारस पक्षी युगल केलि युक्त वोली बोलते हैं और मानो कहते है कि हमारा जीवन मरण का साथ

है। सोने ढेक वग लेदी नामक जल पक्षी और जल में तैरने वाली मछलियाँ उन जलाशयो मे बोलती है।

उस तालाव मे अमूल्य रत्न है जो दिन में दीपक की भाँति दैदीप्यमान रहते है। यदि कोई मरजिया हो तो वह उस सीप को प्राप्त कर पाता है।

हठयौगिक व्यञ्जना—उपर्युक्त अवतरण मे हठयौगिक व्यञ्जना है। यहाँ पर कवि का सकेत ब्रह्मरन्ध्र और उसकी कर्णिकाओ मे पाये जाने वाले विवरो की ओर है। उस ताल रूपी ब्रह्मरन्ध्र मे ऐसे अमूल्द नग है मानो की दीपक जल रहे हो। उनकी प्राप्ति कोई सिद्ध साधक रूपी मरजिया ही कर पाता है।

टिप्पणी—(१) यहाँ पर स्वत: सिद्ध वस्तु से वस्तु व्यञ्जना है। प्रकृति परक वस्तु से हठयौगिक अर्थ की अन्य वस्तु के रूप मे व्यञ्जना की गई है।

(२) यहाँ पर हठयौगिक रहस्यवाद है।

(३) कवि ने प्रकृति का सश्लिष्ट वर्णन भी किया है।

(४) इस अवतरण मे उत्प्रेक्षाओ की छटा विशेप रूप से दृष्टव्य है।

आस-पास बहु अमृत वारी। फरी अपूर, होइ रखवारी॥
नारँग नीबू सुरँग जँभीरा। औ बदाम वहु भेद अँजीरा॥
गलगल तुरँज सदा फर फरे। नारँग अति राते रस भरे॥
किसमिस सेब फरे नौ पाता। दारिउँ दाख देखि मनराता॥
लागि सुहाई हरफारयोरी। उनै रही केरा कै घौरी॥
फरे तूत कमरख औ न्यौजी। राय करौंदा बेर चिरौंजी॥
सगतरा व छुहारा दीठे। और खजहजा खाटे मीठे॥
पानि देहि खंडबानी कुवहि खाँड वहु मेलि।
लागी घरी रहट कै सीचहि अमृत बेलि॥ १०॥

[इस अवतरण मे कवि ने सिंहल दीप की वाटिका के सौन्दर्य का सश्लिष्ट चित्रण किया है।]

यहाँ पर वहुत सी वाटिकाऐ थी। उनमे अमृत जैसे फल लगे थे। वे अनुपम रूप से फली है। उनकी समुचित रक्षा की जा रही है। नीवुओ पर नया रग है। जमीरी सुरग हो रहे है। बादाम, वढ और अंजीर सुशोभित है। गल गल, तुरज सदाफल, फले है। नारगियाँ अत्यन्त लाल ओरे रस भरी है। किशमिस और सेब नए फलो के साथ फरे है।

अनार और अगूर देखकर मन प्रसन्न होता है। हर फारेवरी सुहावनी लग रही है। केले मे धौरियाँ झुक रही है। शहतूत कमरख और लीची फली है। राय करौंदा वेर और चिरौजी के पेड भी फले है। शखद्राव और छुहारे एव विविध प्रकार [illegible]ट्टे-मीठे मेवे लगे है।

उन वृक्षो को खाड के पानी से सीचा जाता है। रहैट की घरिया अमृत के फलों वाली वेलो को सीचती है।

टिप्पणी—इस अवतरण मे कवि की वस्तु परिगणनात्मक प्रवृत्ति का परिचय मिलता है।

शब्दार्थ—वारी=वाटिका, । जँभीरा=एक प्रकार का खट्टा नीबू सदाफल= शरीफा। हरपारेउरी=कमरख की जाति का एक पेड। सख दराउ=अमलतास। खडवानी=खाड का पानी, शरवत।

पुनि फुलवारि लगि चहुँ पासा। विरिध बेधि चदन भइ वासा॥
बहुत फूल फूली घन वेली। केवडा चंम्पा कुन्द चमेली॥
सुरग गुलाल कदम और कूजा। सुगंध वकौरी गध्रव पूजा॥
जाही जूही वगुचन लावा। पुहुप सुदरसन लाग सुहावा॥
नागेसर सदवरग नेवारी। औ सिगारहार फुलवारी॥
सोन जरद फूली सेवती। रूपमजरी और मालती॥
मौलसिरी वेइलि औ करना। सबै फूल फूले वहुवरना॥
तेहि सिर फूल चढहि वै जेहि माथे मनि-भाग॥
आछहि सदा सुगन्ध वहु जनु वसत औ फाग॥ ११॥

[इस अवतरण मे सिहल दीप की फुलवारियो का वर्णन किया गया है।]

उस सिहल दीप के चारो ओर फुलवारियाँ लगी है। उनकी सुगन्ध से मिलकर वृक्ष चन्दन के समान सुरभित हो गए। सखन लताएँ फूलो से लदी हुई है। केवडा, चम्पा, कुन्द और चमेली खूब फूलो से लदी है। लाल गुलाला कदम्ब और कुब्जक और गुलकावली से गधर्व सेन पूजा करते है। नाग केसर सद वरग निवारी और हर सिंगार फुलवारी मे लगे है। सोन जर्द और सेवती रूप मेजरी और मालती खिली हुई है। जाही, जूही आदि के ढेर के ढेर लगे है। सुदर्शन का फूल लगा हुआ सुशोभित है। मौल सिरी वेला और करना इन सव मे सुन्दर फूल फले है।

वे सव उसके मस्तक पर चढते है। वड़े सौभाग्यशाली है। वे सदा उसी प्रकार सुरभित रहते है जैसे वसन्त और फागुन मे रहते है।

टिप्पणी—(१) इस अवतरण मे कवि की वस्तु परिगणनात्मक प्रवृत्ति का परिचय मिलता है।

(२) विविध फूलो के परिचय के लिए डा० वासुदेव शरण अग्रवाल की पुस्तक देखी जा सकती है।

सिंघल नगर पेख पुनि बसा। धनि राजा अस जे कै दसा॥
ऊँची पौरी ऊँच अवासा। जनु कैलाश इन्दु कर वासा॥

राव रंक सब घर-घर सुखी। जो दीखै सो हँसता-मुखी ॥
रचि-रचि साजे चंदन चौरा। पोते अगर मेद औ गौरा ॥
सब चौपारहि चदन खम्भा। ओठँघि सभापति बैठे सभा ॥
मनहुँ सभा देवतन्ह कर जुरी। परी दीठि इन्द्रासन पुरी ॥
सबै गुनी औ पंडित सब ज्ञाता। ससकिरित सबके मुख बाता ॥
अस कै मदिर सँवारे जनु सिव लोक अनूप।
घर-घर नारि पद्मिनी मोहहि दरसन-रूप ॥ १२ ॥

[इस अवतरण मे सिंहल द्वीप के नगर का वर्णन किया है।]

सिहल द्वीप मे सिंहल नगर बसा है। वह राजा धन्य है। जिसकी ऐसी नगरी है। वहाँ ऊँचे द्वार और ऊँचे आवास है। वे आवास ऐसे लगते हे मानो इन्द्र लोक मे इन्द्र भवन हो। राजा रक सब अपने-अपने घर मे सुखी है। जिसे देखो वही हंस मुख दिखाई पडता है। बैठने के चबूतरे चन्दन से रच-रच कर बनाये गये है। उनमे अगर भेद और केवड़े से पोता गया है। सब चौपालो मे चन्दन के खम्भे है। उन चौपालो मे सभापति उन खम्भो की आड लेकर बैठे है। उन्हे देख कर ऐसा लगता है कि मानो देवताओ की सभा जुडी हुई है। सभी कलावन्त विज्ञ और पण्डित है। सब सरकृत भापा मे ही बोलते है।

वहाँ मार्ग इतने सुव्यवस्थित है। जैसे कि शिव लोक मे सँवारे हुए घर-घर पद्मिनी स्त्रियाँ अपने रूप से सब को मोहित किए रहती है।

शब्दार्थ—चौरा = चबूतरा। भेद = कस्तूरी। औघटि = सहारा लेकर।

अलङ्कार—यहाँ उदात्त अलङ्कार है।

पुनि देखी सिघल कै हाटा। नवो निद्धि लछिमी सब बाटा ॥
कनक हाट सब कुहकुहँ लीपी। वैठ महाजन सिघल दीपी ॥
रचहि हथौड़ा रूपन ढारी। चित्र कटाव अनेक सँवारी ॥
सोन रूप भल भएउ पसारा। धवल सिरी पोतहि घरवारा ॥
रतन पदारथ मानिक मोती। हीरा लाल सो अनवन जोती ॥
औ कपूर वेना कस्तूरी। चन्दन अगर रहा भूरपूरी ॥
जिन्ह एहि हाट न लीन्ह वेसाहा। ता कहँ आन हाट कित लाहा ?
कोई करै वेसाहनी, काहू केर विकाइ।
कोई चलै लाभ सन कोई मूर गँवाइ ॥ १३ ॥

[इस अवतरण मे कवि ने सिंहल नगर की हाट या बाजार का सश्लिस्ट वर्णन किया है।]

सिहल गढ़ की हाट भी दृष्टव्य है । उस के मार्गो मे नवों निधियों का ऐश्वर्य बिखरा रहता है । सोने का बाजार या सर्राफा कुँकुम से सिक्त है । उसमे सिंहल द्वीपी महाजन बैठे है । वे चाँदी को ढाल कर हाथ के कडे बनाते है । उनमे अनेक प्रकार के चित्रदार कटाब्र हैं । सर्वत्र सोना चाँदी फैला है । घर के द्वार धवल श्री से पुते हुए है । रत्न जवाहिरात, पाणिका मोती और हीरे के ढेर लगे हुए है । उनसे अलग-अलग ज्योतियाँ छिटक रही है । कपूर बेना (खस) कस्तूरी चन्दन अगर सब का वहाँ भडार भरा है । जिसने इस हाट मे कुछ मोल नही लिया उसे फिर दूसरे हाट मे क्या लाभ होगा ।

कोई खरीदारी कर रहा था, कोई माल बेच रहा था । कोई तो लाभान्वित हो रहा था । कोई मूल भी खो कर जा रहा था ।

टिप्पणी—नवो निद्धि—नवनिधियो के नाम इस प्रकार है । महापद्म, पद्म, शख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और खर्व ।

जिन्ह एहि हाट लीन्ह बिसहना—वहाँ पर एहि मे अर्थान्तर सक्रमित वाच्य ध्वनि है । ऐहि का अर्थ उपादान लक्षण से यह नश्वर ससार का लिया गया । ससार की मायामयता और नश्वरता ही व्यग्य है । ऐसे प्रयोग मे कुन्तक के अनुसार सवृत्ति वक्रता है । समासोक्ति अलङ्कार भी माना जाना चाहिए ।

आन हाट कित लाहा—यहाँ पर कवि का सकेत परलोक से है । यह अर्थ उपादान लक्षणा से लिया गया है । आन हाट का अर्थ हुआ परलोक ।

लोक का हाट—दोहे मे एक आध्यात्मिक अर्थ की व्यजना है । अत समासोक्ति है । वह आध्यात्मिक व्यजना इस प्रकार है—इस ससार रूपी हाट मे कोई खरीदारी करता है । अपने सुकृतो, कुकृतो से पाप पुण्य खरीदते है और कुछ अपने पाप पुण्य बेचते है अर्थात् सुकृत करके अपने सचित पुण्य भी गवाँ देते है । इस प्रकार कुछ प्राणी तो इस ससार रूपी हाट मे पुण्य लाभ कर चलते है और कुछ अपने पूर्व सचित पुण्यो को गवा कर चल देते है ।

कनक हाट—सर्राफा प्राचीन भारत मे ८४ प्रकार के हाटो मे से एक माना जाता है । इम के दुकानदार महाजन कहलाते है ।

हथौड़ा—यहाँ पर उपादान लक्षणा से हथौडे से बने हुए कड़े का अर्थ है ।

पुनि सिगार हाट भल देसा । किए सिगार बैठी तहँ बेसा ॥
मुख तमोल, तन चीर कुसुभी । कानन कनक जडाऊ खुभी ॥
हाथ बीन सुनि मिरिग भुलाहि । नर मोहहि सुनि, पैग न जाहि ॥
भौह धनुष, तिन्ह नैन अहेरी । मारहि बान सान सौ फेरी ॥
अलक कपोल डोल, हँसि देही । लाइ कटाछ मारि जिउ लेही ॥
कुच कचुक जानौ जुग सारी । अचल देहि सुभावहि ढारी ॥

केत खिलार हारि तेहि पासा। हाथ झारि उठि चलहि निवासा॥
चेटक लाइ हरहिं मन जब लहि होइ गथ फेंट।
साँठ नाठि उठि भए बटाऊ, ना पहिचान न भेंट॥ १४॥

[इस अवतरण मे कवि ने सिंहल द्वीप के शृङ्गार हाट का विस्तृत वर्णन किया है।]

वहाँ का शृङ्गार हाट बड़ा सुन्दर है। वहाँ पर शृङ्गार करके वेश्या बैठी है। मुख मे पान खाए हुए है और शरीर मे कुसुम्भी रग की साड़ी पहने हुए है। कानो मे सोने की जराऊ खुम्भी नामक आभूषण पहने है। हाथ मे बीन ले कर गाती है। उस सगीत को सुन मनुष्य इतना मोहित हो जाते है कि एक पग नही चल पाते है। उन के भौह धनुष रूप है और नेत्र अहेरी है। ये कटाक्ष रूपी बाण कामरूपी सान पर तेज करके मारती है। वे कपोलो पर अलके हिलाकर हँस देती है और फिर ऐसा कटाक्ष मारती है कि प्राण हर लेती है। कंचुकी में बंधे हुए दो कुच मानो दो गोटे है। वे स्वभाव से उन पर अंचल डालती रहती है। उन पासो से खेलने वाले न मालूम कितने मनुष्य हार गए और निराश हो कर हाथ झाड कर कर चले गये।

जब तक मनुष्य के पास धन रहता है तब तक वे चटक-मटक कर उस का मन हरती है। पूँजी नष्ट हो जाने पर वहाँ से उठ कर लोग अपना रास्ता पकड़ते है। उस समय ऐसा लगता है कि उनसे कभी भेट ही नही हुई।

टिप्पणी—(१) बेसा—वेश्या।
(२) **सारी**—गोट।
(३) **भौंहैं धनुक तिन्ह नैन अहेरी**—यहाँ रूपक अलङ्कार है।
(४) **मारहि बान सान सो फेरी**—यहाँ रूपकातिशयोक्ति है।

लेइ के फूल बैठि फुलहारी। पान अपूरब धरे सँवारी॥
सोधा सबै बैठ लै गाँधी। फूल कपूर खिरौरी बाँधी॥
कतहूँ पंडित पढ़हि पुरानू। धरमपंथ कर करहि बखानू॥
कतहूँ कथा कहै किछु कोई। कतहूँ नाच-कूद भल होइ॥
कतहूँ चिरहँटा पखी लखा। कतहूँ पंखड़ी काठ नचावा॥
कतहूँ नाद सबद होइ भला। कतहूँ नाटक चेटक-कला॥
कतहूँ काहु ठगविद्या लाई। कतहूँ लेहि मानुष बौराई॥
चरपट चोर गँठिछोरा मिले रहहि ओहि नाच।
जो ओहि हाट सजग भा गथ ताकर पै बाँच॥ १५॥

[इस अवतरण मे कवि ने हाट मे बैठी हुई मालिनी तथा हाट के अन्य चित्रो का वर्णन किया गया है।]

उस हाट मे फूल वाली मालिनें फूल लेकर बैठी है। सुन्दर पान सजाकर रक्खे हुए है। गन्धी सब प्रकार की सुगन्ध लेकर बैठे है। अधिक कपूर डालकर कत्थे की टिकिया बनाई गई है। कही पर तो पडित पुरान पढते है और धरम मार्ग का वर्णन करते है। कही पर कोई कुछ कथा कह रहा है। कही पर सुन्दर नाच हो रहा है। कही पर इन्द्रजाल देखते बनता है। कहीं पर कठपुतली का नाच हो रहा है। कही पर सुन्दर संगीत की ध्वनि गूँज रही है। कही नाटक हो रहा है, और कही जादूगर अपनी कलाबाजी दिखा रहा है। कही पर किसी ने ठग विद्या फैला रक्खी है। कही पर लोग वसीकारण करके लोगो को पागल बना रहे है।

उस बाजारू नृत्य मे चालाक चोर, धूर्त और गिरहकट लगे रहते है। जो उस नाच मे पहले से सजग रहता है उसी की ही पूँजी बच पाती।

टिप्पणी—(१) फुलहारी—मालिनी।

(२) सोधा—इत्र, फूले आदि।

(३) खिरौरी—कत्थे की टिकिया।

(४) कोड—क्रीडा।

(५) छरहठा—इन्द्रजाल।

(६) ग्रेखन लावा—दिखाया जा रहा है।

(७) नाद सबद—संगीत ध्वनि।

(८) चेटक कला—जादू के खेल।

(९) चरपट—उचक्का।

(१०) **तेहि नाच**—यहाँ पर कवि ने अर्थान्तर सक्रमित वाच्य ध्वनि से हाट की सासारिकता व्यञ्जित की है। कवि का अभिप्राय है कि इस ससार रूपी हाट मे वही अपने सुकर्मो और पुण्यो की रक्षा कर पाता है जो काम, क्रोध, मद, लोभादि रूपी उचक्को, चोरो, गिरहकटो से होशियार रहता है।

पुनि आए सिघल गढ़ पासा। का बरनौ जनु लाग अकासा॥
तरहि करिन्ह बासुकि कै पीठी। ऊपर इन्द्र लोक पर दीठी॥
परा खोह चहुँ दिसि अस बाँका। काँपै जाँघ, जाहि नहि झाँका॥
अगम असूझ देखि उर खाई। परै सो सपत-पतारहि जाई॥
नव पौरी बाँकी, नवखण्डा। नवौ जो चढ़ै जाइ बरम्हंडा॥
कंचन कोट जरे नग सीसा। नखतहि भरी बीजु जनु दीसा॥
लका चाहि ऊँच गढ़ ताका। निरखि न जाइ, दीठि तन थाका॥
हिय न समाइ दीठि नहि, जानहुँ ठाढ़ सुमेरा।
कहँ लगि कहौ ऊँचाई, कहँ लगि बरनौ फेर॥ १६॥

[इस अवतरण गढ का वर्णन किया है।]

कवि कहता है कि हाट से होकर सिहल गढ के पास आये। वह गगन-चुम्बी गढ सर्वथा अवर्णनीय है। वह नीचे तो कूर्म और वासुकि की पीठ पर ठहरा हुआ है। ऊपर इन्द्र लोक दिखायी पडता है। चारो ओर ऐसी गहरी खाई खुदी हुई है कि झाँका नही जा सकता है। वहाँ झाकने पर जाँघ काँपने लगती है। वह अगम और असूझ खाई देख कर भय मालूम होता है। उसमे गिरने वाला सातवे पाताल की खवर लेता है। उस गढ मे सुन्दर ऊँचे नव खण्ड है। उन नवौ खण्डो की नव पौरियाँ है जो उन नवो को पार कर लेता है। वह ब्रह्माण्ड मे पहुँचता है। सोने की कोट है। उन पर जडाऊ कगूरे बने हुए है। ऐसा दिखाई पडता है मानो नक्षत्रो के बीच मे विजली चमक रही हो। देखने मे वह गढ लका से भी अधिक ऊँचा लगता है। उसकी ओर देखा नही जाता। दृष्टि और मन थक जाते है।

वह इतना विशाल है कि उसकी विशालता न तो हृदय मे समाती है और न तो दृष्टि से देखी जाती है। ऐसा लगता है मानो सुमेरु पर्वत खडा हो। उस की ऊँचाई और विस्तार का वर्णन कहाँ तक करूँ ?

टिप्पणी—(१) **का बरनौ जस लाग अकासा**—गढ की अतिशय विशालता ही यहाँ व्यग्य है। यहाँ पर काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यग्य है।

(२) **ऊपर इन्द्र लोक पै दीठी**—व्यग्यार्थ है कि वह अत्यधिक ऊँचा है। यहाँ पर कवि प्रौढोक्ति सिद्ध वस्तु से वस्तु ध्वनि है।

(३) यहाँ पर उदात्त अलङ्कार और अत्युक्ति अलङ्कार का सकर है।

(४) **नवो जो चढै जाय बरम्हडा**—यहाँ पर हठयौगिक सकेत है। ब्रह्माण्ड मे जाने की बात गढ के प्रसग मे नही लागू होती। अत हठयौगिक अर्थ लेना पडता है। नौ से नौ चक्रो की ओर सकेत है। कवि का अभिप्राय है जो नौ चक्रो का भेदन कर ऊपर पहुँचता है वही ब्रह्म रन्ध्र मे जो ब्रह्माण्ड मे है पहुँच पाता है।

हिअ ……… फेरू—यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलङ्कार से वस्तु व्यग्य है। गढ की अतिशय विशालता ही व्यग्य वस्तु है।

निति गढ़ बाँचि चलै ससि सुरू। नाहि त होइ वाजि रथ चूरू ॥
पौरी नवौ वज्र कै साजी। सहस सहस तहँ वैठे पाजी ॥
फिरहि पाँच कोतवार सुभौरी। काँपै पावै चपत वह पौरी ॥
पौरिहि पौरि सिह गढि काढे। डरपहि लोग देखि तहँ ठाढे ॥
वहुबिधान वै नाहर गढे। जनु गाजहि चाहहि सिर चढ़े ॥
टारहि पूँछ पसारहि जीहा। कुजर डरहि कि गुजरि लीहा ॥
कनक-सिला गढि सीढी लाई। जगमगाहि गढ ऊपर नाई ॥
नवौ खड नव पौरी औ तहँ वज्र-केवार।
चारि वसेरे सौ चढै, सत सौ उतरै पार ॥ १७ ॥

[इस अवतरण मे कवि ने सिंहल गढ का बड़ा सश्लिष्ट एव रहस्य पूर्ण वर्णन किया है। सम्पूर्ण अवतरण मे दो अर्थ बहुत स्पष्ट है—एक गढ परक दूसरा योग परक। एक तीसरा सूफी साधना परक अर्थ भी व्यग्य है।

गढ़ परक अर्थ—चाँद और सूर्य नित्य प्रति गढ को बचाकर निकलते है। वे डरते है कि कही उनका रथ और घोडा चकनाचूर न हो जावे। उस गढ़ की नवो पौरियाँ वज्र की बनी है अर्थात् अत्यधिक दृढ है। उन पौरियो पर सहस्र-सहस्र पैदल सिपाही बैठे है। पाँच कोतवाल उन पौरियो के चारो ओर चक्कर काटते है। वे किसी को उन तक पहुँचने नही देते। अत. वहाँ चढने मे पैर काँपते है। उन पौरियो के द्वार पर सिह गढे हुए है। लोग उन सिहो को देख कर डरते है। वे सिह बहुत कलात्मक ढग से बने है। वे ऐसे सजीव लगते है कि मानो कि गरज कर अभी सिर पर चढ बैठेगे। उसकी सीढियाँ सोने की बनी हुई है। वे गढ के ऊपर तक जगमगा रही है।

नौ खण्डो पर नौ द्वार है। उनमे वज्र के किवाड लग रहे है। उस पर चार पडाव देकर चढना चाहिए। जो सच्चे मन से चढ़ेगा वही वहाँ चढ पायेगा।

हठयौगिक अर्थ—इस शरीर रूपी गढ़ मे सूर्य और चन्द्रमा अलग-अलग रहते है। यदि उनका मिलन हो जाय तो उनका स्वतन्त्र अस्तित्व समाप्त हो जाय (होय बाजि रथ चूर) नवो चक्र बज्र के समान दुर्भेद्य है। उन के द्वार पर सहस्र-सहस्र दुष्ट मनोविकार बाधक रूप मे रहते है। वह साधक को चक्र भेदन नही करने देते है। पच क्लेश रूपी पच कोतवाल साधक को चक्रो का भेदन नही करने देते। अत. उस साधना मार्ग मे चरण रखते हुए भय लगता है, और बडे सम्भाल कर पैर रखने पडते है। हर चक्र की अधिष्ठात्री कोई न कोई देवी है। उनका सिह साधक को चक्र भेदन मे अग्रसर नही होने देता उसे डरवाने का प्रयास करता है। वे पूँछ हिलाते है, जीभ पसारते है। ऐसा लगता है कि गरज कर सिर पर चढ बैठेगे। उनके डर से साधक अपनी साधना से पराङ्ग मुख होने लगता है। अज्ञान रूपी हाथी उन सिहो को देखकर डर जाते है। उस गढ़ तक सोने की सीढियाँ बनी हुई है। सुषुम्ना का रग योग ग्रथो मे स्वर्णिम बताया गया है। इसी लिए कनक सीढियाँ कहा गया है। इस शरीर रूपी सिंघल गढ मे नौ चक्र है। इन चक्रो के नौ द्वार है। वे द्वार वज्र के समान दुर्भेद्य है। जो साधक चार पडावो—प्रत्याहार ध्यान, धारण, समाधि—के क्रम से सत्य के सहारे साधना करता है वही सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

सूफी साधना परक अर्थ—इस अवतरण मे एक तीसरा सूफी साधना परक अर्थ भी व्यञ्जित किया गया है। सूफी साधना मे साधक को सालिक या यात्री कहा गया है। साधना एक मार्ग है उसमे ४ पडाव और बहुत से मुकामात है। चार पडावो के नाम है शरीयत, तरीकत, हकीकत और मारिफत मुकामात के सम्बन्ध मे मत भेद है। कुछ लोगो ने उनकी सख्या ११ बताई, कुछ नौ मानने के पक्ष मे है। जायसी सम्भवतः नौ मुकामात मानने के पक्ष मे है। नौ पौरी सम्भवत. नौ मुकामात

के प्रतीक है। साधक जव नौ मुकामात और चार पडावो को पार कर सत्य का आश्रय लेकर मंजिले मकसूद या राज द्वार पर पहुँचता है तभी उसको सिद्धि मिलती है। मार्ग मे अनेक वाधाएँ आती है वे ही सहस-सहस पाजी है। काम, क्रोध, मद लोभ, मोह पाँच कोतवाल है जो साधक को सन्मार्ग पर जाने नही देते। वड़े-वड़े भयानक सिंह साधक यात्री को और भी अधिक डराते है।

टिप्पणी—(१) निति गढ़ वाचि चलै ससि सूरू नाहित होइ वाजिरथ चूरू— यहाँ पर सम्वन्धातिशयोक्ति अलङ्कार है। सूर चन्द्र मे शव्द शक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है।

हठयोगिक क्षेत्र मे सूर्य और चन्द्र साधना का वड़ा महत्त्व है। मे हठ शव्द में अर्थ है सूर्य, का अर्थ चन्द्र (सिद्ध सिद्धान्त पद्धति २१) इन दोनो का मिलन करना ही हठयोग साधना का लक्ष्य है। यदि शरीर मे यह स्वयं मिल जाँय तो उनका अस्तित्व समाप्त हो जाय। कवि ने होय वाजि रथ चूरू से इसी भाव की व्यञ्जना की है।

(२) **पौरी नवौ वज्र के साजी**—जायसी की नौ पौरियों की कल्पना की प्रेरणा सम्भवत अथर्व वेद के 'नव द्वारे पुरे देही' जैसी उक्तियो से मिली होगी तन्त्रो की नव चक्र साधना ने भी अवश्य ही प्रभावित किया होगा। गोरखनाथ रचित सिद्ध सिद्धान्त पद्धति शीर्षक ग्रन्थ मे नौ चक्रो का वडा व्यापक और सश्लिष्ट किया गया है। इनके लिए आप लेखक की हिन्दी की निर्गुण काव्य धारा, पृ० ५०९ देखिए।

(३) **पाजी**—यहाँ पर शव्द शक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है। व्यञ्जना हठयौगिक अर्थ के प्रसग मे स्पष्ट की जा चुकी है।

(४) **पाँच कोतवार**—हठयोग परक अर्थ मे यह पञ्च क्लेश हैं। उनके नाम अविभवा अस्मिता, राग, द्वेप और अभिनिवेश है।

(५) **कनक शिला गढ़ सीढी लाई**—यहाँ पर हठयौगिक पक्ष मे सुपुम्ना की ओर सकेत किया गया है। सुपुम्ना का-सा वर्णन योग ग्रथो मे विविध प्रकार से किया गया है। अद्वैत तारकोपनिपद के अनुसार सुपुम्ना के मध्य मे करोडो तड़ित के सदृश कान्तिमान कुण्डलनी रहती है। कवि ने इस कुण्डलनी को कनक सीढी कहा है।

(६) **नवौ खण्ड नव पौरी**—नव खण्ड से कवि ने नौ चक्रो का सकेत किया है। चक्रो के नाम है—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा, सहस्त्रार, ललना चक्र और गुरु चक्र। सिद्ध सिद्धान्त पद्धति मे गोरखनाथ ने नौ चक्रो के नाम भिन्न प्रकार से दिए है। मेरी रचना 'हिन्दी की निर्गुण धारा' देखिए।

(७) **चार वसेरे**—योग परक अर्थ लेने मे यहाँ पर चार प्रकार के योगो की व्यञ्जना ली जायगी। उनके नाम है—हठयोग, मत्रयोग, लययोग और राजयोग।

वेदान्त की दृष्टि से यहाँ पर साधन चतुष्टय की ओर सकेत माना जायेगा। उनके नाम है—नित्यानित्य वस्तु विवेक, वैराग्य, पटसम्पत्ति और मुमुक्षत्व। सूफीसाधना की दृष्टि से यहाँ पर शरीयत, तरीकत हकीकत और मारिफत की ओर संकेत है। इनका विस्तृत विवेचन आप लेखक की 'कवीर और जायसी का रहस्यवाद' मे देखिए।

नव पौरी पर दसम दुवारा। तेहि पर वाज राज घरियारा ॥
घरी सो बैठि गनै घरियारी। पहर पहर सो आपनि बारी ॥
जबही घरी पूजि तेहि मारा। घरी घरी घरियार पुकारा ॥
परा जो डाड जगत सव डॉडा। का निचित माटो कर भॉडा ॥
तुम्ह तेहि चाक चढ़े हौ कॉचे। आएहु रहै न थिर होइ वॉचे ॥
घरी जो भरी घरी तुम्ह आऊ। का निचित होइ सोइ बटाऊ ॥
पहरहि पहर गजर निति होई। हिया वजर, मन जाग न सोई ॥
मुहमद जीवन-जल भरन, रहँट घरी कै रीति।
घरी जो आई ज्यों भरी, ढरी जनमगा वीति ॥ १६ ॥

नौ पौरी पार करने के पश्चात् एक दशम् द्वार मिलता है। यहाँ पर राज घड़ियाल वजता है। घड़ी मापने वाली वहाॅ बैठ कर अपने समय पर समय को मापा करती है। जव घडी भर जाती थी तव यह लगता है कि वह मनुष्य को सदेश दे रहा है कि जीवन घडी भर गई है। घण्टे पर जव डडा पडता है, तो ऐसा लगता है कि वह संसार को दण्डित कर रहा है और कह रहा है 'ऐ नश्वर मनुष्य तू इतना निश्चिन्त क्यो है'। तुम उस कच्चे पदार्थ के वने हुए हो जिसका नष्ट होना सर्वथा स्वाभाविक है। घड़ियाॅ जितनी वार भरती जाती है उतनी ही तुम्हारी आयु घटती जाती है। ऐ वटाऊँ तू निश्चिन्त भाव से क्यो सो रहा है। प्रत्येक पहर मे गजर वजता है और मनुष्य को चेतावनी देता है—ऐ मानव 'तू जाग जा' किन्तु उसका हृदय बज्र के समान है। उस को भविष्य की चिन्ता नही होती।

मुहम्मदकावि कहते है कि यह जीवन रहॅट के समान है। रहँट की घड़िया के समान वह भर कर आती है और रिक्त हो जाती है। इसी तरह सारा जीवन व्यतीत हो जाता है।

हठगोग परक अर्थ—नौ चक्रो के ऊपर दशम् द्वार या ब्रह्म रन्ध्र है। वहाॅ राज घडियार या अनहद नाद होता है। वहाॅ पर काल गति रूपी घड़ियारी बैठ कर प्रत्येक पहर मे घड़ी गिनती है अर्थात् कालगति निर्वाध गति से चलती जाती है। जव समय का एक खण्ड पूरा हो जाता है तव वह ससार को चेतावनी देता है कि यह संसार घडी भर का है। उस चेतावनी से सारा ससार आतकित हो जाता है। वह मानव को ऐसी चेतावनी देता है कि हे मानव सजग हो जा, तू उस चाक का बना है जो सर्वथा नश्वर है। जो काल अवधि समाप्त हो जाती है मानव आयु भी उसी के साथ उतनी समाप्त हो जाती है। अत ऐ साधक तू ब्रह्म रचना मे स्थित काल चक्र की प्रगति से प्रेरणा क्यो नही ग्रहण करता है। प्रत्येक प्रहर मे गजर वजता है अत. काल चक्र आयु समाप्त होने का सदेश दे रहा है किन्तु मनुष्य का बज्र हृदय उस सदेश को नही सुन पाता है। मुहम्मद कवि कहते है जीवन रहँट के समान है। जैसे रहँट

की घडिया भरती है और फिर तुरन्त खाली हो जाती है। इस प्रकार सारी आयु समाप्त हो जाती है।

टिप्पणी—(१) **दशम द्वार**—यौगिक ग्रन्थो मे ब्रह्म रन्ध्र को दशम द्वार की सज्ञा दी गई है। यह ब्रह्म रन्ध्र योग का प्रमुख प्रति पाद्य है। इसका वर्णन योग ग्रन्थो मे इस प्रकार किया गया है। 'आज्ञा चक्र के ऊर्ध्व देश मे तालमूल मे दैदीप्यमान सहस्र दल कमल है। इस तालमूल से सुषुम्ना नाडी अधोमुखी होकर जाती है। सहस्र दलकमल की कर्णिका मे एक द्वादस दल कमल के कन्द देश मे पश्चिमामि मुखी योनि मण्डल है। इस योनि मण्डल मे ब्रह्म विवर सहित सुपुमा मूल है। इस स्थान से मूलाधार पर्यन्त जो सुपुम्ना विवर है वही ब्रह्म रन्ध्र है। इसी को दशम् द्वार कहा गया है।

राज धरियारा—यहाँ पर शब्द शक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि से अनहद नाद का अर्थ भी लिया गया है। यहाँ पर पर्याय वक्रता है।

माटी कर भाडा—यहाँ शरीर के लिए मिट्टी का वर्तन कहा गया है। यहाँ भी पर्याय वक्रता है साथ-साथ पर्याय ध्वनि है। यहाँ पर वृत्ति वक्रता भी है। कवि जब विशेष प्रचलित शब्द का परित्याग कर एक नया शब्द गढता है तव वहाँ वृत्ति वक्रता होती है।

तेहि चाक—यहाँ पर अर्थान्तिर सक्रमित वाच्य ध्वनि है। यहाँ पर भव चक्र के अन्तर्गत नश्वरता का भाव व्यञ्जित किया गया है।

घटी · ····आयु—घटी मे यमक है। यहाँ पर असंगति और विभावना का सकर है।

का निचित ···· बटाऊ—यहाँ काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यग्य है। कवि की व्यञ्जना है कि हे मनुष्य रूपी पथिक तुझे निश्चिन्त होकर नही बैठना चाहिए।

हिया वजर—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से हृदय की अतिशय निश्चिन्तता व्यग्य है।

मुहमद····वीति—यहाँ पर लक्ष्योपमा से वस्तु व्यग्य है। जीवन की क्षणिकता और नश्वरता ही व्यग्य है।

गढ पर नीर खीर दुइ नदी। पनिहारी जैसे दुरपदी॥
और कुँड एक मोती चूरू। पानी अमृत, कीच कपूरू॥
ओहिक पानि राजा पै पीया। बिरिध होइ नही जो लहि जीया॥
कचन विरिछ एक तेहि पासा। जस कलपतरु इन्द्र कवि लासा॥
मूल पतार, सरग ओहि साखा। अमरबेलि को पाव, को चाखा॥
चाँद पात औ फूल तराई। होइ उजियार नगर जहँ ताई॥
वह फल पावै तप करि कोई। विरिध खाइ तौ जौवन होई॥
राजा भए भिखारी सुनि वह अमृत भोग।
जेई पावा सो अमर भा ना किछु व्याधि न रोग॥ १६॥

[इस अवतरण मे कवि ने गढ के एक रहस्यपूर्ण स्थल का वर्णन किया है ।]

गढ़ परक अर्थ—सिंहल गढ पर नीर और खीर नामक दो नदियाँ है । उनमे द्रोपदी के चीर सदृश अक्षय जल राशि रहती है । वहाँ एक मोती चूर कुण्ड है । उसका पानी अमृत रूप है और कीच कपूर के समान है । उसके जल को पान करने का अधिकार राजा को ही होता है । उसके समीप एक कंचन वृक्ष है जैसे इन्द्र के स्वर्ग मे कल्प वृक्ष है । उस कंचन वृक्ष की मूल पाताल मे है अर्थात् उसका विस्तार वहुत अधिक है । उस अमर वेल को कौन पाता है और उसके रस को कौन चख पाता है । व्यजना है कि विरला ही उसके रहस्य को जान पाता है ।

चाँद उस वृक्ष के पत्ते है और तरइयाँ उसके फल है । सम्पूर्ण गढ़ में उनका प्रकाश होता है । उसके फल वडी तपस्या के वाद प्राप्त होते है । यदि वृद्ध उसके फल को खाले तो उसे नव यौवन प्राप्त हो जायगा उस अमृत फल की प्राप्ति की कामना से राजा भिखारी हो गए जिसने उस फल को प्राप्त कर लिया वह अमर हो गया उसके सारी व्यधियाँ और रोग दूर हो गए ।

हठयौगिक अर्थ—इस शरीर रूपी गढ मे दो आत्मा रूपी नदियाँ प्रमुख है प्राप्ता आत्मा और प्राप्तव्य आत्मा । द्रौपदी के सदृश जीव शक्ति (कुण्डलनी) सुपुम्ना रज्जु के द्वारा ब्रह्म रन्ध्र रूपी कुण्ड में पानी भरती है। वहाँ ब्रह्म रन्ध्र रूपी मोती चूर का कुण्ड है उसका पानी अमृत रूप है (वहाँ जो चन्द्र तत्व है) उससे अमृत झरा करता है । उस वह्म रन्ध्र के अमृत को कोई राजयोगी ही पान कर पाता है । उसको पान करने वाले जव तक जीवित रहते है तव तक वृद्ध नही होते । उस ब्रह्म रन्ध्र के समीप सुषुम्ना का कचन वृक्ष है वह इन्द्रलोक के कल्पतरु के सदृश है (व्यजना है कि जिस प्रकार से कल्प वृक्ष मनुष्य की सम्पूर्ण कामनाओ को पूर्ण करता है उसी प्रकार सुपुम्ना-साधना मनुष्य की सम्पूर्ण इच्छाओ को पूर्ण कर देती है। उस सुपुम्ना रूपी वृक्ष की जड मूलाधार मे रहती है और सहस्त्रार रूपी स्वर्ग मे उसकी शाखाएँ रहती है । सुषुम्ना की वेल अमर है उसकी सिद्धि कोई विरला व्यक्ति ही पा सकता है । सहस्रार मे जो चन्द्र तत्व है मानो वह उस वृक्ष के पत्ते है और सहस्त्रदल के ज्योतिकण उसके सुषुम्ना रूपी वृक्ष के फूल है उससे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ज्योतिर्मय रहता है । उस ब्रह्मरन्ध्र के अमृत; फल को कोई तपस्या करके प्राप्त करता है । वृद्ध उसे यदि ख़ाले तो युवा हो जाए ।

उस ब्रह्म रन्ध्रस्थ अमृत को प्राप्त करने के लिए राजा भी भिखारी हो गए । जिसने उसे प्राप्त किया वही अमर हो गया उसे कोई व्याधि और रोग नही सताते ।

टिप्पणी—नीर खीर दुई नदी—यहाँ शरीरस्थ दो आत्माओ की ओर सकेत है एक प्राप्ता और दूसरी प्राप्तव्य आत्मा । कठोपनिपद् मे इनका वर्णन 'छाया और आतप' से किया गया है । श्वेताश्वतर उपनिपद मे भी दो पक्षियो के रूपक से इन्ही का वर्णन किया गया है । इनमें साधकात्मा साध्यात्मा तक पहुँचना चाहती है । नीर की नदी खीर की नदी से मिलना चाहती है । इसीलिए कवि ने गढ रूपी शरीर मे

दो ही नदियो की चर्चा की है। कुण्डलनी जीवात्मा रूपी द्रौपदी पंचतत्व तत्व या पचप्राण रूपी पतियो की स्वामिनी है वह परम्मात्मा तक पहुँचने के लिए सुषुम्ना रूपी डोर से ब्रह्म रन्ध्र रूपी कुण्ड मे पानी भरती है।

द्रौपदी—यहाँ पर कवि ने जीव शक्ति या कुण्डलनी को द्रौपदी कहा है। जीवात्मा या कुण्डलनी पञ्चप्राण या पञ्चतत्व रूपी पतियो की स्वामिनी होती है। वह सुषुम्ना के सहारे ब्रह्म रन्ध्र रूपी कुण्ड का अमृत रूपी जल भरती है।

कुण्ड एक मोती चूरु—कवि का अभिप्राय ब्रह्मरन्ध्र से है। इसका वर्णन योग ग्रन्थो मे किया गया है—

तालु स्थाने च यत् पद्म सहस्त्रार पुरोहितम।
तत्सकन्दे योनिरेकास्त पश्चिाभिमुखो मता।
तस्या मध्ये सुषुम्ना या मूलं सविविर स्थिता।
ब्रह्मरन्ध्र तदेवोक्त सामूलाधारमंके।

अर्थात् तालू मूल मे जिस सहस्त्र दल पद्म की बात कही है। उसकी कर्णिका मे एक द्वादशदल कमल के कन्द देश मे एक पश्चिमाभिमुखी योनि मडल। इस योनि विवर मे सुषुम्ना मूल है। इस स्थान से मूलाधार पर्यन्त जो दीर्घ सुषुम्ना विवर है।

पानी अमृत कीच कपूरु—ब्रह्मरन्ध्र मे चन्द्र तत्व है उससे अमृत झरा करता है। वहाँ दिव्य सुरभि भी रहती है। इसीलिए कवि ने अमृत के जल और कपूर की कीच कही है।

विशेष—(१) यहाँ पर उदात्त अलंकार भी है। अतिशय समृद्धि के वर्णन मे यह अलंकार माना जाता है।

(२) सम्पूर्ण वर्णन मे हठयौगिक रहस्यवाद है।

(३) हठयौगिक अर्थ की व्यञ्जना शब्द शक्तयुद्भव वस्तु ध्वनि के रूप मे हुई है।

गढ़ पर वसहि झारि गढ़पती। असुपति, गजपति, भू-नर-पती॥
सब धौराहर सोने साजा। अपने-अपने घर सब राजा॥
रूपवंत धनवत सभोगे। परस पखान पौरि तिन्ह लागे॥
भोग-विलास सदा सब माना। दुख चिता कोइ जनम न जाना॥
मँदिर मँदिर सब के चौपारी। बैठि कुँवर सब खेलहि सारी॥
पासा ढरहिं खेल भल होई। खड़गदान सरि पूज न कोई॥
भाँट वरनि कहि कीरति भली। पावहि हस्ति घोड़ सिघली॥
मँदिर मँदिर फुलवारी, चोवा चन्दन बास।
निसि दिन रहै वसंत तहँ छवौ ऋतु वाहर मास॥ २०॥

[इस अवतरण मे कवि ने सिंहल द्वीप के सरदारो का वर्णन किया है ।]

गढ़ पर गढ़पति, अश्वपति, राजपति, भूपति और नरपति रहते है । सब के धवल गृह सोने से सजे रहते है । अपने-अपने क्षेत्र के सब स्वामी है । वे सब रूपवान, धनवान और भाग्यवान है । उनकी पौरियो में पारस पत्थर लगे हुए है । सब सदा भोग विलास करते है । उनमे से कोई भी दु.ख और चिन्ता से परिचित न था । प्रत्येक के महल मे चौपाल थी । सब कुंवर बैठ कर पाँसा खेलते है । पाँसे पड़ते है और खूब खेल होता है । कोई भी तलवार चलाने मे उनकी बराबरी नही कर पाता था । भाट लोग उनकी कीर्ति का विस्तृत वर्णन करते है । प्रतिदान मे वह सिंहली हाथी, घोडा पाते है ।

प्रत्येक के महल में फुलवारी थी । चोवा चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थ की प्रचुरता थी । वहाँ वसन्त ऋतु तो सब दिन रहती है । वहाँ बारहो महीने षट ऋतुएँ रहती है ।

टिप्पणी—(१) अश्वपति, गजपति, नरपति, आदि मध्य युगीन उपाधियाँ है जो बादशाह लोग सरदारो को दिया करने थे ।

(२) **परस पखान**—पारस पत्थर, कहते है पारस पत्थर से यदि लोहा छू जाय तो वह स्वर्ण हो जाता है ।

(३) **सारी**—पाँसा ।

पुनि चलि देखा राज दुआरा । मानुष फिरहि पाइ नहि बारा ॥
हस्ति सिघली बाँधे बारा । जनु सजीव सब ठाढ़ पहारा ॥
कौनौ सेत, पीत, रतनारे । कौनौ हरे, धूप औ कारे ॥
बरनहि बरन गगन जस मेघा । औ तिन्ह गगन पीठिजनु ठेघा ॥
सिंघल के बरनौ सिघली । एक-एक चाहि एक-एक बली ॥
गिरि पहार वै पैगहि पेलहि । बिरिछ उचारि डारि मुख मेलहि ॥
माते तेइ सब गरजहि बाँधे । निसि-दिन रहहि महाउत काँधे ॥
धरती भार न अँगवै, पाँव धरत उठ हालि ।
कुरुम टुटै, भुइँ फाटै तिन्ह हस्तिन्ह के चालि ॥ २१ ॥

[इस अवतरण मे राज द्वार का वर्णन किया गया है ।]

कवि कहता है कि उपर्युक्त स्थल देखने के बाद राजा और उसके योगि समाज ने जाकर राज द्वार देखा । वहाँ से लोग लौट आते है किन्तु उन्हे प्रवेश नही मिलता । द्वार पर सिंहली हाथी बँधे है । वे सजीव पहाड़ से लगते है । कोई श्वेत थे, कोई पीले थे, कोई लाल थे । कोई हरे थे, धूमिल थे और कोई काले थे । वे वर्ण-वर्ण के थे जैसे कि आकाश मे मेघ होते है । वे इतने विशाल थे कि ऐसा मालूम होता कि आकाश उनकी पीठ पर टिका हो । सिंहल के सिंहली हाथी प्रसिद्ध है । वे एक से एक अधिक

वलवान थे। वे गिरि पहाड और पर्वत उठाकर फेक देते हैं। वे वृक्ष उखाड़ कर मिट्टी झाड कर मुख मे डाल लेते है। वे सब मदोन्मत्त है और वँधे हुए गरजते है। रात-दिन उनके कन्धे पर महावत वैठे रहते और उनका नियत्रण करते रहते है।

पृथ्वी उनके भार को नही सहपाती। उनके पॉव धरते ही हिल उठनी है। उनके चलते ही कछुए की पीठ टूटने लगती है और शेपनाग के फन फटने लगते है।

टिप्पणी—(१) पहली पक्ति के उत्तरार्ध का पाठ डा० अग्रवाल ने इस प्रकार दिया है :—

'महि धूविअ पाइअ नहिं वारू'।

धूविअ के स्थान पर कुछ और पाठ भी मिलते है। धूविअ का अर्थ होगा दौड कर।

(२) सॉतवी पक्ति मे माते तेई के स्थान पर डा० अग्रवाल के मात निमात पाठ दिया है।

इस का अर्थ है, मत्त और अमत्त दोनो ही।

(३) **पॉव धरत उठ हाल**—यहॉ पर चपलातिशयोक्ति अलङ्कार है। यहाँ कारण के ज्ञान मात्र के ही कार्य हो उठा है।

(४) दोहे की अन्तिम पक्ति मे सम्वन्धतिशयोक्ति अलङ्कार है। हाथियों के चलने से कर्म और शेपनाग का कोई सम्बन्व नही है फिर भी सम्वन्ध स्थापित किया गया है। इसीलिए यहॉ मम्वन्धातिशयोक्ति है।

(५) **निसिदिन रहहि महाउत कॉधे**—यहॉ पर काकु वैशिष्टम व्यग्य है। कवि का अभिप्राय है कि वे हाथी इतने उन्मत्त एव उच्छ्रखल थे कि महावतो द्वारा ही नियत्रित होने पर ही शान्त रह पाते है।

(६) जायसी के हस्तिशास्त्र ज्ञान का पता चलता है।

पुनि वॉधे रजवार तुरगा। का वरनौ जस उन्हकै रंगा॥
लील, समद चाल जग जाने। हॉसुल, भौर, सियाह वखाने॥
हरे, कुरग, महुअ बहु भॉती। गरर, कोकाह, बुलाह सुपॉती॥
तीख तुखार चॉड औ वॉके। सचरहि पौरि ताज विनु हॉके॥
मन ते अगमन डोलहि वागा। लेत उसास गगन सिर लागा॥
पौन-समान समुद पर धावहि। वूड़ न पॉव, पर, होइ आवहि॥
थिर न रहहि, रिस लोह चवाही। भॉजहि पूँछ, सीस उपराही॥
अस तुखार सब देखे जनु मन के रथवाह।
नैन-पलक पहुँचावहिजह पहुँचा कोइ चाह॥ २२॥

[इस अवतरण मे कवि ने राज द्वार पर घोडो का वर्णन किया है।]

राज द्वार पर घोड़े बने हुए हैं। वे इतने रगो के है कि वर्णन नही किया जा सकता है। नीले और समद की चाल को सारा ससार जानता है। कोई घोडे कुमैत, हिनाई, मुश्की और कियाह कहे जाते है। हरे रग के कुलङ्ग महुए रंग के अनेक भाँति के होते है। गरी कोकाह और वोलाह की पक्तियाँ वँधी है। तुपार देश के घोडे वडे प्रगल्भ और वली है। बिना चावुक के हाँके ही वे तडपते है। उनकी वागे मन से भी आगे जाती है। उसाँसे छोडते हुए उनका सिर आकाश को छूता है। अगर उन्हे जरा इगित मिल जाय तो वह समुद्र पर भी दौडने लगे। वे पार होकर लौट आवे किन्तु समुद्र पर उनका पैर भी न पड़े। वे एक जगह स्थिर नही रहते। क्रोध से मुँह का लोहा चवाते है। पूँछ फटकारते और मस्तक उठाते है।

वे सव घोडे ऐसे लगते है मानो कि मन रूपी रथ के घोडे हो। उन घोडो से जो जहाँ पहुँचना चाहता है वह उसे पल भर मे पहुँचा देते है।

टिप्पणी—(१) इस अवतरण से जायसी की अश्व शास्त्र की जानकारी का पता चलता है।

(२) **लील**—नीले रग का घोडा।

समुँद—वादामी रग का घोडा।

हाँसुल—मेहदी जैसा रग और चारो पैर कुछ काले होते है।

भँवर—काले रग का घोडा। इसे मुश्की भी कहते है।

कियाह—पके ताड के फल जैसा रग वाला घोडा।

हेर—हरे रग का घोडा आजकल नही मिलता।

करंग—जिसका रग लाख जैसा होता है। इसी को आजकल नीला कुमैत कहते है।

महुआ—महुए जैसा रग का घोडा।

गरर—गरा, इसका एक रोआ लाल और एक सफेद होता है।

बुलाह—जिस घोडे के गर्दन और पूँछ के वाल पीले होते है उसे वुलाह कहते है।

(३) **संचरहि पोरि ताज विनु हौंके**—यहाँ विभावना अलङ्कार है। समुचित कारण के अभाव मे ही कार्य हो रहा है।

(४) **मन ते अगमन डोलहि बागा**—यहाँ अतिशयोक्ति और प्रतीप का सकर है।

(५) **लेत उसाँस गगन सिर लागा**—यहाँ पर सम्वन्धातिशयोक्ति और विभावना का सँकर है। सम्वन्धातिशयोक्ति इसलिए है कि सिर और आकाश मे सम्वन्ध न होते हुए सम्वन्ध वताया गया है और विभावना इसलिए कि उसाँस रूपी अकारण से कार्य का होना वताया गया है। अत चौथी विभावना अलङ्कार है।

(६) **बूडन पाँव पार होइ आवहि**—यहाँ पर विभावना अलङ्कार है। कारण के विना ही कार्य होना कहा गया है। इस अवतरण मे कवि की वस्तु परिगणन की प्रवृत्ति दृष्टव्य है।

राजसभा पुनि देख वईठी। इंद्रसभा जनु परिगै डीठी॥
धनि राजा असि सभा सँवारी। जानहु फूलि रही फुलवारी॥
मुकुट वाँधि सव वैठे राजा। दर निसान नित जिन्हके वाजा॥
रूपवत, मनि दिपै ललाटा। माथे छात, वैठे सव पाटा॥
मानहुँ कँवल सरोवर फूले। सभा करूप देखि मन भूले॥
पान कपूर मेद कस्तूरी। सुगँध वास भरि रही अपूरी॥
माँझ ऊँच इद्रासन साजा। गंध्रवसेन वैठ तहँ राजा॥
छत्र गगन लगि ताकर, सूर तपै जस आप।
सभा कँवल अस विगसै, माथे वड़ परताप॥ २३॥

[इस अवतरण मे कवि ने राज सभा के ऐश्वर्य का वर्णन किया है।]

फिर राज सभा दिखाई पडी। उसे देख कर ऐसा लगा मानो कि इन्द्र सभा है। उस राजा को धन्य है जिसकी इतनी सुन्दर सभा है। उसे देखकर ऐसा लगता था मानो कि फुलवारी फूल रही हो। वहाँ सव राजा लोग मुकुट वाँध कर वेठै हुए थे। उनके द्वार पर सदैव शहनाई वजती रहती थी। वे रूपवान थे और सौभाग्य से उनका ललाट दैदीप्यमान था। उन के माथे पर छत्र था और सव सिंहासन पर वैठते थे। उन्हे देख कर ऐसा लगता था मानो कि सरोवर मे कमल फूले है। सव का रूप वड़ा मनोमुग्धकारी था। पान कपूर मेवे और कस्तूरी इनकी सुगन्वि से सभा सुरभित थी। वीच मे ऊँचा इन्द्रासन सजा हुआ था। वहाँ गन्धर्व सेन राजा वैठा था।

उसका छत्र आकाश तक पहुँच रहा है। वह सूर्य की भाँति तप रहा है। सभा रूपी कवल उसके प्रताप से विकसित हो रहे थे।

टिप्पणी—(१) इस अवतरण मे उदात्त अलङ्कार है।

(२) इसमे उत्प्रेक्षाओ का छटा दृष्टव्य है।

(३) **छत्र गगन लगवाकर**—यहाँ पर अतिशयोक्ति अलङ्कार से गन्धर्वसेन के साम्राज्य की विशालता रूप वस्तु व्यंग्य है। अत यहाँ कवि प्राढोक्ति सिद्ध अलङ्कार से वस्तु व्यग्य है।

(४) पूरे दोहे में रूपक एव उपमा अलङ्कार का संकर है।

(५) **भेद**—एक प्रकार की सुगन्धित जड़।

साजा राजमँदिर कैलासू। सोन कर सव धरति अकासू॥
सात खंड धौराहर साजा। उहै सँवारि सकै अस राजा॥
हीरा ईंट, कपूर गिलावा। औ नग लाइ सरग लै लावा॥
जावत सबै उरेह उरेहे। भाँति-भाँति नग लाग उरेहे॥
भा कटाव सब अनवन भाँती। चित्र कोरि कै पाँतिहि पाँती॥

लाग खंभ-मनि-मानिक जरे। निसि दिन रहहिं दीप जनुवरे॥
देखि धौरहर कर उँजियारा। छपि गए चाँद सुरुज औतारा॥
सुना सात बैकुंठ जस तस साजे खँड सात।
बेहर बेहर भाव तस खंड खंड उपरात॥ २४॥

[इस अवतरण मे कवि ने राजमदिर का उदात्त वर्णन किया है।]

राज मंदिर कैलाश के सदृश सजा हुआ है। उसकी फर्श और छत सब सोने की है। सातवे खण्ड पर धवल गृह सजाया गया है। वही राजा ऐसा महल सजा सकता था। हीरे की ईट है कपूर का गारा है और रत्न जड़कर उसे स्वर्ग तक ऊँचा बनाया गया है। जितने प्रकार की चित्रकारी हो सकती है वह सब वहाँ चित्रित की गई है। अनेक जाति के नग वहाँ पच्चीकारी करके लगाए गए हैं। उसमें अनेक प्रकार के सुन्दर कटाव है इन मे पक्ति-पक्ति मे चित्र बनते चले गए है। उनमे जो खम्भे लगे है उनमे मणि और माणिक्य लगे है। उसमे जो खम्भे लगे है उन मे मणि और माणिक्य जड़े है। ऐसा लगता दिन मे ही दिए जल रहे हो। धवल गृह की उज्जवलता देखकर सूर्य चन्द्र और तारे छिप जाते है।

सात वैकुण्ठो के वैभव के सम्बन्ध मे जैसा सुना जाता है वह सब वैभव उस महल के सातो खण्डो में सजाए गए थे। प्रत्येक खण्ड मे क्रमश: नई-नई सजावट दिखाई पड़ती है।

टिप्पणी—(१) **कविलासू**—सात खण्ड के विशाल भवन को कैलाश कहा जाता था कैलाश सत खण्ड़ो के उस कक्ष को भी कहते थे जिसमे राजा रानी सोते थे।

सात खण्ड़ धौराहर—सात खण्डो का महल।

(२) सम्पूर्ण अवतरण मे उदात्त अलङ्कार है।

(३) सातवी पक्ति मे व्यक्तिरक और हेतूत्प्रेक्षा का संकर है।

बरनौ राजमँदिर रनिवासू। जनु अछरीन्ह भरा कविलासू॥
सोरह सहस पदमिनी रानी। एक-एक तें रूप बखानी॥
अति सुरूप औ अति सुकुवाँरी। पान फूल के रहहि अधारी॥
तिह्रा ऊपर चम्पावति रानी। महा सुरूप पाट-परधानी॥
पाट बैठि रह किए सिगारू। सब रानी ओहि करहिं जोहारू॥
निति नौरंग सुरंगम सोई। प्रथम बैस नहिं सरवरि कोई॥
सकल दीप महँ जेती रानी। तिन्ह महँ दीपक बारह-बानी॥
कुँवरि बतीसों लच्छनी अस सब माँह अनूप।
जावत सिघलदीप के सबै बखानै रूप॥ २५॥

[यहाँ पर कवि ने रनिवास का वर्णन किया है।]

कवि कहता है अब मै राज मन्दिर का वर्णन करता हूँ। वह अप्सराओं से भरा हुआ स्वर्ग-सा लगता है। १६ हजार पद्मनी रानी थी। वे एक से एक अधिक सुन्दर थी। उनमे चपावती रानी सबसे अधिक सुन्दरी और सुकुवार थी। वह पान फूल का आहार करती है। वह ही पट रानी है। वह शृङ्गार करके सिंहासन पर बैठी रहती है। सब रानी उसको प्रणाम करती है। वह नित नए रूप रग से सुशोभित होती हे। उसकी यौवनावस्था है। उसकी बराबरी कोई नही कर सकता। उसने रानियाँ सब द्वीपो से चुन-चुन कर मँगाई है। उन सब मे चम्पावती उनमे वह बारह बानी दीपक के समान है। वह बत्तीसो लक्षणो से युक्त थी। और सब में अनुपम थी सम्पूर्ण सिहल द्वीप मे उसके रूप की चर्चा रहती है।

तिन्हमह दीपक बारह बानी—चम्पावपी द्वादश बानी मे विशेषण विपर्यय है। बाहर बानी सोना होता दीपक नही किन्तु कवि सोने के विशेपण का आरोप दीपक पर कर दिया है। इसी प्रकार कवि ने रानी पर दीपक का आरोप किया है। इससे यहाँ पर गौणी सारोप लक्षण-लक्षणा है। यहाँ पद्मावती के रूप की अतिशयता व्यग्य है। अत. यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि हुई और अर्थ हुआ कि चम्पावती सब रानियो से कही अधिक सुन्दर और लावण्यमयी है।

जोहार—यह शब्द सस्कृत के जीव और हार इन दो शब्दो के मेल से बना है। इसका अर्थ होता हे गले के हार आप जीवे। यह अर्थ सुधार कर जी ने दिया है।

बत्तीस लक्षण—बृहत्सहिता मे स्त्रियो के रूप के बत्तीस लक्षण इस प्रकार दिए गए है—

(१) **पैर के नख**—ताम्र के सदृश।
(२) **पाद पृष्ठ**—कूर्म के पृष्ठ सदृश।
(३) **गुल्फ**— गोल और सुन्दर।
४) पैर की उँगलियाँ सटी हुई।
५) **पादतल**—कमल ऐसा चमकीला।
६) **जङ्घा**—दोनो बराबर और सुडौल हो, नसे उभरी हुई न हो।
७) **जानु**—दोनो बराबर।
८) **उरू**—हाथी की सूँड के जैसे सुडौल और सटे हुए।
(९) **भग**—बडी पीपल के पत्र जैसी।
(१०) **पेड़ू**—कूर्म पृष्ठ के सदृश ऊँचा।
(११) भग के बीच का भाग छिपा हुआ।
(१२) **नितम्ब**—फैले और माँसल।
(१३) **नाभि**—गम्भीर और दाहिनी ओर घूमी हुई।
(१४) नाभी के ऊपर का भाग बिना रोम का और तीन बलि से युक्त।
(१५) **स्तन**—समान गोल, घन और कठोर।
(१६) **पेट**—मृदुल और बिना रोम का।

(१७) **गला**—शङ्ख जैसा।
(१८) **ओष्ठ**—फूल जैसे लाल।
(१६) दाँत कुन्द कली से।
(२०) **बोलना**—स्पष्ट और मीठा तथा सुन्दर।
(२१) नासिका जिस के दोनो नथुने बराबर हो।
(२२) आँख नीले कमल सी।
(२३) भौंहै—द्वितीया के चन्द्र सी टेढ़ी जो आपस मे मिली न हो।
(२४) ललाट—बिना रोम का और अर्ध चन्द्र के सदृश न ऊँचा न नीचा।
(२५) बाल—नीले चिकने और घुँवराले।
(२६) सिर—चारो ओर सुडौल।
(२७) हथेली—शङ्ख, क्षत्र इत्यादि से युक्त।
(२८) कलाई—सुडौल और पतली।
(२६) बाहु—खिले कमल से चमकीले हो।
(३०) **मणि बन्धन**—कुछ नीचे की ओर दबा हुआ।
(३१) हाथ की ऊँगलियाँ पतली जिनके पौर सुडोल हो।
(३२) नितम्ब—विशाल एव माँसल हो।

जन्म खण्ड

चंपावति जो रूप सँवारी। पदमावति चाहै औतारी॥
भै चाहै असि कथा सलोनी। मेंटि न जाइ लिखी जस होनी॥
सिंघल द्वीप भएऊ तब नाऊँ। जौ अस दिया दीन्ह तेहि ठाऊँ॥
प्रथम सो जोति गगन निरमई। पुनि सो पिता माथे मनि भई॥
पुनि वह जोति मातु घट आई। तेहि ओदर-आदर वहु पाई॥
जस औधान पूर होइ तासू। दिन दिन हिएँ होइ परगासू॥
जस अंचल महँ छिपै न दीया। तस उजियार देखावैं हीया॥
सोनैं मँदिर सँवारैं औ चन्दन सब लीप।
दिया जो मनि सिव लोक महँ उपना सिंघल दीप॥ १॥

[इस अवतरण मे पदमावती का ज्योति के रूप मे माता के गर्भ मे अवतरित होने का वृतान्त वर्णित है।

चम्पावती रूप मे सभी स्त्रियो मे उत्तम थी। पदमावती की ज्योति उसके मन मे अर्न्तहित थी। (यही उसके अनुपम रूप का रहस्य था) विधाता का विधान मेटा नही जा सकता। एक सुन्दर कथा चरित्रार्थ होने वाली थी। (इसीलिए विधाता ने चम्पावती को इतना सुन्दर बनाया था और पदमावती की रूपी ज्योति की प्रतिष्ठा उसके गर्भ मे की थी। यहाँ पर कवि ने सलौनी पद-श्लिष्ट रखा है। चाँदी मिले हुए सोने को शुद्ध करने के लिए सलौनी की जाती है। इसकी एक स्पष्ट प्रक्रिया है जिसकी चर्चा नीचे की जाएगी।) जब सिंहल द्वीप मे दीपक की ज्योति के सदृश पदमावती का अवतार हुआ तभी सिंहल द्वीप सिंहल द्वीप हुआ अर्थात् प्रसिद्ध हुआ। वह ज्योति पहले आकाश मे निर्मित हुई बाद मे वह पिता के मस्तक पर ओज बन कर प्रकाशित हुई और फिर वह माता के गर्भ मे अवतरित हुई। वहाँ उसे बहुत सम्मान प्राप्त हुआ। जैसे-जैसे गर्भ बढने लगा वैसे-वैसे माता के हृदय मे प्रकाश होने लगा। जैसे (झीने) आँचल मे दीपक नही छिपता उसी प्रकार माता के आँचल में पद्मावती का गर्भ नही छिप रहा था।

[जो मणि शिव-लोक मे थी वह दीपक की ज्योति के सदृश रूपवती पदमावती के रूप मे सिंहल द्वीप मे अवतरित हुई जिसके फलस्वरूप राज-मन्दिर सोने से सँवारा हुआ और चन्दन से लीपा हुआ लगने लगा।

टिप्पणी—(१) ज्योति—इस अवतरण मे भारतीय योगियो के ज्योति के सिद्धान्त और मुसलमानो के नूर के सिद्धान्त की समन्वित व्यञ्जना की गई है। नूर वाद के सम्बन्ध मे मुसलमानो की '**हदीस**' मे लिखा है—'अव्वलो या खलक अल्ला हो नूरी "अर्थात् पहले ईश्वर ने अपनी ज्योति को प्रकाशित किया फिर लिखा है 'लौ लाक लया खलकतुल अफलाक' अर्थात् अगर तू न होता तो सारे संसार और आकाश की सृष्टि भी न होती। इस्लाम की दृष्टि से कवि ने नूर की उत्पत्ति आकाश मे वतलाई है। भारतीय विचार धारा के अनुरूप व्रह्माण्ड्स मे जो मोती हैं वही पिण्ड मे ओज वनकर पुरुप के मस्तिष्क मे प्रकाशित होती है। पद्मावती की दिव्य ज्योति भी पहले आकाश मे उदित हुई वाद मे वह पिता के मस्तष्क मे ओज वनकर समाई। वही ओज माता के गर्भ मे पद्मावती के पिण्ड के रूप मे प्रकाशित हुई। ज्योति का सिद्धान्त भारतीय दर्शनो मे भी प्रतिपादित किया गया है। उपनिपदों मे परमात्मा को ज्योति स्वरूपी या प्रकाश स्वरूपी वताया गया है। मुण्डकोपनिपद मे लिखा है—तमेव भातुमनु भाति सर्व तस्य भासा सर्वमिद विभाति। (मु० १/१०) परमात्मा को ही उपनिषदो मे जीवात्मा को भी ज्योति स्वरूपी वताया गया है। कठो पनिपद मे लिखा है 'अङगुष्ठमात्र. पुरुषो ज्योतिरिवा धूमकः। (क० २-१-१३) यही ज्योति हमारी उपास्य रही है। यहाँ पर कवि ने भारतीय ज्योतिवाद और इस्लामी नूरवाद का वडा सफल सामञ्जस्य किया है।

(२) मैटि न जाइ लिखी जसि होनी। इस पक्ति मे मुसलमानो के भाग्य-वाद तथा हिन्दुओ के नियति वाद के सिद्धान्त की मिली जुली झलक दिखलायी पडती है। मुसलमानो के भाग्य वाद के सिद्धान्त के अनुसार अल्लाह ताला ने हर वात का समय निश्चित कर दिया है। कुरान मे लिखा है कि 'मैने प्रत्येक मनुष्य की भाग्य पत्रिका उसकी गर्दन से वॉध रक्खी है'।

(३) सलौनी—सलौनी शव्द पर श्लेप है। सलौनी का एक अर्थ है 'सुन्दर' और दूसरा सुनारो के द्वारा प्रयोग मे लाया जाने वाला एक प्रकार का मसाला। सुनार लोग जव सोने मे से चाँदी का मैल निकालना चाहते है तो वह सोने की पीट कर पत्तर वनाते है। उन पत्तरो वह कण्डे की राख, ईंटो की वुकनी, साँभर नमक और सरसो के तेल को मिलाकर एक मसाला वनाते है जिसे वह सलौनी कहते है। इस मसाले वे पत्तरो को सलौनी मे कई वार डुवो-डुवो कर तव कन्डे की आँच मे तपाते है। तपाते-तपाते उस सलौनी के सयोग से सोना शुद्ध हो जाता है। कवि ने चम्पावती के रूप को चाँदी व्यञ्जित किया है और पद्मावती को स्वर्ण रूप माना है। चम्पावती के गर्भ मे पदमावती का रहना चाँदी और सोने के मिलन के सदृश है। आगे कथा

जो पद्मावत में लिखी गई, सालीनी के सदृश है। चम्पावती की रूप चांदी मिल गई तथा पद्मावती के रूप का सोना चमचमा उठा।

(४) तीसरी पंक्ति के पूर्वार्ध मे रुढ़ि वैचित्र्य वक्रता है। उत्तरार्द्ध मे संवृत्ति वक्रता है।

(५) सातवी पंक्ति मे उपमा अलङ्कार है।

(६) इस अवतरण मे कवि ने स्पष्ट रूप से अपनी कथा की प्रतीकात्मकता व्यञ्जना की है। चम्पावती जीवात्मा का प्रतीक है और पद्मावती परमात्म ज्योति का प्रतीक। सिंहल द्वीप शरीर का प्रतीक है। शिवलोक ब्रह्मलोक का प्रतीक है। इस प्रतीकात्मक सांकेतिक अर्थ का कथा मे विस्तार किया गया है।

भए दस मास पूरि भै धरी। पदमावति कन्या औतरी॥
जानहु सुरज किरिन-हुति काढी। सूरुज करा घाटि, वह वाढी॥
भा निसि माँह दिन कर परगासू। सब उजिआर भएउ कविलासू॥
इते रूप मूरति परगटी। पूनिउँ ससि छीनन होइ घटी॥
घटतहि घटत अमावस भई। दुइ दिन लाज गाड़ि भुइँ गई॥
पुनि जो उठी दुइजि होइ नई। निहि कलक ससि विधि निरमई॥
पदुम गन्ध वेधा जग वासा। भँवर पतग भए चहुँ पासा॥
इतें रूप भइ कन्या, जेहि सरि पूजि न कोइ।
धनि सो देस रूपवता जहाँ जनम अस होइ॥ २॥

[इस अवतरण मे कवि ने पद्मावती के जन्म का प्रसग वर्णित किया है।]

दस मास व्यतीत हो गए तब पदमावती के जन्म का सुअवसर आया। उसने माता के गर्भ से अवतार लिया उस समय वह ऐसी शोभायमान लग रही थी मानो सूर्य की किरणो से विनिर्मित की गई हो। वास्तव मे वह सूर्य की किरणो से भी अधिक ज्योतिष्मती है। सूर्य की कला उसकी ज्योति के आगे फीकी है। उसके जन्म से रात्रि में दिन जैसा प्रकाश हो गया। सम्पूर्ण कैलाश प्रकाशित हो उठा। वह प्रतिमा इतना सौन्दर्य लेकर अवतरित हुई थी कि पूर्णिमा का चांद भी उसके सामने पराजित हो कर घटने लगा। परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे अमावस आ गई चन्द्र की कला पद्मावती के रूप से लजा कर दो दिन के लिए भूमि मे धँस गई। फिर वह चन्द्र कला दूज के दिन नवीन और निष्कलंक हो कर प्रकाशित हुई। उस पद्म गंधा पद्मनी के शरीर की सुरभि से सारा ससार सुरभित हो उठा और भ्रमर उसके चारो ओर मँडराने लगे।

वह कन्या इतनी रूपवती थी कि उसकी समता कोई नही कर सकता था उस रूपवान देश को धन्य है जहा ऐसी रूपवती स्त्री ने जन्म लिया।

टिप्पणी—(१) **पूरि भै घरी**—गर्भ का समय पूर्ण हो गया। घरी का अर्थ यहाँ 'निश्चित अवधि है' यह अर्थ लक्षण लक्षणा से लिया है।

(२) दूसरी पक्ति के प्रथम भाग मे वस्तूत्प्रेक्षा अलकार है तथा दूसरे भाग मे व्यतिरेक अलकार है।

(३) तीसरी पक्ति के पूर्वार्द्ध मे विरोधाभास अलकार है।

(४) चौथी पक्ति के पूर्वार्द्ध मे हेतूत्प्रेक्षा व्यंग्य है।

(५) **सब उजिआर भएउ कबिलासू**—यहाँ पर कविलास शब्द ब्रह्यारन्ध्र का प्रतीक है। पद्मावती ब्रह्म ज्योति का प्रति रूप है। ब्रह्मज्योति के जाग्रत होने पर ब्रह्मरन्ध्र में सर्वत्र प्रकाश छा जाता है। कवि ने ब्रह्म ज्योति को रूपवती बता कर सूफी प्रभाव की व्यजना की है।

भई छठि राति छठी सुख मानीं। रहस कूद सो रैनि विहानी॥
भा विहान पडित सव आए। काढ़ि पुरान जनम अरथाए॥
उत्तिम घरी जनम भा तासू। चाँद उवा भुइँ दिपा अकासू॥
कन्या रासि उदौ जग कीया। पदमावती नाउँ अस दीया॥
सूर परस सो भएउ किरीरा। किरिन जामि उपजा नग हीरा॥
तेहिते अधिक पदारथ करा। रतन जोग उपना निरमरा॥
सिघल दीप भएउ अवतारू। जबू दीप जाइ जग वारू॥
रामा आइ अजोध्या उपने लखन बतीसौ अंग।
रावन राइ रूप सव भूलै दीपक जैस पतग॥ ३॥

[इस अवतरण मे पद्मावती के जन्मोत्सव का वर्णन किया गया है।]

जव छठी राति आयी तो छठी पूजन का उत्सव मनाया गया और सारी रात आनन्द क्रीड़ाएँ होती रही। दूसरे दिन प्रात. काल हर एक पण्डित लोग आये उन्होने ग्रन्थो को निकाल कर पद्मावती के जन्म फल का विचार किया। वे वोले इस का जन्म वहुत ही उत्तम घडी हुआ है। चन्द्र के समान सुन्दर मुख वाली·वाला पृथ्वी पर अवतरित होकर प्रकाशित हुई। उसके प्रकाश से आकाश तक ज्योतिष्मान हो उठा। वह कन्या, कन्या राशि मे जन्मी। अतएव उसका नाम पदमावती रक्खा गया। राजा गन्धर्वसेन रूपी सूर्य के स्पर्श से किरण के समान चम्पावती के सयोग से नग और हीरे के कई सन्ताने उत्पन्न हुई उन सन्तानो मे श्रेष्ठ सन्तान जो कि पदार्थ के समान थी पद्मावती हुई। उसको रत्न के मेल मे वड़ी निर्मलता से की गई अर्थात् विधाता ने उसे रत्नसेन के योग्य वताने के लिए उसे वडा निर्मल रूप दिया। उस पदमावती का अवतार सिंहल द्वीप मे हुआ और जम्बू द्वीप मे उसने अपनी इह लीला समाप्त की।

सीता के सदृश वह पद्मावती वाला वतीसो लक्षण से युक्त होकर अयोध्या

रूपी सिहल मे प्रतिष्ठित हुई । रावण के सदृश दूरस्थ राजा रत्नसेन उसके रूप रूपी दीप शिखा के पतगे बने ।

(१) **टिप्पणी—चाँद उआ भुइं दिपा अकासू**—इस पक्ति मे असगत अलकार है ।

(२) **कन्या राशि**—ज्योतिप के अनुसार कन्या राशि मे उत्तरा फाल्गुनी के तीन चरण और हस्त नक्षत्र के चार चरण और चित्रा के दो चरण होते हैं । उत्तरा फाल्गुनी के तीसरे चरण का प्रारम्भिक अक्षर 'प' पद्मावती का जन्म सम्भवत इसी नक्षत्र मे हुआ था जिसके कारण उसका नाम 'प' से पडा ।

(३) पाँचवी पक्ति का अर्थ कई प्रकार से किया जाता है । डाक्टर अग्रवाल ने इसका यही अर्थ दिया है । "सूर्य से स्वर्ण के मूल पारस पत्थर के साथ जो क्रीडा की उससे पारस मे उसकी किरणे घनीभूत होने से हीरे का जन्म हुआ । उस नग से भी अधिक पद्मावती रूपी हीरे का सौन्दर्य है ।" मैने सूर्य को पद्मावती के पिता का प्रतीक किरण को माता का प्रतीक नग और हीरो को अन्य सन्तानो का प्रतीक तथा पद्मावती का पदार्थ का प्रतीक व्यजित किया है । सूर्य की किरण से जव स्पर्श क्रीडा हुई तो घनीभूत होकर नग हीरे रूपी सन्ताने उत्पन्न हुई । उन सन्तानो मे भी पद्मावती पदार्थ के समान श्रेष्ठ हुई । सुधाकर द्विवेदी ने इस पक्ति का अर्थ इस प्रकार दिया है "मानो सूर्य और पारस पापाण मे सयोग हुआ । यहाँ पर कवि प्रौढोक्ति सिद्ध वस्तु से वस्तु व्यग्य है ।

रामा और रावन—इन शब्दो मे शब्द शक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है कवि ने सम्भवत यहाँ पर इन शब्दो के व्युत्पत्ति मूलक अर्थ की व्यजना की है । रामा का दूसरा अर्थ रमणी और रावन का भोक्तापति व्यजित किया गया है । व्यजना है वतीसो लक्षणो से युक्त रमणी ने अयोध्या मे जन्म लिया उसके भोग की कामना करने वाले सव उसके रूप पर मोहित हो गए ।

कहेन्हि जनम पत्री जो लिखी । देइ असीस वहुरे जोतिपी ॥
पाँच वरस मँह भइ सो वारी । दीन्ह पुरान पढै वैसारी ॥
भै पदमावति पण्डित गुनी । चहू खण्ड के राजन सुनी ॥
सिहल दीप राज घरवारी । महा सरूप दई औतारी ॥
एक पदमनी औ पडित पढी । दहु केहि जोग गुसाई गढी ॥
जा कँह लिखी लच्छि घर होनी । सो अस पाव पढ़ी औ लोनी ॥
सात दीप के वर जो ओनाही । उतर पावहि फिर फिर जाही ॥
राजा कहै गरव सो अहो चन्द्र शिव लोक ।
का सर वरिहै मोरे कासो करौ बरोक ॥ ४ ॥

[इस अवतरण मे कवि ने पद्मावती के वारी होने तथा शिक्षित होने आदि के प्रसग का वर्णन किया है ।]

पडित लोग जनम पत्री मे जो लिखा था उसे सुनाकर आशीर्वाद देते हुए अपने-अपने घर लौट गए । वह पॉच वर्प मे शिशु से वाला हुई । तभी उसे पुराणादि धर्म ग्रथ पढ़ने विठाल दिया । पद्मावती पडिता और गुणवती हो गई । उसकी चर्चा चारो खण्ड के राजाओ ने सुनी कि सिंहल दीप की राजकुमारी वडी रूपवती है और वह देवी का अवतार है । एक तो वह पद्मनी नारी है फिर विदुपी और सर्व गुण सम्पन्ना है । मालूम नही परमात्मा ने उसको किसकी जोड़ी के रूप मे वनाया है । जिसके घर मे लक्ष्मी का होना लिखा होगा वही इतनी सुन्दर और विदुषी स्त्री को प्राप्त करेगा । सातो द्वीपों से उसके लिए वर आते थे किन्तु उनको मना कर दिया जाता था

राजा गन्धर्व सेन वडा अभि मानी था । वह अपने को स्वर्ग का इन्द्र मानता था । वह कहता था कि मेरे समान कौन है जिसको मैं अपनी कन्या देने का सकल्प करूँ

टिप्पणी—(१) **बारी**—वाला

(२) **सात द्वीप**—टिप्पणी—देखिए

(३) **सिव लोक**—स्वर्ग लोग

(४) **बरोक**— वरिच्छा, फलदान

वारह वरस मोइ भइ रानी । राजै सुना सजोग सयानी ।।
सात खण्ड धौराहत तासू । सो पद्मिनि कहें दीन्ह निवासू ।।
औ दीन्ही संग सखी सहेली । जो संग करै करहसि रस केली ।।
सबै नवल पिउ सग न सोई । कँवल पास जनु विगसी कोई ।।
सुआ एक पदमावति ठाऊँ । महा पंडित हीरामन नाऊँ ।।
दई दीन्ह पखिहि अस जोती । नैन रतन मुख मानिक मोती ।।
कंचन-वरन सुआ अति लौना । मानहु मिला सोहागहि सोना ।।
रहहि एक संग दोऊ पढ़हि सासतर वेद ।
वरम्हा सीस डोलावही, सुनत लाग तस भेद ।। ५ ।।

[इस अवतरण मे पद्मावति की यौवनागम की अवस्था का वर्णन किया गया है ।]

पद्मावति वारह वर्प मे ही रानी (रमण करने योग्य) हो गई । राजा को सूचना मिली कि वह विवाह के योग्य युवती हो गई है । उसने उसे अपने सात खड वाले धवल ग्रह पर रहने का स्थान दिया । साथ मे रहने के लिए सखियाँ सहेलियाँ दी जो उसके साथ रहकर आमोद-प्रमोद एव क्रीड़ा और हास-परिहास करती थी । वे सभी सखियाँ नवयौवना और अछूती थी । वे पद्मावति के साथ उसी प्रकार

शोभायमान होती थी जिस प्रकार कमल के समीप कुमुदनियाँ शोभायमान होती है। पद्मावति के पास एक तोता था जो बडा पडित था; उनका नाम हीरामन था। परमात्मा ने उस पक्षी को ऐसी शोभा दी थी कि उसके नेत्रों मे रत्न और मुख मे माणिक और मोती लगे हुए से प्रतीत होते थे। वह तोता सुन्दर स्वर्ण वर्ण का था उसका सुन्दर रूप पाडित्य से परिपूर्ण हो उसी प्रकार सुन्दर बन गया था जिस प्रकार सुहागे के सयोग से सोना उज्जवलतर हो गया है।

वे दोनो एक साथ रहते थे और वेद शास्त्र पढा करते थे। उनको वेद शास्त्र का पठन इतना प्रभावोत्पादक होता था कि ब्रह्माजी तक का हृदय भिद जाता था अथात् प्रभावित हो जाता था। वे उसके समर्थन मे मुग्ध होकर सिर हिलाते थे।

टिप्पणी :—रानी शब्द यहाँ पर रमणी के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। कुछ पुरानी पोथियो मे रानी के स्थान पर 'रैनी' पाठ पाया जाता है। इसी रैनी को प्रति लिपिकारों ने आगे चलकर रानी कर दिया है। रजस्वला होने पर कुमारी रमणी कहलाने योग्य हो जाती है।

'प्रिय सग न सोई' अछूती के लिए अर्थ के लिए वडा सुन्दर वक्रोक्तिपूर्ण लाक्षाणिक प्रयोग है। इससे अभिव्यक्ति मे एक विशेष चमत्कार आ गया है।

सातवी पक्ति मे वस्तूप्रेक्षा अलकार है।

भइ उनंत पदुमावति वारी। रचि रचि विधि सब कला सँवारी॥
जग वेधा तेइ अग सुवासा। भवर आइ लुबुधे चहुँ पासा॥
वेनी नाग मलैगिरि पीठी। ससि माँथे होइ दुइजि वईठी॥
भौहैं धनुक साधै सर फेरै। नैंन कुरगिनि भूलि जनु हेरी॥
नासिक करि कँवल मुख सोहा। पदुमिनि रूप देखि जग मोहा॥
मानिक अधर दसन जनु हीरा। हिअ हुलसैं कुच कनक जँभीरा॥
केहरि लंक गवन गज हरे। सुर नर देखि माथ भुइँ धरे॥
जग कोई दिस्टि न आवै आछहि नैन अकास।
जोगी जती सन्यासी तप साधहि तेहि आस॥ ६॥

[यहाँ पर कवि ने श्लिष्ट रूपक के सहारे पदमावती के उठते हुए यौवन जनित सौदर्य का अच्छा वर्णन किया है।]

पद्मावति रूपी वाटिका फूलो से झुक गई वह उस अवस्था मे ऐसी शोभायमान हो रही थी कि मानो सफेद ध्वजा वाली कलियाँ सब प्रकार से संवारी गई हो। उसके अंगों की सुरभि से सारा जगत भरा हुआ था। भ्रमर रूपी प्रेमी उसके चारो ओर आ आकर मँडराते है। उसकी पीठ मलयगिरि के सदृश है और उस मलयगिरि पर वेणी रूपिणी' नागिन लटक रही है। उसके मस्तक पर दुइज कालीन चन्द्रमा की शोभा है। भौ रूपी धनुष पर कटाक्ष रूपी-वाण संधाने हुए है। अर्थात् उसकी भौ धनुष के

समान हैं और कटाक्ष तीर के समान है। भौ और कटाक्ष एक साथ चलते हुए ऐसे लगते है जैसे धनुप पर वाण सधान कर चलाए गए हो। उसके नेत्र ऐसे शोभायमान थे जैसे भूली हुई हिरणी के भोले नेत्र शोभायमान हो। उसकी नाक तोते के समान और मुख कमल के समान शोभायमान है। उस पदमिनी नायिका का रूप देखकर सारा संसार मोहित हो रहा है। उसके अधर माणिक्य के समान और दाँत हीरे के समान शोभायमान थे। उसका वक्षस्थल जभीरी निवुओ के सदृश कुचो से हुलसित था। उसकी कमर सिंह के सदृश थी और गति सिंह को भी लजाने वाली थी देवता लोग उसके उस दिव्य रूप की गरिमा से अभिभूत होकर उसे प्रणाम करते थे।

उसके सदृश दिव्य रूप ससार मे कही भी दिखाई नही पड़ता है। इसीलिए नेत्र अकाश की ओर लगे रहते है अर्थात् उस दिव्य रूप के दर्शन की कामना से लोग पर-लोक तक पहुँचने की आकाक्षा करते है। जोगी जती और सन्यासी सब उसी की कामना से तपस्या करते है।

टिप्पणी—(१) पहली पक्ति के उत्तरार्ध का पाठ भेद डा० अग्रवाल जी मे इस प्रकार है :—'धज धौरे सब करी संवारी' इस पाठ भेद को स्वीकार कर लेने पर श्लेषगत सौदर्य बढ जाता है। इस पूरी पक्ति का श्लेषमूलक दूसरा अर्थ वाटिका परक है कवि कहता है :—पद्मावति रूपी वाटिका पल्लवित हो उठी। उस वाटिका में बड़ी सजधज के साथ पास मे ही सब कलियाँ खिली हुई है।

(२) दूसरी पक्ति मे भी श्लेष है। उसका वाटिका परक अर्थ होगा कि उस वाटिका की सुरभि से सारा ससार आप्लावित है। उसकी सुरभि के लोभ से चारो ओर भौरे मँडराते है।

(३) पहली और दूसरी पक्ति मे श्लिष्ट रूपक अलकार है। तीसरी पक्ति में सारोपा गौणी लक्षणा के आश्रय से कवि ने मस्तक पीठ और वेणी के सौदर्य का चित्रण किया है।

(४) चौथी पक्ति मे रूपक और रूपकातिशयोक्ति दोनो की योजना की गई है। भौ और धनुष मे रूपक है और सर कटाक्षो का उपमान होने के कारण रूपका-तिशयोक्ति के सौदर्य से संवलित है। नयन कुरगनी इत्यादि मे उत्प्रेक्षा अलंकार है।

(५) पाँचवी पक्ति मे नासिक कीर मे सारोपा गौणी लक्षणा और—रूपक अलकार है। कमल मुख मे भी रूपक अलकार है।

(६) छठी पक्ति मे भी सारोपा गौणी लक्षणा और रूपक अलकार है।

दोहे मे पद्मावति के रूप की अलौकिकता व्यजित किए जाने के कारण रहस्यवाद है।

सम्पूर्ण अवतरण समष्टि मूलक नखशिख वर्णन का सुन्दर उदाहरण है।

(७) दोहे मे स्वतः सभवी वस्तु से अलौकता रूप वस्तु व्यङ्गय है। इसीलिए रहस्यवाद है।

एक दिवस पदमावति रानी। हीरामनि तई कहा सयानी ॥
सुन हीरामन कहौ बुझाई। दिन दिन मदन सतावै आई ॥
पिता हमार न चालै वाता। त्रासहि वोल सकहि नहि माता।
देस देस के वर मोहि आवहि। पिता हमार न आँख लगावहि ॥
जोबन मोर भएउ जस गगा। देह देह हम लाग अनगा ॥
हीरामन तव कहा बुझाई। विधि कर लिखा मेट नहि जाई ॥
अज्ञा देउ देखो फिरि देसा। तोहि जोग वर मिलै नरेसा ॥
जो लगि मै फिरि आवौ मनचित धरहु निवारि।
सुनत रहा कोइ दुरजन राजहि कहा विचारि ॥ ७ ॥

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती के मुख से तोते के प्रति उसकी कामजन्य अर्न्तवेदना की वितृति की है।]

एक दिन पद्मावती नामक प्रगल्भ राजकुमारी ने हीरामन से कहा—हे हीरामन सुन मै तुझसे समझा कर कहती हूँ कि मुझे दिन प्रति दिन अव काम अधिक सताने लगा है। हमारे पिता विवाह की चर्चा नक नही करते। डर से माता भी कुछ नही कह पाती है। देस देस के वर मेरे विवाह का प्रस्ताव रखते है किन्तु हमारे पिता उन सव को अनसुनी कर देदे है। मेरा यौवन गगा की तरह लहरे ले रहा है। काम ने अग प्रत्यङ्ग को सता रखा है। तव हीरामन ने समझाते हुए कहा कि ईश्वरेच्छा की उपेक्षा नही की जा सकती। अगर आप की आज्ञा हो तो देश विदेशो मे जाकर तुम्हारे योग्य वर की खोज करुँ।

जव तक मे लौटकर आऊँ तव तक तुम शान्ति और धैर्य से काम लेना। यह वात कोई दुष्ट सुन रहा था उसने राजा से जाकर सव वात वढा चढ़ाकर कह दी।

टिप्पणी—रानी—यहाँ पर रानी शव्द का प्रयोग राजकुमारी के लिए किया गया है। क्योकि राजकुमारी वाचक शव्द से कवि के प्रयोजन की सिद्धि नही हो पाती कवि राजकुमारी के यौवनोदय, रमणयोग्यता, गौरव, प्रगल्भता आदि भावो की व्यञ्जना करना चाहता था। इन की व्यञ्जना रानी शव्द से ही सम्भव थी अत यहाँ अर्थान्तर सक्रमित वाच्य ध्वनि है।

सयानी—लहाँ पर पदगत अर्थान्तर संक्रमित वाच्यध्वनि है। कवि ने चतुर के अर्न्तगत काम भाव गोपन मे निपुण, काम को सयमित रखने की क्षमता रखने वाली आदि कई अन्य भावो का उपादान कर दिया है।

न आँख लगावहि—यहाँ अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। कवि ने अस्वीकार करने का लाक्षणिक अर्थ ही नही लिया है वरन उसने राजा द्वारा वरो को अयोग्य समझने और राजा के अतिशय गौरव भाव की व्यञ्जना भी की है। यह व्यञ्जना अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से हुई है।

यह अवतरण डा० अग्रवाल के पाठ मे नही है ।

राजै सुना दीठि भै आना । वुधि जो देहि संग सुआ सयाना ।।
भएउ रजाएसु मारहु सुआ । सूर सुनाव चाँद जहँ उआ ।।
सतुरु सुआ के नाऊ वारी । सुनि धाए जस धाव मँजारी ।।
तब लाग रानी सुआ छिपाव । जब लगि आइ मँजारिन्ह पाव ।।
पिता क आएसु माँथे मोरे । कहहु जाइ विनबे कर जोरे ।।
पंखि न कोई होइ सुजानू । जाने भुगुति कि जान उडानू ।।
सुआ जो पढ़ै पढाए वैना । तेहि कत बुधि जेहि हिए न नैना ।।
मानिक मोति देखावहु हिएँ न ग्यान करेहु ।
दारिवँ दाख जानि के अवहि ठोर भरि लेइ ।। ८ ।।

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती के पिता की पदमावती के हृदय मे कामोद्रेक होने की स्थिति से उद्भूत चिन्ता का वर्णन किया है ।]

राजा ने सुना कि पद्मावति के सग मे जो तोता है उसने उसे पढा पढाकर ऐसी बुद्धि दी है कि उसकी दृष्टि और ही हो गई । वह पुरुष की कामना करने लगी है । इसलिए राजाज्ञा हुई कि तोते को मार दो क्योकि वह कही पद्मावति रूपी शशि सुन्दरी को पुरुष का परिचय न दे दे । नाई वारी आदि तोते के शत्रु उसी प्रकार झपटे जिस प्रकार विल्ली झपटती है । जव तक विल्ली के सदृश वे नाऊ वारी आएँ तव तक उसने तोते को छिपा दिया । जव वे राजकुमारी के पास पहुँचे तो उसने उनसे कहा :—
"पिता की आज्ञा सर माथे है किन्तु उनसे हाथ जोडकर जाकर कहना कि कोई पक्षी समझदार नही होता है, यह तो केवल खाना और उडना भर जानता है । वह तो वही वोलता है जो दूसरे लोग उसे पढा देते है। उसमे अपनी बुद्धि कहाँ से आई क्योकि उसके अपने हृदय के नेत्र नही है ।

यदि तोते को माणिक्य और मोती दिए जाएँ तो उन्हे वह अगूर और अनार समझकर चोच भर लेगा ।

टिप्पणी—(१) "भई आना" यहाँ पर सवृत्ति वक्रता है । इसका अर्थ है उसकी प्रवृत्ति पुरुप की कामना वाली हो गई ।

'सूर सुनाव चाँद अहँ उआ' यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार है । सूर पर श्लेस भी है । सूर का अर्थ एक ओर सूर्य है जो तेजस्वी पुरुप का उपमान रूप है और दूसरा अर्थ है शूरवीर । यहाँ पर कवि प्रौढोक्ति सिद्ध अलङ्कार से वस्तु व्यङ्गय है कि कही रतनसेन को पद्मावती के रूप का पता न लग जाय ।

'मँजारिन पाव' यहाँ पर साध्यवसाना गौणी लक्षण लक्षणा है । इसका प्रयोग नाऊ वारियो के लिए किया गया है ।

'रजायुस' यह राजा आदेश का अपभ्रष्ट रूप है। इसका अर्थ है राजा की आज्ञा।

वै तौ फिरे उतर अस पावा। विनवा सुअै हिएँ डर खावा॥
रानी तुम्ह जुग जुग सुख पाऊ। होइ अजा वनौवास कहँ जाऊँ॥
मौतिहि मलिन जो होइ राई कला। पुनि सो पानि कहाँ निरमला॥
ठाकुर अत चहै जौ मारा। तहँ सेवक कर कहाँ उवारा॥
जेहि घर काल मजारी नाचा। पखिहि नाऊँ जीउ नहि वाँचा॥
मै तुम्ह राज वहुत सुख देखा। जो पूँछहु दे जाइ न लेखा॥
जो इछा मन कीन्ह सो जेवा। यह पछिताव चलेउँ विनु सेवा॥
मारै सोइ निसोगा डरै न अपने दोस।
केला केलि करै का जौ भा वैरि परोस॥ ९॥

[इस अवतरण मे कवि ने तोते की जान वचाकर भागने की वात कही है।]

पद्मावति का यह उत्तर पाकर जव नाऊ वारी चले गए तो तोते ने हृदय मे डरते हुए इस प्रकार कहा—हे रानी तुम्हे युग-युग तक सुख प्राप्त हो। मैं तो अव वनवास के लिए जाना चाहता हूँ। जव मोती की कांति एक वार मन्द पड़ जाती है तो उसमे पहले जैसी आभा नही आती है। जव स्वामी सेवक को मारना ही चाहता है तो फिर सेवक की रक्षा कोई नही कर सकता है। जिस घर मे कालरूपी विल्ली नाचती है वहाँ पक्षी रूपी जीव कैसे वच सकता है। मैने तुम्हारे राज्य मे वहुत सुख देखा है। यदि पूछो तो उसका वर्णन नही किया जा सकता है। जो इच्छा हुई वही खाया। अव मन मे यही पश्चाताप है कि तुम्हारी सेवा किए विना ही जा रहा हूँ।

जो व्यक्ति दूसरे की हत्या करता है, उसे न तो पाप का ही डर होता है और न परलोक का ही भय होता है। जव वैरी ही—पडौसी हो जाता है तो केला रूपी कोमल व्यक्ति सुख पूर्वक कैसे रह सकता है।

टिप्पणी—तीसरी चौथी पक्ति मे दृष्टान्त अलकार है। चौथी पक्ति मे रूपक अलंकार है।

दोहे की अन्तिम पक्ति मे साध्यवसना गौणी लक्षणा है। वैरी मे शव्द शक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है एक ओर वैरी का अर्थ वेर का पेड है दूसरी ओर शत्रु की व्यजना है। 'केला केलि' मे छेकानुप्रास है।

रानी उतर दीन्ह कै माया। जो जिउ जाइ रहै किमि काया॥
हीरामनि तू प्रान परेवा। धोख न लाग करत तोहि सेवा॥
तौहि सेवा विछुरन नहि आखौ। पीजर हिए घालि तोहि राखौ॥
हौ मानुस तूँ पखि पियारा। धरम पिरीति तहाँ को मारा॥

का सो प्रीति तन माहँ विदाई। सोइ प्रीति जिअ साथ जो जाई ।।
प्रीति भार ले हिएँ न सोचू। ओहि पथ भल होइ कि पोचू ।।
प्रीति प्रहार भार जो कांधा। सौ कस छूटै, लाइ जिअ बाँधा ।।
सुअटा रहें खुरुक जिउ, अबहि काल सो आउ।
सत्रु अहै जो करिया कबहूं सो बोरै नाउ ।। १० ।।

[इस अवतरण मे तोते के प्रति प्रकट किए गए पद्मावती के प्रेम पूर्ण प्रत्युत्तर की प्रतिष्ठा की गई है।]

रानी ने सहानुभूति पूर्वक कहा—यदि प्राण ही चला जायेगा तो शरीर कैसे टिकेगा। हे हीरामन तू मेरा प्राण है। तूने मेरी सेवा मे कभी अवज्ञा नही की है। तुझे मैं अपनी सेवा से अलग करने की स्वीकृति कभी नही दे सकती। मै तुझे अपने हृदय रूपी पिंजरे मे डालकर रखूँगी। मैं मनुष्य हूँ और तू पक्षी है किन्तु हम दोनो मे जो धर्म प्रेम है उसे कोई नष्ट नही कर सकता है। वह प्रेम ही क्या जो शरीर के साथ ही नष्ट हो जाए। सच्चा प्रेम वह है जो जीव के साथ जाता है। प्रेम का भार धारण करके फिर मन मैं चिन्ता नही करनी चाहिए, चाहे उस मार्ग मे कल्याण हो या अकल्याण। प्रेम के पर्वत का भार जिसने अपने कंधो पर उठाया है वह कैसे छूट सकता है। वह तो हृदय से बँधा रहता है।

तोते के हृदय मे खुटक थी कि न मालूम किस समय काल आ जाए इसलिए वह रुका नही। जब कर्णधार ही शत्रु होता है, तो वह चाहे जिस समय नाव डुबो सकता है।

टिप्पणी—पाँचवीं पक्ति से कवि ने प्रेम के सच्चे स्वरूप की मीमासा की है।

अन्तिम दोहे मे दृष्टान्त अलकार है।

विशेष—(क) इसी प्रकार की उक्ति उसमान की चित्रावली मे मिलती है।

बाँधी डोरी प्रेम की बर सी जाय न छूट।
दीपक प्रीति पतंग की प्रान दिए पै छूट ।। —चित्रावली ३३४

मान सरोदक खण्ड

एक दिवस पून्यो तिथि आई। मान सरोदक चली अन्हाई॥
पदमावति सब सखी बोलाई। जनु फुलवारि सबै चलि आई॥
कोई चंपा कोइ कुंद सहेली। कोइ सुकेत, करना, रस बेली॥
कोइ सुगुलाल सुदरसन राती। कोइ सो बकावरि-बकुचन भाती॥
कोइ सोन जरद, कोइ केसरि। कोइ सिंगारहार नागेसरि॥
कोइ कूजा सदबर्ग चमेली। कोइ कदम सुरस रस बेली॥
चली सबै मालति सँग फूले कवल कुमोद।
बेधि रहे गन गँधरब बास परिमलामोद॥ १॥

[इस अवतरण मे कवि ने उस समय का वर्णन किया है जबकि पद्मावति अपनी सहेलियो के साथ मानसरोवर मे स्नान करने गई है।]

एक दिन की बात है। पूर्णिमा की तिथि थी। पद्मावति मान सरोवर स्नान के लिए चली। उसने अपनी सब सखियो को बुला लिया। वे सब सखियो ऐसी प्रफुल्लित आई मानो कि फूलती हुई फुलवाड़ी हो। कोई चम्पा रूप थी; कोई कुंद की कली सदृश थी, कोई केतकी के फूल के समान थी, कोई केले के फूल के समान थी और कोई रसलता के समान थी। कोई लाल गुलाल जैसी थी, कोई बकावली फूल के गुच्छों के समान शोभायमान थी और कोई मौलसिरी की भाँति पुष्पों से लदी थी, कोई जाति और कोई यूथिका के फूल के समान थी। कोई सेवती के समान, कोई सोन जरद के समान, कोई केसर के सदृश और कोई हरिसिंगार और नाग केसर के सदृश खिल रही थी कोई पूजा के फूल के समान, कोई हजारा गेंदे के सदृश और कोई चमेली के सदृश चमचमा रही थी। इसी प्रकार कोई कदम्ब के समान और रसलता के समान सुन्दर थी।

वे सब सखियाँ मालती रूप पद्मावती के साथ चलती हुई ऐसी शोभायमान हुई कि मानो कमल के साथ कोका बेली फूली हो। उनकी सुन्दर सुरभि से भ्रमर रूपी रसिकगण मुग्ध होने लगे।

टिप्पणी—इस अवतरण के डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने श्लेप मूलक दो अर्थ वताए है :—१ फुलवाड़ी परक और २ सखियो से सम्वन्धित। सखियो से सम्वन्धित अर्थ उन्होने इस प्रकार दिया है —

"पद्मावति की सखियो में कोई सखी शरीर की चप्पी (चप्पा), कोई वस्त्रों की कुन्दी (कुन्द) करने वाली थी। कोई राजभवन मे (सुकेत) पानी का प्रबन्ध करती थी। (कर नारि सवीली) कोई गुलाल मलती और कोई केवल उसके दर्शन मे अनुरक्त थी (दरसन राती)। कोई वाक्य चुन-चुनकर (बकचुन) वाक्यावली (वकौरि) कहती और विहसती थी। कोई सुन्दर बोल कहती हुई पुष्पावती जैसी हो जाती थी अर्थात् जव वह वोलती उसके मुँह से मानो फूल झडते थे। कोई जाकर उसके स्थान को देखती और सेवा करती थी। कोई केसरिया जरदा या चावल का भोग लगाती थी। कोई हार से शृ गार करने मे नागमती के समान थी। कोई सत्य के वल से चलने वाली चम्पा का तेल लगाकर हर्षित होती थी (कूजा)। कोई उसके सुन्दर चरणो के रस मे पगी थी।

वे सव सुन्दरी सखियाँ सग मे प्रसन्न होकर चली। पद्मावती के मन मे उससे मोद उत्पन्न हुआ। उन पद्मिनी स्त्रियो के शरीर से निकलने वाली सुरभि से गधर्वों के गण मोहित होकर ठिठक गए।"

यह अर्थ दूरारुढ है क्योकि श्लेप जन्य नही है। यहाँ पर कवि ने सारोपा गौणी गूढ व्यग्य—लक्षणा का प्रयोग किया है। गूढ़ व्यंग्यार्थ के रूप मे हम डा० वासुदेव शरण द्वारा दिया गया—सखी परक अर्थ ले सकते है। यह व्यङ्गय वस्तु रूप है। अत: यहाँ पर शव्द शक्ति उद्रव वस्तु ध्वनि है।

खेलत मानसरोवर गई। जाइ पालि पर ठाडी भई॥
देखि सरोवर हसै कुलेली। पदमावति सौ कहहि सहेली॥
ये रानी ! मन देखु विचारी। एहि नैहर रहना दिन चारी॥
जौ लहि अहै पिताकर राजू। खेलि लेहू जौ खेलहू आजू॥
पुनि सासुर हम गवनब काली। कित हम, कित एह सरवर पाली॥
कित आवन पुनि अपने हाथा। कित मिलिके खेलव एक साथ॥
सासु ननँद बोलिन्ह जिउ लेही। दारुन ससुर न निसरै देही॥
पिउ पिपार सिर ऊपर का पुनि करै दहुँ नाह।
कहुँ सुख राखै की दुख, दुहुँ कस जनम निबाह॥ २॥

[इस अवतरण मे पदमावती और सखियों का मधुर वार्तालाप प्रस्तुत किया गया है।]

पदमावती और उसकी सखियाँ खेलती हुई मान सरोवर के किनारे पर जाकर खड़ी हो गई। सरोवर की सुन्दरता देखकर वे सहेलियाँ उसमे क्रीड़ा करने के लिए

रहसने लगी ; और पद्मावति से बोली कि हे रानी मन मे सोचकर देखलो इस नैहर मे केवल ४ दिन रहना है। जब तक पिता का राज्य है तब तक जो खेलना चाहो आज मन भर कर खेल लो फिर कहाँ हम और कहाँ इस सरोवर का किनारा होगा। आना अपने हाथ नही होगा। एक साथ मिलकर फिर कहाँ खेल सकेंगे। सास नन्दे व्यंग्य—वाक्यो से प्राण ले लेगी। कठोर ससुर फिर आने नही देगे। इन सबसे भी ऊपर प्रिय पति होगे। पता नही वह भी कैसा व्यवहार करेगे। मालूम नही वह सुख से रक्खेगे या दुख से। न जाने जन्म भर कैसे निर्वाह होगा।

टिप्पणी—'पाली' तालाब के ऊँचे किनारे को कहते है।

"एहि नैहर" यहाँ पर कवि ने सवृत्ति वक्रता की प्रतिष्ठा की है। 'एहिनैहर, का तात्पर्य है कि यह ससार जहाँ जीव अनेक प्रकार के सुखोपभोग करता है। यहाँ पर सारोपा लक्षणा भी है। इस जगत पर नैहर का आरोप किया गया है। यहाँ पर प्रयोजनवती-सारोपा शुद्ध गूढ व्यग्य लक्षणा है व्यग्यार्थ है कि स्वतन्त्र भाव से सुखो-सुखोपभोग करना। "दिन-चारी" मे उपचार वक्रता है। इसका अर्थ चार दिन न होकर कुछ दिन मात्र है।

इस अवतरण मे कवि ने रहस्य भावना की मार्मिक व्यजना की है। रहस्यवादी साधक इस ससार को नैहर मानता है और परलोक को अपने पति का लोक मानता है। साधना के बल पर वह अपने प्रियतम के लोक मे पहुँचना चाहता है। जब जीवात्मा रूपी साधिका या पत्नी रूप साधिका इस ससार रूपी नैहर मे रहती हुई अपने प्रियतम के लोक की मधुर कल्पनाओ से विभोर रहती है। कबीर मे भी इस प्रकार की कल्पनाये पाई जाती है। उनका एक पद है —

नैहरवा हमका नहि भावै।
साई की नगरी परम अति सुन्दर ॥
जहाँ कोई आवै न जावै।

इस अवतरण मे कुमारी बालाओ की मनोवैज्ञानिक भावनाओ का मार्मिक चित्रण भी किया गया है।

सरवर तीर पदुमिनी आई। खौपा छोरि केस मुकलाई ॥
ससि मुख अग मलै गिरि रानी। नागन्ह झाँपि लीन्ह अरघानी ॥
ओनए मेघ परी जग छाहाँ। ससि की सरन लीन्ह जनु राहाँ ॥
छपि गै दिनहि भानु के दसा। लै निसि नखत चाँद परगसा ॥
भूलि चकोर दिप्टि तहँ लावा। मेघ घटा महँ चाँद दिखावा ॥
दसन दामिनी कोकिल भापी। भौहें धनुक गगन ले राखी ॥
नैन खंजन दुइ केलि करेही। कुच नारँग मधुकर रस लेही ॥
सरवर रूप विमोहा हिएँ हिलोर करेइ।
पाँव छुवै मकु पावो तेहि मिसु लहरै देइ ॥ ४ ॥

[यहाँ पर कवि ने पद्मावती के मुक्तकेश मय सौन्दर्य का भावपूर्ण चित्रण किया है ।]

पद्मावती सरोवर के किनारे आकर खडी हुई । उन्होने केशो को खोल कर बिथुरा दिया । रानी पद्मावती का मुख चन्द्र के समान और देहलता मलयगिरि के समान शोभायमान थी । केशो से ढकी हुई पद्मावती की देह यष्टि ऐसी शोभायमान थी मानो कि मलयगिरि पर बहुत से नाग लिपट रहे हो । केशरूपी मेघो के छा जाने से ससार भर मे छाया हो गयी । मुख पर फैले हुये वे काले केश ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो कि राहु ने चन्द्रमा की शरण लेली हो । केशों की श्यामता से दिन मे ही सूर्य का प्रकाश मलिन पड गया । रात्रि मे जिस प्रकार नक्षत्रो से युक्त होकर श्याम गगन मे चाँद शोभायमान होता है उसी प्रकार पद्मावती का मुखचन्द्र श्याम केशो वाले गगन मे विविध मोती रूपी नक्षत्रो से युक्त होकर शोभायमान था। चकोर भी पद्मावती के मुख को केश रूपी मेघो की घटा मे चन्द्र समझ कर टकटकी लगाकर देखने लगा । पद्मावती के दाँत विजली के समान चमकते थे । और उसकी बोली कोयल के सदृश थी । उसकी भौहे ऐसी मालूम पड़ती थी मानो कि गगन का इन्द्र धनुष उठाकर रख दिया गया हो ।

उसके नेत्रो के रूप मे दो खजन क्रीडा करते हुए प्रतीत होते थे। श्याम घुण्डी से युक्त कुच ऐसे लगते थे मानो कि नारगी पर बैठे हुए भ्रमर रस ले रहे हो ।

सरोवर पद्मावती के इस दिव्य-रूप को देखकर विमुग्ध हो गया और हर्ष से हिलोरे लेने लगा। वह इस कामना से लहरा रहा है कि कदाचित किसी प्रकार से उसके चरणो का स्पर्श करले ।

टिप्पणी—"ससि मुख-अंग मलयगिरि इत्यादि" यहाँ पर सारोपा-गूढ व्यग्या प्रयोजनवती लक्षणा है। शशि का आरोप नायिका के मुख पर और मलयगिरि का आरोप अग पर किया गया है। इस आरोप का प्रयोजन है मुख के अतुलनीय सौंदर्य और अग की अप्रतिम सुरभि की व्यजना करना। इस प्रकार के लाक्षणिक प्रयोगो से उक्ति मे एक विशेष चमत्कार आ गया है ।

"नागिन्ह झाँपि लीन्ह-अरधानी" यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति से हेतुत्प्रेक्षा व्यंग्य है । इसलिये यहाँ पर अलकार से अलकार ध्वनि की योजना की गई है ।

"ओनए-मेघ परी जग-छाँहा" यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार से उक्ति मे चमत्कार आ गया है ।

"ससि की सरन-लीन्ह जनुराहू" यहाँ पर वस्तुत्प्रेक्षा अलकार है ।

"छपि गै दिनहि भानु कै दसा" यहाँ पर विशेपोक्ति अलकार है। अखण्ड कारण के होते हुये भी कार्य न होने के वर्णन को विशेपोक्ति अलंकार कहते है। यहाँ पर दिन रूपी अखण्ड कारण के होते हुए भी सूर्य का छिप जाना विशेपोक्ति है ।

"भूलि चकोरि दीठि तँह लावा" भ्रातिमान अलकार है ।

"नैनखंजन दुइ केलि कराही" यहाँ पर रूपक और मानवीकरण अलंकार है।

दोहे मे रहस्य भावना का आरोप किया गया है जो भारतीयता से पूर्ण रूपेण अनुप्राणित है। सरोवर की कल्पना साधक के रूप मे की गई है और पद्मावती को साध्य माना गया है। सरोवर का मानवीकरण करके कवि ने साधक की कल्पना को साकार किया है।

धरी तीर सव कचुकि सारी। सरवर महँ पैठी सब बारी॥
पाइ नीर जानौ सब वेली। हुलसी करहि काम के केली॥
नवल बसत सँवारी करी। होइ परगट चाहहि रस भरी॥
करिल केस विसहर विस भरे। लहरै लेहि कँवल मुख धरे॥
उठे कोप जनु दारिव दाखा। भई उनंत प्रेम के साखा॥
सरवर नहि समाइ संसारा। चाँद नहाइ पैठ लिए तारा॥
धनि सो नीर ससि तरई उई। अव कत दिस्टि कँवल औ कुई॥
चकई विछुरि पुकारे कहाँ मिलौ हो नाँह।
एक चाँद निसि सरग पर दिन दोसर जल माँह॥

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती और उसकी सखियो के सरोवर स्नान का चित्र खीचा है।]

सव वालाओ ने अपनी छपी हुई साडियाँ सरोवर के किनारे पर रख दी और फिर सरोवर के जल मे पैठ गईं। जल पाकर वे वालाएँ इस प्रकार आनन्द से काम क्रीडाएँ करने लगी जिस प्रकार लताएँ जल पाकर हुलसित होकर तरल हो उठती हैं। उनके यौवन का नवल बसत कली की भाँति प्रस्फुटित हो रहा था। वे रस भरी वालाएँ कलियो के सदृश प्रस्फुटिन हो खिल जाना चाहती थी। उनके काले केश-विषधर सर्पो के समान कमल रूपी मुख पकडे हुए लहरा रहे थे। उनके अधर ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो अनार और अगूर मे कोपले आई हो। ऐसा लगता था कि वालाओ के रूप मे प्रेम की शाखाएँ ही पल्लवित हो उठी है। वह सरोवर ससार मे नही समा रहा था अर्थात् यह ससार मे अपने को सवसे अधिक सुखी समझ रहा था। चाँद रूपी पदमावती सरोवर मे स्नान कर रही थी और तारा रूपी सखियाँ उसमे प्रविष्ट हो रही थी। वह जल धन्य है जिसमे शशि रूपी पदमावती और तारेरूपी सखियाँ उदित हो। अव वह कमल और कोकावेलियो के सदृश साधारण स्त्रियो के दर्शन की कामना रख के क्या करे····। चकवी चकवा से विछडकर चिल्लाती है 'हे प्रिय अव तुमसे हमारा मिलन कैसे होगा? रात मे तो आकाश का चाँद मिलने नही देता और दिन मे अव ये दूसरा पृथ्वी का चाँद जो जल मे घुस आया है मिलने नही देगा।

टिप्पणी—(१) तीसरी पक्ति मे रूपकातिशयोक्ति अलकार है। बसत उभरते हुए यौवन का, और करी अर्थात् कलियाँ कुचो का उपमान है। उपमानो से ही उपमेय

के सौंदर्य की व्यंजना की गई है इसीलिए यहाँ रूपकातिशयोक्ति अलकार है। चौथी पक्ति मे सारोपा प्रयोजनवती गौणी लक्षणा है। केशो पर विपधर का आरोप कवि ने उनकी कालिमा दूसरो को डसने की प्रवृत्ति आदि की व्यंजना करने के लिए किया है।

(२) पाँचवी पक्ति मे उत्प्रेक्षा मूलक सौंदर्य है।

(३) 'सरवर नहिं समाय ससारा' यहाँ पर अल्प अलकार है। यह अलकार वहाँ पर होता है, जहाँ छोटे आधेय की अपेक्षा वस्तुतः वडे आधार को भी छोटा वता दिया जाता है। यहाँ पर सरोवर आधेय है और ससार आधार है। आधार को आधेय की अपेक्षा अल्प व्यजित किया गया है इसीलिए अल्प अलंकार है।

(४) 'चाँद नहाइ पैठ लिए तारा' यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलकार है। साध्यवसाना प्रयोजनवती गौणी लक्षणा है।

(५) "वनि सो नीर ससि तरई उई" यहाँ पर पाँचवी विभावना अलकार है। यह वहाँ पर होता है जहाँ विरुद्ध कारण द्वारा कार्य की उत्पत्ति वताई जाती है।

(६) "अवकत दिस्टि कँवल-औ कुई" यहाँ पर काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यङ्ग्य है। पक्ति का अर्थ है कमल और कोकावेली का अव कोई महत्व नही है।

(७) दोहे मे भ्रातिमान अलंकार की वड़ी सुन्दर प्रतिष्ठा की गई है। भ्रातिमान के अतिरिक्त 'दिन-दोसर जल माह' इस स्थल पर विभावना अलकार भी व्यग्य है।

लागी केलि करै मँझ नीरा। हस लजाइ वैठ होइ तीरा॥
पदमावति कौतुक कहँ राखी। तुम्ह ससि होहु तराइन साखी॥
वादि मेलि के खेल पसारा। हार देइ जौ खेलत हारा॥
सवरहि साँवरि, गोरिहि गोरी। आपनि आपनि लीन्हि सो जोरी॥
बूझि खेल खेलहु एक साथा। हारु न होइ पराए हाथा॥
आजुहि खेल वहुरि कित होई। खेल गए कत खेले कोई॥
धनि सो खेल खेलहि रस पेमा। रौताई औ कूसल खेमा॥
मुहमद वाजी परेम की ज्यो भावे त्यो खेल।
तिल फूलहि के संग ज्यों होइ फुलाएल तेल॥

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती और उसकी सखियो की जल क्रीडा का वर्णन किया है।]

सखियाँ पदमावती सहित जल मे क्रीडा करने लगी। जल क्रीडा में निपुण सरोवर का हंस उनकी जल क्रीड़ा से लज्जित होकर किनारे वैठ गया। सखियो ने पदमावती को जल क्रीड़ा देखने के लिए अलग वैठा दिया और कहा—"हे शशि तुम सखी रूपी इन तारिकाओं की जल क्रीड़ा की साक्षी वनो। फिर उन्होंने वाजी लगाकर

खेल प्रारम्भ किया और यह निर्णय किया कि जो हारेगा उसे अपना हार देना पडेगा। साँवली ने साँवली को और गोरी ने गोरी को अपना साथी वना लिया और आपस मे कहने लगी कि देखो वहुत समझ वूझकर खेल खेलना कही ऐसा न हो कि अपना हार दूसरे दल को देना पडे। आज खेल लो फिर खेल कहाँ होगा ? खेल समाप्त हो जाने पर भला फिर कोई कही खेलता है। वह खेल धन्य है जो प्रेम रस से परिपूर्ण हो तथा वडा-वडा रहे और छोटो की कुशल क्षेम वनी रहे।

मौहम्मद कवि कहते है कि प्रेम के जल मे जैसा मन भावे वैसा खेल खेलो। तिलको फूलो के साथ वसाने से ही फुलेल अर्थात् इत्र वनता है। इसी प्रकार भले आदमी के सम्पर्क से साधारण व्यक्ति को भी महत्व मिल जाता है।

टिप्पणी—"हस लजाइ वैठ होइ तीरा" यहाँ पर सिद्ध विषया हेतुत्प्रेक्षा अलकार है। जहाँ पर उत्प्रेक्षा का विषय सिद्ध अर्थात् सभव होता है, और जो वास्तव मे कारण नही होता है और उसकी कल्पना कारण रूप मे की जाती है तो वहाँ सिद्ध विषया हेतूत्प्रेक्षा होती है। यहाँ पर हस का सरोवर के किनारे वैठना सिद्ध विषय है। अकारण रूप लज्जित होने को वास्तविक कारण वताकर कवि ने सिद्ध विषया हेतुत्प्रेक्षा की व्यजना की है।

(२) "हारु न होइ पराएँ हाथा" यहाँ पर 'हारु' मे शब्द शक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है।

(३) "वहुरि कित होई" और "खेलगए कत खेलै कोई" मे काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यग्य है।

(४) दोहे मे उदाहरण अलकार है।

सखी एक तहँ खेल न जाना। चित अचेत भइ हार गँवाना॥
कँवल डार गहि भै वेकरारा। कासौ पुकारौ आपन हारा॥
कत खैले आइउँ एहि साथा। हार गँवाइ चलिउँ लेइ हाथा॥
घर पैठत पूछव एहि हारु। कौनु उतर पाउव पैसारु॥
नैन सीप आँसुन्ह तस भरे। जानहु मोति गिरहि सव ढरै॥
सखिन्ह कहा वौरी कोकिला। कौन पानि जैहि पौनु न मिला॥
हारु गँवाइ सो ऐसेहि रोवा। हेरि हेराइ लेहु जौ खौवा॥
लागी सव मिलि हेरै वूडि वूडि एक साथ।
कोई उठी मोति ले वोघा काहू हाथ॥

[इस अवतरण मे कवि ने एक सखी की उस समय की मानसिक स्थिति का वर्णन किया है जव वह हार खो जाने से व्याकुल और खिन्न थी।]

एक सखी खेलना नही जानती थी। वह खेल मे इतनी वेसुध हो गई कि उसका हार खो गया। कमल की डाल पकड कर वह व्याकुल होकर कहने लगी कि अपने

हार के खो जाने का दुःख मै किससे कहूँ। मै इन सब के साथ खेलने क्यो आई जो अपना हार गँवाकर चलदी। घर जाने पर जब हार के विषय मे घर वाले पूछेगे तो मै क्या कहकर गृह मे प्रवेश पाऊँगी। उसकी नेत्ररूपी सीपियाँ आँसुओ से भरकर इस प्रकार झड़ने लगी कि सखियो ने उससे कहा कि हे भोली कोकिल बैनी ऐसा कौनसा पानी है जो जल से प्रभावित नही होता है। जो हार खो देता है वह इसी प्रकार रोता है। अगर वास्तव मे तेरा हार खो गया है तो खुद ढूँढो और हम लोग भी ढुँढ़वा लेगे।

सब मिलकर हार ढूँढ़ने लगी और एक साथ डुबकी लगाने लगी। कोई मोती लेकर निकली और किसी के हाथ के वल घोंघा ही लगा।

टिप्पणी—"कौन पानि जेहि पौनु न मिला" यहाँ पर काकु वैशिष्ठ्य मूलक वस्तु व्यङ्ग्य है कि ऐसा ससार मे कोई नही है जिस पर विपत्ति न पड़ी हो।

"कोई उठी मोतिले, घौंघा काहू हाथ"

यहाँ पर स्वत सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यङ्ग्य है कि इस ससार मे किसी को सौभाग्य और किसी को दुर्भाग्य का सामना करना पडता है।

कहा मानसर चाह सो पाई। पारस रूप इहाँ लगि आई।।
भाँ निरमर तिन्ह पायन परसे। पावा रूप रूप के दरसें।।
मलय समीर वास तन आई। भा सीतल गै तपनि बुझाई।।
न जनौ कौन पौन लेइ आवा। पुन्नि दसा भै पाप गँवावा।।
तत खन हार वेगि उतिराना। पावा सखिन्ह चंद विहँसाना।।
विगसे कुमुद देखि ससि रेखा। भै तह ओप जहाँ जोइ देखा।।
पावा रूप रूप जस चहा। ससि मुख सब दरपन होइ रहा।।
नैन जो देखा कँवल भा निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखा हँस भा दसन जोति नग हीर।।

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती रूपी परमात्मा के सामीप्य से साधक रूपी सरोवर के हृदय मे उत्पन्न होने वाले मनोभावो का सुन्दर चित्रण किया है।]

मानसरोवर रूपी साधक ने कहा, "मुझे अपने अभीष्ट की प्राप्ति हो गई है। पारस के सदृश पदमावती रूपी परमात्म शक्ति मेरे समीप आ गई है। उसके चरणों का स्पर्श करके मै निर्मल हो गया। उस दिव्य रूप के प्रभाव से मैने भी अपना रूप पा लिया है। उसके शरीर से मलय वायु की सुरभि भी मुझे प्राप्त हुई है जिससे मेरी आतमा शीतल हो गई है और सारे ताप नष्ट हो गए है। न मालूम किन पूर्व जन्म के पुण्यो के फलस्वरूप हमारे पाप नष्ट हो गए है और पुण्योदय हो गया है। उसी समय हार वेग के साथ ऊपर तैर आया। सखियो ने

उसे उठा लिया। यह कौतुक देखकर पद्मावती विहँस उठी। पदमावती रूपी चाँद की हँसी रूपी छटा को देखकर कुमुदनी रूपी सखियाँ प्रफुल्लित हो उठी। जहाँ जिसको उसने देखा प्रफुल्लित हो गया। जैसा सब चाहते थे वैसा ही रूप उन्होने प्राप्त किया। पद्मावती रूपी शशि का मुख समस्त पदार्थों के लिए दर्पण रूप हो गया। अर्थात् सभी पदार्थों मे उसका रूप प्रतिविंवित था।

जब उसके नेत्रो की छाया सरोवर रूपी जगत मे पडी तो कमलो की सृष्टि हो गई। उसके निर्मल शरीर की निर्मलता जल की निर्मलता के रूप मे प्रतिविंवित हो गई। उसकी हँसी हसी के रूप मे और दाँत नग हीरो के रूप मे प्रतिफलित दिखाई पडे।

टिप्पणी—(१) "चाह सोपाई" यहाँ पर 'सो' मे संवृत्ति वक्रता है।

(२) इस अवतरण मे कवि ने रहस्यवाद की प्रतिष्ठा की है। 'मानसर' साधक का प्रतीक है, पद्मावती परमात्मा का। पद्मावती को कवि ने पारस रूप कहकर परमात्मा का स्वरूप व्यजित किया है। जिस प्रकार पारस पत्थर के स्पर्श से लोहा भी स्वर्ण रूप हो जाता है उसी प्रकार उस पद्मावती रूपी पारस के साक्षात्कार से लोहे के सदृश पापी साधक भी तद्रूप हो जाते हैं। श्रुति मे भी लिखा है—

"ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति"

(३) यहाँ पर साधक की प्रपत्ति भावना अभिव्यक्त हुई है। प्रपत्ति का अर्थ है पूर्ण समर्पणमय शरणागति। यहाँ पर कवि भारतीय भक्तिवाद से स्पष्ट प्रभावित है। भारतीय अर्चन विधि मे वन्दना और पाद सेवन आदि का बडा महत्व है। वैसे भी चरणस्पर्श करने की सास्कृतिक परम्परा शुद्ध भारतीय और भक्ति मार्गीय है।

(४) "पावा रूप रूप के दरसे" इस पक्ति मे भारतीय सर्वात्मवाद और सूफी सौंदर्यवाद का बडा सुन्दर समन्वय किया गया है। भारतीय सर्वात्मवाद के अनुसार यह सारी सृष्टि उसी के प्रकाश से प्रकाशित है। "तस्यभासा सर्वमिद विभाति" एक ही रूप प्रत्येक रूप मे रूपायित है। "एकोरूप रूप रूपं प्रतिरूपो बभूव" महात्मा तुलसीदास ने भी सीता के रूप वर्णन मे इसी भावना का प्रतिध्वनन किया है। उन्होने लिखा है सु'न्दरता कहँ सुन्दर करई' सूफी मत मे सौंदर्यवाद की बडी प्रतिष्ठा रही है। प्रसिद्ध सूफी इब्नेमिना परमात्मा को सौदर्य का साकार प्रतिरूप मानते थे। उसका कहना था कि ससार मे जितने पदार्थ है उन सब मे सौदर्य स्वरूपी परमात्मा की झाँकी है।

(५) तृतीय पक्ति मे कवि ने ब्रह्म साक्षात्कार की स्थिति का अच्छा वर्णन किया है। पद्मावती रूपी परमात्मा का साक्षात्कार एव सामीप्य लाभकर साधक अपने जन्म-जन्म के कालुष्यो को धो डालता है। उसका शरीर दिव्य सुरभि से सुरभित हो उठता है। उसके तीनो ताप शान्त हो जाते है। और वह सात्विक शीतलता से सतुष्ट

हो जाता है। संत कबीर ने भी ब्रह्म साक्षात्कार की स्थिति का वर्णन लगभग ऐसे ही शब्दो मे किया है :—

"हरिदर्शन सीतलभया मिटी मोह की ताप।
निसि बासर सुखनिधिलहा अंतर प्रगटा आप॥"

(६) "न जनौ कौनु पौन लेइ आवा" यहाँ पर काकुवैशिष्टय व्यंग्य है। जहाँ पर काकु उक्ति की विशेपता से व्यँग्यार्थ प्रतीत होता है वहाँ काकुवैशिष्टय व्यंग्य होता है। जहाँ पर यह व्यग्य गौण होता है वहाँ पर काक्त्राक्षिप्त गुणी भूत व्यग्य कहलाता है और जहाँ पर प्रवान होता है तव उसे काकुवैशिष्टय व्यग्य कहते है। यहाँ पर व्यंग्यार्थ प्रधान है और मुख्यार्थ गौण है इसलिए काकुवैशिष्टय व्यग्य है। अभिप्राय है कि न मालूम किन अनिर्वचनीय पूर्व जन्मो के पुण्यो के फलस्वरूप यह साक्षात्कार प्राप्त हुआ है।

(७) "पुन्नि दसा भै पाप गँवावा" यहाँ पर तृतीय विशेष अलकार है। यह अलकार उस स्थल पर होता है जहाँ किसी कार्य के सम्पन्न होने पर कोई दूसरा अशक्य कार्य भी सम्पन्न हो जाता है। प्रस्तुत पक्ति मे पुण्य दशा का उदय होना एक कार्य का सम्पन्न होना है दूसरे पाप दशा का लोप होना अशक्य कार्य है किन्तु वह अपने आप सम्पन्न हो गया है। इसलिए यहाँ हमने तृतीय विशेप अलकार माना है।

(८) "पावा मखिन्ह चद विहसाना" यहाँ पर असगत और रूपकातिशयोक्ति अलकार है। पूरी पक्ति मे असगत है क्योकि हार पाती सखियाँ है और विहँसता चाँद है। कारण कही है और कार्य कही होता है। चद विहसाना मे रूपकातिशयोक्ति अलकार है और साध्यवसाना गौणी लक्षणा है। यह उपचार वक्रता का भी सुन्दर उदाहरण है।

(९) विगसे कुमुद देखि ससि रेखा—यहाँ पर हेतु अलंकार है। जव कारण का कार्य के सहित वर्णन किया जाता है तव वहाँ हेतु अलकार होता है। प्रस्तुत पक्ति मे कुमुदो के विकमित होने रूपी कार्य का "देख ससि रेखा" रूप कारण का भी उल्लेख कर दिया गया है। इसीलिए यहाँ हेतु अलकार।

(१०) इस अवतरण के दोहे मे वैदिक प्रतिविम्ववाद की सुन्दर झलक दिखाई पड़ती है। पद्मावती के नेत्रो की छाया से कमलो की सृष्टि हो गई, शरीर की निर्मलता जल की निर्मलता में प्रतिविंवित दिखाई पड़ने लगी, हँसी से हँस विनिर्मित हो गए और दसनो की काँति नग हीरो मे परिणत हो गई। कवि ने यहाँ पर पद्मावती की विराट् सौन्दर्य का साकार प्रतिरूप व्पजित किया है। और उसकी ही प्रति छाया से सृष्टि की सारी सुन्दर वस्तुओ की उत्पत्ति वताई है।

पावा रूप रूप जस चाहा—यहाँ रूप शब्द मे पद गत अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है व्यन्जना है कि रूप अपना वास्तविक सौन्दर्य तभी पासका जव उस पद्मावती

सुआ खण्ड

पदमावति तहँ खेल धमारी। सुआ मँदिर महँ देखि मँजारी।
कहँसि चलौ जौ लहि तन पाँखा। जिउ ले उड़ा ताकि वन ढाँखा ॥
जाई परा वनखँड जिउ लीन्हे। मिले पंखि वहु आदर कीन्हे ॥
आनि घरी आगे वहु साखा। भुगुति न मिटे जौ लहि विधि राखा ॥
पाई भुगुति सुक्ख मन भएऊ। अहा जो दुक्ख विसरि सव गएऊ ॥
ऐ गोसाई तू ऐस विधाता। जाँवत जीउ सवन भुक दाता ॥
पाहन महँ न पतंग विसारा। जहँ तोहि सँवर दीन्ह तुहँ चारा ॥
तब लगि सोग विछोह कर भोजन परा न पेट।
पुनि विसरा भा सँवरना जनु सपने भइ भेंट ॥

[इस अवतरण मे कवि ने हीरामन तोते की पद्मावती के पास से उड जाने की कथा कही है ।]

जव पद्मावती धमार खेल मे मग्न थी तब तोते ने घर के अन्दर बिल्ली देखी। उसने अपने मन मे सोचा कि जव तक शरीर मे पख है तव तक मै अपनी जान लेकर वन मे उड़ जाऊँ। यह सोचकर वह वन खड मे उड़ गया। वहाँ पर बहुत से पंक्षी मिले उन्होने आदर सत्कार किया। पक्षियो ने वहुत सी फल भरी शाखाएँ हीरामन के सामने रख दी। जिसकी परमात्मा रक्षा करता है उसे भोजन की कमी नही पड़ती है। भोजन पाकर वह मन मे वहुत प्रसन्न हुआ। उसके मन मे जो दु ख था वह सब भूल गया। वह कहने लगा, हे परमात्मा तू ऐसा मालिक जो जीवमात्र को पत्थर मे वैठे हुए कीड़े को भी नही भूलता। जहाँ तेरा स्मरण किया जाता है तू वही भोजन देता है।

विछुडने का दुख तभी तक रहता है जव तक पेट मे भोजन नही पहुँचता। भोजन पहुँचते ही स्वामी विस्मृत हो जाता है। और ऐसा लगता है मानो स्वामी से कभी स्वप्न मे भेट हुई हो। (यहाँ पर कवि ने परमात्मा की अनत पोपण शक्ति को विशेषमहत्व दिया है।

टिप्पणी —यहाँ पर कवि ने तोते को जीव का प्रतीक माना है और इसी प्रकार मजारी को काल का प्रतीक व्यजित किया है। जीवरूपी तोता काल रूपी विल्ली के भय से भयभीत इप्ट मित्रो की शरण जाता है।

पदुमावति पहँ आइ भडारी। कहेसि मँदिर महँ परी मँजारी ॥
सुआ जो उतर देत रह पूछा। उड़िगा, पिजंर न वोले छूँछा ॥
रानी सुना सुक्ख सव गएऊ। जनु निसि परी अस्त दिन भएऊ ॥
गहनै गही चाँद कै करा। आँसु गगन जनु नखतन्ह भरा ॥
टूटि पाल सरवर वहि लागे। कँवल वूड़ मधुकर उठि भागे ॥
एहि विधि आसु नखत होइ चुए। गगन छाँडि सरवर भरि उए ॥
चिहुर चुवहि मोतिन्ह कै माला। अव सकेत फिरि वाधा चहु पाला ॥
उड़ि वह सुअटा कहँ वसा खोजु सखी सो वासु।
दहु है धरति की सरग पौन न पावै तासु ॥

[तोते के उडजाने पर पद्मावती को जो दु ख हुआ उसी का वर्णन कवि ने इस अवतरण मे किया है।]

भडार के रखने वाले ने पदमावती से आकर कहा, 'महल मे विल्ली ने आक्रमण किया था उसे देखकर तोता उड गया। अव उसका पिजरा खाली पडा है। उसमे अव कोई वोलता नही है। यह सुनकर रानी वहुत दुखी हुई। ऐसा लगा कि दिन अस्त हो गया हो और रात हो गई हो। वह ऐसी मुर्झा गई मानो की चाँद की कला को ग्रहण लग गया हो। उसकी आँखो मे आँसू आगए जिससे उसका मुख मंडल ऐसा प्रतीत होने लगा मानो कि आकाश मे नक्षत्र भर गए हो। उसकी अश्रु धारा का प्रवाह इतना प्रवेग पूर्ण था मानो कि पाल टूटने से सरोवर वह निकला हो और उसमे नेत्ररूपी कमल डूव गया हो तथा मधुकर रूपी पुतलियाँ उड़ कर भाग गई हो। आँसू इस प्रकार टपक रहे थे जैसे आकाश छोढ़कर नक्षत्र सरोवर मे गिर रहे हो। उसके केश मोतियो की माला चुआने लगे थे। वह ऐसा इसलिए कर रहे थे कि उन्हे आशका हो गई थी कि पद्मावती वालो को वाँधने के लिए आँसुओ की नई मोती मालाएँ तैयार करायेगी।

पद्मावती ने कहा, हे सखी वह तोता जाकर न मालूम कहाँ वस गया है उसके उस वसेरे को ढूँढो। न मालूम वह पृथ्वी पर है कि आकाश पर है। मेरे प्राण उस तक नही पहुँचपाते।

टिप्पणी (१) गहने गही चाँद कै करा—यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलङ्कार से वस्तु व्यंङ्गय है कि पद्मावती वडी दुखित हो गई।

(२) टूटिपाल ······ भागे—यहाँ पर अतिशयोक्ति अलङ्कार से नायिका के दु ख की अतिशयता व्यञ्जित की गई है।

एहि विधि आँसू नखत हुई चूए—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। कवि ने प्रयोजनवती लक्षण लक्षणा से नायिका के रुदन का करुणातिशयता व्यञ्जित की है।

गगन छाँडि सरवर होइ ऊए—यहाँ पर अतिशयोक्ति अयङ्कार से वस्तु व्यङ्ग्य है। कवि ने अश्रुओ की अतिरेकता दिखाकर दुःख की अतिशयता व्यञ्जित की है।

चिहुर·······बाला—यह पक्ति बडी ही सुन्दर है। नायिका बहुत दु खी है। दु खातिशय्य से उसके केश विश्रृङ्खल हो गए है। वियोग मे स्वेद सात्विक हो रहा है कवि की उत्प्रेक्षा है कि केश रो रहे है। उनको इस बात का दु ख है कि दु ख से शान्त होने पर यह बाला हमे फिर बाँधेगी। 'मोतिन्ह के माला' मे अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। लक्षण लक्षणा से मोतिन की माला का अर्थ अश्रु की लडियाँ लिया गया है। इसके केशो की दु खातिशय्यता व्यञ्जित की गई है केशो का दु खी होना सभव नही अत. उपादान लक्षणा से केशो का अर्थ केश धारणा करने वाली पद्मावती लिया गया है। यहाँ पर हम व्यङ्ग्य सम्भवा आर्थी व्यञ्जना भी मान सकते है। उस अवस्था मे केशो का दुखी होना अर्थात् विश्रङ्खल होना रूप व्यङ्ग्य से नायिका के विषाद भाव की व्यञ्जना मानी जायगी।

सो बासु—यहाँ पर अर्थान्तिर सक्रमित वाच्य ध्वनि है। सो का अर्थ है वह रहस्य लोक।

पवन न पावै तासु—यहाँ अर्थान्तर सक्रमित वाच्य ध्वनि है। पवन से कवि का अभिप्राय 'कोई भी भौतिक पदार्थ' है। अलौकिकता ही यहाँ व्यङ्ग्य है।

चहूँ पास समुझावहि सखी। कहाँ सो अब पाउब गा पँखी॥
जौ लहि पीजर अहा परेवा। रहा बंदि मँह कीन्हेसि निति सेवा॥
तेहि बँदि हुति छुटै जो पावा। पुनि फिरि बदि होइ कित आवा॥
ओई उडान फर तहियै खाए। जब भा पखि पाँख तन पाए॥
पिजर जेहि क सौपि तेहि गएऊ। जो जाकर सो ताकर भएऊ॥
दस बाटै जेहि पिजर माहाँ। कैसे बाँच मजारी पाहाँ॥
एइँ धरती अस केतन लीले। पेट गाढ़ अस बहुरि नहि ढीले॥
जहाँ न राति न दिवस है जहाँ न पौन न पानि।
तेहि वन सुअटा चलि वसा कोरे मिलावै आनि॥

[इस अवतरण मे कवि ने पद्मावती को सखियो द्वारा सान्त्वना दिलाई है।]

चारो ओर से सखियाँ समझाने लगी 'जो पक्षी उड गया है उसको अब कहाँ ढूढा जा सकता है। जब तक पक्षी पिंजडे मे था वह अपना वन्दी था अत. नित्य सेवा करता था। अब जब वह बन्धन से मुक्त हो गया है तो फिर बन्धन मे क्यो पड़ेगा। उसने उड़ने का फल उसी दिन चख लिया था जिस दिन उसके पख निकले थे। जिसका पिंजडा है वह उसी को सौप कर चला गया जो जिसका था वह उसमे मिल गया। उस शरीर रूपी पिजड़े

मे दस द्वार हैफिर उसमे स्थित जीव काल रूपी मजारी से कैसे वच सकता है यह धरती ऐसे कितनो को निगल गई है।

जहाँ न रात होती है न दिन होता है जहाँ न पवन है न सुगन्व है ऐसे वन में जाकर तोते ने वसेरा किया है। उससे मुझे अव कौन मिला सकता है।

टिप्पणी—(१) इस अवतरण मे कवि ने रहस्य भावना का आरोप किया है। इस रहस्य भावना की अभिव्यक्ति प्रतीकात्मक शैली मे की गई है। पखी जीव का और पिजर शरीर प्रतीक हे।

(२) कवि ने सामासोक्ति के सहारे आध्यात्मिक भावो की व्यञ्जना की है 'सो' 'तेहि' ओहि आदि शब्द आध्यात्मिकता की ओर सकेत करते है। इन शब्दो मे सर्वृत्ति वक्रता है। सवृत्ति वक्रता गूढ आध्यात्मिक अर्थो की व्यञ्जना मे समर्थ है।

(३) दोहे मे कवि ने अनिवचनीय एव अलौकिक रहस्य लोक की व्यञ्जना अर्थान्तर सक्रमित वाच्य ध्वनि से की है।

(४) दस वाट—इस शरीर मे दस द्वार है यहाँ उन्ही की ओर सकेत है।

सुऐ तहाँ दिन दस कल काटी। आइ वियाध ढुका ढुकालेइ टाटी॥
पैग पैग भुइँ चपत आवा। पखिन्ह देखि सवन्हि उर खावा॥
देखहु कछु अचरिजु अन भला। तरिवर एक आवत है चला॥
एहि वन रहत गई हम आऊ। तरिवर चलत न देखा काऊ॥
आजु जो तरिवर चल भल नाही। आवहु एहि वन छाडि पराही॥
वै तो उड़े और वन ताका। पडित सुआ भूलि मन थाका॥
साखा देखि राज जनु पावा। वैठ निचित चला वह आवा॥
पाँच वान कर खोचा लासा भरे सो पाँच।
पाँख भरे तनु अरुझा कत मारे विनु वाँच॥

[इस अवतरण मे कवि ने तोते रूपी जीव के व्याव रूपी अज्ञान के पाश में फँसने की वात कही है।]

तोते ने वहाँ दस दिन सुख पूर्वक विताए। उसके पश्चात् (अज्ञान रूपी) व्याघ वहाँ पर भी टाटी लेकर आ धमका। पग पग पृथ्वी चुपचाप दवाता हुआ चला आ रहा था सव पक्षी (रूपी जीव) उसे देखकर डर गए। उन्होने कहा आज एक अशुभ आश्चर्य हो रहा है कि एक वृक्ष चला आ रहा है। इस वन मे वसते हुए आयु वीत गई किन्तु वृक्ष को चलता हुआ मैने कभी नही देखा। आज पेड़ चल रहा है यह शुभ नही है। आओ इस वन से भाग चले। यह कह वे तो उड़ गए और दूसरे वन मे चले गए। किन्तु पण्डित तोता मन मे भूलकर वही रह गया। उस चलते वृक्ष की फलो से लदी शाखाओ को देख उसने समझा कि राज्य मिल गया। वह निश्चिन्त भाव से वहाँ वैठा रहा वह व्याधा वढ़ता चलता आया।

उसके खोचे मे (पक्षी पकडने की वास लग्गी) पाँच वाण थे पाचो मे लासा लगा हुआ था। तोते के पंख उस लासे मे सन गए अब वह मृत्यु के चगुल से नही वच सकता।

टिप्पणी—(१) इस अवतरण मे रूपकगर्भा समासोक्ति है। यहाँ पर तोते और व्याध का वर्णन प्रस्तुत है। उनके सहारे कवि ने जीव और अज्ञान के रूपक की योजना की है। जीव और अज्ञान के विपय अप्रस्तुत है। इसीलिए यहाँ रूपक गर्मा समासोक्ति है। यहाँ पर साँकेतिक अर्थ है तोता जव राजमहल से मृत्यु के भय से वन मे भाग कर आया तो कुछ दिन वाद अज्ञान रूपी व्याघ ने वहाँ पर भी उस पर आक्रमण कर दिया। दूसरे वनवासी जीव उसे देखकर वहाँ से उड गए। किन्तु हीरामन तोता रूपी सीधा साधा जीव अज्ञान रूपी व्याध के खोचे पर लगे फलो को देखकर मुग्ध हो गया। किन्तु वह खोचा पचवान अर्थात कामदेव के समान मोहक था अथवा अज्ञान रूसी व्याध के उस खोचे मे काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह रूपी पञ्च वाण लगे हुए थे। तोता रूपी सरल जीव उनमे उलझ गया। उसकी मृत्यु अवश्यमभावी हो गई। यही आध्यात्मिक अर्थ रूपक गर्भा समासोक्ति के द्वारा प्रगट किया गया है।

बधिगा सुआ करत सुख केली। चूरि पाँख धरि मेलेसि डेली॥
तहवाँ बहुत पंखि खरभरही। आपु आपु महँ रोदन करही॥
विख दाना कित होत अँगूरा। जेहि भा मरन डहन धरि चूरा॥
जौ न होति चारा कै आसा। कत चिरिहार ढुकत लै लासा॥
यह विख चारे सव वुधि ठगी। औ भा काल हाथ लेइ लगी॥
एहि झूठी माया मन भूला। चूरे पाँख जैस तन फूला॥
पहु मन कठिन मरै नहि मारा। जार न देखु देखु पे चारा॥
हम तो वुद्धि गवाई विख चारा अस खाइ।
तू सुअटा पडित होइ कैसे वाझा आइ॥

[इस अवतरण मे कवि ने तोते के वन्धन मे पड़ जाने की स्थिति का वर्णन किया है।]

सुखोपभोग करता हुआ तोता वन्दी हो गया। वहेलिए ने उसे पकड कर उसके पख मरोड़ डाले और झाँपी मे डाल लिया झाँपी मे और भी वहुत से पक्षी व्याकुल हो रहे थे और अपने आप मे रो रहे थे। विधाता ने ऐसा विप भरा दाना क्यो उत्पन्न किया कि जिसके लोभ मे पड़ फसना ओर वँधना पड़ा और पख तुडवाने पडे। यदि पक्षियो को चारे का लोभ न होता तो चिडीमार लासा लेकर क्यो आता। इस विप के चारे के लोभ ने सवकी वुद्धि भृप्ट कर दी। वहेलिया अपने हाथ मे लग्गी लेकर आया और काल रूप वनकर उसने सव को पकड लिया इस झूठी माया मे व्यर्थ ही मन भूल गया। तोता रूपी जीव अभिमान से फूला नही समा रहा था कि उसके पख

तोड़ दिए गए। यह मन वडा कठिन है मारे नही मरता है यह जाल को नही केवल चारे को देखता है।

हमने विप चारा ऐसा खाया कि वुद्धि ही भ्रष्ट हो गई। हे तोते तू तो पण्डित था इस जाल मे कैसे फँस गया।

टिप्पणी—इस अवतरण मे भी रूपक गर्भा समासोक्ति है। तोता सरल जीव का और व्याधा अज्ञान का प्रतीक है। सम्पूर्ण अवतरण का आध्यात्मिक अर्थ है कि तोता रूपी जीव का पीछा अज्ञान रूपी व्याध ने वन रूपी ससार मे भी नही छोटा। उसका मन इस ससार की झूठी माया मे फँस गया।

(२) यहाँ पर 'एइ' 'एहि' यह अस आदि शब्दो मे सवृत्ति वक्रता का प्रयोग किया गया है।

(३) यहाँ पर कवि शङ्कर के माया मिथ्यावाद मे अपनी आस्था प्रगट की है।

(४) 'सुवटा' यह शब्द प्रत्यय वक्रता का वडा सुन्दर उदाहरण

(५) इस अवतरण के दोहे पर बौद्ध सिद्ध सरहपाद के निम्न लिखित दोहे का प्रभाव है—

जँह मन पवन न सचरइ, रवि ससि नाह पवेस।
तँह वट चित्त विसाम करु सरह कहिअ उवेस॥

सुऐ कहा हमहु अस भूले। टूट हिडोल-गरव जेहि झूले॥
केरा के वन लीन्ह वसेरा। परा साथ तहँ वैरी केरा॥
सुख कुरवारि फरहरी खाना। ओहु विप भा जव व्याधतुलाना॥
काहेक भोग विरिछ अस फरा। आड लाइ पखिन्ह कहँ धरा॥
सुखी निचित जोरि धन करना। यह न चित आगे है मरना॥
भूले हमहु गरव तेहि माहाँ। सो विसरा पावा जेहि पाहाँ॥
होइ निचित वैठे तेहि आडा। तव जाना खोचा हिए गाड़ा॥
चरत न खुरुक कीन्ह जिउ, तव रे चरा सुख सोइ।
अव जो फाँद परा गिउ, तव रोए का होइ॥

[इस अवतरण मे कवि ने तोते के मुख से गर्व की हेयता व्यञ्जित कराई है।]

तोते ने कहा मै भी ऐसा विमूढित हो गया कि गर्व के हिडोले मे झूलने लगा। किन्तु वह गर्व का हिडोल जिसमे मै झूल रहा था टूट गया। मैंने केला के वन मे विश्राम लिया था वहाँ शत्रु का साथ पड गया। वहाँ सुख पूर्वक फलादि को चोच मार-मार कर मुख पूर्वक खाना ही हमारा जीवन क्रम था। किन्तु वह फरहरी खाना भी विप रूप हो गया और वहाँ व्याध आ पहुँचा। कवि कहता है केले का (भोग) का वृक्ष ऐसा क्यो फलता है कि उसकी आड मे वह पक्षियो को पकड लेता था।

मनुष्य धन जोड कर रखने में सुखी रहता है। वह यह नही सोचता कि आगे हमे मरना है मनुष्य उस धन की आड मे निश्चित हो कर बैठा रहता है उसे अपनी भूल का तव पता चलता है। जव उसे गहरी चोट लगती है।

भोग करते हुए या चारा खाते हुए मन मे शका नही की। उसे सुख समझ वह तव उस भोग या चोर मे लीन रहा किन्तु अव गर्दन मे जव फंदा पड़ गया तो फिर सोने से क्या होता है।

टिप्पणी—(१) **हमहूँ :**—यहाँ पर अर्थान्तर सक्रमित वाच्य ध्वनि है। तोते की सद् बुद्धि और पाण्डित्य यहाँ व्यङ्गय है। उपादान लक्षणा से अर्थ लिया जायगा कि मै भी जो इतना पण्डित और समझदार होकर भी भ्रम मे पड गया।

(२) **'अस' में भी :**—पदगत अर्थान्तर सक्रमित वाच्य ध्वनि है कवि की व्यञ्जना है तोता भी ऐसा भ्रम मे फँसा कि गर्व के हिन्डोले मे झूलने लगा।"

(३) **केरा :**—यहाँ पर यमक अलङ्कार है। पहले केरा का अर्थ कदली फल। दूसरे केरा अर्थ है 'के'।

(४) **भोग :**—यहाँ पर शब्द शक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है। कवि ने 'भोग' शब्द से 'केला' के अतिरिक्त भोग विलास परक एक दूसरे अर्थ की व्यञ्जना की है। व्यञ्जना है कि भोग विलास का वृक्ष इस ससार मे ऐसा फल फूल रहा है कि सारे प्राणी उसी के इन्द्र जाल मे फँसे हुए है।

(५) 'अस' मे सवृति वक्रता है।

(६) **भूले हमहुँ गरवतेहिमाँहा :**—यहाँ पर बौद्ध प्रभाव है। धम्मपद मे गर्व की निन्दा करते हुए लिखा है।

(i) जिसने सारी तृष्णा का त्याग कर दिया है वही उत्तम है।

(ii) जिसे वन्धन मे डालने वाली विप रूपी तृष्णा कही भी ले नही जा सकती, उस वुद्ध को कैसे वहका सकते हो। (वुद्ध वग्ग '२')

(iii) जिघत्सा परमो रोग अर्थात भोग की या खाने की इच्छा सवसे वडा रोग है—

(iv) तृष्णया जायते शोक शोकात् जायते भयम्।
तृष्णया विप्रभुक्तस्य नाऽस्ति शोकः कुतोभयम्।

(v) नास्ति तृष्णा समा नदी—इन पक्तियो की स्पष्ट प्रतिच्छाया उपर्युक्त अवतरण पर दिखाई पड़ती है।

(vi) तृष्णा रूपी धारा को काट दो, पराक्रम करो। (धम्मपद मे व्राह्मण वग्ग १ देखिए।)

(vii) तृष्णा के पीछे पडे प्राणी वँधे खरगोश की तरह चक्कर काटते है। इसलिए वैराग्य की आकांक्षा कर भिक्षु तृष्णा को दूर करे। (धम्मपद ३४३)।

(viii) जो ससार मे इस दुस्त्याज्य नीच तृष्णा को जीत लेता है उसके शोक इस तरह गिर जाते है जैसे कमल के ऊपर से जल बिन्दु--धम्मपद ३३६। दोहे मे 'तब' और 'अब' शब्दो मे सवृत्ति वक्रता है। यह शब्द अपने मे कुछ विशेष भाव संवृत्त (छिपाए हुए) हुए है।

सो बिसरा—यहाँ पर सो मे सवृत्ति वक्रता है। सो से कवि का अभिप्राय उस परमात्मा से जिसने जीव को इस ससार में अवतरित किया है।

तब जाना खोचा हिय गाडा—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। इसका अर्थ है मनुष्य को जब गर्व के दुष्परिणाम भुगतने पड़ते हैं तब उसे उसकी भयङ्कता का अनुभव होता है। गर्व की भयङ्करता ही यहाँ व्यङ्ग्य है।

चरत न खुरुक कीन्ह मन—यहाँ पर शब्द शक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है। चरत का वाच्यार्थ है चरते हुए। व्यङ्ग्यार्थ है भोग भोगते हुए।

फांद—यहाँ पर शब्द शक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है। फाद का वाच्यार्थ है तोते के गले मे पडी हुई कंठी और व्यङ्ग्यार्थ है माया का बन्धन।

सुनि कै उतर आँसु पुनि पोछे। कौन पखि बाँधा बुधि-ओछे॥
पखिन्ह जौ बुधि होई उजारी। पढा सुआ कित धरे मजारी॥
कित तीतिर वन जीभ उछेला। सो कित हँकरि फाद गिउ मेला॥
तादिन व्याध भए जिउलेवा। उठे पांख, भा नाव परेवा॥
भै वियाधि तिसना सँग खाधू। सूझै भुगुति, न सूझ वियाघू॥
हमहिं लोभवै मेला चारा। हमहिं गर्ववै चाहे मारा॥
हम निचित वह आव छिपाना। कौन वियाधहि दोप अपाना॥
सो आँगुन कित कीजिए जिउ दीजै जेहि काज।
अब कहना है किछु नहि, मस्ट भली, पखिराज॥७॥

[इस अवतरण मे कवि ने पक्षियो के मुख से उनकी बुद्धि हीनता की निन्दा कराई।

पण्डित तोते की वात सुनकर सवने आँसू पोछे और मन मे सन्तोष कर लिया वे कहने लगे "हम अल्प बुद्धि वालो के किसने पख लगाए है।" यदि पक्षियो की बुद्धि का अन्धकार दूर कर उस मे कुछ प्रकाश भरा जा सकता तो बुद्धिमान तोते को बिल्ली कैसे पकड लेती। एकान्त मे रहने वाला तीतर क्यो जीभ खोलता और अपने गले जबर्दस्ती वोल कर फँदा कैसे डलवा लेता। व्याध उसी दिन हमारे जीवन का घातक बन गया जिस दिन हमारे पख निकले और पक्षी नाम पडा। मुक्ति के साथ जो तृष्णा होती है वही व्याध रूप हो जाती है। हमे भोग तो दीखता है, उसके साथ छिपा हुआ व्याध नही दीखता। हमारे भीतर लोभ है। इसी से फँसाने के लिए चारा डालता है। हमे गर्व रहता है कि आकाश मे उड़ सकते हैं। व्याध को गर्व है कि वह विहगो को

पकड़ सकता है। हम निश्चिन्त रहते है, वह चुपचाप आ जाता है। व्याध का क्या दोप, सब दोप तो अपना है।

वह अवगुण क्यो किया जाय जो प्राणो की बलि देनी पडे। अब कुछ कहने का समय नही है। हे पक्षिराज ! अब मौन रहना ही ठीक है।

टिप्पणी—(१) यहाँ पर रूपक गर्भसमासोक्ति है। पक्षी के रूपक से कवि ने साधारण जीव की दशा का सकेत किया है। समासोक्तिमूलक अप्रस्तुत अर्थ है कि यदि जीव मे ज्ञान होता तो माया रूपी बिल्ली पण्डित तोते पर क्यो झपटती ; जीव की भोग के प्रति तृष्णा ही उसकी शत्रु है। लोभ और गर्व आदि उसे नष्ट करना चाहते है। जीव सासारिक भोगो मे लिप्त रहता कि काल रूपी व्याध उसे आ दबाता है।

(२) यहाँ पर बौद्ध धर्म का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पडता है। बौद्ध धर्म में वैराग्य की बड़ी प्रतिष्ठा है और तृष्णा को वहाँ जीव का सबसे बड़ा शत्रु माना है। तृष्णा सम्बन्धी उद्धरण मैंने पिछले अवतरण मे दिये है। यहाँ पर कुछ वैराग्य भाव के प्रमाण दे देना अनुपयुक्त न होगा। धम्म पद मे लिखा है—

(i) जिसने चित्त मलो का त्याग कर दिया है, शील पर प्रतिष्ठित है, संयम और सत्य से युक्त है, वही काषाय वस्त्र का अधिकारी है। धम्म पद १०।

(ii) धम्मिक सुत्त मे स्पष्ट लिखा है कि भिक्षु धर्म स्वीकार करने पर ही जन्म-मरण के चक्कर से मुक्ति मिल सकती है।

रतनसेन जन्म खण्ड

चित्रसेन चितउरगढ राजा । कै गढ कोट चित्र सम साजा ॥
तेहि कुल रतनसेन उजियारा । धनि जननी जनमा अस बारा ॥
पडित गुनि सामुद्रिक देखा । देखि रूप औ लखन विसेखा ॥
रतनसेन यह कुल-निरमरा । रतन-जोति मन माथे परा ॥
पदुम पदारथ लिखी सो जोरी । चांद सुरुज जस होइ अँजोरी ॥
जस मालति कहँ भौर वियोगी । तस ओहि लागि होइ यह जोगी ॥
सिघलदीप जाइ यह पावै । सिद्ध होई चितउर लेइ आवै ॥
भोग भोज जस माना, विक्रम साका कीन्ह ।
परखि सो रतन पारखी सवै लखन लिखि दीन्ह ॥ १ ॥

[इस अवतरण मे रतनसेन के जन्म का वर्णन किया गया है ।]

चित्रसेन चित्तौरगढ मे राज्य करता था । उसने अपना गढ वनवा कर उसे विचित्र चाहरदीवारी से सजाया था । उसके कुल को रतनसेन ने सुशोभित किया । जिस माँ ने ऐसे होनहार वालक को जन्म दिया उस माँ को धन्य है । पण्डित, ज्योतिषी और सामुद्रिक आकर उस वालक को देखते थे । वे उसके रूप और लक्षण विशेष को देख कर कहते थे कि रतनसेन जो कि इस कुल मे उत्पन्न हुआ है, रत्न रूप है। सौभाग्य रूप ज्योति इसके मस्तक पर रूप मणि के समान प्रकाशित है। उत्तम पदार्थ रूप पद्मावती के साथ इसकी जोडी लिखी है । इनके मिलने से चांद और सूर्य जैसा उजाला होगा । जिस प्रकार मालती के लिए भौरा वियोगी वनता है वैसे ही वह इसके लिए जोगी वनेगा । सिहलगढ मे जाकर यह उसे प्राप्त करेगा और सिद्ध वन कर उसे चित्तौर ले आवेगा ।

यह राजा भोज जैसा भोग भोगेगा और विक्रम ने जिस प्रकार अपने सवत् की परम्परा प्रवर्तित कर अपने पराक्रम की कीर्ति कौमुदी फैलाई, वैसे ही महत्वपूर्ण पराक्रम का प्रदर्शन यह करेगा ।

टिप्पणी—(१) पदिक पदारथ—उत्तम पदार्थ (पद्मावती रूपी हीरे के साथ

इसकी जोडी लिखी है) । पदिक हार के बीच का उत्तम मनका होता है । पदारथ यहाँ पर महा मूल्यवान हीरे के लिए प्रयुक्त किया गया है ।

(२) **जस मालति कहँ भँवर वियोगी**—यह कवि प्रसिद्धि है कि भौरा सब फूलो से अधिक मालती के फूल के लिए तड़पता रहता है । जब तक वह उसे प्राप्त नही कर लेता तब तक उसे चैन नही पडता ।

इस अवतरण मे योग साधना सम्बन्धी धूमिल सकेत है । चित्तौरगढ़ चित्त का प्रतीक प्रतीत होता है । चित्त का स्वामी मन चित्रसेन हुआ । सिंहलद्वीप ब्रह्म रन्ध्र का प्रतीक है । उसकी स्वामिनी पद्मावती ब्रह्म रन्धस्थ ब्रह्म शक्ति है । मन उस शक्ति को सिद्ध वन कर प्राप्त कर उसे चित्त क्षेत्र मे लाता है । वहाँ राजा भोज के समान अनन्त भोग-विलास मे लीन रहता है । वह राजा विक्रम की भाँति दिग्विजयी होकर अपनी अमर कीर्ति छोड जायगा ।

(३) **विक्रम साका कीन्ह**—जिस प्रकार विक्रमादित्य ने शको पर विजय प्राप्त कर नये सवत् की स्थापना की थी, उसी प्रकार रतनसेन भी दिग्विजयी होगा ।

(४) **सो रतन**—यहाँ पर रतन मे शब्द शक्ति उद्भूव वस्तु ध्वनि है । रतन से रतनसेन की महा-महिम-शालिता व्यञ्जित की गई है । सो मे सवृत्ति वक्रता है । उससे कवि ने दुर्लभता व्यञ्जित की है । इस विशेप अर्थ के संवरण के कारण ही यहाँ संवृत्ति वक्रता मानी गई है ।

बनिजारा खण्ड

चितउरगढ कर एक वनिजारा। सिंघलदीप चला वैपारा॥
वाम्हन हुत एक निपट भिखारी। सो पुनि चला चलत वैपारी॥
ऋन काहू सन लीन्हेसि काढ़ी। मकु तहँ गए होइ किछु वाढ़ी॥
मारग कठिन वहुत दुख भएऊ। नाँघि समुद्र दीप ओहि गएऊ॥
देखि हाट किछु सूझ न ओरा। सबै वहुत, किछु दीख न थोरा॥
पै सुठि ऊँच वनिज तहँ केरा। धनी पाव, निधनी मुख हेरा॥
लाख करोरिन्ह वस्तु विकाई। सहसन केरि न कोउ ओनाई॥
सवही लीन्ह वेसाहना औ घर कीन्ह वहोर।
वाम्हन तहवाँ लेइ का ? गाँठि साँठि सुठि थोर॥ १॥

[इस अवतरण मे कवि ने प्रवन्ध मे वनिजारे की प्रकरी (लघु प्रासगिक कथा) की योजना की है।]

चित्तौरगढ का एक वनजारा था। वह व्यापार करने सिंहलद्वीप गया। एक ब्राह्मण जो वडा ही दीन-हीन और भिखारी था, उस वनजारे के साथ चल दिया। उसने किसी से थोडा पैसा उधार ले लिया और सोचने लगा कि शायद सिंहलद्वीप मे जाकर कुछ लाभ ही हो जाय। सिंघलद्वीप का मार्ग कठिन था। अत उसे मार्ग में बड़े दुख उठाने पडे। फिर समुद्र पार करके सब उस द्वीप मे पहुँचे। वहाँ पर उसका हाट देखा किन्तु उसे सब कुछ प्रचुरता मे ही दिखाई पडा, कुछ कम था ही नही। वहाँ पर वहुत उच्च कोटि का व्यापार होता था। धनी तो वस्तुएँ खरीद पाते थे, निर्धन वेचारे नही खरीद पाते थे। वहाँ लाखो और करोडो की वस्तुएँ विकती थी। हजारो मे कोई सौदा पटता ही न था।

सब ने वहाँ खरीदारी की और फिर घर की ओर लौट पडे। वेचारा गरीब ब्राह्मण वहाँ क्या खरीदे, उसकी गाँठी मे पैसा वहुत कम था।

टिप्पणी—(१) यहाँ पर स्वत. सम्भवी वस्तु से वस्तु ध्वनि है। कवि की

व्यन्जना है कि इस लोक मे उसी को सुख मिलता है जिसने पुण्य कर रक्खे है। अन्यथा 'सकल पदारथ है जग माहीं, कर्महीन नर पावत नाहीं'।

झूरै ठाढ़ हौ, काहे क आवा ? वनिज न मिला, रहा पछितावा ॥
लाभ जानि आएउँ एहि हाटा। मूर गँवाइ चलेउँ तेहि बाटा ॥
का मैं मरन-सिखावन सिखी। आएउँ मरे, मीचु हति लिखी ॥
अपने चलत सो कीन्ह कुबानी। लाभ न देख, मूर मै हानी ॥
का मै वोआ जनम ओहि भूँजी ? खोइ चलेउँ घरहू कै पूँजी ॥
जहि व्योहरिया कर व्यौहारू। का तेइ देव जौ छेकिहि बारू ॥
घर कैसे पैठव मैं छूछे। कौन उतर देवौ तेहि पूछे ॥
साथि चले, सँग बीछुरा, भए विच समुद्र पहार।
अस-निरासा हौ फिरौ, तू विधि देहि अधार ॥ २ ॥

[इस अवतरण मे कवि ने ब्राह्मण के पश्चाताप का वर्णन किया है।]

ब्राह्मण खडा-खड़ा सोचने लगा, "मैं कहाँ आ गया। कुछ व्यापार नही मिला। पश्चाताप के अतिरिक्त कुछ हाथ न लगा। लाभ समझ कर मै इस हाट मे आया था किन्तु यहाँ तो मूल गवाँ कर भी चल दिया। मैने यह मरण की शिक्षा कैसे सीखी। मेरी मृत्यु लिखी थी तभी मै यहाँ आकर मरा। मैने अपने चलते हुए कभी बुरा व्यवहार नही किया। फिर भी लाभ नही हुआ और घर की पूँजी भी खो चला। क्या मैंने उस जन्म मे भाड में भुजवा कर ऐसे बीज बोये कि कुछ उत्पन्न ही नही हुआ और घर की पूँजी भी खो चला। जिस महाजन से मैंने रुपया उधार लिया था उसे मै घर का द्वार घेरने पर क्या दूँगा। खाली हाथ मै घर में कैसे घुसूँगा और घर वालो के पूछने पर मै उन्हे क्या उत्तर दूँगा।"

व्यापारियो के साथ करने से ब्राह्मण अपने सत से विचलित हुआ। बीच मे समुद्र और पहाड़ विघ्न वने, फिर भी आशा निराशा मे परिणित हो गई। हे परमात्मा ! अव तू ही आश्रय है।

टिप्पणी—(१) **एहि हाटा**—यहाँ पर संवृत्ति वक्रता है। कवि का अभिप्राय ससार रूपी हाट से है।

(२) **तेहि बाटा**—परलोक के मार्ग मे। तेहि से सवृत्ति वक्रता है।

(३) यहाँ स्वत. सम्भवी वस्तु वर्णन से वस्तु व्यग्य है। व्यन्जना है कि जिस जीव ने अपने पूर्व जन्म मे पुण्य कर्म नही कर रक्खे है उसे इस लोक मे सुख नही मिलता और वह निराश ही परलोक को लौट जाता है। यही नही वह अपने थोडे से सचित पुण्यो को भी नष्ट कर डालता है।

तबही व्याध सुआ लेइ आवा। कचन-वरन अनूप सुहावा॥
बेचै लाग हाट लै ओही। मोल रतन मानिक जहँ होही॥
सुअहि को पूछ? पतंग-मँडारे। चलन, दीख आछै मन मारे॥
बाम्हन आइ सुआ सौ पूछा। दहुँ, गुनवंत, कि निरगुन छूछा॥
कहु परवत्ते! गुन तोहि पाहाँ। गुन न छपाइय हिरदय माहाँ॥
हम तुम जाति बराम्हन दोऊ। जातिहि जाति पूछ सब कोऊ॥
पडित हौ तौ सुनावहु वेदू। विनु पूछे पाइय नही भेदू॥
हौ बाम्हन औ पडित, कहु आपन गुन सोइ।
पढे के आगे जो पढै दून लाभ तेहि होइ॥ ३ ॥

[इसमे कवि ने ब्राह्मण द्वारा हीरामन तोते का खरीदारी का वृत्तान्त वर्णित किया है।]

इसी बीच मे व्याध तोते को ले आया। वह स्वर्ण वर्ण का था और देखने मे अनुपम रूप से सुन्दर था। वह उसे उस बाजार मे बेचने लगा जहाँ रत्न और माणिक्य का मोल-तोल हो रहा था। वहाँ उसे कौन पूछे जो मदार के पेड का एक पतिङ्गा-मात्र है। अतएव व्याध उस बाजार की गति देख कर खिन्न था। ब्राह्मण ने आकर तोते से पूछा—तू गुणी है या सर्वथा गुणहीन है। हे तोते! तुझमे जो गुण हैं, तू उसको वर्णन कर। गुण हृदय मे छिपा कर रखने की वस्तु नही है। हम तुम दोनो ब्राह्मण जाति के है। अपने जाति वाले से ही सब लोग आपसी बात कहते है। यदि तुम पण्डित हो तो वेद सुना दो। विना पूछे हुए रहस्य का पता ही नही चलता है।

मै तो ब्राह्मण और पण्डित हूँ, तुम अपने गुणो का बखान करो। पढे के आगे जो पढता है उसे दुगुना लाभ होता है।

टिप्पणी—(१) पतङ्ग मदारे—मदार पेड के पतिङ्गे की भाँति इसका कीडा भी हरा होता है।

कवि ने तोते को पतग मदारे कह कर तोते की नगण्यता व्यञ्जित की है। स्वय मदार ही महादेव को छोड कर किसी की पूजा मे काम नही आता। वह मानव समाज के लिए नगण्य है। फिर उसके पतिङ्गे की नगण्यता का कहना ही क्या है। यहाँ अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से पतग मदारे का अर्थ क्षुद्र लिया गया है।

परबत्ते—पार्वतीय। पर्वत के तोते को परवत्ते कहा गया है। सम्भवत हीरामन पहाडी तोता था।

तब गुन मोहि अहा, हौ देवा। जब पिंजर हुत छूट परेवा॥
अब गुन कौन जो बद जजमाना। घालि मजूषा बैचै आना॥
पडित होइ सो हाट न चढा। चहौ बिकाय भूल गा पढ़ा॥
दुर मारग देखौ यहि हाटा। दई चलावै दहुँ कहि बाटा॥

रोवत रकत भएउ मुख राता । तन भा पियर कहौ का वाता ॥
राते स्याम कंठ दुइ गीवाँ । तेहि दुइ फंद डरौ सुठि जीवाँ ॥
अव हौ कंठ फंद दुइ चीन्हा । दहुँ ए फद चाह का कीन्हा ॥
पढ़ि गुन देखा वहुत मै है आगे उर सोइ ।
धुव जगत सव जानि कै भूलि रहा वुधि खोइ ॥ ४ ॥

[यहाँ कवि ने, ब्राह्मण को तोते ने जो उत्तर दिया उसका उल्लेख किया है ।]

तोता कहता है—हे महाराज ! मुझमे तब गुण था जब मै पिजड़े से मुक्त पक्षी था । अब मुझमे गुण कहाँ है जब मै जजमान का वन्दी वन गया । वह भी ऐसा जजमान जो मुझे पिटारी मे रख कर बेचने लाया है । जो पडित होगा वह बाजार में नही विक सकता । मै जो वाजार मे बेचने लाया गया हूँ इसलिए अब जो पढा-लिखा था वह सब भूल गया । इस हाट मे मै दो मार्ग देखता हूँ । मालूम नही भगवान किस मार्ग से ले जाये । रोते हुए उसका मुख रक्त के आँसुओ से लाल हो गया । अब तो मुख पीला पड गया है क्या वात कहूँ । लाल और काले दो कण्ठे पडे हुए है । उन दोनो फन्दो से वहुत डरता हूँ । न मालूम यह फदे क्या करना चाहते है ।

मैंने पढ़-गुन कर सब कुछ देख लिया, कुछ भी लाभ नही हुआ, भविष्य का डर ज्यों का त्यो वना हुआ है । सव जान कर भी मेरे लिए ससार मे अँधेरा है । अब तो बुद्धि खोकर सब भूल गया हूँ ।

टिप्पणी—(१) अहा—था ।

(२) **दुई मारग देखो यहि हाटा**—यहाँ पर कवि ने प्रवृत्ति मार्ग और निवृत्ति मार्ग की ओर सकेत किया है । यहाँ पर विहगम और पिपीलिका मार्ग की ओर भी सकेत है । 'एहि' मे सवृति वक्रता है ।

रोवत रकत भएउ मुख राता—यहाँ पर विभावना अलङ्कार से वस्तु व्यञ्जना की गई है । करुणा की अतिशयता ही यहाँ व्यग्य वस्तु है । इस प्रकार इस प्रयोग मे कवि प्रोढोक्ति सिद्ध अलकार से वस्तु व्यग्य है ।

हाट न चढ़ा—अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है । व्यङ्ग्यार्थ है कि वह ससार मे न आता ।

तन भा पियर—यहाँ पर वर्तृ-वैशिष्ठ आर्थी व्यञ्जना है । व्यग्यार्थ है कि मैं व्याध रूपी काल के जाल मे फँसने के कारण अत्यन्त भयभीत हूँ । भयत्रस्त होने के कारण वोलने योग्य नही रहा ।

राते श्याम कंठ दुइ गीवा—कंठ मे लाल और काली दो रेखाएँ है । इसमे वतृ वैशिष्ट्य आर्थी व्यञ्जना है । व्यञ्जना है कि मेरे कण्ठ मे रजोगुण और तमोगुण के वन्धन है ।

जिन्ह—मे सवृति वक्रता है । कवि का अभिप्राय रजोगुणी और तमोगुणी वन्धनों से है ।

सुनि बाम्हन विनवा चिरिहारु। करि पंखन्हि कहँ मया न मारु॥
निठुर होइ जिउ बधसि परावा। हत्या केरि न तोहि डर आवा॥
कहसि पखि का दोस जनावा। निठुर तेइ जे परमंस खावा॥
आवहि रोइ, जात पुनि रोना। तबहुँ न तजहि भोग सुख सोना॥
औ जानहि तन होइहि नासू। पोखे माँसु पराए माँसू॥
जौ न होहि अस परमँस खाधू। कित पँखन्हि कहि धरै बियाधू॥
जो ब्याधा नित पखन्हि धरई। सो बेचत मन लोभ न करई॥
बाम्हन सुआ बैसाहा सुनि मत वेद गरथ।
मिला आइ कै साथिन्ह भा चितउर के पंथ॥ ५॥

[इस अवतरण मे ब्राह्मण द्वारा पहले तो व्याध को उपदेश दिलाया गया है फिर तोते का क्रय कराया गया है।]

ब्राह्मण ने चिडीमार से विनयपूर्वक कहा है कि व्याध को पक्षियो पर दया करके उन्हें मारना नही चाहिये। तुम निष्ठुर बन कर दूसरे का जी कैसे मारते हो; क्या तुम्हे हत्या का डर नही है? तू यह जो कहता है कि पक्षी मनुष्य का भोजन है सो ठीक नही। जो इन्हे खाते है वह बडे क्रूर होते है। मनुष्य इस संसार मे रोता हुआ आता है और रोता हुआ ही जाता है, किन्तु वह फिर भी भोग करना और सुख सहना नही छोड़ता। वह यह भी जानता है कि शरीर नश्वर है, फिर भी वह अपने माँस का पोषण पराये माँस से करता है। यदि इस प्रकार के पर माँस खाने वाले न होते तो व्याध कभी भी पक्षियो को नही पकडता। व्याध पक्षियो को रोज पकड़ता है और उन्हे बेचते हुए लोभ नही करता।

ब्राह्मण ने वेद पुराणादि का ज्ञान होने के कारण उस तोते को खरीद लिया। उसे खरीद कर वह साथियो मे आ मिला और चित्तौर के रास्ते मे आ मिला।

टिप्पणी—(१) **चिरिहारु**—चटक हर=व्याध।

(२) **मया**—दया।

(३) **खाधुक**—भोजन।

इस अवतरण पर बौद्धो की अहिंसा और उनके दुखवाद का प्रभाव है।

दुख के सम्बन्ध मे बौद्ध ग्रन्थो मे लिखा है—"दुःख प्रथम आर्य सत्य है। जन्म भी दुख है, वृद्धावस्था भी दुख है। मरण भी दुख है इत्यादि।"

अहिंसा बौद्धो के पचशील का रत्न है। इनका आचरण न करने वाला मनुष्य अपनी ही जड खोदता है।

इस अवतरण मे सम्यक् आजीव नाम बौद्ध नीति तत्व का प्रभाव दिखाई पडता है। सम्यक आजीव का अर्थ होता है उचित ढग से आजीविकोपार्जन करना। भगवान बुद्ध ने पाँच जीविकोपार्जन के ढग व्यर्थ ठहराये है। उनमे एक माँस का व्यापार करना

और दूसरा प्राणियो का व्यापार करना है। ब्राह्मणो ने अपने उपदेश मे इन पर कटाक्ष करके इन्हे अनाचरणीय वताया है। ब्राह्मण के मुख से वौद्ध नीति की वातों का विज्ञापन करा कर यह व्यञ्जित किया है कि जायसी के युग मे वौद्ध धर्म का प्रभाव ब्राह्मण धर्म पर भी पड़ने लगा था।

तव लगि चित्रसेन सर साजा। रतनसेन चितउर भा राजा ॥
आइ वात तेहि आगे चली। राजा वनिज आए सिघली ॥
है गजमोति भरी सव सीपी। और वस्तु वहु सिघल दीपी ॥
वाम्हन एक सुआ लेइ आवा। कंचन वरन अनूप सोहावा ॥
राते स्याम कंठ दुइ काँठा। राते डहन लिखा सव पाठा ॥
औ दुइ नयन सुहावन राता। रति ठोर अमी रस वाता ॥
मस्तक टीका काँध जनेऊ। कवि वियास पंडित सहदेऊ ॥
वोल अरथ सो वोलै सुनत सीस सव डोल ॥
राज मंदिर महँ चाहिय अस वह सुआ अमोल ॥ ६ ॥

[इस अवतरण मे कवि ने राजा रतनसेन के हाथ तोते को खरीदे जाने का वृत्तान्त लिखा है।]

कवि कहता है—इसी वीच मे राजा चित्रसेन शिवलोक चला गया और रतनसेन राजा हुआ। किसी ने तोते की चर्चा उसके आगे भी की और कहा—'हे राजन ! सिहल-द्वीप से वनिज आया है। उस पर गज-मोतियो से भरी अनेक सीपियाँ है तथा और भी अनेक सिहली वस्तुएँ है। कोई ब्राह्मण वहाँ से तोता ले आया है जो सुनहले रंग का अनुपम सुन्दर है। उसकी गर्दन मे लाल और काले दो कण्ठे है। उसके पख पाठो की सुर्खियाँ लिखने से लाल पड़ गये है। उसके दोनो नेत्र वड़े सुहावने है। उसकी चोच लाल है। उसकी वातो मे अमृत रस भरा है। उसके मस्तक पर टीका और कन्धे पर जनेऊ है। वह व्यास जैसा कवि और सहदेव जैसा विद्वान है।

वह अर्थ-गर्भित वाणी वोलता है। उसको सुन कर उसके चमत्कार पर मुग्ध होकर सिर हिलाना पडता है। वह तोता इतना अमूल्य है कि राजमन्दिर के योग्य है।

टिप्पणी—(१) वनिज—वाणिज्य का सामान।

सिव साजा—यहाँ उपादान लक्षणा है। सिव का अर्थ है शिवलोक। सिव साजा का अर्थान्तिर संक्रमित वाच्य ध्वनि से अर्थ है स्वर्गगामी हुये।

राते उहन लिखे सव पाठा—तोते के लाल पंखो पर सव पाठ लिखे थे। यहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा व्यंग्य है। इस हेतूत्प्रेक्षा से तोते के पाण्डित्य की व्यञ्जना की गई है। यहाँ व्यंग्य सम्भवा आर्थी व्यञ्जना है।

वोल अरथ सो वोले····इत्यादि—इन पक्तियो में कवि ने कविता के आदर्श की व्यञ्जना की है। जायसी के अनुसार अर्थ वैचित्र्य प्रधान उम अभिव्यक्ति को

कहते है जिसे सद्वाणी कहा जायगा। जिसे सुनते ही लोग उसके चमत्कार से चमत्कृत हो सिर हिलाने लगे। ऐसा ही अर्थ वैचित्र्य और अर्थ गौरव जायसी की वाणी मे है।

भै रजाइ जन दस दौराए। ब्राम्हन सुआ वेगि लेइ आए॥
विप्र असीस विनति औधारा। सुआ जीउ नहि करौ निवारा॥
पै यह पेट महा विसवासी। जेइ सव नाव तपा सन्यासी॥
आसन सेज जहाँ किछु नाही। भुइँ परि रहै लाइ जिउ वाही॥
आँधर रहै जो देख न नैना। गूँग रहै मुख आव न वैना॥
वहिर रहै जो स्रवन न सुना। पै यह पेट न रह निरगुना॥
कै कै फेरा निति यह दोखी। वारहि वार फिरै, न सतोखी॥
सो मोहि लेइ मगावै लावै भूख पियास।
जौ न होत अस वैरी केहु न केहु कै आस॥ ७॥

[राजा की आज्ञा पाकर राजभृत्य दौड़े और ब्राह्मण और तोते को ले आये। ब्राह्मण ने पेट के लिये तोते को बेच दिया। इसी प्रसग का वर्णन प्रस्तुत अवतरण मे किया गया है।]

राजा की आज्ञा होते ही राजभृत्य दौड़ाये गये। वे ब्राह्मण और तोते को तुरन्त ही ले आये। ब्राह्मण ने आशीर्वाद देकर प्रार्थना की कि तोता मेरा प्राण है, उसे मै अलग नही करना चाहता। यह पेट बड़ा विश्वासघाती है, इसने तपस्वी और सन्यासी झुका दिये, जिसके पास शैया और स्त्री नही होती वह हाथ का तकिया लगा कर काम चला लेता है। यदि नेत्रो से नही दीखता तो भी काम चला लेता है। मुंह से वाणी न निकलने पर मनुष्य गूँगा रह कर भी काम चला सकता है। कानो से न सुनाई पड़े तो बहरा भी रह सकता है, किन्तु यह एक निरगुन पेट ही नही मानता है, इसको भरे विना काम नही चलता। न मालूम कितनी वार यह पाप कर चुका है। यह इतना निर्लज्ज है कि वार-वार भटकता है किन्तु सन्तोष नही प्राप्त करता।

यह पेट ही मुझे भीख मँगवाता है और भूख-प्यास लगवाता है। यदि यह पेट ऐसा वैरी नही होता तो कोई क्या किसी के आश्रम मे रहता।

टिप्पणी—(१) विसवासी—विश्वासघाती।

(२) दोहा—यहाँ पर कवि ने सूक्ति कही है।

सुआ असीस दीन्ह वड़ साजू। वड़ परताप अखडित राजू॥
भागवत विधि वड़ औतारा। जहाँ भाग तहाँ रूप जोहारा॥
कोइ केहु पास आस कै गौना। जो निराश डिढ आसन मौना॥
कोई विन पूँछे वैन जो वोला। होइ वोल माटी के मोला॥

पढ़ि गुन जानि वेद मति भेऊ। पूँछे वात कहे सहदेऊ ॥
गुनी न कोउ आपु सराहा। जो विकाइ गुन कहा सो चाहा ॥
जौ लगि गुन परगट नहि होई। तौ लहि मरम न जानै कोई ॥
चतुरवेद हो पडित, हीरामन मोहि नावँ।
पदमावति सौ मेरवौ। सेव करौ तेहि ठावँ ॥ ८ ॥

[इस अवतरण में कवि ने तोते से राजा को आर्शीवाद दिलाया है।]

तोते ने आर्शीवाद दिया है—राजन तुम्हारा साम्राज्य अखण्डित, समृद्ध और विशाल हो। भगवान ने तुम्हे वड़ा भाग्यवान वनाया है। जहाँ भाग्य होता है वहाँ रूप भी होता है। कोई किसी के पास कुछ आशा लेकर ही जाता है। जिसे किसी दूसरे से कोई कामना नही होती वह दृढ़ता से अपने आसन पर वैठा रहता है। कोई यदि वगैर प्रश्न के वोलने लगता है तो वोल मिट्टी के समान मूल्य-रहित हो जाते है। सहदेव पडित का कहना है कि पढ कर (मन मे), गुन कर और वेद के मत का रहस्य जान कर प्रश्न करना चाहिये। कोई गुणी अपने आप अपनी सराहना नही करता। किन्तु यदि वह हाट मे विकने खडा होता है तो फिर उसे अपना विज्ञापन करना ही पड़ता है। जव तक गुण प्रगट नही होता तव तक कोई रहस्य को नही जान पाता। इसीलिये मैं अपने गुण कहता हूँ :

मैं चार वेदो का पडित हूँ। हीरामन मेरा नाम है। मै पद्मावती से तुम्हारी भेट कराऊँगा। मैं उसकी सेवा मे ही रहता था।

टिप्पणी—जहाँ भाग तहाँ रूप जुहारा—यह उक्ति सामुद्रिक शास्त्र की है। सामुद्रिक शास्त्र का कहना है कि जहाँ रूप होता है वहाँ सौभाग्य भी होता है। कुछ लोग कहते है कि जहाँ रूप होता है वहाँ गुण भी होता है। यत्राकृति तत्र गुणा. वसन्ति —कालीदास ने भी इसी तथ्य का समर्थन करते हुये कुमार सम्भव मे लिखा है :

यदुच्यते पार्वति ताप वृत्तये
न रूपमव्य भिचारि तद्वचः।

सहदेऊ—यह सम्भवत जायसी के समय के कोई परम प्रसिद्ध पडित थे। कुछ लोग अर्जुन के भाई सहदेव से कवि का अभिप्राय वताते है।

चतुरवेद हों पंडित—चार वेदो के नाम है ऋग्वेद, यर्जुवेद, सामवेद और अर्थवेद।

विशेष—इस अवतरण मे सूक्तियो की भरमार है। प्रमुख सूक्तियाँ निम्न-लिखित है :—

(१) भागवत विधि वड़ औतारा। जहाँ भाग तहाँ रूप जुहारा ॥
(२) गुनी न फोउ आपु सहारा।
जो विकाय गुन कहा सो चाहा ॥

रतनसेन हीरामन चीन्हा। एक लाख वाम्हन कहँ दीन्हा ॥
विप्र असीस जो कीन्ह पयाना। सुआ सो राजमंदिर महँ आना ॥
वरनौ काह सुआ कै भाखा। धनि सो नावँ हीरामन राखा ॥
जो वोलै राजा मुख जोवा। जानो मोतिन हार परोवा ॥
जो बोलै तो मानिक मूँगा। नाहि त मौन वाँध रह गूँगा ॥
मनहु मारि मुख अमृत मेला। गुरु होइ आप कीन्ह जग चेला ॥
सुरज चाँद कै कथा जो कहेऊ। प्रेम क कहनि लाइ चित गहेऊ ॥
जो जो सुनै धुनै सिर, राजहि प्रीति अगाहु।
अस गुनवंता नाहि भल, वाउर करिहै काहु ॥ ६ ॥

[इस अवतरण मे राजा द्वारा हीरामन के क्रय की वात कही गई है।]

रतनसेन ने हीरामन को पहिचान लिया। उन्होने ब्राह्मण को एक लाख रुपया दिया। ब्राह्मण ज्यो ही आर्शीवाद देकर घर को गया त्यो ही तोता राजमहल मे ले जाया गया। तोते की वाणी का क्या वर्णन करूँ, उसका हीरामन नाम ही धन्य है। जब वह बोलता था तो ऐसा लगता था जैसे मोतियो का हार पिरोया जा रहा हो। राजा मुख जोहता रह जाता था। जो बोलता था वह माणिक्य या मूँगा होता था, नही तो मौन ही रहता था। उसकी वाणी ऐसी प्रभावोत्पादक थी मानो कि निश्चेष्ट (मुख मे अमृत डाल कर) सजीव और चेतन हो उठा हो। वह स्वय गुरु था और सारे ससार को चेला वना रक्खा था। वह सूर्य से चन्द्र की कथा वडे प्रेमपूर्वक कहता था जिससे हृदय उस पर मुग्ध होता जाता था। जो भी उस तोते की वाणी सुनता था वह सिर धुनता था कि इसने राजा को अपने वश मे कर रक्खा है। ऐसे गुणी को राजा के पास रखना ठीक नही।

टिप्पणी—हीरामणि—इस शब्द मे शब्द शक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है। हीरा कहते है वज्र को और मणि का अर्थ है विन्दु। हीरामणि वज्र यानी सिद्ध को भी कहते है। कवि की व्यजना है कि राजा ने अपने गुरु रूप मे हीरामन रूपी सिद्ध योगी को पहिचान लिया। जो बोले तो मानिक मूँगा—जो वाणी वह बोलता था वह माणिक और मूँगे के समान मूल्यवान होता था। यह अर्थ लक्षण लक्षणा से लिया गया है। वोलो की अतिशय उपयोगिता ही यहाँ व्यग्य है। अत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि भी मानी जायगी।

सूरज चाँद कै कथा जो कहेऊ—यहाँ पर सूरज-चाँद मे शब्द शक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है। सूरज और चाँद शब्दो से सूर्य-चन्द्र साधना व्यंग्य है। कवि यह व्यञ्जित करना चाहता है कि उस तोते रूप सिद्ध गुरु ने सूर्य-चन्द्र की साधना का उपदेश प्रेम का पुट देकर किया है।

नागमती सुआ संवाद खण्ड

दिन दस पाँच तहाँ जो भए। राजा कतहुँ अहेरै गए॥
नागमती रूपवंती रानी। सब रनिवास पाट परिधानी॥
कै सिगार कर दरपन लीन्हा। दरसन देखि गरव जिउ कीन्हा॥
बोलहु सुआ पियारे नाहाँ। मोरे रूप कोइ जग माँहा॥
हँसत सुआ पहँ आइ सो नारी। दीन्ह कसौटी ओपनिवारी॥
सुआ वानि कसि कहु कस सोना। सिघल दीप तोर कस लोना॥
कौन रूप तोरी रूपमनी। दहुँ हौ लोनि, कि वे पदमनी॥
जो न कहसि सत सुअटा तोहि राजा कै आन।
है कोइ एहि जगत मँह मोरे रूप समान॥ १॥

[इस अवतरण मे हीरामन और नागमती का सवाद दिया गया है।]

कवि कहता है कि तोते को राजमहल मे जब दस-पाँच दिन हो गये तो एक दिन राज मृगया को गये। नागमती रूपवती रानी थी। वह सम्पूर्ण रानियो मे पट-रानी थी और प्रधान थी। उसने श्रृंगार करके हाथ मे दर्पण लिया। अपने रूप की झाँकी देख कर वह गर्व से फूल गई और तोते से पूछने लगी—हे पति के प्यारे तोते! बोल क्या मेरी जैसी रूपवती भी इस ससार मे कोई है। वह अभिमान से हँसती हुई तोते के पास आई और कसौटी तथा कसी जाने वाली बन्नी रख कर बोली—ऐ तोते! बन्नी को कस कर बता कि कैसा सोना है। तुम्हारा सिहलद्वीप कैसा सुन्दर है। तेरी रूपमणी जिसके यहाँ तू सेवा करता था कैसी है। यह बता कि मै सुन्दर हूँ कि वह तेरी पद्मिनी नारियाँ सुन्दर है।

टिप्पणी—सो नारी—वह अभिमाननी स्त्री यहाँ सवृति वक्रता है। सो नारी—यहाँ शब्द शक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि रूप एक अन्य व्यञ्जना है। वह यह है कि वह नागमती सुनारिन थी अत वह वर्ण को ही महत्व देती थी। अत उसने तोते के आगे कसौटी और बन्नी रख दी इत्यादि।

बोलहु सुआ पियारे नाहाँ—डा० अग्रवाल ने इसका पाठ इस प्रकार दिया है :
भलेहि सो और पिआरी नाहाँ

दीन्ह कसौटी ओप निवारी—इसका पाठान्तर है ।

दीन्ह कसौटी औ बनवारी—जब बनवारी अर्थ होता है तो सोने का पत्र जो बारह बानी बनाने के लिए शुद्ध किया जाता है । जायसी की व्यञ्जना है कि नागमती रूप सुनारी ने तोते रूप जौहरी के आगे कसौटी और शुद्ध सोने की बनवारी रक्खी और बोली कि उसका मूल्याङ्कन करो । सिंहल दीप तोर कस लोना—यहाँ सिंहल दीप मे उपादान लक्षणा है ।

सुमिरि रूप पदमावति केरा । हँसा सुआ, रानी मुख हेरा ।।
जेहि सर महँ हँस न आवा । बगुला तेहि सर हँस कहावा ।।
दई कीन्ह अस जगत अनूपा । एक एक ते आगरि रूपा ।।
कै मन गरब न छाजा काहू । चाँद घटा औ लागेउ राहू ।।
लोनि बिलोनि तहाँ को कहै । लोनी सोई कत जेहि चहै ।।
का पूछहु सिघल कै नारी । दिनहि न पूजै निसि अँधियारी ।।
पुहुप सुवास सो तिन्ह कै काया । जहाँ माथ का बरनौ पाया ।।
　　गढी सो सोने सोधै, भरी सो रूपै भाग ।
　　सुनत रूखि भइ रानी, हिये लोन अस लाग ।। २ ।।

[तोते ने नागमती को जो उत्तर दिया उसी को प्रस्तुत अवतरण मे कवि ने प्रस्तुत किया है ।]

तोता पद्मावती के रूप को स्मरण कर हँसा और रानी के मुख की ओर देखने लगा तथा बोला कि जिस सरोवर मे हस नही आता वहाँ बगुला ही हस कहलाता है। परमात्मा ने ऐसा अनुपम ससार रचा है कि इसमे एक से एक अधिक सुन्दर है। मन मे अभिमान करना किसी को भी नही छजा। चाँद को अपने पूर्णिमा के रूप का अभिमान हुआ तो वह क्षीण स्वभाव वाला हो गया और उसे राहु पकडने लगा । वहाँ किसे सुन्दर और किसे असुन्दर कहा जाय । वास्तव मे सुन्दर वही है जो जिसे पति चाहता हो । हे रानी ! सिंहलद्वीप की नारियो के विषय मे क्या पूछती हो । कही रात्रि की कालिमा दिन की समता कर सकती है । उनका शरीर पुष्प की सुरभि के सदृश होता है । जिसने मस्तक को देखा है वह चरणो के रूप का वर्णन क्या करे । व्यञ्जना है कि जिसने पद्मावती का अनुपम रूप देखा है वह नागमती के रूप का वर्णन करे ।

वे नारियाँ सुगन्धित सोने की बनी है और रूप के सौभाग्य से परिपूर्ण है । रानी यह शब्द सुनकर रुष्ट हो गई । उसके मर्म पर नमक सा लग गया ।

टिप्पणी—हँसा सुआ रानी मुख हेरा—रानी की कुरूपता यहाँ व्यग्य है । यहाँ पर स्वत. सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यग्य है ।

जेहि सर महँ हँस न आवा, बगुला तेहि सर हँस कहावा—यहाँ स्वत. सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यग्य है। व्यग्य वस्तु है कि जिस स्थल पर श्रेष्ठ व्यक्ति नही होते वहाँ साधारण व्यक्ति की ही पूजा होने लगती है।

चाँद घटा औ लागेउ राहू—यहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा अलङ्कार व्यग्य है।

दिनहिं न पूजै निसि अँधियारी—यहाँ पर प्रकरण वैशिष्ट्य वस्तु व्यग्य है। व्यग्यार्थ है कि रात्रि जैसी कुरूपा नागमती दिन जैसी सुन्दरी पद्मावती की समता नही कर सकती। यहाँ पर पद्मावती का रूपातिशय्य और नागमती का कुरूपातिशय्य भी व्यग्य है। अतः यहाँ पर व्यग्य सम्भवा आर्थी व्यञ्जना है। यहाँ रात्रि का अर्थ नागमती और दिन का अर्थ पद्मावती प्रत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से लिया गया है।

जहाँ माथ का बरनौ पाया—यहाँ पदगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। माथ पाया के लक्ष्यार्थ क्रमश श्लाघनीय सौदर्य और हेय सौदर्य है। कवि का अभिप्राय है कि जिसने पद्मावती का अतुलनीय सौन्दर्य देखा है वह नागमती का हेय सौन्दर्य का वर्णन करना पसन्द नही कर सकता। यहाँ पर क्रमश सौन्दर्य की अतिशयता और हेयता ही व्यग्य है।

गढ़ी सो सोने सोंधै—वाच्यार्थ है वह सुगन्धित सोने की वनी हुई। यह अर्थ वाधित हो गया और लक्षण लक्षणा से अर्थ हुआ कि वह सोने के समान वर्ण वाली थी और उसके शरीर से सुरभि आती थी।

जौ यह सुआ मँदिर महँ अहई। कवहुँ बात राजा सौ कहई॥
सुनि राजा पुनि होइ बियोगी। छाँड़ै राज, चलै होइ जोगी॥
बिख राखिय नहि, होइ अँकूरू। सबद न देइ भोर तम चूरू॥
धाय दामिनी बेगि हँकारी। ओहि सौपा हीये रिस मारी॥
देखु, सुआ यह है मँद चाला। भएउ न ताकर जाकर पाला॥
मुख कह आन, पेट बस आना। तेहि औगुन दस हाट बिकाना॥
पखि न राखिय होइ कुभाखी। लेइ तहँ मारू जहाँ नही साखी॥
जेहि दिन कहँ मै डरति हौ, रैनि छपावौ सूर।
लै चह दीन्ह कवँल कहँ, मोकहँ होइ मयूर॥ ३॥

[इस अवतरण मे कवि रानी की उस दुर्भावना का चित्रण किया है जिससे प्रेरित होकर वह तोते को मरवा डालना चाहती है।]

रानी मन्दिर मे सोचती है कि यदि यह तोता मन्दिर मे रहेगा तो कभी न कभी सब बात राजा से कह देगा। पद्मावती के सौन्दर्य का वृत्तान्त सुन कर राजा वियोगी हो जायगा। वह राज्य छोड़ कर योगी होकर चला जायगा। विष का वीज रखने से वह कभी भी अकुरित हो सकता है। यह तोता रूपी मुर्गा कही पद्मावती रूपी प्रभात की सूचना न दे दे। उसने शीघ्र ही बिजली के सदृश चचल दासी को

बुलाया। हृदय मे क्रुद्ध होकर उसने उसे सौंप दिया और बोली, 'देखो, तोता दुष्ट बुद्धि का है। यह उसी का सगा नही हुआ जिसका पाला हुआ है। मुख से कुछ कहता है, पेट मे कुछ और ही है। इसी अवगुन से दस हाटो मे बिक चुका है। वह पक्षी जिसकी वाणी अच्छी न हो, उसे रखना नही चाहिये। इसे ले जाकर मार जहाँ कोई साक्षी न मिल सके।'

जिस दिन रूपी पद्मावती से मै डरती हूँ और अपने प्रभाव रूपी रात्रि मे सूर्य रूपी रतनसेन को छिपाती हूँ, यह तोता (उस रतनसेन रूपी) सूर्य को कमल रूपी पद्मावती को दे देना चाहता है और मुझ नागमती के लिये मयूर होना चाहता है।

टिप्पणी—(१) सबद न देइ भोर तम चूरू—यहाँ पर सबद न देइ का अर्थ है सदेश देना, भोर पद्मावती के लिये तथा तम चूर तोते के लिए प्रयुक्त हुये हैं। व्यग्यार्थ है कि कही तोता रूपी तम चूर पद्मावती रूपी भोर का सदेश न दे दे। यहाँ कवि प्रोढोक्ति सिद्ध वस्तु से रूपक अलङ्कार व्यग्य है।

धाय दामिनी—यहाँ दामिनी का अर्थ लक्षण लक्षणा से शीघ्रगामिनी लिया गया है। अत यहाँ अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है।

(२) जेहि दिन ·····सूर—यहाँ रूपकातिशयोक्ति अलङ्कार से वस्तु व्यंग्य है। कवि नागमती की दुर्भावना और पद्मावती की रूपातिशयक व्यञ्जित करना चाहता है। यहाँ यही वस्तु रूप व्यञ्जना है। लै चह दीन्ह कँवल कहँ, मो कहँ होइ मयूर—यहाँ 'कँवल' तथा 'मयूर' मे अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है क्योकि कँवल का अर्थ कमल के समान सुन्दर पद्मावती और मयूर का अर्थ है शत्रु। क्योकि मयूर नाग का शत्रु होता है अत यहाँ वक्तृ वैशिष्ठ्य व्यञ्जना है।

धाय सुआ लेइ मारै गई। समुझि गियान हिए मति भई॥
सुआ सो राजा कर बिसरामी। मारि न जाइ चहै जेहि स्वामी॥
यह पडित खडित बैरागू। दोप ताहि जेहि सूझ न आगू॥
जो तिरिया के काज न जाना। परै धोख, पाछे पछिताना॥
नागमती नागिनि-बुधि ताऊ। सुआ मयूर होइ नही काऊ॥
जो न कत के आयसु माही। कौन भरोस नारि कै वाही॥
मकु यह खोज होइ निसि आए। तुरय-रोग हरि माथे जाए॥
दुइ सो छपाए ना छपै, एक हत्या, एक पाप।
अतहि करहि विनास लेइ, सेइ साखी देहूँ आप॥ ४॥

[इस अवतरण मे कवि ने दासी की चतुरता का वर्णन किया है।]

धाय तोता लेकर मारने गई। ज्ञान के कारण उसके हृदय मे सद्बुद्धि पैदा हुई। उसने सोचा—तोता राजा को विश्राम देने वाला है, उसको मारना कठिन है जिसे स्वामी चाहता है। यह तोता पूर्व जन्म मे वैराग्य खण्डित हुआ। कोई पण्डित है। दोप

उसका है जिसे आगे नही दिखाई पड़ता है। जो स्त्रियो के करतव नही समझता वह धोखा उठाता है। नागमती की बुद्धि नागिनी के समान विप भरी है। तोता कभी किसी के लिए मयूर नही होता है। जो स्त्री पति की आज्ञा मे नही रहती तो पति फिर उस पर कैसे भरोसा कर सकता है। रात्रि होने पर यदि तोते की खोज की गई तब घोडे का रोग वन्दर के माथे मढ दिया जायगा।

दो बाते छिपाये नही छिपती—एक हत्या और दूसरे पाप। अन्त मे जाकर ये दोनो अपनी साक्षी स्वयं तैयार कर लेते है और विनाश कर देते है।

टिप्पणी—(१) मयूर—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से शत्रु अर्थ लिया गया है।

(२) **तुरय-रोग हरि माथे जाए**—कहते है कि घोडे की बीमारी वन्दर के सिर पड जाती है। इसीलिए घुडसाल मे वन्दर रखने की प्रथा है।

इस अवतरण मे कई वड़ी सुन्दर सूक्तियाँ या नीतिपरक उक्तियाँ आई है .—

(१) **मारि न जाइ चहै जेहि स्वामी।**

(२) **जो तिरिया के काज न जाना।**
परै धोख, पाछे पछिताना॥

(३) **जो न कंत के आयसु माहीं।**
कौन भरोस नारि कै वाहीं॥

राखा सुआ, धाय मति साजा। भएउ खोज निसि आएउ राजा॥
रानी उतर मान सौ दीन्हा। पडित सुआ मजारी लीन्हा॥
मैं पूछा सिघल पदमिनी। उतर दीन्ह तुम्ह को नागिनी॥
वह जस दिन, तुम निसि अँधियारी। कहाँ बसत, करील की वारी॥
का तोर पुरुष रैनि कर राऊ। उलू न जान दिवस कर भाऊ॥
का वह पखि कूट मुँह कूटे। अस वड बोल जीभ मुख छोटे॥
जहर चुवै जो जो कह बाता। अस हतियार लिए मुख राता॥
माथे नहि बैसारिय जौ सुठि सुआ सलोन।
कान टुटै जेहि पहिरे का लेइ करव सो सोन॥ ५॥

[इस अवतरण मे राजा के द्वारा तोते की खोज की बात कही गई है।]

धाय ने अपनी वुद्धि सँभाल कर तोते को रख लिया। रात मे जब राजा आये तो तोते की खोज होने लगी। रानी ने वडे मान के साथ उत्तर दिया—पण्डित तोते को विल्ली खा गई। मैने सिंहल द्वीप की पद्मिनी के विपय मे पूछा तो उसने उत्तर दिया—तुम नागिनी कौन हो जो उनके विपय मे पूछती हो। वह दिन के समान सुन्दर है

और तुम रात्रि के समान काली हो। कहाँ वसन्त और कहाँ करील की झाड़ी। तेरा पुरुष तो रात्रि का राजा है, उल्लू दिन का सौन्दर्य क्या समझे ? उस पक्षी का क्या करना था ? उसके मुँह मे विष भरा हुआ था। वह छोटे मुँह बडी वात कहता था। जब वह वात करता था तो ऐसा लगता था मानो जहर चू रहा हो। ऐसा हत्यारा था कि लाल मुख लिये फिरता था। चाहे तोता सुन्दर भी हो किन्तु उसे सिर पर नही बैठाना चाहिये। जिस सोने के पहनने से कान फट जाय उस सोने के पहनने से क्या लाभ है ?

टिप्पणी—(१) **वह जस दिन, तुम निसि अँधियारी**—यहाँ पर उपमा अलङ्कार से पद्मावती के सौन्दर्य की अतिशयता और नागमती के रूप की कुरूपता व्यजित की गई है। अत यहाँ पर कवि निवद्ध पात्र की प्रौढोक्ति सिद्ध अलङ्कार से वस्तु व्यग्य है।

(२) **कहाँ वसन्त, करील की वारी**— यहाँ पर काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यग्य है। वसन्त के सामने करील की झाडी का कोई महत्व नही होता विषम अलकार है।

(३) **रैनि कर राऊ**—कोई पुरुष रात्रि का राजा नही हो सकता। अत यहाँ पर लक्षण लक्षणा से अर्थ किया गया है कि रात्रि के सदृश असुन्दर नागमती का पति है। रैनि का अर्थ असुन्दर नागमती है। यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है।

का तोर पुरुष रैनि कर राऊ, उलू न जान दिवस कर भाऊ—यहाँ दृष्टान्त अलङ्कार है।

चाँद जैस धनि उजियारि अही। भा पिउ-रोस, गहन अस गही ॥
परम सोहाग निवाहि न पारी। भा दोहाग सेवा जव हारी ॥
एतनिक दोस विरचि पिउ रूठा। जो पिउ आपन कहै सो झूठ. ॥
ऐसे गरव न भूलै कोई। जहि उर वहुत पियारी सोई ॥
रानी आइ धाय के पासा। सुआ मुआ सेवँर कै आसा ॥
परा प्रीति-कचन महँ सीसा। विहरि न मिलै, स्याम पै दीसा ॥
कहाँ सोनार पास जेहि जाऊँ। देइ सोहाग करै एक ठाऊँ ॥
मै पिउ-प्रीति भरोसे गरव कीन्ह जिउ माहँ।
तेहि रिस हौ परहेली, रूसेउ नागर नाहँ ॥ ६ ॥

[इस अवतरण मे कवि ने पति के क्रुद्ध होने पर नागमती की मानसिक दशा का चित्रण किया है।]

जो नागमती चाँद की तरह शोभायमान थी वह पति के क्रुद्ध होने पर ऐसी म्लान हो गई मानो ग्रहण लग गया हो। वह परम सौभाग्यशालिनी थी किन्तु वह उसे निभा न सकी। पति की सेवा मे चूक होने पर वह सौभाग्य दुर्भाग्य मे परिणत हो गया। यदि इतना-सा अपराध करने से प्रिय रूठ जाता है तो पति को

सदैव अपने अनुकूल समझना सर्वथा झूठ है। अत. किसी स्त्री को मेरे जैसे गर्व में भूलना नही चाहिये। जिस स्त्री को जितना पति का डर रहता है वह अपने पति की उतनी ही प्यारी होती है। रानी धाय के पास आई और वोली—मेरी दशा उस तोते जैसी हो गई है जो फल की कामना से सेमल के भुए मे चोच मार-मार कर करता है। (व्यञ्जना है कि मैं मिथ्या फल की कामना मे मारी गई।) मेरे प्रेम रूपी सोने मे सीसा रूपी कपट गिर गया है। अव उसका कण-कण विखर गया है। उसमे कालिमा आ गई है। अर्थात् उसमे भेद पड गया है। ऐसी वह सुनार रूपी स्त्री कहाँ है जो सुहागा रूपी सौभाग्य की पुनर्प्राप्ति के हेतु प्रीति रूपी सोने को जोड़ कर एक कर दे।

टिप्पणी—(१) चाँद जैस धनि उजियारि अही····गही—यहाँ उपमा अलङ्कार से सौन्दर्य की अतिशयता व्यंग्य है।

व्यग्यार्थ है कि मैने प्रियतम के प्रेम के भरोसे गर्व किया था, किन्तु अव मुझे उसी के क्रोध का शिकार वनना पड़ा है क्योंकि चतुर पति रूठ गया है। अत यहाँ कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अलङ्कार से वस्तु व्यंग्य है।

एतनिक—यहाँ पर सवृत्ति वक्रता है। कवि का अभिप्राय छोटे से दोप से है।

ऐसे गरब—यहाँ पर सवृत्ति वक्रता है।

सुआ मुआ सेवँर कै आसा—यह लोकोक्ति है। इसका व्यंग्यार्थ है कि मैं भ्रान्ति मे ही मारी गई जैसा कि तोता फल की भ्रान्ति मे सेमल के भूए के लोभ मे मारा जाता है। यहाँ उपमा अन्योक्ति अलङ्कार व्यग्य है।

परा प्रीति-कंचन महँ सीसा—यहाँ पर रूपक और रूपकातिशयोक्ति से वस्तु व्यंग्य है। कवि का व्यग्यार्थ है कि प्रेम मे कपट आ जाने से वह छिन्न-भिन्न हो जाता है। उसकी अनुराग अरुणिमा कलक की कालिमा मे वदल जाती है। इस प्रकार यहाँ कवि प्रौढोक्ति सिद्ध अलङ्कार से वस्तु व्यंग्य है।

सोनार और सोहाग—यहाँ पर स्त्री और सौभाग्य इन दोनो अर्थो की व्यंजना शब्द शक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि से हुई है।

पाठ भेद—दोहे मे पाठ भेद है। शुक्ल जी मे रूसेउ नागर नाइ के पाठ है तथा इसके स्थान पर डा० अग्रवाल में निम्नलिखित है —

'निगड रोस किअ नाइ'

उतर धाय तव दीन्ह रिसाई। रिस आपुहि, वुधि औरहि खाई॥
मैं जो कहा रिस जिनि करु वाला। को न गएउ एहि रिस करधाला॥
तू रिस भरी न देखेसि आगू। रिस महँ काकर भएउ सोहागू॥
जेहि रिस तेहि रस जोगै न जाई। विनु रस हरदि होइ पियराई॥
विरसि विरोध रिसहि पै होई। रिस मारै, तेहि मार न कोई॥
जेहि रिस कै मरिए, रस जीजै। सो रस तजि रिस कवहुँ न कीजै॥

कत-सोहाग कि पाइय साधा। पावै सोइ जो ओहि चित बाँधा ॥
रहै जो पिय के आयुरा औ बरतै होइ हीन।
सोह चाँद अस निरमल, जनम न होइ मलीन ॥ ७ ॥

[इस अवतरण मे कवि ने धाय प्रत्युत्तर प्रस्तुत किया है।]

धाय ने क्रुद्ध होकर उत्तर दिया कि क्रोध अपने को और बुद्धि दूसरो को नष्ट कर देती है। मैंने तब कहा था कि हे बाले ! क्रोध मत कर। इस क्रोध के दुष्परिणाम किसे नही भुगतने पडे है। तैंने क्रोध मे भविष्य पर विचार नही किया। क्रोध मे किसको सौभाग्य प्राप्त हुआ है ? जो क्रोधी होता है उसको रस अर्थात् सुख नही मिलता। रसहीन हो जाने पर हरी हल्दी पीली हो जाती है। क्रोध मे ही कटु विरोध उत्पन्न होता है। अतः सरसता या सहृदयता का परित्याग कर कभी क्रोध नही करना चाहिए। जो क्रोध को मार देता है उसे कोई नही सताता। अत. उस रिस को मार कर सरसता या सहृदयता को सचित रखना चाहिये। यदि सरसता नही है तो क्या कोई पति के सौभाग्य को साधनो से प्राप्त कर सकती है ? वह तो उसी को प्राप्त होता है जो उसमे अपना मन लगाती है।

जो पति की आज्ञा मे रहती है और तुच्छ बन कर उसकी सेवा मे रत रहती है वह चाँद की तरह निर्मल है। उसका जन्म मलिन नही होता।

टिप्पणी—(१) रिस महँ काकर भएऊ सोहागू—(1) कवि का अभिप्राय है कि क्रोध से किसी को भी सौभाग्य नही प्राप्त होता है। यहाँ काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यग्य है।

(ii) **बिनु रस हरदि होइ पियराई**—रस भरी हल्दी लाल और हरी होती है। किन्तु सूखने पर वह पीली हो जाती है। कवि की व्यञ्जना है, स्त्री भी जब प्रीति रस से सरस रहती है तब वह सुन्दर रहती है किन्तु प्रीति के सूख जाने पर वह सूख कर पीली पड जाती है। यहाँ पर स्वत सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यग्य है।

कत-सोहाग कि पाइय साधा इत्यादि—यहाँ पर सीधा सादा वाच्यार्थ है कि कोई बाह्य साधनो के सहारे प्रियतम से सुहाग नही स्थापित कर सकता है। वह तो चित्त के तादात्म्य से प्राप्त होता है। व्यग्यार्थ है कि सुनार रूपी सोना कचन रूपी कंत को सुहाग रूपी बाह्य प्रदर्शन से नही पा सकती, वह तो तभी प्राप्त होता है जब सुहाग रूपी बाह्याडम्बरो को चित्त रूपी एक सूत्र से पति के रूप कचन मे आत्मसात कर देती है।

यहाँ पर शब्द शक्ति उद्भव अलङ्कार ध्वनि है। रूपक अलङ्कार व्यग्य है।

जुआ-हारि समुझी मन रानी। सुआ दीन्ह राजा कहँ आनी ॥
मानु पीय ! हौं गरब न कीन्हा। कत तुम्हार मरम मै लीन्हा ॥
सेवा करै जो बारही मासा। एतनिक औगुन करहु बिनासा ॥
जौ तुम्ह देइ नाइ कै गीवा। छाँड़हुँ नही बिनु मारे जीवा ॥

मिलतहु महँ जनु अहौ निनारे। तुम्ह सौ अहै अँदेस, पियारे ॥
मै जानेउँ तुम्ह मोही माहाँ। देखौ ताकि तौ हौ सब पाहाँ ॥
का रानी, का चेरी कोई। जा कहँ मया करहु भल सोई ॥
तुम्ह सौं कोइ न जीता, हारे वररुचि भोज।
पहिलै आपु जो खोवै करै तुम्हार सो खोज ॥ ८ ॥

[इस अवतरण मे कवि ने रानी की नैराश्यपूर्ण मानसिक स्थिति का वर्णन किया है।]

रानी समझ गई कि वह राजा के हाथो परास्त हो गई है। अत उसने तोता रूपी बाज को राजा को सौंप दिया और बोली हे—प्रियतम ! सच समझो, मैने आपसे गर्व नही किया था। मैं तो तुम्हारे हृदय की बात जानना चाहती थी। जो बारहो मास आपकी सेवा मे रहती है उसको आप इतने से छोटे अपराध पर नष्ट कर देना चाहते थे। क्या यदि कोई विनम्रतापूर्वक गर्दन झुका ले तो क्या उसकी गर्दन काट उसे बिना मारे नही छोडोगे। हे प्रियतम ! तुम मिले हुए होने पर भी अलग रहते हो। अत तुमसे डर ही है। (न मालूम किस समय रुष्ट होकर प्राण दण्ड दे बैठो।) मैं तो समझती थी कि तुम मेरे ही भीतर हो अर्थात् केवल तुम मेरे ही हो, किन्तु जब देखती हूँ तो सब ओर दिखाई पडते हो। चाहे कोई रानी हो, चाहे चेरी हो जिस पर तुम्हारी कृपा हो जाय उसी का भला हो जाय।

तुमसे कोई नही जीता। वर रुचि जैसे पण्डित और भोज जैसे राजा भी तुमसे पार नही पाते। तुम्हे तो वही पा सकता है जो अपने को अर्पण कर दे और तुम्हारी खोज करे।

टिप्पणी—(१) जुआ हारि समुझी मन रानी—रानी ने राजा से तोते की बाजी रक्खी है। उसको बिना दाँव आये ही ले भागी किन्तु रानी पराजित हुई। विजय राजा की हुई। तब बेचारी को तोता राजा को सौंपना पड़ा।

(२) जौ तुम्ह देइ ······जीवा—रानी राजा की क्रूरता और अपना भोलापन और सरलता व्यञ्जित करना चाहती है। वह कहती है—हे राजन ! तुम इतने कठोर और निर्मम हो कि मेरी जैसी सरल और भोली पत्नी को प्राण दण्ड देने पर तैयार हो गये। यहाँ पर बोद्धव्य वैशिष्य व्यञ्जना है।

अँदेस—डर है। व्यञ्जना है कि तुम्हारा मेरे प्रति सच्चा प्रेम नही है। अत तुमसे डर है कि न मालूम मुझे कब छोड़ दो और किसी अन्य स्त्री के प्रेम जाल मे फँस जाओ। यहाँ पर बौद्धव्य वैशिष्ठय व्यञ्जना है।

मै जानेउँ तुम्ह मोही माहाँ······पाहाँ—यहाँ पर समासोक्ति मूलक आध्यात्मिक व्यञ्जना है। मनुष्य अज्ञान के कारण अपने भगवान को अपने तक ही समझता है, किन्तु जब उसे ज्ञान होता है तब उसे अनुभव होता है कि वह सर्वत्र है।

का रानी······भलसोई—वाच्यार्थ के अतिरिक्त यहाँ एक आध्यात्मिक

व्यञ्जना है। वह है कि परमात्मा किसी के प्रति पक्षपात नहा रखता, वह सब पर समान भाव से कृपा करता है। यहाँ पर परमात्मा की कृपा साध्यता व्यग्य है। अत वाक्य वैशिष्ठ्य मूलक व्यञ्जना है।

वररुचि—कहते है कि यह वहुत बडे ज्योतिपी पण्डित थे। यह चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के नवरत्नो मे से एक थे। कहते है कि एक बार जब राजकुमार मृगया खेलने गये तो वे कई दिन होने पर न लौटे। राजा ने राजकुमार के सम्वन्ध मे चिन्ता प्रगट की तो वररुचि ने उनसे वन मे हुये राजकुमार और भालू के वीच हुये सघर्ष की कथा कही है और वताया है कि वह स्वस्थ है और राजकुमार ने भालू को मार डाला है। वे अव घर आ रहे है। उनकी वाणी सत्य प्रमाणित हुई। व्यञ्जना है कि तुम तो वररुचि से भी अधिक बडे पण्डित निकले। तुम मेरे किये हुये करतब को अपनी वृद्धि से जान गये।

भोज—राजा भोज धारा के वड़े गुणग्राही राजा थे। रानी यह व्यञ्जित करना चाहती है कि तुम्हारी गुण ग्राहकता राजा भोज से भी आगे वढ गई है। यह व्यञ्जना वक्तृवैशिष्ठय मूलक है।

सम्पूर्ण दोहे मे एक आध्यात्मिक व्यञ्जना है। वह यह है कि तुम परमात्मा रूप हो। जिस प्रकार उसे वही प्राप्त कर सकता है जो उसमे पूर्ण समर्पण कर दे। यह व्यञ्जना वाक्य वैशिष्ठ्य मूलक है। यहाँ समासोक्ति भी मान सकते है।

राजा सुआ सम्वाद खण्ड

राजै कहा सत्य कहु सूआ। बिनु सत जस सेंवर कर भूआ ॥
होइ मुख रात सत्य के वाता। जहाँ सत्य तहँ धरम सँधाता ॥
बाँधी सिहिटि अहै सत केरी। लछिमी अहै सत्य कै चेरी ॥
सत्य जहाँ साहस सिधि पावा। औ सतवादी पुरुष कहावा ॥
सत कहँ सती सँवारै सरा। आगि लाइ चहुँ दिसि सत जरा ॥
दुइ जग तरा सत्य जेइ राखा। और पियार दइहि सत भाखा ॥
सो सत छाँडि जो धरम बिनासा। भा मतिहीन धरम करि नासा ॥
तुम्ह सयान औ पंडित, असत न भाखहु काउ।
सत्य कहहु तुम मासौ, दहुँ काकर अनियाउ ॥ १ ॥

[इस अवतरण मे कवि ने राजा के मुख से सत्य की महिमा का वर्णन कराया है।]

राजा कहता है—हे तोते ! तू सत्य कह, बिना सत्य के मनुष्य ऐसा नीरस और निस्सार होता है जिस प्रकार सेमल का भुआ निस्सार होता है। सत्य कहने से मुख जाज्वल्यमान रहता है। जहाँ सत्य होता है वहाँ धर्म का सधान रहता है। सारी सृष्टि सत्य से बँधी हुई है। लक्ष्मी भी सत्य की ही चेरी है। जहाँ सत्य होता है वहाँ साहस या प्रयत्न करने पर सिद्धि प्राप्त होती है। वही पुरुष सत्यवादी कहलाता है। सत्य को सती चिता पर भी सँवारती है। वह चारो ओर से आग लगा कर सत्य के बल पर ही जलती है। जो सत्य का पालन करता है उसका उद्धार दोनो लोको मे हो जाता है। सत्य बोलने वाला ही भगवान को भी प्यारा होता है। जो सत्य को छोड देता है उसका धर्म भी नष्ट हो जाता है। हृदय की उस दुष्ट बुद्धि को धिक्कार है जो सत्य का नाश कराती है।

तुम सयाने और पण्डित हो, कभी असत्य नही बोलते हो। तुम मुझसे सत्य कहो कि किसका दोष है।

टिप्पणी—इस अवतरण मे कवि ने सत्य की महिमा का बडे विस्तार से वर्णन किया है। सत्य की महिमा की प्रेरणा उसे वैदिक धर्म से मिली होगी।

भारतीय धर्म मे सत्य की महिमा पर विशेष वल दिया गया है। सत्य की महिमा का वर्णन निम्नलिखित शब्दो मे किया गया है।

(अ) सत्यपूता वदेद्वाच—मनु ६/४६
(ब) सत्य वद—तै उप १/११/१
(स) सत्य हि परम बल—महाभारत
(द) सत्येनोत्तभिता भूमि —१०/८५/१
(इ) नहि सत्यात्-परोधर्म —महाभारत

सत्य कहत राजा जिउ जाऊ। पै मुख असत न भाखौ काऊ॥
हौ सत लेइ निसरेउँ एहि बूते। सिघलदीप राजघर हूँते॥
पदमावति राजा कै बारी। पदुम-गध ससि त्रिधि औतारी॥
ससि मुख, अग मलयगिरि रानी। कनक सुगंध दुआदस वानी॥
अहै जो पदमिनि सिघल माहाँ। सुगँध रूप सव तिन्हकै छाहाँ॥
हीरामन हौ तेहिक परेवा। कठा फूट करत तेहि सेवा॥
औ पाएउँ मानुष कै भाषा। नाहि त पखि मूठि भव पाँखा॥
जौ लहि जिऔ रात दिन सवँरौ ओहि कर नावे।
मुख राता, तन हरियर दुहूँ जगत लेइ जावे॥ २॥

[इस अवतरण मे कवि ने तोते की सत्यनिष्ठा व्यञ्जित की है।]

राजा तोते से कहता है कि हे राजन ! सत्य कहते हुये चाहे प्राण निकल जाँय किन्तु मैं अपने मुख से अनृत नही वोलूँगा। यह निश्चय कर मैं सिहलद्वीप के राजा के घर से सत्य धारण कर निकला हूँ। पद्मावती राजा की लडकी है। विधाता ने उस शशी के सदृश सुन्दरी को कमल की सुरभि से वनाया है। उसका मुख चन्द्र रूप है और अग मलयगिरि की गन्ध लिये है। उसका वर्ण द्वादश वर्णी सोने के समान सुन्दर है और उसमे सुगन्ध की विशेपता है। सिहलद्वीप मे सुरभियुक्त सुन्दर पद्मिनी स्त्रियाँ है। वे सव उसी की छाया है। मै हीरामन उसी का तोता हूँ। जव से कंठा फूटा है अर्थात् जव से मैंने वोलना शुरू किया तव से उसी की सेवा करता हूँ। मुझे मनुष्य की तरह वोलने की क्षमता प्राप्त है। नही तो मुझ छोटे से पक्षी को कौन पूछता।

जव तक जीवित रहूँगा रात-दिन उसका स्मरण करूँगा। मरते समय भी उसी का नाम लूँगा। उसी ने मुझे मुख से रक्त वर्ण तथा शरीर मे हरा वनाया है। इस लालिमा और हरीतिमा को मैं उस लोक मे भी ले जाऊँगा।

टिप्पणी—पंते—प्रतिज्ञा करके, हूते—से, **बूते**—वल पर।

मुख राता, तन हरियर—मुख लाल और शरीर हरा है। यह वास्तविक सत्य है। किन्तु उस लोक मे भी उसे ले जाऊँगा। इससे एक व्यञ्जना भी निकलती

है। वह यह कि जिस प्रकार इस ससार मे प्रतिष्ठा और आनन्द से जीवन व्यतीत किया है उसी प्रतिष्ठा और सुख से परलोक मे भी जीवन व्यतीत करूँगा। यह व्यन्जना वाक्य वैशिष्ठ्यमूलक है।

हीरामन जो कवँल बखाना। सुनि राजा होइ भँवर भुलाना ॥
आगे आव, पखि उजियारा। कहे सो दीप पतँग कै मारा ॥
अहा जो कनक सुवासित ठाऊँ। कस न होइ हीरामन नाऊँ ॥
को राजा, कस दीप उतंगू। जेहि रे सुनत मन भएउ पतगू ॥
सुनि समुद्र भा चख किलकिला। कवँलहि चहौ भँवर होइ मिला ॥
कहु सुगध धनि कस निरमली। भा अलि-सग, कि अवही कली ॥
औ कहु तहँ जहँ पदमिनि लोनी। घर घर सब के होइ जो होनी ॥
सबै बखान तहाँ कर कहत सो मोसौ आव।
चहौ दीप वह देखा, सुनत उठा अस चाव ॥ ३ ॥

[इस अवतरण मे रूप वर्णन सुन राजा का मोहित होना वर्णित है।]

हीरामन ने जब कमल के समान सुन्दर पद्मावती का वर्णन किया तो राजा भँवर बन कर मुग्ध हो गया और बोला—हे सुन्दर पक्षी ! आगे आकर बताओ कि वह द्वीप कहाँ है जो पतिंगा की भाँति तड़पा कर मारता है। जो सुगन्धित कनक के समीप रहा है। उसका नाम भला हीरामन तोता क्यो न होता। उस द्वीप का राजा कौन है और वह द्वीप कितना बडा है जिसको सुन कर मन पतिग की भाँति मुग्ध हो गया है। उस रूप के समुद्र रूप द्वीप का वर्णन सुन कर आँखे किल-किला समुद्र की भाँति चपल हो रहा है। उस कँवल रूपी पद्मावती से मै भँवर होकर मिलना चाहता हूँ। बताओ वह सुगन्धित नारी कितनी निर्मल है। उसका किसी पुरुष रूपी भौरे से साथ हुआ है या वह अभी कली ही है। वहाँ जो सुन्दर पद्मिनी है, उनका वर्णन भी करो और वहाँ के लोगो के रहन-सहन की व्यवस्था भी बताओ।

वहाँ का सारा वर्णन मुझसे आकर कह क्योकि मै वह द्वीप देखना चाहता हूँ। उसका वर्णन सुन कर उसको देखने की इच्छा उत्पन्न हो गई है।

टिप्पणी—पंखि उजियारा—यहाँ पर उपचार वक्रता है। उजियारा शब्द का प्रयोग पखि के साथ उपचार के आधार पर हुआ है।

दीप—यहाँ पर पर्याय वक्रता है और पर्याय ध्वनि है।

भा चख किलकिला—यहाँ पर लक्षण लक्षणा से अर्थ निकलता है कि आँखे व्याकुल हो गई।

विशेष—(१) यहाँ पर श्रवण-जन्य पूर्व राग का वर्णन किया गया है।

(२) चित्रावली और मधुमालती मे भी इस प्रकार के वर्णन मिलते है। तुलना कीजिये —

(क) सुति चित्रनि चित सारी आई, देख चित्र मुख रही लुभाई ।
सहस कला होइ हिए समाना, निरखि रूप चित चेत भुलाना ॥
—चित्रावली, पृ० १२३

(ख) पूर्व पुन्य फल आपु हमारा, ससि पूनिव मुख देख तुम्हारा ।
प्रेम फाद हिय लागा मोरे, विरह जाल जिय वाधा तोरे ॥
—मधुमालतो, पृ० ३४

का राजा हौ बरनौ तासू । सिघल द्वीप आहि कैलासू ॥
जो गा तहाँ भुलाना सोई । गा जुग वीति न वहुरा कोई ॥
घर घर पदमिनि छतिसौ जाती । सदा वसत दिवस औ राती ॥
जेहि जेहि वरन फूल फुलवारी । तेहि तेहि वरन सुगध सो नारी ॥
गध्रबसेन तहाँ वड़ राजा । अछरिन्ह महँ इन्द्रासन साजा ॥
सो पदमावति तेहि कर वारी । जो सब दीप माँह उजियारी ॥
चहूँ खड के वर जो ओनाही । गरवहि राजा वोलै नाही ॥
उअत सूर जस देखिय चाँद छपै तेहि धूप ।
ऐसै सबै जाहिं छपि पदमावति के रूप ॥ ४ ॥

[इस अवतरण मे कवि ने तोते के प्रत्युत्तर को प्रस्तुत किया है ।]

तोता कहता है, हे राजन ! मै उसका क्या वर्णन करूँ । वह सिंहलद्वीप कैलाश के समान विशाल और रमणीय है । जो व्यक्ति वहाँ गया वह भूल गया युग वीत गये । वहाँ जो भी गया वह लौट कर नही आया । छत्तीसो जातियो की स्त्रियाँ पद्मिनी जाति की है । वहाँ दिन-रात वसन्त रहता है । जिस-जिस वर्ण के फूल फुलवारी मे फूलते हैं, उसी-उसी वर्ण और सुरभि की वालाये उस द्वीप मे है । वहाँ का राजा गवर्वसेन वडा भारी राजा है । भगवान ने उसे अप्सराओ के वीच मे इन्द्र के समान वनाया है । पद्मावती उसी की कन्या है । वह समस्त द्वीपो का प्रकाश द्वीप है । चारों खण्ड के वर उमडते है, किन्तु राजा गर्व के कारण वोलता नही है ।

जैसे उदीयमान सूर्य के आगे [illegible] छिप जाता है, उसी प्रकार सभी सुन्दरियाँ उसके रूप के आगे छिप जाती हैं ।

टिप्पणी—(१) **छत्तीस [illegible]**—साधारणतया प्रतिष्ठित जातियो की संख्या छत्तीस वताई गई है, उनके नाम सुधाकर जी ने गिनाये हैं, अकारण विस्तार भय से नही दे रहे है ।

(२) दोहे में कवि प्रौढोक्ति सिद्ध उपमा अलङ्कार से प्रतीप अलङ्कार व्यग्य है ।

सुनि रवि-नावँ रतन भा राता। पंडित फेरि उहै कहु बाता ॥
तै सुरग मूरति वह कही। चित मँह लागि चित्र होइ रही ॥
जनु होइ सुरुज आइ मन वसी। सब घट पूरि हिये परगसी ॥
अब हौ सुरुज, चाँद वह छाया। जल बिन मीन, रक्त बिनु काया ॥
किरिन-करा भा प्रेम-अँकूरू। जौ ससि सरग, मिलौ होइ सूरू ॥
सहसौ करा रूप मन भूला। जहँ जहँ दीठ कवलँ जनु फूला ॥
तीनि लोक चौदह खड सबै परै मोहि सूझि।
पेम छाँडि नहि लोन किछु, जो देखा मन बूझि ॥ ५ ॥

[इस अवतरण मे रतनसेन के हृदय की अनुरागोदय स्थिति का वर्णन किया गया है ।]

सूर्य का नाम सुन कर रतनसेन लाल हो गया और वह तोते से बोला—हे पण्डित तोते। इसी बात को फिर से कहो। तुमने जिस सुन्दर प्रतिमा का वर्णन किया है वह चित्त मे चित्र की तरह चित्रित हो गयी है। मानो सूर्य के समान वह मेरे मन मे वस गई है और सब देह मे व्याप्त हो हृदय मे प्रकाशित हो उठी है। अब मै सूर्य रूप होकर भी उस चाँद की छाया हूँ। जिस प्रकार जल के विना मछली और काया के विना रक्त के जीवित नही रहती उसी प्रकार उसके विना मैं नही रह सकता हूँ। सूर्य किरण और चन्द्रमा की कला के सहारे से प्रेम का अंकुर अकुरित हुआ है। यदि शशि आकाश मे हो तो मै सूर्य बन कर उससे मिलूँगा। मेरा मन जो सहस्त्रो किरणो वाले सूर्य के समान था वह शशि रूपी पद्मावती को देख कर मुग्ध हो गया जिधर-जिधर उसकी दृष्टि विक्षिप्त होती है वहाँ-वहाँ कमल खिलने लगता है। तीन लोक चौदह खण्ड सब मेरे देखे हुये है उनमे प्रेम को छोड कर कुछ भी मधुर नही है।

टिप्पणी—(१) शुक्ल जी की पुस्तक मे निम्नलिखित पक्ति नही दी है। यह पक्ति और होनी चाहिये —

तहाँ भवर जहँ कँवला गंधी, ससि मै राहु केरि रिनि बंधी।

इसका अर्थ हुआ—भँवर वही जाता है जहाँ सुगन्धित कँवल होता है। वह शशि रूपी पद्मावती अब रतनसेन रूपी राहु की ऋणबन्धी हो गई है उसे उसका ऋण चुकाना ही पडेगा। व्यञ्जना है कि उसे मेरे प्रेम का पात्र बनना ही पडेगा। यहाँ पर स्वत. सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यङ्ग्य है।

रतन—यहाँ पर रूढ़ि वैचित्र्य वक्रता है। रतन मे रविकान्त मणि के असम्भव अर्थ की प्रतिष्ठा भी की गई है। ध्वनि की दृष्टि से इस प्रकार के प्रयोग शब्द-शक्ति-उद्भव वस्तु ध्वनि के अन्तर्गत आते है। यह सलक्ष्यक्रम व्यग्य का एक भेद है।

वह—सवृत्ति वक्रता है।

सुरंग—यहाँ पर उपसर्ग वक्रता है। सु उपसर्ग का सौन्दर्य दृष्टव्य है।

जौं ससि सरग, मिलौ होइ सूरू—यहाँ पर रूढि वैचित्र्य वक्रता से ससि और सूर मे योगपरक लोकोत्तर अर्थ की व्यन्जना की गई है।

लोन—शब्द का अर्थ यहाँ मधुर लिया जायगा। यह अर्थ पदगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से प्राप्त होगा।

तीनि लोक चौदह खण्ड—इनका अभिप्राय उपादान लक्षणा से सम्पूर्ण विश्व है। सम्पूर्णता ही व्यग्य है। यह अर्थ अर्थान्तर सक्रमित वाच्य ध्वनि से प्राप्त हुआ है।

प्रेम सुनत मन भूल न राजा। कठिन प्रेम, सिर देइ तौ छाजा॥
प्रेम फाँद जो परा न छूटा। जीह दीन्ह पै फाँद न टूटा॥
गिरगिट छद धरै दुख तेता। खन खन पीत, रात, खन सेता॥
जान पुछारि जो भा वनवासी। रोव रोव परे फँद नगवासी॥
पाँखन्ह फिरि फिरि परा सो फाँदू। उडि न सकै अरुझाभा वाँदू॥
'मुयो मुयो' अहनिसि चिल्लाई। ओही रोस नागन्ह धै खाई॥
पडुक, सुआ, कक वह चीन्हा। जेहि गिउ परा चाहि जिउ दीन्हा॥
तीतिर-गिउ जो फाँद है, नित्ति पुकारै दोख।
सो कित हँकारि फाँद गिउ 'मेलै' कित मारे होइ मोख॥ ६॥

[इस अवतरण मे तोते के मुख से प्रेम की महत्ता व्यञ्जित की गई है।]

हे राजन! प्रेम की बात सुन कर मुग्ध मत हो, प्रेम का मार्ग वडा कठिन है, इसमे वही सफल होता है जो आत्म-वलिदान कर सकता है। इस प्रेम के वन्धन मे जो पड़ जाता है वह छूटता नही। लोगो के प्राण तक निछावर हो जाते है किन्तु यह वन्धन नही खुलता। जिस प्रकार क्षण-क्षण मे गिरगिट रग वदलता है उसी प्रकार क्षण-क्षण मे प्रेमी दु खो का रग वदलता है। जिस प्रकार गिरगिट कभी पीला पड जाता है, कभी लाल हो जाता है, कभी सफेद हो जाता है उसी प्रकार प्रेमी विरह मे कभी पीला पड जाता है, कभी मिलन मे लाल हो जाता है, और त्याग भावना से श्वेत हो जाता है। प्रेम के रहस्य को पुछार अर्थात् मयूरनी जानती है, जिसे प्रेम के लिये वनवासी होना पडा। उसके रोम-रोम मे नाग फाँस के सदृश फदे पडे है, उसके पखो मे वार-वार वही फन्दा पड गया है, जिसके कारण वह उड़ नही पाती है, और वन्दी हो गई है। वह रात दिन मयो-मयो चिल्लाती है तथा उसी क्रोध से नागो को मार कर खाती है। पडुक और तोते के गले मे वह वन्धन दिखाई पडता है। यह प्रेम का फदा जिसकी गर्दन मे पड जाता है, वही प्राणोत्सर्ग कर देना चाहता है। तीतर की

गर्दन में वही फन्दा है। इसी दोष से वह रोज चिल्लाता है कि व्याधा आकर उसे गले में फाँसी लगा कर मार डाले ताकि उसे उस प्रेम के बन्धन से मुक्ति मिल जाय।

टिप्पणी—प्रेम सुनत मन भूल न राजा—यहाँ पर असगति अलङ्कार व्यंग्य है। प्रेम का रहस्य सुनते तो कान है, और भूल मन जाता है। कारण कही और कार्य कही दिखायी पडने के हेतु ही यहाँ असगति अलङ्कार है। प्रत्यक्ष काव्य लिंग अलङ्कार है, अत. यहाँ पर कवि प्रोढोक्ति सिद्ध अलङ्कार से अलङ्कार ध्वनि हुई।

गिरगिट छद धरै दुख तेता—व्यञ्जना है कि गिरगिट वडा छली होता है, वह रूप वदल-वदल कर ससार के फन्दो से वचने का प्रयास करता है, किन्तु इसके लिये उसे बड़ा दु.ख उठाना पडता है। यहाँ जायसी के मन मे सम्भवत गिरगिट का वह प्रसग रहा होगा जिसके कारण उसे आज भी चोटो का शिकार वनना पडता है। कहते है जव हसन हुसेन का पीछा उनका शत्रु उन्हे मार डालने के लिये कर रहा था, तो वे एक पुराने कुँये मे जाकर छिप गये। मकड़ी ने द्वार पर जाल पूर लिया। वही गिरगिट वैठा था। उसने शत्रु के पूछने पर सिर हिला दिया, जिससे वह कुँये मे घुस गया, और वही उन्हे मार डाला। तव से मुसलमान लोग गिरगिट को अनेक प्रकार के दु.ख देते रहते है। वह उन दु.खो के भय से ही रग वदलता रहता है। 'तेता' सभवत इसी दु ख की ओर सकेत है। अत. यहाँ सवृत्ति वक्रता है।

पुछारि—इसमे रूढि वैचित्र्य वक्रता है। यहाँ पर मयूर अर्थ के अतिरिक्त पूछने वाला वियोगी प्रेमी इस नये अर्थ की व्यञ्जना भी होती है। ऐसे स्थलो पर शब्द शक्ति उद्भव अनुरणन ध्वनि भी मानी जाती है।

पाँखन्ह फिरि फिरि परा सो फाँदू, उड़ि न सकै अरुझाभा बाँदू—यहाँ काव्य लिङ्ग अलङ्कार से हेतूत्प्रेक्षा व्यग्य है।

मुयो मुयो—यहाँ पर शब्द शक्ति उद्भव अनुरणन ध्वनि है। व्यङ्ग्यार्थ है मैं मरा, मैं मरा।

ओही रोस नागन्ह धै खाई—यहाँ प्रत्यनीक अलङ्कार है।

तीतिर-गिउ जो फाँद है, नित्ति फुकारै दोख—यहाँ पर काव्यलिङ्ग और हेतूत्प्रेक्षा का संकर है।

विशेष—प्रीति फद का वर्णन अन्य सूफी कवियो ने भी किया है। तुलना कीजिये :

(क) प्रीति दया बस है संसारा।
प्रीति फाँद सब फादनि हारा॥
—नूर मुहम्मद कृत अनुराग बाँसुरी, पृ० ११७

(ख) भूला सबै जगत कर धंधा।
पड़ा जो आन प्रेम कर फंदा॥
—कासिमशाह कृत हस जवाहिर, पृ० ७२

राजै लीन्ह ऊवि कै साँसा। ऐसे बोल जिनि बोलु निरासा ॥
भलेहि प्रेम है कठिन दुहेला। दुइ जग तरा प्रेम जेइ खेला ॥
दुख भीतर जो प्रेम मधु राखा। जग नहि मरन सहै जो चाखा ॥
जो नहिं सीस प्रेम-पथ लावा। सो प्रिथिवी महँ काहे क आवा ॥
अव मैं पथ प्रेम सिर मेला। पाँव न ठेलु, राखु कै चेला ॥
प्रेम वार सो कहै जो देखा। जो न देख का जान विसेखा ॥
तौ लगि दुख पीतम नहि भेटा। मिलै, तौ जाइ जनम-दुख मेटा ॥
जस अनूप, तू वरनेसि, नख सिख वरनु सिगार।
है मोहि आस मिलै कै, जौ मेलै करतार ॥ ७ ॥

[इस अवतरण मे राजा के मोग्ध्य भाव की मार्मिक व्यञ्जना की गई है।]

राजा ने ऊव कर साँस ली और कहने लगा कि हे तोते! ऐसे निराशापूर्ण वचन मत कह। यह वात ठीक हे कि प्रेम वडा कष्ट-साध्य है, किन्तु उस प्रेम के खेल से जो खेलता है, उसका उद्धार दोनो लोको मे हो जाता है। दुख के भीतर जो प्रेम का मधु रक्खा गया है, उसको जो चखता है, उसे भौतिक मृत्यु का भय नही रहता। जो प्रेम मार्ग मे सिर नही रखता उसका इस संसार मे जीवन ही व्यर्थ है। मैंने तो अव प्रेम मार्ग मे अपना सिर डाला है, अव तू पाँव से न ठेल चेला वना कर रख। प्रेम मार्ग का रहस्य वही जानता है, जिसने देखा है। जिसने वह मार्ग नही देखा हे, वह उसके रहस्य को नही जानता। दुख तभी तक रहता है, जव तक प्रियतम से भेट नही होती। जव भेटता है, तो जन्म-जन्मान्तर के दुख मिट जाते है।

उस अनुपम सुन्दरी को जैसा तूने देखा हे, वैसा ही नख से शिख तक के शृङ्गार का वर्णन कर। यदि भगवान की कृपा हो गई तो वह मुझे प्राप्त हो जायगी।

टिप्पणी—भलेहि······ खेला—यहाँ पर कवि ने सूफियो के आध्यात्मिक प्रेम की व्यञ्जना की हे। इस प्रेम का वर्णन सूफी कवियो ने विस्तार से किया है।

(क) प्रेम जान हरि रूप दिखावै, धन्य सुभाग जेहि के चित आवै।
—शेख़ रहीम : प्रेम रस

(ख) ऊँचा वैठक प्रेम का जो रहीम सत होय।
सो पावै संशय नही जाँय पाप सव धोय ॥
—शेख रहीम . प्रेम रस

(ग) अलख प्रेम कारन जग कीन्हा।
धन जो सीस प्रेम महं दीन्हा ॥
जाना जेहिक प्रेम मँह हीया।
मरै न कवहूँ सो मर जीया ॥
—नूर मुहम्मद : इन्द्रावती

जो नहिं………आवा—सूफी काव्यो मे हमे इस भाव की व्यञ्जना अनेक रूपों मे मिलती है

(क) जीवन जाग प्रेम को अहई,
सोवन मीचु को प्रेमी कहई ।

—इन्द्रावती : नूर मुहम्मद

दुःख भीतर…… आवा—इस भाव की व्यञ्जना जायसी तथा अन्य सूफी कवियो मे और भी कई स्थलो पर मिलती है

(क) प्रेमहि माँह विरह रस रसा,
मैन के घर मधु अमृत वसा ।

—जायसी

(ख) जगत जन्मि जीवन फल ताही, प्रेम पीर जिय उपजा नाही ।

—मधुमालती, पृ० ११

नख शिख वर्णन खंड

का सिगार ओहि बरनौ राजा। ओहिक सिगार ओही पै छाजा ॥
प्रथम सीस कस्तूरी केसा। बलि वासुकि, का और नरेसा ॥
भौर केस, वह मालति रानी। बिसहर लुरे लेहि अरघानी ॥
बेनी छोरि झार जौ बारा। सरग पतार होइ अँधियारा ॥
कोवर कुटिल केस नग कारे। लहरन्हि भरे भुअँग बैसारे ॥
बेधे जनौ मलयगिरि वासा। सीस चढे लोटहि चहुँ पासा ॥
घँघुरवार अलकै विप भरी। सँकरै पेम चहै गिउ परी ॥
अस फँदवार केस वै परा सीस गिउ फाँद।
अस्टौ कुरी नाग सब अरुझ केस के बाँद ॥

[इस अवतरण मे कवि ने पद्मावती के नख शिख वर्णन का श्रीगणेश किया है। सर्व प्रथम वह शीश का वर्णन करता है।]

शुक कहता है, "हे राजन् पद्मावती के शृगार का वर्णन कैसे करूँ। उसका शृगार उसी को सुशोभित होता है। सिर पर सर्व प्रथम केश वर्णनीय है। उसके केश कस्तूरी रूप है। अर्थात उनमे कस्तूरी जैसी सुरभि है। उसके केशो की कालिमा पर वासुकी नाग भी बलिहारी है और दूसरे राजा की तो बात ही क्या है। उसके केश भौरे जैसे है। स्वय वह मालती जैसी है। उसके काले सटकारे केश ऐसे लगते है मानो कि विषधर मुड मुडकर सुरभि ले रहे हो। वेणी खोलकर जब वह अपने बालो को झाडती है तब स्वर्ग और पाताल मे अँधकार हो जाता है। कोमल और कुटिल केश काले नाग जैसे लगते है। ऐसा लगता है कि मानो वे लहरियाँ लेते हुए बैठे हो। ऐसा लगता है कि वे मलयगिरि की सुरभि से विध होकर पडे हो। इसीलिए वे सिर पर चढ़े हुए चारो ओर लोट रहे है। उसकी घुँघराली अलकें विष से भरी हुई है। ऐसा लगता है कि वे प्रेम की साँकरे हो जो किसी के गले मे पडना चाहती हो। वे केश ऐसे फँदवार अर्थात् ऐसे फसाने वाले थे कि उन्होने दूर रहते हुए भी राजा के गले मे फदा डाल दिया आठो कुलो के नाग मानो उसी के केशो मे बदी बने हुए थे।

टिप्पणी—(१) "**का सिंगार ओहि बरनौ राजा**"—यहाँ पर काकु वैशिष्ट्य व्यंग्य है। शृगार की अनिर्वचनीयता ही यहाँ व्यंग्य है।

(२) "**ओही**"—यहाँ पर सवृत्ति वक्रता है। पद्मावती की दिव्यता की ओर संकेत किया गया है।

"**ओहि कै सिगार ओहि पै छाजा**"—यहाँ पर अनन्वय अलंकार है। इस अलकार से सौंदर्य की अद्वितीयता और अलौकिकता व्यजित की गई है। अत. यहाँ कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अलकार से वस्तु व्यंजना है।

"**कस्तूरी केसा**"—वाच्यार्थ है कि उसके केश कस्तूरी है। किंतु यह अर्थ सर्वथा वाधित है। अतएव लक्षण-लक्षणा से यहाँ पर अर्थ है कि उसके केश कस्तूरी के समान सुरभित है।

"**बलि वासुकि**"—वासुकी नाग उसके केशो पर न्यौछावर है। इस कवि प्रौढोक्ति सिद्ध वस्तु से प्रतीप अलकार व्यग्य है। "**का और नरेसा**" यहाँ पर काकु वैशिष्ट्य व्यंग्य है। कवि यह व्यजित करना चाहता है कि उसके केशो का सौंदर्य अतुलनीय है और उन्हे देख कर वडे से वडे सम्राट् मुग्ध हो जाते है।

"**भौंर केस वह मालती रानी**"—यहाँ पर लक्षण-लक्षणा से अर्थ लिया गया है कि उसके केश भौंरे के समान थे और स्वय वह मालती के समान थी।

"**विषहर लुरे लेहि अरघाने**"—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार है। 'विषधर' केवल उपमान मात्र है।

"**वेनि छोरि झार जौवारा सरग पतार होइ अँधियारा**"—यहाँ पर सवधातिशयोक्ति अलंकार है। कवि ने पद्मावती के विराट् रूप की व्यंजना की है। यह व्यजना वस्तु रूप है। अतएव यहाँ पर कवि प्रौढोक्ति सिद्ध अलंकार से वस्तु व्यग्य है। यहाँ पर कवि ने रहस्य भावना का आरोप किया है।

"**अस्टौकुरीनाग सब अरुझ केस के बाँद**"—यहाँ पर प्रतीप अलकार है। 'अस्टौकुरी' का अर्थ है आठो कुल के नाग। उनके नाम है 'वासुकी, तक्षक, कुलक, कर्कोटक, पद्म, शखचूड, महापद्म, धनजय।'

पाठ भेद—डा० अग्रवाल ने अरुझ के स्थान पर दोहे मे 'ओरगाने' पाठ दिया है। ओरगान शब्द अरवी भाषा के अरकान शब्द से बना है जिसका अर्थ है प्रधान व्यक्ति। उन्होने इसका अर्थ अधिपति दिया है।

सूफी कवियो ने केशो का वर्णन प्राय इसी शैली मे किया है।

(क) केस रही अस नागिन कारी तेहि कर डस नहिं लाए झारी।
दोइ लट माँझ होत उजियारा जमुना माँझ भई गंग कै धारा॥

—नसीर : प्रेम दर्पण

(ख) तापर कच विखधर विख सारे, लौटे सेज सहज विकरारे।
सगवगाहि पर तख मनि आरे, गरल धरे विसधर हत्यारे॥
निस अजोर दिन देखराए, निस अध्यार कुच मुकलाए।
—मंझनकृत : मधुमालती

वरनौ माँग सीस उपराही। सेदुर अवहि चढा जेहि नाही॥
विनु सेदुर अस जानहु दीआ। उजियर पंथ रैनि महँ कीआ॥
कचन रेख कसौटी कसी। जनु घन महँ दामिनि परगसी॥
सुरुज-किरिन जनु गगन विसेखी। जमुना माँह सुरसती देखी॥
खाँडै धार रुहिर जनु भरा। करवत लेइ वेनी पर धरा॥
तेहि पर पूरि धरे जो मोती। जमुना माँझ गग कै सोती॥
करवत तपा लेहि होई चूरू। मकु सो रुहिर लेइ देइ सेंदूरु॥
कनक दुवादस वानि होइ चह सोहाग वह माँग।
सेवा करहि नखत सव उवै गगन जस गाँग॥

[इस अवतरण मे कवि ने माँग के सौन्दर्य का वर्णन किया है।]

मै शीर्ष वर्णन प्रसग मे सर्वप्रथम माँग का वर्णन करता हूँ। उस माँग पर अभी सिन्दूर नही चढा है, विना सिन्दूर के भी वह माँग दीपक के समान दैदीप्य मान है।

वह ऐसी लग रही है मानो कि कसौटी पर कचन की रेखा हो, अथवा मानो की घन मे दामिनी दमक रही हो अथवा वह ऐसी लग रही थी मानो कि विशेष काले गगन मे सूरज की किरण चमक रही हो, अथवा वह ऐसी लगती है मानो कि तलवार की धार पर खून लगा हुआ हो, अथवा मानो कि किसी ने करपत्र लेकर वेनी पर रख दिया हो, माँग मे जो मोती लगे हुये है वह ऐसे लगते है मानो कि जमुना के बीच गगा की धारा शोभायमान हो, वडे-बड़े तपस्वी इस कामना से कर पत्र से अपने को चिरवा कर चूर कर डालते कि कदाचित वह उनके रक्त का सिन्दूर लगा ले।

वह माँग द्वादसवर्णी सोना रूप होने से सुहाग चाहती है। उसके शाकम्थ मे चमकते हुये मोती ऐसे लगते है मानो कि आकाश गगा मे नक्षत्र उगे हुये हों।

टिप्पणी—विनु सेदुर अस जानहु दीआ—यहाँ विनोक्ति और उत्प्रेक्षा का सकर है।

खाडे धार रुहिर जनु भरा—यह कल्पना फारसी काव्य शास्त्र से प्रभावित है। हमारे यहाँ रक्त माँसादि की चर्चा शृगार रस मे रसाभास की जननी मानी गई है। किन्तु फारसी काव्य शास्त्र मे इस प्रकार के वर्णनो की बडी प्रतिष्ठा रही

है। सूफी कवियो ने बराबर इस कोटि की कल्पना को प्रश्रय दिया है। मंझन ने भी इसी उत्प्रेक्षा को दूसरी प्रकार से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है

अति सोभित सिर माँग सुहाई।
खरग धार जे रकत बुझाई।।

—मधुमालती सिगार खण्ड

सुरज किरन जस गगन विशेखी—यह उत्प्रेक्षा भी सूफी कवियो की विशेष प्रिय रही है। मझन की मधुमालती मे यह उपमा थोडा परिवर्तन के साथ पायी जाती है।

सुर्ज किरन जग माँह सुहाई।
सब जग जोति जगत मँह आई।।

—मधुमालती सिगार खण्ड

बेनी पर धारा—यहाँ पर बेनी पर शब्द शक्ति उद्भ वस्तु ध्वनि है। वेनी का अर्थ वेणी या चोटी है। किन्तु दूसरी व्यन्जना त्रिवेणी की है। वह माँग वेणी पर ऐसी शोभायमान है मानो कि त्रिवेणी पर कर पत्र रक्खा हुआ शोभायमान हो।

जमुना माँझ गांग के सोती—यहाँ पर कवि ने त्रिवेणी की कल्पना मूर्त्तिमान करने की चेष्टा की है। कवियो की त्रिवेणी की कल्पना वडी प्रिय रही है। पद्माकर ने तद्गुण अलङ्कार के आश्रय से ताल मे तैरती हुई बाला की झाँकी त्रिवेणी के रूप मे की है।

जाहिरे जागीत सी जमुना जल।
बूडै वहै उमगै वह बैनी।।
त्यौ पद्माकर हीरा के हारन।
गंग तरंगन लौ सुख देनी।।
पायंन के रंग से रंग जाति।
सो भाँतिहि भाँति सरस्वतीश्रेनी।।
पैरे जहाँ ही जहाँ वह बाल।
तहां तहँ ताल में होत त्रिवेनी।।

—पद्माकर

सूर मे हमे मनोरम त्रिवेणी की कल्पना कटाक्ष वर्णन के प्रसग मे मिलती है।

नहिं पटतर एक सैन राजिव दल इन्हीवर कमल कुशेषय जाति।
निसि मुद्रित प्रातहि वे विगसित ये विगसत दिनरात।।
अरुन असित सित झलक पलक प्रति को वरनै उपमाय।
मनो सरस्वति गंग जमुन मिलि सगम किन्हो आय।।

—सूर

करवत तपा......सेन्दुर—यहाँ पर रहस्य भावना का आरोप किया गया है । पद्मावती साधारण स्त्री नही है वह विराट् ब्रह्म रूप है । तभी तो तपस्वी लोग अपने को करपत्र से चिरवा डालते है कदाचित उनके रक्त का सेन्दूर बन जाये और वह सिन्दूर पद्मावती धारण कर ले और उनका उद्धार हो जाये । यहाँ पर यह भी व्यजना है कि साधक जब तपस्या करके अपने को शुद्ध प्रेम का प्रतीक सिन्दूर बना देता है कदाचित उसे इसी प्रकार पद्मावती रूपी ब्रह्म का सामीप्य प्राप्त हो जाये ।

सोहाग—इस शब्द मे शब्द शक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है । सोहाग का अभिधेयार्थ सुहागा है और व्यङ्ग्यार्थ सौभाग्य है ।

कहौ लिलार दुइज कै जोती । दुइजहि जोति कहाँ जग ओती ॥
सहज किरिन जो सुरुज दिपाई । देखि लिलार सोउ छपि जाई ॥
का सरवरि तेहि देउँ मयकू । चाँद कलकी, वह निकलकू ॥
औ चाँदहि पुनि सो राहु गरासा । वह बिनु राहु सदा परगासा ॥
तेहि लिलार पर तिलक बईठा । दुइज-पाट जानहु ध्रुव दीठा ॥
कनक-पाट जनु बैठा राजा । सबै सिगार अत्र लेइ साजा ॥
ओहि आगे थिर रहा न कोऊ । दहुँ का कहँ अस जुरै सँजोगू ॥
खरग, धनुक, चक बान दुइ, जग मारन तिन्ह नाँव ।
मुनि कै परा मुरुधि कै (राजा) मोकहँ हए कुठाँव ॥

[इस अवतरण मे कवि ने नायिका के ललाट का वर्णन किया है ।]

कवि कहता है कि अब मै पद्मावती के ललाट का वर्णन करता हूँ इसकी ज्योति द्वितीया के चन्द्रमा के समान है । द्वितीया के चन्द्रमा की ज्योति भी ससार मे इतनी नही होती जितनी की नायिका के ललाट की है । यदि सूर्य सहस्त्र किरणो से भी प्रकाशित हो तो भी वह ललाट की शोभा से पराभूत होकर छिप जायगा चन्द्रमा से उसकी तुलना नही की जा सकती क्योकि शशि सकलक होता है और उसका ललाट सर्वथा निष्कलक है । फिर चन्द्रमा को राहु आक्रान्त करता रहता है जबकि ललाट किसी भी राहु से आक्रान्त नही होता और सदा निर्बाध रूप से प्रकाशित रहता है । इस ललाट पर सजाया गया तिलक ऐसा शोभायमान है मानो कि द्वितीया के चन्द्रमा रूपी सिहासन पर ध्रुव नक्षत्र शोभायमान हो अथवा उसकी शोभा ऐसी लगती है कि मानो कोई राजा शृगार करके और अस्त्रो से सज्जित हो अपने सिहासन पर बैठा हो । उसके तिलक की शोभा से सभी पराजित हो जाते है । मालूम नही कि वह किसका विजय प्रतीक है जो इस प्रकार शस्त्रास्त्र से युक्त है ।

नायिका अपनी नासिका रूपी खड्ग, भौ रूपी धनुष, पुतलियाँ रूपी चक्र, कटाक्ष रूपी दो बाण से युक्त ऐसी शोभायमान है मानो कि जगत की सहारिका ही मूर्त्तिमान

हो। नायिका का यह वर्णन सुन कर राजा मूर्छित हो गया और कहने लगा कि मुझे बुरी तरह से घायल किया गया है।

टिप्पणी—कहौ ·····ओती—यहाँ पर प्रतीप अलङ्कार है। 'ओती' मे सम्वृत्ति वक्रता है और प्रर्थान्तिर सक्रमित वाच्य ध्वनि है। नायिका के रूप की विराटता और रहस्यात्मकता ही व्यग्य है।

सहस करॉ·····जाई—यहाँ पर सम्भाव्यमाना सम्बन्धातिशयोक्ति और प्रतीप का संकर है।

का सरवरि······परगासा—यहॉ पर व्यतिरेक अलकार है।

दहुँ काकँहु अस जुरा सँजोऊ—यहॉ पर काकु वैशिष्टय व्यग्य है। कवि की व्यजना है कि पद्मावती को कोई दिव्य सिद्धि सम्पन्न राजा रत्नसेन रूपी साधक ही प्राप्त कर सकता है।

सुनिके·······कुठॉव—यहॉ पर रहस्यानुभूति की प्रथमावस्था की व्यजना की गई है।

विशेष—(क) इस अवतरण मे कवि ने पद्मावती के विराट् सौन्दर्य की झलक दिखा कर रहस्य भावना की व्यंजना की है।

(ख) मंझन ने भी ललाट के लिए दुइज के चाँद की उपमा दी है।

'निकलंकी ससि दुइज लिलारा'

—मधुमालती : पृष्ठ २७

भौहैं स्याम धनुक जनु ताना। जा सहुँ हेर मार विष-वाना॥
हनै धुनै उन्ह भौहनि चढ़े। केइ हतियार काल अस गढ़े॥
उहै धनुक किरसुन पहँ अहा। उहै धनुक राघौ कर गहा॥
ओहि धनुक रावन सधारा। ओहि धनुक कंसासुर मारा॥
ओहि धनुक बेधा हुत राहू। मारा ओहि सहस्त्रावाहू॥
उहै धनुक मै तापहँ चीन्हा। धानुक आप बेझ जग कीन्हा॥
उन्ह भौहनि सरि केउ न जीता। अछरी छपी, छपी गोपीता॥
भौह धनुक, धनि धानुक, दूसर सरि न कराइ।
गगन धनुक जो ऊगै लालहि सो छपि जाइ॥

[प्रस्तुत अवतरण मे भौहो के सौन्दर्य का वर्णन किया गया है।]

श्याम भौहे ऐसी शोभायमान है मानो कि काला धनुप तना हुआ हो। जो उन भौहो का लक्ष्य वनते है वे छिन्न-भिन्न होकर नष्ट हो जाते है। न मालूम किसने ऐसे काल रूप हथियारो की रचना की है। यही धनुप कृष्ण के पास था। उसी धनुष को राघा ने धारण किया था। इसी धनुष से रावण मारा गया था। कंसासुर भी इसी से मारा गया था इसी धनुप से अर्जुन ने रोहू मछली का बेधन किया था।

इसी धनुष से परशुराम ने सहस्त्रवाहु का वध किया था। वही धनुप मैने उसकी भौहो के रूप मे उसके पास पहचाना है। उन भौहो की वरावरी करके कोई नही जीता। अप्सराये और गोपियाँ जो अपनी मोहनी सुन्दरता के लिये प्रसिद्ध है, भी उसकी भौह रूपी धनुप की सुन्दरता के आगे पराजित हो गयी। भौहे धनुप है। वह रमणी धनुर्धर है। भौह रूपी धनुप चलाने मे कोई उसकी समता नही कर सकता। आकाश मे जो इन्द्र धनुप उगता है वह भी भौंरूपी धनुप से लज्जित होकर छिप जाता है।

टिप्पणी—जासौं हेर मार विष बाना—यहाँ वाच्यार्थ है जिसको देखती है उसे विप के वाण मारती है।

आँखे या भौहे विप के वाण नही मार सकती है। अत यहाँ पर लक्ष्यार्थ ग्रहण किया गया है।

कवि का अभिप्राय है कि उसके कटाक्ष वड़े ही घातक थे। विप के वाणो की भाँति व्याकुल कर देने वाले कटाक्ष थे। यह अर्थ अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से लिया गया है। कवि यह कहना चाहता है कि वह जिसकी ओर देखती है उसको अपने कामोद्रेक कारी काटाक्षो से व्याकुल वनाती है। उसके अतुलनीय सौन्दर्य की काम जन्य विषाक्तता ही व्यङ्ग्य है।

उहै धनुक……बाहु—यहाँ पर कवि ने पद्मावती को विराट् ब्रह्म के रूप मे कल्पित किया है और उसकी भौह की उत्प्रेक्षा धनुप के रूप मे और कटाक्ष की वाण के रूप मे की गई है। ससार के सभी महान् धनुप उसी धनुप का विवर्त है। इस प्रकार कवि ने उपर्युक्त कथन मे रहस्य भावना का आरोप किया है। यहाँ पर सवृत्ति वक्रता है।

उन भौंहनिसो…… गोपीता—यहाँ पर प्रतीप अलङ्कार है। यहाँ पर संवृत्ति वक्रता भी है।

गगन धनुक जो……जाई—यहाँ पर असिद्धास्पद हेतुत्प्रेक्षा है।

विशेष—इस अवतरण मे रहस्य भाव व्यङ्ग्य है।

नैन वाँक, सरि पूज न कोऊ। मान सरोदक उथलहिं दोऊ॥
राते कवँल करहि अलि भवाँ। घूमहि माँति चहहिं अपसवाँ॥
उठहि तुरंग लेहि नहिं वागा। चाहहि उलथि गगन कहँ लागा॥
पवन झकोरहिं देह हिलोरा। सरग लाइ भुंइ लाइ वहोरा॥
जग ड़ोलै डोलत नैनाहाँ। उलटि अड़ार जाहि पल माहाँ॥
जवहिं फिराहिं गगन गहि वोरा। अरु वै भौर चक्र के जोरा॥
समुद्र-हिलोर फिरहि जनु झूले। खंजन लरहि, मिरिग जनु भूले॥

सुभर सरावर नयन वै, मानिक भरे तरंग।
आवत तीर फिरावहि कान भौर तेहि संग॥

[इस अवतरण में नेत्रों के सौन्दर्य का वर्णन किया गया है ।]

नेत्र इतने बाँके है कि उनकी समता कोई नही कर सकता । वे ऐसे लग रहे है मानो कि मानसरोवर उमड़ रहे हों । ऐसा लगता है कि लाल कँवल पर भौरे मँडरा रहे हों । वे ऐमे प्रतीत होते है मानो कि वे मदमस्त होकर घूम रहे हों और उछल कर आकाश मे पहुँच जाना चाहते हो । वे घोड़े जैसे चपल नेत्र सहसा उठ भागते है और बागडोर नही मानते अर्थात् उड जाना चाहते है। वे पवन के सदृश झक झोरते और हिलोरे मारते है। वे क्षण भर मे स्वर्ग तक ऊँचे चले जाते है, किन्तु तुरन्त ही पृथ्वी पर आ जाते है । उन नेत्रो के एक इंगित पर सारा संसार डोलायमान होता है । वे पल भर मे उलट कर आडे होकर उड जाते है । जब उन नेत्रो को फिराती है तो ऐसा लगता है कि आकाश को डुबा देगी । वे दोनो नेत्र अम्बर और आवर्त का ऐसा युगुल है कि उनमें आकाश तक को डुबोने की क्षमता है । उन नेत्रो की चपलता समुद्र लहरो मे झूलती है। उनको देख कर ऐसी भ्रान्ति होने लगती है कि मानो कि दो खजन लड रहे हो । मृग उनकी सुन्दरता देखकर मुग्ध हो जाते है ।

वे नेत्र सुन्दर भरे हुए सरोवर है। उनमे तरङ्गे उठ रही है जिनमे माणिक्य भरे हुए चमकते है। उनके किनारे जो आता है उसे वे अपने में समेट लेते है । वे काल भँवर के सदृश है ।

टिप्पणी—(१) मानसरोदक उलथहि दोऊ—इस पंक्ति के पाठान्तर कई है । सुधाकर जी का पाठ है :

'मान समुन्द्र अस उलथहि दोऊ'

डा० अग्रवाल ने भी यही पाठ स्वीकार कर अर्थ किया है कि दोनो जैसे मान का समुद्र उलीचते है । मुझे शुक्ल जी का पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है । कवि ने उन दोनो मे मानसरोदक की उत्प्रेक्षा की है जो सर्वथा उपयुक्त है । मानसरोदक से कवि ने नेत्रो की पवित्रता, सुरभता और शीतलता व्यञ्जित की है ।

राते कँवल करहि अलि भवाँ—उन मानसरोवर रूपी नेत्रो मे रक्तिम डोरे लाल कँवल के सदृश है । काली पुतलियाँ भ्रमर के समान है । यहाँ कवि ने रूपकातिशयोक्ति अलङ्कार से नायिका के नेत्रो की मादकता और कामपरकता व्यञ्जित की है । रक्तिम रग मादकता का और श्याम रंग काम का प्रतीक माना गया है । कवि की व्यजना है कि नायिका काम और प्रणय भावना से विभोर है। यहाँ पर कवि ने प्रौढोक्ति सिद्ध अलङ्कार से वस्तु व्यंञ्जना की है ।

उठहि तुरंग लेहि नहि बागा—दृष्टि रूपी तुरंग इतनी चपल है कि वह रोके से नही रुकती । यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलङ्कार से दृष्टि की अत्याधिक चपलता व्यञ्जित की गई है ।

सरग लाइ भुँइ लाय वहोरा—यहाँ पर सरग का अर्थ ऊपर उठते है और भुँइ लाय वहोरा का अर्थ है नीचे गिरते है। ये अर्थ लक्षण लक्षणा से लिये गये है।

जग डोलै डोलत नैनाहा—यहाँ पर सम्वन्वाति-शयोक्ति और चौथी विभावना का संकर है। कवि ने दोनो अलङ्कारो से पद्मावती के रूप की दिव्यता व्यञ्जित की है। अत कवि प्रौढोक्ति सिद्ध अलङ्कार से यहाँ पर वस्तु व्यंजना मानी जायगी। यहाँ रहस्य भावना भी व्यञ्जित की गई है।

समुद्र हिलोर फिरहि जनु झूले—यहाँ पर सिद्धास्पद हेतुत्प्रेक्षा और प्रतीप का संकर है। इस संकर से कवि ने नायिका के नेत्रो की तरलता चपलता आदि की व्यजना की है। अत अलङ्कार से वस्तु व्यङ्गय है।

खंजन लरहि मिरिग जनु भूले—यहाँ पर भी असिद्धास्पद हेतुत्प्रेक्षा और प्रतीप का सकर है। इनके सकर से कवि ने नैत्रो की चपलता और उनकी श्यामता एवम् भोलापन व्यञ्जित किया है।

वरुनी का वरनौं इमि वनी। साधे वान जानु दुइ अनी॥
जुरी राम रावन कै सेना। वीच समुद्र भए दुइ नैना॥
वारहि पार वनावरि साधा। जा सहुँ हेर लाग विष-वाधा॥
उन वानन्ह अस को जो न मारा। वेधि रहा सगरौ संसारा॥
गगन नखत जो जाहि न गने। वै सव वान ओही के हने॥
धरती वान वेधि सव राखी। साखी ठाढ देहि सव साखी॥
रोवँ रोवँ मानुष तन ठाढे। सूतहि सूत वेध अस गाढ़े॥
वरुनि-वान अस ओपहुँ, वेधे रन वन-दाँख।
सौजहि तन सव रोवाँ, पंखिहि तन सव पाँख॥

[इस अवतरण मे पद्मावती की वरुनियो की शोभा का वर्णन किया गया है।]

वरुनियो का क्या वर्णन करूँ वे ऐसी शोभायमान है मानो कि धनुष वाण धारण किये हुये दो सेनाये हो अथवा मानो कि राम और रावण की सेनाये जुडी खडी हो दोनो नेत्र मानो वीच के समुद्र हो गये है वीच की नासिका सम्भवत सेतुवन्ध है। वे दोनो सेनायें इस पार भी और उस पार भी वाणावली सन्धाने खडी हैं। वे जिसकी ओर देख लेती है उसे ही विष वाँध लेता है अर्थात् व्याप्त हो जाता है। उन वाणों का, ऐसा कौन है जो लक्ष्य न वना है। अगणित तीर भी उन्ही का लक्ष्य रूप है। सम्पूर्ण पृथ्वी को उन वाणो ने विद्ध कर रक्खा है। समस्त पौवे इस सत्य की साक्षी हैं। मनुष्य के शरीर मे जो रोम-रोम है ऐसा लगता है वे भी वही वाण हैं जो प्रत्येक रोम रूप कूप को वेध कर वाहर निकले है।

उसके पास उपर्युक्त प्रकार के (दिव्य) वरुनि रूपी वाण है। उन्होने रण मे शत्रु और वन मे ढाक वृक्षो को वेध रक्खा है।

टिप्पणी—वरुनी का बरनौ—यहाँ पर काकु वैशिष्ट्य व्यङ्गय है। कवि वरुनियों की अनिवर्चनीयता और दिव्यता व्यञ्जित कर रहा है।

जासो हेरि लागि विष बाँधी—यहाँ पर चपलातिशयोक्ति से कवि ने पद्मावती की मोहिनी शक्ति की अतिशयता व्यञ्जित की है। अत यहाँ कवि प्रौढोक्ति सिद्ध अलङ्कार से वस्तु ध्वनि है।

उन्ह बानन······संसार—यहाँ पर काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यङ्गय है। सम्बन्धातिशयोक्ति अलङ्कार है। इससे कवि ने वरुनियो की विश्व व्यापकता एवम् दिव्यता व्यञ्जित की है। अत. यहाँ कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अलङ्कार से वस्तु व्यञ्जना हुई। दिव्यता की व्यञ्जना के कारण रहस्यवाद का भी समावेश हो गया है।

गगन नखत······हने—यहाँ पर असिद्धास्पद हेतुत्प्रेक्षा से वरुनियो की दिव्यता व्यङ्गय है।

धरती बान······साखी—यहाँ पर असिद्धास्पद हेतुत्प्रेक्षा है उससे वरुनियो की दिव्यता व्यञ्जित की गई है। अत कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अलङ्कार से वस्तु व्यञ्जना है।

रोंव रोंव······गाँठे—यहाँ पर भी असिद्धास्पद हेतुत्प्रेक्षा है उससे दिव्यता व्यञ्जित की गई है। अतः यहाँ पर कवि प्रौढोक्ति सिद्ध अलङ्कार से वस्तु व्यञ्जना है।

विशेष—(क) मझन का वरुनी वर्णन जायसी से बहुत साम्य रखता है। तुलना कीजिए।

वरुनी बान विसह बुझाई भटक परत उर जाहि समाई।
वरुनी बान सम्मुख भै जाही रोव रोव तन झांझर ताही।।

—इत्यादि

(ख) अन्य सूफी कवियो ने भी नायिका के नखशिख का विश्वव्यापी प्रभाव दिखलाया है। देखिये—

अनि सरुप दुई सी हुन अमोले जेहि देखत त्रिभुवन मन डोले।

—मधुमालती : पृष्ठ ३०

नासिक खरग देउँ कह जोगू। खरग खनि, वह वदन सँजोगू।।
नासिक देखि लजानेउ सूआ। सूक आइ बेसरि होइ ऊआ।।
सुआ जो पिअर हीरामन लाजा। और भाव का बरनौ राजा।।
सुआ, जो नाक कवेर पँवारी। वह कोवर तिल पुहुप सँवारी।।
पुहुप सुगन्ध करहि रगहि आसा। मकु हिरकाइ लेइ हम्ह पासा।।
अधर दसन पर नासिक सोभा। दारिउँ विव देखि सुक लोभा।।

खजन दुहुँ दिसि केलि कराही । दहुँ वह रस कोउ पाव कि नाही ॥
देखि अभय-रस अधरन्ह भएउ नासिका कीर ।
पौन वास पहुँचावै, अस रम छाँड न तीर ॥

[प्रस्तुत अवतरण मे कवि ने नासिका के सौन्दर्य का वर्णन किया है ।]

कवि कहता है कि नासिका की उपमा खड्ग से नही दी जा सकती । खड्ग तो पतली होती है किन्तु नासिका मुख के सौन्दर्य के अनुकूल है । नासिका देख कर तोता लज्जित हो गया । शुक तारा उसकी नाक का वेसर बनकर प्रकाशित हो रहा है । दूसरे उपमानो के भावो का क्या वर्णन किया जाय हीरामन तोता भी उसी की नाक से पराजित होकर लाज से पीला हो रहा है । तोते की नाक सुम्मी की भाँति कठोर होती है किन्तु पद्मावती की नाक तिल के फूल के समान कोमल है पुष्प इसीलिए सुगन्धि करते है । कदाचित पद्मावती सुरभि की इच्छा से उन्हे धारण कर ले । अधर और दसनो पर नाक की शोभा ऐसी लगती है मानो कि अनार देख कर तोते का मन लुब्ध हो गया है । दोनो ओर खजन रूपी नेत्र क्रीडा करते है । मालूम नही रस कौन पायगा कौन नही ।

अधरो मे अमृत रस देख कर नासिका शुक रूप हो गई है । अधर मे उस अमृत रस की सुरभि नासिका मे जाने वाली है ।

(१) **नासिका खरग देहु केहु जोगू**—यहाँ प्रतीप अलङ्कार है ।
(२) **नासिका ···· संजोगू**—यहाँ व्यतिरेक अलङ्कार है ।
(३) **नासिका देख लजानेऊ सुआ**—यहाँ असिद्धास्पद हेतुत्प्रेक्षा और प्रतीप का सकर है ।
(४) **सूक आइ वेसरि होई ऊआ**—यहाँ प्रतीप, हेतुत्प्रेक्षा और विशेष अलङ्कारों की ससृष्टि है ।
(५) **सुआ जो पियर· · लाजा**—यहाँ पर सिद्धास्पद हेतुत्प्रेक्षा है ।
(६) **सुआ · · संवारी**—यहाँ अतिशयोक्ति एव व्यतिरेक अलङ्कारो का सकर है ।

पुहुप·· ·· पासा—यहाँ पर फलोत्प्रेक्षा है ।
खजन दुहु······कराही—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलङ्कार है ।

अधर सुरग अमी-रस-भरे । बिब सुरग लाजि बन फरे ॥
फूल दुपहरी जानौ राता । फूल झरहि ज्यो-ज्यो कह बाता ॥
हीरा लेइ सो विद्रुम-धारा । विहँसत जगत होइ उजियारा ॥
भए मँजीठ पानन्ह रँग लागे । कुसुम-रग थिर रहै न आगे ॥
अस कै अधर अभी भरि राखे । अबहि अछूत न काहू चाखे ॥
मुख तँबोल-रग धारहि रसा । केहि मुखि जोग जो अमृत बसा ॥

राता जगत देखि रँगराती । रुहिर भरे, आछहि विहँसाती ।।
अमी अधर अस राजा, सब जग आस करेइ ।
केहि कहँ कवॅल विगासा, को मधुकर रस लेई ।।

[इस अवतरण मे कवि ने अधरो की सुषमा और मधुरिमा का वर्णन किया है ।]

पद्मावती के अधर बड़े सुन्दर है ऐसा लगता है मानो वन्धूक सुन्दर विम्वाफल अधरों की अरुणिभा से लज्जित है । वे दुपहरी के फूल के समान लाल है । जव वह वोलती है तो मानो कि फूल झरते है । जव वह हँसती है तो दाँत रूपी हीरे अधर रूपी विद्रुम की कांति को अपनी शुभ्रता से जीत लेते है और ससार मे प्रकाश छा जाता है । पानो का रग लगने से वे होठ मजीठी रंग के हो जाते है । उनके आगे मजीठी के पुष्पो का रग भी फीका पड गया । वे अधर अमृत से छलक रहे है । उनका अभी तक किसी ने रसास्वादन नही किया है । मुख के ताम्वूल का रंग उन अधरों मे रम गया है । अमृत से बसे हुए उन अधरो के पान का सौभाग्य न मालूम किसे मिलेगाँ । उसके अधरों के रग को देख कर सम्पूर्ण ससार राग से रजित हो गया है ।

हे राजन् ! उसके अधरो का अमृत ऐसा है कि समस्त संसार उसकी कामना करता है । वह कंवल न मालूम किसके लिए खिला है, न मालूम कौन भ्रमर उसके रस का पान करेगा ।

टिप्पणी—विम्व सुरंग लाज वन फरे—यहाँ पर हेतुत्प्रेक्षा और प्रतीप का संकर है ।

फूल झरहि ज्यों ज्यों कह वाता—कवि ने यहाँ पर नायिका का भोलापन, उसकी वातो का मीठापन और स्वभाव की सरलता व्यञ्जित की है । यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है ।

हीरा लेइ सो विद्रुम धारा—यहाँ पर प्रतीपमान वस्तुत्प्रेक्षा अलङ्कार है ।

विहँसत जगत होत उजियारा—यहाँ पर प्रतीपमान, हेतुत्प्रेक्षा और असगति का सकर है । इस सकर से दिव्यता व्जञ्जित की गई है । अतः कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अलङ्कार से वस्तु व्यञ्जना है ।

भए······रँग लागे—यहाँ पर अनुगुण अलङ्कार है ।

राता जगत······विहंसाती—यहाँ पर तद्गुण एव कारणातिशयोक्ति अलङ्कारो का सकर है ।

केहि कँह कँवल विगासा···लेइ—यहाँ पर काकुवैशिष्ठ्य व्यङ्गय है । यहाँ कवि यह व्यञ्जित कर रहा है कि किसी वड़े भाग्यशाली व्यक्ति को ही यह अधर रस मिलेगा ।

दसन चौक वैठे जनु हीरा । औ विच-विच रंग स्याम गंभीरा ।।
जस भादौं निसी दामिनि दीसी । चमकि उठै तस वनी वतीसी ।।
वह सुजोति हीरा उपराही । हीरा जाति सो तेहि परिछाहीं ।।

जेहि दिन दसन जोति निरमई। वहुतै जोति जोति ओहि भई ॥
रवि ससि नरवत दिपहिं ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती ॥
जहँ-जहँ विहसि सुभावहि हँसी। तहँ-तहँ छिटकि जोति परगसी ॥
दामिनि दमक न सरवरि पूजी। पुनि ओहि जोति और को दूजी ॥
हँसत दसन अस चमके पाहन उठे झरक्कि।
दारिउँ सरि जो न कै सका फाटेउ हिया दरक्कि ॥

[इस अवतरण मे कवि ने दाँतो का वर्णन किया है।]

आगे के चार दाँत ऐसे लगते है मानो कि हीरे जड़े हो। उनके वीच-वीच मे मिस्सी का गहरा श्याम रग जैसे भादो की रात मे विजली चमकती है वैसे ही मिस्सी लगी है। वत्तीसी चमक रही है वह ज्योति हीरे से वढ कर है। हीरे तो उसी की प्रतिच्छाया से चमकते है जिस दिन दसन की ज्योति वनी थी उस दिन उसकी ज्योति से कितनी ही ज्योतियाँ उत्पन्न हुई। उसी ने सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रो को ज्योति दी। रतन, पदार्थ, माणिक्य और मोती सब उसी से ज्योति लाभ करते हैं। वह जहाँ सहज भाव से विहसती है वहाँ ज्योति विखर पडती है। दामिनी दमक कर उसकी समता नही कर पाती। फिर और दूसरी कौन सी ज्योति है जो उसकी समता कर सकती है।

हँसते हुए दाँत ऐसे चमकते है कि पत्थर झलक उठे (अर्थात् रत्न वन गये) अनार वेचारा जव समता न कर सका तो उसका हृदय दरक कर फट गया।

टिप्पणी—वह जो जोति……हीरा उपराही—यहाँ पर प्रतीप अलङ्कार है।

हीरा दीपहि सो तेहि परिछाही—यहाँ सिद्धास्पद हेतुत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

रवि ससि नखत दिपहि ओहि जोती……रतन पदारथ मानिक मोती—यहाँ पर भी सिद्धास्पद हेतुत्प्रेक्षा है।

ओहि—इसमे सवृत्ति वक्रता है।

कवि ने ज्योति की दिव्यता व्यञ्जित की है। इसीलिए यहाँ रहस्यवाद है।

दामिनि ……पूजी—यहाँ प्रतीप अलङ्कार है।

पुनि ओहि ज्योति ……दूजी—यहाँ पर काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यङ्ग्य है।

हंसत……झरक्कि—सिद्धास्पद हेतुत्प्रेक्षा है।

दारिऊ……दरक्कि—यहाँ पर सिद्धास्पद हेतुत्प्रेक्षा है और प्रतीप अलङ्कार का संकर है।

रसना कहौ जो कह रस वाता। अमृत-वैन सुनत मन राता ॥
हरै सो सुर चातक कोकिला। विनु वसत यह वैन न मिला ॥
चातक कोकिल रहहिं जो नाही। सुहि वह वैन लाज छिप जाही ॥
भरे प्रेम रस वोलै वोला। सुनै सो माति घूमि कै डोला ॥

चतुर वेद-मत सब ओहि पाहाँ । रिग, जजु, साम अथरवन माहाँ ।।
एक-एक बोल अरथ चौगुना । इन्द्र मोह बरम्हा सिर धुना ।।
अमर, भागवत, पिगल गीता । अरथ बूझि पडित नही जीता ।।
भासवती औ ब्याकरन, पिगल पढ़ै पुरान ।
बेद-भेद सौ बात कह, सुजनन्ह लागै बान ।।

[इस अवतरण मे रसना का वर्णन किया गया है ।]

अब मै रसना का वर्णन करता हूँ वह रस भरी बात कहती है । उसकी अमृत वाणी सुन कर मन मुग्ध हो जाता है । उसका स्वर चातक और कोकिल के स्वर को परास्त करता है । चातक और कोकिल की वाणी बिना वसन्त के नही मिलती किन्तु इसकी मधुर वाणी सदैव रहती है । चातक और कोकिल जो समय-समय पर चले जाते है वह मानो उसकी वाणी को सुन कर लज्जित होकर छिप जाते है। वह प्रेम रूपी अमृत से भरे वचन बोलती है । जो उसकी वाणी को सुनता है वह उन्मत्त हो चपल हो उठता है । ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद चारो वेदो की बुद्धि सब उसके पास है एक एक बोल के चौगुने अर्थ निकलते है । उसके वचनो की व्यञ्जना पर इन्द्र मोहित है और ब्रह्म मुग्ध होकर सिर डुलाने लगते है । वह अमरकोष, भागवत, पिगल शास्त्र, गीता इन सबकी इतना अच्छा अर्थ करती है कि कोई पण्डित शास्त्रार्थ नही कर सकता है ।

वह भास्वती, ज्योतिप, व्याकरण, पिगल और पुराणो का पाठ करती है । वेद के रहस्य के विषय मे वह कभी ऐसे वचन कहती है कि सुनने वालो के हृदय मे वाण चुभ जाते है ।

टिप्पणी—बिनु बसन्त ˙ मिला—डा० अग्रवाल ने इसका पाठान्तर दिया है । **'बीन बंस वह बैन न मिला ।'** अर्थात् वह स्वर बीन और बाँसुरी मे भी नही मिलता । मुझे तो शुक्ल जी का पाठ ही अधिक उपयुक्त लगता है । यहाँ विनोक्ति अलङ्कार से व्यतिरेक अलङ्कार व्यङ्ग्य है । अत. कवि प्रौढोक्ति सिद्ध अलङ्कार से अलङ्कार ध्वनि है ।

चातक कोकिल·······छपि जाहीं—यहाँ पर हेतुत्प्रेक्षा और प्रतीप अलङ्कार का सकर है ।

एक-एक बोल अरथ चौगुना—यहाँ पर कवि ने काव्य के स्वरूप के सम्बन्ध मे अपना दृष्टिकोण प्रगट किया है । उनकी दृष्टि मे काव्य वही है जिसमे व्यङ्ग्य की प्रधानता है ।

पुनि बरुनौ का सुरंग कपोला । एक नारंग दुइ किए अमोला ।।
पुहुप पंक रस अमृत साँधे । केइ मह सुरंग खरौरा बाँधे ।।
तेहि कपोल बाएँ तिल परा । जेइ तिल देखि सो तिल-तिल जरा ।।

जनु घुँघची ओहि तिल करमुहीं । विरह वान साधे सामुहीं ।।
अगिनि वान जानों तिल सूझा । एक कटाछ लाख दस जूझा ।।
सो तिल गाल मेटि नहि गएऊ । अव वह गाल काल जग भएऊ ।।
देखत नैन परि परिछाही । तेहि ते रात साम उपराहीं ।।
सो तिल देखि कपोल पर गगन रहा ध्रुव गाड़ि ।
खिनहि उठै खिन वूड़ै, डोलै नहिं तिल छाँड़ि ।।

[प्रस्तुत अवतरण मे कवि ने नायिका के कपोलो का वर्णन किया है ।]

कवि कहता है कि सुन्दर कपोलो का वर्णन कहाँ तक करूँ । वे दोनो कपोल ऐसे लगते है मानो कि एक नारगी के दो टुकडे हो । फूलो के पराग का रस अमृत के मान सुन्दर वनाई गई । उसके कपोल पर वायी ओर तिल है । जो उसको देखता है वह विरह मे तिल-तिल जलने लगता है । ऐसा लगता है घुंघची का जो मुख काला है वह उसी से काला है वह तिल सीधा सामने की ओर साधा हुआ विरह वाण है । वह तिल अग्नि वाण सा दिखाई देता है । एक कटाक्ष पर लाख दो लाख जूझ जाते है । अव वही गाल ससार के लिये काल रूप हो गया है । नेत्रो ने जैसे ही उस गाल के तिल को देखा उसकी परछाई ही नेत्रो मे पड गई हे इसी से वे भीतर से काले और वाहर से लाल दीखते है ।

कपोल के उस तिल को देख कर आकाश मे ध्रुव स्थिर होकर रह गया है । वह अपने स्थान से तिल भर नही हटता । वह कभी अस्त होता और कभी उदित होता है जिससे पराजित होने पर वह उद्विग्नता से उदय-अस्त होता रहता है ।

टिप्पणी—जेइ तिल देख……जरा—यहाँ पर विभावना और अतिशयोक्ति का सकर हैं ।

एक कटाक्ष लाख दस जूझा—यहाँ पर भी विभावना और अतिशयोक्ति का सकर है ।

जनु घुँघची· ·· कलमुही—यहाँ हेतुत्प्रेक्षा अलङ्कार है ।

गाल काल जग भएऊ—इसमे वर्ण विन्यास वक्रता है ।

देखत नैन ……परिछाहीं—यहाँ पर भी हेतुत्प्रेक्षा है ।

सो तिल…· ···छाड़ि—यहाँ असिद्धास्पद हेतुत्प्रेक्षा है ।

स्रवन सीप दुई दीप सँवारे । कुँडल कनक रचे उजियारे ।।
मनि कुँडल झलकै अति लोने । जनु कौधा लौकहि दुइ कोने ।।
दुहुँ दिसि चाँद सुकज चमकाही । नखतन्ह भरे निरखि नहि जाही ।।
तेहि पर खूँट दीप दुइ वारे । दुइ ध्रुव दुऔ खूँट पैसारे ।।
पहिरे खुभी सिघल दीपी । जनो भरी कचपचि आ सीपी ।।
खिन-खिन जवहि चीर सिर गहै । कांपति वीजु दुऔ दिसि रहै ।।

डरपहि देवलोक सिघला। परै न वीजु टूटि एक कला ।।
करहि नखत सव सेवा स्त्रवन दीन्ह अस दोउ।
चाँद सुकज अस गोहने और जगत का कोउ ।।

[प्रस्तुत अवतरण मे कवि ने कानो के सौन्दर्य का वर्णन किया है।]

कान रूपी सीपियो मे मानो दो दीपक प्रज्वलित है। उनमे वह स्वर्ण की दैदीप्यमान कुण्डल पहने हुये है। मणि जटित कुण्डल चमकते हुए अत्यन्त सुन्दर लगते हैं। वे ऐसे लगते है मानो कि दोनो तरफ चाँद और सूरज लटक रहे हो। चुन्नी रूपी नक्षत्रो की सुपमा देखी नही जाती। उनके ऊपर की ओर खूँट नामक आभूपण दो दीपक की भाँति दैदीप्यमान है। वे ऐसे प्रतीत होते है मानो कि दोनो तरफ दो ध्रुव नक्षत्र जड दिये गये है। वह सिहलद्वीप खुम्भी पहने हुये है। वह ऐसी लगती है मानो कि सीपियो रूपी आकाश मे कचपची (कृत्तिका) हो। क्षण-क्षण मे वह जब वस्त्र सिर पर सम्भालती है तो कुण्डल हिलते है। ऐसा लगता है मानो कि दोनो दिशाओ मे बिजली चमक गई है। सिहलद्वीप के लोग डरते है कि कही इसकी कोई कला सिहलद्वीप पर न गिर पड़े।

दोनो कान जडाऊ नगो से ऐसे चमकते है मानो सव नक्षत्र सेवा कर रहे हो। चाँद और सूर्य ऐसे उसके आभूषण है।

टिप्पणी—उजियारे—यहाँ पर उपचार वक्रता है। यह शव्द दैदीप्यमान के अर्थ मे प्रयुक्त है।

मन चमकहि अति लोने—यहाँ पर लोने का अर्थ सुन्दर है। यह अर्थ पदगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से लिया गया है। सौन्दर्य की अतिशयता ही यहाँ व्यङ्ग्य है।

दुहु दिसि चाँद सुरज चमकाही—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलङ्कार है। यहाँ पर पर्याय वक्रता भी है। चाँद और सूरज से एक योगिक अर्थ की व्यञ्जना भी होती है। कवि कहना चाहता है कि वह सिद्धराजयोगिनी है।

नखतन्ह भरे निरख नही जाही—यहाँ पर सहस्त्राचार की ओर सकेत किया गया है। क्योकि जिन दिव्य ज्योतिरिङ्गणो का वर्णन किया है उनकी झलक सहस्त्राचार में ही दिखाई पड़ती है।

डरपहि देव लोक सिघला—यहाँ पर देवताओ के डरने की बात कह कर कवि ने पद्मावती के व्यक्तित्व की विराटता और दिव्यता व्यञ्जित की है। इसीलिए रहस्य भावना है। यहाँ कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध वस्तु से वस्तु ध्वनि है।

परै न वीज टूटि—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। लक्षण-लक्षणा से विपत्तिपरक अर्थ किया गया है। विध्वसकारी प्रभाव की अतिशयता ही व्यङ्ग्य है।

खूँट—कान का एक गहना।

खुम्भी—कुकुरमुत्ते की टोपी वाला एक आभूषण जो कान मे पहना जाता है।

वरनौ गीव कंवु कै रीसी। कंचन तार लागि जनु सीसी ॥
कुदै फेरि जानु गिउ काढी। हरी पुछार ठगी जनु ठाढी ॥
जनु हिय काढि परेवा ठाढा। तेहि तै अधिक भाव गिउ वाढा ॥
चाक चढ़ाइ साँच जनु कीन्हा। वाग तुरग जानु गहि लीन्हा ॥
गए मयूर तमचूर जो हारे। उहै पुकारहि साँझ सकारे ॥
पुनि तेहि ठाँव परी तिनि रेखा। घूँट जो पीक लीक सव देखा ॥
धनि ओहि गीउ दीन्ह विधि भाऊ। दहुँ कासौ लेइ करै भेराऊ ॥
कटासिरी मुकुतावली सो है अभरन गीउ।
लागै कंठहार होइ को तप साधा जीउ ॥

[इस अवतरण मे कवि ने ग्रीवा का वर्णन किया है।]

अव मैं उसकी ग्रीवा का वर्णन करता हूँ। वह शख से ईर्ष्या करने वाली ऐसी शोभायमान थी मानो कि शीशी मे कंचन का तार लगा हो। वह ऐसी सुडौल है मानो कि खराद पर चढा कर वनाई गई हो अथवा वह मोरनी ग्रीवा से भी अधिक सुन्दर लग रही है जिसके कारण मोरनी ठगी सी दीखती है। छाती फुला कर खड़े हुए कवूतर की ग्रीवा से भी अधिक उसकी ग्रीवा सुन्दर है। वह ऐसी सुडौल है मानो कि चाक पर चढा कर गढी गई हो। अथवा उसकी सुन्दरता की उपमा उस घोड़े की गर्दन से की जा सकती है जो वागडोर खीचने पर खडी हो जाती है। उसकी ग्रीवा से मयूर और तमचूर जो ग्रीवा की सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध है पराजित हो गये। इसीलिए साय प्रात बोलते है। फिर उसकी ग्रीवा मे तीन रेखाये पडी है। जव वह पान की पीक निगलती है तो वह वाहर से साफ दिखाई देती है। ब्रह्मा ने उस ग्रीवा में विलक्षण शोभा भरी है। न मालूम उसका आलिगन किससे होगा।

वह कठसिरी और मोती माला यह दो आभूपण पहने हुये है। न मालूम किसने इतनी तपस्या की है जो उसके आलिङ्गन का सुख प्राप्त करेगा।

टिप्पणी—पहली पक्ति के क पाठान्तर मिलते है। (१) डा० अग्रवाल का पाठ इस प्रकार है—

वरनौ गीउ कूज कई रीसी।
कचन तार लागे जन सीसी ॥

इसका अर्थ सुधाकर जी ने इस प्रकार दिया है—वह ग्रीवा वन के कश्या की ग्रीवा से ईर्ष्या करने वाली है।

डा० अग्रवाल ने इसका अर्थ इस प्रकार दिया है। मैं अब उसकी ग्रीवा का वर्णन करता हूँ जो क्रौंच पक्षी की ग्रीवा के सदृश है।

मुझे शुक्ल जी का पाठ ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

कंचन तार लागु जनु सीसी—डा० अग्रवाल ने इसका पाठान्तर इस प्रकार दिया है।

'कंज नार जनु लागेउ सीसी।'

इसका अर्थ उन्होने दिया है। अथवा कमल की नाल मानो शीशी मे लगा दी गई हो।

हरी पुछार ठगी जनु ठाढ़ी—यहाँ पर प्रतीप अलङ्कार है।

तेहि ते अधिक भाव गिउ बाढ़ा—यहाँ पर भाव शब्द सौन्दर्य का वाचक है। यहाँ प्रकरण जन्य अभिधा मूला शाब्दी व्यजना है।

गए मयूर तमचूर.... सकारे—यहाँ पर प्रतीप और हेतूत्प्रेक्षा का सकर है।

कनक दण्ड दुइ भुजा कलाई। जानौ फेरि कुँदेरै भाई।।
कदलि-गाभ कै जानौ जोरी। औ राती ओहि कँवल हथोरी।।
जानो रकत हथोरी बूडी। रवि परभात-तात, वै जूड़ी।।
हिया काढि जनु लीन्हेसि हाथा। रुहिर भरी अँगुरी तेहि साथा।।
औ पहिरे नग-जरी अँगूठी। जग विनु जीउ, जीउ ओहि मूठी।।
बाँहू कंगन, टाड़ सलोनी। डोलत बाँह भाव गति लोनी।।
जानौ गति बेड़िन देखराई। बाँह डोलाइ जीउ लेइ जाई।।
भुज उपमा पौनार नहि, खीन भएउ तेहि चित।
ठाँवहि ठाँव वेध भा, अवि साँस लेइ नित।।

[इस अवतरण मे कवि ने दोनो भुजाओ और कलाइयो का वर्णन किया है।]

दोनों भुजाएँ और कलाइयाँ स्वर्ण दण्ड की भाँति है। ऐसा लगता है कि उन्हे खरादी ने खराद पर चढ़ा कर सुडौल किया है। वे इतनी चिकनी और सुडौल है मानो कि केले के खम्भे की जोड़ी हो। उसकी लाल हथेलियाँ ऐसी लगती है मानो कि रक्त मे डूबी हुई हो। उसकी लाली अरुण जैसी भी नही कह सकते क्योकि अरुण तो गर्म और हथेलियाँ शीतल है। ऐसा लगता है कि हृदय निकाल कर हाथ मे लिया हो जिससे उसकी उँगुलियाँ रक्त रजित लाल हो रही है। उंगलियो मे रत्न जडित अगूठियाँ पहने है। संसार विना प्राण के है क्योकि प्राण तो उसने अपनी मुठी मे रख रखे है। उसकी भुजा कगन और टड्डो से सुशोभित है। वह अपनी बाँह बडे सुन्दर

ढंग से घुमाती है वह अपने हाव भाव से ऐसा मुग्ध करती है मानो कि कोई नटिनी अपनी कला दिखाकर मन को मुग्ध कर देती है।

उसकी भुजा की उपमा पद्म नाल से नहीं दी जा सकती वह बेचारी इसलिए क्षीण पड़ गई है उसके हृदय मे स्थान-स्थान पर छेद हो गये हैं। वह ऊँची होकर नित्य गहरी साँस भरती है।

टिप्पणी—(१) **कनक दण्ड भई भुजा कलाई**—यहाँ पर सारोपा गौणी लक्षणा लक्षणा से कवि ने लक्षित किया है कि उसकी कलाई स्वर्ण दण्ड के समान सुन्दर है।

रवि परभात तात वै जूडी—यहाँ पर व्यतिरेक अलङ्कार है।

जग विनु जीव जीव ...ओहि मूठी—यहाँ विनोक्ति और परिसख्या के संकर से वस्तु व्यञ्जना है। वस्तु व्यग्य है कि वह इतनी भयानक सुन्दरी है कि सबके प्राणो का अस्तित्व उसके रूप के आधीन है। जीव ओहि मूठी मे अत्यन्त तिरष्कृत वाच्य ध्वनि है। यहाँ पर उसके रूप की अतिशयता व्यग्य है। लक्ष्यार्थ है कि सबका जीवन उसके कृपा कटाक्ष पर आश्रित है। इस प्रकार यहाँ कवि प्रौढोक्ति सिद्ध अलङ्कार से वस्तु ध्वनि है।

भुज उपमा पौ नारि नहिं · नित—यहाँ पर प्रतीप और हेतुप्रेक्षा का सकर है।

हिया थार, कुच कचन लारु। कनक कचोर उठे जानु चारु ॥
कुदन वेल साजि जनु कूँदे। अमृत रतन मोन दुइ मूँदे ॥
वेधे भौर कट केतकी। चाहहि वेध कीन्ह कंचुकी ॥
जोवन वान लेहि नहि वागा। चाहहि हुलसि हिये हठ लागा ॥
अगिनि-वान दुइ जानौ साधे। जग वेधहि जौ होहि न वाधै ॥
उतंग जँभीर होइ रख वारो। छुइ को सकै राजा के वारी ॥
दारिउँ दाख फरे अनचाखे। अस नारग दहुँ का कहँ राखे ॥
राजा वहुत मुए तपि लाइ लाइ भुइँ माथ।
काहू छुवै न पाए, गए मरोरत हाथ ॥

[इस अवतरण मे कवि ने नायिका के उर और उरोजो का वर्णन किया है।]

नायिका के उर मे उभरे हुए उरोज ऐसे प्रतीत हो रहे है मानो थाल मे दो सोने के लड्डू रक्खे है। वे ऐसे सुन्दर लगते है (हृदय रूपी थाल) मे दो उभरे हुए सुन्दर दो कटोरे रक्खे हो या दो सोने की कचोड़ी हो। वे गोल और सुडोल है। मानो सोने के बिम्वफल खराद पर चढाए गए हो और फिर दोनो कलसो को अमृत से भर कर रत्नो मे मुद्रित कर दिया हो (यहाँ स्तन के नीचे का उठा हुआ गोल भाग कलस है और कुचाग्र उस कलस के मुख के रत्नमय ढक्कन है) वे काले कुचाग्र ऐसे मालूम पड़ते हैं मानो कि केतकी के कटक से भ्रमर विद्ध हो गए है। इसीलिए केतकी के पुष्प के

ऊपर अटके हुए है। नीचे के स्तन भाग केतकी के फल के समान है। उन पर काले कुचाग्र कंटक विद्ध भ्रमर के समान है। वे कुचाग्र ऐसे नुकीले है कि चोली बेध कर निकलना चाहते है वे जोवन (कुच) वाण के सदृश है। वे वाग नही मानते अर्थात् वस मे नही आते। वे हुलस कर किसी के हृदय मे लगना चाहते हैं। वे ऐसे लगते है जैसे सधाने हुए अग्नि वाण हो। यदि वधे न होते को सारे ससार को वेध डालते। उन ऊँचे जमीरी नीबुओं की रख वाली होती है। राजा की वगीची मे उन्हे कौन छू सकता है। व्यजना है कि राजा की कन्या के स्तन छूने का साहस कौन कर सकता है।

स्तन और उसके अग्र भाग ऐसे है जैसे अगूँर और अनार फले हो जिन्हे किसी ने चखा नही ऐसे नारगी फल न मालूम किसके लिए वने है।

हे राजन अनेक लोग तप करके और पृथ्वी पर माथा टेक-टेक मर गए किन्तु उन कुचो कको छू न सके और हाथ मरोरते अर्थात् निराश होते चले गए।

टिप्पणी—छुई को सकै राजा की वारी— यहाँ पर सम्पूर्ण वाक्य मे का स्वाक्षिप्त गुणी भूत व्यङ्ग्य है। वारी मे शव्द शक्ति उद्भव अनुरणान ध्वनि है। वारी से वगीची अभिधेयार्थ के अतिरिक्त राजा की कन्या का भी अर्थ निकलता है।

राजा— यहाँ शव्द शक्ति उद्भव अनुरणान ध्वनि है। राजा से कवि राजयोगी की व्यजना करना चाहता है।

गए मरोरत हाथ— यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाक्य गत वाच्य ध्वनि है। नैराश्याधिक्य ही यहाँ व्यङ्ग्य है।

पेट परत जनु चंदन लावा। कुहुँ कहुँ केसर वरन सुहावा।।
खीर अहार न कर सुकुवाँरा। पान फूल के रहै अधारा।।
साम भुअगिनि रोमावली। नाभी निकसि कवल कह चली।।
आइ दुऔ नारग विच भई। देखि मयूर ठमकि रह गई।।
मनहुँ चढी भौरन्ह पाँती। चदँन खाँभ बास के मोती।।
की कालिदी विरह सताई। चलि पयाग अरइल विच आई।।
नाभि कुड विच वारानसी। सोह को होइ, मीचु तहँ वसी।।
सिर करवत, तन करसी वहुत सीझ तन आस।
वहुत धूम घुटि घुटि मुए उत्तर न देहि निरासा।।

[इस अवतरण मे कवि ने नायिका के पेट की रोमावलियो का एव त्रिवलियो की शोभा का वर्णन किया है।]

कवि कहता है कि नायिका का पेट मानो चन्दन का पत्र है। उसका वर्ण कुमकुम और केसर जैसा है। वह इतनी सुकुमारी है कि क्षीर का आहार भी नही करती वह तो केवल पान फूल के सहारे रहती है। रोमावली काली नागिन है जो

नाभी रूपी कवल से निकल कर मुख विवर की ओर जा रही है। वह स्तन रूपी दोनो नारंगियो के बीच मे चली किन्तु ग्रीवा रूपी मयूर देखकर ठिठक गई वह रोमावली ऐसी लग रही थी मानो कि चन्दन के खम्भे की सुरभि से उन्मत्त हो भौरो की पक्ति उस पर चिपट गई हो। अथवा कालिन्दी जो कि विरह की सताई हुई है। प्रयाग होती हुई अरैल मे पहुँच गई है उसका नाभि कुण्ड बनारस है। यहीं पर लोग काशी करवट (करपत्र) लेते है। वहाँ मृत्यु रहती है उसके सामने जाने का साहस किसका हो सकता है ?

टिप्पणी—(१) पेट परत जनु चन्दन लावा—यहाँ पर पेट के लिए जो उपमान कवि ने प्रयुक्त किये है वे शुद्ध भारतीय हैं। चन्दन, केसर, आदि के उपमान सर्वथा भारतीय है।

खीर अहार न कर सुकुवाँरा—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाक्यगत वाच्य ध्वनि है। कवि का व्यङ्ग्य सौकुमार्य की अतिशयता है।

पान फूल के रहै अधारा—यहाँ पर अर्थान्त संक्रमित वाच्य ध्वनि है। पान फूल से कवि का अभिप्राय है बहुत हल्का भोजन।

स्याम भुअंगनि रोमावली‥ ‥ रह गई—यह कल्पना कवियो मे बड़ी प्रतिष्ठित रही है। सर्व प्रथम इसके दर्शन हमे विद्यापति मे होते है। उन्होने इस कल्पना को अपने ढग पर साकार किया है।

नाभि विवर सई रोम लतावलि
भुजंग निसास पियासा
नासा खगपति चंचु भरम भई
कुच कन्दर गिरि वासा

यह चित्र सूफी कवियो को बडा प्रिय लगा और वे उसे अपनी प्रतिभा के साँचे मे ढालकर नव रूप प्रदान करने लगे। मंझन ने अपनी मधुमालती मे लिखा है।

रोमावलि नागिन विस भरी
बेवेरहुँ ते गिरि अनुसरी
नाभि कुड मँह परी जो आई
धूमि रही पै निसर न जाई॥

इसी परम्परागत कल्पना को कवि ने अपनी प्रतिभा के स्पर्श से चमत्कृत कर दिया है। विद्यापति मझन और जायसी इन तीनो ने ही एक ही कल्पना को अपने-अपने ढंग पर साकार करने की चेष्टा की है। किन्तु जायसी के चित्र मे रसात्मकता और काव्यत्व की मात्रा उपर्युक्त कवियो की अपेक्षा अधिक है। विद्यापति ने रोमावली (जो स्त्री वाचक शब्द है) पुरुष 'वाचक भुजग का प्रतीक प्रयुक्त किया है जो

सर्वथा अनुचित है। जायसी ने प्रतीक गत इस अनौचित्य का परिहार अपने चित्र में किया है। उन्होने भुजंग के स्थान पर भुजगिनि का प्रयोग किया है। मझन के चित्र मे कवि ने रोमलतावली रूप भुजगिनि का नाभि कुण्ड मे गिरना दिखाया जिससे उक्ति मे अस्वाभाविकता आ गई है जायसी के चित्र मे न तो अस्वाभाविकता है और न किसी प्रकार का अनौचित्य है। रोमलतावलि नागिनी का कमल की शीतलता से और सुरभि के मोह से मुग्ध होकर उसकी ओर उन्मुख होना बड़ा स्वाभाविक व्यापार है। रूपक रूपकातिशयोक्ति के प्रयोग से उक्ति मे चार चाँद लग गये है। फिर उसका ग्रीवा रूपी मयूर को देखकर ठिठक जाना स्वाभाविक व्यापार है। कवि ने रूपकातिशयोक्ति और हेतूत्प्रेक्षा के प्रयोग से उक्ति का सौन्दर्य द्विगुणित कर दिया है।

उपर्युक्त चित्र की परम्परा हिन्दी कवियो को सस्कृत से मिली थी किसी सस्कृत के कवि ने लिखा है कि—

वदनकञ्जभगाद्विलनाभिस्तनु रुहावलि रूप सुसुर्पिणी।
अथ समीक्ष्य मयूर शिरोधरां स्थितवती भय स्तनयो तटे॥

अर्थात् रोमलतावलि रूपी सर्पिणी नाभि रूपी बिल से निकल कर मुख रूपी कवल को जा रही है किन्तु मयूर को देखकर वह बेचारी दोनो स्तनो के बीच मे ठिठक गई है। सस्कृत कवियो में इस कल्पना की अभिव्यक्ति और भी अनेक रूपो मे मिलती है विस्तार भय से दूसरी उक्तियाँ उद्धृत नही की जा रही है।

की कालिन्दी ······विच आई—यह उत्प्रेक्षा थोडी दुरुह है। कवि कहता है कि रोमावली रूपी जमुना जी प्रयाग से होकर अरइल मे पहुँच गई **'चल प्रयाग अरइल विच आई'** अरइल वह स्थान है जहाँ जमुना गगा से मिलती है उसके दोनों ओर पहाड़ियाँ सी है। यहाँ सफेद मोतियो की माला जो नायिका के गले मे पडी है और कुचों का आलिङ्गन कर रही है वही गगा जी है। वह रोमावली कुचो के बीच मे स्थित उसी हार के समाप्ति स्थान पर आकर रुक जाती है। कवि ने इसी के लिए अरइल की उत्प्रेक्षा की है।

नाभि कुंड विच वारानसी·······तह बसी—उस रोमावली का उद्भव स्थान नाभि कुण्ड वाराणसी के उस कुण्ड के सदृश है जहाँ लोग काशी करवट लेते है। अत उस कुण्ड तक दृष्टि डालने का साहस कौन कर सकता है वहाँ पर जाने वाले को करपत्र से चिरवा मृत्यु का आलिङ्गन करना पडता है।

सिर करवत ······निरास—इस प्रकार की दिव्य सुन्दरी की प्राप्ति कामना से सैकड़ो ने अपने ओर से चिरवा डाला, बहुत से जगली कण्डो पर अपने शरीर को भस्म कर देते है। इस प्रकार शरीर को भस्म करने को सीझना कहते हैं। तुलसी लिखित 'गीध अजामिल गणिकादिक ले करसी प्रयाग कब सीझे' पक्ति मे सीझे शब्द का प्रयोग मिलता है।

मध्य युग मे धूम्रपान करने वाले साधक भी होते थे। कुछ लोगो का कहना

है कि पचाग्नि तपस्या मे धुएँ मे घुट-घुट कर मर जाते थे। कुछ दूसरे लोगो का कहना है कि वहुत से लोग उल्टे लटक कर नीचे से अग्नि जला देते थे और उस धुएँ से अपने प्राणो को घोट देते थे किन्तु पद्मावती ऐसी निर्मम थी कि उनमे से किसी पर भी द्रवित नही होती थी।

विशेष—यहाँ पर कवि ने हठ सावनाओ के विविव रूपो की वर्णना की है। ओर प्रेम मार्ग मे उनकी निरर्थकता प्रर्दशित की है।

करपत्र सावना की मध्य युग मे वडी प्रतिष्ठा थी। मझन ने भी लिखा है।

"के प्रयाग गए करवत सारा"

बैरिन पीढि लीन्हि वह पाछे। जनु फिरि चली अपछरा काछे॥
मलयागिरि कै पीठि सँवारी। वेनी नागिन चढी जो कारी॥
लहरै देति पीठि जनु चढी। चीर अहार केंचुली मढी॥
दहुँ का कहँ अस वेनी कीन्ही। चदन वास भुअगं लीन्ही॥
किरसुन करा चढा ओहि माथे। तव सो छुट, अव छुटै न नाथे॥
कारे कंवल गहे मुख देखा। ससि पाछे जनु राहु विसेखा॥
को देखै पावै वह नागू। सो देखै जेहि के सिरभागू॥
पन्नग पंकज मुख गहे खंजन तहाँ वईठ।
छत्र सिघासन, राज धन ताकहँ होइ जो डीठ॥

[इस अवतरण मे पीठ के सौन्दर्य का वर्णन किया गया है।]

उस पद्मावती ने पीठ रूपी वैरिन को पीछे कर लिया है पीछे से उसकी पीठ इतनी शोभायमान है जैसे की शृंगार की हुई अप्सरा की पीठ हो जो कि मुड़कर चल दी हो। वह पीठ इतनी सुन्दर और सुरभिमय है मानो कि मलयागिरि के चन्दन की वनी हो उस पर पडी हुई वेणी ऐसी लगती है मानो कि मलयागिरि के चन्दन पर नागिनि चढी हुई। हो वह ऐसी लगता है कि लहरे ले रही हो उसके ऊपर जो साडी पड़ी हुई है वह ऐसी लगती है मानो कि उस पर केंचुली चढी हो। न मालूम वह वेणी किसके लिए वनी है। उसकी चन्दन जैसी पीठ भी सुरभि वेणी रूपी नागिनी ले रही है। उस वेणी रूप नागिनी पर कृष्ण कला करके चढे थे तव तो वह मुक्त हो गई थी किन्तु अवकी जिस कृष्ण ने उसे पकडा वही उसका स्वामी वना उसे किसी प्रकार नही छोडेगा। वेणी से मुक्त पद्मावती का मुख कमल ऐसा शोभायमान हो रहा है मानो कि काले नाग के मुख मे कमल हो अथवा ऐसा लगता था कि चन्द्रमा के पीछे कोई विशेप राहु दिखाई पड़ता है। उस नाग की मुद्रा किसे देखने को मिलती है जो देखता है उसका सौभाग्य होता है। वह मुद्रा इस प्रकार है—

सर्प के मुख मे कमल है उस मुख कमल पर दो नेत्र रूपी खजन पक्षी बैठे है। इस रूप मे यदि किसी को नाग का दर्शन हो जाय तो वह सम्राट हो जाता है।

टिप्पणी—वैरिन पीठ·······पाछे—कवि ने पीठ को वैरिन इसलिये कहा है कि उसके कारण वहुत से प्रेमी रूप-मुग्ध होकर उसके पीछे हो जाते थे उनसे पिड छुडाना उसके लिए कठिन हो जाता है।

अब छूट न नाथे—यहाँ नाथ शब्द मे शब्द शक्ति उद्भूव अनुरणन ध्वनि है। नाथ का साधारण अर्थ नकेल डालना लिया गया है किन्तु कवि ने नाथ से पति की भी व्यंजना की है। उसने व्यञ्जित करने की चेष्टा की है कि द्वापर में कृष्ण ने नागिनी को नाथ कर छोड़ दिया था किन्तु तुम्हारा पति तुम्हे एक वार पाकर फिर कभी नही छोडेगा।

ससि पाछे जनु राहु विशेखा—वहुत से लोगो की धारणा है कि राहु सर्पाकार है। वारह मिहिर ने अपनी सहिता मे लिखा है 'भुजङ्गमाकारमम् प्रदिशन्ति अन्ये' मुख के पीछे पडी हुई वेणी ऐसी लगती है मानो कि चन्द्रमा के पीछे राहु पड़ा हो।

पन्नग पंकज ·····डीठ—इस उक्ति से जायसी के ज्योतिष ज्ञान का परिचय मिलता है। वारह मिहिर की सहिता मे उपलव्व निम्नलिखित शव्दो मे इसी तथ्य की व्यञ्जना की गई है।

अज्जेय मूर्धसु च वाजि गजोरगाणां।
राज्यप्रदः कुशल कृच्छ चिशाद्वलेषु॥
भस्मास्थि काष्ठं तुष केशं तृणेषु दुखं छण्ठः।
करोति खलु खज्जन कोद्वमेकम्॥

लक पुहुमि अस आहि न काहु। केहरि कहौ न ओहि सर ताहू॥
वसा लंक वरनै जग झीनी। तेहि ते अधिक लंक वह खीनी॥
परिहँस पियर भए तेहि वसा। लिए डंक लोगन्ह कह डसा॥
मानहु नाल खंड दुई भए। दुहूँ विच लंक-तार रहि गए॥
हिए के मुरे चले वह तागा। पैग देत कित सहि सक लागा॥
छुद्र घंटिका मोहहि राजा। इन्द्र अखाड आइ जनु वाजा॥
मानहुँ वीन गहे कामिनी। गावहि सवै राग रागिनी॥
सिघ न जीता लंक सरि, हारि लीन्ह वनवासु।
तेहि रिस मानुस-रकत पिय, खाइ मारि कै माँसु॥

[इस अवतरण मे कवि ने नायिका की कटि की सुषमा का वर्णन किया है।]
संसार मे ऐसी सुन्दर कटि किसी की है ही नही। यदि सिह की कटि से उपमा

दी जाये तो भी ठीक नही है क्योकि वह उसकी समता नही कर सकता। बर्रे की कमर ससार मे सबसे अधिक पतली वताई जाती है। किन्तु पद्मावती की कटि बर्रे की कमर से भी अधिक दुर्वल है। इसी ईर्ष्या से बर्रे पीली पड गई है और डक लेकर लोगो को डसती फिरती है। उसके सुन्दर वेश मे उसकी कटिता की क्षीणता देखकर ऐसा लगता है मानो कि कमल नाल वीच से टूट गई हो और एक तार मात्र वीच मे लगा रह गया है वही मानो कटि है। वह तार के समान क्षीण कटि हृदय के स्पन्दन मात्र से मुड जाती है। जव वह पैर उठाकर चलेगी तो उसकी कटि का क्या होगा। कटि मे पडी हुई क्षुद्र घटिकाये हे राजा सव को मोह लेती है। ऐसा लगता था मानो कि इन्द्र का अखाडा साज बाज के साथ उतर आया हो। ऐसा लगता था कि सव राग रागनी एक साथ गा रही हो।

सिह अपनी कटि से उस कटि की सुपमा को जीत नही सका इसी लिए पराजित होकर उसने बनवास ले लिया हो। सम्भवतः उसी क्रोध से वह मनुष्यो को मार कर रक्त पीता है।

टिप्पणी—परिहर.........डँसा—यहाँ पर प्रत्यनीक अलङ्कार।

हिस सो मोरि.... .. तागा—यहाँ पर निर्णीयमाना सम्बन्धातिशयोक्ति है।

बसा—यह शब्द सस्कृत के विषा शब्द का अपभ्रश मालूम पडता है। विपा का अर्थ होगा विष वाला जन्तु।

इन्द्र अखार—अखाडा शब्द का प्रयोग मध्य युग मे नृत्य सगीत प्रधान रङ्गस्थली के अर्थ मे भी होता था। यहॉ इसी अर्थ मे इसका प्रयोग किया गया है।

राग रागनी—सगीत शास्त्र मे राग ६ है—

(१) मालव, मल्लार, श्री राग, वसन्त, हिन्दोल, कर्णाट, इन प्रत्येक राग की क्रमश ६ रागिनी वताई गई है उनके नाम क्रमश इस प्रकार है।

(२) **राग मालव**—(१) धानसी, (२) मालसी, (३) राम कीली, (४) सिन्धुडा, (५) आशावरी (६) भैरवी।

मल्लार—(१) विलावली, (२) पूरवी, (३) कानडा, (४) माधवी, (५) कोडा, (६) केदारिका।

(३) **श्री राग**—(१) गन्धारी, (२) सुभगा, (३) गौरी, (४) कौमारिका, (५) वेलोयारी, (६) वैरागी।

(४) **राग वसन्त**—(१) तुडी, (२) पञ्चमी, (३) ललिता, (४) पट मजरी, (५) गुर्जरी, (६) विभासा।

(५) **हिन्दोल राग**—(१) मायूरी, (२) दीपिका, (३) देशकारी, (४) पाहिणी, (५) वराडी, (६) मोरहाटी।

(६) **कर्णाट**—(१) नाटिका, (२) भूपाली, (३) राम केली, (४) गडा, (५) कामोदा, (६) कल्याणी।

सिह न जीता..... मासु—यहाँ पर प्रत्यनीक अलङ्कार है।

नाभि कुड सो मलय सभीरू। समुद भवर जस भवै गँभीरू ।।
वहुतै भँवर ववंडर भए। पहुँचि न सके सरग कहँ गए ।।
चदन माँझ कुरंगिनि खोजू। दहुँ को पाउ, को राजा भोजू ।।
को ओहि लागि हिवंचल सीझा। का कहं लिखी ऐस को रीझा ।।
तीवइ कमल सुगंध सरीरु। समुद्र लहर सोहै तन चीरु ।।
भूलहि रतन पाट के झोपा। साजि मैन अस का पर कोपा।
अवहि सो अहै कंवल कै करी। न जनौ कौन भौर कहँ थरी ।।
वेधि रहा जग वासना परिमल भेद सुगध।
तेहि अरिघान भौर सव लुवुधे तजहि न बंध ।।१६।।

[इस अवतरण मे कवि ने नाभि विवर एव गुह्य विवर का वर्णन किया है।]

उसके नाभि विवर मे मलयानिल का वास है। समुद्र की भवर की भाँति उसकी गति आवर्तनमय है। उसके उस आवर्तनमय नाभि मे पहुँचकर वहुत से लोग भ्रमित हो गए उसके अधोभाग तक न पहुँचकर ऊर्ध्व स्वर्ग को चले गए अर्थात् नष्ट हो गए। कवि कहता है कि चन्दन के वीच मे कुरगिनी का चरण चिन्ह है। मालूम नही राजा भोज के समान भाग्यशाली वह व्यक्ति कौन होगा जो उसका उपभोग करेगा। उसके लिए हिमालय में तपकर कौन सिद्ध हुआ है। न मालूम किसके लिए वह लिखी है। प्रेमहि करत (रीझा) उस स्त्री का शरीर कमल की सुरभि से सुरभित है। उसके शरीर पर समुद्र लहर नामक वस्त्र शोभायमान है। रतन पाट के झव्वे झल रहे है। समझ मे नही आता मदन ने इस प्रकार की तैयारी कर किस पर कोप किया है। अभी वह कमल की कली है न मालूम किस भौरे के लिए सुरक्षित है।

उसकी सुरभि से ससार आविद्ध है। भौरे रूपी प्रेमियो का मन लुव्ध होकर उसके नीवी वध में अटक गया है। वह उसे छोडता नही।

टिप्पणी—चन्दन माँझ कुरंगिनि खोजू—यहाँ पर कवि ने नायिका के गुह्याग का वडा आकर्पक वर्णन किया गया है। खोजू का अर्थ है चिन्ह। चन्दन के समान सुन्दर पेट अवोभाग हरिण के चरण चिन्ह के समान नायिका का गुह्याग है। स्त्री गुह्यांग को हरिण के चरण चिन्ह की उपमा वहुत प्राचीनकाल से दी जाती रही है; तभी तो संस्कृत की एक उक्ति है।

'हरिणीखुर मात्रेणं मोहितं सकल जगतं'

गुह्याग के वर्णन की यह प्रणाली सूफी कवियो मे वरावर प्रचिलित रही। एक कवि ने उसका वर्णन करते हुए लिखा है।

'नाभि सो निपट लाज को ठाँव' हौ अवला केहि भाँति वताउ'

—नलदमन से

एक दूसरे कवि ने लिखा है—

बरनि को सकै नितम्ब की छाँव

मझन ने उसे केवल मदन भडार कह कर छोड दिया है।

गुरजन लाज चित्त महँ आना।
तो नहि मदन भंडार वखाना॥

सस्कृत के कवियो ने भी ऐसे अवसरो पर व्यञ्जना और प्रतीक से काम लिया है। श्री हर्ष कृत वर्णन देखिए।

अंगेन के नाऽपि विजेतुमस्या गवेष्यते कि चल पत्र पंत्रम।
न चे द्विशेषादित रच्छेभ्यस्तस्यास्तु कम्पस्तु कुतो भयेन॥

—सर्ग ७ श्लोक ८८४

मेद—यह एक प्रकार का सुगन्धित द्रव्य है। जो किसी जानवर के मद को सुखाकर वनाते है।

वरनौ नितंव लंक कै सोभा। औ गज गवन देखि मन लोभा॥
जुरे जघ सोभा अति पाए। केरा खभ फेरि जनि लाए॥
कवल चरन अति रात विसेखी। रहै पाट पर पुहुमि न देखी॥
देवता हाथ हाथ पगु लेही। जहँ पगु धरै सीस तहँ देही॥
माथे भाग कोउ अस पावा। चरन कवल लेइ सीस चढ़ावा॥
चूरा चाँद सुरुज उजियारा। पायल वीच करहि झनकारा॥
अनवट विछिया नखत तराई। पहुँचि सकै को पायँन ताई॥
वरनि सिंगार न जानेऊ नखशिख जैस अभोग।
तस जग किछुइ न पाएऊँ उपमा देऊ ओहि जोग॥

[अव कवि नितम्वो की शोभा का वर्णन करता है।]

कटि की शोभा रूप नितम्वो का वर्णन करता है। उन नितम्वो के कारण ही वह एक गजगामिनी है। उसकी गति मनोमुग्ध कारी है। एक दूसरे से जुडी हुई जघाएँ अति सुहावनी लगती है। वे ऐसी लगती है मानो केले के खम्भे उलट कर रख दिए गए हो चरण कमल अत्यन्त एवम् विशेप रूप से लाल है। व सदैव पाट पर ही रहते पृथ्वी का उन्होने कभी भी स्पर्श नही किया। देवता उसके चरण हाथो हाथ ले लेते हैं। वे जहाँ पडते है वहाँ वे सिर रखते है। न जाने किसने ऐसा सौभाग्य प्राप्त किया है। कि वह उसके चरणो को ऊपर रख सकेगा। सूर्य और चाँद उसके पैर के चूणे (आभूपण विशेष) है। उसके वीच मे पायल झनकार करती है। अनवट और

विधुआ नक्षत्रो और तारो की भाँति चमकते है। एसे पैरों के पास कौन पहुँच सकता है।

नख से शिख तक जैसा वह अछूता शृङ्गार है उसका वर्णन मुझसे नही वन पड़ा है। ससार मे मुझे ऐसा कोई उपमान नही मिला जिसकी उपमा उससे दी जा सके।

टिप्पणी—इस अवतरण मे कवि ने पद्मावती के रूप की दिव्यता व्यञ्जित की है। कवि ने पद्मावती की कल्पना विराट ब्रह्म के रूप मे की है। अतएव यहाँ पर रहस्यवाद है।

देवता हाथ-हाथ····· देही—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से अर्थ है कि देवता लोग उसकी अत्यधिक प्रतिष्ठा करते है।

वरनि सिंगार ·····अभोग—यहाँ पर विराट ब्रह्म की अनिवचनीयता व्यग्य है। यह व्यग्य स्वत सिद्ध वस्तु से वस्तु रूप है।

तस जग·······जोग—यहाँ पर असम अलङ्कार है।

चूरा चाँद·······ताँई—यहाँ पर उदात्त अलङ्कार से रहस्यभावना व्यंग्य है। अत· अलङ्कार से वस्तु व्यग्य है।

प्रेम खण्ड

सुनतहि राजा गा मुरझाई । जानौ लहरि सुरुज कै आई ।।
प्रेम घाव दुख जान न कोई । जेहि लागै जाने पै सोई ।।
परा सो पेम समुद्र अपारा । लहरहि लहर होइ विसंभारा ।।
विरह भौर होइ भॉवरि देई । खिन-खिन जिउ हिलोरा लेई ।।
खिनहि उसास बूडि जिउ जाई । खिनहि उठै निसरै वौराई ।।
खिनहि पीत खिन होइ मुख सेता । खिनहि चेत खिन होइ अचेता ।।
कठिन मरन तै प्रेम बेवस्था । ना जिउ जियै न दसव अवस्था ।।
जनु लेनिहार न लेहि जिउ हरहि तरासीह ताहि ।
ए वनै वोल आव मुख कहै 'तराहि तराहि' ।।

[इस अवतरण मे कवि ने पद्मावती के अनिर्वचनीय रूप के रतनसेन पर पडे हुए प्रभाव का वर्णन किया है ।]

राजा पद्मावती (के अनिर्वचनीय रूप) का वर्णन सुनकर मूर्छित हो गया । ऐसा लगा मानो कि सूर्य को रूप की ज्वाला की लहर ने प्रताणित कर दिया हो । प्रेम के घाव के दुख को कोई नही जानता । उसे तो भुक्त भोगी ही जानता है । वह प्रेम के अपार समुद्र मे गिर गया था । लहर पर लहर आने से बेसुध हो गया था उसका विरह भवंर की तरह उसे भ्रमित कर रहा था । क्षण-क्षण मे उसका जीव हिलोरे लेता था फिर क्षण भर मे घबडाकर विश्वास छोडने लगता था । क्षण भर मे उसका मुख पीला और क्षण भर मे श्वेत हो जाता था । क्षण भर मे उसे चेत हो जाता था । क्षण भर मे फिर अचेत हो जाता है । प्रेम की व्यवस्था मृत्यु से भी कठिन है, क्योंकि इसमे न तो मृत्यु ही होती है और न विरही जीवितावस्था मे ही रहता है । ऐसा लगता है कि प्राण हरने वाले जीव लेते नही वरन् उन्हे कष्ट देते है ।

उसके मुख से केवल त्राहि-त्राहि निकलता है ।

टिप्पणी—यहाँ पर रहस्यानुभूति के कई स्तरो का वर्णन किया गया है । मिस इवलिन अडर हिल ने रहस्यवाद की निम्नलिखित पॉच अवस्थाएँ बताई है ।

(१) जागरण की अवस्था (State of awakening)
(२) परिष्करण की अवस्था (State of Purification)
(३) अंशानुभूति की अवस्था (State of Illumination)
(४) विघ्नो की अवस्था (Darunight)
(५) मिलन की अवस्था (Unitive State)

उपर्युक्त पक्तियो मे जागरण के पूर्व का चित्र है जब साधक गुरु से दिव्य सौन्दर्य का सदेश पाता है तो वह उस रूपासव की मदिरा से विभोर हो उठता है। उपर्युक्त पक्तियो मे रूपासव जनित विभोरावस्था का ही वर्णन किया गया है। यह वह अवस्था है जब साधक दिव्य प्रेम से प्रताणित होता है। जब साधक सुआ रूपी गुरु से पद्मावती रूपी विराट ब्रह्म के दिव्य विराट सौन्दर्य की झलक पाता है तो वह उसकी प्राप्ति के लिए तडप उठता है जब प्रत्यक्ष जगत मे वह उसे नही पाता तो विरह मे तडपने लगता है। प्रस्तुत पक्तियो मे सौन्दर्य, प्रेम और विरह की सरस त्रिवेणी प्रवहमान है। इसमे विरह की 'उद्वेग जडता, व्याधि, उन्माद और 'मरण' की अवस्थाओ की व्यंजना स्वत सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यग्य रूप मे की गई है।

दशम अवस्था विरह की अन्तिम अवस्था है। विरह की दश अवस्थाओ के नाम है। अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, उद्वेग, गुण कथन, प्रलाप, उन्माद, जडता, व्याधि मरण। सुधाकर जी ने कौमार अवस्थाओ को लेकर दशम अवस्था माना है। गर्भ, कौमार (जन्म से पाँच वर्ष) पोराण्ड (पाँच से दस वर्ष) किशोर (१० से १५ वर्ष तक) वालावस्था (१५ के वाद १६ वर्ष तक)। उसके ऊपर तरुणावस्था और तरुण के वाद वृद्धावस्था उसके वाद अतिवृद्धावस्था होती है। किन्तु दश अवस्थाएँ वे नही गिना गये है। अत मैं इस अर्थ को औचित्यपूर्ण नही मानता हूँ।

विशेष—(१) अन्य सूफी कवियो ने भी प्रेम का वर्णन उपर्युक्त प्रकार से किया है। तुलना कीजिए—

(क) प्रेम प्रीति जो जिउ उदगरई प्रीतम राख और सब जरई।
प्रेम दुःख सब दुःख सो भारी, तिल तिलमरन सहज देव हारी।
प्रान जात वरु छाड़ि सरीरा, बिधि कतसिरे प्रेम की पीरा।
राज गर्व धन जोवन गैऊ, जब सो जीव बिसंभर भएऊ।
कठा प्रेम पथ दुर्गम भारी, कै जिउ जाय कै मिलै सो बारी।
धाइ प्रेम संमुद महु देखि दौर धसि लेऊ।
कै मानिक कै लै ऊवरौ, कै वह पथ जिउ देऊ॥

(२) यहाँ पर शास्त्रीय दृष्टि से नायक पक्षीय पूर्वानुराग वर्णित है। इसी को शारदा तनय ने अयोग तथा अन्यो ने अभिलाषा मूलक विप्रलम्भ कहा है। आचार्य हेम चन्द्र ने दो भेद किए है (१) दैव जन्य, (२) परवशता जन्य। रतनसेन का तो दव जन्य कहा जायगा।

जहँ लगि कुटुँव लोग औ नेगी। राजा राय आए सब बेगी ॥
जावत गुनी गारुड़ी आए। औझा वेद समान बुलाए ॥
चरचहि चेष्टा परखहि नारी। नियर नाहि ओपद तहँ वारी ॥
राजहि आहि लखनि कै करा। सकति कान मोहा है परा ॥
नहि सो राम हनिवँत वड़ि दूरी। को लेइ आव संजीवन मूरी ॥
विनय करहि जे जे गडपती। का जीव कीन्ह कौन मति मती ॥
कहहु सो पीर, काह पुनि खाँगा। समुद सुमेरु आव तुम्ह माँगा ॥
धावन तहाँ पठावहु देहि लाख दस रोक।
होइ सो वेलि जेइ वारी आनहि सबै वरोक ॥

[इस अवतरण मे कवि ने नाटक की विरहमूलक व्याधि की अवस्था का वर्णन किया है।]

कुटुम्व के लोग नौकर चाकर तथा राजा, राय, सब शीघ्र ही आ गए। सब ओझा गारुणि वैद्य और सयाने भी बुलाए गए कि सब उसकी चेष्टाओ का अध्ययन करते है और नाडी देखते है और कहते है। समीप ही राजवाटिका मे उसकी औषधि नही है राजा की अवस्था लक्ष्मण जैसी है। वह शक्ति वाण मूर्छित हुआ पडा है। लक्ष्मण के उपचार करने वाले राम भी यहाँ नही, हनुमान का भी कही पता नही सजीवनी वूँटी कौन लाकर दे। जितने गजपति है वे सब विनती करते है और पूँछते है कि किस वस्तु की इच्छा है मन मे क्या विचार है तुम अपनी पीडा कहो वह किस अभाव के कारण है। समुद्र और सुमेरु भी तुम्हारे माँगने से आ सकते है।

अपने दूत पठाइये लाखो रुपये की रोकड देकर अथवा जवरदस्ती उस वगीचे से उस वेल को ले आवे।

टिप्पणी—प्रस्तुत अवतरण मे विरह जनित व्याधि की अवस्था का विस्तृत वर्णन किया गया है।

(२) **नेगी**—परजा पौनी या नौकर चाकर।

(३) **गारुणी**—विप वैद्य।

(४) **वारी**—यहाँ पर शव्द शक्ति उद्भव अनुरणन ध्वनि है। 'वारी' से कवि ने अभिधेयार्थ वाटिका का लिया है। पर व्यङ्गयार्थ वालाएँ। कवि यह व्यञ्जित करना चाहता है कि वह पद्मावती रूपी वाला जो उसकी प्रेयसी है उसके प्रणय रोग की औपधि है।

नहि सो· · मूरी—मे सवृति वक्रता है। यहाँ पर कवि राम के उस गुण की ओर सकेत कर रहा है जिससे प्रेरित होकर उन्होने अपने भाई के लिए सजीवजी मगायी थी।

है **सो वेलि जेहि वारी**—कवि की व्यजना है कि वह प्रेम रूपी वेल जिस वाटिका रूपी वाला मे है उसे धन व्यय कर या वलपूर्वक प्राप्त कीजिए।

(वरोक = वलपूर्वक) सो मे कवि अभिप्राय जिससे तुम्हे प्रेम है वेल से अभिप्राय प्रेम रूपी वेल है। वारी मे शव्द शक्ति उद्भव अनुरणन ध्वनि है। वारी से कवि की व्यंजना पद्मावती रूपी वाला से भी है।

जव भा चेत उठा वैरागा। वाउर जनौ सोइ उठि जागा ॥
आवत जग वालक जस रोआ। उठा रोइ 'हा ज्ञान सो खोवा ॥
हौ तो अहा अमरपुर जहाँ। इहाँ मरनपुर आएऊँ कहाँ ॥
केइ उपकार मरन कर कीन्हा। सकति हँकारि जीउ हरि लीन्हा ॥
सोवत रहा जहाँ सुख साखा। कस न तहाँ सोवत विधि राखा ॥
अव जिउ उहाँ इहाँ तन सूना। कव लग रहे परान विहूना ॥
जौ जिउ घटहि काल के हाथा। घट न नीक पै जोउ निसाथा ॥
अहुठ हाथ तन सरवर हिया कवल तेहि माँह।
नैनहु जानहु नियरे कर पहुँचत औगाह ॥

[इस अवतरण मे प्रेमोन्माद से जाग्रत होने की अवस्था का वर्णन है।]

जव रतन सेन को (प्रेमोन्माद की अवस्था) मे ज्ञान हुआ कि (वह ससार के मिथ्या भ्रम जाल मे फसा हुआ है) तो उसमे वैराग्योदय हो गया। उस समय उसकी वह दशा हो गई जैसे कि कोई वावला सोकर जागा हो। वह (इस ससार को देखकर) इस प्रकार दुखी हो गया जैसे कि वालक ससार मे आते ही रो उठता है। और सोचता है कि हमारा वह ज्ञान कहाँ गया। मै तो अमरपुर मे था फिर इस मृत्यु लोक मे कौन ले आया न मालूम किसने मुझे भौतिक मृत्यु की अवस्था मे ले जाकर मेरा उपकार किया था और शक्ति पूर्वक मेरे प्राणो को हर लिया था। (अपने मे केन्द्रित कर लिया) कितना अच्छा है कि मैं उसी स्वप्न मे लीन रहा जहाँ सुख की शाखा रूप पद्मावती की दिव्य सौन्दर्यमयी मूर्ति थी। परमात्मा ने हमे उसी स्वप्न लोक मे क्यो न लीन रहने दिया। अव तो प्राण वहीं लगे है (जहाँ पद्मावती की मूर्ति थी) यहाँ तो केवल निर्जीव शरीर मात्र है। यह प्राणहीन शरीर कव तक जीवित रहेगा। यदि शरीर में प्राण काल के आधीन है तो हम (ऐसे) शरीर को प्राणयुक्त वनाए रखना नही चाहते (क्योकि वह पद्मावती के आधीन फिर नही रह सकेगा)

साढ़े तीन हाथ के इस शरीर रूपी सरोवर मे हृदय रूपी कमल है वह नेत्रों के समीप है किन्तु हाथ वहाँ तक नही पहुँच पाते।

टिप्पणी—जवभाचेत ·····वैराग—साधक मे जव ज्ञानोदय होता है तभी उसे इस ससार मे वैराग्य हो जाता है।

ज्ञान सो खोवा—सो मे यहाँ पर पदगत अर्थान्तर सक्रमित वाच्य ध्वनि है।

सो मे हमे व्यजना के रूप मे एक पौराणिक विश्वास का उपादान करना पड़ता ह। पुराणो मे लिखा है कि जब बालक गर्भ मे होता है तो वह अधोमुख लटका रहता है। वहा उसे भगवान की मोहिनी सूरत दिखाई पड़ती है। जिसमे तन्मय होने के कारण उसे अपना कष्ट प्रतीत नही होता। जब वह पृथ्वी पर गिरता है तो वह मोहन की वही मोहिनी रूप ढूंढने लगता है और 'कहाँ' 'कहाँ' चिल्लाने लगता है। एसी ही दशा रतनसेन की है। भावोन्माद की अवस्था मे उस पद्मावती रूपी परमात्मा के दर्शन होते है किन्तु जब वह भावोन्माद की अवस्था मे जगता है तो वह नवजात बालक की भाँति उस मोहिनी मूर्ति के लिए तडप-तडप कर रोने लगता है और कहाँ-कहाँ चिल्लाने लगता है।

के उपकार मरन का कीन्हा—ज्ञानोदय हो जान पर भौतिक मृत्यु उपकार (रूप प्रतीत) होने लगती है।

सकृति हकारि जीव हरि लीन्हा—हमारे जीव को जबरदस्ती आकृष्ट कर अपने मे केन्द्रित कर लिया जिसके परिणाम स्वरूप मुखपूर्ण स्वप्न जैसी अवस्था मे लीन हो गये।

डा० अग्रवाल ने इसका अर्थ किया है। एक ओर मेरी सोई हुई शक्ति जगा-कर दूसरी ओर मेरा जीव हर लिया।

जो जिउ ......निसाथा—लोक की दृढ धारण है कि इस घट रूपी शरीर मे जीव काल (मृत्यु) के आधीन रहता है। वह जिस क्षण चाहे निकाल ले। इसका तात्पर्य है कि जीव शरीर मे पराधीन रहता है। वह मनुष्य के आधीन नही रहता। रतनसेन कहता है कि यदि जीवितावस्था मे जीव परवश रहता है वह इच्छापूर्वक पद्मावती पर कन्द्रित नही किया जा सकता है तो ऐसे शरीर को जिसमे जीव परवश हो सजीव रखना तनिक भी उपयुक्त नही समझता हूँ।

विशेष—(क) अन्य सूफी कवियो मे भी हमे उपर्युक्त भावो की व्यन्जना मिलती है। उस प्रियतम के दर्शन करने के बाद किस प्रकार साधक गूगा और बावला हो जाता है इसका वर्णन इन्द्रावती मे नूरमोहम्मद साहब ने निम्न प्रकार से किया है—

> जो वहि मुख को परगट देखा।
> गूग भयउ भा बाउर लेखा॥

—पृ० १८

(ख) इस अवतरण मे अभिलाषा मूलक विरह का उदय दिखाया है।

(ग) यह पूर्व राग का अच्छा उदाहरण है।

सवन्ह कहा मन समझहु राजा। काल सौति के जूझ न छाजा॥
तास जझ जात जो जीता। जानत कृष्णा तजा गोपीता॥
अ न नेह काहू सो कीजै। नावँ मिटै काहे जिउ दीजै॥

पहले सुख नेहहिं जब जोरा । पुनि होइ कठिन निवाहत औरा ।।
अहुठ हाथ तन जैस सुमेरु । पहुँचि न जाइ परा तस फेरु ।।
ज्ञान दिष्टि सौ जाइ पहुँचा । पेम अदिष्ट गगन ते ऊँचा ।।
ध्रुव ते ऊँच पेम धुव ऊआ । सिर देइ पाँव देइ सो छूआ ।।
तुम राजा औ सुखिया करहु राज सुख भोग ।।
एहि रे पंथ सो पहुँचै सहै जो दुख वियोग ।।४।।

[इस अवतरण में कवि ने प्रेम योगी रतनसेन को साथियों द्वारा उपदेश दिलवाया है]

सबने कहा हे राजन् मन में समझ लो कि काल से वैर करना ठीक नही होता । जिसको जीता जा सके उसी से वैर करना चाहिये । कृष्ण गोपियो से जीत नही पाते थे इसीलिए वह उन्हें छोड़कर चले गये । किसी से प्रेम भी नही करना चाहिये । प्रेम मार्ग मे इतना त्याग करना पड़ता है कि प्राणों की भी बलि चढ़ानी पड़ जाती है; नाम तक मिट जाता है । अत. प्रेम मार्ग में जीव देने से क्या लाभ है । प्रेम जब जोड़ा जाता है तो बड़ा सुखद लगता है किन्तु उसका निभाना बड़ा कठिन हो जाता है । यह साढे-तीन हाथ का शरीर सुमेरु सदृश है । (जिस प्रकार सुमेरु के रहस्य को समझना कठिन होता है उसी प्रकार इस छोटे से शरीर का रहस्य समझना कठिन है ।) उसके किसी अंग के अन्तर्गत पहुँचना बड़ा कठिन है उसमें बडा चक्कर है । आकाश दृष्टिगोचर हो जाता है किन्तु प्रेम दृष्टि के परे है (अर्थात् परमरहस्य-पूर्ण है ।) प्रेम ध्रुव से भी अधिक दृढ और ऊँचा होता है । जो सिर के बल जाता है वही उसको छू पाता है ।

तुम राजा हो सुखी हो । तुम राज्य का सुखपूर्वक उपभोग करो । इस मार्ग में तो वही जाता है जो वियोग के दुःख को सहन करता है ।

टिप्पणी—काल सेंति के जूझ न छा जा—ऊपर कवि कह चुका है कि 'जो जिउ घटहि काल के हाथा' । इससे प्रगट है कि कवि की आस्था है कि शरीर में जीव काल के हाथ मे रहता है । उस जीव को पद्मावती में केन्द्रित करने के लिए काल से संघर्ष करना पड़ता है । काल से संघर्ष करना ठीक नही होता । यदि साधक पराजित हो गया तो उसे प्रेम मार्ग तक पहुँचने का अवसर ही नही मिलेगा । प्रेम मार्ग में वही प्रवृत्त हो सकता है जो काल पर विजय प्राप्त कर ले ।

जानत कृष्ण तजा गोपीता—यदि कृष्ण गोपियों को जीतने की शक्ति रखते होते तो वह उन्हे छोड़कर नही जाते । भौतिक दृष्टि से भी गोपियाँ अनेक थी और कृष्ण एक थे । अनेक गोपियो से एक कृष्ण का रतियुद्ध मे सफल होना कठिन था । पहले तो उनमें शौर्य था अतः रतियुद्ध का प्रश्न न था अतः केवल प्रणय व्यापार भर चलता था, जब वह प्रश्न उठा तो वे गोपियों को छोड़कर चले गये ।

अहुठ हाथ तन जैस सुमेरु—यहाँ पर विरोधाभास और उपमा का संकर है और उससे वस्तु व्यंजना है कि यह शरीर देखने में छोटा है किन्तु रहस्यात्मकता की दृष्टि से वह सुमेरु के समान अगम्य है। अतः यहाँ कवि प्रोढोक्ति सिद्ध अलकार से वस्तु व्यंजना है।

विशेष—इस अवतरण मे कवि ने प्रेम मार्ग की अगम्यता का वर्णन अत्यधिक रहस्यपूर्ण ढंग से किया है।

सुए कहा मन बुझहू राजा । करत पिरीत कठिन है काजा ।।
तुम राजा जेई घर पोई । कवंल न भेंटेऊ भेटेऊ कोई ।।
जानहिं भौंर जौ तेहि पथ लूटे। जीउ दीन्ह औ दिएहु न छूटे ।।
कठिन आहि सिंहल कर राजू। पाइय नाहि जूझ कर साजू ।।
ओहि पथ जाहि जो होइ उदासी। जोगी जपा तपा सन्यासी ।।
भोग किए जो पावत भोगू । तजि सो भोग कोइ करत न जोगू ।।
तुम राजा चाहहु सुख पावा। भोगहिं जोग करत नहिं भावा ।।
साधन्ह सिद्धि न पाइय, जौ लगि सधै न तप्प ।।
सो पै जाने वापुरा, करै जो सीस कलप्प ।।५।।

[इस अवतरण में भी कवि ने राजा के इष्ट मित्रों द्वारा प्रेम की रहस्यात्मकता एव महानता की व्यंजना कराई है। शुक ने कहा कि हे राजन् मन में समझ लो प्रेम करना कठिन काम है। हे राजन् तुमने घर मे पोई हुई रोटियाँ खाई है, अभी तक तुमने कमल से भेंट नही की है, केवल कोई से सम्बन्ध पडा है। प्रेम मार्ग के रहस्य को भौरा ही जानता है। इस मार्ग मे जो लुट चुका है वह अपने प्राण दे देता है किन्तु फिर भी मुक्त नहीं हो पाता। सिंहल का राज्य अत्यन्त कठिन है, उसकी प्राप्ति राजसी ठाट से नही पा सकते। उस पथ का पथिक वही बन सकता है, जो उदासी, जोगी, जती, तपस्वी और सन्यासी होता है। यदि भोग-विलास करने से सिद्धि मिलती होती तो साधक फिर भोग मार्ग छोड़कर योग मार्ग ग्रहण न करते। हे राजन् तुम सुख पाना चाहते हो, सुख प्राप्ति के लिए जोग करना शोभा नही देता।]

सिद्धि की प्राप्ति कोरे साधनों से नहीं होती। उसकी प्राप्ति तभी होगी जबकि तपस्या की जायेगी। इस रहस्य को वह विचारे ही जानते हैं, जिन्होंने इस मार्ग में अपना सिर संकलित कर दिया हो।

टिप्पणी—तुम······जेई घर पोई—यहाँ पर वाक्यगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। व्यंग्य है कि तुमने घर पर सुख-शान्ति के दिन काटे हैं; चैन से जीवन व्यतीत किया है।

कठिन अहि सिंहल कर राजू—यहाँ पर कवि ने सिंहल शब्द से ब्रह्मरन्ध्र की ओर भी संकेत किया है। कवि यह भी लक्षित करना चाहता है कि ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँचना बड़ा कठिन है। सूफी साधना की दृष्टि से व्यंजना होगी, हृदय साम्राज्य तक पहुँचना आसान नही है, वहाँ कोई बल या शक्ति से विजय नहीं पा सकता। वहाँ तो वही विजय प्राप्त कर सकता है, जिसमे त्याग, तपस्या आदि यौगिक गुण है।

भोग······भोगू—यहाँ पर दूसरे भोग शब्द का अर्थ सिद्ध है। इसके अर्थ की प्राप्ति अर्थान्तिर संक्रमित पदगत वाच्य ध्वनि से हुआ है।

विशेष—यहाँ पर कवि ने भोगावाद या काममार्ग पर कुठाराघात किया है। उसका विश्वास है कि भोगमार्ग से सिद्धि प्राप्त नहीं होती।

साधन सिद्धि न पाइए—कवि यह व्यंजित करना चाहता है कि साधनों के पालनमात्र से सिद्धि नही मिल सकती। जैसे मान लीजिए यम नियम आदि साधन हैं, कोई जीवन भर इन्ही में पड़ा रहे तो उसे सिद्धि नहीं मिल सकती। सिद्धि तो उसी को मिलेगी जो शारीरिक साधनो का पालन करे, साधनों को ही साधना की इति न समझ ले और उनसे ऊपर उठकर उसका त्याग, तपस्या, सत्याचरण और पवित्र सम्बन्ध आदि को महत्त्व दे। इसके सहयोग से इष्ट सिद्धि को प्राप्त करले।

विशेष—कबीर आदि सन्तो ने उपयुक्त भाव की व्यंजना अनेक प्रकार से की है—

सीस काट आगे धरो, तापर राखो पाँव।
प्रेम बाग के बीच में, ऐसा हो तो आव॥

का भा जोग-कथनि के कथे। निकसै घिउ न बिना दधि मथे॥
जो लहि आप हेराइ न कोई। तौ लहि हेरत पाव न सोई॥
पेम पहार कठिन विधि गढ़ा। सो पै चढ़ै जो सिर सौ चढ़ा॥
पंथ सूरि कै उठा अंकूरु। चोर चढ़ै, कि चढ़ मंसूरु॥
तू राजा का पहिरसि कंथा। तोरे घरहि मांझ दस पंथा॥
काम, क्रोध, तिस्ना मद माया। पाँचौ चोर न छांडहि काया॥
नवौ सेंध तिन्ह के दिठियारा। घर मूसहि निसि, की उजियारा॥
अबहु जागु अजाना, होत आव निसि भोर।
तब किछु हाथ न लागिहिं, मूसि जाहि जब चोर॥६॥

[इस अवतरण में कवि ने प्रेम पंथ की स्वरूप-व्याख्या की है]

योग की कथा से क्या लाभ, दही मथे बिना घी नही निकलता। जब तक कोई स्वयं नहीं खोता तब तक जिसे ढूंढ़ता है उसे नही पाता। भगवान ने प्रेम का

पर्वत बड़ा कठिन बनाया है। उस पर वही चढ सकता है जो सिर के बल चढ़ता है। उस मार्ग मे सूलियों के अंकुर निकलते है, उस पर या तो चोर चढ सकता है या फिर मंसूर जैसा प्रेम योगी। तू राजा है, तेरे लिए कंथा पहिनना अर्थात् योगी बनना कठिन है। तेरे शरीर मे ही दस मार्ग है, काम, क्रोध, मद, तृष्णा और माया यह पांचो चोर काया नही छोड़ते है। इस घर मे नौ छिद्र है। इनके माध्यम से विकार रूपी चोर दिन रात घर को लूटते है।

हे अज्ञानी! अब भी जाग! अब तो सवेरा होता आ रहा है। जब चोर मूस ले जायेंगे तब पता लगेगा!

टिप्पणी—का भा जोग कथनि के कथे—यहाँ काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य है। कवि यह भी व्यंजित करना चाहता है कि केवल योग की शाब्दिक चर्चा से कोई लाभ नही हो सकता उसका तो आचरण करना चाहिए।

निकसै घिउ न बिना दधि मथे—कवि की व्यंजना है कि बिना कठोर साधना के सिद्धि नही प्राप्त हो सकती। इस व्यजना की उपलब्धि अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से हुई है।

सो पै चढ़ै जो सिर सौं चढा—शीश से चढ़ना असम्भव व्यापार है अतः इसका व्यंग्यार्थ ही अभीष्ट है। त्याग और बलिदान का अतिशय ही यहाँ व्यग्य है। यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है।

पंथ सूरि कै उठा अंकूरु—यहाँ पर कवि ने मार्ग का काठिन्य व्यंजित किया है। यह व्यजना भी अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनिमूलक है।

चोर चढ़ै की चढ़ मंसूरु—चोर से कवि की व्यंजना गुप्त साधना करने वालो से है। मंसूर प्रेम योगी का प्रतीक है। कवि यह कहना चाहता है कि साधना के कठोर मार्ग का अनुसरण या तो गुप्त साधक करता है या फिर प्रेम योगी करता है।

मंसूर—यह एक बहुत बड़े सूफी संत थे। यह बइजा के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम शेख हुसेन हल्लाज था। यह जाति के धुनिया थे। यह शुद्ध प्रेम मार्गी थे, इन पर भारतीय वेदान्त के 'सोऽहंवाद' का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा था। उसी से प्रेरित होकर 'अनुलहक' कहते थे। इसका अर्थ है 'मैं ही ईश्वर हूँ' इस पर कट्टर मुसलमान बड़े रुष्ट थे। उन्होने बगदाद के शाहे वक्त खलीफा मुक्तदिर से शिकायत की। उसने मंसूर हल्लाज को शूली पर चढ़ा दिया था। कहते हैं वह हँसते हँसते शूली पर चढ़ गया था। यह घटना ३०६ हि० जीक अद की २४वी तारीख, तदनुसार सन् ९२९ ई० मे घटी थी।

तू राजा······दस पंथा—कवि यह व्यंजित करना चाहता है कि राजा का योगी होना बडा कठिन है, वह तो इन्द्रियों का दास होता है। इन्द्रियाँ भी दस होती है। एकाध होती तो सरलता से विजय प्राप्त कर लेता। किन्तु वे तो दस है। फिर वे द्वार रूप है। काम क्रोधादि इनके माध्यम से अन्दर प्रवेश पा जाते हैं। वे जीव को

वासना में लिप्त रखते हैं। यहाँ पर 'तू राजा का पहिरसि कंथा' में काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य है तथा पूरे वाक्य मे स्वतः सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यग्य है।

कंथा—योगियो के पहनने का चोला

तोरे घरहिं माँझ दस पंथा—यहाँ पर दस पंथा से दस इन्द्रियों की ओर संकेत है। हाथ, पैर, नेत्र, श्रवण, नाक, त्वचा, गुदा, जिह्वा, वाणी और लिंग है।

नवौ सेंध—दो आँख, दो कान, नासिका के दो छिद्र, एक मुख, एक लिंग और एक गुदा यह नौ छिद्र ही नौ सेंध हैं। वैदिक साहित्य में भी "नव द्वारे पुरे देही" कह कर नव द्वारो की चर्चा की गई है।

सुनि सो बात राजा मन जागा। पलक न मार पेम चित लागा ॥
नैनन्ह ढ़रहि मोति औ मूँगा। जस गुर खाइ रहा होइ गूँगा ॥
हिय कै जोति दीप वह सूझा। यह जो दीप अंधियारा बूझा ॥
उलटि दीढि माया सौ रूठी। पलटि न फिरी जानि कै झूठी ॥
जौ पै नाही अहथिर दसा। जग उजार का कीजिय बसा ॥
गुरू बिरह चिनगी जो मेला। जो सुलगाइ लेइ सो चेला ॥
अब करि फनिग भृंग कै करा। भौर होंहु जेहि कारन जरा ॥
फूल फूल फिरि पूछौ, जौ पहुंचौ ओहि केत।
तन नेवछावरि कै मिलौ, ज्यौ मधुकर जिउ देत ॥७॥

[इस अवतरण में कवि ने दिव्य प्रेम से प्रताड़ित साधक की अवस्था का चित्रण किया है।]

यह बात सुनकर राजा के मन में चेत हुआ। दिव्य प्रेम से तन्मय वह राजा पलक तक न मार रहा था अर्थात् प्रेम समाधि मे लीन था। उसके नेत्रो से मोती और मूगे झड़ते थे। उसकी ऐसी अवस्था थी कि वह गूंगे के गुण के समान अपनी रहस्यानुभूति की अभिव्यक्ति भी नही कर सकता था। उस पदमावती रूपी दिव्य ज्योति रूपी दीपक दर्शन हृदय की ज्योति से साधक को हो गए और यह भौतिक संसार अंधकारपूर्ण दिखाई पड़ने लगा। दृष्टि अन्तर्मुखी हो गई और सासारिक माया से रूठ गई। वह फिर संसारोन्मुख नही हुई, उसको उसने झूठा समझ लिया, वह सोचने लगा, इस संसार में जब कोई दशा स्थिर नही है! तो फिर उजड़ने वाले जगत् मे रहने से क्या लाभ! गुरु वह है जो साधक मे विरह की चिन्गारी प्रज्वलित कर देता है! किन्तु सच्चा चेला वह है जो इस चिन्गारी को सुलगा लेता है। अब पतंगों और भृंगो की कला करके भौरा बनूंगा और उस तक पहुँचने का प्रयास करूँगा जिसके लिए विरहाग्नि मे जल रहा है।

एक-एकफूल के पास घूम-घूम कर मैं उसका पता पूछूंगा ताकि मैं उनके स्थान

पर पहुँच सकूं। जिस प्रकार भौंरा केतकी से छिद कर प्राण दे देता है। उसी प्रकार मैं भी उसके पास पहुँच उसमे विद्ध होकर प्राण दे देना चाहता हूँ।

टिप्पणी—नैनन्हु ढरहि मोति औ मूँगा—कवि यहाँ पर विरहाधिक्य जनित अन्तःवेदना का आतिशय व्यंजित करना चाहता है। इसलिए कवि यहाँ पर लक्षण लक्षणा से आश्रय लेते हुए कहता है कि उसकी आँखो से कभी तो मोती रूप श्वेत जल कण झरते है और कभी मूंगे के सदृश रक्त कण झरते हैं। यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है।

हिय कै जोति दीप वह सूझा—दर्शन का प्रसिद्ध सिद्धान्त है कि सत् की उपलब्धि सत् से और असत् की उपलब्धि असत् से होती है। इसी सिद्धान्त से प्रेरित हो कवि ने लिखा है कि वह ज्योति जिसका साक्षात्कार योगी लोग करते हैं, हृदय की ज्योति से देखी जा सकती है। भौतिक चर्म चक्षुओं से उसके दर्शन नही हो सकते। यहाँ पर 'सो' शब्द मे संवृत्ति वक्रता भी है।

यह जो दीप अंधियारा बूझा—यहाँ पर कवि का सकेत इस मृत्युलोक से है। वह यह व्यजित करना चाहता है कि जिसकी दृष्टि उस दिव्य ज्योति मे रम जाती है उसे यह मृत्युलोक अधकारपूर्ण प्रतीत होने लगता है।

उलटि दीठि······जानि कै झूठी—योगी की दृष्टि जब अन्तर्मुखी हो जाती है, तब माया से उसका विरोध हो जाता है। दृष्टि का अन्तर्मुखी करना आध्यात्मिक साधना का प्रमुख अग है। कठोपनिषद् मे इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

> **पराञ्चखानि व्यतृण्पत्स्वयम्भू,**
> **स्तस्मात्पराङपश्यति नान्तरात्मन।**
> **कश्चिद्‌ धीरः प्रत्यगात्मनमैक्ष**
> **दावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्‌ ।**
>
> —(२।१।१)

स्वयम्भू ने इन्द्रियो को वहिर्मुख करके हिंसित कर दिया है, इसी से जीव बाह्य विषयो को देखता है। अन्तरात्मा को नही, जिसने अमरत्व की इच्छा करते हुए अपनी इन्द्रियो को रोक लिया है। ऐसा कोई धीर पुरुष ही प्रत्यगात्मा को पाता है।

गुरु बिरह······सो चेला—विरह सूफी साधना के प्राणभूत तत्त्व है। गुरु शिष्य को इन्ही दो का उपदेश करता है। जायसी के गुरु ने उन्हे विरह मार्ग सर्वप्रथम दीक्षित किया था।

फनिग भृंग कै करा—यह कवि प्रसिद्धि है कि मादा भृंगी के नीड में यदि कोई दूसरा पतिगा पहुँच जाता है तो थोड़े दिन मे वह भृंगा रूप हो जाता है। डा० अग्रवाल ने शिरेफ साहब के मत को उद्धृत किया है। उसे यहाँ उद्धृत कर देना अनुचित न होगा।

"मादा भृंगी पतिंगों को डंक मार कर मूर्छित कर देती है और उसी के शरीर पर अपने अंडे देती है। कुछ समय बाद बच्चे निकल कर कीड़े के शरीर को खाकर बढ़ते रहते हैं और उसकी ठठरी छोड़कर उड़ जाते हैं।

जौ पहुँचौ ओहि केत—यहाँ केत शब्द एक ओर तो केतकी वाचक है दूसरी ओर पद्मावती के निवास स्थान की भी ध्वनि दे रहा है। यहाँ 'केत' शब्द में शब्द-शक्ति उद्भव अनुरणन ध्वनि है।

यहाँ पर कवि ने एक कवि प्रसिद्धि का आश्रय लिया है। प्रसिद्धि है कि भौरे को केतकी का फूल बहुत प्रिय होता है। केतकी के पेड़ में काँटे होते है। उसमे सफेद गुच्छेदार फूल भी होता है। वह भी काँटों से भरा रहता है। परिमल का लोभी भंवरा वहाँ पहुँच कर काँटो मे बिंध कर प्राण दे देता है।

बन्धु मीत बहुतै समुझावा। मान न राजा कोउ भुलावा॥
उपजी प्रेम पीर जेहि आई। परबोधत होई अधिक सो आई॥
अमृत बात कहत विष जाना। पेम के बचन मीठ कै माना॥
जो ओहि विषै मारि कै खाई। पूँछहु तेहि सन पेम मिठाई॥
पूँछहु बात भरथरिहि जाई। अमृत राज तजा विष खाई॥
औ महेस बड़ सिद्ध कहावा। उनहुं विषै कंठ पै लावा॥
होत आव रवि किरन विकासा। हनुवंत होइ को देइ सुआसा॥
तुम सब सिद्धि मनावहु, होइ गनेस सिधि लेव।
चेला को न चलावै, तुलै गुरु जेहि भेव॥८॥

[इस अवतरण में भी राजा की एक—निष्ठ प्रबल—प्रेम भावना का वर्णन किया किया है।]

बन्धु और मित्रों ने अनेक प्रकार से समझाया किन्तु राजा किसी भी भुलावे मे नही आया और अपनी पदमावती विषयक साधना से विरक्त नही हो सका। जिसके प्रेम की पीड़ा उत्पन्न हो जाती है तो समझाने से वह और अधिक प्रज्वलित होती है। इस समय अमृत जैसी बात भी विष जैसी कटु और अहितकर प्रतीत होती है। प्रेम के वचन बड़े मीठे होते है जो उस विष को मार कर खाता है, वही प्रेम की मधुरिमा का रहस्य उसी से पूछो। दूसरी व्यंजना यह भी है कि जो विषय-वासना को मारकर खा जाता है वही दिव्य प्रेम की मधुरिमा का अधिकारी है। प्रेम साधना के रहस्य को भरथरी से पूछना चाहिए। अमृत के सदृश सुखद राज्य का परित्याग कर दिया और विष के सदृश त्याग वैराग्य को स्वीकार कर लिया। महेश तो बड़े सिद्ध कहलाते है। विष उनके कण्ठ में भी है, दूसरी व्यजना है कि शिवजी जैसे महासिद्ध को भी विषय रूपी विष भी निगलना पड़ा। ज्ञानरूपी रवि किरनों का विकास होता आता है। हनुमान होकर संजीविनी लाकर वेदना दूर करे।

तुम सभी सिद्धो को मनौती करो। गणेश बन कर सिद्धि प्राप्त करो। गुरु जिस रहस्य का अनुसंधान करता है उसी की खोज के लिए वह अपने चेलों को प्रेरित करता है।

टिप्पणी—जौ ओहि विषँ मारि कै खाई—यहाँ पर विषँ में शब्द शक्ति उद्भव अनुरणन ध्वनि है।

भरथरिहि—राजा भर्तृहरि नाथ पंथ की वैरागी शाखा के प्रवर्तक थे। भर्तृहरि चरित के अनुसार वे उज्जैन के राजा चन्द्रसेन के पुत्र थे। राजा सिंहलगढ़ की राजकुमारी से विवाह कर वही रहने लगा था। उनकी भेंट एक बार गोरखनाथ से हो गई। उनके प्रभाव से वे नाथ पंथ में दीक्षित हो गये। इनकी रानी पिंगला भी बहुत बड़ी योगिनी हुई। कुछ लोग पिंगला को राजा भोज की रानी मानते है। दोनों परम्परायें प्रचलित है। कहते है भर्तृहरि की बहन मयनावती भी बड़ी योगिनी थी, यह गोपीचन्द की रानी थी।

तुलै गुरु जेहि भेव—गुरु जिस रहस्य का अनुसन्धान कर लेता है।

विशेष—यह अवतरण न तो ग्रियर्सन के पद्मावत में है और न डा० माता प्रसाद और डा० अग्रवाल के ही पद्मावत में है।

जोगी खण्ड

तजा राज, राजा भा जोगी। औ किंगरी कर गहेउ वियोगी ।।
तन विसंभर मन बाउर लटा। अरुझा पेम परी सिर जटा ।।
चन्द्र बदन औ चंदन देहा। भसम चढ़ाइ कीन्ह तन खेहा ।।
मेखल, सिघी; चक्र धँधारी। जोगवाट रुदराछ अधारी ।।
कंथा पहिरि दंड कर गहा। सिद्ध होइ कहँ गोरख कहा ।।
मुद्रा स्रवन कंठ जयमाला। कर उदपान काँध बघछाला ।।
पाँवरि पाँव दीन्ह सिर छाता। खप्पर लीन्ह भेस करि राता ।।
चला भुगुति माँगै कह, साधि कया तप जोग।
सिद्ध होइ पदमावति, जेहि कर हिये वियोग ।।१।।

[इस अवतरण मे राजा के जोगी और वियोगी होने की बात कही गई है।]

राजा ने राज्य त्याग दिया और वह वियोगी हो गया। वह हाथ में किंगरी ले वियोगी बन गया। उसका शरीर बेसुध और मन बावला हो गया और मुँह से पदमावती का नाम रट रहा था। मन प्रेम में उलझ गया और सिर पर जटाएँ बढ़ गई। उस शरीर को जो चाँद के समान सुन्दर था तथा जिस पर चन्दन लपेटा रहता था, भस्म से लपेट कर मिट्टी कर दिया। मेखला, सिंघी, चक्र, धँधारी, जोगवाट, रुद्राक्ष, अधारी आदि धारण किये हुए था। कंथा पहन कर हाथ में दण्ड धारण किये हुए था। सिद्ध होने के लिए उसने गोरख का नाम जपना प्रारम्भ कर दिया। वह कानों मे मुद्रा, कठ मे जप की माला, हाथ में कमण्डल, कंधे पर बाघम्बर पड़ा है, पैरो मे पाँवरी हैं, सिर पर छाता लगाए है, हाथ मे खप्पर धारण कर दिव्य वेश बना रखा है।

वह शरीर मे जोग और तपस्या धारण कर भौंरा प्राप्ति के लिए चल दिया है। मेरे हृदय मे जिसका वियोग है उस पदमावती को प्राप्त कर ही मैं सिद्ध बनूँगा।

टिप्पणी—(१) तजा राज राजा—वर्ण विन्यास वक्रता है।

(२) अरुझा पेम, परी सिर जटा—यहाँ असंगति अलंकार है, उलझन तो प्रेम मे हुई और गाँठें जटाओ में पडी।

(३) कीन्ह तन खेहा—शरीर को मिट्टी कर दिया। यहाँ पर रूढ़ा लक्षणा है। यह रूढ़ मुहावरा है।

(क) मेखल—जोगियों की करधनी होती है।

(ख) सिघी—सीग का वाजा होता है। इसे नाथ पंथी योगी धारण करते हैं।

(ग) चक्र—छोटी गोल अँगूठी जिसे सम्भवतः पवित्री भी कहते है।

(घ) घंधारी—गोरख धन्धा।

(ङ) जोग वाट—यह वह वस्त्र है जिसे योगी ध्यान करते समय सिर से पैर तक डाल लेता है।

(च) रुद्राक्ष—रुद्राक्ष की माला होती है।

(छ) अधारी—योगियों के डंडे को कहते है।

(ज) कंथा—योगियो के पहनने का चोलना।

(झ) दंड—डंडा।

(ञ) उदपान—कमण्डल।

(ट) वघछाला—वाघम्वर।

भेस करि राता—जायसी ने राता शब्द बहुत से अर्थो मे प्रयोग किया है। मैं यहाँ पर इसका अर्थ दिव्य करना उपयुक्त समझता हूँ। आचार्य शुक्ल ने इसका अर्थ गेरुआ किया है। डा० अग्रवाल ने अर्थ "लाल वेश पहन कर" किया है।

भुगुति—इस शब्द मे शब्द शक्ति उद्भव अनुरणन ध्वनि है। इसका साधारण अर्थ भिक्षा मालूम होता है किन्तु इसकी व्यंजना पदमावती के भोग भाव की भी होती है। यहाँ पर नाथ पंथ की उस प्रवृत्ति का वर्णन किया गया है, जिसके अनुसार साधक भुक्ति एव मुक्ति दोनो को समान महत्त्व देता है। यहाँ पर साधक भुक्ति को विशेष महत्त्व दे रहा है।

सिद्ध होइ·········हिये वियोग। यहाँ पर पदमावती के भोग को भी सिद्धि माना गया है। वाम मार्गी दृष्टि से वामा की प्राप्ति भी एक प्रकार की सिद्धि है। यहाँ पर प्रत्यक्ष रूप से थोड़ा-सा प्रभाव वाम मार्ग का लग रहा है किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से पदमावती ब्रह्म का प्रतीक है। अतः पदमावती की उपलब्धि मुक्ति रूप भी है।

विशेष—इस अवतरण मे नाथ पथी साधक के संश्लिष्ट रूप का चित्रण किया गया है। सूफी कवियो के प्रायः इस प्रकार के वर्णन मिलते हैं।

मंझन ने भी मधुमालती के जोगी खण्ड मे इसी प्रकार लिखा है—

कठिन विरह दुःख जान संभारी, मांगा खप्पर डंड अधारी।
चक्र हाथ मुख भस्म चढ़ावा, श्रवन फटिक मुद्रा पहिरावा॥
अड़िया विकर कीन्ही सारी, गुन कीन्ही वैरागी सीटी
कथा मखली चिरकुटे जटा पर जो वेस।
वज्र का छोटा वाघ के वैसा गोरास केस॥

गनक कहहि गनि गौन न आजू । दिन लेइ चलहु, होइ सिध काजू ॥
पेम-पंथ दिन घरी न देखा । तब देखे जब होइ सरेखा ॥
जेहि तन पेम कहाँ तेहि माँसू । कया न रकत, नैन नहीं आँसू ॥
पण्डित भूल न जानै चालू । जीउ लेत दिन पूछ न कालू ॥
सती कि बौरी पूछहि पाण्डे । औ घर पैठि कि सैतै भाँडे ॥
मरै जो चलै गंग गति लेई । तेहि दिन कहाँ घरी को देई ॥
मै घर बार कहाँ कर पावा । घरी के आपन, अन्त परावा ॥
हौ रे पथिक पखेरु; जेहि बन मोर निबाहु ।
खेलि चला तेहि बन कहँ, तुम अपने घर जाहु ॥२॥

[इस अवतरण मे कवि ने रतनसेन के प्रस्थान का वर्णन किया है ।]

ज्योतिषी रतनसेन से गणना करके कहते है—आज जाना ठीक नहीं है । दिन छँटवा कर चलना चाहिये तब कार्य सिद्ध हो सकता है । इस पर रतनसेन ने कहा— प्रेम मार्ग मे दिन और घड़ी नही देखते है । दिन तिथि आदि का निर्णय तब करना चाहिए जब सुभीते से कार्य करना हो । जिसके शरीर मे प्रेम होता है उसके शरीर में माँस नही होता । उसके शरीर मे रक्त नही रह जाता और न आँसू के रूप मे ही रक्त मिलता है । पण्डित ढोंगी होते है वह चाल के विषय मे कुछ नही जानते । काल प्राण लेते समय दिन नही पूछता हैं । सती जब प्राण देने जाती है तब पाण्डे से तिथि पूछने नही जाती । वह घर मे बैठकर गृहस्थी नही सम्भालती । जो मर कर गंगा को जाता है तो वहाँ उसको दिन और घड़ी कौन बताता हैं । मैं घर-बार कहाँ बना पाया जिसके लिए गणना करूँ । यह शरीर रूपी घर भी अन्त में पराया हो जायेगा ।

मैं पंख वाला पक्षी हूँ । जिस वन मे मुझे रहना है उसी वन को पाने के लिए खेल चला हूँ । तुम सब अपने घर जाओ ।

टिप्पणी—इस अवतरण मे प्रेम मार्ग चलने के लिए तिथि और दिन की खोज करने की निन्दा की गई है । जायसी ने यहाँ पर पुरोहितवाद पर कुठाराघात किया है ।

चहुं दिसि आन साँटिया फरी । भै कटकाई राजा केरी ॥
जावत अहहि सकल अरकाना । साँभर लेहु दूरि है जाना ॥
सिघल दीप जाइ अब चाहा । मोल न पाउब जहाँ वेसाहा ॥
सब निबहै तहँ आपन साँठी । साँठि बिना सो रह मुख माटी ॥
राजा चला साजि कै जोगू । साजहु बेगि चलहु सब लोगू ॥

गरब जो चढ़ तुरय क पीठी । अब भुइँ चलहु सरग के डीठि ॥
मंतर लेहु होहु संग लागू । गुदर जाइ सब होइहि आगू ॥
का निचित रै मानुस, आपन चीते आछु ।
लेहि सजग होइ अगमन, मन पछताव न पाछु ॥३॥

[इस अवतरण में राजा के सामन्तों को राजा के साथ चलने की प्रेरणा का वर्णन किया गया है ।]

साँटी (वेत) धारण करने वाले सिपाहियो को चारों ओर यह घोषणा कर दो कि राजा सिंहल द्वीप की ओर प्रस्थान कर रहे है। जिससे सब फौज एकत्रित हो जाय और जितने सामन्तादि है वे सब भोजन की पर्याप्त सामग्री ले लें। क्योंकि बहुत दूर जाना है, सबको सिंहल द्वीप जाना है वहाँ मूल्य देकर भी कोई वस्तु नही खरीदी जा सकेगी। वहाँ सबको अपने पास की पूँजी से काम चलाना होगा। गाँठ मे यदि भोजनादि न हुआ तो मुँह मे मिट्टी ही खानी पड़ेगी । राजा जोग के हेतु यह साज सजाकर चल रहा है। अतः सब लोग जल्दी से चलने को तैयार हो जाओ। जो गर्व के घोड़े की पीठ पर चढे हों वे उसे छोड़ दें और आकाश में उर्ध्व दृष्टि लगावें। दीक्षा मन्त्र लेकर सब उसके सहयोगी बनें और बर्बस आगे बढकर उसके साथ हो जावें। हे मनुष्य तू क्यो निश्चिन्त है अपने होश मे आ! सावधान होकर भविष्य की चिन्ता करो जिससे पीछे न पछताना पडे।

टिप्पणी—सांटियाँ—वेगधारी प्रतीहारी या सिपाही ।

ओरगाना—सामन्तादि ।

गुदारा—सामने होकर गुजरना या प्रयाण करना ।

विशेष—यहाँ पर कवि ने मानव मात्र को चेतावनी दी है कि समय पर जग जाना चाहिये। भर्तृहरि ने भी ऐसी चेतावनी दी है—

यावत स्वस्थमिदं शरीरम् रुज्जं यावज्जरादुखो ।
यावच्चे प्रिय शक्ति प्रतिहिता यावत क्षयोनायुष ॥
आत्मा श्रेयसि तापदेव विपुणा कार्य प्रयत्नो ।
सन्दीप्त भवनेत कूप खनतं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥

—वैराग्य शतम्, १३०

विनवै रतनसेन कै माया । माथे छात पाट निति पाया ॥
विलसहु नौ लख लच्छि पियारी। राज छाँडि जिनि होहु भिखारी ॥
निति चन्दन लागै जेहि देहा। सो तन देख भरत अब खेहा ॥
सब दिन रहेहु करत तुम भोगू। सो कैसे साधव तप जोगू ॥
कैसे धूप सहब बिनु छाँहाँ । कैसे नीद परिहि भुइ माँहा ॥

कैसे श्रोढ़ब काथरि कंथा । कैसे पाँव चलब तुम पंथा ॥
कैसे सहब खिनहि खिन भूखा। कैसे खाव कुरकुटा रुखा ॥
राजपाट, दर, परिगह, तुम्ह ही सौ उजियार ।
बैठि भोग रस मानहु, कै न चलहु श्रँधियार ॥४॥

[यहाँ पर कवि रतनसेन की माता रतनसेन से योगी बनकर घर न त्यागने का आग्रह करती है।]

रननसेन से उसकी माता वात्सल्य भाव से कहती है हे पुत्र तुम्हारे मस्तक पर सदैव छत्र रहा है और तुम्हारे पैर पाट पर रहे हैं। तुम नौ लाख सम्पत्ति और प्रिय पत्नी के साथ विलास करो राज्य छोडकर भिखारी मत हो। जिस शरीर में नित्य चन्दन लगता था अब उसमे भस्म लगी दिखाई पड़ेगी। तुम सब दिन भोग करते रहे अब तपस्या योग की साधना कैसे करोगे। तुम छाँव के अभाव में सदैव धूप कैसे सहोगे। पृथ्वी पर कैसे नीद आयेगी। तुम कावरी और कंथा कैसे ओढोगे। मार्ग मे तुम पैरो से कैसे चलोगे। क्षण-क्षण मे जब भूख लगेगी तो उसे कैसे सहोगे। रूखा कुरकुटा कैसे खाया जायेगा।

राजपाट, सेना और सामग्री सब कुछ तुम्हारे कारण ही जगमग रहता था। इस सब का भोग कर आनन्दित हो। अँधेरा करके मत जाओ अर्थात् मुझे निराश मत करो।

टिप्पणी—नौ लख लच्छि—यहाँ पर नौ लख लच्छि शब्द औपचारिक है। इसका अर्थ अत्यधिक सम्पत्ति है।

परिगह—परिग्रह, आश्रित लोग, प्रजावर्ग।

कुरकुटा—एक प्रकार का निम्न कोटि का जंगली चावल।

कै न चलहु अँधियार—नैराश्य फैला कर मत जाओ। वह अर्थ लक्षण लक्षणा से लिया गया है।

मोहि यह लोभ सुनाव न माया। काकर सुख, काकर यह काया ॥
जो निश्रान तन होइहि छारा। माटिहि पोखि मरै को भारा ॥
का भूलौ एहि चन्दन चोवा। बैरी जहाँ श्रग कर रोवाँ ॥
हाथ पाँव, सखन औ आँखी। ए सब उहाँ भरहिं मिली साखी ॥
सूत सूत तन बोलहि दोखू। कहु कैसे, होइहि गति मोखू ॥
जो भल होत राज औ भोगू। गोपीचन्द नहीं साधत जोगू ॥
उन्ह हिय-दीठि जो देख परेवा। तजा राज कंजरीवन सेवा ॥
देखि अन्त अस होइहि, गुरु दीन्ह उपदेस ।
सिघल दीप जाव हम, माता! देहु अदेस ॥५॥

[इस अवतरण में रतनसेन अपनी माँ को प्रत्युत्तर देता है। वह भोगवाद की निस्सारता व्यंजित करते हुए योग के महत्त्व की व्यंजना की गई है]

हे माता ! मुझे इस प्रकार लोभ मत दो। यह सुख किसका है और काया किसकी है ? यदि अन्त मे इस शरीर को जलकर राख ही होना है तो फिर मिट्टी का पोषण करने से क्या लाभ ! इस शरीर मे जिसका रोम-रोम वैरी है। चन्दन चोवा लगाकर भुलाने से क्या लाभ ! हाथ, पाँव, कान और आँख यह सब अपने ही विरुद्ध साक्षी देगें। शरीर का एक-एक रोम कूप भी अपने ही दोष कहेगा। फिर मुक्ति या सद्गति कैसे प्राप्त होगी। यदि राज और भोग हितकर होते तो गोपीचन्द योग क्यों साधते। उन्होंने जब ससार को पराया समझ लिया था तभी राज्य त्याग कर कजरी वन का मार्ग लिया था।

देखो अन्त ऐसा ही होगा। गुरु ने मुझे उपदेश दिया है। मैं सिंहल द्वीप जाऊँगा ! हे माता तुम्हे मेरा प्रणाम है।

टिप्पणी—माया—यहाँ शब्द शक्ति उद्भव अनुरणन ध्वनि है। इसका अभिधेयार्थ माता है। किन्तु कवि ने माया के अर्थ की भी व्यंजना की है। रतनसेन कहता है कि माया मोह का प्रतीक रूप माँ का लोभ न दे।

काकर सुख—काकर यह काया। काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य है ! अर्थ है कि यह सुख और शरीर किसी का साथ नही देते।

'यह' पद मे पदगत अर्थान्तर सक्रमित वाच्य ध्वनि है। यहाँ पर 'यह' का अर्थ है 'यह नश्वर शरीर' नश्वरता का उपादान होने के कारण यहाँ पर उपादन लक्षणा भी है।

गोपीचन्द—यह बंगाल के राजा थे और सम्भवतः भर्तृहरि के भानजे थे। भर्तृहरि की बहन मयनावती इसकी माता थी। माता के उपदेश से गोपीचन्द नाथ पंथी योगी हो गए थे। इन्होने जालन्धर नाथ से दीक्षा ली थी।

कजरी वन—एक वन जहाँ सिद्धों की बहुलता है महाभारत मे ऋषीकेश से बद्रिकाश्रम तक का वन कदली वन कहा गया (देखिए वनपर्व, अध्याय ४६, श्लोक ६२-६३)।

रोवहि नागमती रनिवासू। केइ तुम्ह कंत दीन्ह बनवासू ।।
अबको हमहि करहि भोगिनी। हमहूं साथ होब जोगिनी ।।
की हम्ह लावहु अपने साथा। की अब मारि चलहु एहि हाथा ।।
तुम्ह अस बिछुरे पीउ पिरीता। जहँ वाँ राम तहाँ सँग सीता ।।
जौ लहि जिउ सँग छांड न काया। करिहौ सेव, पखरिहौ पाया ।।
भलेहि पदमिनी रूप अनूपा। हमते कोई न आगरि रूपा ।।
भँवै भलेहि पुरुखन कै डीठी। जिनहि जान तिन्ह दीन्ही पीठी ।।

देहि असीस सबै मिलि, तुम्ह माथे नित छात।
राज करहु चित उर गढ़, राखहि पिय अहिवात ॥६॥

[इस अवतरण में कवि ने राजा रतनसेन के प्रस्थान करने पर नागमती और रनिवास की विरह-वेदना की अभिव्यक्ति की है।]

नागमती और दूसरी रानियाँ रोती हैं और पति से पूछती हैं। हे पति आप को वनवास किसने दिया है, अब हमें कौन भोगवती करेगा। हम भी साथ में योगिनी बनेंगी। या तो हमें अपने साथ लो या अपने हाथों से हमें मार कर जाओ। (हे पति देव) तुम्ही इस प्रकार अकेले जाने की सोच रहे हो नही तो जहाँ राम वहीं सीता रहती है। जब तक शरीर को जीव नही छोड़ेगा तक तक आपकी सेवा करूँगी। यह ठीक है कि पद्मनी का रूप अनुपम है किन्तु हमसे अधिक रूपवती कोई नही है। भले ही पुरुषों की दृष्टि चंचल हो किन्तु जिनसे अपनत्व होता है वे उन्हे भी नही छोड़ते।

हम सब मिलकर शुभ कामना प्रकट करती है कि तुम्हारे माथे नित्य छत्र रहे। इसमें कवि ने नागमती तथा अन्य रानियों का चित्र प्रवत्स्यपतिका के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। प्रवत्स्यपतिका उस नायिका को कहते हैं जिसका पति प्रवास के लिए जाने को उद्यत हो।

विरह की यह स्थिति भी बडी मार्मिक होती है। मृत्य से भी अधिक भयानक मृत्यु का भय होता है। इसी प्रकार विरह से भी अधिक व्यथित करने वाली पति प्रवास की भावना होती है। यहाँ पर कवि ने, रुन्दन, चिन्ता, उद्विग्नता, आदि विरह स्थितियों का वर्णन किया है।

जहवाँ राम तहाँ संग सीता—यहाँ पर कवि ने पति-पत्नी के भारतीय आदर्श का वर्णन किया है।

हमते कोई न आगरि रूपा—यहाँ पर कवि ने स्त्रियो के सहज अहंकार की सहज भाव से अभिव्यक्ति की है।

तुम तिरिया मति हीन तुम्हारी। मूरख सो जो मतै घर नारी।
राघव जो सीता सँग लाई। रावन हरी, कवन सिधि पाई॥
यह संसार सपन कर लेखा। बिछुरि गए जानौं नहि देखा॥
राजा भरथरि सुना जो ज्ञानी। जेहि के घर सोरह सै रानी॥
कुच लीन्हे तरवा सहराई। भा जोगी, कोऊ संग न लाई॥
जोगिहि काह भोग सो काजू। चहै न धन धरनी औ राजू॥
जूड़ कुरकुटा भीखहि चाहा। जोगी तात भात कर काहा॥
कहा न मानै राजा, तजी सवाई भीर।
चला छाँडि कै रोवत, फिरि कै दई न धीर॥७॥

[इस अवतरण मे रतनसेन ने अपनी रानियों को जो उत्तर दिया है उसको प्रस्तुत किया गया है।]

तुम स्त्री हो, तुम्हारी बुद्धि अल्प है जो पुरुष घर में बैठकर स्त्री से सलाह करता है वह बुद्धिहीन कहा जाता है। राम जो सीता को साथ लेकर वन को गए तो क्या कल्याण हुआ। उल्टे रावण के द्वारा उनका हरण हुआ। यह संसार स्वप्न के सदृश है। बिछुड जाने पर ऐसा लगता है कि कभी देखा ही न था राजा भरथरी कितने ज्ञानी थे कि उनके रनिवास मे १६०० रानियाँ थी। वे कुचो से उसका तलवा सहलाती थी। किन्तु जब योगी हुए तो उन्होंने उनमे से एक को भी साथ नही लिया। जोगी को भोग से क्या प्रयोजन। उसे धन, धरती और राज्य की इच्छा नही होती है। जोगी तो ठंडा कुरकुटा (धान का चावल) भीख मे चाहता है। जोगी को गरम भात से क्या प्रयोजन।

राजा ने कहना नही माना। वह भीड़ को छोड़ कर चल दिया। वह ऐसा छोड़ कर चला कि उलट कर किसी को धीरज नही बंधाया।

टिप्पणी—यह संसार सपन कर लेखा—यहाँ पर जायसी ने स्वप्नवाद के प्रति आस्था प्रकट की है। स्वप्नवाद का सिद्धान्त बौद्धो और वेदान्तियों दोनो को मान्य रहा है। इसके लिए लेखक की "जायसी का पद्मावत काव्य और दर्शन' देखिए।

राजा भरथरि इत्यादि —इस पक्ति का पाठ भेद डा० अग्रवाल से निम्न रूप मे मिलता है। यह शुक्ल जी के पाठ से उपयुक्त प्रतीत होता है —

राजा भरथरि सुनि रे अज्ञानी।

रोवत माय, न बहुरत बारा। रतन चला घर भा अँधियारा ।।
बार मोर जो राजहि रता। सो लै चला सुआ परबता ।।
रोवहि रानी, तजहि पराना। नोचहि बार करहि खरिहाना :।
चूरहि गिउ-अभरन उर-हारा। अब कापर हम करब सिगारा ।।
जा कहँ कहहि रहसि कै पीउ। सोइ चला काकर यह जीउ ।।
मेरे चहहि, पै मरै न पावहि। उठै आगि सब लोग बुझावहि ।।
घरि एक सुठि भएउ अँदोरा। पुनि पोछ बीता होइ रोरा ।।

टूटे मन नौ मोती, फूटे मन दस काँच।
लीन्ह समेट सब अभरन, होइगा दु.ख कर नाच ।।८।।

[इस अवतरण में कवि ने राजा के प्रस्थान समय का करुण चित्र खीचा है।]

उसकी माता रोने लगी—मेरा बालक लौटने को प्रस्तुत नही है। रतनसेन के प्रस्थान करते ही घर मे अन्धकार हो गया। मेरा पुत्र जो राज्य कुल का उपभोग कर रहा था उसे वे पर्वतीय तोता लिवाए लिए जा रहा है। रानियाँ भी विलाप कर रही और प्राण छोड़ रही हैं। और हाथ की चूड़ियाँ फोड़ कर खलिहान करने लगी।

वे ग्रीवा के आभरण और हार चूर-चूर कर रही है और कहती है। अब हम किसके लिए शृंगार करेंगी। हम मरना चाहती है। किन्तु मृत्यु भी नही आती। विरह की ज्वाला उठती है किन्तु सब लोग बुझा देते है। इस प्रकार एक घरी आन्दोलन मचा रहा। बाद को भी रोना धोना चलता रहा।

नौ मन मोती और दस मन काँच की चूड़ियाँ टूट गई। सब आभरण समेट कर बुहार दिए गए। इस प्रकार दुःख का नाच हो गया।

टिप्पणी—रतन चला घर भा अँधियारा—यहाँ पर 'रतन' शब्द में शब्द-शक्ति उद्भव अनुरणन ध्वनि है। रतन शब्द से कवि ने जाज्वल्यमान रत्न का भी अर्थ व्यंजित किया है। इस शब्द से कवि ने रतन सेन की महत्ता भी व्यंजित की है।

अँदोरा—आन्दोलन।

मंझन ने भी इन दोनों शब्दों को एक साथ ही प्रयुक्त किया है।

"मुख तमोर सिर सेंदुर रोरा,
गावैं तरुनी होइ अँदोरा।

—मधुमालती पृ० १८

होइगा दुःख कर नाच—यहाँ पर दु.ख का मानवीकरण किया गया है। इसमे उपचार वक्रता से विशेष चमत्कार आ गया है।

बार मोर जौं राजहि रता।

इसका पाठान्तर डा० गुप्त और अग्रवाल ने इस प्रकार दिया है।

"बार मोर रजि आउर रत"

रजि आउर का अर्थ राज्य कुल लिया है। माता प्रसाद जी ने इसका अर्थ राज-काज किया है।

सुधाकर जी ने इसका पाठान्तर इस प्रकार किया है :—

'बार मोर रज बाउर रता'

किन्तु यह पाठ हमे उपयुक्त नही प्रतीत होता है।

निकसा राजा सिंगी पूरी। छाँडा नगर मेलि कै धूरी॥
राय रान सब भए वियोगी। सोरह सहस कुँवर भए जोगी॥
माया मोह हरा सेइ हाथा। देखिन्हि बूझि निआन न साथा॥
छाँडेन्हि लोग कुटुंम्ब सब कोउ। भए निनार सुख दुख तजि दोउ॥
सँवरै राजा सोइ अकेला। जेहि के पंथ चले होइ चेला॥
नगर नगर औ गाँवहि गाँवाँ। छाँडि चले सब ठाँवहि ठाँवाँ॥
काकर मढ़ काकर घर माया। ताकर सब जाकर जिउ काया॥
चला कटक जोगन्हि कर कै गेरुआ सब भेसु।
कोस बीस चारिहु दिसि जानो फला टेस॥६॥

[इस अवतरण मे कवि ने राजा के योगी वन कर घर से निकलने की बात कही है ।]

राजा ने नगर को धूल मे मिला दिया । योगी वनकर बाहर निकल पडा । राजा राय सब वियोगी बन गए । १६ हजार राजकुमार योगी हो गए । उन्होंने अपने हाथो माया मोह का त्याग कर दिया और मन मे अच्छी तरह समझ लिया कि अन्त मे कुछ साथ नही जाएगा । उसने सारा समाज यहाँ तक कि कुटुम्ब तक त्याग दिया । वे सुख दु ख दोनो त्याग कर अलग हो गए । राजा केवल उसी का स्मरण कर रहा था जिसका वह चेला वन कर उसकी खोज मे निकला था । प्रत्येक नगर और स्थान को वह अपने स्थान पर छोड कर चला । किसका घर है ? किसकी यह सम्पत्ति है ? यह सब उसी का है जिसका जीव और यह शरीर है ।

गेरुआ वस्त्र धारण कर योगियो की फौज चली । ऐसा लगता था मानो वीस कोस तक चारो ओर टेसू फूल रहा हो ।

टिप्पणी—छाँडा नगर मेलि कै धूरी—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से कवि ने नगर की अतिशय दयनीय एवं निराश्रिता अवस्था व्यंजित की है ।

विशेष—इसमे कवि ने नाथ पथी वैराग्य का स्वरूप प्रस्तुत किया है । नाथ पंथी सुख दु ख आदि द्वन्द्वो से उदासीन हो जाता है । सब कुछ त्याग कर योग साधना का मार्ग लेता है । कवि ने उसी स्थिति का वर्णन किया है ।

आगे सगुन सगुनियैं ताका । दहिने माछ रूप के टाँका ॥
भरे कलस तरुनी जल आई । 'दहिउ लेहु' ग्वालिनि गोहराई ॥
मालिनि आव मौर लिए गाँथे । खंजन वैठ नाग के माथे ॥
दहिने मिरिग आई वन धाँए । प्रतीहार वोला खर वाएँ ॥
बिरिख सँवरियाँ दहिने वोला । वाएँ दिसा चापु चरि डोला ॥
बाएँ अकासी धौरी आई । लोवा दरस आई दिखराई ॥
बाएँ कुररी दहिने कूचा । पहुँचे भुगुति जैस मन रुचा ॥
जा कहुँ सगुन होहि अस औ गवनै जेहि आस ।
अस्ट महासिधि लेहि कहँ, जस कवि कहा वियास ॥१०॥

[इस अवतरण मे कवि ने रतनसेन के प्रस्थान काल मे जो शकुन हुए उनका वर्णन किया है ।]

शकुन शास्त्र के पण्डितो ने आगे वढकर शकुन विचारे । चाँदी के वड़े-वडे बर्तनो मे दही और मछली भरी हुई आ रही थी । जल भरा कलश लेकर तरुणी आ रही थी । "दही लो" कह कर ग्वालिन आवाज लगा रही थी । मालिन गूथा हुआ हार लेकर सामने आ गई । खजन सर्प के मस्तक पर वैठा दिखाई दिया । दाहिनी

ओर से एक मृग वन की ओर से भागता हुआ आया। बाई ओर तीतर और गधा बोला, दाहिनी ओर साँवला साँड बोलने लगा। बाईं ओर नील कण्ठ उड़ गया, बाई ओर आकाश धोबिन अर्थात् आकाश की (क्षेमकरी) दिखाई दी और लोमड़ी ने दर्शन दिया। बाईं ओर कुररी और दाहिनी ओर क्रौंच पक्षी बोलने लगा। इससे पता चलता था कि मन मे जैसी इच्छा है वैसा भोग प्राप्त होगा। जिसको इस प्रकार के शकुन होते है उसकी वह आशा पूर्ण होती है जिस आशा से वह बाहर निकलता है। उसे आठो महासिद्धियाँ प्राप्त होती है, ऐसा व्यास जी का कथन है।

टिप्पणी—दहिने माछ रूप के टांका—यात्रा के समय चाँदी के पात्र में मछली दही के दर्शन परम शुभ होते है। 'बसन्तराज शाकुन' मे जो पचास मंगल द्रव्य दिए है उनमें इन तीनों की विशेष प्रतिष्ठा है।

खंजन बैठ नाग के माथे—'बसन्तराज शाकुन' मे लिखा है :—

तुरंगमातंग महोरगेषू सरोज गौछत्रवृषेषु येन।
पूर्वे च दृष्टोऽह्नि खंजरीटो निःसंशयं तस्य भवेन्नृपत्वम्।।

—बसन्तराज १०।१४

दहिने मिरिग आइ बन धांए—वृहत्संहिता में लिखा है :—

ओजः प्रदक्षिणं शस्ता मृगाः सन कुलाण्डजाः

—वृहत्संहिता ८५।४३

प्रतीहार बोला खरवाए—'धन्या वामे खरस्वनः'—महत चिन्तामणि यात्रा खण्ड देखिए।

विरिख संवरिया दहिने बोला—बसन्तराज शाकुन में सांड़ का निम्न मुद्रा मे सामने आना शुभ लिखा है।

वासो अनुलोमश्च खः खुरेण शृंगेण चाग्रे खननं पृथिव्या।
प्रशस्यते दक्षिणातश्च चेष्टा तथा निशीथे निनदो नृपस्य।।

बाँए दिसा चाखि चरु डोला—इसका पाठान्तर डा० अग्रवाल ने इस प्रकार दिया है।

वाए दिस गादुर नहि डोला—दोनो का ही शुभ रूप है।

आकास धारी—क्षेमकरी पक्षी भारतीय समाज मे बहुत प्रतिष्ठित है।

लोवा दरस आइ दिखराई—लोमड़ी का दर्शन शकुन शास्त्र में बड़ा शुभ माना गया है। बसन्तराज शाकुन मे लिखा गया है :—

सिद्धै सदा सर्वसमीहितानां।
स्याल्लोमशी दर्शन मात्रमेव।।

—बसन्त १४।४४

बाएँ कुररी—कुररी टिटहरी पक्षी को कहते हैं। वसन्तराज शाकुन मे ८।१३ में लिखा है :—

वामं प्रवासे रटितं हिताय तयोपरिष्टादपि टिट्टिभस्य ।
टिटीति शान्तं टिटिटीतिदीप्त शब्दद्वयं चास्य बुधा वदन्ति ॥

दहिने कूचा—क्रौंच मिथुन का दर्शन बड़ा शुभ होता है।
स वेदितव्य. कथितोऽर्थकरी क्रौंच द्वयस्याप्ययमेव मार्गः ।

—वसन्तराज ८।११

अष्टौ महासिद्धि—अष्ट सिद्धियो के नाम इस प्रकार है :—

(१) अणिमा (छोटा हो जाना), (२) महिमा (बड़ा हो जाना), (३) लघिमा (हल्का हो जाना), (४) गरिमा (गुरु हो जाना), (५) प्राप्ति (चाहे जिसे स्पर्श करले), (६) प्राकाम्य (इच्छाचारी) (७) ईश्वरत्व (चाहे जिनका ईश हो जाए), (८) वशित्व (चाहे जिसे वश मे कर ले।)

भएउ पयान चला पुनि राजा। सिंगि-नाद जोगिन कर बाजा॥
कहेन्हि आजु किछु थोर पयाना। काल्हि पयान दूरि है जाना॥
ओहि मिलान जो पहुँचै कोई। तब हम कहब पुरुष भल सोई॥
है आगे परवत कै बाटा। विषम पहार अगम सुठि घाटा॥
बिच बिच नदी खोह औ नारा। ठावहि ठाँव बैठि बटपारा॥
हनुवंत केर सुनब पुनि हाँका। दहुँ को पार होई को थाका॥
अस मन जानि संभारहु आगू। अगुआ केर होहु पछलागू॥
करहिं पयान भोर उठि, पंथ कोस दस जाहि।
पथी पथा जो चलहि ते, कान रहहिं ओठाहिं॥११॥

[इस अवतरण मे राजा के पुनर्प्रस्थान का वर्णन किया गया है।]

जोगियो का प्रस्थान हुआ और राजा फिर चल दिया। योगियो ने अपना सिंगी नाद बजाया। उन्होने कहा आज तो कूँच कुछ ही दूर तक रहेगा किन्तु कल के प्रयाण मे दूर तक जाना पड़ेगा। उस गन्तव्य (मंजिल) पर जब कोई पहुँचेगा तो हम कहेगे कि वही श्रेष्ठ पुरुष है। आगे पर्वतों से अक्रान्त मार्ग है। बड़े भयानक पहाड पड़ेंगे। बडे-बडे दुर्गम घाट बीच-बीच मे नदी खोह और नाले पड़ेंगे। स्थान-स्थान पर मार्ग मे चोर मिलेंगे। फिर हनुमान जी की हांक सुनाई देगी। उस समय न जाने कौन पार होगा, तथा कौन थक-थक कर रुक जाएगा। ऐसा मन मे समझ कर आगे देखो और मुखिया के पीछे लग जाओ।

वे सब सवेरा होते ही प्रस्थान कर देते है और प्रति दिन दस कोस तक चले जाते हैं।

टिप्पणी—ओहि·········भल सोई—यहाँ पर ओहि शब्द में संवृति वक्रता है। कवि ने इस शब्द से गन्तव्य स्थान की दिव्यता व्यजित की है।

आगे·········बटपारा—यहाँ पर कवि ने साधना मार्ग की विषमता व्यजित की है।

हनुवंत केर·········हांका—हिमालय पर बद्रिकाश्रम के आस-पास का स्थान कदली वन है। सिद्ध लोग वही रहते है। उस वन में उनकी ही गति थी। उसी वन मे हनुमान जी रहते है। महाभारत के वन पर्व में एक कथा दी है—एक बार पाण्डव द्रौपदी सहित जब बद्रिकाश्रम मे पहुँचे उसी समय मार्ग में कही सहस्र दल कमल पडा हुआ मिल गया। द्रोपदी उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुई। उन्होने भीम से कहा कि तुम ऐसे अनेक फूल लाओ। इस प्रकार भीमसेन ढूँढ़ते-ढूँढते कदली वन में पहुँचे वहाँ हनुमान जी मिले।

स भीमसेनस्तच्छ्रुत्वा सम्प्रहृष्टो महावने।
पद्मानिअन्विषन् विचचार स कदली वनं ॥
कदली वन मध्यस्थमथपीनशिला तले।
ददर्श स महाबाहुर्वानराधिपति तदा ॥

—वन पर्व १४३। १५९

अर्थात् भीम जी ने कदली वन मे विचरण किया। वहाँ उन्होने एक भारी शिला पर हनुमान जी को बैठे देखा।

हनुमान जी ने भीमसेन से कदली वन की दुर्गमता का वर्णन करते हुए कहा। कि इस भयंकर वन मे सिद्ध योगी ही जा सकते है।

अतः परमगम्योऽयं पर्वतः सुदूराहः।
विना सिद्धगतिं वीर गतिश्च न तत्र विद्यते ॥
देव लोकस्य मार्गोऽयमगम्यो नरै. सर्वदा।
कारुण्यात त्वामहं वीर तन्मार्गात् निवारये ॥

यह पर्वत बड़ा दुर्गम है। वह ही दूरारूढ़ है। हे वीर विना सिद्धि प्राप्त हुए इस वन मे कोई नही पहुँच सकता। यह मार्ग देवलोक को जाता है। मनुष्य के लिए सर्वथा अगम्य है। हे वीर मैं करुणपूर्वक वहाँ जाने से तुम्हें रोकता हूँ।

प्रस्तुत उद्धारणों से स्पष्ट प्रकट है कि जायसी के इस अवतरण पर महाभारत के उपर्युक्त प्रसंग का पूरा प्रभाव है।

करहु दीठि थिर होइ बटाऊ। आगे देखि धरहु भुइँ पाऊ ॥
जो रे उवट होइ परे भुलानें। गए मारि, पथ चलै न जानें ॥
पाँयन पहिरि लेहु सब पौरी। काँट धसै, न गड़ै अकरौरी ॥
परे आइ बन परवत माहाँ। दंडा करन बीझ-बन जाहाँ ॥
सघन दाँख बन चहुं दिसि फूला। बहु दुःख पाव जहां कर भूला ॥

झाँखर जहाँ सो छाड़हु पंथा । हिलगि मकोइ न फारहु कंथा ।।
दहिने विदर, चँदेरी बाए । दहुं कहँ होइ बाट दुइ बाएँ ।।
एक बाट गए सिघल, दूसरि लंक समीप ।
है आगे पथदूओ, दहु गौनब केहि दीप ।। १२।।

[इस अवतरण मे भी मार्ग की दुरूहता ही व्यजित की गई है ।]

ऐ पथिक ! अब आँख से देखो और दृढ हो जाओ । आगे आँखों से पृथ्वी को देखकर पैर बढ़ाओ । जो पथिक पथभ्रष्ट हो जाते हैं, वे मर जाते हैं क्योकि पथ पर चलना नही जानते । सब लोग पैरो मे खड़ाऊँ पहन लो जिससे न तो पैरो में काँटा चुभे और न ककड़ी गडे । अब तुम उस वन खण्ड मे आ गए हो जहाँ विन्ध्याचल के वन मे दण्डकारण्य है । चारो ओर ढाक का वन फूला हुआ है । जो यहाँ भटक जाते है, उन्हें वड़ा दु.ख मिलता है । जहाँ काँटेदार झाड़ियाँ हों वहाँ न जाना । मकोय के वृक्षो से उलझ कर कंथा मत फाड़ना । दाहिने हाथ की ओर बीदर देश और बाएँ हाथ में चंदेरी पड़ेगा । इन दोनो स्थानो के बीच न जाने कहाँ स्थान मिलेगा ।

एक मार्ग तो सिहल दीप जाता है, दूसरा लंका के समीप जाता है । आगे दो मार्ग विभक्त हो गए है, न मालूम किस मार्ग मे पहुँच कर किस दीप में चले जाएँ ।

टिप्पणी—इस अवतरण मे कवि ने अपने मार्ग का निर्देश किया है । इससे कवि का शुद्ध भौगोलिक ज्ञान प्रकट होता है ।

दण्डकारन—दण्डकारण्य के सम्बन्ध मे पुराणो में एक कथा दी हुई है । कहते है कि सूर्य वश का एक राजा मृगया खेलता हुआ विन्ध्याचल वन मे पहुँच गया । वन में शुक्राचार्य रहते थे । वहाँ उसे शुक्राचार्य की कन्या मिली, वह परमसुन्दरी थी । वह उसे देखकर कामातुर हो गया और उसने उससे व्यभिचार किया । यह बात जब शुक्राचार्य को मालूम हुई तो उन्होने शाप दे दिया कि तू सशैन्य जड वन हो जा ।

दहिने विदर चँदेरी बाएँ—रतनसेन ने अपनी यात्रा चित्तौड़ से प्रारम्भ की थी । वहाँ से पूर्व की ओर चला । पूर्व की ओर चलने पर स्वभावत. विन्ध्याचल के बीहड़ वन दण्डकारण्य मे पहुँचा । वहाँ से उसके दक्षिण मे विदर्भ देश था और बाईं तरफ चँदेरी प्रान्त था । नर्मदा पार करके दो मार्ग रहे होगे । (१) एक सम्भवत. बढ़ते हुए नागपुर चला जाता था और दूसरे जो बिलासपुर होते हुए उडीसा के तट की ओर चला जाता था । पहला मार्ग लका को जाता था और दूसरा सिंहल को । प्रस्तुत अवतरण मे कवि ने इसी स्थिति का वर्णन किया है ।

विदर—टाड और कनिंघम साहब ने विदर के अन्तर्गत बाँसवाड़ा, डोगरपुर, प्रतापगढ, वरोदा खानदेश यह सब विदर के अन्तर्गत माने है (Tods Rajasthan I, Page 166, ed 2nd)

चंदेरी—जायसी के समय मे इसकी सीमा मालवा तक थी । अब केवल एक

छोटा-सा नगर मात्र रह गया है। अकबर के समय मे भी इसकी सीमा उज्जैन तक थी।

ततखन बोला सुआ सरेखा। अगुआ सोइ पंथ जेई देखा ।।
सो का उड़ै न जेहि तस पाँखू। लेइ सो परासहि बूड़ति साखू ।।
जस अंधा अंधै कर संगी। पंथ न पाव होइ सह लंगी ।।
सुन मत काज चहसि जौ साजा। बीजानगर बिजयगिरि राजा ।।
पहुँचौ जहाँ गौड औ कोला। तजि बाएँ अधियार खटोला ।।
दक्खिन दहिने रहहि तिलंगा। उत्तर बाएँ गढ़ काटंगा ।।
माँझ रतनपुर सिघ दुवारा। झारखण्ड देइ पाँव पहारा ।।
आगे पाव उड़ैसा, बाएँ दिए सो बाट।
दहिना बरत देइ कै, उतरु समुद के घाट ।।१३।।

[इस अवतरण मे कवि ने शुक्र के द्वारा मार्ग दर्शन कराया है।]

इसी समय चतुर तोते ने कहा—अगुआ उसी को बनना चाहिए जिसने मार्ग देखा हो। जिसके शरीर मे पख नही वह क्या उड़ सकता है। वह तो उस शाखा की भाँति है जो कि पत्ते को भी ले डूबती है। यह तो ऐसा है कि अधे को अंधा साथी मिल जाता है तो वह पथभ्रष्ट हो जाता है। यदि कार्य संवारना चाहता है तो मेरी बात सुन ! हे राजा विजय नगर बीजागढ़ कुण्ड और गोला की बात न कर। बाईं ओर अधियार खटोले को भी छोड़ दे और आगे बढ़ जा। दक्षिण मे दाहिनी ओर तिलंगाना रह जाएगा। उत्तर की ओर बीजागढ खड़ा है। बीच में रतनपुर पड़ता है उसके सामने सिह द्वार है। झारखण्ड के पहाड़ बाई ओर छूट जाएँगे। दाईं ओर मुड़कर समुद्र के घाट जा उतारना।

आगे उड़ीसा पड़ेगा परन्तु तू उसके दाई ओर वाले मार्ग को ग्रहण करना। वह मार्ग थोड़ा दाहिनी ओर मुड़कर समुद्र के तट पर जाता है।

टिप्पणी—लै सो परासहि डूबै साखू—यह कहावत है जो अयाने का साथ करते है उसी तरह गिरते है जिस प्रकार साख पत्ते को ले डूबती है।

जस अंधा''''''सह लेगी—यह भी लोकोक्ति है। अंधा यदि अंधे का साथ करेगा तो दोनो पथभ्रष्ट होगे।

कबीर ने लिखा भी है—

जा का गुरु भी आँधरा चेला खरा निरन्ध।
अन्धै अन्धा ठेलिया दून्यो कूप पड़न्त ।।

गोंड—एक द्रविड़ जाति।

कोल—एक जंगली जाति।

गोड औकोला—इसके स्थान पर डा० अग्रवाल ने कुण्ड और गोला पाठ स्वीकार किया है। इन दोनो के योग से उन्होने गोल कुण्डा का अर्थ लिया है।

अंधियार—आचार्य शुल्क ने इसे बीजापुर एक महाल बताया है। महाल का अर्थ उपप्रान्त है।

सुधाकर जी ने इसे अन्धकों का स्थान बताया है। अन्धक नगरी समुद्र के तट पर थी। डा० अग्रवाल भी शुल्क के मत के ही समर्थक प्रतीत होते है। उनका कहना है कि अधियार अनिजला नदी के तट पर था।

खटोला—यह भी एक प्रान्त था। आजकल सागर दमोह स्थान इसी स्थल पर है। (See Hunteer, Gazeeteer, Vol, IV)

गढ़—यह नाम उस स्थान का था जो आजकल जबलपुर से मडला तक फैला हुआ है। इसी से सम्भवतः मध्ययुग मे गोडवाना प्रदेश भी कहते थे।

(J. A. S. B., Vol. VI. 621 page)

तिलंगा—यह प्रदेश पश्चिमी बरार मे था।

(Description of Hindustan, Vol. II. page 121)

रतनपुर—यह बिलासपुर से बीस मील उत्तर मे है।

सिह दुआरा—शुक्ल जी ने इसको आधुनिक छिन्दवाडा बताया। यह सिह दुआरा का अपभ्रष्ट रूप है।

डा० अग्रवाल ने सिह दुआरा के स्थान पर सौंह दुआरा पाठ दिया है। दुआरा उन्होने महानदी की घाटी को बताया है। यह घाटी वही है जो बालपुर सारंगगढ़ के बीच उडीसा मे जा निकलती है।

झारखण्ड छत्तीस गढ़ और गोडवाने का उत्तर भाग।

(Description of Hindustan, Vol. II. page 6)

होत पयान जाइ दिन केरा। मिरिगारनमहँ भएऊ बसेरा ॥
कुस साँथरि भइ सौर सुपेती। करवट आइ बनी भुंइ सेती ॥
चलि दसि कोस ओस तन भीजा। काया मिलि तेहि भसम मलीजा ॥
ठाँव ठाँव सब सोवहिं चेला। राजा जागै आपु अकेला ॥
जेहि के हियै पेम रंग जामा। का तेहि भूख नीद बिसरामा ॥
बन अधियार रैन अधियारी। भादों बिरह भएउ अति भारी ॥
किगरी हाथ गहे बैरागी। पाँच तन्तु धुनि ओही लागी ॥
नैन लागि तेहि मारग, पदमावति जेहि दीप।
जैस सेवातिहि सेवै, बन चातक, जल सीप ॥१४॥

[इस अवतरण मे आगे के मार्ग का ही उल्लेख किया गया है।]

दिन-दिन कूँच होता जाता था। जब मृगारण्य में पडाव डाला गया तब कुशा की साथरी ही ओढ़ना विछौन बनी। सब धरती पर ही सोते थे। जिस शरीर मे चन्दन मला जाता था उसमे भस्म मलते थे। दस कोस नित्य चलने से शरीर में पसीने की बूँदें आ जाती थी। स्थान-स्थान पर चेले तो सब सो जाते थे केवल राजा अकेला जागता रहता था। जिसके हृदय मे प्रेम रग स्थान कर लेता है। उसे फिर भूख, नीद और विश्राम कुछ नही रहता है। फिर भादों की रात्रि मे अन्धेरे की निबड़ता को क्या कहा जाए। उस भयकर कालिमा मे उसका विरह और उद्दीप्त हो उठता था। वह वैरागी हाथ मे किंगरी लिए रहता था। उसके पाँचो तारों से वही एक ध्वनि उठती थी।

उसके नेत्र उसी मार्ग में लगे थे जिस दीप मे पदमावती थी। वन मे चातक और जल मे सीप जैसे स्वाती का ध्यान करते है वैसे ही वह पदमावती का ध्यान कर रहा था।

टिप्पणी—मिरगारन—यह पहले विजय नगर मे था। आजकल निमाड़ में है। यहाँ ऊँचे शिखरों के निवेश से नर्वदा के तीन छोटे-छोटे खण्ड हो गए है। वे शिखर एक पुल के तीन खण्ड से जान पड़ते है। इन्हे हरिण सहज मे कूद जाते है, इसीलिए इसका नाम मृगारण्य है।

(Maleam's Central India, Vol. I, page 13)

पाँच तन्तु धुनि ओहि लागी—राजा रतनसेन की किंगरी में पाँच तन्तु थे। उन पाँचों तन्तुओ से पदमावती की धुन निकलती थी। यहाँ पाँच तन्तु से पंच नाड़ियों का (इड़ा, पिंगला सुषुम्ना, चित्रा और ब्रह्म नाड़ी) भी सकेत लिया जा सकता है। उसकी पाँचो नाड़ियाँ उसी ध्वनि की साधना में लगी हुई थी। एक दूसरा संकेत पंच प्राणों का भी लिया जा सकता है। उसके पाँचो प्राण पदमावती की साधना में लगे रहते थे।

राजा गजपति संवाद खण्ड

मासेक लाग चलत तेहि बाटा। उत्तरे जाइ समुद के घाटा ॥
रतनसेन भा जोगी जती। सुनि भेटे आवा गजपति ॥
जोगी आप कटक सब चेला। कौन दीप कहँ चाहहि खेला ॥
आए भलेहि, मया अब कीजे। पहुनाई कहि आयसु दीजै ॥
सुनहु गजपति उतर हमारा। हम्ह तुम्ह एकै भाव निरारा ॥
नेवतहु तेहि जेहि नहि यह भाऊ। जो निहचै तेहि लाउ नसाऊ ॥
इहै बहुत जो बोहित पावौ। तुम्ह तै सिघल दीप सिधावौ ॥
जहाँ मोहि निज जाना, कटक होउ लेइ पार।
जौ रो जिओं तो वहुरौ, मरौ तो ओहि के वार ॥१॥

[इस अवतरण मे मार्ग का ही वर्णन किया गया है।]

उस मार्ग मे चलते हुए लगभग एक महीना हो गया। सब लोग समुद्र के घाट जा उतरे। राजा रतनसेन जोगी जती हो गया। यह सुन राजा गजपति उससे भेंटने आया। और बोला—तुम स्वय जोगी बने हो और सेना को चेला बनाया है, तो यह बताओ कि किस द्वीप को जाना चाहते हो। तुम पहली बार मेरे राज्य में आये हो, अत. मेरे ऊपर कृपा कीजिए और हमे आतिथ्य करने की आज्ञा दीजिए। इस पर राजा बोला—हे गजपति हमारी बात सुनो हम तुम एक ही है। केवल दोनों का भाव अलग है। निमन्त्रण उसे देना चाहिए जिसमे वैराग्य का भाव नहीं है। जिसका मन सासारिकता से विरक्त है उसका आतिथ्य करना उसके मार्ग मे विघ्न डालना है। यही बहुत है कि तुम हमारे लिए जहाजो का प्रबन्ध कर दो, जिससे मैं सिंहल द्वीप जा सकूं।

जहाँ मुझे स्वय जाना है, वहाँ मैं कटक को भी पार लेकर जाऊँगा। यदि जीता रहा तो उसे लेकर लौटूंगा। यदि मर गया तो उसी के द्वार पर मरूँगा।

टिप्पणी—गजपति—कलिंग देश के राजा के यहाँ दस हजार हाथी रहते थे। हाथियो की अधिकता के कारण ही उसे गजपति कहते थे।

(Description of Hindustan, Vol II, page 80)

बोहित—जहाज के लिए कहते है।

गजपति कहा "सीस पर माँगा। बोहित नाव न होइहि खाँगा ॥
ए सब देउँ आनि नव गाढे। फूल सोइ जो महेसुर चढ़े ॥
पै गोसाईं सन एक विनाती। मारग कठिन जाव केहि भांती ॥
सात समुद्र असूझ अपारा। मारहि मगरमच्छ घरियारा ॥
उठै लहरि नहीं जाइ सँभारी। भागिहि कोइ निवहै बैपारी ॥
तुम सुखिया अपने घर राजा। जोखिउँ एत सहहु केहि काजा ॥
सिघल द्वीप जाइ सो कोई। हाथ लिये आपन जिउ होई ॥
खार खीर दधि जल उदधि, सुर किलकिला अकूत।
को चढ़ि नाघै समुद्र ऐ, है काकर अस बूत ॥२॥

[इस अवतरण में गजपति द्वारा राजा रतनसेन की बोहित सम्वन्धी माँग की पूर्ति की प्रतिज्ञा की चर्चा की गई है।]

गजपति ने कहा तुम्हारी माँग सिर माथे है। जहाज और नावो की कमी नही पड़ेगी। ये जहाज और नावें सब नई गढ़ी हुई होगी। फूल वे ही सार्थक होते हैं जो शिव के मस्तक चढ़ते है। किन्तु स्वामी से एक विनती है। वह यह कि मार्ग बड़ा कठिन है किस प्रकार पार जायेगे। आगे सात समुद्र है। ये अज्ञात और अनन्त हैं। उनमें मगर मच्छ और घड़ियाल मनुष्यों को खा जाते है। लहरें इतनी ऊँची उठती है कि नाव नही सभाली जा सकती। कोई भाग्यशाली व्यापारी ही उनके पार पहुँच पाता है। राजा तुम अपने घर मे सब प्रकार से सुखी थे। इतना खतरा क्यो मोल ले रहे हो। सिंहल द्वीप वही पहुँच सकता है जो हथेली पर अपने प्राण लिये हो।

क्षार, क्षीर, दधि, उदधि, सुरा, किल किला एवं मानसरोदक इन सातों समुद्रो को जहाज पर चढ़कर पार करने की शक्ति किसमे है।

टिप्पणी—गजपति········ खागा—इस पंक्ति का पाठान्तर डा० अग्रवाल ने इस प्रकार दिया है

गजपति कहा सीस बरु माँगा।
एतेन बोल न होइहिं खाँगा ॥

किन्तु इस पाठान्तर में कोई अर्थगत अन्तर नही है।

ये सब·········चढ़े—यहाँ पर अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

सो—मे सवृत्ति वक्रता है।

खीर·········अकूत—जायसी ने यहाँ पर निम्नलिखित सात समुद्रो का उलेख किया है—

(१) क्षार समुद्र, (२) क्षीर समुद्र, (३) दधि समुद्र, (४) उदधि समुद्र, (५) सुरा समुद्र, (६) किल किला समुद्र, (७) जल समुद्र।

पुराणों मे सात समुद्र के नाम थोडा भिन्न प्रकार से मिलते है। वे इस प्रकार है।

(१) क्षार समुद्र, (२) क्षीर समुद्र, (३) दधि समुद्र, (४) घृत समुद्र, (५) इक्षु रस समुद्र, (६) सुरा समुद्र,, (७) जल समुद्र।

जायसी मे पाँच तो ज्यो के त्यो मिलते है। दो के नाम थोडा भिन्न है। एक इक्षु और दूसरे घृत। इनके स्थान पर उन्होने किल किला और अकूत नाम दिये है। ऐसा जायसी ने क्यो किया यह समझ मे नही आता। मेरी समझ में जायसी वहुश्रुत थे। समुद्रो का वर्णन करते समय जब दो के नाम भूल गए होगे तो उन्होने दो के नाम अपने मन से लिख दिये।

सुधाकर जी ने यह अनुमान किया है कि जायसी ने इक्षु रस समुद्र को ही किलकिला समुद्र और घृत को मानसर कहा है।

गजपति यह मन सकती सोऊ। पे जोहि पेम कहा तेहि जोऊ॥
जो पहले सिर दै पग धरई। मुए करे मीचु का करई॥
सुख त्यागा दुख साँभर लीन्हा। तब पयान सिघल मुह कीन्हा॥
भौरा जान कवल कै प्रीती। जेहि पै विथा प्रेम कै वीती॥
औ जेइ समुद्र पेम कर देखा। लेइ एहि समुद्र वूँद करि लेखा॥
सात समुद्र सत कीन्ह सभारू। जौ धरती का गरुअ पहारू॥
जो पै जीउ बाँध सत बेरा। वरु जिउ जाइ फिरै नहि फेरा॥

रगनाथ हो जाकर, हाथ ओहि के नाथ।
गहे नाथ सो खैंचे, फेरे फिरै न माथ॥

[इस अवतरण मे जायसी ने प्रेम के रहस्य की व्याख्या की है।]

राजा रतनसेन राजा गजपति से कहते है, हे गजपति यह मन ही शक्ति है, वही शिव है। व्यजना है कि जिसके मन का सकल्प दृढ होता है उसके लिए कोई आपत्ति या विघ्न वाधक नही वन सकते। फिर प्रेम योगी को वैसे भी विघ्न वाधित नही कर सकते। क्योकि उसका जीव (जिसे विघ्न कष्ट पहुँचाते हैं) पेम पात्र मे अन्तर्हित रहता है। वह तो पहले ही प्रेमाराध्य मे अपने जीव का पूर्ण समर्पण कर देता है। ऐसे व्यक्ति का जो पहले ही आत्मोसर्ग कर चुकता है, मृत्यु क्या विगाड सकती है। हमने सुख त्याग दिया है और दुःख रूपी सम्बन्ध साथ ले लिया है। तब सिंघल द्वीप की ओर प्रस्थान किया है। अतः विघ्न हमारा क्या कर सकते है, क्योकि वे भी दुःख ही पहुँचाते है और हम दुःख का संवरण करके ही सिंहल की ओर चले है।

कमल के प्रेम को भौरा ही जानता है अथवा प्रेम का रहस्य वह जानता है जिसने प्रेम की व्यथा सहन की है। जिसने प्रेम का समुद्र देख लिया उसके लिए यह

भौतिक समुद्र बूंद के समान होता है। मेरा सत्य प्रेम ही सातों समुद्रों के दुःख भार को संभालेगा। पृथ्वी के आगे पहाड की गुरुता क्या है। जिसने अपने जीवन को सत्य रूपी वेड़े से बांध रखा है उनके चाहे प्राण चले जाये किन्तु वे लौटाए नही लौटते।

मै जिस स्वामी के रंग मे रगा हूँ मेरी नकेल उसी के हाथ में है। वही नाथ पकड़े हुए खीच रहा है। अत. मस्तक फेरे नही फिरता।

टिप्पणी—गजपति यह मन सकती सीऊ—यह पंक्ति गोरखनाथ की निम्न-लिखित पंक्ति की स्पष्ट प्रतिच्छाया दिखाई पड़ती है—

यह मन सकती, यह मन सीऊ।
यह मन पंच तत्व का जीऊ॥

यहाँ पर गोरखनाथ ने मन को ही शक्ति रूप और उसे ही शिव रूप कहा है। मन ही वास्तव में जीव है। जायसी की प्रस्तुत पक्ति में भी जीव मन का पर्यायवाची ही प्रयुक्त जान पड़ता है।

साँवर—सम्बल—मार्ग का भोजन।

भवर जान पै··········वीती।

भंवरा ही कमल के प्रेम को जानता है। जिसमें उस प्रेम की कथा जगी रहती है। यहाँ भंवर और कमल मे रूपकातिश्योक्ति है। कवि का अभीप्टार्थ है कि भौरा रूपी प्रेमी ही कंमल रूपी प्रेमिका के प्रेम का महत्त्व जानता है। इससे कवि ने यह व्यंजित किया है कि पदमावती के प्रेम के महत्त्व और गहराई को रतनसेन ही समझता है। अतः यहाँ पर स्ततः सम्भवी अलंकार से वस्तु व्यंग्य है।

रंगनाथ हो जाकर······नाथ—इसमे नाथ शब्द पर यमक है। एक नाथ का अर्थ 'स्वामी' दूसरे का नकेल है।

विशेष—प्रेम मार्ग की तीक्ष्णता का वर्णन अनेक कवियों ने किया है।

(क) **खंड्ग धार मारग जहाँ, गंग जमुन दुहु ओर।**
प्रेम पथ अति अगम है, निवहत है नर थोर॥

—रस रतन से

(ख) **यह प्रेम को पंथ कराल है।**
जूँ तरवार की धार पर धावनो है।

—वोधा कवि, विरह वारीश से

पेम समुद्र जो अति अवगाहा। जहाँ न वार न पार न थाहा॥
जो एहि खीर समुद मँह परे। जीउ गँवाइ हंस होइ तरे॥
हो पदमावति करि भिखमँगा। दीठि न आउ समुद औ गंगा॥
जेहि कारन जिउ काथर कंथा। जहाँ सो मिलै जाव तेहि पंथा॥
अव एहि समुद परेउ होइ मरा। मुए केर पानी का करा॥

मर होइ वहाँ कवहुं लेइ जाऊँ । ओहि के पंथ कोउ धरि खाऊ ।।
अस मै जानि समुद महँ परऊँ । जो कोइ खाइ वेगि निसतरऊँ ।।
सरग सीस धर धरती, हिया सो पेम समुद ।।
नैन कौड़िया होइ रहे, लेइ लेइ उठहि सो वुंद ।।

[इस अवतरण मे भी प्रेम की ही रहस्यमय व्याख्या की गई है ।]

प्रेम समुद्र ऐसा अगाध है कि उसका कोई वार पार नही है, और न ही उसकी कोई थाह है । जो प्रेम के क्षीर सागर मे पड़े हैं वे जीव गवांकर अर्थात् जीवनमुक्त होकर हस होकर अर्थात् मुक्त होकर तर जाते हैं । मैं तो पदमावती का भिखमंगा हूँ । मुझे उसकी प्राप्ति के मार्ग मे समुद्र और गगा का भेद क्या करे । जिसके कारण हमने गुदड़ी धारण की है । उसकी प्राप्ति जहाँ भी होगी वहाँ जाऊँगा । अव मैं इस समुद्र मे मर कर पड़ गया हूँ । मरे हुए का जल क्या करेगा । अव तो मैं शव की तरह वह रहा हूँ । चाहे कही वह जाऊँ । उसके प्राप्ति मार्ग मे जाते हुए चाहे कोई भी धर कर खा जाय । यही समझ कर मैं समुद्र मे गिर रहा हूँ । यदि वहाँ कोई खा लेगा तो शीघ्र ही निस्तार हो जायेगा ।

मेरा मस्तक स्वर्ग मे धड़ पृथ्वी पर और हृदय उस पदमावती के प्रेम समुद्र मे है । नेत्रकोडिल्ले पक्षी के समान उस समुद्र मे डूवते और उसकी वूंद ले लेकर ऊपर उठते है । व्यंजना है कि प्रेम विन्दु ही आँसू वनकर वह रहे हैं ।

टिप्पणी—जीव गँवाइ हँस होइ तरे—हंस शब्द में शब्द शक्ति उद्भव अनुरणन ध्वनि है । हस पक्षी अर्थ के अतिरिक्त यह शब्द मुक्तात्मा का भी व्यंयार्थ देता है ।

होइ मरु—हिन्दी की निर्गुण काव्य धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि पृ० २६६ पर । लेखक ने स्पष्ट लिखा है कि प्रेम मे वलिदान का वहुत बड़ा महत्त्व होता है । सूफियो ने साधना मे त्याग, वैराग्य और वलिदान का महत्त्व चार प्रकार की मृत्युओं से कल्पना करके किया है ।

श्वेत मृत्यु—उपवास और व्रत से शरीर को मारना ।

काली मृत्यु—कष्टो को शान्तिपूर्वक धैर्य के साथ सहन करना ।

लाल मृत्यु—समस्त वासनाओं को अपने अधीन करना ।

हरी मृत्यु—मोटे और कर्कश वस्त्रो का प्रयोग करना ।

जायसी ने प्रस्तुत अवतरण मे 'मर' शब्द का प्रयोग इसी प्रकार की मृत्युओ को दृष्टि मे रखकर किया है ।

सरग सीस······प्रेम—यहाँ पर कवि ने रतनसेन की साधना का स्वरूप व्यजित किया है । उसका सिर स्वर्ग मे था अर्थात् प्रेम साधना मे उसने सिर का उत्सर्ग कर दिया था । सरग सीस से कवि ने आत्मोसर्ग भावना की अतिशयता व्यंजित की है ।

धर धरती—यहाँ पर कवि ने भौतिक जीवन की निस्सारता व्यंजित की है। रतनसेन रूपी साधक का भौतिक शरीर शव के समान था। उसे न दुःख व्यापता न सुख। यहाँ पर भी सारोपा लक्षणा है।

हिया सो पेम ससुंद—हृदय प्रेम समुद्र है। व्यंजना है कि उसका हृदय पदमावती विषयक प्रेम के महान् सागर से सराबोर था। यह अर्थ सारोपा लक्षणा से लिया गया है।

नैन कोड़िया होइ रहे—कवि ने नेत्रो को कौड़िया पक्षी का रूपक दिया है। आँखों मे आँसू आ रहे थे। कवि ने उपेक्षा की है कि नेत्र रूपी कौडिल्ला पक्षी प्रेम समुद्र मे डुबकी लगाते है और अश्रु बूद रूपी मछलियाँ निकाल लाते है।

कवि यह व्यंजित करना चाहता है कि नायक के नेत्र प्रेम रस मे डुबकी लगाते रहते है और क्षण-क्षण मे प्रेम के आँसू उसके नेत्रो मे दिखायी पड़ जाते है। प्रेमाधिक्य और विरहाधिक्य ही यहाँ व्यंग्य है। अत. यहाँ स्वतः सिद्ध अलंकारो से वस्तु व्यंग्य माना जाएगा।

विशेष—प्रेम समुद्र की कल्पना सूफी कवियो मे विशेष रूप से मान्य रही है। मझन ने भी मधुमालती मे लिखा है—

धाइ पेम समुद मँह, देखि दौरि धँसि लेउ।
कै मानिक कै लै ऊबरौ, कै वह पंथ जिउ देउ॥

कठिन वियोग जाग दुःख दाहू। जरतहि मरतहि और निबाहू॥
डर लज्जा तहँ दुवौ गवाँनी। देखे किछु न आगि नहीं पानी॥
आगि देखि वह आगे धावा। पानि देखि तेहि सौह धँसावा॥
अस बाउर न बुझाए बुझा। जेहि पथ जाइ नीक सो सूझा॥
मगर मच्छ डर हिये न लेखा। आपुहि चहै पार भा देखा॥
औ न खाहि ओहि सिध संदूरा। काठहु चाहि अधिक सो झूरा॥
काया माया संग न आथी। जेहि जिउ सौपा सोई साथी॥
जो किछु दरव अहा संग, दान दीन्ह संसार।
ना जानी केहि सत सेती, दैव उतारे पार॥

[इस अवतरण में कवि ने औलिया योगी की अवस्था का वर्णन किया है।]

कठिन विरह मे दुःखजनित अन्तर्वेदना प्रज्वलित हो उठती है। इसमें अन्त तक जलना मरना ही रहता है। वहाँ भय और लज्जा दोनों ही नहीं रहते। उस अवस्था मे आग और पानी का भेद—ज्ञान नही रहता। अग्नि देखकर वह प्रेम वियोगी जलने के लिए आगे दौडता है। इसी प्रकार पानी देखकर वह सबके समक्ष उसमे धँसना चाहता है। वह प्रेम वियोगी ऐसा बावला हो जाता है कि समझाने से नही समझता। जिस मार्ग से वह निकल जाता है उसे वही अच्छा लगता है। उसके हृदय

मे मगर मच्छ का डर नही रहता। वह स्वयं समुद्र के पार जाना चाहता है। उसे सिंह और शार्दूल भी नही खाते। वह काठ से भी अधिक शुष्क अर्थात् उदासीन हो जाता है। शरीर रूपी सम्पत्ति सदा किसी के साथ नही रहती। जिसको जीव सौंप दिया जाता है यही *उसकी सार्थकता है।*

रतनसेन कहता है जो कुछ धन था वह संसार को दान में दे दिया। न मालूम परमात्मा किस दान-पुण्य के बल पर भवसागर के पार उतार देता है।

टिप्पणी—औ न खाहि ओहि सिंघ सदूरा—जायसी की यह धारणा है कि जो परमात्मा के विरह मे व्याकुल है उसे सिंह और शार्दूल भी नही सताते।

अब्दुल रहीम खानखाना का भी यही विश्वास था। उन्होने लिखा है—

बिरहिन ढूँढ़न बन गई बाघ भेटान।
बघवा सूँघि न खाएसि बिरहिन जान ॥

धनि जीवन औ ताकर हिया। ऊँच जगह महँ जाकर दिया ॥
दिया सो जप तप सब उपराही। दिया बराबर जग किछु नाहीं ॥
एक दिया ते दशगुन लहा। दिया देखि सब जग मुख चहा ॥
दिया करै आगे उजियारा। जहाँ न दिया तहाँ अँधियारा ॥
दिया मन्दिर निसि करे अँजोरा। दिया नहि घर मूँसहि चोरा ॥
हातिम करन दिया जो सिखा। दिया रहा धर्मन्ह महँ लिखा ॥
दिया सो कॉज दुवौ जग आवा। इहाँ जो दिया उहाँ सब पावा ॥
'निरमल पन्थ कीन्ह तेइ, जेइ रे दिया कछु हाथ।
किछु न कोइ लेइ जाइहि, दिया जाइ पै साथ ॥

[इस अवतरण मे कवि ने दान की महिमा वर्णित की है।]

उसका जीवन और प्राण धन्य है जिसका संसार मे दान करने में यश है। दान, जप और सबसे श्रेष्ठ है। दान देने से उससे दस गुना लाभ होता है। दान के कारण उस दानी का मुँह सब देखना चाहते है। दान दोनों लोकों मे काम आता है। जहाँ जो दान किया है वहाँ वही मिलता है। दान भविष्य को भी उज्ज्वल बनाता है। जहाँ दान रूपी दिया नही होता वहाँ अन्धकार रहता है। दान रूपी दीपक शरीर रूप मन्दिर को विपत्ति रूपी अन्धकार को भी ज्योतित कर देता है अर्थात् सुखमय बना देता है। हातिम और कर्ण ने जो दान देना *सीखा था*, इसीलिए धर्मात्माओं में थे। दीपक की भाँति प्रकाशित होते हैं। धन दोनों लोकों मे काम आता है। दान ही लोको मे काम आता है। जो यहाँ दान देता है उसे वहाँ मिलता है।

जिसने अपने हाथ से कुछ दान दिया है उसने अपने मार्ग को निर्मल कर लिया है। कोई कुछ अपने साथ नही ले जाता है केवल दिया हुआ दान का पुण्य ही साथ जाता है।

टिप्पणी—इस अवतरण मे कवि ने दान की महिमा का विस्तार से प्रतिपादन किया है। इसमे 'दिया' शब्द पर कई स्थलों पर शब्द शक्ति उद्भव अनुरणन ध्वनि है। दूसरी पाँचवी पंक्ति में 'दिया' शब्द इस दृष्टि से विशेष रूप से दृष्टव्य है। उनका एक अर्थ दान का है दूसरा अर्थ प्रताप का व्यजित किया गया है।

दान की महिमा ब्राह्मण धर्म मे बहुत अधिक रही है। पुराणों में भी दान की बड़ी महिमा बताई गई है। राजा रन्तिदेव की कहानी दान की महिमा ही व्यंजित करती है। एक बार अकाल पड़ा। सब जनता भूखों मरी जा रही थी। राजा रन्तिदेव को कई दिनों बाद थोड़ा सा भोजन मिला। उसने उसके पाँच भाग कर दिए—एक ब्राह्मण का भाग, दूसरा अपना, तीसरा पत्नी का, चौथा पुत्र का और पाँचवा पुत्र वधू का। वे उसे खाने ही जा रहे थे कि विश्वामित्र आ गए और बोले राजन् मैं बहुत भूखा हूँ। राजा ने ब्राह्मण वाला भाग दे दिया। उसे खाकर उन्होने कहा महाराज तृप्ति नही हुई। उस पर राजा ने क्रमशः अपना-अपनी पत्नी का अपने पुत्र का और अन्त में अपनी पुत्र वधू का भाग भी ब्राह्मण को खिला दिया। उस दान को देखकर देवता लोग पुष्प वर्षा करने लगे। दान की महिमा प्रकट करने वाली दसो कहानियाँ पुराणों मे प्राप्त हैं।

महाभारत में कर्ण जैसे दानी की महिमा का बड़े विस्तार से वर्णन किया गया है। कर्ण की दानशीलता की अनेक कथाएँ प्रसिद्ध है। एक की चर्चा कर देना अनुपयुक्त न होगा। कर्ण का नियम था कि पूजा से उठने के बाद उससे जो भी जो कुछ माँगता था वह दान में दे देता था। कर्ण की सबसे महान् सम्पत्ति उसके कवच कुण्डल थे। उसकी दुर्जेयता का वे प्रमुख कारण थे। अर्जुन इन्द्र का पुत्र था। इन्द्र ने सोचा जब तक कर्ण के पास कवच और कुण्डल रहेगे तब तक अर्जुन कर्ण को जीत नही सकेगा। अतः वह एक दिन बूढ़े ब्राह्मण का वेश धारण कर कर्ण से उसके कवच कुण्डल माँग बैठा। कर्ण इतना दानी था कि उसने अपना नियम नही तोड़ा और इन्द्र को अपने कवच और कुण्डल दे दिए।

इस्लाम में दान की बड़ी महिमा है। कुरान शरीफ में लिखा है :—

Give alms and lend to God good loans; and what of good ye send before for your souls ye shall find it with God.

(Quran, Surah LXXIII)

इसीलिए अरब देशो मे भी बड़े-बडे दानियों की कहानियाँ प्रचलित है। हातिम एक ऐसा ही परम दानी मुसलमान था। यह तई वंश का था। इसका नाम हातिम था। इसीलिए इसे हातिमताई कहते है। एक सौदागर की कन्या हुस्नबानू परम सुन्दरी थी। उसकी प्रतिज्ञा थी कि वह उसी से शादी करेगी जो उसके सात प्रश्नो का उत्तर देगा। मुनीरशामी नामक एक राजकुमार उस पर बडा आसक्त था किन्तु वह उसके प्रश्नो का उत्तर न दे सका। हुस्नबानू ने उसे एक वर्ष की अवधि दे दी। वह उन प्रश्नों की

खोज मे वन-वन फिरने लगा । हातिम यमन देश का राजा था । मुनीरशामी की भेंट हातिम से हुई । वह बडा दानी था । शामी ने उसे विवाचा लेकर अपने सात प्रश्नों के उत्तर की बात कही । हातिम को इन सातो का उत्तर देने में बड़े कष्ट उठाने पडे किन्तु वह अपने वचनो के पालन से विरत न हुआ । अन्त मे उसने हुस्नबानू से मुनीर शामी की शादी करा दी ।

इसी प्रकार एक कथा और है । एक बार एक भेडिये ने एक सद्यः प्रसूता हरिणी को खाने के लिए पकड लिया । हातिम देख रहा था । उसने सोचा हरिणी का बच्चा कैसे माता के अभाव में जीवित रहेगा । यह सोचकर उसने भेडिये से प्रार्थना की कि वह हरिणी को छोड दे । इस पर भेडिये ने कहा मैं भूखा हूँ तुम अपना गोश्त मुझे दो तो मैं इस हरिणी को छोड दूं । उसने तुरन्त अपना मांस काटकर भेडिये को दे दिया और हरिणी की रक्षा की । इसी प्रकार की सैकडो कहानियाँ हातिम की दानशीलता और सत्य प्रेम की प्रसिद्ध है । हातिमताई नामक पुस्तक में इसकी कहानियाँ सकलित है ।

दान की महिमा का वर्णन प्रायः सूफी कवियो ने किया है और महादानियो मे हातिम और कर्ण की महिमा का कीर्तन किया है ।

मझन लिखते है—

दान निसान सरग गै बाजे ।
हातिम करन भोज बलि लाजे ॥

—मधुमालती, पृ० ८

का सपना तिल आधू—यहाँ पर बौद्धो का क्षणिक वाद और वेदान्तियों के स्वप्नवाद का समन्वयात्मक प्रभाव दिखाई पडता है । क्षणिकवादी संसार में सब कुछ क्षणिक मानते है । स्वप्नवादी संसार को स्वप्नवत मानते है । यहाँ जायसी ने उसे क्षणिक और स्वप्नवत् दोनो कहा है ।

जियतहि वे मरे—हम पहले कह आए है कि सूफियो का लक्ष्य विविध मृत्युयो का आलिंगन करना है जैसे श्वेत मृत्यु काली मृत्यु, आदि । जीवनावस्था मे जो इन मृत्युओ का आलिंगन कर लेता है वे ही साधु है । (देखिए—हिन्दी की निर्गुण काव्य धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि—डा० त्रिगुणायत मे, सूफी साधना ।

विशेष—दान की महिमा का वर्णन अन्य सूफियो ने भी जायसी के समान ही किया है । तुलना कीजिए ।

(क) दान दियो नहि होऊ उबारा ।
दान बिना बूड़ो मंझधारा ॥

—कासिम शाह कृत हँस जवाहिर

(ख) दुहूँ जग हित दान सम नाही ।
बूड़त दधि काढ़ै गहिबाँही ॥

—उसमान कृत चित्रावली, पृ० ८८

बोहित खण्ड

सो न डोल देखा गजपती। राजा सत्त दत्त दुहुँ सती ।।
अपनेहि कया, आपनेहि कंथा। जीउ दीन्ह अगुमन तेही पंथा ।।
निहचै चला भरम जिउ खोई। साहस जहाँ सिद्धि तहँ होई ।।
निहचै चला छाँड़ि कै राजू। बोहित दीन्ह दीन्ह सब साजू ।।
चढ़ा बेगि तब बोहित पेले। धनि सो पुरुष पेम जेइ खेले ।।
पेम पंथ जौ पहुँचै पारा। बहुरि न मिलै आइ एहि छारा ।।
तेहि पावा उत्तिम कैलासू। जहाँ न मीचु सदा सुख बासू ।।
एहि जीवन कै आस का, जस सपना पल आधु।
मुहमद जियतहि जे मुए, तिन्ह पुरुषन्ह कह साधु ।।१।।

[इस अवतरण मे राजा की सत्यनिष्ठा की वर्णना की गई है ।]

जब गजपति ने देखा कि राजा सत्य से विचलित नहीं है। राजा के पास दान और सत्य दोनो की शक्ति थी। उसके शरीर पर जो गुदडी थी वह भी उसकी अपनी नही थी। उसने उस प्रेम मार्ग मे आगे बढकर अपने को निछावर कर दिया था। वह सब भ्रमो को दूर कर निश्चिन्त होकर प्रेम मार्ग मे तत्पर है। जहाँ साहस होता है वही सिद्धि प्राप्त होती है। निश्चय ही वह राज्य त्याग कर चला है। इसीलिए उसने राजा को नए जहाज तथा और नई सामग्री दी। वह शीघ्र ही बोहित पर चढा और चला दिया। वे पुरुष धन्य है जो प्रेम के मार्ग मे चलते हैं। जो प्रेम मार्ग में सफल हो जाते है। वे फिर इस ससार मे लौटते नही उनकी मुक्ति हो जाती है।

इस जीवन की क्या आशा की जाय ? यह ऐसा क्षणिक है जैसा कि आधे पल का सपना। मुहम्मद कवि कहते है कि जो जीवित रहते ही मृत्यु का आलिगन करते है। उन्ही को साधु पुरुष कहते हैं।

टिप्पणी—राजा सत्तदत्त दुई सती—दान और सत्य यह आध्यात्मिक जीवन का प्राण है। राजा रतनसेन ने दोनो को धारण कर रखा था। सत्य की महिमा के विषय मे महाभारत मे लिखा है—

अश्वमेघ सहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् ।
अश्वमेघ सहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ।।

—शा० १६२।२४

इसी प्रकार दान के महत्त्व की व्यंजना भी कई स्थलों पर की गई है।

साहस जहाँ सिद्धि तहँ पाई—यह सूक्ति है और संस्कृत की "साहसे श्री वसति" का हिन्दी रूपान्तर है।

मंझन ने भी लिखा है—

'साहस उठे अपान जो लीन्ह सिधि साधि।'

प्रेम पन्थ............छारा—प्रेम मार्ग से मुक्ति मिल जाती है। इस धारणा की ही अभिव्यक्ति इस पंक्ति मे की गई है। यहाँ पर प्रेम मार्ग की महत्ता व्यंजित की गई है।

तेई पावा............सुख वासू—यहाँ पर कैलास शब्द विशेष द्रष्टव्य है। 'कविलास' लौकिक भाषा मे धवल ग्रह का वाचक है। 'सुख वासू' यह शयन कक्ष का वाचक है। लौकिक अर्थ है कि प्रेम मार्ग मे जो सफल होता है उसे अन्त मे धवल गृह मे शयन कक्ष में प्रियतमा का आलिंगन सुख प्राप्त होता है। किन्तु इसका आध्यात्मिक अर्थ भी है। कविलास का अर्थ है ब्रह्म-सुख। कवि की व्यंजना है कि इस प्रकार सत्य और दान का पालन करने वाले मनुष्य को अन्त मे प्रेम मार्ग में चलने पर मोक्ष मिलता है। वहाँ मृत्यु नही रही। वह शाश्वत आनन्द मात्र की अवस्थिति पाई जाती है।

सूफी कवियो मे हमे कविलास शब्द का प्रयोग उपर्युक्त रूप मे प्रायः मिलता है। मंझन ने लिखा है :—

'कहाँ कविलास निवास जे।
कहाँ सुरज वंस संग॥'

—पृ० १०४

कौलज्ञान निर्णय मे लिखा है :—

स्वगुरुं पूजयेन्नित्यं त्रिकाले भवितात्मनः।
मनसा कर्मणा वाचा गुरुञ्चैव स्वकं नतु॥

—कौ० ज्ञा० नि० पृ० ४०

चाल्हा—चेल्हवा मछली।

जस वन रेंगि चलै गज ठाटी। वोहित चले समुद गा पाटी॥
धावहि वोहित मन उपराही। सहस कोस एक पल महँ जाही॥
समुद अपार सरग जनु लागा। सरग न घाल गनै वैरागा॥
ततखन चाल्हा एक देखावा। जनु धौलागिरि परवत आवा॥
उठी हिलोर जो चाल्ह नराजी। लहरि अकास लागि भुइ वाजी॥
राजा सेती कुँवर सव कहही। अस अस मच्छ समुद मह अहही॥
तेहि रे पथ हम चाहहि गवना। होहु सँजूत वहुरि नहि अवना॥

गुरु हमार तुम राजा, हम चेला तुम नाथ।
जहाँ पाँव गुरु राखै, चेला राखै माथ ॥२॥

[इस अवतरण में कवि ने रतनसेन और उसके योगी समाज का बोहित में बैठकर किए गए प्रयाण का वर्णन किया है।]

जहाज समुद्र में पहले उसी प्रकार धीरे-धीरे चले जिस प्रकार रथ जिसमें हाथी जुता है। रेंग कर चलता है। किन्तु शीघ्र ही बोहित मन की गति से भी अधिक तीव्र गति वाले हो गए। वे एक पल में ही सहस्र कोस जाते है। समुद्र भी अपार था ऐसा लगता था मानो आकाश से छू गया हो। वैरागी राजा सोचने लगा कि कही आकाश न गिर पड़े। उसी समय एक बड़ा मच्छ दिखाई पड़ा। उसे आते देख ऐसा लगा मानो धौलागिरि पर्वत आ रहा है। वह मच्छ जब क्रुद्ध हुआ तो हिलोरे उठने लगी। वे लहरे आकाश को छू कर पृथ्वी पर गिर पड़ती थी। सब कुँवर राजा से कहने लगे कि क्या समुद्र में ऐसे मच्छ भी रहते है ? हम तो उस मार्ग मे जाना चाहते है जहाँ अन्त से फिर लौटना न होगा। अतः सब सयुक्त हो जाओ।

हे राजा तुम हमारे गुरु हो हम आपके चेले है और नाथपंथी हैं। जहाँ गुरु पाँव रखता है वहाँ चेला सिर रखता है।

टिप्पणी—धावहि बोहित मन उपराही—यहाँ पर अतिशयोक्ति और प्रतीप दोनों का सकर है।

लहरि आकास लागि भुई लागी—यहाँ पर निर्णीयमाना सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार है।

तेहिरे पंथ············यहाँ पर तेहिरे पंथ से कवि ने आध्यात्मिक व्यंजना की है। तेहि मे अर्थान्तिर सक्रमित वाच्य ध्वनि है। विराट प्रियतम के साधना मार्ग की रहस्यात्मकता ही व्यग्य।

हम चेला औ नाथ—राजा के अनुचर कहते है, हे राजयोगी ! हम तुम्हारे चेले है और नाथपंथी चेले है जो अपनी गुरुभक्ति के लिए प्रसिद्ध है। उन्हीं के सदृश हम भी जहाँ आप पैर रखेगे वहाँ हम अपना सिर चढ़ा देगे। नाथपंथ में गुरु भक्ति की बड़ी महिमा है।

केवट हँसे सो सुनत गवेजा। समुद न जानु कुवाँ कर मेजा ॥
यह तो चाल्ह न लागै कोहू। का कहिहौ जब देखि हो रोहू ॥
सो अबहीं तुम्ह देखा नाही। जेहि मुख ऐसे सहस समाही ॥
राजपंखि तेहि पर मेड़राहीं। सहस कोस तिन कै परछाही ॥
तेइ ओहि मच्छ ठोर भरि लेही। सावक मुख चारा लेइ देही ॥

गरज गगन पंखि जब बोला। डोल समुद्र डैन जब डोला ॥
तहाँ चाँद और सूर असूझा। चढै सोइ जो अगुमन बूझा ॥
दस महँ एक जाइ कोइ, करम धरम, तप नेम।
बोहित पार होइ जब, तबहि कुशल औ खेम ॥३॥

[इस अवतरण में कवि ने योगियो की पारस्परिक वार्ता पर केवटों मे प्रतिक्रिया हुई उसका वर्णन किया है।]

उस चर्चा को सुनकर केवट हँसे और कहने लगे। कुएँ का मेढक समुद्र का हाल क्या जाने। यह चेल्हवा मछली जो किसी को नही सताती है। जो रोहू देखोगे तो क्या कहोगे। अभी तो तुमने उसे देखा नही जिसके मुँह पर ऐसे-ऐसे हजार मच्छ समा जाते है। ऐसे राजपक्षी उनके ऊपर मंडराते है जिनकी परछाहीं हजार कोस तक पडती है। वे उस रोहू मच्छ को चोंच मे पकड लेते है और अपने बच्चों के मुँह मे उसका चुग्गा ले जाकर देते है। वे पक्षी जब बोलते है तो ऐसा लगता है कि आकाश गर्ज रहा हो, और जब वे पख खोलते है तो समुद्र डोलायमान हो जाते हैं। जिस समुद्र मे वह पक्षी रहते है वहाँ न चाँद का प्रकाश है और न सूर्य का ही। वहाँ वही पहुँच पाता है जो पहले से ही इस प्रकार की दूरदर्शिता से काम लेता है।

कर्म-धर्म सत्य और नियम का पालन करने वालों मे भी दस मे एक ही जा पाता है। जब नाव पार हो जाए तो ही कुशल और क्षेम समझनी चाहिए।

टिप्पणी—गवेजा—यह अवधी का प्रचलित शब्द है। इसके कई रूपान्तर भी मिलते है जैसे गौजा, गोंगा आदि। इसका अर्थ है बातचीत।

केवट............भेजा—यहाँ पर दृष्टान्त अलंकार है।

राजपंखि—राज का अर्थ यहाँ विशाल है। विशाल पक्षी उस पर मंडराते है।

गरजै गगन............पेखि जो बोलहि—यहाँ पर **अतिशयोक्ति एवं असंगति अलंकारों** के सकर से उन पक्षियो की विशालता एवं भयंकरता ही व्यंग्य है। अतः यह कवि प्रोढोक्ति सिद्ध अलंकार से वस्तु व्यंग्यार्थ का उदाहरण है।

तहाँ चाँद न सुरज असूझा—कवि ने यहाँ पर लोकोत्तर वर्णन के सहारे रहस्यात्मकता का सृजन किया है।

रहस्यात्मकता यहाँ स्वतः सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यग्य है।

राजै कहा कीन्ह मैं पेमा। जहाँ पेम कहँ कूसल खेमा ॥
तुम्ह खेवहु जो खेवै पारहु। जैसे आपु तरहु मोहि तारहु ॥
मोहि कुसल कर सोच न ओता। कुसल होत जौ जनम न होता ॥
धरती सरग जाँत पट दोऊ। जो तेहि बिच जिउ राख न कोऊ ॥
हौ अब कुसल एक पै मॉगौं। पेम पंथ सत बाँधि न खागौं ॥

जौ सत हिय तौ नयनहि दीया। समुद न डरै पैठ मरजिया ॥
तहँ लगि हेरौ समुद ढंढौरी। जहँ लगि रतन पदारथ जोरी ॥
सप्त पतार खोजि कै, काढ़ी वेद गरंथ।
सात सरग चढ़ि धावौ, पदमावति जेहि पंथ ॥४॥

[इस अवतरण मे कवि ने केवटो के प्रति राजा के प्रत्युत्तर का वर्णन किया है ।]

राजा कहता है कि मैंने प्रेम किया है। जहाँ प्रेम होता है वहाँ कुशल क्षेम का प्रश्न नही उठता। यदि तुम खे सकते हो जहाज खेकर ले चलो। इससे तुम भी तरोगे और मुझे भी तारोगे। मुझे कुशल की चिन्ता नही है। यदि कुशल होनी होती तो जन्म ही क्यों होता। पृथ्वी और आकाश दोनो चक्की के दो पाट है। जो उनके बीच मे है उनमें से किसी के भी प्राण नही बचेगे। (अतः प्राण का मोह नहीं है।) किन्तु मैं अब कुशल एक परमात्मा से ही माँगता हूँ। मैं प्रेम मार्ग मे कभी भी विचलित न होऊँ यही कामना है। यदि हृदय मे सत होता है तो वह नेत्रों में दीपक की भाँति ज्योतित हो जाता है। भारतीय समुद्र में पैठकर फिर उससे डरता नही है। मैं समुद्र में छानबीन करूँगा। जहाँ तक रतन का पदार्थ रूप पद्मावती से मिलन नही हो पाता है।

जिस प्रकार सप्त पाताल खोजकर वेद ग्रंथों को ढूंढ निकाला गया है उसी प्रकार मैं पद्मावती जिस स्थान मे है वहाँ पहुँचने के लिए सात स्वर्ग तक चढ़ जाऊँगा।

टिप्पणी—(१) जहाँ प्रेम कह कूसल क्षेम—मंझन ने भी इसी भाव की व्यंजना करते हुए लिखा है :—

मंझन चढ़िके प्रेम पंथ, करिअ न जियकर लोय।
प्रीतम काज जो जिउ धरे, सोइ दुओ जग सोय ॥

धरती सरग जाँत पट दोऊ—जाँता चक्की को कहते हैं। धरती और स्वर्ग उसके दो पाट है। इन्ही के बीच में जो जीवधारी हैं उनकी मृत्यु अवश्यमभावी है।

धरती औ असमान बिच साबित बचा न कोइ।
यही तमासा देख कै कविरा दीना रोय ॥

नैनन्ह दिया—यदि साधक के हृदय में सत्य होता है तो नेत्रों में एक विशेष चमत्कार छा जाता है। यहाँ पर दीया का उपादान लक्षणा से दीपक का प्रकाश अर्थ लिया गया है। कवि तेजातिशय की व्यंजना करना चाहता है। तभी उसने नेत्रों मे दीपक की बात कही है। अतः यहाँ पर अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है।

रतन पदारथ जोरी—यहाँ पर शब्द-शक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है। कवि यह

व्यजित करना चाहता है कि योगी उस सीमा तक साधना करना चाहता है जहाँ रतनसेन और पद्मावती का पूर्ण मिलन हो।

सप्त पतार खोजि जस.........गरंथ—पुराणों में लिखा है कि भगवान् ने मतस्यावतार धारण कर सातो समुद्रों का मंथन कर वेदो का उद्धार किया था। उसी की उपमा कवि ने दी है। सप्त पाताल से अभिप्राय: सात अध: लोकों से है। उनके नाम हैं—अतल, सुतल, वितल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल।

सात समुद्र खण्ड

सायर तर हिये सत पूरा । जौ जिउ सत, कायर पुनि सूरा ।।
तेइ सत बोहित कुरी चलाए । तेइ सत पवन पंख जनु लाए ।।
सत साथी सत कर संसारु । सत खेइ लेइ लावै पारु ।।
सत्त ताक सब आगू पाछू । जहं तहं मगर मच्छ औ काछू ।।
उठै लहरि जनु ठाढ़ पहारा । चढ़ै सरग औ परै पतारा ।।
डोलहि बोहित लहरै खाहीं । खिन तर होहि खिनहि उपराही ।।
राजै सो सत हिरदै बाँधा । जेहि सत टेक करै गिरि काँधा ।।
खार समुद सो नाँघा, आए समुद जहं खीर ।
मिलै समुद वै सातौ, बेहर बेहर नीर ।।१।।

[इस अवतरण मे सत्य की महिमा का वर्णन किया गया है ।]

जिसके हृदय मे सत्य का बल है वह समुद्र के भीतर जाता है । वह कायर से सूर बन जाता है । उसी सत्य से भरकर राजा ने अपने जहाज चलाए । जिसमें सत्य है उसके मानो हवा के पंख लग जाते हैं । सत्य ही साथी और सत्य ही सहायक है। जो सत्य से खेता है वह भार लेकर उसे पार लगा देता है । सत्य से सब आगा-पीछा देख लेता है । उसे उन स्थानों तक का पता लग जाता है, जहाँ मगरमच्छ और कछुए इत्यादि छिपे रहते है । समुद्र मे ऐसी लहरें उठती है जो सम्भाली नहीं जाती । आकाश तक ऊँचे उठकर फिर पाताल में गिर पड़ती है । जहाज लहरों से टकराकर डगमगाते है । क्षण भर मे ऊपर और क्षण भर मे नीचे जाते है । राजा ने उसी सत्य को दृढता से अपने हृदय में धारण कर रखा है जिसके बल से पर्वत के भार को भी उठाया जा सकता है ।

उसने क्षार समुद्र पार कर लिया । सब लोग क्षीर समुद्र में आ गए । यह सातों समुद्र एक-दूसरे से मिल गए किन्तु उनके जल एक-दूसरे से अलग-अलग है ।

टिप्पणी—सायर तरै हिए सत पूरा—सागर को वही पार कर पाता है जिसका हृदय सत्य संकल्प से परिपूर्ण होता है । इस अवतरण में कवि ने सत्यनिष्ठा और संकल्प का महत्त्व व्यंजित किया है । इस सत्य सकल्प के भाव की व्यंजना इन शब्दो मे की है—

So thou stead fastly persevere,
Verify the promise of God is true,
and let not those unsettle there
who are not sure.—(Surah XXX)

सूफीमत मे तो सत की और भी अधिक प्रतिष्ठा है। उसमे साधक का लक्ष्य ही हकीकत की दशा को प्राप्त की है। उसमान ने चित्रावली मे सत्य की महिमा का वर्णन किया है—

'सत्य समान पूत जग नांही।'

मिले······नीर—भारतीय विश्वास के अनुसार दो-दो समुद्रों के बीच में एक-एक द्वीप है किन्तु जायसी ने सातो को मिला हुआ बताया है। हो सकता है ऐसा उन्होंने इस्लामी प्रभाव के फलस्वरूप कहा हो।

विशेष—खार समुद्र के वर्णन के व्याज कवि ने सूफी साधना मार्ग की भयंकरता व्यजित की है।

खीर समुद का वरनौ नीरु। सेत सरुप पियत जस खीरु॥
उलथहि मानिक मोती, हीरा। दरव देखि मन होइ न धीरा॥
मनुआ चाह दरव औ भोगू। पंथ भुलाइ विनासै जोगू॥
जोगी हुइ सो मनहि सभारै। दरब हाथ कर समुद पवारै॥
दरव लेइ सोई जो राजा। जो जोगी तेहिके केहि काजा॥
पथहि पथ दरव रिपु होई। ठग वटपार, चोर संग सोई॥
पंथी सो जो दरव सौ रुसे। दरव समेटि बहुत अस मूसे॥
खीर समुद सो नाँधा, आए समुद दधि माँह
जो है नेह क वाउर, तिन्ह के धूप न छाँह॥२॥

[इस अवतरण में कवि ने क्षीर या खीर समुद्र का वर्णन किया है।]

क्षीर समुद्र के जल का वर्णन कैसे किया जाए वह देखने मे श्वेत और पीने में दूध जैसा है। मोती माणिक्य और हीरे उनके ऊपर तैरते हैं। उसी की द्रव्य राशि को देखकर मन स्थिर नही रहता अर्थात् पाने के लिए चलायमान हो जाता है। मनुष्य द्रव्य और भोग चाहता है। इसी से वह मार्ग भूलकर अपने भोग का साथ कर लेता है। विजय उसी की होगी जिसका मन स्थिर रहता है। वह द्रव्य आने पर भी समुद्र मे डाल देता है। धन तो वही धारण करता है जो राजा है। जो जोगी है उसका धन से क्या प्रयोजन है। धन तो प्रत्येक मार्ग या स्थान मे शत्रु रूप हो जाता है। सच्चा पथिक व वटाऊ वही है जो धन से रूठा रहता है। द्रव्य एकत्रित करने वाले बहुत से लुट गए।

इस प्रकार क्षीर समुद्र को पार कर दधि समुद्र मे आए । जो प्रेम में बावले है उनके लिए धूप और छाँह मे भेद नही है ।

टिप्पणी—मनुआ—यहाँ पर प्रत्यय वक्रता है । 'आ' प्रत्यय से उक्ति मे एक विशेष वक्रता आ गई है ।

पंथ भुलाइ विनासै जोगू—पथ से तात्पर्य आध्यात्म मार्ग ।

दरब रिपु होइ—धन शत्रु हो जाता है । यहाँ पर उपचार वक्रता है । कवि यह कहना चाहता है कि धन के कारण अनेक विघ्न सामने आते है जो शत्रु का काम करते है ।

पथिक सो दरब सो रुसे—पथिक से कवि ने शब्द शक्ति उद्भव अनुरणन ध्वनि से यह वस्तु व्यंजना भी की है कि सालिक या सच्चा साधक वही है जो द्रव्य से पराङमुख रहता है ।

विशेष—इस क्षीर समुद्र को ही रत्नाकर कहते है । इसी क्षीर सागर से १४ रत्न निकले थे । उनके नाम है । (१) कल्प वृक्ष, (२) वारुणी, (३) वारण (एरावत), (४) कामधेनु, (५) धन्वन्तरि, (६) शारंग धनु, (७) पाञ्चजन्य शख, (८) चन्द्रमा (९) कमला, (१०) कोस्तुभ मणि, (११) रम्भा अप्सरा, (१२) अमृत, (१३) विष, (१४) उच्चैश्रवा ।

उसकी इसी सम्पत्ति को ध्यान मे रखकर सम्भवतः जायसी ने क्षीर समुद्र के द्रव्यत्व का वर्णन किया है ।

दधि समुद्र देखत तस दाधा । पेम क लुबुध दगध पै साधा ॥
पेम जो दाधा धनि वह जीऊ । दधि जमाइ मथि काढ़ै घीऊ ॥
दधि एक बूँद जाम सब खीरु । काँजी बूँद विनसि होइ नीरु ॥
साँस डाँड़ि मन मथनी गाढ़ी । हिये चोट बिनु फूट न साढ़ी ॥
जेहि जिउ पेम चंदन तेहि आगी । पेम बिहून फिरै डर भागी ॥
पेम कै आगि जरै जो कोई । दुख तेहि कर न अंबरिथा होई ॥
जो जाने सत आपुहि जारै । निसत हिये सत करै न पारै ॥
दधि समुद्र पुनि पार भे, पेमहि कहा संभार ?
भावै पानी सिर परै, भावै परै अगार ॥३॥

[इस अवतरण मे दधि समुद्र का वर्णन किया गया है ।]

दधि समुद्र देखते ही ऐसा जल गया कि वर्णन नही किया जा सकता । किन्तु जो प्रेम का लोभी है वही दाह लेता है । वह जीव धन्य है जो प्रेम की ज्वाला में दग्ध होता है । वह दही में से मथकर घी निकालता है । दही की एक बूंद से सब दही जम जाता है । वही खटाई की एक बूंद से फटकर पानी हो जाता है । शरीर

मे साँस डोरी है और मन मथानी है, के रहने पर भी बिना हृदय की चोट के दही की साढी नही टूटती। कवि की व्यंजना है कि हठयोग साधना से प्राणायाम सिद्ध हो जाने पर भी तथा मन दृढ कर लेने पर भी जब तक वह राजयोग मूलक समाधि लगाकर हृदय के मध्य श्वास रज्जु से फिरा फिराकर मन मथनी से आघात न किया जाएगा तब तक हृदय दधि के अन्तर्गत परमब्रह्म रूपी प्रियतम नवनीत प्राप्त नही कर सकता।

जिसके जी मे आध्यात्मिक प्रेम होता है उसे भौतिक अग्नि चंदन के समान शीतल लगती है। किन्तु जो परमात्मा रूपी प्रेम से रहित है वह उसके बिना भागा-भागा फिरता है। जो कोई प्रेम की अग्नि मे जलता है उसका कष्ट व्यर्थ नही जाता। व्यजना है उस अग्नि से तपकर उसके दुख नष्ट हो जाते है और वह परब्रह्म रूप हो जाता है। जो उस प्रेम मार्ग की सत्यता समझ लेता है वह स्वयं ही अपनी इच्छा से उसमे जलना पसन्द करता है। जिसका हृदय निर्बल है वह सत्य का पालन नही कर सकता।

फिर सब दधि समुद्र पार हुए। प्रेम मे सावधानी कहाँ होती है। चाहे सिर पर वर्षा, चाहे अगारे गिरें किन्तु वह प्रेम मार्ग मे अवरुद्ध नही होता।

टिप्पणी—प्रेम सो दाधा धनि वह जीऊ—वह जीव धन्य है जो प्रेम में दग्ध होता है। यह बात भौतिक वासनात्मक प्रेम के लिए नही कही जा सकती। अतः यह आध्यात्मिक प्रेम की बात है।

दही जमाइ मथि काढ़ घीऊ—यहाँ रूपकातिशयोक्ति के प्रयोग से कवि ने अर्थ गौरव की प्रतिष्ठा की है। जो साधक प्रेम की ज्वाला से जलकर निर्मल हो गया वही अध्यात्म दही को मथकर परमात्मा रूपी अमृत निकाल लेता है। दही की एक बूंद से समस्त क्षीर दही रूप हो जाता है। इसके विपरीत काजी की एक बूंद से फटकर वह पानी हो जाता है। कवि का अभिप्राय है कि जीवन रूपी क्षीर आध्यात्मिक प्रेम के एक कण से दही के समान निर्मल हो जाता है और वही वासना रूप काजी की बूंद से फटकर अर्थात् सारहीन हो जाता है। कवि ने यहाँ पर आध्यात्मिक प्रेम की महत्ता और वासनात्मक प्रेम की हेयता व्यजित की है।

साँस डाढ़ मन मथनी गाढ़ी······साढी—यहाँ पर कवि ने मन्थन के रूपक द्वारा यह व्यजित किया है कि मनुष्य सब प्रकार की साधनाएँ करते हैं किन्तु वे तब तक नवनीत रूपी परमात्मा को प्राप्त नही कर पाते जब तक उसका हृदय आध्यात्मिक प्रेम की चोट से व्यथित न हो। यह रूपक अलकार से वस्तु व्यग्य है।

जेहि जिउ पेम चंदन तेहि आगी—जिसके हृदय मे परमात्मा के प्रेम की शीतल ज्वाला जलती है उसके लिए भौतिक अग्नि का क्या महत्त्व है। अर्थात् जो परमात्मा रूपी प्रेम की विराट अग्नि मे जला हो उसको भौतिक अग्नि शीतल ही लगती है।

प्रेम······हाई—कवि यह व्यंजित करना चाहता है आध्यात्मिक प्रेम की ज्वाला मे जलकर ही परमात्मा रूपी प्रियतम से भेंट होती है। अर्थात् आध्यात्म प्रेम की ज्वाला मे ज्वलित होना व्यर्थ नही जाता।

विशेष—प्रेम का स्वरूप अन्य सूफी कवियों ने भी इसी प्रकार किया है। मंझन ने मधुमालती में लिखा है—

(क) **प्रेम दीप जाके हिय बरा, ते सब आदि अन्त उजियारा।**
विरह जीव जाके घर होई, सदा अमर पुनि मरै न कोई॥

(ख) **जनम जनम फल जीवन ताही, प्रेम पीर जिय उपना जाही।**
जेहि जगत यह विरहा भयऊ, त्रिभुवन केर राउ सो कहेऊ।

आए उदधि समुद्र अपारा। धरती जरै तेहि झारा॥
आगि जो ओहि समुँदा। लंका जरी ओहि एक बुदा॥
विरह जो उपना ओहि ते गाढा। खिन न बुझाइ जगत महँ बाढ़ा॥
जहाँ सो बिरह आगि कहुँ डीठी। सौह जरै, फिरि देह न पीठी॥
जग महँ कठिन खड्ग कै धारा। तेहिते अधिक विरह कै झारा॥
अगम पंथ जो ऐस न होई। साध किये पावै सब कोई॥
तेहि समुद्र महँ राजा परा। जरा चहै पै रोवँ न जरा॥
तलफै तेल कराह जिमि, इमि तलफै सब नीर।
यह जो मलयगिरि प्रेम कर, वेधा समुद समीर॥४॥

[इस अवतरण मे कवि ने उदधि समुद्र का वर्णन किया है।]

फिर सब अपार उदधि समुद्र में आ पहुँचे। उसकी ज्वाला से धरती और आकाश जल रहे थे। उस समुद्र मे जो अग्नि पैदा हुई उसकी एक बूंद लका दाह के लिए पर्याप्त थी। उसकी एक बूंद ने ही लका को भस्म कर दिया था। उससे जो भयंकर विराहाग्नि उत्पन्न हुई जो क्षण भर भी नही बुझती बल्कि ससार मे बढती जाती है। जो उस विरह अग्नि के सामने होकर निकलता है उसमे उसको देखने की शक्ति नहीं रहती। वह उसी मे जलता रहता है परन्तु उससे पराङ्मुख नही होता। ससार सबसे कठिन तलवार की धार बताई जाती है परन्तु विरह की अग्नि उससे भी कठिन होती है। अगर प्रेम का मार्ग इतना अगम्य न होता तो साधना करने में सभी को उसमे सिद्धि प्राप्त हो जाती। राजा उसी विरह समुद्र मे पड़ा है। वह उस विरहाग्नि मे जलना चाहता है। परन्तु उससे भौतिक शरीर का रोम भी नही जलता। उस उदधि समुद्र के जल मे पड़ा हुआ जीव उसी प्रकार तड़फता है जिस प्रकार कड़ाह मे तेल तड़फता है। जो प्रेम का मलयगिरि है उसकी वायु से अगम समुद्र भी बूंद के समान सुगम हो जाता है।

धरती········झारा—यहाँ पर सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार से रहस्य भावना व्यंग्य है।

आगि·········बुन्दा—यहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा अलकार से रहस्यात्मकता व्यंजित की गई है। इसीलिए यहाँ पर भी कवि प्रौढोक्ति सिद्धि अलकार से वस्तु व्यंग्य है।

जरा से·········जरा—यहाँ पर विशेपोक्ति अलकार से कवि ने साधक की तीव्र साधना भावना की व्यजना की है। अतएव यहाँ पर भी कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्धि अलकार से वस्तु व्यंग्य है।

विशेष—इस अवतरण मे आध्यात्मिक विरह की महत्ता और स्वरूप वर्णित है। अन्य सूफी कवियो मे भी इसका स्वरूप वर्णन इसी प्रकार किया गया है। मंझन ने विरह का वर्णन इसी प्रकार किया है—

(क) विरह धाय जा एक न मारा, विरह खरग दोहु दिसि है धारा।
जहाँ भेउ विरहा मन राजा, तहाँ न रहै सुधि बुधि लाजा ॥'
—मधु मालती

(ख) विरह कठिन कोइ जान न पीरा, के विधि जान कि जान सरीरा।
—मधु मालती

सुरा-समुद पुनि राजा आवा। महुआ मद-छाता दिखरावा ॥
जो तेहि पियै सो भांवरि लेई। सीस फिरै, पथ पैगु न देई ॥
पेम-सुरा जेहि के हिय माहां। कित बैठै महुआ कै छाहॉ ॥
गुरु के पास दाख-रस रसा। बैरि बबुर मारि मन कसा ॥
विरह के दगध कीन्ह तन माठी। हाड़ जराइ दीन्ह सब काठी ॥
नैन-नीर सो पोता किया। तस मद चुवा बरा जस दिया ॥
विरह सरागन्हि भूंजे माँसू। गिरि गिरि परै रकत के आँसू ॥
मुहमद मद जो पेम कर, गए दीप तेहि साध।
सीस न देइ पतंग होइ, तौ लगि लहै न खाध ॥५॥

[इस अवतरण मे सुरा समुद्र का वर्णन किया गया है।]

अब राजा सुरा समुद्र आया। उसमें महुए के मद का ढेर लगा था। उसके जल को जो पी लेता है उसका सिर घूम जाता है और वह मार्ग मे पैर नही देता है। किन्तु जिसके हृदय मे प्रेम की सुरा है वह महुआ की छाह मे कैसे बैठ सकता है। राजा ने गुरु के पास प्रेमरूपी अंगूर का रस पिया था। उसी के उपदेश से मार्ग के बेर और बबूल रूपी कामक्रोधादि को मारकर मन को कसा है, अर्थात् अपने अधीन कर लिया है। विरह को अग्नि और शरीर को भट्टी बनाकर उसमे हड्डियो को इस प्रकार जला

दिया। आग काठ को जला देती है। उसने अपने नेत्र के जल का पुचारा फेरा जिसके परिणामस्वरूप मद चूने लगा। वह मद ऐसा जाज्वल्यमान था जैसे दीपक होता है। विरह उस शरीर रूपी सालिक पर राजा के माँस को भूँज रहा था। जिसके परिणामस्वरूप राजा के नेत्रों से रक्त के आँसू गिर रहे थे।

मुहम्मद कवि कहते है कि प्रेम के मद से दीपक जलाकर ज्योति बनाए रखो। जब तक पतिंग बनकर उस दीपक पर जल नही जाता तब तक उस प्रेम मद का रसास्वादन नही होता।

टिप्पणी—छाता, ढेर, प्रचुरता।

वैरि बबूर मार मन कसा—अर्थात् जिसने बेर, बबूर के सदृश जो कामक्रोधादि मनुष्य क वैरी है उनको मारकर मन को अपने अधीन कर लिया है वही प्रेमासव का अधिकारी है। उसे सुरा समुद्र की सुरा पीने की आवश्यकता नही है।

नैन नीर सों पोता किया—अर्क या सुरा चुआने के लिए ठण्डे पानी का पुचार नली के ऊपर भाग मे फेरा जाता है। जिसके परिणामस्वरूप भाव रस में परिणत हो जाती है।

विरह सरागिन्हि भूजै मांसू—यहाँ पर उपचार वक्रता है। सरागिनि यदि पाठ होगा तो शलाका अर्थ लिया जाय किन्तु यदि सुरागिनि होगा तो सुरा रूपी अग्नि अर्थ होगा।

गिरि गिरि परै रकत के आँसू—यहाँ पर गम्यहेतूत्प्रेक्षा है। शृंगार रस का रसाभास है। भारतीय दृष्टि से शृंगार में मांस, रक्तादि के वर्णन से रस-विरोध उत्पन्न होता है।

विशेष—(क) घुमंत फिरत हेरत दिन राती,
प्रेम सुरा व्याकुल मदमाती॥

—मधुमालती १०७

पुनि किलकिला समुद महँ आए। गा धीरज, देखत डर खाए॥
भा किलकिल अस उठै हिलोरा। जनु आकास टूटे चहुं ओरा॥
उठै लहर परबत कै नाई। फिरि आवै जोजन सौ ताई॥
धरती लेइ सरग लहि बाढा। सकल समुद जानहुं भा ठाढ़ा॥
नीर होइ तर ऊपर सोई। माथे रम्भ समुद जस होई॥
फिरत समुद जोजन सौ ताका। जैसे भॉवै कोहार क चाका॥
भै परलै नियराना जबही। मरै जो जब परलै तेहि तबही॥
गै औसान सबन्ह कर, देखि समुद कै बाढ़ि।
नियर होत जनु लीलै, रहा नैन अस काढ़ि॥६॥

[इस अवततरण मे कवि ने किलकिला समुद्र का वर्णन किया है।]

फिर किलकिल समुद्र मे आए। उसे देखकर भय लगता है और धीरज भाग जाता है। उसमे ऐसी हिलोर उठती है कि किलकिल की ध्वनि उठती है। ऐसा लगता है कि चारो ओर से आकाश टूट रहा हो। पर्वत की तरह लहरें उठती है और सौ जोजन तक वह उतरती हैं। वे लहरे पृथ्वी को ढककर आकाश को ढकने उठती थी। उस समय ऐसा लगता था कि सारा समुद्र उठ खड़ा हुआ है। उसका पानी इस प्रकार नीचे-ऊपर उठ रहा था मानो समुद्र मे मन्थन प्रारम्भ हो गया है। समुद्र लाख जोजन तक घूमता था जैसे कुम्हार का चक्र घूमता है। जब सब उसके समीप पहुँचे तो ऐसा लगा कि प्रलय हो गई। जब जिसकी मृत्यु हो जाती है तभी उसके लिए उसकी प्रलय है।

उस समुद्र का ज्वार देखकर सबके होश-हवाश गुम हो गए। निकट जाते ही ऐसा लगता मानो वह निगल जाएगा। इस प्रकार समुद्र उनकी ओर अपनी आँखें काढ़ रहा था।

टिप्पणी—परलौ—पुराणो मे प्रलय चार प्रकार की बताई गई हैं।

१. **दैनंदिन प्रलय**—यह प्राणियो के मरने से प्रतिदिन हुआ करती है।

२. **ब्राह्म प्रलय**—ब्रह्मा की रात्रि आ जाने से होने वाली प्रलय।

३. **प्राकृतिक प्रलय**—इसमे ब्रह्मा आदि सब का नाश हो जाता है।

४. **आत्यन्तिक प्रलय**—यह प्रलय उस योगी की मानी जाती है जो समाधि मे अपने सब पाप पुण्यो को नष्ट कर देता है।

मरै जो जब परलै तेही तबही—इस पक्ति मे कवि ने दैनंदिन प्रलय का वर्णन किया है।

नियर होत ....काढ़ि—यहाँ पर समुद्र का मानवीकरण करके कवि ने उपचार वक्रता का आश्रय लिया है।

हीरामन राजा सौ बोला। एही समुद्र आए सत डोला॥
सिघलदीप जो नाहि निबाहू। एही ठाँव साँकर सब काहू॥
एहि किलकिला समुद्र गंभीरू। जेहि गुन होइ सो पावै तीरू॥
इहि समुद्र-पथ मझधारा। खाड़ै कै असि धार निनारा॥
तीस सहस्र कोस कै पाटा। अस साँकर चलि सकै न चाँटा॥
खाँड़ै चाहि पैनि बहुताई। बाट चाहि ताकर पतराई॥
एही ठाँव कह गुरु संगती जिय। गुरु सँग होइ पारती कीजिय॥
मरन जियन एही पथहि, एही आस निरास।
परा सो गएउ पतारहि, तरा सो गा कबिलास॥७॥

[इस अवतरण मे कवि ने हीरामन के मुख से किलकिला समुद्र की भयंकरता की व्यंजना कराई है।]

हीरामन राजा से बोला—इसी समुद्र मे आकर मनुष्य का सत् डोल जाता है। सिंहल दीप तक जो पहुँचना कठिन है उसका कारण यही है कि इस समुद्र को पार करना बड़ा कठिन पड़ जाता है। यही गम्भीर किलकिला समुद्र है। इसे वही पार करता है जिसमें गुण होते हैं। यह समुद्र मार्ग की मंझधार है। यह खड्ग की धार की भाँति भयंकर है। इसका पाट तीस सहस्र कोस का है किन्तु इतना कष्टदायक है कि चींटा भी नही चल सकता। इसकी तीक्ष्णता तलवार से भी अधिक है और यह बाल से भी अधिक पतला है। इसी स्थान पर गुरु की आवश्यकता पड़ती है। यदि गुरु साथ होता है तो पार होने में कठिनाई नहीं होती।

इसी मार्ग में आकर मरने-जीने की समस्या उठती है। यही पर आशा-निराशा का प्रश्न उठता है। इसमे डूबा वह पाताल जाता है और जो सफल हो जाता है वह स्वर्ग चला जाता है।

टिप्पणी—सांकेर—यह शब्द विपत्ति, मुसीबत आदि के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।

सांकर—दूसरे सांकर का अर्थ भयानक लिया जाएगा।

खाडे चाहि·········इस समुद्र की तीक्ष्णता खड्ग से अधिक है। व्यंजना है कि वह बहुत भयानक है। यही अतिशयोक्ति से कवि ने समुद्र की भयंकरता व्यंजित की है। अतः यहाँ पर कवि प्रौढोक्ति सिद्ध अलंकार से वस्तुव्यंग्य है।

बार चाहि पातर बहुताई—यहाँ पर भी कवि ने अतिशयोक्ति अलंकार से यह व्यंजित करने की चेष्टा की है कि उस समुद्र मे पतली से पतली वस्तु भी नही तिर सकती है क्योंकि उसकी धारा इतनी भयानक है कि एक बाल भी तिर कर नही जा सकता। वह कठोर धाराओं से चूर्ण-चूर्ण हो जाता है। उसमें विलय हो जाता है। यहाँ पर अतिशयोक्ति अलंकार से वस्तुव्यंग्य है।

मरन जियन·········**कबिलास**—यहाँ पर कवि ने उस परलोक के मार्ग मे पड़ने वाली वैतरणी आदि का संकेत किया है। यहाँ पर समासोक्ति अलंकार है।

राजै दीन्ह कटक कहँ बीरा। सुपुरुष होहु, करहु मन धीरा॥
ठाकुर जेहिक सूर भा कोई। कटक सूर पुनि आपुहि होई॥
जौ लहि सती न जिउ सत बाँधा। तौ लहि देइ कहार न काँधा॥
पेम-समुद महँ बाँधा बेरा। यह सब समुद्र बूँद जेहि केरा॥
ना हौं सरग क चाहौं राजू। ना मोहि नरक सेंति किछु काजू॥
चाहौं ओहि कर दरसन पावा। जेइ मोहि आनि पेम-पथ लावा॥
काठहि काह गाढ़ का ढीला? बूड़ा न समुद, मगर नहि लीला॥

कान समुद धँसि लीन्हेसि भा पाछें सब कोइ।
कोइ काहू न संभारै आपनि आपनि होइ॥८॥

[इस अवतरण में रतनसेन ने अपने साथियों को वीरतापूर्वक इस भयानक समुद्र में स्थिर रहने का आदेश दिया है ।]

राजा ने अपनी सेना को आगे बढने का आदेश दिया और कहा तुम सुपुरुष हो मन में धीरज धारण करो, जिस सेना का स्वामी सूर होता है उसकी सेना आप ही सूर हो जाती है । जब तक सती सतीत्व का दृढ संकल्प नही कर लेती तब तक कहार उसकी डोली को कंधा नही देते । हम लोगो ने प्रेम समुद्र में बेड़ा बांधा है। यह सब समुद्र तो उसकी बूंद के बराबर नही है।

मैं न तो स्वर्ग का राज्य चाहता हूँ और न मुझे नरक के राज्य से कोई प्रयोजन है । मैं तो केवल उसके दर्शन पाना चाहता हूँ जिसने मुझे प्रेम-मार्ग मे प्रेरित किया है । लकडी चाहे सख्त हो या मुलायम किन्तु उसको पानी न तो डुबो सकता है और न मछली खा सकती है । व्यजना यह है कि जोगी जो अपने को काठ के सदृश सहिष्णु बना देते है वे चाहे छोटे हो चाहे बडे हो उनको न तो समुद्र डरा सकता है और न उसके जीव जन्तु ही ।

इतना कहकर राजा उस समुद्र मे अपने जहाज की पतवार पकड कर आगे हो लिया और सब उसके पीछे हो गए । वहाँ कोई किसी को नही संभालता सब अपनी सम्भालने मे लगे है ।

टिप्पणी—इस अवतरण मे जायसी ने प्रेम योगी की आत्यान्तिक इच्छा की बहुत सुन्दर अभिव्यक्ति की है। प्रेम योगी स्वर्ग को भी हेय समझता है । उसकी सबसे बड़ी इच्छा अपने प्रियतम के दर्शनो की होती है । यहाँ पर सामीप्य मुक्ति का वर्णन किया गया है ।

काठहि काह''''''ढीला—यहाँ पर दृष्टान्तालंकार है । दृष्टान्त से कवि ने यह व्यंजित किया है कि योगी काठ के सदृश होता है । वह कठोर हो या मुलायम पानी उसे डुबो नही सकता और मछली खा नही सकती । उसी प्रकार योगी चाहे बड़ा हो या छोटा उसे किलकिला समुद्र जैसी सांसारिक विपत्तियाँ न डरा सकती है न परास्त कर सकती है । अतः यहाँ पर कवि प्रौढोक्ति सिद्ध दृष्टात अलंकार से उपमालंकारव्यंग्य है ।

कोइ बोहित जस पौनि उड़ाही । कोई चमकि बीजु अस जाही ॥
कोइ जस भल धाव तुखारू । कोई जैस बैल गरियारू ॥
कोइ जानहु हरुआ रथ हाँका । कोई गरुअ भार बहु थाका ॥
कोई रेंगहि जानहुं चींटी । कोई टूटि होंहि तर माटी ॥
कोई खाहि पौन कर झोला । कोई करहि पात अस डोला ॥
कोई परहि भौर जल माहाँ । फिरत रहहि कोइ देइ न बाहाँ ॥
राजा कर भा अगमन खेवा । खेवक आगे सुआ परेवा ॥

कोइ दिन मिला सबेरे, कोइ आवा पछ-राति ।
जाकर जस-जस साजु हुत, सो उतरा तेहिं भाँति ।।९।।

[इस अवतरण में कवि ने किलकिला समुद्र में जो दुर्दशा हो रही है उसका वर्णन किया है ।]

कोई जहाज हवा की तरह उड़ जाते है। कोई ऐसे जल में डूबते उतराते है कि बिजली की भाँति क्षणभर को दीखते हैं। कोई इतनी तेजी से आगे चला जाता है जैसे तुषारी घोड़े आगे भाग जाते है। कोई ऐसे चल रहे हैं जैसे गलियाँ बैल चलता है। कुछ इतने धीरे चल रहे है मानो कि भार से थक गए हों। कुछ ऐसे चल रहे हैं जैसे चीटी चल रही हो। कोई जहाज टूटकर समुद्र की मिट्टी में नीचे गढ़ जाता है। कुछ जहाज हवा में झोले खाते है। कोई पत्ते की तरह हिल रहे है। कोई जल की भँवर में डूब रहे हैं, उनकी कोई सहायता नही कर पाता। राजा का खेवा सबसे आगे था और उससे भी आगे हीरामन तोता था।

कोई दिन में सवेरे पहुँचा, कोई रात के पिछले पहर में पहुँचा। जैसा जिसका साज वह उसी की भाँति किनारे जा लगा।

टिप्पणी—इस अवतरण मे उपमाओं की छटा विशेष रूप से द्रष्टव्य है।

इस अवतरण मे कवि ने भवसागर का साक्षात् चित्र खीचा है। यह समुद्र यात्रा के विघ्नो की पराकाष्ठा का प्रतीक है।

सतएँ समुद मानसर आए । मन जो कीन्ह साहस, सिधि पाए ।।
देखि मानसर रूप सोहावा । हिय हुलास पुरइनि होइ छावा ।।
गा अँधियार, रैन मसि छूटी। भा भिनसार किरिन-रवि फूटी ।।
'अस्ति-अस्ति' सब साथी बोले । अंध जो अहे नैन-विधि खोले ।।
कवँल बिगस तस बिहँसी देही । भौर दसन होइ कै रस लेही ।।
हँसहि हँस औ करहि किरीरा । चुनहिं रतन मुकुताहल हीरा ।।
जो अस आव साधि तप जोगू । पूजै आस, मान रस भोगू ।।
भौर जो मनसा मानसर, लीन्ह कँवल रस आइ ।
घुन जो हियाव न कै सका, झूर काठ तस खोइ ।।१०।।

[इस अवतरण में कवि ने मानसरोवर नामक सातवें समुद्र का वर्णन किया है ।]

वे मानसरोवर नामक सातवे समुद्र में आए। मन में साहस किया इसीलिए सिद्धि प्राप्त की। मानसरोवर का सुन्दर रूप देखकर उनके हृदय का आनन्द पुरैन बनकर उसमें छा गया था। वहाँ पहुँचने पर अन्धकार दूर हो गया। रात्रि की कालिमा छूट गई, प्रातः हो गया और सूर्य की किरणें फूट गईं। (व्यंजना है कि इस समुद्र मे पहुँचकर साधक का अज्ञान नष्ट हो गया। निराशा की रात्रि समाप्त हो गई और

ज्ञानोदय रूप प्रातः हो गया और हानि रूपी सूर्य की किरणें फूट गई है।) इसी स्थान पर पहुँचकर साधक को परमात्मा के अस्तित्व का पूर्ण ज्ञान होता है। वास्तविकता से अन्धो के ज्ञान चक्षु खुल जाते है। उनकी आत्मा इस प्रकार प्रफुल्लित हो उठी जिस प्रकार कमल खिल उठता है। इस आत्मानन्द रूपी कमल का रसास्वादन नेत्र-रूपी भौरे करते है। वही हँस रूपी मुक्तात्मा आनन्दित होते हैं और क्रीड़ा करते हैं। वही वे आनन्दोपभोग रूपी रतन और मुक्तिरूपी मुक्ता का उपभोग करते है। जो इस प्रकार तपस्या और योग की साधना करके उसकी आशायें पूर्ण हो जाती हैं अर्थात् उसको पूर्ण सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

भँवर रूपी दृढ प्रतिज्ञ साधक जो वहाँ पहुँचने का संकल्प करता है वही उस परमात्मा रूपी कमल की सुरभि रूपी आनन्द की प्राप्ति करता है।

टिप्पणी—इस अवतरण मे सिद्धि-प्राप्ति या ब्रह्म साक्षात्कार की स्थिति का वर्णन किया गया है। जब साधक घोर साधना करके ब्रह्मप्राप्ति की अवस्था मे पहुँचता है तभी ब्रह्म साक्षात्कार से अज्ञान नष्ट हो जाता है। पूर्ण ज्ञानोदय हो जाता है। उसी समय सच्ची आस्तिकता का उदय होता है। उस समय अन्तरात्मा प्रफुल्लित हो उठती है और मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। उस समय उसे दिव्यता और मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

यहाँ पर कवि ने मानसरोवर को ब्रह्मरूप कल्पित किया है। वह ब्रह्म सूफी भावना से प्रभावित होने के कारण दिव्य एवं अलौकिक रूप सम्पन्न है।

गा अँधियार—यहाँ पर उपचार वक्रता है। अन्धकार का मानवीकरण किया गया है।

सतएँ समुद्र—सात समुद्रो की कल्पना की प्रेरणा कवि को निश्चय ही योगियों के सात चक्रो से मिली होगी। जिस प्रकार योगी को सात चक्र पार करने पर ब्रह्मानुभूति होती है। उसी प्रकार रतनसेन रूपी साधक को सात समुद्र पार करके ही सिद्धि प्राप्त होती है।

भौर दसन ह्वै के रस ले ही—यहाँ पर दसन शब्द मे जिह्वा का भी उपादान है। योगी सहस्रार के अमृत को अपनी जिह्वा और मुख से पान करता है। कवि ने दसनो की उपमा भौरो से इसलिए की है कि प्राचीन काल मे दाँत मिस्सी के कारण काले-काले दीखते थे। कोई आश्चर्य नही जायसी के मूल पाठ मे दसन के स्थान पर रसन ही हो।

हँसहि हंस और करहि किरीरा—यहाँ पर हँस शब्द में पर्यायवक्रतागत सौन्दर्य है।

चुनहि रतन मुक्ताहल हीरा—वे रतन उपभोग रूपी रत्न मुक्ति रूपी मुक्ता और हरिरूपी हीरा प्राप्त करते हैं। यहाँ पर रतन मुक्ताहल और हीरा शब्दो मे शब्द-शक्ति उद्भव अनुरणन-ध्वनि है।

भौर जो मनसा मानसर······खाई—यहाँ पर अन्योक्ति अलंकार है। भौरा साहसी साधक का और घुन आलसी साधक का प्रतीक है। भौरे के समान जो साहसी, सच्चे, जिज्ञासु साधक है वे तो सहस्रार कमल मे पहुँचकर ब्रह्मानुभूति प्राप्त करते है किन्तु जो साधक घुन की भाँति कूपमण्डूक होते हैं वे सूखे काठ को खाते रहते हैं अर्थात् नीरस और असफल जीवन व्यतीत करते रहते है।

व्यंग्य है कि साधना मे त्याग, बलिदान और योग एवं साहस का अत्यधिक महत्त्व है जिन साधकों मे इनका अभाव रहता है उनकी साधना निरर्थक रहती है। यह भौरे और घुन के सादृश्य पर आधारित होने के कारण व्यंग्य उपमा रूप है। अतः अन्योक्ति अलंकार से उपमा अलंकार व्यंग्य मानना चाहिए।

सिंहल द्वीप खण्ड

पूछा राजै कहु गुरु सूआ। न जनौ आजु कहाँ दहुँ ऊआ ।।
पौन बास सीतल लेइ आवा। कया दहत चंदनु जनु लावा ।।
कबहु न ऐस जुड़ान सरीरू। परा अगिनि महँ मलय समीरू ।।
निकसत आव किरिन रविरेखा। तिमिर गए निरमल जस देखा ।।
उठै मेघ अस जानहुँ आगै। चमकै बीजु गगन पर लागै ।।
तेहि ऊपर जनु ससि परगासा। औ सो चन्द कचपची गरासा ।।
और नखत चहुँ दिसि उजियारे। ठावहि ठाँव दीप असवारे ।।
और दखिन दिसि नीयरे, कंचन मेरु देखाव।
जनु वसंत ऋतु आवै, तैसि बास जग आव ।।१।।

[इस अवतरण मे कवि ने राजा के द्वारा गुरु तोते के प्रति अपनी ब्रह्म-साक्षात्मूलक रहस्यानुभूतियो की चर्चा कराई है।]

राजा ने तोते से कहा—हे! तोते रूपी गुरु! आज न मालूम किस स्थान पर दिन निकला है। शीतल वायु सुगन्ध लेकर बह रही है। ऐसा लगता है उसने जलते हुए शरीर मे चन्दन लगा दिया हो। ऐसा लग रहा है आग मे मलयानिल आ मिली हो। ज्ञान रूपी सूर्य की किरणे निकलती आती हों। अज्ञान रूपी अन्धकार के नष्ट होने से सारा संसार निर्मल हो उठा। सामने मेघ उमड़ता हुआ दिखाई पड़ता है और आसमान पर विजली चमकती दिखाई पड़ती है। उसके ऊपर जैसा चन्द्रमा प्रकाशित हो रहा है। वह चन्द्र भी मानो कृतिका नक्षत्र से घिरा हुआ है और भी चारो ओर उज्ज्वल नक्षत्र चारों ओर जलते हुए दिखाई पड़ते हैं। वे स्थान-स्थान पर दीपक से जलते हुए दिखाई पड़ते है।

दक्षिण दिशा में समीप मे ही सोने का सुमेरु दिखाई पड़ता है। यहाँ ऐसी सुरभि फैली है जैसे संसार में वसन्त के आने से फैलती है।

टिप्पणी—यह अवतरण रहस्यानुभूतियों का भण्डार है।

न जनौ आजु कहाँ दिन ऊआ—यहाँ पर काकु वैशिष्ट्य व्यंग्य ध्वनि है। अनिर्वचनीय रहस्यात्मकता व्यंग्य है।

कबहु······गरासा—इन पक्तियो में कवि ने ऋतु का ऐसा रहस्यात्मक वर्णन किया है मानो कि वहां सभी ऋतुएँ एक साथ विलसित हो रही हो। **हेमन्त—कबहु**

न ऐस जुड़ान शरीरू। **ग्रीष्म**—निकसत आव किरन रवि रेखा। **वर्षा**—उठे मेघ अस जानहुँ आगो। **शिशिर**—नखत चहुँ दिसि उजियारे इत्यादि। **वसन्त**—जस वसन्त ऋतु आवै तैस वास जग पाव।

तू राजा जस विकरम आदी। तू हरिचन्द बैन सतबादी॥
गोपीचन्द तुइ जीता जोगू। औ भरथरी न पूज बियोगू॥
गोरख सिद्धि दीन्ह तोहि हाथू। तारी गुरु मछन्दर नाथू॥
जीत पेम तुइँ भूमि अकासू। दीठि परा सिंघल कबिलासू॥
वह जो मेघ गढ़ लाग अकासा। बिजुरी कनक-कोटि चहुँ पासा॥
तेहि पर ससि जो कचपचि भरा। राजमन्दिर सोने नग जरा॥
और जो नखत देख चहुँ पासा। सब रानिन्ह कै आहिं अबासा॥
गगन सरोवर, ससि-कँवल, कुमुद-तराइन्ह पास।
तू रवि ऊआ, भौर होइ, पौन मिला लेइ बास॥२॥

[इस अवतरण मे कवि ने तोते के मुख से राजा रतनसेन की स्तुति कराई है।]

तोते ने कहा, "हे! राजा। तुम विक्रम के समान महान् राजा हो। तुम पृथु, राजा हरिश्चन्द्र के समान् ही वचनो के सत्यवादी हो। जोग क्षेत्र मे तुम गोपी चन्द से आगे वढ गए हो। वियोगियो मे भर्तृहरि तुम्हारी समता नही कर सकते। गोरखनाथ ने तुम्हे अपने हाथ से सिद्धि दी। गुरु मत्स्येन्द्रनाथ ने समुद्र मे सबका उद्धार किया। तूने प्रेम से धरती और आकाश सव जीत लिए। उसी के परिणाम-स्वरूप तुम्हे सिंहल द्वीप रूप स्वर्ग दिखाई पड़ा है। वह जिसे तुम मेघ समझते हो वही आकाश-चुम्बी सिंहल है। उन पर जो कचपचियों से भरा चन्द्रमा दिखाई पड़ता है वह सोने और नगो से जड़ा हुआ राजमन्दिर है। जिसको बिजली बताते हो वही सोने का परकोट है। कचपचियों से भरा हुआ जो चन्द्रमा प्रतीत होता है वही सोने से जड़ा राजमहल है। जिन्हे नक्षत्र कहते हो वही रानियों के आवास है।

आकाश ही मानसरोवर है, चन्द्रमा कमल और नक्षत्र कुमुद है। जैसे सूर्य के निकलने पर भौरा विकसित कमल की सुगन्ध लेकर आता है वैसे ही तुम्हारे आने पर पवन उस पदमावती की सुरभि लेकर आया है।

टिप्पणी—आदी=सर्वथा।

राजा विक्रम—विक्रमादित्य उज्जयिनी का एक बड़ा प्रसिद्ध और प्रतापी राजा था। उसकी महिमा का वर्णन सिंहासन-बत्तीसी नामक ग्रन्थ में काव्यात्मक शैली में बड़े सुन्दर ढंग से किया गया है। इनकी राजसभा मे धन्वन्तरि, वारह-मिहिर, वररुचि आदि प्रसिद्ध ९ रत्न थे। इन्होने एक संवत् चलाया था वह आज भी प्रचलित है। उसे विक्रम संवत् कहते हैं।

हरिश्चन्द्र---राजा त्रिशंकु के पुत्र महाराज हरिश्चन्द्र अयोध्या में शासन करते थे। वे महान् दानी और सत्यवादी थे। एक बार विश्वामित्र ने इनकी सत्यवादिता की परीक्षा ली। उन्होंने अपने योगबल से राजा को यह स्वप्न दिखाया कि उसने किसी वृद्ध ब्राह्मण को अपना समस्त साम्राज्य संकल्पित कर दिया है। राजा जगा और सोचने लगा कि स्वप्न में संकल्पित साम्राज्य को मैं अपने अधीन कैसे रखूं। अतः वे द्वारपर बैठकर उस ब्राह्मण की प्रतीक्षा करने लगे। इतने में ही विश्वामित्र आ पहुँचे और बोले---आपने स्वप्न मे मुझे अपना समस्त राज्य दान में दे दिया था, अतः अब अपने वचनों का पालन करिए। राजा ने उन्हे सब साम्राज्य दे दिया। उसके बाद उन्होंने दक्षिणा मांगी। उस पर राजा सपरिवार काशी मे आया। वहाँ पर श्मसान के अधिकारी डोम के हाथ दास कर्म करने के लिए ५००) पर बिक गए। इधर शैव्या ने एक दूसरे के यहाँ नौकरी कर ली वहाँ उसके पुत्र रोहिताश को सर्प ने काट लिया। वह उसे फूंकने के लिए लाई तो हरिश्चन्द्र ने उससे कर रूप में आधी धोती माँग ली। उसकी सत्यनिष्ठा देखकर देवता लोगो ने पुष्प-वृष्टि की और भगवान् ने उदय होकर उनका उद्धार किया।

पुराणो में इनके सम्बन्ध में और भी कथाएँ मिलती हैं। वे सब इनकी सत्य-निष्ठा प्रकट करती हैं।

वैन्य---यह राजा वेन का पुत्र था। वेन स्वयं बडा अत्याचारी और दुष्ट राजा था। उसी ने विष्णु बनने के लिए अपने काठ के दो हाथ और लगाए थे। किन्तु उनका पुत्र पृथु बड़ा ही धर्मात्मा और प्रतापी राजा था। राजा पृथु ने पृथ्वी का दोहन कर अनेक धन-धान्य उत्पन्न किया। अत. पृथ्वी को इसकी भार्या मानने लगे थे। भागवत मे लिखा है—

"पृथोरपीमा पृथिवी भार्यां पूर्वविदो विदुः
स्थाणुच्छेदस्य केदारमाहुः शल्यवतो मृगम् ॥"

इस राजा की इतनी महिमा थी कि भागवतकार को लिखना पड़ा है—

वै यस्य चरितं पुण्यं शृणुयात् श्रावयेत् पठेत्।

गोपीचन्द—ये बंगाल के राजा मानिकचन्द्र के पुत्र थे। यह कानफा के शिष्य थे। उनका समय ग्यारहवी शताब्दी के मध्य माना गया है। इनकी माता का नाम मयनावती था। माता की प्रेरणा से ही जोगी हो गए थे। वे अपने समय के महान् जोगी थे। दुर्लभ चन्द के 'गोपीचन्दर गीत' मे इनके सम्बन्ध मे बहुत सी किंवदन्तियाँ दी है।

भरथरी—इनके सम्बन्ध में हम पहले लिख चुके हैं। कहते है इन्होंने अपनी रानी पिंगला के व्यभिचार से दुःखी होकर वैराग्य ले लिया था और उसके वियोग मे योगी बन गए थे।

गोरखनाथ—गोरखनाथ नाथपन्थ में शुद्ध और पवित्र योगमार्ग के प्रवर्तक

थे। उन्हें सब सिद्धियां प्राप्त थी। कहते हैं वे आज भी जीवित हैं और बीहड़ जंगलों में रहते हैं। लोक में नही आते।

गगन सरोवर......बास—कवि कहता है कि आकाश रूपी सरोवर में चन्द्र-रूपी कमल है और तारे रूपी कुमुदगण हैं। सूर्य के उदय होने से चन्द्ररूपी कमल खिल उठा है और तारोंरूपी कुमुद म्लान हो रहे है। पवन भ्रमर रूप बनकर उसका सन्देश लाया है। यहाँ पर आकाश गन्धर्वसेन के गढ़ का, शशि पदमावती, रतनसेन रवि का, कुमुद सखियो का और पवन दूत का उपमान है। यहां पर रूपक और रूपकांतिशयोक्ति दोनो अलंकारों का संकर है। दोनो अलंकारो के संकर से कवि ने एक आध्यात्मिक अर्थ की व्यंजना की है। ब्रह्मरन्ध्र रूपी आकाश मे पदमावती ही चन्द्र तत्व है। रतनसेन सूर्य है। अन्य चक्र और नाड़ियाँ तारागण रूपी सखियाँ हैं। सूर्यतत्त्व जब प्राणवायु के द्वारा चन्द्र तत्त्व तक ब्रह्मरन्ध्र मे पहुँचता है तो सुरभित वायु से वहाँ उसमे पदमावती रूपी परब्रह्म के अस्तित्व की सूचना मिलती है।

यहाँ पर कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अलंकारों से वस्तुव्यंग्य है।

सो गढ़ देखु गगन ते ऊँचा। नैनन्ह देखा, कर न पहुंचा॥
बिजुरी चक्र फिरै चहु ँ फेरी। औ जमकात फिरै जम केरी॥
धाइ जो बाजा कै मन साधा। मारा चक्र भएउ दुइ आधा॥
चांद सुरुज औ नखत तराई। तेहि डर अंतरिख फिरहि सबाई॥
पौन जाइ तह ँ पहु ँचै चहा। मारा तैस लौटि भुइँ रहा॥
अगिनि उठी, जरी बुझी निआना। धुआ उठा, उठि बीच बिताना॥
पानी उठा उठि जाइ न छूआ। बहुरा रोइ, आइ आइ भुइँ चूआ॥
रावन चहा सौह होइ, उतरि गए दस माथ।
संकर धरा ललाट भुइँ और को जोगी नाथ॥३॥

वह (ब्रह्मरन्ध्ररूपी) गढ़ आकाश से भी ऊँचा है। नेत्र देखते है किन्तु वह ग्राह्य नही है। उसके चारो ओर बिजली का चक्र फिरता है और यमराज की कटक घूमती है। मन साधकर जो वहाँ तक पहुँचता है तो विष्णु का चक्र उसके दो हिस्से कर डालता है। चाँद, सूर्य और सब नक्षत्र उसी के डर से गगन में चक्कर काटते हैं। वायु ने वहाँ पहुँचने की चेष्टा की किन्तु वहाँ वह ऐसी प्रताड़ित हुई कि खण्ड-खंड होकर पृथ्वी में लौट आई। अग्नि ने वहां पहुँचने का प्रयास किया परिणाम में उसे जलना पड़ा और जलकर भी बुझना पड़ा। धुआँ उठा और बीच में ही विलीन हो गया। जल ने वहाँ मेघ बनकर पहुँचने की चेष्टा की किन्तु जब वह उसका स्पर्श न कर सका तो वह रोकर लौट आया और बूँद बनकर पृथ्वी पर टपक पड़ा।

रावण ने सामने होकर आँख मिलाने की चेष्टा की जिसके परिणामस्वरूप

उसके दसों मस्तक कट गए। उसके आगे शंकर जैसे आदि नाथ को भी झुकना पड़ा, दूसरे नाथ पन्थी योगी की बात ही क्या है।

टिप्पणी—सो गढ़ देख गगन ते ऊँचा—यहाँ पर सो से गढ की यौगिकता प्रगट की गई है। यहाँ संवृत्ति वक्रता है। सो से कवि ने ब्रह्मरन्ध्र का संकेत किया है। गगन से विशुद्ध चक्र की व्यंजना की गई है। उस ब्रह्मरन्ध्र रूपी गढ के दर्शन दृष्टि को केन्द्रित करने से हो जाते है किन्तु वह हाथो से पकड़ा नही जा सकता।

बिजुरी चक्र फिरै चहुँ फेरी—उसके चारो ओर बिजली के समान अत्यधिक गतिमान और तेजोमय विष्णु का चक्र उसकी रक्षा मे घूमा करता है। यह धारणा वैष्णव तन्त्रो की है। वैष्णव तन्त्रो मे लिखा है कि विष्णुलोक के चारो ओर उनका चक्र फिरा करता है। व्यग्य है कि अनाधिकारी को उसमें प्रविष्ट नहीं होने देता।

और......फिरै जमकेरी—वहाँ यमराज की कांति भी घूमा करती है। व्यंजना है कि वहाँ अनाधिकारी व्यक्ति किसी प्रकार नही जा सकते हैं। यहाँ कवि प्रौढोक्ति सिद्ध वस्तु से वस्तुव्यंग्य है।

चाँद सुरज......सबाई—सूर्य चन्द्र और सब नक्षत्र उसके डर से आकाश मे घूम रहे है। यहाँ पर सिद्ध विषया हेतूत्प्रेक्षा है। डर रूप कारण जो चक्कर काटना उत्प्रेक्षा का आश्रय है वह सिद्ध है।

पौन जाइ······मुई रहा—यहाँ पर सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा है।

चाँद सुरज······चुआ—इन सबका वर्णन कवि ने उस गढ की दुर्धर्षता, दुर्गमता एवं रहस्यात्मकता व्यंजित की है। यह व्यंजना वस्तुरूप है। ऊपर जितने व्यापार बताए कवि प्रौढोक्ति सिद्ध है। अत. यहाँ पर कवि प्रौढोक्ति सिद्ध वस्तु से वस्तुव्यंग्य है।

रावन······माथ—यहाँ हेतूत्प्रेक्षा अलकार से उस स्थान की दुर्धर्षता, अगम्यता और अलौकिकता व्यंजित की गई है। अतः यहाँ पर भी कवि प्रौढोक्ति सिद्ध अलंकार से वस्तुव्यंग्य है।

विशेष—इस अवतरण मे कवि ने उस रहस्यमय परमात्मा के लोक की दुर्धर्षता, दुर्गमता, अलौकिकता और विकटता व्यजित की है। सारी सृष्टि वहाँ तक पहुँचने का प्रयास कर रही है किन्तु वह वहाँ तब तक नही पहुँच सकती जब तक वह पूर्ण अधिकारित्व प्राप्त न कर ले।

तहाँ देखु पदमावति रामा। भौर न जाइ, न पंखी नामा॥
अब तोंहि देऊँ सिद्धि एक जोगू। पहिले दरस होइ, तब भोगू॥
कचन मेरु देखाव सो जहाँ। महादेव कर मण्डप तहाँ॥
ओहि-क खण्ड जस परबत मेरू। मेरुहि लागि होइ अति फेरू॥
माघ-मास पाछिल पछ लागे। सिरी पंचिमी होइहि आगे॥

उधरिहि महादेव कर बारू । पूजिहि जाइ सकल संसारू ।।
पदमावति पुनि पूजै आवा । होइहि एहि मिस दीठि मेरावा ।।
तुम्ह गौनहु ओहि मण्डप, हौ पदमावति पास ।
पूजै आइ वसंत जब, तब पूजै मन-आस ।।४।।

[इस अवतरण में कवि ने पदमावती के स्थान का बड़ा रहस्यात्मक वर्णन किया है ।]

वहाँ (जिस दिव्य स्थान का वर्णन ऊपर किया गया है) पदमावती रहती है वहाँ पक्षी और भौरा तक नही पहुँच सकता । अब सिद्धि प्राप्ति की एक युक्ति बताता हूँ जिससे पहले उसके दर्शन होगे फिर भोग मिलेगा । सामने वहाँ कंचन का पर्वत दिखाई पड़ता है, वही महादेव का मण्डप है । उसके खण्ड भी मेरुपर्वत के समान ही स्वर्णवर्ण के है । वहाँ पहुँचने के लिए मेरु से भी अधिक फेर पड़ता है । माघ मास का पिछला पक्ष आने पर वसन्त पंचमी आएगी । जब शिव मण्डप का द्वार खुलेगा, सब लोग जाकर पूजा करेंगे । पदमावती भी पूजा करने आएगी । बस उसी अवसर पर तुम्हें उसके दर्शन हो जायेंगे ।

तुम उस मण्डप में आना । मै अब पदमावती के पास जाता हूँ । जब वह वसन्त पंचमी को पूजा करने आएगी तब तुम्हारे मन की कामना पूरी होगी ।

टिप्पणी—कंचन मेरु······मण्डप तहाँ—यहाँ पर सुषुम्ना के अन्तिम भाग जहाँ ब्रह्मरन्ध्र है, की ओर सकेत किया गया है । सुषुम्ना के लिए सुमेरु का प्रतीक अनेक बार दिया गया है ।

महादेव का मण्डप—यहाँ कवि का अभिप्राय ब्रह्मरन्ध्र से है ।

विशेष—यहाँ पर स्वतः सिद्ध वस्तु से रहस्यात्मकता रूप वस्तुव्यंग्य है ।

राजै कहा दरस जौ पावौ । परबत कान्ह गगन कहँ धावौ ।।
जेहि परबत पर दरसन लहना । सिर सौं चढ़ौ पाँव का कहना ।।
मोहूं भावै ऊँचे ठाऊँ । ऊँचै लेउ पिरीतम नाऊँ ।।
पुरुषहि चाहिय ऊँच हियाऊँ । दिन दिन ऊँचै राखै पाऊ ।।
सदा ऊँच पै सेइय बारा । ऊँचै सौ कीजिय बेवहारा ।।
ऊँचै चढ़ै ऊँच खण्ड सूझा । ऊँचे पास, ऊँच मति बूझा ।।
ऊँचै संग संगति निति कीजै । ऊँचै काज जीउ पुनि दीजै ।।
दिन दिन ऊँच होइ सो, जेहि ऊँचे पर चाउ ।
ऊँचे चढ़त जो खसि परै, ऊँच न छांडिय काउ ।।५।।

[इस अवतरण मे कवि ने तोते के द्वारा निर्दिष्ट मिलन-तिथि और स्थान की

बात से आशान्वित हुए रतनसेन से तोते को जो प्रत्युत्तर दिलवाया है वही यहाँ वर्णित है।]

राजा ने कहा—यदि मैं दर्शन पाऊँ तो पर्वत क्या आकाश में दौड़ जाऊँगा। जिस पर्वत पर दर्शन मिलना है उस पर मैं सिर के बल चढ सकता हूँ, पैरो से चढ़ने की बात ही क्या है। मुझे भी ऊँचा स्थान अच्छा लगता है। ऊँचे पहुँचने के लिए ही प्रियतम का नाम ले रहा हूँ। पुरुष को सदा ऊँचा साहस करना चाहिए। दिन-दिन ऊँचे ही पैर बढाते जाना चाहिए। सदा ऊँचे की ड्योढी का सेवन करना चाहिए और ऊँचे से ही व्यवहार करना चाहिए। ऊँचे पर चढ़ने से ऊँचा खण्ड दृष्टि आता है। ऊँचे के पास बैठने से बुद्धि ऊँचे विचार समझने लगती है। सदा ऊँचे की संगति करनी चाहिए और ऊँचे कार्यों को प्राणो की बलि दे देनी चाहिए।

टिप्पणी—इस अवतरण में जायसी ने उसी भाव की प्रतिष्ठा की है जिसकी कालिदास ने 'याञ्चामोघा बरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा' लिखकर की है। कवि का कथन है कि ऊंचे व्यक्ति से माँगने से चाहे भीख न भी मिले. अनुचित नही है किन्तु नीच से माँगना चाहे इच्छापूर्ण ही हो जाय सर्वथा हेय है। नीतिशास्त्र में भी लिखा है—

'सेवितव्यो महान् वृक्षः फलछाया समन्वितः।
यदि दैवात् फले नास्ति छाया केन निवार्यते' ॥

अर्थात् मनुष्य को फल और छायादार बड़े वृक्ष की सेवा करनी चाहिए। यदि वृक्ष मे फल नही भी है तो भी छाया तो मिलेगी ही। भर्तृहरि ने ठीक ही कहा है 'सत्संगतिः कथय किन्न करोति पुंसाम'।

सिर सौं चढ़ौं—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से कवि ने उस स्थान तक पहुँचने के लिए तीव्र इच्छा और अटूट श्रद्धा की व्यंजना की है।

पुरखहि चाहिए ऊँच हियाऊ—कवि का अभिप्राय है कि मनुष्य को अपना हृदय सदैव ऊंचा रखना चाहिए। हृदय ऊँचा रखने से कवि की व्यजना साहसाधिक्य से है। मनुष्य को बड़े से बडे साहस करने से हिचकिचाना नही चाहिए। जैसे रावण ने साहस किया कि सिर तक काटकर हवन कर दिये। उसका उसे फल मिला कि वह लंका का दिग्विजयी राजा हुआ।

हीरामनि देइ बचा कहानी। चला जहाँ पदमावति रानी ॥
राजा चला सँवरि सो लता। परबत कहँ जो चला परबता ॥
का परबत चढ़ि देखै राजा। ऊँच मँडप सोने सब साजा ॥
अमृत सदाफर फरे अपूरी। औ तहँ लागि सजीवन-मूरी ॥
चौमुख मँडप चहूँ केवारा। बैठे देवता चहूँ दुबारा ॥

भीतर मँडप चारि खंभ लागे। जिन्ह वै छुए पाप तिन्ह भागे॥
संख घंट घन बाजहिं सोई। औ बहु होम जाप तहँ होई॥
महादेव कर मंडप, जग मानुस तहँ आव।
जस हौंछा मन जेहि के, सो तैसै फल पाव॥६॥

[इस अवतरण में हीरामन का पदमावती के प्रति प्रत्यावर्तन वर्णित है।]

हीरामन राजा को उपदेश देकर और लौटने के लिए प्रतिश्रुत होकर पदमावती के पास चल दिया। पहाड़ी तोते के जाने के बाद ही राजा भी उस पदमावती रूपी कनकलता का स्मरण कर पर्वत की ओर चल दिया। पर्वत पर चढ़कर राजा देखता है कि ऊँचा मंडप है और सब सोने से सजा हुआ है। वहाँ पर अमृत के समान स्वादिष्ट फल सर्वत्र लगे थे, और संजीवनी बूटी लगी हुई थी। चौमुखा मंडप में चारों ओर किवाड़ें लगी थी और चारों द्वारों पर चार देवता प्रतिष्ठित थे। मंडप के भीतर चार खम्भे थे जो उनका स्पर्श कर लेते थे, उनके पाप भाग जाते थे। वहाँ शंख, घण्टे और कांस्य ताल बज रहे थे और बहुत प्रकार के होम और जप हो रहे थे।

शिवजी के उस मंडप में सारे संसार के यात्री एकत्रित होते थे। वहाँ पहुँचकर लोगो को मनोवांछित फल मिला था।

टिप्पणी—बचा=बचन।

संवरि सोलता—व्यजना है 'उस पदमावती रूपी दिव्य रूपवती का स्मरण करा' यहाँ पर 'सो' में अर्थान्तर सक्रमित वाच्यध्वनि है। और लता मे रूपकातिशयोक्ति है।

चहुंमुख मंडप......तंह होइ—यहाँ पर कवि ने महादेव के मंडप का बड़ा रहस्यात्मक वर्णन किया है।

मंडप गमन खण्ड

राजा बाउर बिरह बियोगी । चेला सहस तीस संग जोगी ॥
पदमावति के दरसन आसा । दंडबत कीन्ह मंडप चहुं पासा ॥
पुरुप बार होइ कै सिरनावा । नावत सीस देव पहँ आवा ॥
नमो नमो नारायन देवा । का मैं जोग करौ तोरि सेवा ॥
तूँ दयाल सबके उपराही । सेवा केरि आस तोहि नाहीं ॥
ना मोहि गुन, न जीभ रस-बाता । तूँ दयाल, गुन निरगुन दाता ॥
पुरवहु मोरि दरस कै आसा । हौ मारग जीवौ धरि साँसा ॥
तेहि बिधि बिनै न जानौ, जेहि विधि अस्तुति तोरि ।
करहु सुदिष्टि मोहि पर, हीछा पूजै मोरि ॥१॥

[इस अवतरण मे कवि ने राजा और उसके साथी जोगियो का मंडप गमन वर्णित किया है ।]

राजा विरह-विधुर होने के कारण बावला सा हो गया है । उसके साथ बीस हजार शिष्य जोगी के वेश मे चले । उसने पदमावती के दर्शन की कामना से चारों द्वारो पर दण्डवत की (व्यंजना है कि उसने चारो द्वारो पर पदमावती को खोजने का प्रयत्न किया) । फिर पूर्व के द्वार पर जाकर मस्तक नवाया और फिर अन्तर देवता के पास आ गया । हे देव ! हे नारायण ! तुम्हे प्रणाम है । मेरे योग्य तुम्हारी क्या सेवा हो सकती है जो मैं कर सकूँ । हे दयालु भगवान् ! तुम सबके स्वामी हो । तुझे सेवा की कामना नही है । मुझ मे न तो प्रार्थना करने का गुण है और न जीभ मे वह रसपूर्ण वाणी ही है । हे दयालु तू गुणी और निर्गुण सबका स्वामी है । मुझ दास की आशापूर्ण करो । मैं हर सांस मे मार्ग जोह रहा हूँ ।

जिस प्रकार तुम्हारी स्तुति की जानी चाहिए उस ढंग से स्तुति करने मे मैं असमर्थ हूँ । अब तो ऐसी कृपा दृष्टि करिए कि मेरी इच्छा पूर्ण हो जाय ।

टिप्पणी—बाउर बिरह बियोगी—यहाँ पर वर्ण विन्यास वक्रता है ।

कै अस्तुति जब बहुत मनावा । सबद अकूत मँडप महँ आवा ॥
मानुष पेम भएउ बैकुंठी । नाँहि त काह छार भरि मूठी ॥
पेमहि माँहि विरह-रस रसा । मैन के घर मधु अमृत बसा ॥
निसत धाइ जौ मरै न काहा । सत जौ करै बैठि तेहि लाहा ॥

एक वार जौं मन देइ सेवा। सेवहि फल प्रसन्न होइ देवा ।।
सुनि कै सबद मंडप झनकारा। बैठा आइ पुरुष के बारा ।।
पिउ चढ़ाइ छार जोति आंटी। माटी भएउ अन्त जो माटी ।।
माटी मोल न किछु लहै, औ माटी सब मोल।
दिस्टि जौ माटी सौ करै, माटी होइ अमोल ।।२।।

इसमें जोगी रूप राजा ने जब राजा की देवता की बहुत प्रार्थना की तो आकाशवाणी हुई 'मनुष्य का प्रेम दिव्य हो गया नही तो मुट्ठी पर छार रूप मनुष्य में इतनी क्षमता कहाँ कि वह ब्रह्म साक्षात्कार का अधिकारी बन सके। प्रेम में विरह वैसा मधु अमृतमय रस रहता है जैसा कामवासना या संयोग मे पाया जाता है। सत्यहीन व्यक्ति साधना कर, यदि मर भी जाय तो कोई बात नहीं है, किन्तु जो सत्यनिष्ठ है उसे लाभान्वित होना ही चाहिए। यदि साधक एक बार सत्य भाव से देवता की सेवा करता है तो देवता प्रसन्न हो जाता है, वह शब्द सुनकर जो मन्दिर मे प्रतिध्वनि हो रहा था राजा पूरब के द्वार पर आ बैठा। फिर उसने शरीर पर इतनी भस्म लगाई जितनी लगा सकता था और सोचने लगा कि यदि यह शरीर मिट्टी है तो उसे आज ही मिट्टी क्यों न कर दूं ?

मिट्टी का कुछ मोल नही होता और समस्त मोल (रुपया पैसा) शरीर है। जो सब सांसारिक वस्तुओं को मिट्टी की तरह समझने लगता है तो मिट्टी अर्थात् भौतिक जीवन अमूल्य हो जाता है।

टिप्पणी—मयन के घर-मधु अमृत बसा—इसका अर्थ डा० अग्रवाल ने इस प्रकार किया है, "प्रेम मे विरह और रस दोनों हैं जैसे मोम मे मधु और विषैली मधुमक्खी दोनो रहते हैं।" मेरी समझ मे कवि ने विरहानन्द के महत्त्व की व्यंजना की। यह कहना चाहता है कि जिस प्रकार मयन अर्थात् कामदेव या कामवासना या संयोगावस्था में अमृत के सदृश मधुर सुख अनुभव होता है वैसा ही विरह में भी एक मधुमय आनन्द होता है। कवियो ने विरहगत आनन्द का अनेक प्रकार से वर्णन किया है।

माटी होय अन्त जो माटी—यहाँ पर माटी के दोनो प्रयोग यमक अलंकार मूलक है, प्रथम मिट्टी शब्द तुच्छ के अर्थ में, दूसरा माटी शब्द शरीर के अर्थ में किया गया है।

दृष्टि जो माटी सो करे माटी होय अमोल—यहाँ पर दूसरा 'माटी शब्द अर्थान्तर संक्रमित वाच्यध्वनि मूलक अर्थ दे रहा है। वहाँ माटी का अर्थ शरीर लिया गया है।

बैठ सिंघछाला होइ तपा । पदमावति पदमावति जपा ।।
दीठि समाधि ओहि सौ लागी । जोहि दरसन कारन वैरागी ।।
किगरी गहे वजावै भूरै । भोर साँझ सिगी निति पूरै ।।
कंथा जरै आगि जनु लाई । विरह धंधार जरत न वुझाई ।।
नैन रात निसि मारग जागे । चढ़े चकोर जानि ससि लागे ।।
कुँडल गहे ससि मुहँ लावा । पांवरि होउँ जहाँ ओहि पाँवा ।।
जटा छोरि कै वार बहारौ । जोहि पथ आव ससि तहँ वारौ ।।
चारिहु चक्र फिरौ मै, डंड न रहौ थिर मार ।
होइ कै भसम पौन सँग (धावौ) जहाँ परान अधार ।। ३।।

[इस अवतरण मे कवि ने रतनसेन का उत्कनायक के रूप मे सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है । यद्यपि काव्य शास्त्र मे उत्कनायक की चर्चा किसी आचार्य ने नही की है किन्तु उत्कानायिका के अनेक चित्र मिलते है । उत्कानायिका उसे कहते है जो संकेत करने पर भी नायक के कारणवश न आने से चिन्तित रहती है । यहाँ नायक की यही दशा हो रही है । वह सकेत स्थल पर प्रतीक्षा कर रहा है और नायिका के न आने से चिन्तित है । इसीलिए हमने उसे उत्कनायक का अभिधान दिया है ।]

वह तपस्वी वनकर सिंह चर्म पर वैठ गया है और पदमावती पदमावती जप रहा है । दृष्टि और मन दोनो उसकी प्रतीक्षा मे लीन थे जिसके कारण वह वैरागी हुआ था । वह किगरी लिए वजाता था और उसी के ध्यान मे सूख रहा था और प्रातः सायं सिंगी नाद करता था । उसका कंथा ऐसा जलता था मानो आग लगा दी हो । विरह ज्वाला ऐसी प्रज्वलित है कि वुझाए नही वुझती है । रात भर उसकी प्रतीक्षा मे जगने से नेत्र लाल हो गए थे । ऐसा लगता था मानो कि चकित चकोर चन्द्रमा की ओर टकटकी लगाए हो । उसने हाथो से कुण्डल साधकर धरती पर मस्तक नवाया और सोचने लगा जहाँ उस प्रियतमा का पैर पड़ता है वहाँ मेरा यह शरीर पातडा होकर विछ जाय । जटाएँ खोलकर उसके द्वार पर झाड़ लगा सकता हूँ । जहाँ होकर वह जाती हो वहाँ अपना सिर काट कर डाल दूं ।

चारो दिशाओं मे मन उसे खोजता फिरता है । एक क्षण भी स्थिर और शान्त नही होता । मैं मशक वनकर वही उड जाना चाहता हूँ जहाँ प्राणाधार रूपिणी पदमावती है ।

टिप्पणी—कंथा जरै आगु जनु लागी—कवि ने अतिशयोक्ति और उत्प्रेक्षा-अलंकारो से विरहाधिक्य रूप वस्तु की व्यंजना की है ।

विरह घंधार जरत न बुझाई—वाच्यार्थ है कि विरह की ज्वाला जलती है तो बुझाए नही वुझती है किन्तु इस कथन में अतिशयोक्ति है। अतिशयोक्ति के द्वारा

कवि ने विरह की अतिशय ज्वलनशीलता व्यंजित की है। यह वस्तुरूप है। अतः यहाँ कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अलंकार से वस्तुव्यंग्य है।

नैन रात निसि मारग जागे—यहाँ पर हेतु अलंकार है। इस हेतु अलंकार से कवि ने नायक की मिलन के लिए अतिशय औत्सुक्य और विरहमूलक तड़पन की व्यंजना की है। अतः कवि प्रौढोक्ति सिद्ध अलंकार से यहाँ पर वस्तुव्यंग्य है।

इस अवतरण में कवि ने विरह की अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, उद्वेग, प्रलाप इन सब अवस्थाओं की एक साथ व्यंजना की है। इनके अतिरिक्त भी फारसी, काव्यशास्त्र की विरह दशाओं में इन्तजारी, बेकरारी और बेसबर वाली अवस्थाओं की भी बड़ी मार्मिक व्यंजना की गई है। वह विरह पूर्णानुरागमूलक ही है।

विशेष—यहाँ पर नायक पक्षीय पूर्वराग जनित विप्रलम्भ है।

पदमावती वियोग खण्ड

पदमावति तेहि जोग सँजोगा । परी पेम-बस गहे वियोगा ।।
नींद न परै रैनि जौ आवा । सेज कँवाच जानु कोइ लावा ।।
दहै चन्द औ चन्दन चीरू । दगध करै तन विरह गँभीरू ।।
कलप समान रैन तेहि बाढी । तिल तिल भर जुग जुग जिमि गाढी ।।
गहै बीन मकु रैनि बिहाई । ससि-बाहन तहँ रहै ओनाई ।।
पुनि धनि सिघ उरेहै लागै । ऐसिहि बिथा रैनि सब जागै ।।
कहँ वह भौर कँवल रस लेवा । आइ परै होइ घिरिनि परेवा ।।
सोधनि विरह-पतंग भइ, जरा चहै तेहि दीप ।
कंत न आव भिरिग होइ, का चन्दन तन लीप ? ।।१।।

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती की पूर्वानुराग जनित विरहावस्था का बड़ा भावपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया है ।]

पदमावती उस राजा के योग के प्रभाव से प्रेमाभिभूत हो गई और विरह का अनुभव करने लगी । रात्रि आने पर उसे नींद नही पड़ती है । शय्या उसको ऐसी कटु लगती थी मानो किसी ने किवाच बिछा दिए हो । चाँद, चन्दन और शीतल वस्त्र सब उसको दह रहे थे । इस प्रकार उसके शरीर को गम्भीर विरह जला रहा था । उसकी रात्रि कल्प के समान वढ गई । क्षण बीतती रात युग-युग बीतती सी लगती थी । वह रात्रि से बीन लेकर बैठती कदाचित वह रात्रि को मन बहलाकर काट दे किन्तु फल विपरीत हो जाता था । चन्द्रमा के वाहन हिरन वह-(बीन सुनने मे तल्लीन हो जाने के कारण) रुक जाते थे । जिससे रात्रि नही व्यतीत होती थी । तब बेचारी वह धन्या सिंह का चित्र बनाने लगती थी (जिससे मृग डरकर भागने लगते थे और रात्रि व्यतीत हो जाती थी) । इसी व्यथा मे रात गुजर जाया करती थी । वह कमल का रस लेने भ्रमर न जाने कहाँ है । वह इस प्रकार मुझ तक झपट कर क्यो नही आता है जिस प्रकार बाज कबूतर पर झपट कर आता है ।

वह स्त्री पतिंगा बनकर उस विरह की दीप शिखा में जलना चाहती है । हे प्रियतम ! तुम मुझे भृंगी रूप बनाने के लिए आइए और जलते शरीर को चन्दन लगाकर शीतल करिए ।

टिप्पणी—पदुमावती तेहि जोग संजोगा—इसका अर्थ दो प्रकार से कर सकते हैं। एक तो ऊपर दिया जा चुका है और दूसरा इस प्रकार कर सकते हैं—पदमावती ने उसके संयोग की भावना की। **गहै बीन······ओनाई**—यहाँ विषादन अलंकार है। वांछित अर्थ के विरुद्ध फल प्राप्त होने के वर्णन को विषादन अलंकार कहते है। नायिका वीना तो हाथ मे इसीलिए लेती है कि रात व्यतीत हो जाय किन्तु फल विपरीत होता है। रात्रि बढ़ जाती है।

यहाँ पर विषादन अलंकार से कवि ने यह भी व्यंजित किया है कि नायिका संगीत-शास्त्र में परम निपुण है। जब वह मन बहलाने के लिए बीन बजाती है तब भी उसमें इतनी मधुर स्वरलहरी निकलती है कि चन्द्रमा के वाहन मृग भी मुग्ध हो जाते है। यह व्यंग्यार्थ वस्तु-रूप है। अतः यहाँ कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अलंकार से वस्तुव्यंग्य है।

पुनि धनि सिंह उरेहै लागै—वाच्यार्थ है कि तब स्त्री सिंह का चित्र बनाने लगती है। तात्पर्य यह है कि सिह का चित्र देखकर शशिवाहन मृग भय से भागने लगते है और शशि के रथ को भगा ले जाते है। अतः यहाँ पर द्वितीय पर्यायोक्ति अलंकार है। यहाँ पर यह भी व्यंग्य है कि नायिका चित्रकला में भी बहुत निपुण है। वह वस्तु रूप व्यंग्य द्वितीय पर्यायोक्तिजन्य है।

यह कल्पना परम्परागत है। सूर में भी इस कल्पना का चित्र मिलता है—

दूर करहु बीना को धरिबो,
मोहे मृग नाहिन रथ हाक्यो नाहिन होत चन्द को ढरिबो,
मन राखन को बीन लियो मृग थाके उडपति न चरै,
अति आतुर ह्वै सिंह लिख्यौ कर जेहि भामिनी न टरै॥

कहाँ सो······भँवर लेपा—यहाँ पर कवि ने 'सो' में पदगत अर्थान्तर संक्रमित वाच्यध्वनि के सहारे रतनसेन की रसिकता की व्यंजना की है और भंवर और कंवल में अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि है। इनका लक्षण लक्षणागत अर्थ है प्रेमी रतनसेन और प्रेमिका पदमावती।

आय परहु होइ घिरिनि परेवा—यहाँ पर लक्ष्योपमा अलंकार है।

सो धनि विरह पतंग होइ जरा चहै तेहि दीप—'सो' मे संवृत्तिवक्रता है। 'विरह पतंग होइ' में लक्ष्योपमा है।

जरा चहै तेहि दीप—उस रूप दीप में जलना चाहती है। यहाँ पर केवल दीप-रूप उपमा कथन किए जाने के कारण रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

कंत न आव भिरिंग होई—यहाँ पर लक्ष्योपमा अलंकार है।

विशेष—(क) यहाँ पर पदमावती का चित्र पूर्वानुरागरंजिता विप्रलब्धा नायिका का है।

(ख) अभिलाषामूलक विरह का अच्छा वर्णन किया गया है।

(ग) आचार्यों ने विप्रलम्भ के चार भेद माने है—पूर्व राग, मान, प्रवास और करुण ।

प्रस्तुत अवतरण में पूर्व रागजनित विप्रलम्भ है ।

उज्ज्वल नील मणि में पूर्वराग की परिभाषा निम्न प्रकार से दी गई है—

रतिः या संगमात पूर्वदर्शनश्रवणादिजा ।
तयोरुन्मीलति प्राज्ञै. पूर्वरागः स उच्यते ।।

(घ) नायिका कन्यका परकीया प्रेम पीड़िता है ।

(ङ) यहाँ पर विप्रलम्भ शृंगार का पूर्वानुराग अयोग अथवा अभिलाषा-मूलक विरह का मजिष्ठाराग की व्यजना की गई है । यह नायिका पक्षीय है। साहित्य दर्पणकार ने पूर्वानुराग के तीन भेद बताए है—नीली, कुसम्भ और मंजिष्ठा । जिसमे अधिक चमक-दमक नही होती किन्तु हृदय में सदैव विद्यमान रहता है । उसे नीली, जो बाहर भीतर एक समान होता है मंजिष्ठा और जो केवल बाह्य और क्षणिक होता है वह कुसुम्भ होता है ।

परी विरह बन जानहुं घेरी । अगम असूझ जहाॅ लगि हेरी ।।
चतुर दिसा चितवै जनु भूली । सो बन कहँ जहँ मालति फूली ।।
कॅवल भौर ओहिवन पावै । को मिलाइ तन-तपनि बुझावै ।।
अंग अनल अस कँवल सरीरा । हिय भा पियर कहै पर-पीरा ।।
चहै दरस, रवि कीन्ह विगासू । भौंर-दीठि मनो लागि अकासू ।।
पूंछै धाय, बारि कछु बाता । तुइँ जस कँवल फूल रंग राता ।।
केसर वरन हिया भा तोरा । मानहुं मनहि भएउ किछु भोरा ।।
पौन न पावै संचरै, भौर न तहाँ वईठ ।
भूलि कुरंगिनि कस भई, जानु सिघ तुई डीठ ।।२।।

[इसमे भी पदमावती के विरहिणी रूप का ही चित्र प्रस्तुत किया गया है ।]

पदमावती, ऐसी लगती थी मानो कि विरहरूपी वन मे फँस गई हो । जहाँ तक दृष्टि फेंकती थी वह वन अगम्य और असूझ जान पड़ता था । भूली हुई सी वह चारो दिशाओ मे देखती थी और कहती थी कि वह वन कहाँ है जिसमे मालती फूलती है । कमल अपने भौरे को उसी वन मे पाएगा । वह कौन है जो मुझे अपने प्रियतम से मिलाकर शरीर की ज्वाला बुझायेगा । कमल रूपी पदमावती के शरीर के अंगो में जैसे अग्नि प्रज्वलित थी । प्रेम की पीड़ा से उनका हृदय पीला पड़ गया था । धाय पदमावती से पूछती थी हे बाले ! बता क्या बात है । तू कमल की कला के समान लाल रंग की थी किन्तु अब तेरा हृदय केसर के वर्ण की भाँति पीला पड़ गया है । ऐसा लगता है कि तेरे मन में कुछ भ्रम हुआ है ।

जहाँ हवा नही जाने पाती। भौंरे जहाँ प्रवेश नही करते वहाँ रहकर भी तू भूली हुई हिरनी कैसे हो रही है। ऐसा लगता है कि उसने कही सिंह देख लिया है।

टिप्पणी—परी विरह······घेरी—यहाँ रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकार है।

सो वन कवन······फूली—वह स्थान कौन सा है जहाँ मालती रूपी हमारी सौत प्रफुल्लित रहती है। यहाँ रूपकातिशयोक्ति से कवि ने यह व्यंजित करने की चेष्टा की है। भ्रमर रूपी मेरा प्रेमी किसी मालती रूपी सौत के कांटों रूपी इन्द्र-जाल में फँसा है जिससे मुझे विरहवन मे रहना पड़ रहा है। अतः यहाँ पर कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अलंकार से वस्तुव्यंग्य है।

कंवल भंवर ओहि बन पावै—अर्थ है मै पद्म रूपी पदमावती भ्रमररूपी रतनसेन को वही पा सकती हूँ। यहाँ रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

अंग अनल अस कमल शरीरा—अर्थ है कि मुझ कंवल रूप पदमावती के अंग अग्नि जैसे थे अर्थात् अग्नि के समान प्रज्वलित थे। यहाँ पर उपमा अलंकार के द्वारा कवि ने विरहाधिक्य व्यंजित किया है। अतः यहाँ कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अलंकार से वस्तुव्यंग्य है।

हिय भा पियर प्रेम की पीरा—यहाँ हेतु अलंकार है। हेतु अलंकार के द्वारा विरहाधिक्यजनित कृशताधिक्य व्यंजित है। अतः यहाँ पर कवि प्रौढोक्ति सिद्ध अलंकार से वस्तुव्यंग्य है।

चहे दरस रवि······प्रकासू—कंवल रूपी पदमावती सूर्य रूपी रतनसेन के दर्शन से वह विकसित होना चाहती है। इसीलिए उसकी काली पुतलियों वाली भ्रमर रूप दृष्टि सूर्यरूपी रतनसेन की प्रतीक्षा में शून्य में लगी हुई है। यहाँ पर भी रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

केसर वरन······तोरा—कवि की व्यंजना है कि मालूम होता है कि तू किसी के प्रेम में फँस गई जिसके विरह के कारण तू पीली पड़ गई है। मिलन न होने से व्याकुल है। यहाँ कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अलंकार से वस्तुव्यंग्य है।

मानहु मनहि भएउ किछु भोरा—वाच्यार्थ है, मालूम होता है मन में कोई भ्रम हो गया है। इसमे उत्प्रेक्षा अलंकार है। इस उत्प्रेक्षा अलंकार से उपमा अलंकार व्यंग्य है। कवि यह व्यंजित करना चाहता है कि तेरे मन में किसी परदेसी के प्रति प्रेम जगा है जिसकी प्राप्ति कठिन होने से तेरा मन भ्रमित हो रहा है। अतः यहाँ पर कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अलंकार से अलंकारव्यंग्य है।

भूलि······भई—तू भूली हुई हिरनी के समान कैसे है। इस उपमा अलंकार से कवि ने यह व्यंजित किया है कि नायिका न मालूम किसके प्रेम मे फँसने के कारण ज्ञातयौवना मुग्धा होने से संकुचित सी डरी सी हो रही है। यह व्यंजना वस्तुरूप है। अतः यहाँ कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अलंकार से वस्तुव्यंग्य है।

मनहु सिंह तुइ दीठ—वाच्यार्थ है, मानो कि तुमने सिंह देख लिया है। व्यंग्यार्थ है कि तू किसी सिंह जैसे पराक्रमी पुरुष को देखकर प्रणयाभिभूत हो गई। इसी कारण खोई-खोई सी दिखाई पड़ रही है। अतः यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलंकार से वस्तुव्यंग्य है।

धाय ! सिघ वरु खातेउ मारी। की तसि रहति अही जसि बारी ॥
जोवन सुनेउँ की नवल वसंतू। तेहि बन परेउं हस्ति मैमंतू ॥
अब जोबन-बारी को राखा। कुँजर-विरह विधंसै साखा ॥
मै जानेउँ जोबन रस भोगू। जोबन कठिन संताप वियोगू ॥
जीवन गरुअ अपेल पहारू। सहि न जाइ जोबन कर भारू ॥
जोबन अस मैमंत न कोई। नवै हस्ति जो अंकुस होई ॥
जोबन भर भादौ जस गंगा। लहरै देइ, समाइ न अंगा ॥
परिउँ अथाह, धाय हौं जोबन उदधि गम्भीर।
तेहि चितवौ चारिहु दिसि जो गहि लावै तीर ॥३॥

[इस अवतरण मे कवि ने नायिका के मुख से उसकी काम प्रताड़िता अवस्था का चित्रण कराया है।]

प्रत्युत्तर मे नायिका कहती है—हे धाय ! कितना अच्छा होता कि यह सिंह (जिसकी ऊपर धाय ने चर्चा की है) मारकर खा गया होता या फिर मैं अज्ञात यौवना ही रहती। मैने सुना था कि यौवन नए वसन्त के समान रमणीय होता है किन्तु दुःख है कि मेरे उस नवल वसन्तरूप यौवन पर मदन रूपी मदमस्त हाथी ने आक्रमण कर दिया है। अब यौवन रूपी वाटिका की रक्षा कौन करे। विरह रूपी हाथी इसकी शाखाओ को तोड़े डालता है। मै समझी थी यौवन मे रस का भोग मिलता है किन्तु यौवन वियोग का कठिन सन्ताप भुगतना पड़ता है। यौवन पर्वत के समान अदृश्य और भारी है। उसे कोई टाल नही सकता। यौवन का बोझा सहा नही जाता। यौवन जैसा उन्मत्त कोई नही होता। अंकुश से तो हाथी भी नबाया जा सकता है। व्यजना है कि वह किसी प्रकार वश में नही आता, यौवन ऐसा उमड़ रहा है जैसा भादो मे गंगा भरी रहती है। वह लहरें देता है और अंगों में नहीं समाता।

हे धाय ! मै यौवन के अथाह और गम्भीर सागर में डूब रही हूँ। मैं चारों ओर उसको देख रही हूँ जो मेरी बाँह पकड़कर इसके पार लगा दे।

टिप्पणी—जीवन गरुअ अपेल पहारू—यहाँ लक्ष्योपमा अलंकार है।

सहि न जाय जोवन करि भारू—यहाँ पर उपचार वक्रता है।

जीवन······होई—यहाँ पर व्यंग्यार्थ है कि यौवन ऐसा उन्मत्त होता है कि वह किसी भी प्रकार से वश मे नही आता है। यह व्यंजना वस्तुरूप है।

योवन······अंगा—यहाँ पर कवि ने उपमा अलकार से यौवन की अतिशयता तरलता एवं उन्मत्तता व्यंजित की है। अतः यहाँ कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अलंकार से वस्तुध्वनि है।

तेहि चितवौ······तेहि—व्यंजना है कि मैं अपने उस जीवन साथी पति की खोज मे हूँ। हमारे उमड़ते हुए यौवन सुहाग देकर शान्त और संयमित कर दें। तेहि मे संवृत्ति वक्रता है।

पदमावति! तुंइँ समुद सयानी। तोहि सर समुद न पूजै रानी॥
नदी समाँहि समुद महँ आई। समुद डोलि कहु कहाँ समाई॥
अवही कँवल-करी हिय तोरा। आइहि भौर जोतो कँह जोरा॥
जोबन तुरी हाथ गहि लीजिय। जहाँ जाइ तहँ जाइ न दीजिय॥
जोवन जोर मात गज अहै। गहहु ज्ञान आँकुस जिमि रहै॥
अबहि बारि तुहँ पेम न खेला। का जानसि कस होइ दुहेला॥
गगन दीठि करु नाइ तराही। सुरुज देखु कर आवै नाहीं॥
जब लगि पीउ मिलै नहि, साधु पेम कै पीर।
जैसे सीप सेवाति कहँ, तपै समुद मँझ नीर॥४॥

[इस अवतरण में धाय का प्रत्युत्तर और उपदेश उल्लिखित।]

धाय कहती है—हे पदमावती तू समझदार और चतुर है। हे रानी! समुद्र भी तेरी समता नही कर सकता है।'अन्य नदियाँ समुद्र मे जाकर समा जाती है किन्तु यदि समुद्र अपनी मर्यादा छोड़ दे तो किसमे समाएगा। अभी तेरा हृदय कंवल कली के समान है। निश्चय ही तेरी जोड़ी का भौरा तेरा रसपान करने आएगा। यौवन रूपी तुरंग की वाण हाथ में रखनी चाहिए। उसे उसकी इच्छानुसार नही विचरण करने देना चाहिए। जो यौवन मतवाले हाथी के समान है उसे ज्ञान से ऐसे वश में करो जैसे अंकुश हाथी को करता है। तू अभी वाला है। तूने प्रेम का खेल नही खेला है। इसलिए तू इस खेल का रहस्य नही जानती कि वह कितना कठिन है और जो दृष्टि है उसे नीचे कर ले। समझ ले कि सूर्य देखने मात्र से पकड़ में नही आ सकता।

जब तक तेरा विवाह होता है तब तक तू प्रेम की पीर को ठीक उसी प्रकार सहन कर जैसे सीपी समुद्र में स्वाति के लिए तप करती है।

टिप्पणी—तोहि सरि······यानी—पदमावती ने ऊपर कहा है कि उसका यौवन समुद्र के समान है। इसके प्रत्युत्तर में धाय कहती है कि हे रानी तेरी समता समुद्र नही कर सकता क्योकि समुद्र में नदियाँ समा जाती है किन्तु समुद्र स्वयं मर्यादित रहता है। व्यंजना है कि साधारण बालाएँ तो तुम्हारे आदर्श का अनुकरण

करेंगी किन्तु तू ही यदि मर्यादा छोड़ देगी तो वे बेचारी किसका आदर्श सामने रखेंगी। किन्तु समुद्र का जल खारा होता है किन्तु तू बड़ी मधुर है। अतः समुद्र भी तेरी बराबरी नहीं कर सकता। यहाँ पर स्वतः सम्भवी वस्तु से व्यतिरेक अलंकार व्यंग्य है।

मेरी समझ मे 'न' पाठ के स्थान पर 'जु' पाठ होना चाहिए 'तोहि सरि समुद जु पूजै रानी'।

अबहि कंवल करी हिय तोरा—यहाँ लक्ष्योपमा अलंकार है। इस लक्ष्योपमा से कवि ने पदमावती की कोमलता, सुकुमारता तथा मुग्धत्व भाव व्यंजित किया है। अतः यहाँ कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अलंकार से वस्तुव्यंग्य है।

जोबन तुरी हाथ गहि लीजै—यौवन रूपी तुरंग की बागडोर हाथ में ले लो। अभीष्टार्थ है कि अपने यौवन को मर्यादित किए रहो। यहाँ रूपक अलंकार से वस्तुव्यंग्य है।

जोबन जोर मात गज अहै—यहाँ लक्ष्योपमा अलंकार है।

गगन दीठि करु नाइ तराहीं—पदमावती ने ऊपर कहा था कि 'भौंर दीठि मनो लाग अकासू' उसके प्रत्युत्तर मे धाय कह रही है कि हे बाले ! तुझे अपनी दृष्टि को जो ऊर्ध्वोन्मुखी है अधोमुखी कर लेनी चाहिए। आकाश का सूर्य देखने से मिल नही सकता। व्यजना है कि तू अभी कुँवारी बाला है तेरी दृष्टि में लज्जा और सकोच होना चाहिए। सूर्य के सदृश किसी पर-पुरुष को देखने से वह मिल नही सकता। अतः तुम्हे अपनी मर्यादा और लज्जा का परित्याग नही करना चाहिए और जब विवाह न हो तब पर-पुरुष की ओर चाहे वह सूर्य के समान ही महान् हो देखना भी नही चाहिए। यहाँ स्वतः सिद्धवस्तु से वस्तुध्वनि है।

जब लगि······नीर—यहाँ पर उपमा अलंकार है।

दहै धाय ! जोबन एहि जीऊ। जानहुं परा अगिनि महँ घीऊ ॥
करवत सहौ होत दुइ आधा। सहि न जाइ जोबन कै दाधा ॥
बिरह समुद्र भरा असँभारा। भौर मेलि जिउ लहरिन्ह मारा ॥
बिरह-नाग होइ सिर चढ़ डसा। होई अगिनि चन्दन मँह बसा ॥
जोबन-पंखी, बिरह बियाधू। केहरि भएउ कुरंगिनि-खाधू ॥
कनक-पानि कित जोबन कीन्हा। औरन कठिन बिरह ओहि दीन्हा ॥
जोबन-जलहिं बिरह मसि छूआ। फूलहि भौर, फरहि भा सूआ ॥
जोबन चाँद ऊआ जस, बिरह भएउ संग राहु।
घटतहि घटत छीन भइ, कहै न पारौ काहु ॥५॥

[इस अवतरण मे पदमावती ने धाय से अपनी असह्य विरह-वेदना का वर्णन किया है।]

हे धाया! यौवन हमारे जीव को जलाए डाल रहा है। उसने मेरी वासना को ऐसे ही प्रज्वलित कर दिया है जैसे अग्नि में घी डालने से वह अधिक प्रज्वलित हो उठती है। मैं कर-पत्र से अपने को दो टुकड़ों में चिरा सकती हूँ, परन्तु यौवन की दाह सहन नही होती। विरह उमड़ते हुए समुद्र की भाँति सहन नहीं हो रहा है। वह मन को भँवर में डालकर लहरों से मारता है। विरह रूपी नाग ने सिर पर चढ़ कर डस लिया है। मैं जो चन्दन लगाती हूँ उससे विरह मानो आग वनकर बस गया है। यौवन पक्षी है, विरह व्याध है अथवा विरह यौवनावस्था रूपी मृगी को खाने वाला सिंह है। कठिन विरहाग्नि यौवन रूपी सोने की शुद्धि क्यों करता है और क्यों शरीर को औंटाता या जलाता है। यौवन का जल, विरह की स्याही छूकर काला हो जाता है। जैसे भौरा फूल का रस चूसता है, और तोता उसके फल को नष्ट कर देता है। उसी प्रकार विरह यौवन के रस को चूस लेता है और उसे नष्ट कर डालता है।

जैसे ही यौवन के चन्द्रमा का उदय हुआ वैसे ही उसे ग्रसने के लिए विरह का राहु संग में लग गया। इसी से वह घटते-घटते एकदम क्षीण हो गया। उसकी वेदना सर्वथा अनिर्वचनीय है।

टिप्पणी—पहली पंक्ति का पाठान्तर डा० अग्रवाल ने इस प्रकार दिया है—

'दहै धाइ जोबन जो ओऊ होय न विरह अगिनि मह घीऊ'

डाक्टर साहब ने इसका अर्थ इस प्रकार किया है—'हे धाय! विरह की अग्नि यौवन और मन दोनों को जलाती है, उसमे घी नही होता फिर भी धधकती है।

डा० अग्रवाल का पाठ अधिक सुन्दर प्रतीत होता है।

[1]**विरह नाग होई सिर चढ़ डसा**—यहाँ पर रूपक अलंकार है। इस अलंकार से कवि ने विरह की विषाक्तता व्यंजित की है। अतः यहाँ कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अलंकार से वस्तुव्यंग्य है।

जोबन पंखी विरह वियाघू—यहाँ पर लक्ष्योपमा है। इस लक्ष्योपमा से कवि ने यह व्यजित किया है कि विरह यौवन का शत्रु होता है। शत्रुता की भावना ही यहाँ व्यंग्य है। अतः लक्ष्योपमा से वस्तुव्यंग्य है।

केहरि भएउ कुरंगिनि खाधू—यहाँ पर लक्ष्योपमा से विरह की भयानकता और कठोरता रूप वस्तु ही व्यग्य है। अतः उपमा अलंकार से वस्तुव्यंग्य है।

जोबन······सूआ—यहाँ पर रूपक और गम्योपमा का संकर है।

जोबन चांद······राहू—यहाँ पर रूपक अलंकार है।

नैन ज्यों चक्र फिरै चहुं ओरा। बरजै धाय समांहि न कोरा॥
कहेसि पेम जौ उपना, वारी। बाँधु सत्त, मन डोलन भारी॥

---

१. विरह सुभर समुंद असँभारा—यहाँ पर लक्ष्योपमा है।

जेहि जिउ महँ होइ सत्त पहारू । परै पहार न बाँकै बारू ॥
सती जो जरै पेमसत लागी । जौ सत हिये तौ सीतल आगी ॥
जोबन-चाँद जो चौदस-करा । बिरह के चिनगी सो पुनि जरा ॥
पौन बाँध सो जोगी जती । काम बाँध सो कामिनी सती ॥
आव बसंत फूल फुलवारी । देव बार सब जैहैं बारी ॥
तुम्ह पुनि जाउ बसंत लेइ, पूजि मनावहु देव ।
जीउ पाइ जग जनम है, पीउ पाइ कै सेव ॥६॥

[इस अवतरण में धाय ने पदमावती को जो उपदेश दिया है उसी की प्रतिष्ठा की गई है ।]

नेत्र चक्र की भाँति चारो ओर चलायमान रहते हैं । धाय उसको बरजती है कि देख अपने नेत्र सयमित करके रख किन्तु वे अपने कोर मे नही समाते । उसने समझाया—हे बाले! यद्यपि तू प्रणय प्रताड़िता है किन्तु फिर भी तुझे अपने को चंचल नही करना चाहिए और सत स्थिर रखना चाहिए । जिस मन का पहरेदार सत्य होता है उस पर चाहे पहाड़ ही गिरे किन्तु बाल बाका नही होता । जो सती प्रेम मे अपने प्रियतम के लिए जलती है और उसके हृदय मे सत है तो उसे वह आग भी शीतल लगती है । जो यौवन रूपी चन्द्रमा चौदह कलाओ से पूर्ण होता है वह मानो विरह की चिनगारी पड़ने से जलकर घटने लगता है । जो प्राणवायु को साधता है वही योगी है । जो काम को वश मे कर लेती है वही स्त्री सती है । वह देखो वसन्त आया है और फुलवाड़ी फूली है । सब बालाएँ देवता के द्वार पर पूजन करने जाएँगी ।

टिप्पणी—जेहि जिय······बारू—वाच्यार्थ है कि जिसके मन का पहरेदार सत्य होता है उसका कोई बाल बाँका भी नही कर सकता । व्यंजना है कि जो प्रेम सत्य पर आधारित होता है, वासना पर आधारित नही होता, उसमे कभी क्षति नही होती ।

जोबन चांद······जरा—यहाँ पर रूपक अलंकार है । कवि यह व्यंजित करना चाहता है कि विरह यौवन के सौन्दर्य को विकसित कर देता है ।

इस अवतरण मे धाय से कवि ने जो उपदेश दिलवाए है वे शाश्वत है और सार्वभौमिक है ।

जब लगि अवधि आइ नियराई । दिन जुग-जुग बिरहिनि कह जाई ॥
भूख-नींद निसि दिन गै दोऊ । हियै मारि जस कलपै कोऊ ॥
रोवँ रोवँ जनु लागहि चाँटे । सुत सूत बेधहिं जनु काँटे ॥
दगधि कराह जरै जस घीऊ । बेगि न आव मलयगिरि पीऊ ॥
कौन देव कहँ जाइ कै परसौ । जेहि सुमेरु हिय लाइय कर सौ ॥

गुपुति जो फूलि सांस परगटै । अब होइ सुमर दर्हाहं हम्ह घटै ॥
भा सँजोग जो रे भा जरना । भोगहि भए भोगि का करना ॥
जोवन चंचल ढीठ है, करै निकाजै काज ।
धनि कुलवंति जो कुल धरै, कै जोबन मन लाज ॥७॥

[इस अवतरण में धाय ने पदमावती की विरह भावना की मार्मिक अभिव्यक्ति की है।]

वसन्त-पूजा की अवधि निकट आने तक विरहिणी का एक-एक दिन कल्प के समान बीतने लगा। दिन में भूख और रात में नीद दोनों चली गईं और ऐसा लगने लगा मानो पदमावती का हृदय कलप रहा था। उसके रोम-रोम मे मानो चोटे विध गए थे और प्रत्येक रोम-रोम में मानो विष के कोटे लग गए थे। जैसे कढ़ाह में भस्म होकर घी जलता है उसी प्रकार पदमावती का जी जल रहा है। मलयानिल रूपी पति शीघ्र क्यों नही आते। किस देवता के जाकर चरण स्पर्श करूँ जिससे कि वह पति रूपी सुमेरु का आलिंगन करा सके। जो पुष्प रूपी भाव गुप्त थे वे उच्छ्वासों के कारण प्रगट हो रहे है। वे पूरे भरकर मानो घटना चाहते है। विवाह योग्य होने पर यदि इस प्रकार तड़पना पड़ता है तो फिर कौन भोगी बनकर भोग करना चाहेगा।

यौवन चंचल और ढीठ है। यह बेकाम का काम करता रहता है। यौवन में जो मन मे लज्जा धारण कर अपने कुल की मर्यादा की रक्षा करती है वह कुलवन्ती स्त्री धन्य है।

टिप्पणी—दिन जुग······जाई—यहाँ पर अतिशयोक्ति अलंकार है। इस अतिशयोक्ति से विरहाधिक्य रूप वस्तु की व्यंजना की गई है।

नींद भूख······कोऊ—फारसी मे विरह की नौ दशाएँ बताई गई है। उनमे से यहाँ नीदे हराम, कमखुर्दनो दशाएँ वर्णित है।

यहाँ पर इन्ही अवस्थाओ की व्यंजना की है।

कौन देव कंह जाय परसौं—यहाँ पर देव के चरण का उपादान किया गया है। वह कहता है कि किस देवता के चरण जाकर स्पर्श करूँ अर्थात् किसकी उपासना और मनौती करूँ।

गुपुति जो फल साँसहि परगटे—जो प्रणाय भावरूपी फल अभी तक प्रगट नही हुए थे वे उच्छ्वासो से प्रगट हो गए। यही फारसी काव्य में निर्दिष्ट आहे संर्दा वाली विरह की अवस्था की व्यंजना की गई है।

अब होइ सुमर चहंहि फिर घटे—वे प्रेमभाव खूब सुभर होकर अब विरह के ताप से सूख जाना चाहते हैं।

जोवन चंचल ढीठ है—यहाँ पर उपचार वक्रता है।

कुलधरै—यहाँ पर उपादान लक्षणा है। अर्थ होगा वे कुल की मर्यादा रखती हैं।

पदमावती सुआ भेंट खण्ड

तेहि वियोग हीरामन आवा। पदमावति जानहु जिउ पावा॥
कंठ लाइ सूआ सौ रोई। अधिक मोह जौ मिलै विछोई॥
आगि उठे दुख हिये गँभीरू। नैनहि आइ चुवा होइ नीरू॥
रही रोइ जब पदमिनि रानी। हँसि पूँछहिं सब सखी सयानी॥
मिले रहस भा चाहिय दूना। कित रोइय जौ मिलै विछूना॥
तेहि क उतर पदमावति कहा। विछुरन-दुख जो हिये भरि रहा॥
मिलत हिए आएउ सुख भरा। वह दु.ख नैन-नीर होइ ढरा॥
विछुरंता जब भेंटै, सो जानै जेहि नेह।
सुक्ख-सुहेला उग्गवै, दु:ख झरै जिमि मेह॥१॥

[इस अवतरण मे पदमावती का हीरामन से पुर्नमिलाप वर्णित किया गया है।]

इसी वियोग की अवस्था मे हीरामन आ गया। पद्मावती को ऐसा लगा मानो कि जीवन मिल गया है। वह तोते को कण्ठ लगाकर खूब रोई। यदि विछुडा हुआ मिल जाता है तो मोह बढ़ जाता है। हृदय में जो दु.ख रूपी गम्भीर अग्नि थी वह बुझ गई। वह भाप बनकर नेत्रो मे आकर जल बन कर चू गया। जब पदमावती रो रही थी तो [सखियों ने पूछा विछुडे हुए को मिलकर रोना कैसे आता है। इसके उत्तर में पदमावती ने कहा विछुड़न को जो दुःख हृदय भरा हुआ था उसे सुख ने जो मिलन पर हुआ था बाहर निकाल दिया।

बिछुड़े हुए जब मिलते हैं तो उनकी अनुभूतियों को वह जानता है जिसे नेह है। सुख सुहेल उदय होता है और दु:ख वर्षा की तरह फटने लगता है।

टिप्पणी—इस अवतरण में कवि ने दो विछुड़े प्रेमियों की मिलनदशा के मनोविज्ञान का याथतथ्य चित्र खीचा है।

सुख सहेला उगवै............मेह—यहाँ पर हेतु अलंकार है। उसमें उपमा का संकर हो गया है।

पुनि रानी हँसि कूसल पूँछा। कित गवनेहु पींजर कै छूंछा॥
रानी! तुम्ह जुग जुग सुख पाटू। छाज न पखिहि पीजर ठाटू॥
जब भा पंख कहाँ थिर रहना। चाहै उड़ा पंखि जो डहना॥
पीजर महँ जो परेवा घेरा। आइ मजारि कीन्ह तहँ फेरा॥

दिन एक आइ हाथ पै मेला। तेहि डर बनोबास कहँ खेला॥
तहाँ वियाध आइ नर साधा। छूटि न पाव मीचु कर बाँधा॥
वै धरि बेचा बाम्हन हाथा। जंबू दीप गएऊँ तेहि साथा॥
तहाँ चित्र चितउर गढ़, चित्र सेन कर राज।
टीका दीन्ह पुत्र कहँ, आपु लीन्ह सर साज॥२॥

[इस अवतरण में पदमावती और हीरामन का संलाप वर्णित है।]

रानी ने फिर हँसकर कुशल पूछी और पूछा कि तुम पिंजड़ा खाली करके क्यो चले गए थे। तोते ने कहा जो पक्षी है उसे पिंजड़े का ठाठ शोभा नही देता। जब पंख निकल आते है तो फिर स्थिर होकर रहना होता है। जैसे ही डैने होते हैं वैसे ही पक्षी उड़ना चाहता है। तुमने पक्षी को पिंजड़े मे बन्द कर दिया था इसीलिए बिल्ली ने चक्कर लगाया। वह एक दिन अवश्य मेरे ऊपर हाथ छोड़ेगी इसी डर से मैं बनवास को चला गया। वहाँ पर भी बहेलिए ने लग्गी लगाई। मृत्यु के चुंगल में फंसा हुआ मैं छूट नही पाया। तब उसने पकड़कर ब्राह्मण के हाथ वेच दिया। उसके साथ मैं जम्वू द्वीप गया।

वहाँ चित्तौर का विचित्र गढ़ है। वहाँ चित्र सेन नामक राजा राज्य करता था। फिर उसने अपने पुत्र का राज्याभिषेक कर दिया और स्वयं शिवलोक चला गया।

टिप्पणी—चित्रगढ़—चित्तौरगढ़ के लिए चित्रगढ़ शब्द का प्रयोग किया गया है। कवि ने इस शब्द के प्रयोग से गढ की विचित्रता व्यंजित की है। इसीलिए यहाँ पर शब्द-शक्ति उद्भव वस्तु-ध्वनि है।

आप लीन्ह सर साज—लक्षण-लक्षणा से कवि ने अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि रूप 'मृत्यु को प्राप्त हुआ' इस अर्थ को प्रकट किया है।

बैठ जो राज पिता के ठाऊँ। राजा रतनसेन ओहि नाऊँ॥
वरनौ काह देस मनियारा। जहँ अस नग उपना उजियारा॥
धनि माता औ पिता बाखाना। जेहि के बँस अंस अस आना॥
लछन वतीसौ कुल निरमला। वरनि न जाइ रूप औ कला॥
वे हौ लीन्ह अहा अस भागू। चाहे सोना मिला सुहागू॥
सो नग देखि हींछा भइ मोरी। है यह रतन पदारथ जोरी॥
है ससि जोग इहै पै भानू। तहाँ तुम्हार मैं कीन्ह बखानू॥
कहाँ रतन रतनागर, कंचन कहाँ सुमेरु।
दैव जो जोरी दुहुं लिखी, मिलै सो कौनेहु फेरु॥३॥

[इस अवतरण में कवि ने हीरामन के मुख से राजा रतनसेन का परिचय कराया है।]

पिता के स्थान पर जो राजा सिंहासन पर बैठा उसका नाम रतनसेन था। उस सुन्दर देश का क्या वर्णन करूँ जहाँ रतनसेन जैसा रत्न उत्पन्न होकर प्रकाशित हो रहा है। वह माता और पिता धन्य है जिनके वंश मे ऐसा पुत्र उत्पन्न हुआ। वह बत्तीसों लक्षणो से युक्त है। उसका कुल निर्मल है। उसके रूप और गुणो का वर्णन नही किया जा सकता। मेरा ऐसा सौभाग्य था कि उसने मुझे क्रय कर लिया। सम्भवत: ईश्वर की इच्छा है कि सोने से सुहागा मिले। उस रत्न को देखकर मेरी इच्छा हुई कि यह रतन पदमावती का वर होने योग्य है। यह सूर्य चन्द्रमा के योग्य है यह सोच वहाँ मैंने तुम्हारे रूप का वर्णन किया।

कहा रत्नाकर (समुद्र मे होने वाला) और कहा सुमेरु मे होने वाला स्वर्ण। भगवान यदि दोनो की जोड़ी लिखी है तो किसी-न-किसी प्रकार से रत्न का कचन से मिलन हो ही जाएगा।

टिप्पणी—मनियारा—यहाँ पर विशेषणवक्रता है।

उजियारा—यहां पर विशेषणवक्रता है।

अस—यहाँ पर अभिधामूला शाब्दी व्यंजना है। अंश शब्द का पुत्र अर्थ संयोग के कारण हो गया है। बस के संयोग मे अंश का अर्थ पुत्र ही लिया जाएगा।

बत्तीस लक्षण—नाथपंथ में महापुरुषो के ३२ लक्षण इस प्रकार गिनाए गए है—(१) निरालम्ब (२) निर्भय (३) निर्वास (४) नि:शब्द (५) निर्मोह (६) निबन्ध (७) नि शंक (८) निर्विषय (९) सर्वांगी (१०) सावधान (११) सत्य (१२) सार-ग्राही (१३) नि प्रपञ्च (१४) निस्तरंक (१५) निर्द्वन्द्व (१६) निर्लेप (१७) अपाचक (१८) अवाच्छक (१९) अमान (२०) स्थिर (२१) सन्तोषी (२२) शुचि (२३) संयमी (२४) शान्त (२५) श्रोता (२६) सुहृत (२७) शीतल (२८) सुखद (२९) सुस्वभाव (३०) लय (३१) लक्ष्य (३२) ध्यान।

सिंहासन बत्तीसी मे राजा के ३२ लक्षण दूसरे प्रकार से व्यजित किए गए थे।

चाहै सोने मिला सुहागू—व्यंजना है रतनसेन और पद्मावती का परिणय सम्बन्ध होना चाहता है। यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है।

रतन पदारथ जोरी—यह रतनसेन पदार्थ रूप पद्मावती की जोड़ी है। यहाँ पर रतन और पदार्थ शब्दो मे रूढ़ि वैचित्र्य वक्रता है। रूढिवैचित्र्य वक्रता को समझाते हुए वक्रोक्ति जीवितकार ने लिखा है 'जहाँ लोकोतर तिरस्कार अथवा लोकोत्तर प्रशंसा के कथन करने के अभिप्राय से वाच्य अर्थ को रूढि शब्द से असम्भव अर्थ के अध्यारोप से युक्त अथवा किसी विद्यमान अर्थ के अतिशय के आरोप से युक्त रूप मे प्रतीत होती है तब वही रूढ़ि वैचित्र्य वक्रता होती है।" यही पर रतन और पदारथ शब्दो से लोकोत्तर प्रशसा की व्यंजना होती है। अतः यही पर रूढि वैचित्र्य वक्रता है। यहाँ इन शब्दो में शब्द-शक्ति उद्भव अनुरणन ध्वनि भी है।

है ससि जोग रहै पै भानू—कवि का अभीष्टार्थ है कि पद्मावती के योग्य यही वर है। यहाँ रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

कहीं रतन............सुमेरु—कवि की व्यंजना है कि जिस प्रकार समुद्र के रत्न और सुमेरु के कंचन का मिलना असम्भव होता है किन्तु फिर भी वे मिल जाते हैं। इसी प्रकार कहाँ चित्तौर का रतनसेन और कहाँ सिंहल की राजकुमारी पदमावती फिर भी दोनों का मिलन हो जाएगा। यहाँ पर काकु से उपमा अलंकार व्यंग्य है।

सुनत विरह चिनगी ओहि परी। रतन पाव जौं कंचन करी॥
कठिन पेम बिरहा दुःख भारी। राज छाँड़ि भा जोगि भिखारी॥
मालति लागि भौर जस होई। होइ बाउर निसरा बुधि खोई॥
कहेसि पतंग होइ धनि लेऊँ। सिघल दीप जाइ जिउ देऊँ॥
पुनि ओही कोउ न छाड़ अकेला। सोरह सहस कुँवर भए चेला॥
और गनै को संग सहाई। महादेव गढ़ मेला जाई॥
सूरुज पुरुष दरस के ताँई। चितवै चँद चकोर कै नांई॥
तुम्ह बारी रस जोग जेहि, कँवलहि जस अरघानि।
तस सूरुज परगास कै, भौर मिलाएउँ आनि॥४॥

[इस अवतरण मे हीरामन ने राजा रतनसेन की पद्मावती के लिए प्रणयानुभूति और विरहानुभूति की चर्चा की है।]

हीरामन पदमावती से कहता है कि तुम्हारे रूप की चर्चा सुनकर उसके हृदय में विरह की चिनगारी जल उठी। वह राज्य छोड़कर भिखारी योगी हो गया। जिस प्रकार मालती के लिए भौंरा व्याकुल होकर निकल पड़ता है उसी प्रकार वह सुध खो बावला होकर निकल पड़ा। उसने प्रतिज्ञा की कि मैं पतिंगा बनकर उस स्त्री को प्राप्त करूँगा या फिर सिंहल द्वीप में जाकर प्राण दे दूंगा। पर उसे किसी ने अकेला न आने दिया। सोलह हजार कुँवर उसके चेले हो गए। संग में और जो सहायक थे उनकी गिनती नही हो सकती। वह महादेव के मठ मे जा पहुँचा है। वह सूर्य के समान है, तुम पारस के सदृश हो। वह तुम्हारे दर्शनो के लिए ऐसा व्याकुल है जैसे चकोर चन्द्रमा के दर्शन के लिए उत्सुक होता है।

तुम बाला हो। तुम मे प्रेमरस का जन्म ऐसे ही स्वाभाविक है जैसे कमल में सुगन्धि। इसलिए मैंने सूर्य को प्रभावित किया और भौरे की भाँति तुम्हारा उससे मिलन करा दिया है।

टिप्पणी—रतन पाव जो कंचन करी—वाच्यार्थ है कि यदि रतनसेन को कंचन की कली मिले जिसमे वह फिट हो जाय इत्यादि। यहाँ पर 'रतन मे' शब्द शक्ति उद्‌भव अनुरणन ध्वनि है। रत्न अर्थ के अतिरिक्त यह शब्द रतनसेन की भी व्यंजना करता है।

कंचन करी मे रूपकातिशयोक्ति है इस उपमान से पदमावती उपमेय का कथन किया गया है :—

तुम वारी............आनि—यहाँ पर विम्वप्रतिविम्वोपमा अलंकार है। जहाँ उपमेय और उपमान के कहे हुए भिन्न-भिन्न धर्मो का परस्पर विम्व प्रतिविम्ब-भाव होता है वहाँ बिम्बप्रतिबिम्बोपमा होती है। जहाँ पर वाला को कमल की और प्रेमभाव को सुरभि की उपमा दी गई है जो सर्वथा विम्वप्रतिविम्व रूप है। जिस प्रकार सूर्य कमल को विकसित कर सुरभिपूर्ण वनाता है उसी प्रकार भौंरारूपी प्रेमी तुझे प्रेमभाव से पुलकित करेगा। यहाँ पर विम्वप्रतिविम्वभाव ही है।

हीरामन जो कही यह बाता। सनि के रतन पदारथ राता॥
जस सूरज देखे होइ ओपा। तस भा विरह कामदल कोपा॥
सुनि कै जोगी केर बखानू। पदमावति मन मा अभिमानू॥
कंचन करी काँचहि लोभा। जौ नग होइ पाव तव सोभा॥
कंचन जौ कसिए कै ताता। तब जानिय दहुं पीत कि राता॥
नग कर मरम सो जड़िया जाना। जड़ै जो अस नग देखि वखाना॥
को अब हाथ सिघ मुख घालै। को यह बात पिता सौ चालैं॥
सरग इंद्र डरि काँपै, वासुकि डरै पतार।
कहाँ सो अस बर प्रिथिमी, मोहि जोग संसार॥५॥

[हीरामन के मुख से रतनसेन में प्रेमोदय की वात सुनकर स्वयं भी तीव्र प्रणयानुभूति की। कवि ने इस अवतरण में उसी प्रणयानुभूति की अवस्था का चित्रण किया है।]

हीरामन ने जब यह बात कही तो रतनसेन रूपी रतन की वात सुनकर पदार्थ रूपी पदमावती प्रेमानुभूति से लाल हो गई। जैसे सूर्य के साक्षात्कार से हीरे मे नई क्रांति आ जाती है उसी प्रकार रतनसेन के आगमन से पदमावती का विरह तीव्र हो गया और कामाभिभूत हो गई। जोगी का वर्णन सुन पदमावती के मन मे अभि-मान हो गया। वह सोचने लगी कंचन कली मे काँच शोभा नही पाता वह तो तभी सुन्दर लगती है जवकि उसमे नग होता है। उसने फिर सोचा कि सोने को तपाकर ही कसौटी पर कसते हैं तब जाना जाता है वह पीला है या लाल है। नग के मर्म को जौहरी जानता है। उसकी दृष्टि मे जो रत्न योग्य होता है उसी को वह बहुमूल्य हीरे मे जड़ता है। कौन ऐसा है जो शेर के मुँह मे हाथ डालेगा। इस बात की चर्चा पिता के सम्मुख कौन करेगा।

मेरे पिता के भय से स्वर्ग मे इन्द्र काँपता है और पाताल मे वासुकी डरता है। पृथ्वी मे ऐसा वर कहाँ जो मेरे योग्य हो।

टिप्पणी—सुनि के रतन पदारथ राता—वाच्यार्थ है कि रतन की बात सुनकर हीरा लाल हो गया। रतन और पदारथ मे शब्दशक्ति उद्‌भव वस्तुध्वनि है। व्यंजना है कि रतनसेन की चर्चा सुनकर पदमावती प्रणयानुभूति और लज्जा से अरुणिम हो गई।

जस सूरज·········कोपा—यहाँ पर बिम्बप्रतिबिम्बोपमा अलकार है।

कंचन करी न काँचहि लोभा—वाच्यार्थ है कि कचन को कली की काँच का लोभ नही होता किन्तु यह कथन प्रस्तुत नही। अतः इसका बाध हो गया। लक्ष्यार्थ हुआ कि मुझ पद्‌मावती को (जो परम सुन्दरी है) रतनसेन का (जो कि काँच के समान मूल्यहीन है) आकर्षण नही है। यहाँ पर पदमावती का सौन्दर्यातिशय और रतनसेन का उसके उपयुक्त न होना ही प्रयोजन रूप व्यंग्य है। अतः अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि है।

को अब हाथ सिंह मुख घाले—लक्ष्यार्थ है कि अब हमारे पिता से हमारे विवाह की बात कौन करे। यहाँ पर पिता की कठोरता ही व्यंग्य है। अतः प्रयोजनवती लक्षण-लक्षणा और अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि है।

सरग·········पतार—यहाँ पर अतिशयोक्ति अलंकार से पितादि का प्रताप व्यंजित किया है। अतः कवि प्रौढ़ोक्तिसिद्ध अलंकार से वस्तुव्यंग्य है।

तू रानी ससि कंचन-करा। वह नग रतन सूर निरमरा॥
बिरह-बजागि बीच का कोई। आगि जो छुवै जाइ जरि सोई॥
आगि बुझाइ परे जल गाढ़ै। वह न बुझाइ आपुही बाढ़ै॥
विरह के आगि सूर जरि काँपा। रातिहु-दिवस जरै ओहि तापा॥
खिनहि सरग, खिन जाइ पतारा। थिर न रहै एहि आगि अपारा॥
धनि सो जीउ दगध इमि सहै। अकसर जरै, न दूसर कहै॥
सुलगि-सुलगि भीतर होइ सावाँ। परगट होइ न कहै दुःख नावाँ॥
काह कहौं हौं ओहि सौं, जेइ दुःख कीन्ह निमेट॥
तेहि दिन आगि करै वह (बाहर), जेहि दिन होइ सों भेट॥६॥

[इस अवतरण मे कवि ने रतनसेन का पद्‌मावती के सम्बन्धौचित्य एवं रतनसेन के विराट् विरह की व्याख्या की है।]

शुक ने कहा हे रानी। तू चन्द्रमा है, वह निर्मल सूर्य है। तू सोने की कली है तो तू उसमें जडने के योग्य माणिक्य है। विरह वज्राग्नि के रूप मे कौन आएगा और जो कोई आग को छुएगा वह जल जाएगा और आग जल मे डालने से बुझ जाती है किन्तु विरहाग्नि बुझती नही अपने आप बढ़ती नही। उस विरह की अग्नि मे सूर्य जलकर कांपने लगा है। वह रात दिन उसके ताप से जलता है। वह क्षण भर मे स्वर्ग जाता है और क्षण मे पाताल जाता है। वह जीव अन्य है जो इस प्रकार का

दग्धना सह लेता है। वह बराबर जलता है कि दूसरे से कहता तक नही है। वह अन्दर ही अन्दर सुलग कर श्याम हो जाता है। प्रत्यक्ष मे वह दुःख का नाम तक नही लेता।

उस रतनसेन के लिए मैं क्या कहूँ जिसने अपने लिए अमिट दुःख मोल लिया है। वह अग्नि उसी दिन बाहर होगी जिस दिन तुमसे भेंट होगी।

टिप्पणी—आग बुझाई········बाढ़ै—यहाँ व्यतिरेक अलंकार है।

विरह की······अपारा—यहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा अलंकार है।

धनि सो जीव—यहाँ 'सो' मे संवृत्तिवक्रता है।

विशेष—भझन ने इस विरहाग्नि का वर्णन भी लगभग ऐसे ही शब्दों में किया है—

समुदो जरी गगन सब जरा।
औ वासुकी जर नाऊँ बरा ॥

—मधुमालती

सुनि कै धनि 'जारी अस कया'। मन भा मयन, हिये भै मया ॥
देखौ जाइ जरै कस भानू। कंचन जरै अधिक होइ बानू ॥
अब जौ मरै वह पेम वियोगी। हत्या मोंहि, केहि कारन जोगी ॥
सुनि के रतन पदारथ राता। हीरामन सौ कह यह बाता ॥
जौ वह जोग सँभारे छाला। पाइहि भुगुति, देहुँ जयमाला ॥
आव बसत कुशल जौ पावौ। पूजा मिस मंडप कहँ आवौ ॥
गुरु के बैन फूल हौ गाँथे। देखौ नैन, चढ़ावौं माथे ॥
कँवल-भवर तुम्ह बरना, मैं माना पुनि सोइ।
चाँद सूर कहँ चाहिय, जौ रे सूर वह होई ॥७॥

तुम्हारी चर्चा सुनकर उसने अपनी काया इस प्रकार भस्म कर दी कि कामदेव मन तक रह गया और हृदय सहानुभूति से भर गया। उसे देखो जाकर वह सूर्य की तरह कैसा प्रकाशमान है। अब यदि वह प्रेम-वियोगी मर गया तो मुझे जोगी की हत्या लगेगी क्योकि मै ही उससे तुम्हारे रूप का वर्णन कर कारण बना था। रतनसेन की चर्चा सुन पद्मावती अनुराग रंजिता हो गई। यदि वह मृग चर्म पर बैठकर साधना करता रहा तो वह भोग प्राप्त करेगा। मैं उसी के गले मे जयमाला दूँगी। बसन्त आते यदि मुझे पता चल गया कि वह कुशल से है तो पूजा के बहाने मण्डप को आऊँगी। तुम गुरु के कहने से मैंने उसके लिए फूलो की माला गूँथ ली है। मैं उसके दर्शन करूँगी और उसे सिर-माथे स्वीकार कर लूँगी।

तुमने कंवल के लिए भ्रमर का वर्णन किया। मैंने उसे वैसा ही मान लिया। चांद को सूर्य की अपेक्षा रहती है। देखलें वह सूर्य ही है।

टिप्पणी—सुनि के रतन पदारथ राता—यहाँ शब्दशक्ति उद्भव वस्तुध्वनि है। अर्थ है रतनसेन का वर्णन सुनकर पदमावती अनुरागरंजिता हो गई।

चढ़ावौं माथे—लक्ष्यार्थ है मैं उसे स्वीकार करूँगी।

कँवलभवर तुम्ह बरना—रूपकातिशयोक्ति अलंकार है। केवल उपमानों का कथन किया गया है।

चाँद सूर कँह चाहिय—यहाँ पर भी रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

हीरामन जो सुना रस-बाता। पावा पान भएउ मुख राता ॥
चला सुआ रानी तब कहा। भा जो परावा कैसे रहा? ॥
जो निति चलै सँवारै पाँखा। आजु जो रहा, काल्हि को राखा ॥
न जनौ आजु कहाँ दहुँ ऊआ। आएहुँ मिलै चलेहु मिलि, सूआ ॥
मिलि कै बिछुरि मरन कै आना। कित आएहु जौ चलेहु निदाना ॥
सुनु रानी हौ रहतेउँ राँधा। कैसे रहौ बचन कर बाँधा ॥
ताकरि दिस्टि ऐसि तुम्ह सेवा। जैसे कुंज मन रहै परेवा ॥
बसै मीन जल धरती, अंबा बसै अकास।
जौ पिरीत पै दुवौ महँ अंत होहि एक पास ॥८॥

[इस अवतरण में कवि ने हीरामन की विदाई के समय पद्मावती के अन्तर में उद्भूत होने वाली भावनाओ का वर्णन किया है।]

हीरामन ने जब यह रसभरी बात कही तो पान से उसका अभिनन्दन किया गया। उसी से उसका मुख लाल था। जब शुक चलने लगा तब रानी ने (व्यंग्य मे) कहा—'अरे! भाई! जो पराया हो चुका है वह कैसे रुक सकता है। जो प्रतिदिन उड़ने के लिए पंखों को संवारता है वह एक दिन रुक जाय तो दूसरे दिन उड़ जाएगा। उसे कोई रोक नही सकता। मालूम नहीं आज तुम कहाँ उदय होगे। 'मिलने आए थे और मिलकर चल दिए।' तोता बोला—'हे रानी! मैं तुम्हारे पास अवश्य रहता किन्तु मैं वचनबद्ध हूँ। कैसे रहूँ। उसकी दृष्टि तुम मे ऐसी अनुरक्त है कि जैसे पक्षी का मन कुंज में रमा रहता है।

मछली जल में रहती है और आम आकाश वृक्ष में ऊँचे पर रहता है। दोनों मे प्रेम है इसलिए अन्त में दोनो एक पास हो जाते हैं।

टिप्पणी—पावा पान—अर्थान्तिर सङ्क्रमित वाच्यध्वनि से व्यंजना है कि उसका अभिनन्दन किया गया। पान सम्मान और अभिनन्दन का एक अंश है।

भा जो परावा, कैसे रहा—यहाँ पर पदमावती ने तोते से व्यंग्य किया है।

व्यंग्य है कि अरे भाई ! अब तो तुम मेरे नमक को भूल गए । अब तो दूसरे के हाथ विक गए हो । अब हमसे तुम्हे क्या प्रेम रहा ? किन्तु हाँ यह तो बताओ अपने स्वामी को प्रसन्न करने के लिए कही फसाए तो नही दे रहे हो ।

यहाँ काकुवैशिष्ट्य व्यग्य है ।

ताकर दिस्टि.........परेवा—यहाँ पर विम्बप्रतिविम्वोपमा अलकार है ।

बसै.........पास—कहते है मछली तब तक स्वादिष्ठ नही बनती जब तक आम नही डाला जाता । आम की खटाई पड़ने पर ही वह स्वादिष्ठ लगती है। व्यंजना है कि तुम दोनो मे एक-दूसरे के लिए सदा प्रेम है । अतः दोनो का मिलन अवश्य होगा । स्वतः-सिद्ध वस्तु से वस्तुव्यंग्य है ।

आवा सुआ बैठ जहँ जोगी । मारगनैन, वियोग वियोगी ।।
आइ पेम-रस कहा सँदेसा । गोरख मिला मिला, उपदेसा ।।
तुम्ह कहँ गुरु मया बहु कीन्हा । कीन्ह अदेश आदि, कहि दीन्हा ।।
सवद, एक उन्ह कहा अकेला । गुरु जस भिग, फनिग जस चेला ।।
भिगी ओहि पाँखि पै लेई । एकहि बार छीनि जिउ देई ।।
ता कहँ गुरु करै असि माया । नव औतार देइ नव काया ।।
होई अमर जो मरि कै जीया । भौर कँवल मिलि कै मधु पीया ।।
आवै ऋतू बसंत जब, तब मधुकर, तब बासु ।
जोगी जोग जो इमि करै, सिद्धि समापत तासु ।।६।।

[इस अवतरण मे हीरामन का रतनसेन के पास आना और उससे पदमावती का संदेश कहना वर्णित है ।]

तोता वहाँ आया जहाँ जोगी बैठा हुआ था । उसके नेत्र मार्ग मे लग रहे थे। वह वियोग से वियोगी था । उसने प्रेम रस से परिपूर्ण सदेश कहा । जोगी के लिए गोरख के सदृश तुम्हारी आराध्या पद्मावती से भेंट भी हुई और उसका उपदेश भी लाया हूँ । गुरु ने तुम्हारे प्रति वड़ी सहानुभूति प्रकट की है । उन्होने आदेश दे दिया और आदि नाथ से तुम्हारी संस्तुति कर दी । उन्होने अकेले एक गुरु मन्त्र दिया है । 'गुरु भृंग के समान और चेले को पतंगे के समान होना चाहिए ।' भृंगी वही है जो पापो को स्वीकार कर जो एक ही बार में उसका स्पर्श करके नया जीवन दे देता है । शिष्य पर गुरु ऐसी ही कृपा करता है । उसे एक स्पर्श से नया जीवन और नया शरीर देता है । जो शिष्य इस प्रकार मर के जीता है वह अमर हो जाता है । वह भौरे की भांति कमल से मिलकर उसका मधु चखता है ।

जब बसन्त ऋतु आती है तभी भौरा आता है तभी सुगन्ध होती है। जो जोगी इस प्रकार योग करता है वही अन्त मे सिद्धि प्राप्त करता है ।

टिप्पणी—गोरख मिला मिला उपदेशा—वाच्यार्थ है कि गोरख मिले थे और उन्होने उपदेश दिया है किन्तु यहाँ यह अर्थ अभीष्ट नही है। अतः इसका व्यंग्यार्थ लिया। वह इस प्रकार है—जिस प्रकार योगी के लिए गोरख गुरु होता है और वह उसको उपदेश देता है उसी प्रकार तुम्हारी आराध्या रूप गुरु पदमावती मिली थी और उसने उपदेश भी दिया है। यहाँ स्वतःसिद्ध वस्तु से अलंकार व्यंग्य है।

गुरु जस............चेला—यहाँ पर उपमा अलंकार से कवि ने व्यंजित किया है कि तुम्हे पद्मावती मे पूर्ण आत्म-समर्पण कर देना चाहिए। अतः यहाँ कवि प्रौढोक्तिसिद्ध अलंकार से वस्तुव्यंग्य है।

होई अमर जो मरि कै जीया—कवि का व्यंग्य है कि जो कठोर साधना के बाद जीवित रहता है वही सिद्धि प्राप्त कर पाता है। सूफी मत में मृत्यु कई प्रकार की बताई गई है। उनमे से एक हरी मृत्यु है एक काली मृत्यु है। साधक, तपस्वी की घोर तपस्या और सत्याचरण को मृत्यु कहा गया है। यहाँ मृत्यु शब्द का यही अर्थ ग्रहण किया गया है।

भौंर कँवल मिलि कै मधु पीया—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति से कवि ने यह वस्तु व्यंजना की है कि तब रतनसेन पद्मावती का उपभोग कर सकेगा।

आवै ऋतू वसन्त जब.........बासु—कवि का अभिप्राय है कि जब यौवन रूपी वसन्त ऋतु आती है तभी प्रेम का पराग उत्पन्न होता है, तभी प्रेमी रूपी भौंरे आते हैं। अत. यहाँ रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

जोगी जोग.........तासु—जो प्रेमी रूप योगी राजा रतनसेन के समान तपस्या करते हैं वे सुन्दरी यौवना प्रेमिका रूपी सिद्धि प्राप्त कर लेते है। यहाँ पर भी रूपकातिशयोक्ति है। यहाँ पर प्रेम में त्याग और तपस्या का अत्यधिक महत्त्व व्यग्य है। यह व्यग्य वस्तुरूप है।

वसन्त खण्ड

दैउ दैउ कै सो ऋतु गॅवाई। सिरी-पंचमी पहुँची आई ॥
भएउ हुलास नवल ऋतु माहाँ। खिन न सोहाइ धूप औ छाहाँ ॥
पदमावति सब सखी हंकारी। जावत सिंघल दीप कै बारी ॥
आजु बसन्त नवल ऋतुराजा। पंचमि होइ, जगत सब साजा ॥
नवल सिगार वनस्पति कीन्हा। सीस परासहि सेंदुर दीन्हा ॥
विगसि फूल फूले बहु बासा। भौर आइ लुबुधे चहुँ पासा ॥
पियर-पात दु·ख झरे निपाते। सुख पल्लव उपने होइ राते ॥
अवधि आइ सोपूजी, जो हीछा मन कीन्ह।
चलहु देवमढ़ गोहने, चहहु सोपूजा दीन्ह ॥१॥

[इस अवतरण मे कवि ने वसन्त के आवागमन का वर्णन किया है।]

किसी-न-किसी प्रकार वह ऋतु व्यतीत की। वसन्त पंचमी आ गई। नई ऋतु मे आनन्द हुआ। न क्षणभर धूप मे रहा जाता और न छाया मे क्षणभर बैठा जाता है। सिंहलदीप की बालाओ मे पदमावती की जितनी सखियाँ थी उन सबको उसने बुलाया और बोली—आज ऋतुराज वसन्त का शुभागमन हुआ है। वसन्त पचमी पर सब जगत् सज रहा है। वनस्पति जगत् ने नया श्रृंगार किया है। पलास वृक्षो ने सिर पर सिन्दूर लगाया है। बहुत प्रकार सुरभि वाले फूल खिलकर फूल रहे है। उनके चारो ओर भौर आकर लुब्ध हो रहे है। पीले पत्ते दु.ख के समान झड़कर पल्लव रूपी नए सुख का विकास हो रहा है।

वह समय आ पहुँचा है जब मन की इच्छा पूर्ण होगी। हे गोइयाँ या सखियो, मैं देवता की पूजा करना चाहती हूँ, अत. तुम सब मेरे साथ देव मन्दिर चलो।

टिप्पणी—सीस परासहिं सेंदुर दीन्हा—वाच्यार्थ है कि पलास ने सिर-सिन्दूर लगा रखा है। किन्तु किसी भी वृक्ष का सिर पर सिन्दूर देना किसी ने सुना नही अत. लक्षण लक्षणा से अर्थ लिया पलास के ऊपर का भाग लाल हो गया है। कवि की व्यंजना है कि प्रकृति मे वृक्षो ने अपने सिर पर सिन्दूर लगा लिया है। अब पद्मावती के सुहाग और मिलन का अवसर आ पहुँचा है। यहाँ पर स्वत.सिद्ध वस्तु से वस्तुव्यंग्य है।

पियर-पात·········राते—तात्पर्य है कि मानव-जीवनरूपी वृक्ष के दुःखरूप पत्ते झड़ गए और सुखरूपी कोमल निकल आए। यहाँ रूपक अलंकार है। इससे कवि ने व्यंजित किया है कि पदमावती और रतनसेन की मिलन-बेला आ पहुँची है।

गोहने············लोक मे जो गुइयाँ शब्द प्रचलित है यह उसी का रूपान्तर है। गुइयाँ समकक्ष सखी सलेही को कहते है, जैसे अग्रेजी में आज (Partner) शब्द का प्रयोग होता है।

फिरी आन ऋतु बाजन बाजे। औ सिगार बारिन्ह सब साजे ।।
कँवल कली पदमावति रानी। होइ मालति जानौ बिगसानी ।।
तारा-मंडल पहिरि भल चोला। भरे सीस सब नखत अमोला ।।
सखी कुमोद सहस दस संगा। सबै सुगन्ध चढ़ाए अंगा ।।
सब राजा रायन्ह कै बारी। बरन बरन पहिरे सब सारी ।।
सबै सुरूप, पदमिनी जाती। पान, फूल, सेंदुर सब राती ।।
करहि किलोल सुरंग रँगीली। औ चोवा चन्दन सब गीली ।।
चहुँ दिसि रही सो बासना, फुलवारी अस फूलि।
वै बसंत सौ भूलीं, गा बसन्त उन्ह भूलि ।।२।।

[इस अवतरण में बसन्त पूजा के उत्साह का वर्णन किया गया है।]

वसन्त-पूजन की राजाज्ञा हुई। सब बालाओं ने शृंगार कर लिया। पदमावती कंवल कली के समान थी। वह मालती के समान विकसित हो उठी। उसने तारा-मडल नामक बहुमूल्य वस्त्र का लहंगा पहना और अमूल्य रत्न रूपी नक्षत्रों से सिर सजाया। साथ में कुमुदिनी के समान दस सहस्र सखियाँ ली। सब अपने अंगो में सुगन्ध लगाए थी। सब राजा रायों की बालाएँ थी। वे विविध वर्णों की साड़ियाँ पहने हैं। सब सुन्दरी और पद्मिनी जाति की है। वे सब पान, फूल और सेंदुर से रंगी हुई है। वे रगीली सुन्दरियाँ किल्लोल करती हैं। वे चोवा और चन्दन से सिक्त थी।

चारों ओर वह सुरभि फैल रही थी। सखियों सहित पद्मावती ऐसी लग रही थी जैसे फूलो सहित फुलवारी हो। वे वसन्त से फूली थी और वसन्त उनमे अपने को भूल गया था।

टिप्पणी—भरे सीस सब नखत अमोला—इसका पाठान्तर इस प्रकार दिया है 'पहिरै सीस जस नखत अमोला'। उस दशा मे अर्थ होगा, तारामण्डल रूप सखियों ने सुन्दर वस्त्र पहन रखे है और चांदरूप पदमावती ऐसे जड़ाऊ वस्त्र पहने है जिनमें नक्षत्रो जैसे नग जड़े हैं।

चहुँ दिसि············फूलि—यहाँ उपमा अलकार है।

भै आहा पदमावति चली। छत्तिस कुरि भइँ गोहन भली॥
भइँ गोरी सँग पहिरि पटोरा। बाम्हनि ठाँव सहस अँग मोरा॥
अगरवारी गज गौन करेई। वैसिनि पाँव हंस गति देई॥
चंदेलिनि ठमकहि पगु धारा। चली चौहानि, होइ झनकारा॥
चली सोनारि सोहाग सोहाती। औ कलवारि पेम-मधु-माती॥
बानिनि चली सेंदुर दिए माँगा। कयथिनि चलीं समाइँ न आँगा॥
पटइनि पहिरि सुरँग तन-चोला। औ बरइनि मुख खात तमोला॥
चली पउनि सब गोहने, फूल डार लेइ हाथ।
बिस्वनाथ कै पूजा, पदमावति के साथ॥३॥

[इन अवतरण में पद्मावती का पूजार्थ प्रस्थान वर्णित है।]

पदमावती के चलते ही धन्य धन्य होने लगा। छत्तीसों कुल की बालाएँ सखियाँ हो कर साथ चली। वे लहर पटोर का लहंगा पहन कर साथ हो गईं। ब्राह्मणी चलने में सहस्र स्थानों से अपने अंग समेटती थी। अग्रवालिन गज की गति से जा रही थी। अन्य वैश्य स्त्रियाँ हंस की गति से चल रही थी। चदेलनि ठमकि कर चल रही थी। चौहानिन खूब झनकार कर रही थी। सुनारिन सौभाग्य से चमकती हुई चली। कलवारिन प्रेम के मद से मदमस्त चली। बनेनी ने माग में खूब सिन्दूर लगा रखा था। कँथिनी ऐसी इतराती चलती है कि अपने वस्त्रो मे नही समाती हैं। पटुइन सुन्दर लहंगा पहनकर चली और बारिनी सुन्दर पान खाती हुई चली।

टिप्पणी—छत्तिस कुरि—छतीसों कुल यहाँ पर यह उपलक्षणात्मक है जिसका अर्थ अनेक जातियाँ है। वैसे वर्णरत्नाकार मे छत्तीस कुलो के नाम इस प्रकार दिए हैं। डोम, पमार, विन्द, छकोर, निकुम्भ, राओल, चाओट, चाँगल, चन्देल, पडहान, चालकि, रठउल, करचुरी, करम्ब, वुवेल, वीरब्रह्म, वन्दाउल, बएस, वदिन, गुदिय, गुहलउत, मुर्मक, सहिआउल, गिवर, शूर, खातिभान, सहिर ओट, भांड, भद्र, भान, भरीकूट, खरसान, क्षत्री, अग्नीकुली, राजपुत्र, चलुग्रह।

पउनि.........पौनी—यह शब्द पावनी से बना है। प्रजा के साथ इसका प्रयोग हुआ करता है। हिन्दी मे परजा पावनी दोनों शब्दो का आज भी प्रयोग होता है।

इस अवतरण मे जायसी ने स्त्री मनोविज्ञान ज्ञान का अच्छा परिचय दिया है।

कंवल सहाय चली फुलवारी। फर फूलन सब करहि धमारी॥
आपु आपु महँ करहि जोहारू। यह बसन्त सब कर तिवहारू॥
चहै मनोरा झूमक होई। फर औ फूल लिएउ सब कोई॥
फागु खेलि पुनि दाहब होरी। सै तब खेह, उड़ाउब झोरी॥

आजु साझ पुनि दिवस न दूजा। खेलि बसन्त लेहु कै पूजा ।।
भा आयसु पदमावति केरा । बहुरि न आइ करब हम फेरा ।।
तस हम कहँ होइहिं रखवारी । पुनि हम कहाँ, कहाँ यह बारी ।।
पुनि रे चलब घर आपने, पूजि बिसेसर देव ।
जेहि काहुहि होइ खेलना, आजु खेलि हँसि लेव ।।४।।

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती और सखियों की क्रीड़ा का वर्णन किया है।]

कमलरूपी पदमावती के साथ फुलवाड़ी रूपी सखियाँ चली। वे फल और फूलों से खिलवाड़ करती है। वे आपस मे एक-दूसरे से खिलवाड़ करती है और कहती है यह वसन्त सबका त्यौहार है। वे सब मनोरा झूमक गाती हैं। सब लोग फल-फूल ले, फाग खेलकर होली जलाएँगी और धूल बटोरकर झोली भरकर उड़ाएँगी। आज जैसा उत्सव का दिन दूसरा नही मिलेगा। पूजा करके वसन्त खेल लो पदमावती की आज्ञा हुई। हम फिर आकर फेरा नही करेगे। फिर तो हमारे लिए बन्धन नहीं रहेगा। फिर हम कही होगे और कहाँ यह बाटिका होगी।

हम विश्वेश्वर देव की पूजा कर अपने घर चलेगे, जिसको खेलना हो वह आज ही खेल लो।

टिप्पणी—कँवल सहाय चली फुलवारी—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

धमारी—होली की क्रीड़ा।

मनोरा झूमक—एक प्रकार के गीत जिसे स्त्रियाँ झुण्ड बाँधकर गाती हैं और जिसके अन्त मे ताल देती है, मनोरा झूमक हो।

काहू गही आँव कै डारा। काहू जाँबु विरह अति झारा ।।
कोइ नारंग कोई झाड़ चिरौंजी। कोइ कटहर, बड़हर कोइ न्योजी ।।
कोइ दारिउँ कोई दाख औ खीरी। कोइ सदाफर, तुरँज, जभीरी ।।
कोइ जायफर, लौंग, सुपारी। कोइ नारियर, कोइ गुवा, छोहारी ।।
कोइ बिजौर, करौदा-जूरी। कोइ अमिली, कोइ महुअ, खजूरी ।।
काहू हरफरिवरि कसौदा। कोइ अँवरा, कोइ राय-करौंदा ।।
काहू गही केरा कै घौरी। काहू हाथ परी निंबकौरी ।।
काहू पाई नीयरे, कोउ गए किछु दूर।
काहू खेल भएउ बिष, काहू अमृत-मूरि ।।५।।

[इस अवतरण में कवि ने भिन्न-भिन्न सखियों ने क्रीड़ा के लिए कौन-कौन से वृक्ष चुने उनकी लिस्ट प्रस्तुत की है।]

वाटिका में सखियों ने मनचाहे वृक्ष अपनी-अपनी क्रीड़ा के लिए चुन लिए। किसी ने आम की डाली पकड़ ली। किसी ने विरह मे जामुन को खूब झकझोरा। किसी ने नारंगी को, किसी ने चिरौंजी की झाड़ को चुना। किसी ने अनार, किसी ने अगर, किसी ने खिरनी से ही सन्तोष किया। किसी ने कटहल बड़हल, किसी ने लीची के वृक्षो से क्रीडा की। किसी ने जायफल, किसी ने लौंग, किसी ने सुपारी, किसी ने कमराख गुवा सुपारी और किसी ने छुआरे को चुना। किसी ने बिजौरा नीबू और किसी ने नारियल की जोड़ी से, किसी ने इमली से, किसी ने महुआ से, किसी ने खजूर से अपने को बहलाया। किसी ने हरपारेऊ और किसी ने कसौदो, किसी ने आँवला, किसी ने बेर से खेल किया है। किसी ने केरा की गहर पकड़ ली, किसी के हाथ मे निमकौरी ही पडी।

किसी को अपना फल समीप मिल गया, किसी को दूर जाना पड़ा, किसी को खेल विषतुल्य हुआ और किसी को वह अमृत की मूल हो गया।

विशेष—डा० अग्रवाल ने इसका एक सखीपरक अर्थ दिया है। किन्तु उस अर्थ को मैं खीचातानी मानता हूँ। कवि का लक्ष्य यहाँ केवल अपनी फल विषयक जानकारी का प्रदर्शन करना मात्र था। फिर भी जानकारी के लिए मैं डा० अग्रवाल द्वारा दिए गए सखीपरक अर्थ को उद्धृत किए देता हूँ।

'किसी को उसके पति ने लिया तो अल्पवयस्का समझकर छोड़ दिया। किसी ने विरह को जामुन की तरह काली करके खूब जलाया। कोई बिना रंग के थी और चिरौंजी मेवे खाती थी। कोई कठोर जी की थी, किसी का जी बढा हुआ था, किसी का न्यून था या निराश था। किसी का हृदय विदीर्ण था। कोई दाखे की तरह सूखी, कोई सदा फलती थी। और कोई रज या वियोग से दु.ख से जम्हाई ले रही थी। (अथवा विरह जमीरी नीबू के समान पीली हो गई थी) कोई जी मे प्रसन्न थी। कोई लावण्य के कस मे पूरी उतरी थी। किसी के पास पहले से ही कम वस्तुएँ थी। कोई अपना सब कुछ खोकर हार जाना चाहती थी। कोई बिना जोड़ी की थी, कोई पुरुष से यारी जोड़ रही थी, कोई अनमिली थी। कोई अपनी जोडी के लिए मधुप को बुला रही थी। कोई हरजाई समूह से मिलती थी। कोई बिना वर के थी। कोई किसी वर को रौंद रही थी। कोई क्रीडारूपी घूरे के ढेर पर समाप्त हो गई। किसी के हाथ मे करवाहट आई। किसी ने निकट ही अपना प्रियतम प्राप्त कर लिया, किसी को दूर जाना पडा, किसी को वह क्रीड़ा विषतुल्य हुई किसी को अमृत की मूल।'

टिप्पणी—(१) आंव—(i) आम का वृक्ष (ii) अल्पवयस्का।

लक्षणलक्षणा से यह अर्थ लिया।

(२) नारंगी—(क) नारंगी (ख) रंगहीन, अर्थात् अनुराग एवं वासना रहित। यहाँ पर सभंग पदश्लेष है और लक्षणलक्षणा है।

(३) सो खीरी—(१) खिरनी । (२) सूखी हुई श्लेष के बल पर दो अर्थ ।

(४) सदाफर—(क) फल का नाम (ख) सदा प्रसन्न (श्लेष) ।

(५) तुरंज—(क) फल (ख) खिन्न । ये दोनो अर्थ भी श्लेष के बल पर प्राप्त होते है ।

(६) जंभीरी—(क) नीबू । (ख) जम्हाई लेना ।

(७) जैफर—(क) जायफल । (ख) चित्त का प्रसन्न होना ।

(८) लौग सुपारी—(क) लौग सुपारी । (ख) सभंग पदश्लेष से लावण्य से पूर्ण ।

(९) कमरख—(क) एक फल । (ख) कम वस्तुएँ रखने वाली ।

(१०) बिजौरा—एक प्रकार का नीबू और बिना जोड़े के अर्थात् पतिहीन ।

(११) अमिली—(क) इमली (ख) जो मिली हुई न, हो अछूती ।

(१२) महुअ, खजूरी—(क) महुआ और खजूर । (ख) रस चखने वाला प्रियतम ।

(१३) हरपारेउर—(क) हरेक के साथ मिलने वाली । (ख) हरपारेऊर ।

(१४) बेर करौदा—(क) फल । (ख) एक बार आलिंगन करने वाला ।

(१५) केरा—(क) क्रीड़ा (ख) केले का फल ।

(१६) घौरी—(क) केले की गहर । (ख) कूड़े का ढेर ।

पुनि बीनहि सब फूल सहेली । खोजहि आसपास सब बेली ।।
कोइ केबड़ा, कोइ चंप नेवारी । कोइ केतकि मालती फुलवारी ।।
कोई सदबरग, कुन्द, कोइ करना । कोइ चमेलि, नागेसर बरना ।।
कोइ गुलाल, सुदरसन, कूजा । कोइ सोनजरद पाव भल पूजा ।।
कोइ मौलसिरि, पुहुप बकौरी । कोई रूप मजरी गौरी ।।
कोइ सिगार हार तेहि पाहाँ । कोइ सेवती कदम के छाहाँ ।।
कोइ चंदन फूलहि जनु फूली । कोई अजान-बीरो तर भूली ।।
(कोइ) फूल पाव, कोइ पाती, जेहि के हाथ जो आँट ।
(कोइ) हारचीर अरुभना, जहां छुवै तहं काँट ।।६।।

[इस अवतरण मे कवि ने सखियो की पुष्प क्रीड़ा का वर्णन किया है ।]

फिर सब फूल बीनने लगती है । सब अपने आसपास ही अपनी अभीष्ट पुष्पलता ढूँढने लगी । किसी ने केवड़ा, किसी ने चम्पा, किसी ने नेवाड़ी और किसी ने केतकी, किसी ने फुलवाड़ी की मालती को चुना । किसी ने सदबरग, किसी ने कुन्द और किसी ने करना और किसी ने चमेली और किसी ने नागकेसर और बाना पसन्द किया । कोई गुलाल, सुदर्शन, कूजा का फल पसन्द किया । किसी ने सोनजरद लेकर खूब पूजा की, किसी ने रूपमजरी, किसी ने श्वेत मल्लिका ली । किसी ने सिगारहार को पास में

आया और किसी को सेवती, किसी को कदम्ब की छाँह मिली। कोई चन्दन के फूलो से प्रसन्न हुई, कोई किसी अजान पेड के नीचे जाकर मुग्ध होकर बैठ गई।

किसी को फूल मिला, किसी के हाथ पत्ती ही लगी। जिसके हाथ मे जो आया वही उसने लिया। किसी का वस्त्र काँटो मे उलझ गया जिससे वह हार गई थी। वस्त्र छुडाने को जहाँ छूती थी वही काँटे मिलते थे।

टिप्पणी—इस अवतरण में कवि ने अपनी फूलो की जानकारी का प्रदर्शन किया है। यहाँ पर भी सखीपरक एक दूसरा अर्थ लगाया जा सकता है किन्तु उस खीचातानी मे मै विश्वास नही करता।

फर फूलन्ह सब डार ओढ़ाई। झुंड बाँधि कै पंचम गाई॥
बाजहि ढोल दुदुभि भेरी। मादर, तूर, झाँझ चहुँ फेरी॥
सिगि, संख, डफ बाजन बाजे। बंसी, महुअर सुर सँग साजे॥
और कहिय जो बाजन भले। भाँति-भाँति सब बाजत चले॥
रथहि चढ़ी सब रूप सोहाई। लेइ बसंत मठ-मँडप सिधाई॥
नवल बसत, नवल सब बारी। सेंदुर बुक्का होई घमारी॥
खिनहि चलहि, खिन चाँचरि होई। नाच कूद भूला सब कोई॥
सेंदुर-खेह उड़ा अस, गगन भएउ सब रात।
राती सगरिउ धरती, राते बिरिछन्ह पात॥७॥

[इस अवतरण मे सखियो का क्रीड़ा करते हुए मण्डप की ओर जाना वर्णित है।]

फलफूलों से डालें झुक गईं। सखियाँ टोली बनाकर पञ्चम स्वर में गाने लगी। ढोल, डंडे और भेरी बजने लगी। मर्दल, तुरई और झाँझ चारों ओर बजने लगी। संख, सीगी, डपली, बाजे साथ बजाए जाने लगे। बाँसुरी और महुआ के स्वर निकाले जा रहे थे और भी जितने वर्णित किए जाते है वे सब भाँति-भाँति से बजते हुए चले। सब सुन्दरियाँ और वसन्त लेकर मण्डप के लिए चली। नया वसन्त था और नववयस्का बालाएँ थी। वे सब सिन्दूर, बुक्का से खूब होली खेल रही थी। वह थोडी दूर चलती थी फिर चाचरि खेलने लगती थी।

सिन्दूर की धूल ऐसी उडी कि सारा आकाश लाल हो गया, सम्पूर्ण पृथ्वी लाल थी। वन मे वृक्ष और पत्ते तक लाल हो गए।

टिप्पणी—मदिर—एक प्रकार का मृदंग।
महुअर—सपेरो की बीन।
घमारी—होली का हुड़दंग।
चाँचरि—हाथ मे डण्डे लेकर खेलते हुए नाचना। इस नाम का एक राग भी होता है जो गाया जाता है।

एहि-विधि-खेलति सिघल रानी। महादेव मढ़ जाइ तुलानी ।।
सकल देवता देखै लागे। दिस्टि पाप सब ततछन भागे ।।
एह कविलास इन्द्र कै अछरी। की कहुं तें आई परमेसरी ।।
कोई कहै पदमिनी आई। कोई कहै ससि नखत तराई ।।
कोई कहै फूलो फुलवारी। फूल ऐसि देखहु सब बारी ।।
एक सुरूप औ सुन्दरि सारी। जानहु दिया सकल महि बारी ।।
मुरुछि परै जोई मुख जोहै। जानहु मिरिग दिया रहि मोहै ।।

कोई परा भौर होइ, बास लीन्ह जनु चाँप।
कोइ पतंग भा दीपक, कोइ अधजर तन काँप ।।८।।

[यहाँ पर कवि ने पदमावती और उसकी सखियो के दिव्य दर्शन का प्रभाव देवताओं पर दिखाया गया है।]

इस प्रकार सिंहल की राजकुमारी महादेव गढ़ मे पहुँच गई। उसको सब देवता देखने लगे। उनकी दृष्टि के पाप सब उसी क्षण भाग गए। वे सोचने लगे कैलाश से इन्द्र की अप्सरा आई है अथवा कही से कोई देवी आई है। कोई कहता है कि पदमिनी आई है। कोई कहता था नक्षत्रो के साथ चांद आया है। कोई कहता है कि फुलवाड़ी फूली है, सब वालाएँ फूल-सी हैं। एक तो उनका रूप ही सुन्दर था फिर सुन्दर साड़ियाँ पहिने थी। ऐसा लगता था कि सारी पृथ्वी में दीपक ही दीपक जल रहे है। जो मुंह देखता है वह मूर्च्छित हो जाता है ठीक वैसे ही जैसे कि मृग को मृग-मरीचिका मोहित करती है।

कोई इस प्रकार मुग्ध हो गया जैसे भौरे ने चम्पा की वास ली हो। कोई दीपक का पतंग बन गया और अधजला होकर काँप रहा था।

टिप्पणी—सकल देवता देखै लागे—यहाँ पर कवि प्रौढ़ोक्तिसिद्ध वस्तु से वस्तुव्यग्य है। कवि ने यहाँ पर उन वालाओं के रूप की दिव्यता व्यंजित की है।

दृष्टि पाप सब तिनके भागे—उस ब्रह्मरूपिणी पदमावती के रूपदर्शन से उन की दृष्टि के सब पाप दूर हो गए। श्रुति में है—

'भिद्यते हृदय ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे' ।।

यहाँ पर पदमावती की ब्रह्मरूपता व्यंजित की गई है। यहाँ पर भी कवि प्रौढोक्तिसिद्ध वस्तु से वस्तुव्यंग्य है।

एह······परमेसरी—यहाँ पर संदेहालंकार है।

कोई कहै पदमिनी आई—इन पंक्तियो में उल्लेख अलंकार है।

मुरुछि परै जोई मुख जोहै—यहाँ पर विभावना अलंकार है। कवि ने पदमावती और उसकी सखियो के रूप की मादकता एवं मोहकता का अतिशय्य व्यंजित किया है। अतः यहाँ पर कवि प्रौढोक्तिसिद्ध अलकार से वस्तुव्यंग्य है।

विशेष—यहाँ पर रहस्य भावना की व्यजना है।

पदमावति गै देव दुवारा। भीतर मंडप कीन्ह पैसारा॥
देवहि ससै भा जिउ केरा। भागौ केहि दिसि मंडप घेरा॥
एक जोहार कीन्ह औ दूजा। तिसरे आइ चढाएसि पूजा॥
फर-फूलन्ह सब मँडप भरावा। चदन अगर देव नहवावा॥
लेइ सेदुर आगै भै खरी। परसि देव पुनि पायन्ह परी॥
और सहेली सबै बियाही। मो कहं देव! कतहुँ वर नाहीं॥
हौ निरगुन जेइ कीन्ह न सेवा। गुनि निरगुनि दाता, तुम देवा॥
बर सौ जोग मोहि मेरवहु, कलस जाति हौ मानि।
जेहि दिन हींछा पूजै, वेगि चढावहुँ आनि॥६॥

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती का देव मण्डप के द्वार पर पहुंचना चित्रित किया है।]

पदमावती देव द्वार पर गई। उसने मण्डप के भीतर प्रवेश किया। देवता को भी अपने प्राणो का संशय हो गया। हम किधर भाग कर जाएं, सबने मण्डप घेर लिया है। पदमावती ने एक बार प्रणाम किया फिर दूसरी बार प्रणाम किया, फिर तीसरी बार मे पूजा का विधान किया। फलफूलो से सब मण्डप भर गया। चन्दन और अगर से देवता को नहला दिया गया फिर सिंदूर लेकर सामने खडी हुई। देव को स्पर्श कर वह उनके पैरो पर पडी और बोली—हे भगवन्! सब सखियाँ तो व्याह गई, हमारे लिए कही वर नही है। मैं तो निर्गुणिया हूँ। हमे वैधानिक सेवा नही आती। गुणी और निर्गुणी के दाता हे देव! तुम्ही हो।

मुझे योग्य वर से मिला दो। मैं कलश भरने जा रही हूँ। जिस दिन इच्छा पूर्ण होगी उसी दिन शीघ्र ही चढाऊँगी आकर।

टिप्पणी—देवहि संसै भा जिउ केरा—वाच्यार्थ है कि देवता को अपने जीव का संशय हो गया। व्यंग्यार्थ है कि पदमावती देवाधिदेव थी। उसके सामने साधारण देव का डरना स्वाभाविक था। यहाँ पर भी स्वतःसिद्ध वस्तु वस्तुव्यंग्य है।

लेइ सेंदुर आगै भै खरी—यहाँ पर चेष्टा वैशिष्ट्य से आर्थी व्यंजना है। नायिका ने सिन्दूर उठाकर यह व्यंजना की है कि हमे भी सौभाग्यवती करो।

हीछि हीछि बिनवा जस जानी। पुनि कर जोरि ठाढ़ि भइ रानी॥
उतरु को देइ देव मरि गएउ। सबद अकूत मंडप महं भइउ॥
काटि पँवारा जैस परेवा। सोएउ ईस, और को देवा॥

भा बिनु जिउ नहि आवत ओझा । विप भइ पूरि कालभा गोझा ।।
जो देखै जनु बिसहर डसा । देखि चरित पदमावति हँसा ।।
भल हम आइ मनावा देवा । गा जनु सोइ, को मानै सेवा? ।।
को हीछा पूरै, दुख खोवा । जेहि मानै आए सोइ सोवा ।।
जेहि धरि सखी उठावहि, सीस विकल नहिं डोल ।
धर कोइ जीव न जानौ, मुख रे बकत कुबोल ।।१०।।

[इस अवतरण मे पदमावती के दर्शन के दिव्य और अलौकिक प्रभाव की व्यंजना की गई है ।]

बार-बार इच्छा करके जैसे उससे बन पड़ी उसने विनती की, फिर वह हाथ जोड़ कर खडी हो गई और उत्तर की प्रतीक्षा करने लगी । उत्तर कौन दे, देवता तो मर गया है, यह आकाशवाणी मन्दिर मे हुई । जैसे पंख काटने पर पक्षी निष्प्राण हो जाता है वैसे ही देवता निष्प्राण हो गए थे । वे विना जीव के हो गए थे किन्तु उनको झाडने वाला ओझा नही आता था । पूडियाँ तो विष हो गईं, गुझियाँ काल हो गईं । जिसे देखो ऐसा लगता कि विषधर ने डस लिया है । उसके चरित को देख पदमावती हँसी । हमने भले देवता मनाए मानो वे तो सो गए । सेवा स्वीकार ही नही करते हैं । दुःख दूर करने वाली हमारी इच्छा को कौन पूर्ण करे, जिसकी मनौती करने आए थे, वही देवता सो गए ।

सखियाँ मन्दिर मे जिसका सिर पकड़ कर हिलाती थी, उसी का सिर विकल दिखाई पडता था और वह डोलता नही था । किसी धड़ मे प्राण नही जान पड़ता था । केवल मुख से प्रलापमात्र करता था ।

टिप्पणी—देव मरि गएउ—मर गए का व्यंग्यार्थ है मुग्ध हो संज्ञाहीन हो गए । यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि है ।

काटि पँवार······ईस—यहाँ पर उपमा अलकार है । यहाँ पर शिवजी का मौग्ध्य भाव व्यंजित किया गया है । उस मौग्ध्यभाव से पदमावती के रूप की अलौकिकता व्यंग्य है । यहाँ पर व्यंग्यार्थ सम्भवा आर्थी व्यंजना है । मौग्ध्य-भाव पहला व्यंग्यार्थ है और दिव्यता दूसरी व्यंजना है ।

बिनु जीव······विनोक्ति अलकार है ।

विष भई पूरि काल भा गाझा—यहाँ लक्ष्योपमा है । लक्ष्यार्थ है कि पूरी विष के समान और गुझियाँ काल के समान घातक हो गई ।

ततखन एक सखी विहँसानी । कौतुक आइ न देखहु रानी ।।
पुरुब द्वार मढ़ जोगी छाए । न जनौ कौन देस ते आए ।।
जनु उन्ह जोग तंत तन खेला । सिद्ध होइ निसरे सब चेला ।।
उन्ह महँ एक गुरु जो कहावा । जनु गुड़ देइ काहू बौरावा ।।

कुँवर बत्तीसो लच्छन राता। दसएँ लछन कहै एक वाता ।।
जानौ आहि गोपिचन्द जोगी। की सो आहि भरथरी बियोगी ।।
वै पिगला गए कजरी आरन। ए सिघल आए केहि कारन? ।।
यह मूरति, यह मुद्रा, हम न देख अवधूत।
जानौं होहि न जोगी, कोइ राजा कर पूत ।।११।।

[इस अवतरण मे कवि ने सखी द्वारा योगी के रूप का वर्णन किया है।]

इसी बीच मे एक विहँसती हुई सखी आकर बोली—हे रानी ! चलो एक कौतुक देख लो। मढी के पूर्व द्वार पर योगी छाए हुए हैं। न मालूम किस देश से आए हैं। मालूम पड़ता है उन्होने योग-मार्ग की साधना अभी आरम्भ की है और सिद्ध बनने के लिए सब साधक बन कर निकले है। उनमे से जो एक गुरु कहा जाता है ऐसा लगता है कि उसे गुड देकर किसी ने पागल बना दिया है। वह बत्तीसो लक्षणो से युक्त कुँवर है। धर्म के दस लक्षणों मे से वह 'सत्य' की ही वात कहता है। या तो वह योगी गोपीचन्द है या वियोगी भर्तृहरि है। वे तो पिंगला के लिए कजरी वन मे गए, न मालूम यह सिंहलगढ क्यो आए है।

ऐसा व्यक्ति और स्वरूप वाला मैंने योगी नही देखा। मुझे तो ऐसा लगता है कि वह योगी नही है वह किसी राजा का पुत्र है।

टिप्पणी—कुँवर बत्तीसों लक्षण—बत्तीस लक्षण से सम्भवत: सामुद्रिक शास्त्र के लक्षणो की ओर सकेत है। इनके लिए हमारी पुस्तक 'शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत-प्रथम भाग १, पृष्ठ २३६, द्वितीय सस्करण देखिए।'

दसँए लक्खन कह मुंह वाता—इसका अर्थ डा० अग्रवाल ने इस प्रकार किया है: 'धर्म के दस लक्षणो मे से एक दसवाँ लक्षण सत्य मुँह से निकलता है। आचार्य शुक्लजी ने लिखा है: 'योगियो के बत्तीस लक्षणो मे से दसवाँ लक्षण सत्य है।' सुधाकर जी ने लिखा है. 'दसो उँगलियो का लक्षण एक साथ कहता है।' उपर्युक्त तीनो ही अर्थों मे से डा० अग्रवाल का अर्थ उपयुक्त प्रतीत होता है।

गोपीचन्द—देखिए जोगी खण्ड में टिप्पणी।

भर्तृहरि—देखिए सिंहलदीप खण्ड मे टिप्पणी।

वै पिंगला गए कजरी आरन—पिंगला की साधना के हेतु कदली वन गए थे। पिंगला मे शब्दशक्ति उद्भव वस्तुध्वनि है, कि वे योगी तो पिंगला नाम की स्त्री के कारण कजरी वन मे गए थे, मालूम नही यह किस स्त्री के कारण सिंहलगढ़ आए हैं। व्यंग्य है यह तुम्हारी कामना से ही सिंहलगढ़ आए है।

सुनि सो बात रानी रथ चढ़ी। कहँ अस जोगी देखौं मढी ॥
लेइ संग सखी कीन्ह तहँ फेरा। जोगिन्ह आइ अपछरन्ह घेरा ॥
नयन कचोर पेम-मद-भरे। भइ सुदिस्टि जोगी सहुँ ढरे ॥
जोगी दिस्टि दिस्टि सौ लीन्हा। नैन रोपि नैनहि जिउ दीन्हा ॥
जेहि मद चढ़ा परा तेहि पाले। सुधि न रही ओहि एक पियाले ॥
परा माति गोरख करि चेला। जिउ तन छाँड़ि सरग कहँ खेला ॥
किंगरी गहे जो हुत बैरागी। मरतिहु बार उहै धुनि लागी ॥
जेहि धंधा जाकर मन लागै, सपनेहु सूझ सौ धंध।
तेहि कारन तपसी तप साधहि, करहिं पेम मन बध ॥१२॥

[इस अवतरण में कवि ने पदमावती और रतनसेन के साक्षात्कार की स्थिति का भावपूर्ण चित्रण किया है।]

यह बात सुनकर रानी रथ पर चढी और बोली—मढी में जाकर देखूं ऐसा योगी कहाँ उतरा है। सखियो को लेकर वह वहाँ पहुँच गई। ऐसा लगा मानो कि योगियो ने घेर लिया है। नेत्र रूपी कटोरे प्रेम के मद से भरे हुए है। ज्यों ही वे रतनसेन के सामने हुए त्यो ही बिखर गए। योगी की दृष्टि ने उनकी दृष्टि को ले लिया अर्थात् उसकी प्रेम मदिरा को अपने नेत्रो से पी लिया। उसके नेत्रों पर उसने अपने नेत्रो से प्राण निछावर कर दिए, अर्थात् उसने अपनी प्रेमातिरेकता अपने नेत्रों से उसके नेत्रो में व्यंजित कर दी।

टिप्पणी—परा माति गोरख करि चेला—यहाँ पर गोरख शब्द में अभिधा-मूला शाब्दी व्यंजना है। उसका अर्थ है वह योगी जो इन्द्रियों को संयमित करने वाला गोरख का अनुयायी भी काम से पराभूत हो गया।

सुधि न रही ओहि एक पियाले—यहाँ पर उपादान लक्षणा से दृष्टि मदिरा का उपादान किया गया है। अर्थ है कि दृष्टि की मदिरा के एक प्याले से भी सुध नही है।

पदमावती जस सुना बखानू। सहस-करा देखेसि तस भानू ॥
मेलेसि चंदन मकु खिन जागा। अधिकौ सूत, सरि तन लागा ॥
तब चन्दन आखर हिय लिखे। भीख लेइ तुइँ जोग न सिखे ॥
घरी आइ तब गा तूं सोई। कैसे भुगुति परापति होई ? ॥
अब जौ सूर अहौ ससि राता। आएउ चढि जो गगन पुनि साता ॥
लिखि कै बात सखिन सौ कही। इहै ठाँव हौ बारति रही ॥
परगट होहुँ त होइ अस भंगू। जगत दिया कर होइ पतंगू ॥
जा सहुँ हौ चख हेरौ, सोइ ठाँव जिउ देइ।
एहि दुख कतहुँ न निसरौ, को हत्या असि लेइ? ॥१३॥

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती पर रतनसेन के रूप का प्रभाव व्यंजित किया है।]

पदमावती ने रतनसेन रूपी सूर्य के सम्बन्ध मे जैसा सुना था उसे उसने वैसा ही सहस्र किरणो वाला पाया। उसने उस पर चन्दन चढाया, कदाचित् वह पल भर मे जाग जाए। यह उपचार शरीर मे शीतल लगा और वह और भी प्रगाढ़ निद्रा मे हो गया। तव पदमावती ने उसके हृदय पर ये अक्षर लिख दिए—हे जोगी! तूने भीख लेना सीखा नही है, जब मिलन की घडी आई तव तू सो गया, तुझे मुक्ति प्राप्ति कैसे हो। अव यदि तू सूर मुझ चन्द्रमा पर अनुरक्त होगा तो सातवें आसमान पर चढकर आएगा। व्यजना है कि अब तो मैं तेरी साधना पर मुग्ध होकर तेरे पास आई हूँ किन्तु अव तुझे मुझसे मिलने के लिए सात आसमान अर्थात् सात चक्रो को पार कर आना होगा। यह बात लिख कर उसने सखियो से कहा—मैं इसी अवसर को बचा रही थी। यदि बात प्रगट हो जाए तो रसभग हो जाएगा। जैसे ही जगेगा अवश्य ही दीपक मे पतिंगे की भाँति जलेगा।

जिसके सम्मुख दृष्टि विक्षेपण करती हूँ वह उसी जगह तत्काल प्राण दे देता है। इसी दु ख से मैं कभी बाहर नही निकली कि कौन इस प्रकार अपने सिर हत्या ले।

टिप्पणी—अव जो सूर अहो ... सात—यहाँ पर शब्दशक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है। कवि ने सूर-चाँद सात गगन शब्दो से एक यौगिक अर्थ की व्यंजना की है। व्यंजना है कि यदि सूर का अर्थ इड़ा है तो उसे पिंगला से मिलने के लिए सात चक्रों का भेद न करना पडेगा।

विशेष— यहाँ पर पदमावती का चित्रण क्रियाविदग्धा नायिका के रूप मे किया गया है।

कीन्ह पयान सवन्हि रथ हाँका। परवत छाँड़ि सिंघलगढ़ ताका॥
वलि भए सबै देवता वली। हत्यारिन हत्या लेइ चली॥
की अस हितू मुए गह वाही। जौ पै जिउ अपने घट नाही॥
जौ लहि जिउ आपन सव कोई। विनु जिउ कोई न आपन होई॥
भाई वंधु औ मीत पियारा। विनु जिउ घरी न राखै पीरा॥
विनु जिउ पिंड छा कर कूरा। छार मिलावै सो हित पूरा॥
तेहि जिउ विनु अव मरि भा राजा। की उठि बैठि गरव सौ गरजा॥
परी कया भुइँ लोटै, कहाँ रे जिउ वलि भीउँ।
को उठाइ बैठारै, वाज पियारे जीव॥१४॥

[इस अवतरण में पदमावती का सिंहलगढ़ के लिए प्रत्यावर्तन वर्णित है।]

पदमावती और उसकी सखियों ने उस पर्वतीय स्थान से जहाँ मण्डप था सिंघलगढ़ प्रस्थान किया। बड़े-बड़े बलशाली देवता बलि हो गए ऐसा लगा, हत्यारिन हत्या लेकर चली। जब घट में प्राण नही रह जाते तो फिर संसार मे ऐसा हितू कौन होगा जो मरे हुए की बाँहे पकड़े। जब तक जीव रहता है तब तक सब कोई अपना है। बिना जीव के कोई अपना नही होता। भाई, बन्धु, मित्र और प्रियजन बिना जीव के पलभर नही रख सकते। बिना जीव के शरीर मिट्टी का ढेरमात्र होता है जो उसे मिट्टी मे मिला देता है उस समय वही हितू होता है। उस जीव के बिना अब राजा मरा हुआ था। अब कौन उठकर बैठे और कौन गर्व से गर्जन करे।

काया भूमि पर पड़ी रो रही थी कि उसका वह जीव कहाँ चला गया जो ऐसी भयंकर बलि चढा था। प्यारे जीव के बिना अब कौन उठाकर बैठारेगा।

टिप्पणी—इस अवतरण में कवि ने विनोक्ति अलंकार कई बार प्रयोग किया है। जैसे 'बिनु जीउ घरी न राखै पीरा' 'बिनु जीव पिण्ड छारकर कूरा।'

पदमावति सो मन्दिर पईठी। हँसत सिंघासन जाइ बईठी॥
निसि सूती सुनि कथा बिहारी। भा बिहान कह सखी हँकारी॥
देव पूजि जस आइउँ काली। सपन एक निसि देखिउँ, आली॥
जनु ससि उदय पुरुब दिसि लीन्हा। ओ रवि उदय पछिउँ दिसि कीन्हा॥
पुनि चलि सूर चाँद पहँ आवा। चाँद सुरुज दुहुँ भएउ मेरावा॥
दिन औ राति भएउ जनु एका। राम आइ रावनगढ़ छेका॥
तस किछु कहा न जाइ निखेधा। अरजुन-बान राहु गा बेधा॥
जनहुँ लंक सब लूटी; हनवँ विधंसी बारि।
जागि उठिउँ अस देखत, सखि कहु सपन विचारि॥१५॥

[इस अवतरण मे पदमावती के स्वप्न का विचार वर्णित किया गया है।]

पदमावती हँसती हुई मन्दिर मे गई। हँसती हुई सिंहासन बैठी। आकर दिन के बिहार की कथा कहती हुई वह सो गई। प्रातः हुआ तब उसने सखी को बुलाकर कहा—जैसे ही मैं देवता को पूजकर कल घर लौटी और रात मे सो गई वैसे ही एक स्वप्न देखा, वह इस प्रकार है—ऐसा लगा चन्द्रमा पूर्व मे उदय हुआ और सूर्य पश्चिम मे उदय हुआ है, फिर सूर चांद के पास आया, चांद और सूरज का मिलन हो गया। ऐसा लगा दिन और रात एक हो गए। राम ने रावण का गढ छेक लिया, इसके अनन्तर जैसा कुछ हुआ उसका वर्णन नही किया जा सकता। ऐसा समझ लो कि अर्जुन के बाण से राहू बिंध गया। अर्थात् द्रौपदी के सदृश मुझ चन्द्र का उस सूर्य से विवाह होगा।

जानो हनुमान ने लंका लूट ली और वाटिका विध्वस कर दी। ऐसा देखते ही मैं जाग उठी और हे सखी, स्वप्न का विचार कह।

टिप्पणी—यहां पर कवि ने शब्द शक्ति उद्भव वस्तुध्वनि से एक पतिपरक अर्थ की भी व्यजना की है। उस व्यजना को कवि ने ही अगले अवतरण में इस प्रकार स्पष्ट भी कर दिया है। वह इस प्रकार है—

सूरज·········राहू—अर्थ है कि 'तुमने जो सूर्य देखा वह पति है, चन्द्रमा तुम स्वय हो। तुम्हारा पति पश्चिम देश का कोई राजा है। इसीलिए सूर्य का उदय पश्चिम दिशा मे बताया गया। तुम पूरब की कन्या हो इसीलिए चाँद का उदय पूरब मे बताया गया है। पश्चिम का वर तुम्हे प्राप्त करने आएगा, फिर कुछ थोडा-सा संग्राम होगा। फिर तुम चाँद का उस पश्चिम के राजकुमार रूपी सूर्य से विवाह होगा। फिर तुम बालारूपी वाटिका का विध्वस होगा, अर्थात् तुम्हारा कौमार्य लूटा जाएगा और फिर तुम्हारे साथ सम्भोग किया जाएगा। इत्यादि।

सखी सो बोली सपन-विचारू। कालिह जो गइहु देव के बारू॥
पूजि मनाइहु बहुतै भाँती। परसन आइ भए तुम्ह राती॥
सूरुज पुरुष चाँद तुम रानी। अस वर दैउ मैरावै आनी॥
पच्छिउँ खँड कर राजा कोई। सो आवा बर तुम्ह कहँ होई॥
किछु पुनि जूझ लागि तुम रामा। रावन सौ होइहि सग्रामा॥
चाँद सुरुज सौ होइ बियहू। वारि बिधसब वेधब राहू॥
जस ऊषा कहँ अनिरुध मिला। मेटि न जाइ लिखा पुरबिला॥
　　सुख सोहाग जो तुम्ह कहँ, पान फूल रस भोग॥
　　आजु कालिह भा चाहै, अस सपने क सँजोग॥१६॥

[इस अवतरण मे कवि ने सखियों द्वारा पदमावती के स्वप्न की अर्थ-व्याख्या की है।]

सखी स्वप्न विचार कर बोली—कल जो देवता के द्वार पर गई थी, और बहुत भाँति से पूजा कर मनौती की थी, जिससे वे प्रसन्न हो गए और रात्रि मे तुम्हें इस प्रकार का स्वप्न दिया। तुमने जो सूर्य देखा वह पति है, हे रानी। चाँद तुम स्वय हो। इस प्रकार जो पश्चिम का सूर्य रूपी वर तुम चाँद से मिलने आया, फिर तुम्हारे लिए कुछ युद्ध हो गया वही मानो रामरावण का संग्राम होगा। चाँद रूप तुम से सूर्य रूप राजा रतनसेन का विवाह होगा। पति द्वारा पत्नी का कौमार्य भग किया जाना ही वाटिका विध्वंस और अर्जुन द्वारा राहु मछली का भेदन होगा।

जिस प्रकार ऊषा को स्वप्न मे अनिरुद्ध मिला था उसी प्रकार स्वप्न मे तुम्हे पति मिला। जो पूर्व जन्म के सम्बन्ध के बिना स्थापित हुए नहीं रहेगे।

कुछ सौभाग्य एवं पानफूल के रस का भोग तुम्हें लिखा है वह आज या कल होना ही चाहता है। ऐसा स्वप्न का फल है।

टिप्पणी—जस ऊषा कहँ अनिरुद्ध मिला—शोणितपुर के राजा बलि के सौ पुत्र थे। उनमें श्रेष्ठ बाणासुर था। उसकी कन्या ऊषा थी। उसने स्वप्न में एक सुन्दर पुरुष को देखा। जागने पर उस पुरुष के विरह मे बहुत व्याकुल हो गई। उसकी वह दशा देखकर उसकी सखी चित्रलेखा ने उस समय के सब सुन्दर पुरुषो के चित्र खीचकर दिखाए। कृष्ण के पौत्र और प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध के चित्र को देखकर ऊषा ने कहा—यही स्वप्न मे मेरे पास आया था। फिर माया कर चित्रलेखा द्वारिका मे जाकर सोते हुए अनिरुद्ध को ले आई। जब बाणासुर को पता चला कि अनिरुद्ध ऊषा के पास है तो उसने उसे कैद कर लिया। बहुत दिनों बाद नारदजी ने यह समाचार कृष्ण से जाकर कहा। कृष्ण ने आक्रमण कर बाणासुर को पराजित किया और ऊषा और अनिरुद्ध को द्वारिकापुरी मे ले आए। (भागवत दशम स्कन्ध)।

राजा-रतनसेन-सती-खण्ड

कै बसन्त पदमावति गई । राजहि तव बसन्त सुधि भई ।।
जो जागा न बसन्त न बारी । ना वह खेल, न खेलनहारी ।।
ना वह ओहिकर रूप सुहाई । गै हेराइ, पुनि दिस्टि न आई ।।
फूल झरे, सूखी फुलवारी । दीठि परी उकठी सब बारी ।।
केइ यह बसन्त उजारा ? । गा सो चाँद, अथवा लेइ तारा ।।
अब तेहि बिनु जग भा अँधकूपा । वह सुख छाँह, जेही दुख-धूपा ।।
विरह-दवा को जरत सिरावा ? । को पीतम सौ करै मेरावा ? ।।
हिये देख तब चन्दन खेवरा, मिलि कै लिखा विछोव ।
हाथ मीजि सिर धुनि कै रोवै, जो निचित अस सोव ।।१।।

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती के चले जाने के पश्चात् की रतनसेन की मानसिक-स्थिति का वर्णन किया है ।]

जब पदमावती वसन्तोत्सव मनाकर चली गई । तब राजा को पदमावती के शुभागमन का पता चला । किन्तु जब उसे होश आया तब न वसन्त था न वह वाटिका थी और न वह खेलने वाली थी । वहाँ उसकी सुन्दर रूप वाली सखियाँ भी नही थी । वे सब इस प्रकार आँखों से ओझल हुईं कि फिर दृष्टि नही पड़ी । फुलवा-डियो के फूल झड चुके थे और वे सूख गई थी । वहाँ उसे सब सूखी झाड़ियाँ ही दिखाई पड़ी । किसने इस बसते हुए वसन्त को उजाड़ दिया ? वह चाँद चला गया और तारों को लेकर अस्त हो गया । उसके बिना यह जगत अन्धेरा कुआँ हो गया है । वह तो सुख की छाया मे जा बैठी और मैं दु ख की छाया मे जल रहा हूँ । ऐसा कौन है जो विरह की दावाग्नि को बुझाए । वह हितैषी कौन है जो प्रियतम से मिलावा करवा दे ।

फिर उसने हृदय पर चन्दन का विलेप देखा और मिलकर वियोग होने की बात भी कही । जो पहले इस प्रकार सिर धुनकर सोया था, वही हाथ मल कर सिर धुनने लगा ।

टिप्पणी—कै बसन्त—यहाँ कृ धातु का वक्र प्रयोग है ।

राजहि तब बसन्त सुधि भई—व्यंग्यार्थ है कि तब राजा को सारे रहस्य का पता चला । यहाँ पर वसन्त शब्द में अर्थान्तर-संक्रमित वाच्यध्वनि है ।

फूल झरै सूखी फुलवारी.........वारी—आशा के फूल झड़ गए। कामना की फुलवारी सूख गई। वहाँ उसे अतृप्त वासना की सूखी झाड़ियाँ ही दिखलाई पडी। यहाँ रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

गा सौ चाँद अथवा लेइ तारा—रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

जग भा अन्धकूप—यहाँ कवि ने रतनसेन के नैराश्य की व्यजना की है। यह व्यंजना अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि रूप है।

हाथ मींजि सिर धुनि सो रोग्रइ—यहाँ पर चेष्टा वैशिष्ट्य व्यंग्यार्थ है। व्यंग्यार्थ है अत्यधिक दु:खी होकर।

जस विछोह जलमीन दुहेला। जलहुँत काढ़ि अगिनि महँ मेला॥
चन्दन-ग्रांक दाग हिय परे। बुझहि न ते आखर पर जरे॥
जनु-सर-आगि होइ हिय लागे। सब तन दागि सिंघ बन दागे॥
जरहि मिरिग-बन खंड तेहि ज्वाला। औते जरहि बैठते हि छाला॥
कित ते आँख लिखे जौ सोवा। मकु आँकन्ह तेइ करत विछोवा॥
जैस दुसंतहि साकुन्तला। मधवानलहि काम-कंदला॥
भाविछोहं जस नलहि दमावति। मैना मूँदि छपी पदमावति॥
आइ वसन्त जो छपि रहा, होइ फूलन्ह के भेस।
केहि व्रिधि पावौ भौर होइ, कौन गुरु उपदेश॥२॥

इस अवतरण मे कवि ने रतनसेन के विरह का वर्णन किया है। जैसे कोई मनुष्य मछली को जल से निकालकर आग मे डाल देते है उसी प्रकार राजा विरह की ज्वाला मे जल उठा। जो चन्दन के अंक उसके हृदय में लिखे थे वे ही उस आग से जलने के दाग बन गए थे। अभी तक जल रहे थे, बुझ नही रहे थे। उसे ऐसा लग रहा था कि एक-एक अक्षर एक-एक जलता हुआ वाण है। उसकी ज्वाला ने पहले जंगल को जलाया फिर वन के सिंहो को भी दाग दिया, और वनखण्डों मे रहने वाले मृग भी उसी ज्वाला मे जलकर काले हो गए और जो मृगचर्म पर बैठ जाते हैं वे भी जलने लगते है। सोते हुए मेरे वक्ष.स्थल वह अक किसने लिखे। मालूम होता है कि उन अकों के कारण ही वियोगानुभूति हो रही है। जैसे दुष्यन्त को शकुन्तला, माधवानल को काम कन्दला ने विरह दु:ख दिया था, वैसे ही पदमावती आँखो को बन्द कर आँखो से ओझल होकर विरह दु:ख दे रही है।

राजा रतनसेन विलाप कर रहा है कि वसन्त रूप पदमावती आई भी और फूलों का रूप धर छिप भी गई। अब कौन गुरु ऐसा उपदेश दे कि मैं भ्रमर होकर पुष्परूपी पदमावती का प्रेमपराग रूप रस का पान करूँ।

टिप्पणी—जस विछोह·········मेला—यहाँ पर उपमा अलंकार से कवि ने विरह चेतना की अतिशयता व्यजित की है।

चन्दन आँक दाग हिय परे·········पर जरे—कवि के भाव है कि उसके हृदय मे जो चन्दन के दाग पड गए है वह उसके विरह के कारण जलकर काले हो गए है और बुझते नही हैं। व्यग्यार्थ है कि उसका विरह वड़ा भयंकर है। यहाँ पर स्वत.सिद्ध वस्तु से वस्तुव्यंग्य है।

जनु सर·········हिय लागे—ऐसा लगता था कि वे अक्षर अग्निवाण होकर रतनसेन के हृदय मे लगे है। इस उत्प्रेक्षा से रतनसेन की विरहजनित वेदना की अभिव्यक्ति की गई है।

अतः यहाँ पर कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अलंकार वस्तुव्यंजना है।

सिंह वन दागे—यहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा है। कवि उत्प्रेक्षा करता है कि सिंह के काले-काले दाग उन्ही वाणो से विद्ध होने के कारण हुए है।

जरहि··········· ज्वाला—मृगो के काले दागो पर कवि की हेतूत्प्रेक्षा है। उसकी कल्पना है कि मृग भी उन्ही अक्षरोरूपी वाणो की ज्वाला से जल रहे है।

औते जलहि वैठते हि छाला—यहाँ पर अतिशयोक्ति अलंकार है।

जैसे दुसन्तहि साकुन्तला—दुष्यन्त एक प्रसिद्ध पराक्रमी पुरुवंशी राजा थे। एक वार कण्व के आश्रम पहुँचे। वहाँ मेनिका की पुत्री शकुन्तला को देखकर वे काम-पीडित हो गए। दोनो ने गान्धर्व-विवाह कर लिया। वाद मे राजा इस विवाह को भूल गया। शकुन्तला वहुत दुःखी हुई। शकुन्तला को दुःखी देखकर मेनिका उठा ले गई। वाद को दुष्यन्त को जव ज्ञान हुआ तो वह वहुत दुःखी हुआ। (महाभारत, आदि पर्व ६८ : ७४)।

माधवानलहि काम कन्दला—इसकी कथा सिंहासन वत्तीसी मे दी हुई है। कामकन्दला परम सुन्दरी थी। एक व्राह्मण जिसका नाम माधवानल था उस पर आसक्त हो गया, किन्तु वह उसे प्राप्त न कर सका।

रोवै रतन-माल जनु चूरा। जहँ होइ ठाढ, होइ तहँ कूरा॥
कहाँ बसंत औ कोकिल वैना। कहाँ कुसुम अति वेधा नैना॥
कहाँ सो मूरति परी जो डीठी। काढ़ि लिहेसि जिउ हिये पइठी॥
कहा सो देस दरस जेहि लाहा?। जौ सुबसंत करीलहि काहा?॥
पात-विछोह रूख जो फूला। सो महुआ रोवै अस भूला॥
टपकै महुअ आँसु तस परहीं। होइ महुआ बसंत ज्यों झरहीं॥
मोर बसंत सो पदमिनि वारी। जेहि विन भएउ बसत उजारी॥
पावा नवल बसंत पुनि, बहु आरति बहु चोप।
ऐस न जाना अन्त ही, पात झरहि, होइ कोप॥३॥

[इस अवतरण में कवि ने रतनसेन का प्रलाप वर्णित किया है।]

रतनसेन रो रहा है। ऐसा लगता है मानो कि माणिक्य माला टूटकर गिर रही हो। (व्यंजना है कि उसके विरहाधिक्य से रक्त के आँसू टूट-टूट कर गिर रहे थे, जो माणिक्य के सदृश लुढकते हुए दीख रहे थे) वह जहाँ-जहाँ खड़ा हो जाता है वहाँ-वहाँ उनका ढेर हो जाता है। वसन्त मे आने वाली उस (पदमावती रूपी) कोयल की कूक कहाँ गई। वसन्त में खिलने वाला वह केतकी का फूल कहाँ है जिसने उसी प्रकार मेरी दृष्टि बेध दी थी जिस प्रकार केतकी भौंरे बेध देती है। वह मूर्ति कहाँ है जो दिखाई दी थी। उसने तो हृदय मे प्रविष्ट प्राण ही निकाल लिए थे। वह देस कहाँ है कि जहाँ दर्शन का लाभ हो, जब वह वसन्त रूप थी तो करील की भाँति क्यो चुभती है। फूले हुए महुए के पेड़ से जो पत्ते गिर जाते है तो वह चूने लगती है वही मानो वह रोता है। मेरा वसन्त तो वह पदमावती है। उसके बिना वसन्त उजाड़ हो गया।

मैंने तो नवलवसन्तरूपी युवती पदमावती को बड़े प्रयत्न और उत्साह से प्राप्त किया था। यह नही जानता था कि पत्ते कोपलावस्था में ही झड जाएँगे।

टिप्पणी—रोवे रतन·········चूरा—यहाँ उत्प्रेक्षा अलकार उपमा अलंकार से व्यंग्य है। रतन के रोने पर रक्त के आँसू इस प्रकार टूट-टूट कर गिर रहे थे, जिस प्रकार मूगो की माला टूट-टूटकर गिर रही हो।

कहा बसन्त ···········बैना—यह विरह मे प्रलाप की स्थिति है। यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलकार है।

कहा कुसुम······ ·····नैना—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति से उपमा अलंकार व्यंग्य है।

काढ़ि लीन्ह जिय हिए पईठी—व्यंजना है कि उसने मेरे प्राणो तक को मुग्ध कर दिया। यहाँ स्वत:सिद्ध वस्तु से वस्तुव्यंग्य है।

सो महुआ रोवे असमूला—यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलंकार है।

जेहि बिन एउ बसन्त उजारी—यहाँ विनोक्ति अलंकार है।

परस············कोप—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति है। वाच्यार्थ है कि मैंने युवती पदमावती रूपी वसन्त की प्राप्ति बड़े प्रयत्न और उत्साह से की थी। किन्तु यह नही मालूम था कि उसकी मिलन कामनारूपी पत्ते को पल्लवावस्था अर्थात् प्रारम्भिक अवस्था मे ही वियोग हो जाएगा। यह कल्पना मैंने नही की थी। यहाँ रूपकातिशयोक्ति से वस्तुव्यग्य है।

अरे मलिछ बिसवासी देवा। कित मै आइ कीन्ह तोरि सेवा॥
आपनि नाव चढ़ै जो देई। सो तौ पार उतारै खेई॥
सुफल लागि-पग टेकेउँ तोरा। सुआ क सेंवर तू भा मोरा॥
पाहन चढ़ि जो चहै भा पारा। सो ऐसे बूड़ै मझधारा॥

पाहन सेवा कहाँ पसीजा ? । जनम न ओद होइ जो भीजा ॥
बाउर सोइ जो पाहन पूजा । सकत को भार लेइ सिर दूजा ?॥
काहे न जिय सोइ निरासा । मुए जियत मन जा करि आसा ॥
सिध तरेंदा जेइ गहा, पार भए तेहि साथ ।
ते पे बूड़ै बाउरे भेंड़-पूँछि जिन्ह हाथ ॥४॥

[इस अवतरण मे कवि ने रतनसेन के मुख से मूर्तिवाद का खण्डन कराया है ।]

अरे, म्लेच्छ, विश्वासघाती देवता, मैंने तुम्हारी सेवा ही क्यो आकर की (व्यंजना है कि मेरा तुम्हारी सारी सेवा करना व्यर्थ रहा है, पदमावती की प्राप्ति में तुमने सहायता नही दी) । जो अपनी नाव चढने देता है वह तो खेकर पार उतार ही देता है । (व्यजना है कि मनुष्यो का यह नियम है किन्तु तुमने देवता होकर मेरी जीवन नौका पार करना तो दूर रहा तट पर ही डुबो दी) मैंने सुन्दर फल की कामना से तुम्हारी सेवा की थी । किन्तु तू मेरे लिए तोते का सेवर हो गया । (व्यजना है कि जिस प्रकार शुक सेमल के फल मधुर फल समझ कर चोच मारता है किन्तु उसकी चोच मे नीरस रुई लिपट जाती है । जिससे उसे बड़ी निराशा और दुःख होता है, उसी प्रकार मैंने तुम्हारी उपासना पूजा बड़ी आशाओ से की थी । किन्तु मुझे परिणाम मे तुमसे घोर निराशा ही हुई ।) जो पत्थर पर चढकर नदी पार करना चाहता है, वह हमारी तरह मंझधार मे डूब जाता है । (व्यंजना है कि मैंने तुम्हारे पत्थर रूप की पूजा की । इसलिए मेरे हाथ असफलता लगी) पत्थर सेवा से कही पसीजता है चाहे नित्य सीचा जाय किन्तु वह पल्लवित नही हो सकता । (व्यंजना है कि मूर्ति पूजा से कभी भी कोई लाभ नही हो सकता) वह बावला है जो पत्थर की पूजा करता है । किसी की शक्ति नही जो दूसरे का बोझा सिर पर उठाए । मरते जीते जिसकी आशा मन मे रहती है ऐसे निष्काम परमाराध्य को ही क्यों न पूजा जाय ?

जिन्होने सिंहो को तैरते हुए देखकर पकड़ा तो पार हो गए । किन्तु जिनके हाथ में भेड की पूँछ थी वे धार मे इसी पर डूब गए । व्यंजना है कि जो सिंह की तरह अपना मार्ग अपने आप निश्चित करते है वे पार हो जाते है । जो भेड़ों के समान अन्धानुसरण करते है वे संसार मे ही फँसे रह जाते है ।

टिप्पणी—अरे मलिछ बिसवासी देवा—यहाँ पर जायसी ने देवतावाद और मूर्तिवाद हिन्दुओ की इन दो आस्थाओ पर कठोर कुठाराघात किया है । जिस प्रकार हिन्दू लोग मुसलमान को म्लेच्छ कहते है, उसी प्रकार जायसी ने देवता को म्लेच्छ और विश्वासघाती कहकर तिरस्कृत किया है ।

बिसवासी—विश्वासघाती ।

आपन............खेई—व्यंजना है कि मानव लोक का यह नियम जो अपनी नाव पर चढ़ने देता है वह पार लगा देती है। किन्तु देवता हो कर भी तुमने हमें डुबो दिया। दूसरा व्यंग्यार्थ है कि देवता मनुष्य से भी हेय होते हैं। यहाँ पर वक्तृ-वैशिष्ट्यमूलक व्यंग्य सम्भवा व्यजना है।

सुफल लागि............मोरा—यहाँ पर उपमा अलंकार व्यंग्य है। जिस प्रकार तोता सेमल के फल को मधुर समझकर चोंच मारता है, तो नीरस रुई उसके चोच मे आती है और वह बड़ा निराश और बड़ा खिन्न होता है, वैसे मैंने बड़ी आशाओ से तुम्हारी पूजा की थी किन्तु परिणाम मे कोई सार नही निकला। इससे दूसरा व्यंग्यार्थ निकलता है कि देवोपासना सर्वथा निस्सार है। अतः यहाँ पर वक्तृवैशिष्ट्य-व्यग्य सम्भवा व्यजना है।

पाहन सेवा............भीता—पहले वाक्य मे काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यग्य है। पूरी पक्ति मे वक्तृवैशिष्ट्यवाच्य सम्भवा व्यजना है। मूर्तिवाद की हेयता ही यहाँ व्यंग्य है।

सकति को भार लेई सिर दूजा—दूसरे का भार अपने सिर पर कौन ले सकता है। अर्थात् कोई नही ले सकता। यहाँ पर काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यग्य है।

काहेन पूजा—इसमे भी काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य है। कवि का अभिप्राय है कि अवश्य पूजा करनी चाहिए।

यहाँ पर कवि सूफी ने कोटि सगुण निर्गुण कोटि की उपासना की व्यजना की है। सूफी लोगो का उपास्य उनका प्रियतम उसकी हृदयस्य मूर्ति हुआ करती है। उसके ध्यान मे लीन रहना चाहिए। जायसी ने यहाँ यही व्यंजित किया है।

सिंघ तरेंदा............हाथ—यहाँ पर वक्तृवैशिष्ट्य आर्थी व्यंजना से कवि ने व्यजित किया है किजो स्वावलम्बी व्यक्ति का आश्रय लेते है, उनका बेड़ा पार हो जाता है जो अन्धानुसरण मे विश्वास करते है वह रह जाते है।

देव कहा सुनु, बउरे राजा। देवहि अगुमन मारा गाजा ॥
जौ पहिलेहि अपने सिर परई। सो का काहुक धरहरि करई ॥
पदमावति राजा कै बारी। आइ सखिन्ह सह बदन उघारी ॥
जैस चाँद गोहने सब तारा। परेउँ भुलाइ देखि उजियारा ॥
चमकहि दसन बीजु कै नाई। नैन-चक्र जमकात भवाँई ॥
हौ तेहि दीप पतँग होइ परा। जिउ जम काढ़ि सरग लेइ धरा ॥
बहुरि न जानौ दहुँ का भई। दहुँ कविलास कि कहुँ अपसई ॥
अब हौ मरौ निसाँसी, हिए न आवै साँस।
रोगिया की को चालै, बैदहि जहाँ उपास? ॥५॥

[इस अवतरण मे कवि ने मंडप के देवता पर पदमावती के रूप सौन्दर्य का जो प्रभाव पडा है उसका चित्रण किया है।]

जब राजा से मूर्ति रूप देवता की निन्दा की तो देवता ने उसका इस प्रकार उत्तर दिया—"अरे बावले राजा, तू मेरी बात सुन समझ ले। मुझ देवता को उसके रूप की गाज पहले ही मार गई थी। यदि पहले ही सिर पर विपत्ति पड जाय तो वह दूसरे का बचाव कैसे कर सकता है। पदमावती राजा की राजकुमारी है, उसने सखियो के साथ मण्डप मे आकर अपना मुखमण्डल खोला। उस समय मुझे ऐसा लगा मानो कि चाँद सब तारो के साथ उदय हुआ हो। उसके रूप का प्रकाश देख कर मै मोहित होकर भुलावे मे पड़ गया। उसके दांत बिजली से चमकते थे। उसके नेत्र चक्र और यम की कटारी के सदृश घूमते थे। मैं उस दीपक मे पतंग हो कर गिर पडा। यमराज ने मेरे प्राण लेकर स्वर्ग मे रख दिए फिर पता नही आगे क्या हुआ।

अब मैं स्वाँसविहीन होकर मरा जा रहा हूँ। हृदय में स्वाँस नही आ रही है। जहाँ वैद्य को ही उपवास करना पड़े, वहाँ रोगी की बात ही कौन चलाए।

टिप्पणी—सो..................करई—यहाँ पर काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यग्य है।

जैसे............उजियारा—यहाँ पर कवि प्रौढोक्तिसिद्ध उपमा अलकार से वस्तुव्यग्य है। अतिशय-रूप-जन्य मौग्ध्य भाव को कवि व्यंजित करना चाहता है।

हौं............परा—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलकार से वस्तुव्यग्य है। देवता ने अपने अतिशय मौग्ध्य भाव की व्यजना की है।

जमकात—यम की कटारी।

आनहि दोख देहुँ का काहू। सगी कया, मया नहि ताहू॥
हता पियारा मीत बिछोई। साथ न लागि आपु गै सोई॥
का मै कीन्ह जो काया पोखी। दूखन मोहि आपु निरदोखी॥
फागु बसंत खेलि गइ गोरी। मोहि तन लाइ विरह के होरी॥
अब अस कहाँ छार सिर मेलौ। छार जो होहुँ फाग तब खेलौं॥
कित तप कीन्ह छाड़ि कै राजू। गएउ अहार न भा सिध काजू॥
पाएउँ नहि होइ जोगी जती। अब सर चढ़ौ जरौ जस सती॥
आइ जो पीतम फिरिगा, मिला न आइ बसन्त।
अब तन होरी घालि कै, जारि करौ भसमन्त॥६॥

[पदमावती वसन्त पर रतनसेन को दर्शन देने गई किन्तु रतनसेन उसे देखते ही मूर्च्छित हो गया और उसके दर्शन से वंचित रह गया। जब पदमावती चली गई तब उसे बोध हुआ। तब उसे बड़ा खेद और पश्चाताप हुआ। उसी खेद और पश्चाताप की व्यंजना इस अवतरण मे की गई है।]

रतनसेन कहता है—'मैं दूसरे को क्या दोष दूं, जो जीवनसंगी काया है मुझ पर दयार्द्र नही होती, उसने प्यारे मित्र का बिछोह कराकर मार डाला। वह उसके साथ नही गई। स्वयं सो गई। मैंने काया का पोषण करके ही क्या क्या किया व्यंग्यार्थ है, जिस काया के सुख के लिए मैंने उसका पोषण किया था वही समय पर धोखा दे गई। यह दोष मेरा ही है। हे देव! आप निर्दोषी हैं। वह गोरी वसन्त का फाग खेल कर चली गई। मेरे शरीर मे लगाई हुई विरहाग्नि से मेरे शरीर की होली जल गई। अब मेरे सिर पर भभूत चढाने से क्या लाभ? अब तो ऐसा फाग खेलूं कि स्वयं भभूत बन जाऊँ। राज्य त्याग कर तपस्या करने से कोई लाभ न हुआ। भोजनादि का भी परित्याग किया किन्तु कार्य फिर भी सिद्ध न हुआ। जोगी-जती का रूप धारण कर भी मैं उसे न प्राप्त कर सका। अब चिता पर चढूंगा और सती की भांति जल जाऊँगा।

जो प्रियतम आया था वह चला गया। वसन्त मे आकर भी मुझसे न मिला। अब शरीर की होली जलाकर मैं उसे भस्म कर दूंगा।

टिप्पणी—आनहि=पाठभेद है। अनु हौ (डा० अग्रवाल), अनु का अर्थ है अनुकूल होना)।

का मै कीन्ह·· ···पोखी—यहाँ पर काकु वैशिष्ट्य व्यंग्य है। कवि की व्यंजना है कि मेरा काया का पोषण करना व्यर्थ हो गया क्योंकि जिस कायिक सुख प्राप्त करने के लिए मैंने इतना प्रयत्न किया था वह मिल न सका। प्रियतमा से आलिंगन लाभ की तो बात ही क्या, चक्षु उसका साक्षात्कार तक न कर सके। दूसरी व्यजना भी है। वह यह कि जिस पदमावती को प्राप्त करने के लिए मैंने काया-साधन अर्थात् हठ योग साधना की थी उससे उसका मिलन तो दूर रहा उसके दर्शन तक न कर सका। हठयोग-साधना की निस्सारता यहाँ व्यंग्य है।

मोहि तन······होरी—यहाँ रूपक अलंकार है।

छार सिर मेलौं—लक्ष्यार्थ है कि योगी का स्वरूप बनना। निराशा की अतिरेकता ही व्यंग्य है। अतः यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि है।

होली घालि कै—लक्ष्यार्थ विरह की ज्वाला मे जलाकर। विरह ज्वाला की अतिशयता ही व्यंग्य है। अतः यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि है।

ककनू पंखी जैस सर साजा। तस सर साजि जरा चह राजा॥
सकल देवता आइ तुलाने। दहुँ का होइ देव असथाने॥
विरह अगिनि वज्रागि असूझा। जरै सूर न बुझाए बूझा॥
तेहि के जरत जो उठै बजागी। तिनऊँ लोक जरै तेहि लागी॥
अवहि कि घरी सो चिनगी छूटै। जरहि पहार पहन सब फूटै॥

देवता सबै भसम होइ जाहीं। छार समेटे पाउव नाहीं ॥
धरती सरग होइ सब ताता । है कोई एहि राख विधाता ॥
मुहमद चिनगी पेम कै, सुनि महि गगन डराह।
धनि बिरही औ धनि हिया, जहँ अस अगिनि समाह ॥७॥

[इस अवतरण मे निराशाग्रस्त रतनसेन चिता में जलने को प्रस्तुत है। कवि ने उसी स्थिति का वर्णन किया है।]

ककनू पक्षी के समान राजा ने अपनी चिता स्वयं बनाई। वह उसमे जल मरना चाहता था। सब देवता वहाँ इस डर से आ पहुँचे कि कही देवस्थान में कुछ अनर्थ न हो जाय। उन्होने देखा कि विरह की अग्नि अपार वज्राग्नि के समान जल रही है। सूर जल रहा है बुझाए नही बुझता है। उसके जलने से जो वज्राग्नि उठेगी उस आग से तीनो लोक जल जाएँगे। क्षणभर मे उससे जो चिनगारियाँ छूटेंगी उससे पहाड जलने लगेंगे। देवता सब भस्म हो जाएँगे। फिर उनकी राख भी समेटी न जा सकेगी। धरती और स्वर्ग सब गर्म हो जाएँगे। हे विधाता! क्या कोई ऐसा है कि उसकी रक्षा कर ले।

मुहम्मद कवि कहते है कि प्रेम की चिनगारी का नाम सुनकर आकाश और पृथ्वी डरते है। वह विरही और उसका हृदय धन्य है जहाँ विरहाग्नि समाती है।

टिप्पणी—ककनू पक्षी—यह एक पक्षी होता है। इसके सम्बन्ध मे यूनान मे कहावत है कि यह नर ही होता है। इसका मादा होता ही नही। प्रसिद्ध है कि यह संगीत शास्त्र मे बड़ा निपुण होता है सब रागों को ठीक-ठीक गाता है। जब यह पूरा हजार वर्ष का होता है। तब लकडियों का जालीदार खोता बनाता है फिर उसके भीतर बैठ जाता है और राग गाने लगता है। जब दीपक राग गाता है तब खोते में आग भभक उठती है और यह जलकर भस्म हो जाता है। फिर उसकी राख पर पानी पडने से एक अण्डा पैदा होता है। उसमे से फिर एक ककनुस पैदा होता है। इसे वहाँ के लोग आतशजन भी कहते है। यहाँ पर कवि ने जन्म-भर एकाकी विरही रहकर चिता मे जलकर मर जाने वाले ककनू पक्षी से रतनसेन की तुलना की है।

दहुँ का होय...अस्थाने—यहाँ पर कवि ने काकु वैशिष्ट्य व्यंग्य से यह व्यजित किया है कि कहाँ देवस्थान मे रतनसेन की मृत्यु का अनर्थ किया है।

जरै सूर......बूझाँ—यहाँ पर शब्द शक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है। कवि की व्यंजना है कि वह रतनसेन वीर होते हुए भी विलासियो की भाँति विरह मे जल रहा है, किसी भी प्रकार समझाए नही समझता।

तिनउ लोक······आगी—अतिशयोक्ति अलंकार से विरह की अलौकिकता व्यंग्य है।

अब हो······सब फूटे—अतिशयोक्ति अलकार है।

धरती सरग······ताता—अतिशयोक्ति अलंकार है।

मुहमद चिनगी······समाय—यहाँ पर विभावना और अतिशयोक्ति का संकर है। उससे विरहाग्नि की दिव्यता व्यंग्य है।

धनि बिरही······समाय—यहाँ पर अधिक अलंकार है।

अस—यहाँ पर अर्थान्तर संक्रमितवाच्यध्वनि है। विरह की दिव्यता ही व्यंग्य है।

विशेष—उसमान ने चित्रावली मे इसी प्रकार से विरह की दिव्यता व्यंजित की है।

मान जगत परगट जरै, पावक विरह सरीर ।
धनि विरहिन औ धनि हिया गुपुत सहै जो पीर ।।

—चित्रावली, ५२४१

हनुवेंत बीर लँक जेइ जारी। परबत उहै अहा रखवारी ।।
बैठि तहाँ होइ लका ताका। छठएँ मास देइ उठि हाँका ।।
तेहि कै आगि उहौ पुनि जरा। लका छाडि पलंका परा ।।
जाइ तहाँ वै कहा संदेसू। पररबती औ जहाँ महेसू ।।
जोगी आहि वियोगी कोई। तुम्हारे मँडप आगि तेइ बोई ।।
जरा लँगूर सु राता उहाँ। निकसि जो भागि भएउँ कर मुहाँ ।।
तेहि बज्रागि जरै हौ लागा। बजर अंग जरतहि उठि भागा ।।
रावन लंका हौ दही, वह हौ दाहै आव ।
गए पहार सब औटिकै, को राखै गहि पाव ? ।।८।।

[कवि ने हनुमान की प्रकरी (काल्पनिक लघु कथा) की योजना के सहारे विरह की कठोरता एव असह्यता व्यंजित की है।]

वह वीर हनुमान जी, जिन्होने लंका जलाई थी, वह उस पर्वत की रखवाली कर रहे थे। वही बैठकर वे लका का निरीक्षण करते थे और छठे मास हाँका देते थे। रतनसेन की चिता की अग्नि से वह भी जलने लगा और लंका छोडकर पलग (विपरीत दिशा के अन्तिम छोर पर) वहाँ जा गिरा जहाँ पार्वती और महेश थे। जाकर सारी बात कही कि कोई वियोगी योगी के वेष मे है। उसने तुम्हारे मण्डप मे अग्नि का वपन कर रखा है। उस अग्नि मे जो लंगूर जल गए उनका मुख लाल हो गया। जो वहाँ से निकल भागे वे ही काले मुख वाले हो गए। उसी वज्राग्नि मे मैं जलने लगा हूँ। मेरे वज्रांग जब जलने लगे तभी उठ भागा।

रावण की लंका मैंने जलाई थी वह मुझे जलाने लगे। कठोर पहाड़ पिघल कर राख हो जाते है। प्रार्थना कर उसे कौन बचाये।

टिप्पणी—पलंका—यहाँ पर कवि ने पलंग के अर्थ मे पलंका का प्रयोग किया है। पलंग का अर्थ दूसरी छोर है। लंका के दूसरे छोर पर कैलाश है। वीर हनुमान विरह की ज्वाला से दग्ध हो कैलाश में जा गिरे। डा० अग्रवाल का मत भी द्रष्टव्य है। वह इस प्रकार है—"यह मध्यकालीन भाषा का प्रसिद्ध मुहावरा है। इलोरा के कैलाश मन्दिर मे बीच के मन्दिर मे दोनो ओर दो गुफा मण्डप है। एक का नाम लंका और दूसरे का नाम पलका है। सम्भवतः जायसी का सकेत यह है कि वीर हनुमान दक्षिण की लंका छोडकर उत्तर से कैलाश के पास पलंका मे जा गिरे।

जरे लगूर सो राते उहाँ······कर मुहाँ—यहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा अलंकार है।

गए पहार सब औटि कै—यहाँ पर अतिशयोक्ति अलकार से विरहाग्नि की अलौकिकता व्यग्य है। अत. कवि प्रौढोक्तिसिद्ध अलकार से वस्तुव्यग्य है।

यहाँ पाठान्तर भी है 'कनै पहार होत है रावट' अर्थ है सोने का पहाड जलकर काला हुआ जा रहा है।

पार्वती महेश खण्ड

ततखन पहुँचे आइ महेसू । बाहन बैल, कुस्टि कर भेसू ।।
काथरि कया हड़ावरि बाँधे । मुंडमाल औ हत्या काँधे ।।
सेसनाग जाके कँठमाला । तनु भभूति हस्ती कर छाला ।।
पहुँची रुद्र-कँवल कै गटा । ससि माथे औ सुरसरि जटा ।।
चवँर घंट औ डवरू हाथा । गौरा पारवती धनि साथा ।।
औ हनुबंत बीर सँग आवा । धरे भेस बाँदर जस छावा ।।
अवतहि कहेन्हि, न लावहु आगी । तेहि कै सपथ जरहु जेहि लागी ।।
की तप करै न तापही पारेहु, की रे नसाएहु जोग ? ।
जियत जीउ कस काढहु, कहहु सो मोहिं बियोग ।।१।।

[इस अवतरण में कवि ने विरहाग्नि से जलते हुए रतनसेन की रक्षा के हेतु महादेव जी के आगमन का वर्णन किया है ।]

उसी समय शिव जी आ पहुँचे । वे बैल पर सवार थे और कोढी का रूप धारण किए हुए थे । शरीर पर कँथरी और अस्थियो की माला पडी हुई थी । गले मे मुण्डो की माला थी । कन्धे पर हत्या (मृत्यु) पडी थी । कंठ मे शेषनाग जाति के साँप पड़े हुए थे । शरीर पर भभूत रमाए थे और हाथी की खाल ओडे थे । रुद्राक्ष और कमलगट्टो की पहुँची पहने थे । मस्तक पर चन्द्रमा और गंगा थी । हाथ मे चँवर, घंटा और डमरू थे । साथ मे गौरी पार्वती थी । उनके सग हनुमान वीर भी आया, उसने बन्दर के बच्चे का वेश बना रखा था । आते ही उन्होने कहा—तुम अपने को भस्म मत करो । तुम्हे उसी की सौगन्ध है जिसके लिए आगी मे जल रहे हो ।

क्या तुम अपनी तपस्या पूरी नही कर पाए, या तुम्हारा जोग नष्ट हो गया है । तुम जीते जी प्राण क्यो निकाले डाल रहे हो । मुझे बताओ तुम्हें किसका वियोग है ।

विशेष—इस अवतरण मे जायसी ने शिव जी के रूप के ब्याज से नाथपंथी साधक का रूप वर्णित किया है । शिव जी के साथ हनुमान जी का पार्षद् के रूप मे मानना जायसी के पौराणिक ज्ञान के अधूरेपन का परिचायक है ।

मैं गिउ फाँद ओहि दिन मेला । जेहि दिन पेम-पंथ होइ खेला ।।
परगट गुपुत सकल महँ पूरि रहा सो नावँ ।
जहँ देखौं तहँ ओही, दूसर नहि जहँ जावँ ।।६।।

[इस अवतरण मे कवि ने उस समय का वर्णन किया है जब राजा की सेना ने योगियों को चारों तरफ से आक्रान्त कर लिया था ।]

राजा गन्धर्वसेन ने सब योगियों को घेर लिया । उन बेचारों के ऊपर दुख पड़ गया । किन्तु योगियो के हृदय में जरा भी इस बात का डर नही था कि उनको कोई पकड रहा है और न उनको मरने-जीने का ही डर था । उन्होने अपनी गर्दन प्रेम रूपी नागफाँस मे फँसा रखी थी, इससे उनके हृदय में, न कोई हर्ष था न कोई विस्मय था । योगी ने कहा, जिसने हमें जीवन दिया है वह चाहे प्राण ही निकाल ले परन्तु जब तक हमारे शरीर मे प्राण हैं हम उसको भूल नही सकते । हाथ में किंगरी लेकर के वे उसके तारो को बजाते थे और वह वैरागी इस प्रकार का गीत गाते थे 'इन लोगों ने हमारे गले मे फाँसी ही डाली है किन्तु हमें इस बात का कोई सोच नही है । हमारा क्रोध सब नष्ट हो गया है । मैंने गर्दन में उसी दिन फन्दा डाल लिया था जिस दिन प्रेम मार्ग मे सिर दिया था ।'

प्रत्यक्ष रूप से और अप्रत्यक्ष रूप से सर्वत्र ही उसी पदमावती का नाम गुंजायमान है । जिधर देखता हूँ वही दिखाई पड़ती है । मुझे उससे रहित कोई जगह दिखाई ही नही पड़ती । अतः मैं अन्यत्र कहाँ जाऊँ ?

टिप्पणी—परगट······जाँव—यहाँ पर समासोक्ति के सहारे कवि ने आध्यात्मिक व्यंजना की है । व्यंग्यार्थ है कि परमात्मा सर्वत्र परिव्याप्त है, अतएव कोई ऐसा स्थान नही है जहाँ उसके द्वारा दिये गये दुख-सुखो से मुक्ति मिल सके । यहाँ पर कवि ने अद्वैत भाव की व्यजना की है ।

जब लगि गुरु हौ अहा न चीन्हा । कोटि अँतरपट बीचहि दीन्हा ।।
जब चीन्हा तब और न कोई । तन मन जिउ जीवन सब सोई ।।
'हौ-हौ' करत धोख इतराहीं । जब भा सिद्ध कहाँ परछाहीं? ।।
मारै गुरू, कि गुरू जियावै । और को मार ? मरै सब आवै ।।
सूरी मेलु, हस्ति करु चूरू । हौ नहि जानौ, जानै गूरू ।।
गुरु हस्ति पर चढ़ा सो पेखा । जगत जो नास्ति, नास्ति पै देखा ।।
अंध मीन जस जल महँ धावा । जल जीवन चल दिस्टि न आवा ।।
गुरू मोर, मोरे हिये, सिद्धि तुरंगम ठाठ ।
भीतर करहि डोलावै, वाहर नाचै काठ ।।७।।

[इस अवतरण में रतनसेन ने पदमावती को गुरु मानकर उसके प्रति अपना

श्रद्धाभाव प्रकट किया है। साथ ही कवि ने इसमें गूढ़ आध्यात्मिक तथ्यों की व्यंजना की है ।]

रतनसेन कहता है जब तक हमने गुरु को नही पहचाना था तब तक हमारे और उसके बीच मे करोड़ अन्तर्पट थे। किन्तु उसका सही ज्ञान होने पर हमें अनुभव होने लगा कि हम मे और उसमे कोई अन्तर नही है। तन, मन, जीव, जीवन सब, उस ही का है। मनुष्य मैं-मैं करता हुआ धोखे मे फँसा रहता है किन्तु जब वह सिद्ध हो जाता है तब उसका वह भ्रमजाल नष्ट हो जाता है, तब वह सिद्ध हो जाता है। माया की परछाईं शेष नही रह जाती। उस समय यह गुरु के आश्रित रहता है। वह चाहे मारें या जीवन दान दे। उसके अतिरिक्त और कोई नही मार सकता। क्योकि उसके अतिरिक्त सभी नश्वर है। वह चाहे सूली पर चढावे चाहे हाथी से कुचलवा दे। हमे इसका कोई ज्ञान नही। इस का ज्ञान उसी को होता है। यह उसके ही ऊपर है। गुरु हाथी पर चढा हुआ इस रहस्य का अनुभव करता है कि नश्वर जगत् वास्तव मे अस्ति रूप है।

टिप्पणी—गुरु—रतनसेन ने यहाँ पर पदमावती के लिए यह प्रत्यक्ष रूप से कहा और अप्रत्यक्ष रूप से यह परमात्मा का व्यंजक है। यहाँ पर गुरु मे शब्दशक्ति उद्भव वस्तुध्वनि है।

कोटि······दीना—यहाँ पर कवि ने जीवात्मा और परमात्मा के बीच जो माया के आवरण है उनकी ओर सकेत किया है। माया के आवरणो के कारण ही जीव परमात्मा को नही पहचान पाता।

जब······सोई—इन पक्तियो मे कवि ने वेदान्ती अद्वैत भावना की अभिव्यक्ति की है। कवि आत्मा और परमात्मा मे कोई अन्तर नही मानता, अन्तर तभी तक मालूम पडता है जब तक कि माया का आवरण बीच मे रहता है। माया के आवरण के हटते ही जीव ब्रह्म हो जाता है। उपनिषदों मे भी कहा है: 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति'।

हौं हौं······परछाईं—मनुष्य अहंकार से जब तक विमूढित रहता है तब तक माया उसे आक्रान्त किए रहती है। किन्तु जब उसका अहंकार नष्ट हो जाता है तब वह सिद्ध हो जाता है, अर्थात् ब्रह्म रूप हो जाता है। फिर माया की छाया नही रह जाती। इसी अवतरण मे कवि ने अहंकार को ही माया का प्रमुख हेतु कहा है। तुलसीदास ने भी अहंकारमूलक द्वैत भाव को ही माया कहा है—

'मैं अरु मोर तोर तै माया'

मारे······आवे—यहाँ पर परमात्मा की सर्वशक्तिमत्ता व्यजित की गई है और उसको शाश्वत और अजर-अमर बताया गया है। यह भारतीय वेदान्त के अनुरूप है।

गुरु······पेखा—यहाँ पर स्वत:संभवी वस्तु से वस्तुव्यंजना है कि गुरु सबसे महान् है, सर्वशक्तिमान है और वह सर्वज्ञ है।

जगत......देखा—गुरु सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान होने के साथ-साथ नश्वर जगत के रहस्य को जानने वाला है।

अन्ध......आवा—जीव की अवस्था मछली की तरह है जो संसार रूपी जल में तृष्णा से प्रेरित होकर इधर-उधर घूमती रहती है, उसे संसार की नश्वरता का बोध नही होता। यहाँ पर उपमा अलंकार से वस्तु व्यंग्य है।

गुरु......काठ—यह दोहा गीता के निम्नलिखित श्लोक का रूपान्तर सा प्रतीत होता है।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशे तिष्ठति अर्जुन।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥

अतएव स्पष्ट प्रमाणित है कि जायसी यहाँ पर गीता के अद्वैत भाव से बहुत अधिक प्रभावित हुए है।

सो पदमावति गुरु हौ चेला। जोग-तंत जेहि कारन खेला ॥
तजि वह बार न जानौ दूजा। जेहि दिन मिलै, जातरा पूजा ॥
जीह काढि भुइँ धरौ लिलाटा। ओहि कहँ देउँ हिये महँ पाटा ॥
को मोहि ओहि छुआवै पाया। नव अवतार देइ, नइ काया ॥
जीउ चाहि जो अधिक पियारी। माँगै जीउ देउँ वलिहारी ॥
माँगै सीस, देउँ सह गीवा। अधिक तरौ जौ मारै जीवा ॥
अपने जिउ कर लोभ न मोही। पेम वार होइ माँगौ ओही ॥
दरसन ओहि कर दिया जस, हौं सो भिखारी पतंग।
जौ करवत सिर सारै, मरत न मोरौ अंग ॥८॥

[इस अवतरण मे कवि ने रतनसेन का पदमावती के प्रति अनन्य प्रेम और श्रद्धा भाव प्रकट कराया है।]

रतनसेन कहता है वह पदमावती गुरु है और मैं चेला। उसी के कारण मैंने इतनी योग साधना की है। इसके द्वार को छोड़कर मै और किसी को नही जानता। जिस दिन वह मिलेगी उसी दिन मेरी यात्रा पूरी होगी। उसके ऊपर अपने प्राण निछावर कर मैं मस्तक पृथ्वी पर टेक रहा हूँ। उसी को हृदय मे मैं आसन दूँगा। मुझे उसके पदस्पर्श कौन करायेगा ? कौन नया जन्म देकर नया शरीर देगा ? वह मुझे अपने प्राण से भी अधिक प्रिय है, यदि वह प्राण माँगे तो वह भी उसके ऊपर निछावर कर दूँगा। यदि वह सिर माँगेगी तो गर्दन सहित सिर दे दूँगा और यदि वह मेरा वध करेगी तो भी मेरा उद्धार हो जाएगा। मुझे अपने प्राणो का लोभ नही है, प्रेम के द्वार पर खड़े होकर मैं उसकी याचना करता हूँ। इसके दर्शन दीपक के समान हैं और मैं भिखारी पतगे के समान हूँ। यदि वह हमारे सिर पर आरा चलाएगी तव भी मैं अपने शरीर को नही मोड़ूँगा।

टिप्पणी—जातरा पूजा—इसका अर्थ है कि मेरी यात्रा की सफलता तभी समझी जाएगी जब पदमावती के दर्शन होगे।

दर्शन···अंग—यहाँ पर कवि प्रौढोक्ति सिद्ध उपमा अलंकार से वस्तुव्यंग्य है। रतनसेन व्यजित करना चाहता है कि उसमे पदमावती के प्रति अपूर्व समर्पण और प्रेम भाव है।

करवत—प्राचीन काल मे साधना का एक रूप यह था कि अपने को या अपने सब से प्रिय व्यक्ति को आरे से चीर कर साध्य को प्रसन्न किया करते थे।

पदमावति कँवला ससि जोती। हँसे फूल, रोवै सब मोती॥
बरजा पितै हँसी औ रोजू। लागे दूत, होइ निति खोजू॥
जबहि सुरुज कहँ लागा राहू। तबहि कवँल मन भएउ अगाहू॥
बिरह अगस्त जो बिसमौ उएऊ। सरवर-हरष सूखि सब गयउ॥
परगट ढारि सकै नही आँसू। घटि-घटि माँसु गुपुत होइ नासू॥
जस दिन माँझ रैन होइ आई। बिगसत कँवल गएउ मुरझाई॥
राता बदन गएउ होइ सेता। भवँत भवँर रहि गए अचेता॥
चित जो चिता कीन्ह धनि, रोवै रोवँ समेत।
सहस साल सहि, आहि भरि, मुरुछि पड़ी, अचेत॥६॥

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती मे रतनसेन के प्रति पूर्वानुराग के उदय का वर्णन किया है तथा इससे उद्भुत होने वाली प्रेम विरह आदि भावनाओं की धार्मिक अभिव्यक्ति भी की है।]

पदमावती की कान्ति चन्द्रमा की ज्योति के समान है। वह हँसती है तो फूल झडते है और रोती है तो मोती बिखरते है। उसके पिता ने उसके रोने और हँसने पर नियन्त्रणा रखा है, दूतियाँ हर समय उसके हँसने और रोने की देख-रेख रखती है। जब से सूर्य रूपी रतन को गन्धर्वसेन रूपी राहु ने ग्रस्त कर लिया तभी से कमल रूपी पदमावती के हृदय मे उसका ज्ञान हो गया। विरह रूपी अगस्त का शोक छा गया और हर्ष का सरोवर सूख गया। प्रत्यक्ष वह आँसू नही बहा सकती। उसका मास घट कर अन्दर ही अन्दर छीज रहा है। जैसे दिन मे अन्धकार हो आया हो, उसी प्रकार कमल विकसित होते ही मुरझा गया और उसका लाल वर्ण सफेद पड गया। उसकी सुरभि के कारण चक्कर काटने वाले भौंरे अचेत हो गये। उसके मन मे इतनी चिन्ता थी कि उसका रोम-रोम रो उठा। सहस्रो भालो के समान दुःख उसके सहस्रो छिद्रो से भर गया और वह अचेत होकर मूच्छित हो गई।

टिप्पणी—पदमावती······ज्योति—यहाँ पर शशि ज्योति का अर्थ अत्यन्त उज्ज्वल और धवल है। यह अर्थ लक्षणलक्षणा से लिया गया है। यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि है। पदमावती के रूपलावण्य की अतिशयता ही व्यंग्य है।

हँसे……मोती—इस पंक्ति में भी अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि है। कवि की व्यंजना है कि पदमावती इतनी दिव्य सुन्दरी है कि उसकी हँसी फूल जैसी निर्मल और धवल एवं सुरभित और आँसू मोती जैसे सुन्दर निकलते है। यहाँ पर उपमा अलंकार भी व्यंग्य है।

रोजु=रोना।

जबहि……अगाहू—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

जस……मुरझाई—यहाँ पर उपमा अलंकार से वस्तुव्यंग्य है। पदमावती की अतिशय विरह व्यथा ही ध्वनित की गई है।

राता……सेता—यहाँ पर स्वत.सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंजना है। कवि ने पदमावती का विरहाधिक्य व्यंजित किया है। यहाँ पर वैवर्ण्य सात्विक भाव की व्यंजना की गई है।

भमति……अचेता—यहाँ पर कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध वस्तु से वस्तु व्यंज़ना है। कवि ने पदमावती के विरहाधिक्य की व्यंजना की है।

चित्त……चेत—इस अवतरण में कवि ने चिन्ता उद्वेग व्याधि आदि विरह की अवस्थाओ की व्यंजना की है।

विशेष—यहाँ पर कवि ने अभिलाषामूलक विरह का बड़ा संश्लिष्ट वर्णन किया है।

पदमावती सँग सखी सयानी। गनत नखत सब रैनि बिहानी॥
जानहि मरम कवँल कर कोंई। देखि बिथा विरहिन कै रोंई॥
बिरहा कठिन काल कै कला। बिरह न सहै, काल वरु भला॥
काल काढ़ि जिउ लेइ सिधारा। बिरह-काल मारे पर मारा॥
बिरह आगि पर मेलै आगी। बिरह घाव पर घाव वजागी॥
बिरह बान पर बान पसारा। विरह रोग पर रोग सँचारा॥
बिरह साल पर साल नवेला। बिरह काल पर काल दुहेला॥
तन रावन होइ सर चढ़ा, बिरह भएउ हनुवंत।
जारे ऊपर जारै, चित मन करि भसमंत॥१०॥

[इस अवतरण मे भी पदमावती की विरह व्यथा का ही वर्णन किया गया है।]

पदमावती के साथ जो चतुर सखियां थी उन्होने पदमावती रूपी शशि की पीड़ा का अनुमान कर लिया था। कमल का रहस्य कुमुदनियाँ ही जानती है। वे कुमुदनियाँ रूपी सखियाँ कमल रूपी पदमावती की व्यथा से व्यथित होकर रो पड़ी। विरह बड़ा कठिन होता है। वह काल का ही एक रूप है। विरह नही सहा जाता। उससे तो काल का सहन करना सरल है। काल तो एक वार प्राण लेकर चला जाता

है। किन्तु विरह काल मारने पर भी मारता है। विरह अग्नि जले हुए को भी जलाती है और विरह की वज्राग्नि घाव पर घाव करती है, विरह बाण पर बाण मारता है। विरह रोग पर रोग सचारता है। विरह दुख पर नया दुख जनता है। विरह काल से भी अधिक भयकर काल है। ऐसा मालूम होता था कि शरीर रावण था जोकि चिता पर बैठा हुआ था और विरह रूपी हनुमान ने उसे भस्म कर दिया था। वह जले को जला रहा था और चित्त एव मन तक को भस्म कर रहा था। वह जले को जला रहा है और भस्म करके भी नही छोड़ना चाहता है।

टिप्पणी—गुनी······जानि—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार है। नक्षत्र रूपी सखियो ने पदमावती रूपी शशि की अन्तर्व्यथा को अनुमान से जान लिया। 'गुनि के' क्रिया यहाँ पर अनुमान करने के अर्थ मे प्रयुक्त हुई है।

जानहिं······कोई—यहाँ पर भी रूपकातिशयोक्ति अलंकार है। कुमुदनियाँ रूपी सखियाँ ही कमल रूपी पदमावती के हृदय के रहस्य को जानती है।

विरह······दुहेला—इन पक्तियो मे सर्वत्र व्यतिरेक अलंकार से कवि ने विरह व्यथा की अतिशयता व्यजित की है। अतः यहाँ पर कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अलं-कार से वस्तुव्यंग्य है।

तन······भसमन्त—यहाँ पर रूपक अलकार से कवि ने पदमावती के विरह की जनित अग्नि की अतिशयता ही व्यजित की है।

कोई कुमोद पसारहि पाया। कोइ मलयागिरि छिरकहि काया॥
कोई मुख सीतल नीर चुवावै। कोई अँचल सौ पौन डोलावै॥
कोई मुख अमृत आनि निचोवा। जनु विप दीन्ह अधिक धनि सोवा॥
जोवहि साँस खिनहिं खिन सखी। कव जिउ फिरै पौन पर पँखी॥
विरह काल होइ हिये पईठा। जीउ काढ़ि लै हाथ वईठा॥
खिनहि मौन बाधे, खिन खोला। गही जीभ मुख आव न वोला॥
खिनहि वेझि कै वानन्ह मारा। कँपिकँपि नारि मरै वेकरारा॥
कैसेहु बिरहु न छाड़ै, भा ससि गहन गरास।
नखत चहूँ दिसि रोवहि, अधर धरित अकास॥११॥

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती के प्रति व्यक्त की गई सखियो के सेवा भाव की व्यंजना की है।]

कोई सखी उसके पैर दवा रही थी, कोई उसके शरीर पर मलयगिरि चन्दन छिड़क रही थी, कोई मुख पर शीतल जल का सिंचन कर रही थी, कोई अंचल से पवन डोला रही थी। कोई आकर मुख में अमृत डाल रही थी। किन्तु वह अमृत विष रूप होकर लगा और उससे वह मानो अधिक सो गई। सखियाँ क्षण-क्षण उसके साँसों को देखती थी। न जाने पवन के साथ पक्षी की तरह जीव प्राणो के साथ

शरीर में फिर लौट आवे। विरह काल बन करके उसके हृदय मे बैठ गया था। वह उसके प्राणो को निकाल करके बैठा हुआ था। क्षण भर मे वह प्राणों को बाँध लेता था और क्षण भर मे वह उसके प्राणों को ढीला कर देता था। काल ने उसकी जीभ पकड़ रखी थी जिसके कारण वह बोल नही पा रही थी। क्षण भर मे वह विरह बाणों से भेद कर मारना चाहता था तथा मार रहा था। पदमावती नारी पल-पल में व्याकुल होकर कांप रही थी।

विरह किसी प्रकार भी उसे नही छोड़ रहा था। चन्द्रमा को ग्रहण लगा था। नक्षत्र रूपी सखियां रो रही थी। पृथ्वी और आकाश में अन्धकार छाया जा रहा था।

टिप्पणी—कोई······सोवा—वहाँ पर अमृत विरहोद्दीपन के रूप मे चित्रित किया गया है।

विरह······विकरारा—यहाँ पर इन पंक्तियो मे विरह का मानवीकरण किया गया है। उसे काल के रूप मे चित्रित किया गया है।

कब······पंखी—यहाँ पर उपमा अलंकार व्यंग्य है। जिस प्रकार पक्षी हवा के साथ आ जाता है उसी प्रकार प्राण कदाचित् श्वास के साथ आए, यही कामना थी इव सब सखियों की।

कैसहुँ······रोवहिं—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

अन्धर धरति अकास—वाच्यार्थ है कि आकाश और पृथ्वी मे अन्धकार छाया हुआ था। इस स्वतःसम्भवी वस्तु से कवि ने अति व्यापक वैराग्य भाव रूप वस्तु की व्यंजना की है अतएव यहाँ स्वतःसम्भवी वस्तु से वस्तुव्यंग्य है।

विशेष—यहाँ पर कवि ने नायिका की व्याधि की अवस्था तथा मरण और जड़ता विरह अवस्थाओ का संकेत किया है।

घरी चारि इमि गहन गरासी। पुनि बिधि हिये जोति परगासी॥
निसँस ऊभि भरि लीन्हेसि साँसा। भा अधार, जीवन कै आसा॥
बिनवहिं सखी, छूटि ससि राहू। तुम्हरी जोति जोति सब काहू॥
तू ससि-बदन जगत उजियारी। केह हरि लीन्ह, कीन्ह अँधियारी॥
तू गजगामिनि गरब-गहेली। अब कस आस छाँड़ तू, बेली॥
तू हरि लंक हराए केहरि। अब कित हारि करति है हिय हरि?॥
तू कोकिल-बैनी जग मोहा। केइ व्याधा होइ गहा निछोहा?॥
कवँल-कली तू पदमिनी गई निसि, भएउ बिहान।
अबहुँ, न सम्पुट खोलसि जब रे उआ जग भानु॥१२॥

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती की विरह व्याधि से थोड़ा स्वस्थ होने का चित्र खीचा है।]

पदमावती चार घड़ी तक विरह जनित व्याधि और जड़ता की स्थिति से ग्रसित रही। फिर भगवान ने उसके हृदय मे चेतना की नई ज्योति उत्पन्न की जिससे कि वह एक बार निःश्वास छोडकर फिर श्वास लेने लगी मानो कि मर कर उसने पुनर्जीवन प्राप्त किया हो। वे श्वासे उसके जीवन का आधार और आशा का हेतु बन गई। सखियाँ प्रार्थना करने लगी—'हे चांद के समान सुन्दर सखि ! तू ससार का प्रकाश रूप है। किसने तुम्हारी ज्योति का हरण करके अन्धकार रूप कर दिया था ? हे गजगामिनी ! तू बड़ी गर्वीली थी। हे लता के समान सुन्दरी पदमावती ! अब तू आशा का त्याग क्यो कर रही है ? तूने सिंह से उसकी कटि छीन कर उसे परास्त कर दिया। अब तू हार मान करके निराश क्यो हो रही है। हे कोकिलबैनी। तूने ससार को मोहित कर रखा है। अब कौन सी व्याधि ने तुझको पकड़ लिया है ?

हे पदमावती ! तू कमल कली के समान है। अब रात बीत गई है। प्रातः आ गया है। जब सूर्य उदय हो गया तब भी तू अपना सम्पुट क्यो नही खोल रही है।

टिप्पणी—घरी······गरासी—इस पंक्ति मे गहन गरासी से कवि की व्यंजना है व्याधि जड़ता और मरण आदि विरह अवस्थाओं से व्यथित थी। यहाँ पर गहन गरासी मे अर्थान्तरसंक्रमित वाच्यध्वनि है।

पुनि······परगासि—यहाँ पर कवि ने यह व्यंजित किया है कि सच्चे प्रेमी के प्राणो की रक्षा भगवान करता है। तभी तो उसे विरहजनित व्यथाओं को सहन करने की शक्ति देता है। यहाँ पर कवि प्रौढोक्ति सिद्ध वस्तु से वस्तु-व्यजना है।

तुम्हरि······काँहू—यहाँ पर सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार से कवि ने वस्तु व्यजना की है। पदमावती के दिव्य और परमात्मस्वरूप की व्यजना ही यहाँ पर वस्तु रूप मे अभीष्ट है। कठोपनिषद् मे लिखा है 'तस्य भाषा सर्वमिदं विभाति' अर्थात् उस परमात्मा के प्रकाश से ही जगत् मे सब कुछ प्रकाशित है। इस प्रकार यहाँ पर कवि उपनिषदो के प्रतिबिम्बवाद से प्रभावित प्रतीत होता है।

तू शशि बदन—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि है। लक्षणलक्षणा-गत अर्थ है कि तू परम सुन्दरी है। रूपातिशयता ही यहाँ पर व्यग्य है। कुछ लोग ऐसे स्थलो पर रूपक अलकार व्यग्य मानते है। उनका कहना है कि कवि यह व्यंजित करना चाहता है कि नायिका चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाली थी।

तू······केहरि—यहाँ पर व्यतिरेक अलकार व्यग्य है।

कमल······विहान—इस पक्ति मे निशि का अर्थ है नैराश्य और विहान का अर्थ है आशा। ये दोनो ही अर्थ अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि मूलक है।

कमल······भानु—सम्पूर्ण अवतरण मे रूपक और रूपकातिशयोक्ति अलकार है। इन अलकारो से कवि ने यह व्यजित करने की चेष्टा की है कि रतनसेन अब आने वाला है। निराशा का समय व्यतीत हो गया है। आशा का संचार

हो रहा है अतएव तू अब प्रसन्न होकर विरह भाव का त्याग कर है। यह अर्थ वस्तु रूप है। अतः यहाँ पर स्वतःसम्भवी अलंकरो से वस्तु व्यंजना है।

भानु-नाँव सुनि कँवल बिगासा। फिरि कै भौंर लीन्ह मधु बासा॥
सरद चन्द मुख जबहिं उघेली। खंजन-नैन उठे करि केली॥
बिरह न बोल आव मुख ताई। मरि-मरि बोल जीव बरियाई॥
दवै बिरह दारुन, हिय काँपा। खोलि न जाइ विरह दुःख झाँपा॥
उदधि समुद जस तरँग देखावा। चख घूमहिं, मुख बात न आवा॥
यह सुनि लहरि-लहरि पर धावा। भँवर परा, जिउ थाह न पावा॥
सखी आनि विष देहु तौ मरऊँ। जिउ न पियार, मरै का डरऊँ॥
खिनहि उठै, खिन बूड़ै, अस हिय कँवल सँकेत।
हीरामनहि बुलावहि, सखी! गहन जिउ लेत॥१३॥

[इस अवतरण मे कवि ने, रतनसेन के नाम को सुनकर पदमावती के हृदय मे जो चेतना और नवीन विरहानुभूति जाग्रत हुई थी, उसका वर्णन किया है।]

रतनसेन रूपी सूर्य का नाम सुनकर कमल रूपी पदमावती प्रफुल्लित हो उठी। भौरे मधु और सुरभि को लेने के लिए फिर दौड़ आए। जब उसका शरद्कालीन चन्द्र के समान चन्द्रमुख प्रकाशित हो उठा तो उसके खजन रूपी नेत्र फिर से क्रीड़ा करने लगे किन्तु फिर भी विरह के कारण वाणी मुख से नही निकल रही थी और वह केवल 'मैं मरी मैं मरी' इस प्रकार के वचन बोलती थी। विरह की भयानक दावाग्नि के भय से उसका हृदय काँपता था। विरह की अग्नि जो दुःख से आच्छादित थी वह उद्घाटित न हो पाती थी। विरह रूपी जलते हुए समुद्र मे जैसे लहरे उठ कर उसी मे समा जाती थी उसी प्रकार उसके नेत्र तो घूमते थे लेकिन वाणी मुख से नहीं निकलती थी। अब लहर पर लहर उठ रही थी। भँवर मे पड़ा हुआ जीव थाह नही पा रहा था। वह सखियो से विष माँग रही थी ताकि उसके प्राण निकल जाएँ। उसे अपना जीव नही प्यारा था। वह मरने से नही डरती थी।

उस विरह समुद्र मे वह क्षण भर डूबती थी और क्षण भर उतराती थी। उसके हृदय से ऐसा ही आभास हो रहा था और वह कह रही थी कि हे सखी, हीरामन को बुलवा दो। विरह रूपी राहु ग्रहण करके मेरे प्राण लिए जा रहा है।

टिप्पणी—भानु········बिगासा—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार है। कवि ने इस अलकार से व्यजित किया कि रतनसेन भेंट के लिए आने वाला है। इस समाचार को पाकर पदमावती प्रफुल्लित हो उठी। अतएव यहाँ पर कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अलंकार से वस्तु व्यंग्य है।

फिरि········वासा—यहाँ पर भी रूपकातिशयोक्त अलंकार है और उससे वस्तुव्यंग्य है। व्यजना है कि पदमावती में नई चेतना आने पर उनके शरीर की सुरभि फिर से आ गई। उसमे हाव-भावो का फिर से संचार हो गया।

विशेष—इस अवतरण मे कवि ने पदमावती के विरह का बडा मार्मिक चित्रण किया है। उद्वेग प्रलाप आदि अवस्थाओ के लिए यह पंक्तियाँ प्रसिद्ध हैं।

चेरी धाय सुनत खिन धाई। हीरामन लेई आई वोलाई॥
जनहु वैद औपद लेइ आवा। रोगिया रोग मरत जिउ पावा॥
सुनत असीस नैन धनि खोले। विरह-वैन कोकिल जिमि वोले॥
कॅवलहि विरह-बिथा जस बाढ़ी। केसर-वरन पीर हिय गाढ़ी॥
कित कँवलहि भा प्रेम-अँकूरू। जौपै गहन लेहि दिन सूरू॥
पुरइनि छाँह कँवल कै करी। सकत विथा सुनि अस तुम हरी॥
पुरुष गँभीर न वोलहि काहू। जो वोलहि तो और निवाहू॥
एतनै वोल कहत मुख पुनि होइ गई अचेत।
पुनि को चेत सँभारै उन्है कहत मुख सेत॥१४॥

[इस अवतरण मे हीरामन पदमावती के सामने लाया जाता है। वह रतनसेन की विरह दशा का वर्णन कर मिलन की आशा जाग्रत करता है।]

धाय जो कि दासी थी, वात सुनकर उसी क्षण दौड़ी और हीरामन को वुलाकर ले आई। हीरामन को देखकर ऐसा लगा कि मानो वैद्य औपधि ले आया हो अथवा रोगी को रोग मे मरते हुए प्राण मिल गए हो। हीरामन से आशीर्वाद सुनकर पदमावती ने नेत्र खोले और कोयल के समान विरह के वचन कहे। कमल मे जैसे ही विरह की व्यथा वढी उसका केसरिया रंग पीला पड़ गया। जव दिन मे ही सूर्य को ग्रहण लगना था तो कमल के हृदय मे सूर्य का प्रेम उत्पन्न ही क्यों हुआ। पुरईन की छाया में जैसे कमल की कली प्रसन्न हो जाती है, उसी प्रकार तुमने हमारी सारी व्यथा यहाँ आकर हर ली है। गम्भीर पुरुष किसी से कभी वोलते नही है और जो वोलते हैं वह अन्त समय तक निभाते है।

इतना कहकर वह फिर अचेत हो गई। जव उसे फिर सज्ञा प्राप्त हुई तो फिर वैसे ही कहते हुए उसका मुख सफेद हो गया।

टिप्पणी—कित········सूरू—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार है और काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य है।

पुरइन········हरि—यहाँ पर उपमा अलंकार है। उपमा अलंकार से कवि ने हीरामन की अत्यन्त सहानुभूति एव स्नेहपूर्ण मध्यस्थता व्यंजित की है। अतः स्वतःसम्भवी अलकार से वस्तु व्यग्य है।

पुरुष········निवाहु—यह एक सुन्दर सूक्ति है।

औरर दगध का कहौं अपारा। सती सो जरै कठिन अरु झारा ।।
होइ हनुवन्त पैठहै कोई। लंकादाहु लागु करै सोई ।।
लंका बुझी आगि जौ लागी। यह न बुझाइ आँच बज्रागी ।।
जनहु अगिनि के उठहि पहारा। औ सब लागहिं अंग अँगारा ।।
कटि-कटि माँसु सराग पिरोवा। रकत कै आँसु माँसु सब रोवा ।।
खिन एक बार माँसु अस भूंजा। खिनहिं चबाइ सिंघ अस गूंजा ।।
एहिरे दगध हुँत उतिम मरीजै। दगध न सहिय जीउ बस दीजै ।।
जहँ लगि चन्दन मलयगिरि औ सायर सब नीर।
सब मिली आइ बुझावहि, बुझै न आगि सरीर ।।१५।।

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती की विरह ज्वाला के विराट् रूप का वर्णन किया है। यह उक्ति कवि की अपनी है।]

उस ज्वाला के विषय मे क्या कहूँ उसकी इतनी भयंकर लपटे थी कि सती ही उसको सहन कर सकती थी। उसके शरीर में मानो कोई हनुमान बनकर बैठ गया था जिससे शरीर मे लंकादाह-सा होने लगा था। लंका मे जो आग लगी थी वह तो बुझ गई थी किन्तु यह ऐसी वज्राग्नि थी कि कभी बुझ नही सकती थी। वह ऐसी लग रही थी मानो कि अग्नि के पहाड़ टूट रहे हों। वह सारे अगो मे अंगारे की तरह अनुभूत हो रही थी। ऐसा मालूम होता था कि मानो शरीर का मांस काट-काट कर सरागो में पिरो दिया गया था। इसी से सारा मास पिंड रक्त के आँसू बहा रहा था। क्षण भर तो वह विरह रूपी सिंह बुरी तरह से मांस खाता था और क्षण मे सिंह की तरह गरज कर मानो चबाता था। इस विरह मे जलने से मरना अच्छा है। जहाँ तक मलयागिरि मे चन्दन है और जहाँ तक समुद्र मे जल है वह सब मिलकर भी शरीर से उत्पन्न की गई विरह की ज्वाला को शान्त नही कर सकते।

टिप्पणी—सती·········झारा—डाक्टर अग्रवाल ने इसका पाठान्तर दिया है जो इस प्रकार है—

'सुने सो जरे कठिन असि झारा'

हमे यह पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। यहाँ पर चपलातिशयोक्ति अलंकार है जिससे उक्ति में सौंदर्य आ गया है।

होइ···सोइ—यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलंकार है। इस उत्प्रेक्षा अलंकार से कवि ने विरह की अतिशय दाहकता व्यंजित की है। अतः यहाँ पर स्वतःसम्भवी अलंकार से वस्तु॰व्यंग्य है।

लंका·········बज्रागि—यहाँ पर व्यतिरेक अलंकार व्यंग्य है।

जानहु···अँगारा—यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। विरह की अतिशय दाहकता ही व्यंग्य है।

कटि........गूँजा—यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलंकार व्यंग्य है और उससे कवि ने विरह की अतिशय दारुणता व्यजित की है।

जहाँ........शरीर—यहाँ पर असम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार से विरह की दारुणता और अतिशय दाहकता व्यग्य है। अतएव यहाँ पर कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अलंकार से वस्तु व्यंग्य है।

विशेष—इस अवतरण मे कवि ने पदमावती के विरह के विराट् स्वरूप की व्यंजना करके रहस्यवाद की सृष्टि की है।

हीरामन जौ देखेसि नारी। प्रीत-वेल उपनी हिय-वारी॥
कहेसि कस न तुम्ह होहु दुहेली। अरुझी पेम जो पीतम वेली॥
प्रीति-बेलि जिनि अरुझै कोई। अरुझे, मुए न छूटै सोई॥
प्रीति-बेलि ऐसै तन डाढ़ा। पलुहत सुख, वाढ़त दुःख बाढ़ा॥
प्रीति वेलि कै अमर को बोई ?। दिन-दिन वढ़ै, छीन नहिं होई॥
प्रीति बेलि सँग विरह अपारा। सरग पतार जरै तेहि झारा॥
प्रीति अकेली वेलि चढ़ी छावा। दूसर बेलि न सँचरै पावा॥
प्रीति बेलि अरुझै जव तव सुछाहँ सुख-साख।
मिलै पिरीतम आइकै, दाख-वेलि-रस चाख॥१६॥

[इस अवतरण मे कवि ने प्रेम के स्वरूप का दार्शिनिकीकरण किया है।]

उस हीरामन ने जव पदमावती को देखा तो वह समझ गया कि उसके हृदय रूपी वाटिका मे प्रेमरूपी लता उत्पन्न हो गई है। अतएव वह उससे बोला कि तुम दुःखी क्यो न हो अर्थात् तुम्हारा दुःखी होना स्वाभाविक है क्योकि तुम प्रियतम की प्रेम रूपी लता मे उलझ गई हो। ईश्वर करे उस प्रेम की लता मे कोई न उलझे। उस लता मे जो उलझ जाता है वह मरने पर भी नही छूटता। प्रेम की लता शरीर को इस प्रकार जलाती है कि उसके पनपने पर सुख की अनुभूति होती है परन्तु जब वह बढ जाती है तो दुःख का कारण वन जाती है। इस अमर प्रीतिलता को किसने जन्म दिया। यह दिन-दिन वढती है, कभी क्षीण नही होती। प्रीति की लता के साथ अपार विरह रहता है स्वर्ग और पाताल उसकी ज्वाला से जलते हैं। प्रीति-लता अकेले ही पनप कर फैलती है। उसके सामने कोई दूसरी लता सचरित भी नही होने पाती। प्रेम की लता मे यदि कोई उलझता है तो उसकी छाया मे सुख और शान्ति मिलती है। किन्तु उस अंगूर की वेल के रस का स्वाद तव चखने को मिलता है जब प्रियतम से मिलाप होता है।

टिप्पणी—नारी—नारी में शब्दशक्ति उद्भव वस्तुध्वनि है। नारी का वाच्यार्थ यहाँ पर नाड़ी है और व्यग्यार्थ पदमावती है।

प्रीति·········बारी—इसमें रूपक अलंकार है। 'बारी' मे शब्द शक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है 'वारि' का वाच्यार्थ वाटिका है और व्यंग्यार्थ बाला है। कवि की व्यंजना है कि कुमारी बाला के हृदय में जब प्रेमलता उत्पन्न हो जाती है तो वह फिर बाला उससे अपना पिंड नही छुडा सकती है।

सरग·········झारा—यहाँ पर अतिशयोक्ति अलंकार से पदमावती के प्रेम की विराटता व्यंजित की गई है। यह व्यंजना वस्तु रूप है। अतः यहाँ पर कवि प्रौढ़ोक्तिसिद्ध अलंकार से वस्तुव्यंग्य है।

पदमावति उठि टेकै पाया। तुम्ह हुँत देखैं पीतम-छाया॥
कहत लाज औ रहै न जीऊ। एक दिसि आगि दुसर दिसी पीऊ॥
सूर उदयगिरि चढ़त भुलावा। गहनै गहा, कँवल कुँमिलाना॥
ओहट होइ मरौ तौ झूरी। यह सुठि मरौ जो नियर न दूरी॥
घट मँह निकट, विकट होइ मेरू। मिलहि न मिले, परा तरु फेरू॥
तुम्ह सो मोर सेवक गुरु देवा। उतरै पार तेही बिधि खेवा॥
दमनहिं नलहिं जो हँस मेरावा। तुम्ह हीरामन नाँव कहावा॥
मूरि संजीवन दूरि है सालै सकती-बानु।
प्रान मुकुत अब होत है, वेगि देखावहु भानु॥१७॥

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती की शुक के प्रति प्रार्थना वर्णित की है।]

पदमावती ने उठ करके हीरामन के पैर पकड़ लिए, और बोली तुम्हारे माध्यम से ही मुझे प्रियतम की छाया मिलेगी। यह कहते हुए मुझे लाज लगती है और नही कहूँ तो बिना कहे रहा नही जाता। एक ओर अग्नि और दूसरी ओर प्रियतम रतनसेन रूपी सूर्य उदयगिरि रूपी गढ पर चढते हुए मार्ग भूल गया। अतः राहु रूपी गन्धर्वसेन के द्वारा पकड़ा गया और इसी से चाँद रूपी मै कुम्हला गई हूँ। उससे दूर रहकर भी विरह मे मैं सूखकर नही मरी किन्तु अब मैं मर रही हूँ, जबकि वह पास में है दूर नही है। वह हमारे शरीर के पास में ही है किन्तु सुमेरु पर्वत के समान अगम्य है। ऐसा फेर पड़ गया है कि खोजने पर भी नही मिलता। तुम्हारे जैसा गुरु हमारा सेवक है। अतएव आप उस प्रकार हमारी जीवन नौका खेने का प्रयत्न करें, जिससे कि मैं पार उतर जाऊँ। हस ने दमयन्ती को नल से मिला दिया था। तुम्हारा हीरामन नाम सार्थक तभी होगा जब तुम हमे रतनसेन से मिला दोगे। रतनसेन रूपी सजीवन मूर दूर है। विरह रूपी शक्ति वाण दुःख दे रहा है। प्राण अब छूटना चाहते है, शीघ्र ही रतनसेन रूपी सूर्य के दर्शन करा दो।

टिप्पणी—सूर··················कुँमिलाना—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

ओहट.........झूरी—इसका पाठान्तर है 'ओहटें होइ मरिउँ नहीं झूरी'। यह पाठ हमें अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है क्योंकि इसका अर्थ स्पष्ट है कि जब मैं दूर थी तब विरह में सूखकर नहीं मरी। शुक्ल जी के पाठ में यह अर्थ बहुत खीचखांचकर लगाना पड़ता है। अतः हमें ग्राह्य नहीं है।

घट.........फेरू—यहाँ पर मेरू के शब्द-शक्ति उद्भव वस्तुध्वनि है। इससे कवि ने शरीरस्थ सुषुम्ना साधना की ओर संकेत किया है। योग ग्रन्थों में मूलाधार से लेकर सहस्रार तक के विस्तार को मेरु कहा गया है। कवि की व्यंजना है कि साढे तीन हाथ के पिंड में जो सुषुम्ना रूपी सुमेरु है उसकी सिद्धि में बडा समय लग जाता है। फिर भी सिद्धि नही मिल पाती।

तुम.........कहावा—यहाँ पर हीरामन में रूढि वैचित्र्य वक्रता है।

मूरी.........भानु—यहाँ पर कवि ने लक्ष्मण के संजीवनी से पुनर्जीवित होने की कथा संदर्भित कर यह व्यंजित करने की चेष्टा की है कि पदमावती विरह रूपी शक्ति वाणों से इतनी व्यथित थी कि वह मृत्यु से शीघ्रातिशीघ्र आलिंगन करना चाहती थी परन्तु इससे पहले वह रतनसेन रूपी सूर्य के दर्शन करने की कामना भी करती थी। लक्ष्मण के शक्तिवाण की कथा इस प्रकार है। मेघनाथ से युद्ध करते समय लक्ष्मण को मेघनाथ ने शक्ति वाण मार दिया। वे मूर्च्छित हो गए। हनुमान जी लंका से सुखेन वैद्य को ले आए। उन्होंने कहा यदि सूर्य उदय होने से पहले उन्हे सजीवनी मिल जाएगी तो उनके प्राण बच जाएँगे, नही तो प्राण नही बचेंगे। हनुमान जी संजीवनी बूटी लेने गए और प्रातः होने से पहले ही वह उसे ले आए। यहाँ पर कवि ने उसी कथा को अपने ढग पर संदर्भित किया है। लक्ष्मण की मृत्यु का भय था इसलिए राम सूर्योदय नही चाहते थे। पदमावती को मृत्यु का भय नहीं था, इसलिए उसने सूर्योदय को कामना की।

हीरामन भुइँ, धरा लिलाटू। तुम्ह रानी जुग-जुग सुख-पाटू॥
जेहि के हाथ सजीवन मूरी। सो जानिय अब नाहीं दूरी॥
पिता तुम्हार राज कर भोगी। पूजै बिप्र मरावै जोगी॥
पौरि-पौरि कोतवार जो बैठा। पेमक लुबुध सुरँग होइ पैठा॥
चढ़त रैनि गढ़ होइगा भोरू। आवत बार धरा कै चोरू॥
अब लेइ गढ देई ओहि सूरी। तेहि सौं अगाह बिथा तुम्ह पूरी॥
अब तुम जिउ, काया वह जोगी। कया क रोग जानु पै रोगी॥
रूप तुम्हार जीउ कै (आपन) पिंड कमावा फेरि।
आपु हेराइ रहा, तेहि काल न पावै हेरि॥१८॥

[इस अवतरण मे हीरामन ने पदमावती को सांत्वना देकर प्रिय मिलन की आशा दिखाई है।]

हीरामन ने पृथ्वी पर अपना सिर रखा और कहा कि हे रानी, तुम्हारे लिए युग-युग तक सुख का सिंहासन बना रहे। जिसके हाथ संजीवनी है उसे अब दूर मत समझिए। तुम्हारे पिता राज्य के भोगी है। वे ब्राह्मणों की तो पूजा करते है, परन्तु जोगियों को मरवा देते है। गढ़ की प्रत्येक पेरी पर कोतवाल बैठे है। इसलिए प्रेम के लोभी ने गढ़ में सुरंग करके प्रवेश किया था। रात्री में गढ पर चढते हुए सवेरा हो गया। द्वार पर आते ही लोगों ने चोर समझ कर पकड लिया। अब वे उसे सूली देने के लिए ले गए। इसीलिए तुम्हारे हृदय में अगाध व्यथा भर रही है। तुम प्राणरूपी हो और वह जोगी काया रूप है। काया के रोग को रोगी ही जानता है। अपने जीव को तुम्हारे रूप का बना करके उस रतनसेन ने दूसरा शरीर प्राप्त किया है। इसीलिए वह अपना अपनत्व खो बैठा है? इसलिए काल तुम्हे खोज करके नहीं पा रहा है।

टिप्पणी—रूप·········हेरि—इस अवतरण में परकाय-प्रवेश विद्या के प्रति आस्था प्रकट की गई है और उसका एक नया रूप सामने रखा गया है। जायसी के समय में योगक्रिया के द्वारा परकायप्रवेश किया जाता था किन्तु जायसी ने प्रेम के द्वारा भी परकायप्रवेश की बात कही है। इससे उन्होने प्रेम मार्ग को योग मार्ग के समकक्ष प्रकट किया है।

आपु·········हेरि—डाक्टर अग्रवाल ने इसका पाठान्तर दिया है। 'आपु हेराइ रहा तेहि खँड होइ काल न पावे हेरि'। यह पाठ हमे अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। इससे अर्थ मे चमत्कार आ गया है। इस पाठ को स्वीकार करने पर पक्ति का अर्थ किया जाएगा पदमावती के शरीर के एक खण्ड अर्थात् हृदय मे उसने अपना सारा अपनत्व एवं व्यक्तित्व अन्तर्निहित कर दिया है। अतएव काल उसको नही पा सकता। यहाँ पर स्वतःसम्भवी वस्तु से हेतूत्प्रेक्षा अलंकार व्यग्य है।

हीरामन जो बात यह कही। सूर के गहन चाँद तब गही ॥
सूर के दुःख सौ ससि भइ दुःखी। सो कित दु.ख मानै करमुखी ?॥
अब जौ जोगि मरै मोहि नेहा। मोहि ओहि साथ धरनि गगनेहा ॥
रहै न करौ जनम भरि सेवा। चलै त, यह जिउ साथ परेवा ॥
कहेसि कि कौन करा है सोई। पर-काया परवेस जो होई ॥
पलटि सो पंथ कौन बिधि खेला। चेला गुरू-गुरू भा चेला ॥
कौन खंड अस रहा लुकाई। आवै काल, हेरि फिरि जाई ॥
चेला सिद्धि सो पावैं, गुरु सौ करै अछेद।
गुरू करै जो किरिया, पावै चेला भेद ॥१९॥

[इस अवतरण मे रतनसेन को सूली देने के समाचार को सुनकर पदमावती के हृदय मे जो अन्तर्वेदना उत्पन्न हुई यहाँ पर कवि ने उसका वर्णन किया है।]

हीरामन ने जब यह बात कही कि राजा को सूली पर चढाने के लिए ले जाया गया है तो रतनसेन रूपी सूर्य के ग्रहण के साथ-साथ पदमावती रूपी चाँद को भी ग्रहण लग गया। रतनसेन रूपी सूर्य के दु.ख से चाँद रूपी पदमावती भी दु'खी हुई। जो करमुखी है अर्थात् पापिनी है वह भला पति के दुःखी होने पर कैसे दुःखी हो सकती है। अब यदि वह जोगी हमारे प्रेम में मर जाता है तो फिर हमारा उसका साथ धरती मे ही नही, आकाश मे भी होगा। यदि वह बच गया तो मैं जन्म भर उसकी सेवा करूँगी। यदि वह जाएगा तो उसके साथ परेवा बनकर मैं भी जाऊँगी। हे गुरु रूपी शुक, तुम मुझे वह उपाय बताओ जिससे कि परकायप्रवेश होता हो। वह उलट कर किस विधि से या मार्ग से साधना मे संलग्न हो कि गुरु चेला हो गया और चेला गुरु हो गया। शरीर मे जो धूप और छाँह लगती है उसे शरीर नही जानता वरन् आत्मा जानती है। न मालूम वह शरीर के किस खण्ड में छिप रहा है कि काल आकर उसे खोज करके न मिलने पर लौट जाता है। वही चेला सिद्धि प्राप्त कर पाता है जो गुरु से अद्वैत भाव प्राप्त करता है। जब गुरू कृपा करते हैं तभी चेला रहस्य को जान पाता है।

टिप्पणी—सूर·········गहि—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलकार है। रूपकातिशयोक्ति के साथ यहाँ असंगति अलंकार का संकर भी है।

सूर·········दुःखी—यहाँ पर भी रूपकातिशयोक्ति और असगति का संकर है।

सो·········करमुखी—यहाँ पर पूरी पंक्ति मे काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यग्य है। 'करमुखी' मे लक्षणलक्षणा है और इसका अर्थ है पापिनी।

पलटि·········जाई—इन पंक्तियो मे कवि ने व्यजित किया है कि रतनसेन ने पदमावती के प्रति इतनी अखंड प्रणय साधना की है कि दोनों मे कोई अन्तर नही रह गया है। इस अभेदता के कारण ही रतनसेन के प्राण ग्रहण नही किए जा सकते। यहाँ पर इन पक्तियो मे काकु वैशिष्ट्य व्यग्य है।

अबु रानी तुम गुरु वह चेला। मोहि बूझहु कै सिद्ध नवेला॥
तुम्ह चेला कहँ परसन भई। दरसन देइ मंडप चलि गई॥
रूप गुरू कर चेलै डीठा। चित समाइ होइ चित्र पईठा॥
जीउ काढ़ि लै तुम्ह अपसई। वह भा कया, जीउ तुम्ह भई॥
कया जो लाग धूप औ सीऊ। कया न जान, जान पै जीऊ॥
भोग तुम्हार मिला ओहि जाई। जो ओहि बिथा सो तुम्ह कहँ आई॥
तुम ओहि के घट, वह तुम माहाँ। काल कहाँ पावै वह छाहाँ?॥
अस वह जोगी अमर भा परकाया-परवेश।
आवै काल, गुरुहि तहँ देखि सो करै अदेस॥२०॥

[इस अवतरण में सुक ने पदमावती से रतनसेन के प्रति उसका जो प्रणय भाव है उससे सम्बन्धित वचन कहे है ।]

हे रानी ! तुम गुरु हो और वह चेला है, तुम मुझसे उस नए सिद्ध चेले के विषय में क्या पूछती हो (व्यंजना है कि तुम स्वयं उसकी परीक्षा ले चुकी हो और उसके प्रणय भाव से परिचित हो) । तुम उस चेले से प्रसन्न होकर उसके दर्शन करने के लिए मण्डप तक गई थी। चेले ने गुरु का रूप देखा, वह उसके चित्त में समा गया और चित्र बनकर समाविष्ट हो गया । उसका प्राण लेकर तुम चली आई । वह केवल काया मात्र रह गया और जीव लेकर तुम स्वयं चली आई । तुम्हारा भोग उसे मिल गया और तुम्हारी व्यथा उसको मिल गई । तुम उसके शरीर में थी और वह तुम्हारे शरीर मे था। काल फिर उसकी छाया कैसे प्राप्त कर सकता था ।

वह जोगी तुम्हारे परकाया शरीर में प्रवेश करके ऐसा अमर हुआ कि काल आता है उसके घट में तुम्हे वह देखता है और प्रणाम करके चला जाता है ।

टिप्पणी—ओहि·········नवेला—यहाँ पर काकुवैशिष्ट्य व्यंग्य है । तोता पदमावती के प्रति यह व्यंजित करता है कि तुम रतनसेन के प्रेम-भाव से पूर्ण परिचित हो ।

भोग····· ···चाहाँ—इन पंक्तियों मे कवि ने प्रणयमूलक तादात्म्य भाव की व्यंजना की है । आत्मा और परमात्मा के तादात्म्य भाव का जो स्वरूप इन पंक्तियो मे व्यजित किया गया है । वह सूफी मत सम्मत है ।

सुनि जोगी कै अमर जो करनी । नेवरी बिथा बिरह कै मरनी ।।
कँवल-करी होइ बिगसा जीऊ । जनु रवि देख छूटि गा सीऊ ।।
जो अस सिद्ध को मारै पारा ? । निपुरुष तेइ जरै होइ छारा ।।
कहौ जाइ अब मोर सँदेसू । तजौ जोग अब, होहु नरेसू ।।
जिनि जानहु हौ तुम्ह सौ दूरी । नैनन्ह मॉझ गडी वह सूरी ।।
तुम परदेश घटे घट केरा । मोहि घट जीउ घटन नही बेरा ।।
तुम कहँ पाट हिए महँ साजा । अब तुम मोर दुहुँ जग राजा ।।
जौ रे जियहि मिलि गर रहहि, मरहि तो एकै दोउ ।।
तुम्ह जिउ कहँ जिनि होइ किछु, मोहि जिउ होउ सो होउ ।।२२।।

[इस अवतरण मे कवि ने हीरामन के माध्यम से पदमावती का सन्देश रतनसेन के प्रति भिजवाया है ।]

जोगी की अमर करनी सुन करके पदमावती विरह से होने वाले मृत्यु भय से मुक्त हो गई । उसका जीव कमल कली के समान विकसित हो उठा मानो कि सूर्य को देख करके शीत छूट गया हो । यदि वह सिद्ध है तो उसे कोई मार नही सकता है और यदि वह कुपुरुष है तो जल करके भस्म हो जाएगा । अब तुम मेरा सन्देश ले जा

करके उससे कहो वह जोग छोड करके राजा हो जाए और कहना कि पदमावती ने कहा है कि तुम यह मत समझो कि वह तुमसे दूर है तुम्हारी मूर्ति उसके नेत्रो में गडी हुई है । तुम्हारे शरीर का यदि पसीना छूटेगा तो हमारे शरीर का प्राण छूटते देर न लगेगी । तुम्हारे लिए हमने हृदय मे सिंहासन बना रखा है । अब तुम मेरे दोनों जग के स्वामी हो । अगर जीएँगे तो गले मिलकर रहेगे यदि मरेंगे तो एक साथ जाएँगे । तुम्हारे जीवन को कुछ न हो हमारे जीवन को चाहे जो कुछ हो जाए ।

टिप्पणी—जो·········छारा—कवि यह व्यजित करना चाहता है कि इस प्रकार रतनसेन के पकडे जाने पर और सूली चढाने पर उसके प्रेम की परीक्षा हो जाएगी । यदि वह सच्चा प्रेमी है तो फिर उसे कोई मार नही सकेगा । यदि वह कोई दुष्ट पुरुष है और प्रेम करने का केवल आडम्बर भरे हुए है तो वह हमे धोखा नही दे सकेगा । यहाँ पर स्वत सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंजना है । डाक्टर अग्रवाल ने इस कवित्त का पाठान्तर इस प्रकार दिया है । 'नेंवू रस नहिं जेइ होइ छारा'—उस अवस्था के इस कवित्त का अर्थ होगा गन्धर्वसेन नीवू का रस नही है जिससे वह भस्म हो जाएँ । कहते है कि पारे का शोधन करके नीवू के रस से उसका मारण करते हैं । पारा भस्म हो जाता है और नीवू का रस शेष रह जाता है । पदमावती की व्यंजना है कि रतनसेन जब इतना बडा सिद्ध है तो उसको किसी प्रकार मारा नही जा सकता । मारण प्रक्रिया करने पर भी उसका कुछ नही बिगड सकता । यहाँ पर उपमा अलं-कार व्यग्य है ।

तुम······बेरा—डाक्टर अग्रवाल ने इसका पाठान्तर दिया है—'तुम्ह पर सबद घटइ घट केरा, मोहि घट जीउ घटत नहिं बेरा' । इसका अर्थ है कि तुम्हारे घट का यदि अनहद नाद घटेगा तो मेरे शरीर का प्राण घटने मे देर नही लगेगी । हमे यह पाठ अधिक अच्छा नही लगता, यह कुछ रूढ सा है ।

विशेष—इस अवतरण में कवि ने रतनसेन के प्रति उद्भूत पदमावती के अनन्य प्रेम भाव की व्यजना की है ।

रतनसेन सूली खण्ड

बाँधि तपा आने जहँ सूरी। जुरे आइ सब सिंघल पूरी।
पहिले गुरुहि देइ कहँ आना। देखि रूप सब कोई पछिताना ।।
लोग कहहि यह होइ न जोगी। राज कुँवर कोइ अहै बियोगी ।।
काहुहि लागि भएउ है तपा। हिए सो माल, करहु मुख जपा ।।
जस मारै कहँ बाजा तूरू। सूरि देखि हँसा मसूरू ।।
चमके दसन भएउ उजियारा। जो जहँ तहाँ बीजु अस मारा ।।
जोगी केर करहु पै खोजू। मकु यह होइ न राजा भोजू ।।
सब पूछहिं, कहु जोगी जाति जनम औ नाँव।
जहाँ ठाँव रोवै कर हँसा सो कहु केहि भाव ।।१।।

[इस अवतरण मे कवि ने रतनसेन को सूली पर चढाये जाने का चित्र चित्रित किया है।]

जोगियो को बाँधकर वहाँ लाया गया जहाँ सूली थी। सिंघलपुर के सब लोग देखने के लिए एकत्रित हो गए। पहले गुरु को ही सूली देने के लिए लाया गया। उसके रूप को देख करके सब पछताने लगे। लोग कहने लगे यह जोगी नही है यह कोई वियोगी राजकुमार है, किसी के लिए यह तपस्वी हो गया है, हृदय मे उसी की माला है और तथा मुख में उसी का ही जाप है। ज्योही मारने के लिए तूर बनाया गया त्यो ही मंसूर की तरह सूली देखकर वह जोगी हँस पडा। उसके दाँत बिजली की तरह चमक उठे। उनसे प्रकाश हो गया। जो जहाँ था वह वहाँ बिजली की तरह मारा हुआ रह गया। जोगी की खोज करनी चाहिए कही ऐसा न हो कि यह राजा भोज हो। सब पूछते हैं कि हे जोगी! तू अपना नाम, जन्मस्थान तथा जाति बता दो। जहाँ रोना चाहिए था वहाँ तू किस भाव से हँसा?

टिप्पणी—सूली········मंसूरू—यहाँ पर रतनसेन को मंसूर कहकर उपमा अलंकार व्यंग्य किया गया है। कवि की व्यजना है कि जिस प्रकार प्रेम पन्थी मंसूर हल्लाज सूली देखकर हँसा था उसी प्रकार प्रेममार्गी रतनसेन भी सूली देखकर हँस पड़ा। मसूर हल्लाज एक प्रसिद्ध सूफी था। वह 'अनलहक' का मन्त्र जपता था। अनलहक का अर्थ है कि मैं वही सत्य परमात्मा हूँ। यह मन्त्र इस्लाम के विरुद्ध था अत-

एव उसे तत्कालीन शासन ने इसके विरोध में सूली पर चढा दिया था और वह हँसते-हँसते सूली पर चढ गया था।

का पूछहु अब जाति हमारी। हम जोगी औ तपा भिखारी।
जोगिहि कौन जाति, हो राजा। गारि न होइ, मारि नहि लाजा॥
निलज भिखारि लाज जेइ खोई। तेहि के खोज परै जिनि कोई॥
जाकर जोउ मरै पर बसा। सूरी देखि सो कस नहि हँसा?॥
आजु नेह सौ होइ निवेरा। आज पुहुमि तजि गगन बसेरा॥
आजु कया-पीजर-बंदि टूटा। आजुहि प्रान-परेवा छूटा॥
आजु नेह सौ होइ निरारा। आजु प्रेम-सँग चला पियारा॥
आजु अवधि सिर पहुँची, किए जाहुँ मुख रात।
वेगि होहु मोहि मारहु जिनि चालहु यह बात॥२॥

[इस अवतरण मे कवि ने पुरवासियो के प्रश्नो का उत्तर राजा से दिलवाया है।]

रतनसेन कहता है कि अब हमारी जाति क्या पूछते हो, हम तो जोगी और भिखारी है। हे राजन, जोगी की कोई जाति नही होती, गाली खाने पर वह क्रोध नही करता और मार खाने पर उसे लाज नही लगती। जिस निर्लज्ज भिखारी ने अपनी लाज खो दी उसको खोजने की चेष्टा कोई न करे। जिसका जी मरना चाहता है वह सूली देखकर क्यों न हँसे। आज प्रेम से हमारा निपटारा हो जाएगा। आज पृथ्वी को छोड़कर हम गगन मे बसेरा बनाएँगे। आज कायारूपी पिंजड़े के वन्धन टूट रहे हैं। आज प्राण रूपी पक्षी मुक्त हो रहा है। आज स्नेह वन्धन से मुक्त हो जाऊँगा। आज प्रेम के साथ प्रेमी जा रहा है। आज अन्तिम घडी सिर पर आ पहुँची है। मैं मुख लाल किए हुए जा रहा हूँ। शीघ्रता करो, मुझे मारो। यह वात मत चलाओ।

टिप्पणी—आजु·········वसेरा—यहाँ पर गगन शब्द में शब्द शक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है। कवि राजा के द्वारा यह व्यंजित करना चाहता है कि अब यह मूलाधार चक्र से उठकर ब्रह्माण्ड मे जाकर समाधि लगाएगा।

किए·········रात—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि है। कवि ने यह व्यंजित किया है कि वह अब हर्ष और विजय के साथ मर रहा है, क्योंकि उसने प्रेम की वलिवेदी पर अपने प्राण निछावर कर अपने प्रेम की सत्यता और अलौकिकता प्रगट कर दी है।

कहेन्हि सँवरु जेहि चाहसि सँवरा। हम तोहि करहिं केत कर भँवरा॥
कहेसि ओहि सँवरो हरि फेरा। मुए जियत आहौं जेहि केरा॥
औ सँवरो पदमावति रामा। यह जिउ नेवछावरि जेहि नामा॥
रकत क बूँद कया जस अहही। 'पदमावति पदमावति' कहही॥

रहै त बूँद-बूँद महँ ठाऊँ। परै त सोइ लेइ-लेइ नाऊँ॥
रोवँ-रोवँ तन तासौ ओधा। सूतहिं सूत बेधि जिउ सोधा॥
हाड़हि हाड़ सबद सो होई। नस-नस माँह उठै धुनि सोई॥
जागा बिरह तहाँ का गूद माँसु कै हान?
हौं पुनि साँचा होइ रहा ओहि के रूप समान॥३॥

[इस अवतरण मे कवि ने रतनसेन का पदमावती के प्रति अनन्य प्रेमभाव व्यंजित किया है।]

वहाँ के सूली पर चढाने वाले लोगों ने रतनसेन से कहा—'जिसको स्मरण करना चाहते हो स्मरण कर लो। क्योंकि हम तुम्हे अभी केतकी का भँवरा बना देना चाहते है (अर्थात् तुम्हे सूली पर चढा देना चाहते है)। रतनसेन ने कहा मैं हर बार उसी का स्मरण करता हूँ। जीवन और मृत्यु दोनो स्थितियों में मैं जिसका हूँ और मै पदमावती रमणी का स्मरण करता हूँ जिसके नाम पर यह जीव निछावर कर रहा हूँ। शरीर मे रक्त की जितनी बूँदें है वह सब ही पदमावती-पदमावती कहती है। रक्त बिन्दु जब तक शरीर में रहते हैं तब तक उनमें पदमावती का स्थान रहता है और जब वह जमीन पर गिरते है तब वह पदमावती का नाम लेते हुए गिरते है। शरीर का रोम-रोम उससे आक्रान्त है। और प्रत्येक रोमकूप बेध कर जीव का परिशोधन किया गया है। हड्डी-हड्डी में वही शब्द गुंजायमान है। और नस-नस से वही ध्वनि उठती है।

वहाँ विरह जगने से भी क्या हानि हो सकती है जिस शरीर में मास और मज्जा नही रही है। मै तो केवल पिजर मात्र रह गया हूँ, मेरे प्राण पदमावती के रूप मे समा गए है।

टिप्पणी—हम·········भँवरा—यहाँ पर कवि प्रौढोक्ति सिद्ध वस्तु से वस्तु व्यंजना है कि रतनसेन को सूली पर चढ़ा दिया जाएगा। सोई, तासो, सो आदि शब्दों से सर्वत्र कवि ने आध्यात्मिक व्यजना की है। अतएव यहाँ पर इनमे सर्वत्र अर्थान्तर-संक्रमित वाच्य ध्वनि है।

जोगिहि जबहि गाढ़ अस परा। महादेव कर आसन टरा॥
वै हँसि पारवती सौं कहा। जानहुँ सूर गहन अस गहा॥
आजु चढ़े गढ़ ऊपर तपा। राजै गहा सूर तब छपा॥
जग देखैगा कौतुक आजू। कीन्ह तपा मारै कहँ साजू॥
पारबती सुनि पायन्ह परी। चलि, महेस देखै एहि घरी॥

भेस भाँट-भाँटिनि कर कीन्हा। औ हनुवन्त वीर संग लीन्हा॥
आए गुपुत होइ देखन लागी। वह मूरति कस सती सभागी॥
कटक असूझ देखि कै राजा गरव करेइ।
दैउ क दसा न देखै, दहुँ का कहँ जय देइ॥४॥

[इस अवतरण मे कवि ने महादेव पार्वती का राजा की रक्षा के लिए आने के वृत्तान्त का उपन्यास किया है।]

योगियों पर जब इस प्रकार की विपत्ति पड़ी तो महादेव का आसन टल गया। उन्होने हँस कर पार्वती जी से कहा, मालूम होता है कि सूर्य ग्रहण पड रहा है। आज गढ पर तपस्वी लोग चढे हैं। राजा ने उस सूर्य रूपी रतनसेन को पकड़ लिया है। आज ससार इस कौतुक को देखेगा कि तपस्वियो को मारने की व्यवस्था कैसे की गई है। यह सुनकर पार्वती राजा के चरणो पर गिरी और कहने लगी कि महेश जी चलिए इस घड़ी को देखे कि क्या होता है। उन दोनो ने भाटभाटनी का भेष धारण कर लिया और वीर हनुमान को अपने साथ ले लिया और आकर के छिप कर देखने लगे कि रतनसेन कितना सत्यनिष्ठ और सौभाग्यशाली है। असूझ कटक देख करके राजा अभिमान कर रहा है। उसे ईश्वर की गति का पता नही है कि परमात्मा किसको विजय देगा।

विशेष—इस अवतरण मे कवि ने लोकगाथाओ का आश्रय लिया है। उपर्युक्त ढग की अनेक गाथाएँ भारत मे प्रचलित है। इन लोकगाथाओ से कवि ने यह व्यजित किया है कि सत्यनिष्ठ प्रेमी के प्रेम और मर्यादा की रक्षा कोई दैवी शक्ति करती है।

आसन लेइ रहा होइ तपा। 'पदमावति पदमावति' जपा॥
मन समाधि तासौ धुनि लागी। जेहि दरसन कारन बैरागी॥
रहा समाइ रूप औ नाऊँ। और न सूझ बार जहँ जाऊँ॥
औ महेस कहँ करौ अदेसू। जेइ यह पंथ दीन्ह उपदेसू॥
पारवती पुनि सत्य सराहा। औ फिरि मुख महेस कर चाहा॥
हिय महेस जौ, कहै महेसी। कित सिर नावहिं ए परदेसी॥
मरतहु लीन्ह तुम्हारहि नाऊँ। तुम्ह चित किए रहे एहि ठाऊँ॥
मारत ही परदेसी, राखि लेहु एहि वीर।
कोइ काहू कर नाही जो होइ चलै न तीर॥५॥

[प्रस्तुत अवतरण भी डाक्टर अग्रवाल ने अपने पदमावत में नही दिया है किन्तु आचार्य शुक्ल के पदमावत मे यह अवतरण है। मैं भी इसको प्रामाणिक मानता हूँ।

रतनसेन के पास जाकर महादेव पार्वती उसकी दशा का निरीक्षण करते हैं उसी प्रसंग का वर्णन यहाँ पर किया गया है—मन मे समाधिस्थ होकर मैं उसी के ध्यान में मग्न हूँ, जिसके दर्शनों के लिए मैंने वैराग्य धारण किया है। मैं पदमावती के रूप और नाम में तन्मय हो गया हूँ। मुझे कोई द्वार नही सूझता जहाँ मैं जाऊँ। मैं शिव जी को ही प्रणाम करता हूँ जिसने इस मार्ग का उपदेश दिया है। पार्वती ने उसकी सत्यनिष्ठा की सराहना की और फिर महेश की ओर देखा और कहने लगी जब महेश इनके हृदय में है तब यह परदेसी क्यों किसी के सामने सिर झुकाए। यह मरते समय भी तुम्हारा ही नाम ले रहा है और तुम्हारी तरफ ही यह अपना मन लगाए रहता है।

पार्वती ने शिवजी से कहा—'हे महेश! ज्यो ही यह वीर मारा जाए त्यों ही आप इसकी रक्षा कर ले। यदि कोई एक दूसरे की सहायता न करे तो फिर कोई किसी का नही हो सकता।'

टिप्पणी—करो·········अदेसू—यह नाथपंथियों का पारिभाषिक शब्द है, इसका अर्थ होता है प्रणाम करना।

विशेष—इस अवतरण मे कवि ने नाथ पन्थ के प्रति आस्था प्रकट की है और रतनसेन को उसी पन्थ के प्रति उपदेश दिया है।

यह अवतरण लोककथाओ पर आधारित है। भारतीय लोककथाओ में महेश-पार्वती का वड़ा भावपूर्ण चित्र खीचा जाता है।

लेइ सँदेस सुअटा गा तहाँ। सूरी देहिं रतन कहँ जहाँ॥
देखि रतन हीरामन रोवा। राजा जिउ लोगन्ह हठि खोवा॥
देखि रुदन हीरामन केरा। रोवहि सब, राजा मुख हेरा॥
माँगहि सब बिधिना सौ रोई। कै उपकार छोड़ावै कोई॥
कहि सँदेस सब बिपती सुनाई। विकल बहुत, किछु कहा न जाई॥
काढ़ि प्रान बैठी लेइ हाथा। मरै तो मरौ, जिऔ एक साथा॥
सुनि सँदेस राजा तब हँसा। प्रान-प्रान घट-घट महँ बसा॥
सुअटा भाँट दसौधी, भए जिउ पर एक ठाँव।
चलि सो जाइ अब देख तहँ जहँ बैठा रह राव॥६॥

[इस अवतरण में कवि ने रतनसेन को सूली पर चढ़ाए जाते हुए देखकर शुक को जो व्यथा हुई थी उसका मार्मिक चित्रण किया है।]

सन्देश लेकर तोता वहाँ पहुँचा जहाँ रतनसेन को सूली दी जा रही थी। रतन

सेन को देख करके हीरामन रो उठा और कहने लगा, कि राजा दूसरो के प्राण बर-वश ले लेता है। हीरामन के रुदन को देख करके और दूसरे लोग भी राजा का मुख देख करके रोने लगे। सब रो करके परमात्मा से यह प्रार्थना कर रहे थे—कोई उप-कार करके राजा से कह कर इनको छुडवा दे। तोते ने सब सन्देश कह करके अपनी विपत्ति सुनाई, वह बहुत विकल था, उसकी विकलता का वर्णन नही किया जा सकता था। शुक ने राजा से कहा कि पदमावती अपने प्राणो को निकाल कर हाथ मे लिए बैठी है और कहती है यदि वह मारा गया तो मैं अपने प्राण दे दूंगी। यदि वह जीवित रहा तो मैं भी जीवित रहूँगी। यह सुनकर राजा हँसा और बोला कि हमारे प्राण उसके घट-घट में व्याप्त है। तोता और दसौंधी भाट रतनसेन के लिए अपने प्राण देने पर उद्यत हुए और बोले, चलो वहाँ जाकर देखें जहाँ राजा अपने प्राण देने के लिए उद्यत बैठा है।

टिप्पणी—भाट.........दसौंधी—यह भाटो की एक जाति विशेष है।

काढ़ि......हाथा—लक्षणलक्षणा से अर्थ है—वह अपने प्राणों की बलि देना चाहती थी। यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। प्राण देने की आतुरता ही व्यग्य है।

राजा रहा दिस्टि कै ओंधी। रहि न सका तब भाँट दसौंधी॥
कहेसि मेलि कै हाथ कटारी। पुरुप न आछे बैठ पेटारी॥
कान्ह कोपि जब मारा कसू। तब जाना पुरुप कै वंसू॥
गध्रवसेन जहाँ रिस-बाढा। जाइ भाँट आगे भी ठाढ़ा॥
बोला गध्रबसेन रिसाई। कस जोगी, कस भाँट असाई॥
ठाढ़ देख सब राजा राऊ। बाएँ हाथ दीन्ह बरम्हाऊ॥
जोगी पानि, आगि तू राजा। आगिहि पानि जूझ नहिं छाजा॥
आगि बुझाइ पानि सौं, जूझु न, राजा बूझु।
लीन्हे खप्पर बार तोहि, भिच्छा देहि, न जूझु॥७॥

[इस अवतरण मे कवि ने सूली पर चढने से पहले की राजा की स्थिति का चित्र खीचा है। दसौंधी भाट ने जाकर राजा को इसी रूप मे पाया था।]

राजा रतनसेन आंखे नीचे किए हुए बैठा था, इतने मे दसौंधी भाट ने आकर उसे देखा और उससे रहा न गया और उसने हाथ मे कटारी लेकर कहा—जो पुरुप है वह पिटारी मे बन्द होकर नही रहता। कृष्ण ने क्रुध होकर कस को मारा था तब पता चला था कि वह पुरुप के वश से है। जहाँ पर क्रोध मे भरा हुआ गन्धर्वसेन बैठा था भाट वहाँ जाकर आगे खड़ा हुआ। गन्धर्वसेन क्रुद्ध हो करके बोला कि कहाँ यह जोगी और कहाँ यह चापलूसी करने वाला भाट। सब राजा और राव यह दृश्य

खड़े हुए देख रहे थे। बाएँ हाथ से उसने आशीर्वाद दिया और बोला कि हे राजा! तू आगी के सदृश है और जोगी पानी के सदृश है। हे राजा! मन में समझ लो कि आगी ही पानी से बुझ जाती है, जो तेरे द्वार पर खप्पर लेकर खड़ा है उसे भिक्षा दे। युद्ध मत कर।

टिप्पणी--कहसि·········पिटारी—कवि ने व्यंजना की है कि रतनसेन एक वीर योद्धा राजा है। जब तक वह शान्त बैठा है जब तक ही बैठा है, जब वह हाथ में कटारी लेगा तब तुम उससे जीत न सकोगे। यहाँ पर स्वतःसम्भवी वस्तु से वस्तु-व्यंजना है।

कान्ह·········कंसू—कवि की व्यंजना है कि कृष्ण जब तक शान्त रहे थे तब तक ही शान्त रहे थे, जब उन्हें क्रोध आया था तो उन्होने कंस का वध कर डाला था। इसी प्रकार रतनसेन यदि क्रुद्ध हो गया तो तुम्हारा संहार कर डालेगा। यहाँ पर स्वतःसम्भवी वस्तु से उपमा अलंकार व्यंग्य है।

कस·········असाई—यहाँ पर निदर्शना अलंकार व्यंग्य है। असाई का अर्थ है आशीर्वाद देने वाला या प्रशस्ति करने वाला।

बांये·········बरमाँहु—कवि वैर भाव को प्रकट करना चाहता है इसीलिए उसने भाट से बायाँ हाथ उठाकर आशीर्वाद दिलाया है।

जोगि न होइ, ओहि सो भोजू। जानहु भेद करहु सो खोजू॥
मारत ओइ जूझ जौ ओधा। होहि सहाय आइ सब जोधा॥
महादेव रन घंट बजावा। सुनि कै सबद बरम्हा चलि आवा॥
फनिपति फन पतार सौं काढ़ा। अस्टौ कुरी नाग भए ठाढ़ा॥
छप्पन कोटि बसंदर बरा। सवा लाख परवत फरहरा॥
चढ़े अत्र लै क्रस्न मुरारी। इन्द्रलोक सब लाग गोहारी॥
तैंतिस कोटि देवता साजा। औ छानवे मेघदल गाजा॥
नवौ नाथ चलि आवहिं औ चौरासी सिद्ध।
आजु महाभारत चले, गगन गरुड़ औ गिद्ध॥८॥

[इस अवतरण में कवि ने भाट के द्वारा रतनसेन की प्रशस्ति कराई है।]

यह जोगी नही, यह भोग भोगने वाला राजा भोज के सदृश कोई बड़ा राजा है। जो इसके भेद की खोज करेगा उसको इस बात का पता चलेगा। यदि तुमने युद्ध ठाना तो महाभारत हो जाएगा। सब योद्धा उसके सहायक बनकर आ पहुँचेंगे। महादेव ने अपना रण घंट बजा दिया है। जिसका शब्द सुनकर ब्रह्मा चले आ रहे हैं। शेषनाग ने पाताल से अपना फण फैला दिया है। अष्टकुल के नाग सहायता के लिए

खड़े हो गए। छप्पन करोड अग्नियाँ जल उठी हैं। सवा लाख पर्वत फड़क उठे हैं। कृष्ण मुरारी अस्त्र ले करके चल पडे है। सारे इन्द्र लोक में युद्ध की आवाज लग गई है। तेतीस करोड देवताओ ने युद्ध का साज सजा लिया है। और छयानवे करोड़ मेघो का दल गरजने लगा है। नवो नाथ और चौरासी सिद्ध चले आ रहे है। आज यहाँ पर महाभारत सा महान् रण मचेगा। आकाश मे गरुड़ और गिद्ध एकत्रित हो रहे हैं।

टिप्पणी—आहिसो······ ···भोजु—कवि की व्यंजना है कि वह राजा भोज के समान एक महान् पराक्रमी राजा है। यहाँ पर उपमा अलकार व्यंग्य है।

विशेष—यहाँ पर कवि ने रतनसेन को दिव्य महापुरुष के रूप मे व्यंजित किया है, इसीलिए सब उसकी सहायता के लिए आते दिखाई दिये है।

भइ अज्ञा को भाँट अभाऊ। बाएँ हाथ देइ बरम्हाऊ॥
को जोगी अस नगरी भोरी। जो देइ सेंधि चढ़ै गढ़ चोरी॥
इन्द्र डरै निति नावै माथा। जानत कृस्न सेस जेइ नाथा॥
बरम्हा डरै चतुर मुख जासू। औ पातार डरै बलि तासू॥
मही हलै औ चलै सुमेरू। चाँद सूर औ गगन कुबेरू॥
मेघ डरै बिजुरी जेहि दीठी। कुरुम डरै धरति जेहि पीठी॥
चहौ आजु माँगौ धरि केसा। और को कीट पतंग नरेसा॥
बोला भाँट, नरेस सुनु, गरब न छाजा जीउ।
कुंभकरन कै खोपरी बूड़त बाँचा भीउँ॥६॥

[इस अवतरण मे भाट की घोषणा के विरुद्ध राजा गन्धर्वसेन ने अपनी गर्वोक्ति की है।]

राजाज्ञा हुई कि ढूंढकर बतलाओ कि यह अशिष्ट भाट कौन है, जिसने बाएँ हाथ से आशीर्वाद दिया है। मेरी नगरी मे ऐसा जोगी कौन है जो सेंध लगाकर चोरी के लिए गढ़ पर चढना चाहता है। मुझसे इन्द्र डरता है और नित्य प्रणाम करता है। वह कृष्ण भी मुझसे डरता है जिसने शेष नाग को नाथा था और वह ब्रह्मा भी डरता है जिनके चार मुख हैं। पाताल के वासुकि और राजा बलि मुझसे डरते है, मेरे डर से पृथ्वी हिलती है और सुमेरु चलायमान हो जाता है। गगन मे चाँद, सूर्य और कुबेर डरते है। वे मेघ भी मुझसे डरते है जिनमे बिजली दिखाई पडती है। वह कच्छप भी डरता है जिसकी पीठ पर पृथ्वी टिकी हुई है। यदि मैं चाहूँ तो इनके केश पकड़ करके इनसे कर ले सकता हूँ, फिर कीट पतंग जैसे राजाओ की क्या बात है। भाट बोला—मनुष्य को गर्व शोभा नही देता। भीमसेन कुम्भकरण की खोपडी मे डूबता-डबता बचा था।

टिप्पणी········अभाऊ—अशिष्ट, वासु=वासुकि नाग।

कुम्भकरण·········भीम—इस सम्वन्ध मे सुधाकर जी ने निम्नलिखित कथा लिखी है। वह द्रष्टव्य है—'किवदन्ती है कि युधिष्टिर के छोटे भाई भीमसेन अभिमान से अपने साथियो से यह कहते हुए कही चले जा रहे थे कि कुम्भकरण में कुछ भी बल न था यदि आज वह होता तो मैं एक हाथ से उठाकर समुद्र पार फेंक देता। इस तरह वह ऊपर आँख किए अभिमान से भरे बड़े उमंग से आगे-आगे चले जाते थे, नीचे की ओर नजर न रहने से अकस्मात् एक पानी भरे ताल मे गिर कर डूबने लगे, साथियों द्वारा बड़े प्रयत्नों से डूबने से बचाए गए। फिर पीछे से पता लगाने से जान पड़ा कि कुम्भकरण की खोपड़ी पानी से भरी हुई बड़े ताल जैसी हो गई है।'

इस कथा से कवि ने यह व्यजित किया है जब भीम जैसे राजा का अभिमान चकनाचूर हो गया तो गन्धर्वसेन की क्या हस्ती है। उसका भी अभिमान चूर-चूर हो सकता है, यहाँ पर स्वतःसम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंग्य है।

रावन गरब बिरोधा रामू। ओही गरब भएउ सग्रामू॥
तस रावन असको बरिबंडा। जेहि दस सीस बीस भुजदंडा॥
सूरुज जेहि कै तपै रसोई। नितिहि वसदर धोती धोई॥
सूक सुमंता, ससि मसिआरा। पौन करै निति वार वोहारा॥
जमहि लाइ कै पाटी बाँधा। राह न दूसर सपने काँधा॥
जो अस वज्र टरै नहि टारा। सोउ मुवा दुइ तपसी मारा॥
नाती पूत कोटि दस अहा। रोवनहार न कोई रहा॥
ओछ जानि कै काहुहि जिनि कोई गरब करेइ।
ओछे पर जो दैउ है जीति-पत्र तेइ देइ॥१०॥

[इस अवतरण मे भाट ने रावण का दृष्टान्त देकर यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि भगवान सबका अभिमान चूर कर देता है।]

रावण ने गर्व करके राम से विरोध किया जिसके परिणामस्वरूप राम-रावण का युद्ध हुआ। उस रावण से अधिक बलवान कौन था जिसके दस सिर और बीस भुजाएँ थी। सूरज जिसकी रसोई बनाता था और अग्नि जिसकी धोती धोता था और शुक्र जिसका मन्त्री था और चांद जिसका मशालची था और वायु जिसके यहाँ सफाई करता था, यम को जिसने अपनी पट्टी से बाँध रखा था। ऐसा ससार मे कोई नही बचा था जिसका लोहा वह स्वप्न में भी मानता हो। जो इस प्रकार वज्र के समान पराक्रमी था और जिसको हिला सकना भी कठिन था, उसको दो तपसियो ने मारा था। उसके दस करोड़ नाती और पुत्र थे जिनमे कोई रोने वाला नही रह गया।

कोई किसी को छोटा जान कर गर्व न करे, छोटे की तरफ परमात्मा रहता है वही उसे विजयपत्र देता है।

टिप्पणी—इस अवतरण मे कवि ने यह व्यजित किया है कि अभिमान किसी का नही रहता है। रावण जैसे का जब अभिमान नही रहा तो तुम्हारा अभिमान कैसे रहेगा।

ओछ······देई—यह एक सुन्दर सूक्ति है।

अब जो भाँट उहाँ हुत आगे। विनै उठा राजहि रिस लागे॥
भाँट अहै संकर कै कला। राजा सहुँ राखै अरगला॥
भाँट मीचु पै आपु न दीसा। ता कहँ कौन करै असि रीसा॥
भएउ रजायसु गंध्रबसेनी। काहे मीचु के चढै नसेनी॥
कहा आनि बानी अस पढ़ै। करसि न बुद्धि भेंट जेहि कढ़ै॥
जाति भाँट कित औगुन लावसि। बाएँ हाथ राज बरम्हावसि॥
भाँट नाँव का मारौ जीवा? अबहुँ बोलु नाइ कै गीवा॥
तूँ रे भाँट, ए जोगी, तोहि एहि काहे क संग?॥
काह धरे अस पावा, काह भएउ चित-भंग? ॥११॥

[इस अवतरण मे कवि ने भाट के विनय भाव की व्यंजना की है।]

जब उस भाट ने जो कि राजा के सामने था देखा कि राजा क्रोधित हो उठा है तो वह उससे विनयपूर्वक प्रार्थना करने लगा और कहने लगा कि भाट तो महादेव का अंश है। सब राजा लोग उसे अर्गला के रूप मे अपने पास रखते हैं किन्तु भाट सदैव अपनी मृत्यु देखता है। उससे रस छोड़कर के रिस कौन करेगा। गन्धर्वसेन की आज्ञा हुई है। भाट तू क्यो मृत्यु की सीढी पर चढ रहा है। तू दूसरे की प्रशंसा इस प्रकार क्यो करता है ऐसी प्रशस्ति क्यो नही करता जिससे कि तुझे भेंट मिले। तू भाट जाति को कलकित क्यो करता है, जो बायें हाथ से राजा को आशीर्वाद देता है। तू भाट जाति का है इसलिए मैं तेरे प्राण नही लेना चाहता। तू अब भी सिर झुका कर या नम्र होकर सब बातें कह। अरे तू तो भाट है और यह जोगी है। तेरा और इसका साथ कहाँ से हुआ। तू बहकावे मे कहाँ से आ गया। कही तू पागल तो नही हो गया है। कही तेरी वुद्धि तो भ्रमित नही हो गई है।

टिप्पणी—राजा······अर्गला—कवि की व्यंजना है कि भाट राजा के पास रह कर उसको मर्यादित करता रहता है। उसे वह अनुचित काम करने से रोकता है। यहाँ पर स्वतःसम्भवी वस्तु से उपमा अलंकार व्यंग्य है।

काह······नसेनी—वाच्यार्थ है कि मृत्यु की सीढी पर तू क्यो चढता है। लक्ष्यार्थ है तू मरना क्यो चहता है। यह अर्थ लक्षणलक्षणा से लिया गया है।

जौं सत पूछसि गंध्रब राजा। सत पै कहौं परै नहि गाजा।
भाँटहि काह मीचु सौ डरना। हाथ कटार, पेट हनि मरना॥
जंबू दीप चित्तउर देखा। चित्रसेन बड़ तहाँ नरेसा॥
रतनसेन यह ताकर बेटा। कुल चौहान जाइ नहि मेटा॥
खाँड़ै अचल सुमेरु पहारा। टरै न जौं लागै संसारा॥
दान-सुमेरु देत नहि खाँगा। जो ओहि माँग न औरहि माँगा॥
दाहिन हाथ उठाएउँ ताही। और को अस बरम्हावौं जाहीं ?॥

नाँव महापातर मोहि, तोहिक भिखारी ढीठ।
जौ खरि बात कहे रिस लागै, कहै बसीठ॥१२॥

[इस अवतरण मे कवि ने भाट के द्वारा राजा रतनसेन के गौरव की वर्णना करायी है।]

भाट ने कहा—हे राजा गन्धर्वसेन, यदि तुम सत्य पूछते हो तो सत्य ही कहूंगा किन्तु मेरे ऊपर वज्र नही पड़ना चाहिये अर्थात् यदि आप मुझे दण्डित न करें तो सत्य बात कहूँ, फिर भी भाट मृत्यु से नही डरता, वह हाथ मे कटार लिये रहता है और पेट मे मार कर मर जाता है। जम्बू द्वीप मे चित्तौड नामक देश है। वहाँ पर चित्रसेन नामक एक बहुत बडा राजा है। रतनसेन यह उसका बेटा है। यह चौहान वंश का है, जिसकी उपेक्षा नही की जा सकती। खड्ग चलाने मे यह सुमेरु पर्वत के समान अचल है। सारा संसार उससे भिड़ जाय तो भी वह विचलित न होगा। जो एक बार उससे माँग लेता है तो फिर उसे और किसी से कुछ माँगना नही रहता। दाहिना हाथ उसी के लिए उठा चुका हूँ और संसार मे ऐसा कौन है जिसको मैं दाहिने हाथ से आशीर्वाद दूं। मेरा नाम महापात्र है। मै उसी का ढीठ भिखारी हूँ, चाहे खरी बात करने से दूसरे को क्रोध लगे किन्तु दूत कहता खरी बात ही है।

टिप्पणी—परै नहीं गाजा—यहाँ पर नही के स्थान पर डाक्टर अग्रवाल ने किन पाठ दिया है। वह पाठ अधिक उपयुक्त है क्योकि परवर्ती पंक्तियो से उसका मेल ठीक बैठता है।

और······जाही—यहाँ पर काकुवैशिष्ट्य व्यंग्य है। कवि ने यह व्यंजित किया है कि रतनसेन तुमसे अधिक पराक्रमी और बड़े राजा का पुत्र है और लड़की अपने से बड़े को ही दी जाती है, अतएव यह तुम्हारा भाग्य है कि तुम पदमावती रतनसेन को सौंप दो।

ततखन पुनि महेस मन लाजा। भाँट-करा होइ विनवा राजा॥
गंध्रबसेन ! तूं राजा महा। हौं महेस-मूरति, सुनु कहा॥
जौ पै बात होइ भलि लागे। कहा चहिए, का भा रिस लागे॥

राज कुँवर यह, होहि न जोगी। सुनि पदमावती भएउ वियोगी ।।
जंबूदीप राज घर बेटा। जोग लिखा सो जाइ न मेटा ।।
तुम्हरहि सुम्रा जाइ ओहि आना। औ जोहिकर वर कै तेइ माना ।।
पुनि यह बात सुनि सिव-लोका। करसि बियाह धरम है तोका ।।
माँगै भीख खपर लेइ, मुए न छाँड़ै बार।
बूझहु, कनक-कचोरी भीखि देहु, नहिं मार ।।१३।।

[इस अवतरण मे भाट ने राजा गन्धर्वसेन से प्रार्थना की कि वह पदमावती का विवाह रतनसेन से कर दे।]

उसी समय शिव जी मन मे लज्जित हुए और भाट की कला धारण करके राजा गन्धर्वसेन से विनती करने लगे और गन्धर्वसेन से बोले—हे गन्धर्वसेन ! तू एक बडा राजा है और मैं महेश की प्रतिमूर्ति हूँ। जो मैं कह रहा हूँ उसे ध्यान से सुनो। जो बात पहले परिणाम मे भली हो उसे अवश्य कहना चाहिए। चाहे सुनने वाले को क्रोध ही आए। यह एक राजकुमार है, जोगी नहीं है। यह पदमावती के रूप की प्रशसा सुनकर वियोगी बन गया है। यह जम्बू द्वीप के राजघराने का एक पुत्र है। जो कुछ लिखा है वह मेटा नही जा सकता, यह बात शिवलोक तक पहुँच गई है, इसलिए तू रतनसेन का पदमावती से विवाह कर दे। तुम्हारा तोता ही उसे जाकर के ले आया है और जिस पदमावती का यह वर है उसने इसे अपना पति मान लिया है।

वह खप्पर लेकर भीख माँग रहा है। वह मरने पर भी तुम्हारा द्वार नही छोड सकता। इसलिए तुम समझकर पदमावती की भिक्षा इसको दे दो, मारो मत।

टिप्पणी—कनक कचोरी—यहाँ पर अर्थान्तर सक्रमित वाच्य ध्वनि है। सम्पूर्ण शरीर का उपादान किया गया है। शरीर का अतिशय सौन्दर्य ही व्यंग्य है।

पुनि······शिवलोका—कवि ने सम्बन्धतिशयोक्ति अलंकार से व्यंजित किया है कि बात अब सारे ससार मे फैल गई है कि पदमावती और रतनसेन का प्रेम है, अगर यह विवाह न हो तो इसमे तुम्हारी बदनामी होगी। अतएव यहाँ पर कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अलंकार से वस्तु व्यग्य है।

डाक्टर अग्रवाल के पदमावत मे यह अवतरण नही मिलता। इससे मिलता-जुलता दूसरा अवतरण मिलता है जो इस प्रकार है। इससे स्पष्ट है कि डाक्टर अग्रवाल उपर्युक्त अवतरण को प्रक्षिप्त मानते है।

ओहँट होहु रे भाँट भिखारी। का तू मोहि देहि असि गारी ।।
को मोहि जोग जगत होइ पारा। जा सहुँ हेरौं जाइ पतारा ।।
जोगी जती आव जो कोई। सुनतहि त्रासमान भा सोई ।।

भीखि लेहि फिरि माँगहिं आगे । ए सब रैनि रहे गढ लागे ।।
जस हीछा चाहौ तिन्ह दीन्हा । नाहिं बेधि सूरी जिउ लीन्हा ।।
जेहि अस साध होइ जिउ खोवा । सो पतंग दीपक तस रोवा ।।
सुर, नर, मुनि सब गंध्रब देवा । तेहि को गनै करहि निति सेवा ।।
मोसौं को सरवरि करै ? सुनु, रे झूठे भाँट ।
छार होइ जौ चालौं निज हस्तिन कर ठाट ।।१४।।

[इस अवतरण मे राजा गन्धर्वसेन ने भाट की भर्त्सना की है ।]

ऐ भिखारी भाट ! दूर हट जा, तू मुझे गाली क्यो दे रहा है। संसार मे हमारे योग्य कौन है । जिसको देखता हूँ वह पाताल में चला जता है । जोगी जती जो कोई आता है वह सुनते ही भयभीत हो जाता है । भीख लेते है और भीख लेकर चले जाते है । यह सब रात मे गढ़ के ऊपर लगे रहे, मै तो इनको इच्छानुसार भिक्षा देना चाहता था, सूली पर नही चढाना चाहता था परन्तु जिसकी इस प्रकार प्राण खोने वाली इच्छा हो वह तो उसी प्रकार रोता है, जिस प्रकार दीपक मे प्राण देकर पतिंगा रोता है । देवता, मनुष्य, गन्धर्व और मुनि इनको कौन गिनता है यह सब हमारी सेवा करते है ।

मेरे समान कौन है जो मेरी बराबरी करे । हे झूठे भाट ! यह सुन ले यदि मैं अपने हाथियों का समूह चला दूँ तो सब कुछ धूल ही धूल हो जाय ।

टिप्पणी—मोसो को सरवरि करे—यहाँ पर काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य है । व्यंजना है कि मेरी बराबरी कोई नही कर सकता ।

जा सहुँ······पतारा—यहाँ कारणातिशयोक्ति अलंकार है ।

जोगी फिरि मेले अब पाछे । उरए माल्ल आए रन काछे ।।
मँत्रिन्ह कहा, सुनहु हो राजा । देखहु अब जोगिन्ह कर काजा ।।
हम जो कहा तुम्ह करहु न जूझू । होत आव दर जगत असूझू ।।
खिन इक महँ झुरमुट होइ बीता । दर महँ चढ़ि जो रहै सो जीता ।।
कै धीरज राजा तब कोपा । अँगद आइ पाँव रन रोपा ।।
हस्ति पाँच जो अगमन धाए । तिन्ह अंगद धरि सूँड फिराये ।।
दीन्ह उड़ाइ सरग कहँ गए । लौटि न फिरे, तहँहि के भए ।।
देखत रहे अचंभौ जोगी, हस्ती बहुरि न आय ।
जोगिन्ह कर अस जूझब, भूमि न लागत पाय ।।१५।।

[इस अवतरण मे योगियों के युद्ध का वर्णन किया गया है ।]

योगियों को पीछे कर दिया और दूसरे योद्धा उत्साह से भरे हुए रण मे चढ करके आ गये। मन्त्रियों ने कहा—हे राजा! अब तुम योगियों के करतब सुनो। हमने तुम से कहा था कि योगियो से युद्ध न करो। अब संसार भर के अगणित योगियों का समूह चढता चला आ रहा है। एक क्षण में पूर्ण अन्धकार छा गया। जो दल मे बढकर आक्रमण करता है वही जीतता है। राजा ने धीरज धर कर क्रोध किया। तभी अंगद ने रण मे आकर अपना पैर रोप दिया। पांच हाथी जो आगे दौडे अंगद ने उनकी सूंड पकड़ करके ऐसे जोर से उड़ा करके फेंका कि वह स्वर्ग चले गये और वह कभी नही लोटे। योगियों का यह आश्चर्य सब देखते रह गये। वह हाथी लौट कर पृथ्वी पर नही आये। योगियों का ऐसा जूझना था कि उनका पैर पृथ्वी पर नही लग रहा था।

विशेष—कवि ने योगियों की ओर से अंगदादि का युद्ध करना चित्रित कर यह यह व्यंजित किया है कि प्रेम-योगी की सहायता स्वयं परमात्मा करता है।

कहहि बात, जोगी अब आए। खिनक मोंह चाहत हैं भाए।।
जौ लहि धावहि अस कै खेलहु। हस्तिन केर जूह सब पेलहु।।
जस गज पेलि होहि रन आगे। तस बगमेल करहु सँग लागे।।
हस्तिक जूझ आय अगसारी। हनुवँत तबै लँगूर पसारी।।
जैसे सेन बीच रन आई। सबै लपेटि लँगूर चलाई।।
बहुतक टूटि भए नौ खंडा। बहुतक जाइ परे बरम्हँडा।।
बहुतक भवँत सोह अँतरीखा। रहे जो लाख भए ते लीखा।।
बहुतक परे समुद महँ, परत न पावा खोज।
जहाँ गरब तहँ पीरा, जहाँ हँसी तहँ रोज।।१६।।

[इस अवतरण मे योगियों के युद्ध के प्रति गन्धर्वसेन के विचार प्रकट किये गये हैं।]

गन्धर्वसेन की सेना के लोग कहने लगे कि जोगी अब आक्रमण करना ही चाहते हैं और क्षण भर में वे छा जाना चाहते हैं। जब तक यह दौड़ने न पावें उससे पहले ही हाथियो के समूह इनकी ओर ठेल दो। जैसे ही हाथी बढ़ कर रण मे आगे धावा बोले तभी उनके संग सब लोग धावा बोल दो। जैसे ही हाथियो का समूह रतनसेन की सेना के आगे आया, वैसे ही हनुमान जी ने अपनी पूँछ फैला दी और सेना ज्यूँही रण के बीच मे आई उन्होने पूँछ में लपेट कर फेंक दिया। बहुत से ब्रह्माण्ड मे जाकर पड़ गये। बहुत से अन्तरिक्ष में उड़ते हुये दिखाई पड़ रहे थे। जो लाख थे वे लीख हो गए।

बहुत से समुद्र मे जाकर गिरे जिनको कोई खोज न सका। जहाँ अभिमान है वहाँ पीड़ा होती है और जहाँ हँसी होती है वहाँ दुःख पड़ता है।

टिप्पणी—इस अवतरण मे कवि ने युद्ध का बड़ा संश्लिष्ट वर्णन किया है। वीर रस इस अवतरण मे व्यंग्य है।

पुनि आगे का देखै राजा। ईसर केर घंट रन बाजा ॥
सुना संख जो विस्नू पूरा। आगे हनुवँत केर लँगूरा ॥
लीन्हे फिरहिं लोक बरम्हँडा। सरग पतार लाइ मृदमंडा ॥
बलि, बासुकि औ इन्द्र नरिंदू। राहु, नखत, सूरुज औ चंदू ॥
जावत दानव राच्छस पुरे। आठौ बज्र आइ रन जुरे ॥
जेहि कर गरव करत हुत राजा। सो सब फिरि बैरी होइ साजा ॥
जहवाँ महादेव रन खड़ा। सीस नाइ नृप पायँन्ह परा।
केहि कारन रिस कीजिए, हौ सेवक औ चेर।
जेहि चाहिय तेहि दीजिय, बारि गोसाँई केर ॥१७॥

[इस अवतरण मे महादेव जी रतनसेन की ओर से रण मे उतरते हुये दिखाये गये हैं। गन्धर्वसेन महादेव जी को देखकर उनके चरणो पर गिर पडता है और कहता है पदमावती आप जिसे चाहे उसे दे दे।]

राजा आगे क्या देखता है कि महादेव जी का रणघट बज रहा है। उस शंख की ध्वनि सुनाई दी जिसे विष्णु भगवान बजाते है। आगे हनुमान जी की पूँछ दिखाई दी और उनकी पूँछ सारे ब्रह्माण्ड में घूम रही है और स्वर्ग और पाताल सबको मिट्टी मे मिलाये दे रही है। बलि राजा, वासुकि नाग, राजा इन्द्र, राहु नक्षत्र, सूर्य और चाँद सब युद्ध मे उपस्थित थे, जितने भी दानव और राक्षस थे, सब जुडे। आठो वज्र आकर युद्ध में जुट गये। राजा को जिस पर अभिमान था वही शत्रु की ओर से आकर भिड़ गया और जहाँ रण मे महादेव जी खड़े थे, वहाँ जा करके राजा ने उनके चरणो पर सिर रखा।

किसके कारण आप क्रोध करते है, मैं तो आपका सेवक और चेला हूँ। जिसको आप चाहे उसी को पदमावती सौप दे। वह आपकी ही कन्या है।

विशेष—यहाँ पर कवि ने रतनसेन की ओर से दैवी सहायता की व्यंजना की है।

पुनि महेस अब कीन्ह बसीठी। पहिले करुइ अंत होइ मीठी ॥
तूँ गंध्रब राजा जग पूजा। गुन चौदह सिख देइ को दूजा ॥
हीरामन जो तुम्हार परेवा। गा चितउर औ कीन्हेसि सेवा ॥

तेहि बोलाइ पूछहु वह देसू। दहुँ जोगी की तहाँ नरेसू ।।
हमरे कहत रहै नहि मानू। जो वह कहै सोइ परवानू ।।
जहाँ बारि तहँ ग्राव बरोकाँ। करै बियाह धरम सुठि तोकाँ ।।
जौ पहिले मन मानत काँधिग्र। परखै रतन गाँठ तब बाँधिग्र ।।
रतन छिपाएँ ना छिपै पारखि होइ सो परीख।
घालि कसौटी दीजिए कनक कचोरी भीख ।।१८।।

[इस ग्रवतरण मे भाट गन्धर्वसेन से प्रार्थना करता है कि वह पदमावती का विवाह रतनसेन से कर दे, इसी मे उसका कल्याण है।]

इसीलिए मैं विनयपूर्वक दूत बनकर ग्राप से निम्नलिखित प्रार्थना कर रहा हूँ। हो सकता है यह प्रार्थना ग्रापको कड़वी लगे परन्तु इसका परिणाम सुखद होगा। हे गन्धर्वसेन राजा ! तुम्हारी प्रतिष्ठा सारे ससार मे है। तुम मे चौदह गुण है ग्रतएव तुम्हे कौन शिक्षा दे सकता है। हीरामन नामक पक्षी तुम्हारा, चित्तौड गया ग्रौर सेवा की। उसको बुला करके उस देश के विषय मे पूछिये ग्रौर यह भी पूछिये कि वह राजा है या जोगी है। हमारे कहने की मान्यता नही रहेगी जो वह कहे उसी को प्रमाण समझना। जहाँ कन्या होती है वहाँ बरिच्छा के लिए लोग ग्राते ही है। यदि विवाह कर दोगे तो तुम्हारा कल्याण होगा, यदि तुम्हारा मन स्वीकार करे तो हमारी बात मान लेना। रतन को पहले परख लेना चाहिए ग्रौर फिर उसे गांठ बांधना चाहिए।

रतन छिपाने से नही छिपता, जो पारखी होता है वह उसके मूल्य को समझ लेता है, ग्राप भी उसकी परीक्षा ले। यदि वह राजकुमार हो तो ग्राप उसका विवाह राजकुमारी के साथ करे।

टिप्पणी—परखिये····· बाँधिग्र—यहाँ पर रतन शब्द मे शब्दशक्ति उद्भव वस्तुध्वनि है। कवि की व्यजना है कि रतनसेन राजकुमार है या नही इसकी पूरी परीक्षा करके ही उससे ग्रपना सम्बन्ध जोड़ो।

घालि······भीख—कवि की व्यजना है कि रतनसेन की पूरी परीक्षा कर लेनी चाहिए कि वह श्रेष्ठ राजकुमार है या नही तब पदमावती का विवाह उसके साथ करना चाहिए। इस ग्रवतरण मे 'कनक कचौरी' मे ग्रर्थान्तर सक्रमित वाच्य-ध्वनि है।

विशेष—इस ग्रवतरण मे पहली पंक्ति के पूर्वार्द्ध का पाठान्तर बहुत भिन्न है। वह इस प्रकार है 'सोइ बिनती सिउँ करौ बसीठी'।

राजै जब हीरामन सुना। गएउ रोस, हिरदय मँह गुना ।।
ग्राज्ञा भई बोलावहु सोई। पडित हुँते धोख नहि होई ।।
एकहि कहत सहस्रक धाए। हीरामनहि बेगि लेइ ग्राए ।।

खोला आगे आनि मँजूसा। मिला निकसि बहु दिनकर रूसा॥
अस्तुति करत मिला बहु भाँती। राजै सुना हिये भइ साँती॥
जानहुँ जरत आगि जल परा। होइ फुलवार हरस हिय भरा॥
राजै पुनि पूछी हँसि बाता। कस तन पियर, भएउ मुख राता॥
चतुर वेद तुम पंडित, पढ़े शास्त्र औ बेद।
कहाँ चढ़ाएहु जोगिन्ह, आइ कीन्ह गढ़ भेद॥१६॥

[इस अवतरण मे हीरामन ने राजा गन्धर्वसेन से सारी वस्तुस्थिति बता दी, जिससे राजा को शान्ति प्राप्त हुई।]

राजा ने जब हीरामन का नाम सुना तो उनका क्रोध चला गया और हृदय मे उन्होंने सब कुछ समझ लिया। उन्होने कहा कि हीरामन को बुलाया जाए, पण्डित से धोखा नही हो सकता। एक को कहते हुए सैकड़ों दौड़े गये और हीरामन को शीघ्र ही ले आए। उन्होने मंजूषा लाकर खोल दी। बहुत दिनो का रूठा हुआ वह तोता पिंजड़े से निकल कर राजा से मिला। उसने बहुत स्तुति करते हुए राजा से भेंट की। उसकी वाणी सुनकर के राजा के हृदय मे शान्ति हुई। ऐसा मालूम हुआ कि जलती हुई अग्नि में जल पड़ गया हो और वह प्रफुल्लित होकर प्रसन्न मन हो गया। राजा ने हँस करके बात पूछी कि तुम्हारा शरीर पीला और मुख लाल कैसे है? तुम तो चारो वेदो के पण्डित हो और वेदशास्त्र सब पढे हुए हो। तुमने जोगियो को लाकर कहाँ चढा दिया और गढ का भेदन करा दिया।

टिप्पणी—जानहुँ······परा— यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। राजा का सन्तोष भाव ही यहाँ व्यंग्य है।

हीरामन रसना रस खोला। दै असीस, कै अस्तुति बोला॥
इन्द्र राज राजेसर महा। सुनि होइ रिस, किछु जाइ न कहा॥
पै जो बात होइ मति आगे। सेवक निडर कहै रिस लागे।
सुवा सुफल अमृत पै खोजा। होहु न राजा बिक्रम भोजा॥
हौ सेवक, तुम आदि गोसाईं। सेवा करौ जिओ जब ताईं॥
जेइ जिउ दीन्ह देखावा देसू। सो पै जिउ महँ वसै, नरेसू॥
जो ओहि सँवरै 'एकै तुही'। सोई पंखि जगत रतमुहीं॥
नैन बैन औ सरवन सब ही तोर प्रसाद।
सेवा मोरि इहै निति बोलौ आसिरवाद॥२०॥

[इस अवतरण मे कवि ने हीरामन के द्वारा राजा गन्धर्वसेन के प्रति सारा विवरण कहलवाया है।]

हीरामन ने अपनी मधुर वाणी से आशीर्वाद देकर इस प्रकार विनयपूर्वक निवेदन किया—आप इन्द्रराज के समान वडे भारी राजा है। इसलिए आप के सामने कुछ कहते नही बनता कि आप सुनकर क्रुद्ध होगे, लेकिन जो बात आगे भली होती है सेवक निडर भाव से उसका निवेदन कर देता है। तोते ने सुन्दर अमृत फल की खोज की है। आप राजा विक्रम के समान भूल न करें, अथवा राजा विक्रम को उसका भोग नही लिखा था, विक्रम ने उसका भोग नही किया था। आप मेरे सबसे पहले स्वामी है। मैं अपका सेवक हूँ, जब तक जीवित रहूँगा, तब तक आप की सेवा करूँगा। जिसने जीवन दिया है और यह देश दिखाया है वही राजा मेरे मन मे बसता है। जो अपने उसी एक स्वामी को एकनिष्ठ भाव से स्मरण करता है, वही पक्षी लाल मुख वाला होता है। नेत्र, वाणी और श्रवण सब तुम्हारा ही प्रसाद है, मेरी नित्य यही सेवा है कि मै तुम्हारा गुणगान करता रहूँ।

टिप्पणी—सुआ······भोजा—यहाँ पर एक लोक कथा संदर्भित है। कहते है कि राजा विक्रम के पास एक बडा गुणी तोता था। एक बार वह दो अमृत फल विक्रम के पास लाया और बोला इसे जो खा लेता है वह बूढा नही होता और बुड्ढे से जवान हो जाता है। राजा ने फल एक स्थान पर संभाल कर रख दिये। उनमे से एक फल मे सयोगवश साँप दाँत मार गया। राजा ने वह फल परीक्षा के लिए एक कुत्ते को खिलाया वह मर गया। राजा ने क्रुद्ध होकर सुए को मरवा डाला और बचे हुए दूसरे फल को बगीचे मे फिकवा दिया। उसी बगीचे मे एक बूढे माली का उसी दिन अपनी मालिन से झगडा हो गया था, उसने क्रोध मे आकर वह फल जो राजा ने उसे फेंकने के लिए दिया था, उठाकर खा लिया। वह उसी क्षण युवा हो गया। जब राजा को इस बात का पता चला तो उसे बड़ा दुःख हुआ। यहाँ पर तोता इस कथा के माध्यम से यह सकेत करना चाहता है कि हे राजन! यदि तुम बिना सोचे-समझे हमको मरवा दोगे तो तुमको बडा पश्चात्ताप होगा। रतनसेन जिसे मै पदमावती के लिए वर रूप मे लाया हूँ वह अमृत के समान सिद्ध होगा। अगर तुम इसे विष समझोगे तो तुम्हे भी पछताना पडेगा। यहाँ पर कवि प्रौढोक्ति सिद्ध वस्तु से वस्तुव्यग्य है। यहाँ स्वत.सम्भवी वस्तु से वस्तुव्यजना है।

जो अस सेवक जेइ तप कसा। तेहिक जीभ प अमृत बसा॥
तेहि सेवक के करमहि दोषू। सेवा करत करै पति रोषू॥
औ जेहि दोष निदोषहि लागा। सेवक डरा, जीउ लेइ भागा॥
जो पंछी कहवाँ थिर रहना। ताकै जहाँ जाइ भए उहना॥
सप्त दीप फिरि देखेउँ, राजा। जंबू दीप जाइ तब बाजा॥
तहँ चितउर गढ़ देखेउँ ऊँचा। ऊँच राज सरि तोहि पहूँचा॥

रतनसेन यह तहाँ नरेसू। एहि अनिउँ जोगी के भेसू ॥
सुआ सुफल लेइ आएउँ, तेहि गुन ते मुख रात।
कया पीत ओ तेहि डर, सँवरौ विक्रम बात ॥२१॥

[इस अवतरण में कवि ने हीरामन की विशेषता प्रकट की है और फिर उसके द्वारा रतनसेन का परिचय दिलवाया है।]

जो ऐसी दशा मे सेवक अपने पति को चाहता रहता है उसकी जीभ मे अमृत रहता है। यह उस सेवक के कर्मो का दोष है कि सेवा करते हुए भी उसका स्वामी क्रुद्ध हो जाए और जिस निर्दोष सेवक को भी दोष लग जाता है वह अपने प्राणों को लेकर भाग जाता है। जब कोई पक्षी है तो उसका स्थिर होकर रहना कठिन होता है। जब उसके पंख है तो जहाँ दृष्टि करता है वही उड़ जाता है। हे राजा! मैंने सातों द्वीप उड़ कर देखे और अन्त मे जम्बू द्वीप जा पहुँचा। वहाँ जाकर चित्तौड़ का ऊँचा गढ देखा। वहाँ का राज्य बहुत बड़ा तुम्हारे राज्य के समान था। रतनसेन वहाँ का राजा है। मैं उसको यहाँ जोगी के रूप मे ले आया हूँ। मैं तोता होकर सुन्दर फल ले आया हूँ इसीलिए मेरा मुख लाल है। राजा विक्रम की कहानी स्मरण करके शरीर पीला हो रहा है।

टिप्पणी—तेहि······बसा—वाच्यार्थ है कि उसकी जीभ मे अमृत बसता है किन्तु वाच्यार्थ है कि उसकी वाणी सत्य, कल्याणकारी और मधुर होती है। यहाँ पर यह अर्थ लक्षणलक्षणा से लिया गया है।

सँवरौ बिक्रम बात—कवि की व्यंजना है कि जिस प्रकार विक्रम ने इस तोते को जो उसके लिए अमृत फल लाया था बिना सोचे-समझे मरवा दिया, उसी प्रकार मुझे डर लगता है कि कही मेरे द्वारा पदमावती के लिए सुयोग्य वर ढूढकर लाये जाने पर भी आप क्रुद्ध होकर मुझे मरवा न डालें।

पहिले भएउ भाँट सत भाखी। पुनि बोला हीरामन साखी ॥
राजहि भा निसचय, मन माना। बाँधा रतन धौरि कै आना ॥
कुल पूछा, चौहान कुलीना। रतन न बाँधे होइ मलीना ॥
हीरा दसन पान-रँग पाके। विहँसत सबै बीजु वर ताके ॥
मुद्रा स्रवन विनय सौ चाँपा। राजपना उघरा सब झाँपा ॥
आना काटर एक तुखारू। कहा सो फेरौ, भा असवारू ॥
फेरा तुरँग, छत्तीसौ कुरी। सबै सराहा सिंघल पुरी ॥
कुँवर बतीसौ लच्छना, सहस-किरिन जस भान।
काह कसौटी कसिए? कंचन बारह, बान ॥२२॥

[इस अवतरण मे गन्धर्वसेन ने राजा रतनसेन को मुक्त करके उससे पूछताछ की है ।]

पहले तो भाट ने सब सत्य बातें कही फिर हीरामन ने सत्य बातो की साक्षी दी । राजा को मनमाना निश्चय हो गया । बँधे हुए रतनसेन को खोल करके वहाँ लाया गया । जब उससे कुल पूछा गया तो उसने अपने को कुलीन चौहान वंश का बताया । रतन बाँधने से मलीन नही होता । दाँत रूपी हीरे पान के रंग मे रगे हुए थे । उसके हँसते ही सबने देखा जैसे बिजली चमकी हो । वह कानो मे विनय से मुद्राये चिपकाये हुए था । राजा की आज्ञा से उसके वे सब उपकरण हटा दिये गये जो उसके रूप को छिपाए हुए थे जिससे कि उसका राजापन झलकने लगा और उघड़ आया । फिर एक कटाह घोडा लाया गया और इससे कहा गया कि इस पर सवार होकर इसको । फिराये उसने घोडे को फिरा दिया और छत्तीसो जात के राजकुमारो ने उसकी प्रशसा की ।

वे कहने लगे कि यह राजकुमार बत्तीसो लक्षणो से युक्त था और सूर्य के समान सहस्रो किरणो से युक्त था । उसको कसौटी पर क्या कसना, वह तो द्वादशवर्णी सोना है ।

टिप्पणी—रतन न बाँधे होई मलीना—यहाँ पर उपमा अलंकार व्यग्य है । जिस प्रकार बाँधने से रतन मलिन नही होता उसी प्रकार बाँधे जाने से रतनसेन मलिन नही हुआ । यहाँ पर रतन मे शब्द शक्ति उद्भव अलकार ध्वनि । है

छत्तीसो पुरी—इसका अर्थ सुधाकर जी ने और शिरेफ ने घोडों की छत्तीस कलाये माना है । किन्तु डाक्टर अग्रवाल और मै इसे क्षत्रियो के छत्तीस कुलो का सकेतक मानते है ।

बत्तीसो लच्छन—योग ग्रन्थो मे महापुरुपो के बत्तीस लक्षण इस प्रकार गिनाये गये है: १. निरालम्ब, २. निर्भ्रम, ३. निर्वास, ४. नि.शब्द, ५. निर्मोह, ६ निर्बन्ध एव नि.शक, ७. निर्विपय, ८. विवेक परीक्षा मे सर्वागी, ९. सावधान, १० सत्य, ११. सारग्राही, १२. विचार परीक्षा मे नि:प्रपंच, १३. निस्तरंग, १४. निर्द्वन्द्व, १५. निर्लेप, १६. निरालम्ब परीक्षा मे अयाचक, १७. अवाच्छक, १८. अमान, १९. स्थिर, २०. सन्तोषी, २१. सयमी, २२. शान्त, २३. श्रोता, २४. शील , २५. शीतल, २६. सुखद, २७. स्वभाव की सहजता, २८. शुचिता, २९. लक्ष्य, ३०. ध्यान, ३१. समाधि, ३२. शून्य भाव । बनारस सस्कृत कालेज के पुस्तकालय मे गोरक्ष ग्रन्थ के उत्तरार्द्ध मे ४४ पत्र मे ये बत्तीसो लक्षण लिखे है ।

कुछ लोगो के अनुसार महापुरुषो के बत्तीसों लक्षणो का उल्लेख सिंहासन बत्तीसी मे कथाओ के रूप मे दिया गया है । हमारी समझ मे यहां पर कवि का संकेत सामुद्रिक शास्त्र के बत्तीस लक्षणो से है । सामुद्रिक शास्त्र मे महापुरुष के शरीर मे बत्तीसो लक्षणो का होना बताया गया है । उनका उल्लेख हम इस ग्रन्थ मे एक स्थल पर कर चुके है । अतएव पिष्टपेषण नही करना चाहते ।

देखि कुँवर बर कंचन जोगू। 'अस्ति-अस्ति' बोला सब लोगू॥
मिला सो बँस अँस उजियारा। भा बरोक तब तिलक सँवारा॥
अनिरुध कइँ जो लिखा जयमारा। का मेटै ? बानासुर हारा॥
आजु मिली अनिरुध कहँ ऊखा। देव अनंद, दैत सिर दूखा।
सरग सूर, भुइँ सरवर केवा। बनखँड भँवर होइ रसलेवा॥
पच्छिउँ कर वर पुरुब क बारी। जोरी लिखी न होइ निनारी॥
मानुष साज लाख मन साजा। होइ सोइ जो बिधि उपराजा॥
गए जो बाजन बाजत जिन्ह मारन रन माहि।
फिर बाजन तेइ बाजे मंगल चारि उनाहि॥२३॥

[इस अवतरण मे कवि ने रतनसेन और पदमावती के विवाह का समर्थन जनता के द्वारा कराया है।]

रतनसेन को पदमावती के योग्य जान करके सब लोग अस्ति-अस्ति 'ठीक है, ठीक है' चिल्लाने लगे। इस सुन्दर वंश मे यह प्रकाशमान अंश आ करके मिला है। बरच्छा हुई और तिलक चढाया गया। अनिरुद्ध को जो जयमाला लिखी थी उसको भला कौन मेट सकता था। बाणासुर को हार माननी पड़ी। आज उसको ऊषा मिली। देवताओ को आनन्द मिला और दैत्यो को दु ख हुआ। सूर्य आकाश मे रहता है, कमल भूमि मे सरोवर पर रहता है। और उसका रस लेने वाला भौरा वन खड मे अलग रहता है, तीनो अलग रहते हुए भी एक साथ आ मिलते हैं। पश्चिम का वर और पूर्व की राजकुमारी का मिलन हुआ, लिखी हुई जोड़ी कभी टूटती नही। मनुष्य अपने मन मे चाहे जितना साज-सजाता रहे लेकिन होता वही है जो ईश्वर की इच्छा होती है। जो बाजे, रण में जहाँ एक दूसरे का संहार किया जाता है, बजाये गये थे, वही लौट करके मंगलाचार बजाने लगे।

टिप्पणी—अनिरुध······हारा—यहाँ पर उपमा अलंकार व्यंग्य है। जिस प्रकार अनिरुद्ध का विवाह ऊषा से लिखा हुआ था तो बाणासुर उस को रोक नही सका। उसी प्रकार रनतसेन का विवाह पदमावती से लिखा था वह उसको रोक नही सका। 'को मेटे' मे काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य है।

आजु······ऊखा—कवि की व्यंजना है कि आज पदमावती रतनसेन को मिल रही है। यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है।

बोल गोसाई कर मै माना। काह सो जुगुति उतर कहँ आना॥
माना वोल, हरप जिउ बाढ़ा। औ बरोक भा, टीका काढा॥
दूवौ मिले, मनावा भला। सुपुरुप आपु आपु कहँ चला॥
लीन्ह उतारि जाहि हित जोगू। जो तप करै सो पावै भोगू॥

वह मन जित जो एकै अहा। मार लीन्ह न दूसर कहा ।।
जो अस कोई जिउ पर छेवा। देवता आइ करहिं निति सेवा ।।
दिन दस जीवन जो दुख देखा। भा जुग-जुग सुख जाइ न लेखा ।।
रतनसेन संग बरनौ पदमावति क बियाह।
मदिर वेगि सँवारा, मादर तूर उछाह ।।२४।।

[इस अवतरण मे कवि ने गन्धर्वसेन की शिवजी के प्रति अनन्य भक्ति प्रदर्शित कराई है।]

गन्धर्वसेन कहता है—मैंने शिवजी की आज्ञा पालन की, अब दूसरे उत्तर के लिए क्या युक्ति है। मैंने शिवजी की आज्ञा का पालन किया जिससे कि हृदय मे हर्ष बढा और वरच्छा हो गई। तिलक चढ गया। दोनो पक्ष मिल गये और कल्याण मनाया जाने लगा। भला व्यक्ति भले आदमी के पास जाता है। रतनसेन जिसके लिए ऐसा योग साध रहा था वह उसे स्वर्ग से उतार लाया। जो तप करता है उसे ही भोग मिलता है। जिसका मन एक ही में रमा होता है वह मारने पर भी उसी का नाम रटता है। जो दस दिन के जीवन मे दुख देखता है उसके लिए जुग-जुग सुख रहता है। उसका वर्णन नही किया जा सकता। रतनसेन के साथ मैं पदमावती के विवाह का वर्णन कर रहा हूँ। राजमहल अच्छी तरह से सजाया गया और मादर, तूर आदि बाजे बडे उत्साह से बजाये जाने लागे।

काह······आना—कवि की व्यजना है कि अब तिलक हो गया। अब विवाह की क्या उपाय या तैयारी की जाय।

रतनसेन-पदमावती विवाह खण्ड

लगन धरी औ रचा बियाहू। सिंघल नेवत फिरा सब काहू ॥
बाजन बाजे कोटि पचासा। भा अनँद सगरौ कैलासा ॥
जेहि दिन कहँ निति देव मनावा। सोइ दिवस पदमावति पावा ॥
चाँद सुरुज मनि माथे भागू। औ गावहिं सब नखत सोहागू ॥
रचिरचि मानिक माँडव छावा। औ भुइँ रात बिछाव बिछावा ॥
चंदन खाँभ रचे बहु भाँती। मानिक-दिया बरहिं दिन राती ॥
घर-घर बंदन रचे दुवारा। जावत नगर गीत झनकारा ॥
हाट-बाट सब सिघल जहँ देखत तहँ रात।
धनि रानी पदमावति जेहि कै ऐसि बरात ॥१॥

[इस अवतरण मे पदमावती के विवाह की तैयारियो का वर्णन किया गया है।]

लगन निश्चित हुआ और विवाह की तैयारियाँ की जाने लगी। सिंघल द्वीप मे सबको निमन्त्रण दे दिया गया। पचास करोड़ बाजे बजाये जाने लगे। सारे राजमहल मे आनन्द छा गया। जिस दिन के लिए देवता मनाये जा रहे थे पदमावती को आज वही दिन प्राप्त हुआ। चाँद, सूर्य अर्थात् पदमावती और रतनसेन के भाग्य की मणि चमकने लगी। सब नक्षत्र रूपी सखियाँ सुहाग गाने लगी। माणिक्य लगा-लगा करके मंडप छाया जाने लगा। पृथ्वी पर लाल बिछौना बिछाया जाने लगा। चन्दन के खम्भो की पंक्तियाँ लगाई गई। दिन-रात मणियो के दीपक जलने लगे, घर-घर वन्दन-वार बाँधे जाने लगे। सारा नगर संगीत से गुँजायमान हो उठा। सिंघल के बाजारो में मार्गों में जिधर देखो उधर ही लालिमा छाई हुई थी। रानी पदमावती को धन्य है जिसकी ऐसी बारात सजी है।

टिप्पणी—कैलास—सूफी सन्तो ने कैलास शब्द का प्रयोग कई अर्थों मे किया है। कही वह स्वर्ग का वाचक है, कही वह ब्रह्माण्ड का द्योतक है और कही वह ब्रह्म-रंध्रका संकेतक है और कही पर वह सम्पूर्ण सिंघल के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। यहाँ पर वह सिंघल के ही अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

चाँद······भागू—यहाँ पर चाँद और सूरज में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

विशेष—इस अवतरण से तत्कालीन युग मे प्रचलित विवाहकालीन साज-सज्जाओ का वर्णन किया गया है ।

रतनसेन कहँ कापड आए । हीरा मोति पदारथ लाए ॥
कुँवर सहस दस आइ सभागे । विनय करहिं राजा सँग लागे ॥
जाहि लागि तन साधेहु जोगू । लेहु राज औ मानहु भोगू ॥
मंजन करहु भभूत उतारहु । करि अस्नान चित्र सब सारहु ॥
काढ़हु मुद्रा फटिक अभाऊ । पहिरहु कुण्डल कनक जराऊ ॥
छोरहु जटा, फुलायल लेहू । झारहु केस, मकुट सिर देहू ॥
काढहु कंथा चिरकुट-लावा । पहिरहु राता दगल सोहावा ॥
पाँवरि तजहु, देहु पग पौरि जो बाँक तुखार ।
बाँधि मौर, सिर छत्र देइ, बेगि होहु असवार ॥२॥

[इस अवतरण मे रतनसेन को नई वेशभूषा देकर राजसी रूप धारण करने की बात कही गई है ।]

रतनसेन के लिए कपडे लाये गये, जिनमे हीरा, मोती और रत्न जडे हुए थे । साथ ही साथ दस सहस्त्र कुँवर भी राजा के सामने आये और उससे विनयपूर्वक कहने लगे कि जिसके लिए तुमने योग साधना की थी उसको लेकर तुम राज्योपभोग करो । मंजन करो और भभूत का परित्याग कर, स्नान करके सब सुन्दर साज सजाओ । अच्छे न लगने वाले इस फटिक के कुण्डलो को कान से निकाल कर उनके स्थान पर जड़ाऊ सोने के कुण्डल पहन लो । जटाएँ खुलवा दो और इनमें सुगन्धित तेल डालो और केशो को झाड़ कर के उन पर मुकुट धारण करो । फटे चियडों वाला कंथा उतार दो और लाल रग का दगला वस्त्र पहिनो ।

खड़ाऊँ उतार करके उनकी जगह पैरो मे जूतियां पहिनो क्योंकि सुन्दर तुखारी घोड़ा तुम्हारे लिए खडा है । मौर बांध करके घोड़े पर सवार हो कर के शीघ्र ही प्रस्थान करिए ।

टिप्पणी—करि······सारहु—डाक्टर अग्रवाल ने इसका पाठान्तर इस प्रकार दिया है 'कै अस्नान चतुरसम सारहु' इसका अर्थ है स्नान करके चतुरसम सुगन्धि लगाओ । चतुरसम सुगन्धि मे चन्दन, अगर, कस्तूरी और केसर के सम भाग को लेकर मिश्रित किया जाता है ।

फुलायल—सुगन्धित तेल ।

चिरकुट=चिथड़ा, **दगल**=दगल जामा को कहते थे, विवाहादि के अवसर पर यह पहना जाता है । यह प्रायः लाल रेशमादि का लम्बे अंगरखे की तरह होता है ।

पैरी=जूती।

विशेष—इस अवतरण मे तत्कालीन सम्पन्न पुरुष की वेशभूषा का अच्छा वर्णन मिलता है।

साजा राजा, बाजन बाजे। मदन सहाय दुवौ दर गाजे॥
औ राता सोने रथ साजा। भए बरात गोहने सब राजा॥
बाजत गाजत भा असवारा। सब सिघल नइ कीन्ह जोहारा॥
चहुँ दिसि मसियर नखत तराई। सुरुज चढ़ा चाँद के ताईं॥
सब दिन तपे जैस हिय माहाँ। तैसि राति पाई सुख-छाहाँ॥
ऊपर रात छत्र तस छावा। इन्द्रलोक सब देखै आवा॥
आजु इन्द्र अछरी सौ मिला। सब कबिलास होहि सोहिला॥
धरती सरग चहूँ दिसि पूरि रहा मसियार।
बाजत आवै मँदिर जहँ होइ मंगलाचार॥३॥

[इस अवतरण मे कवि ने रतनसेन के राजसी दूल्हा रूप का वर्णन किया है।]

राजा सुसज्जित हुआ और बाजे वजने लगे। ऐसा मालूम होने लगा कि दोनो ओर मेघ गरजने लगे और रक्तिम सोने का रथ सजाया गया। सब राजा लोग बारात मे सम्मिलित हो गये। रतनसेन बाजे-गाजे के साथ रथ पर सवार हुआ। सारे सिंघल ने झुक करके उन्हे प्रणाम किया। चारो ओर रतनसेन रूपी सूर्य ने पदमावती रूपी चाँद के लिए प्रस्थान किया तो नक्षत्र और तारे मशालची वन गये। सूर्य जिस प्रकार दिन भर तपता रहा उसी प्रकार रात्रि को उसे शीतलता मिली। उसके ऊपर लाल छत्र लगाया गया और समस्त इन्द्रलोक उसकी सेवा मे उपस्थित हो गया। आज इन्द्र अप्सरा से मिल रहा था। सारे सिंघलगढ के गीत गाये जा रहे थे। पृथ्वी और आकाश मशालो से भरे हुये थे, बाजे वजाते हुये बरात राजमन्दिर मे आ रही थी वहाँ मंगलाचार हो रहा था।

टिप्पणी—मदन सहाय—यहाँ पर मदन सहाय मेघो के लिये प्रयुक्त हुआ है। यहाँ पर कवि ने शब्दशक्ति उद्भव वस्तुध्वनि का आश्रय लिया है और यह व्यजित किया है जो मेघ उठ रहे थे वे रतन और पदमावती मे कामोद्रेक कर रहे थे। यहाँ पर परिकरांकुर अलकार भी है।

राता सोने रथ साजा—कवि यहाँ पर राता शब्द के प्रयोग से सोने की श्रेष्ठता और शुद्धता व्यजित करना चाहता है। जिस सोने का वह रथ बना हुआ था वह शुद्धता के कारण सर्वोत्तम था।

सिंघल······जुहारा—यहाँ पर सिघल मे उपादान लक्षणा है। सिंघल का अर्थ है सिंघल के मनुष्य।

सुरुज······ताईं—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार है और इस अलंकार से कवि ने नव दम्पति के सम्बन्धौचित्य की व्यंजना की है। इसलिए यहाँ पर कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अलंकार से वस्तुव्यंग्य है।

इन्द्रलोक······आवा—यहाँ पर इन्द्रलोक मे अर्थान्तर संक्रमित वाच्यध्वनि है। कवि की व्यंजना है कि संसार के बड़े-बड़े महापुरुष उस दिव्य विवाह को देखने आये थे, विवाह की दिव्यता, विराटता और अतिशय सुन्दरता ही यहाँ व्यंग्य है।

आजु······मिला—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार से उपमा अलकार व्यग्य है। कवि की व्यंजना है जिस प्रकार इन्द्र अप्सरा को पाकर आनन्दित होता है उसी प्रकार रतनसेन पदमावती को पाकर सुखी हुआ।

कविलास—यहाँ पर इस शब्द का प्रयोग सिंघलगढ के लिए हुआ है।

धरती ·····मसियार—यहाँ पर स्वत.सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यग्य है। कवि बारात की विशालता और विराटता व्यंजित कर रहा है।

पदमावती धौराहर चढ़ी। दहुँ कस रवि जेहि कहँ ससि गढ़ी॥
देखि बरात सखिन्ह सौं कहा। इन्ह महँ सो जोगी को अहा ?॥
केइ सो जोग लै और निवाहा। भएउ सूर, चढ़ि चाँद बियाहा॥
कौन सिद्ध सो ऐस अकेला। जेइ सिर लाइ पेम सों खेला ?॥
का सौं पिता बात अस हारी। उतर न दीन्ह, दीन्ह तेहि बारी॥
का कहँ दैउ ऐस जिउ दीन्हा। जेइ जयमार जीति रन लीन्हा॥
धन्नि पुरुष अस नवै न नाए। औ सुपुरुष होइ देस पराए॥
को बरिवंडा बीर अस, मोहि देखै कर चाव।
पुनि जाइहि जनवासहि, सखि ! मोहि बेगि देखाव॥४॥

[इस अवतरण मे कवि ने बारात को देख करके पदमावती और सखियो मे जो हास-परिहास हुआ था, उसकी वर्णना की है।]

पदमावती रतनसेन रूपी सूर्य देखने के लिए धरौहर पर चढ़ी। वह जानना चाहती थी कि वह रतनसेन रूपी सूर्य कैसा है जिसके लिए चाँद के समान मेरी सृष्टि विधाता ने की थी। बारात को देख करके उसने सखियो से पूछा कि इनमे वह जोगी कौन है जिसने जोग लेकर के अन्त तक उसका निर्वाह किया है और सूर्य की तरह आकाश मार्ग से आकर चन्द्र से विवाह किया है। ऐसा कौन अकेला सिद्ध है जिसने अपना सिर देकर के प्रेम का यह खेल खेला है ? वह कौन है जिससे पिता बात हार गये और उत्तर न दे सके और मुझे कन्या को सौंप रहे है। किस को परमात्मा ने ऐसी विजय दी या ऐसी शक्ति दी जिसने युद्ध-क्षेत्र मे विजय की जयमाल जीत ली। ऐसा पुरुष धन्य है जो झुकाने से न झुका और दूसरे के देश मे आ करके भी

सुपुरुष कहलाया । ऐसा महान् वीर कौन है जिसने यह सब किया । उसे देखने की मेरी बड़ी इच्छा है । हे सखि ! उसके दर्शन मुझे शीघ्र करा दो वरना वह जनवासे मे चला जाएगा ।

टिप्पणी—दहुँ······गढ़ी—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार है और गढी में लिंग वैचित्र्य वक्रता है ।

सो जोगी—यहाँ पर सो में सम्वृत्ति वक्रता है ।

भएऊ······बियाहा—भयऊ सूर में उपमा अलंकार व्यंग्य है । साथ ही यहाँ पर सूर मे शब्द शक्ति उद्भव अनुरणन ध्वनि भी है । रतनसेन का पराक्रम भाव व्यंग्य है ।

उतर······बारी—यहाँ पर परिवृत्ति अलंकार व्यंग्य है ।

धन्य······नाँए—यहाँ पर रतनसेन की अद्वितीय वीरता व्यग्य है ।

को······दिखाओ—यहाँ पर पदमावती का अभिलाषा भाव व्यंजित किया गया है । यहाँ पर प्रगल्भता, मौग्ध्य और कौतूहल नामक स्त्री अलंकारो का वर्णन किया गया है ।

सखी देखावहि चमकै वाहू । तू जस जाँद, सुरुज तोर नाहू ।।
छपा न रहै सूर-परगासू । देखि कँवल मन होइ बिगासू ।।
ऊजियार जगत उपराही । जग उजियार, सो तेहि परछाही ।।
जस रवि, देखु, उठै परभाता । उठा छत्र तस बीच बराता ।।
ओही माँझ भा दूलह सोई । और बरात संग सब कोई ।।
सहसौ कला रूपा विधि गढ़ा । सोने के रथ आवै चढा ।।
मनि माथे, दरसन उजियारा । सौह निरखि नहि जाइ निहारा ।।
रूपवंत जस दरपन, धनि तू जाकर कंत ।
चाहिय जैस मनोहर मिला सो मन-भावंत ।।५।।

[इस अवतरण में पदमावती को सखियाँ उसके प्रियतम का दर्शन करा रही है ।]

सखियाँ जब बाँह बढ़ाकर उसे उसके प्रियतम के दर्शन कराने लगी तो उनकी बाँहे चमक उठी । वे कह रही थी कि तू चाँद जैसी सुन्दर है वैसा ही तेरा पति भी सूरज के समान पराक्रमी है । यहाँ पर उपमा अलंकार व्यंग्य है। सूर्य का प्रकाश छिपा नही रहता । उसे देखते ही कमल के मन मे हर्ष होता है । उसका प्रकाश संसार से भी ऊपर है । किन्तु सूर्य का प्रकाश केवल संसार को ही प्रकाशित करता है । इसी लिए वास्तविक सूर्य रतनसेन की छाया मात्र है । जिस प्रकार प्रभात मे लाल-लाल सूर्य उठता हुआ दिखाई पड़ता है उसी प्रकार उसका लाल-लाल छत्र बारात के बीच

में उठा हुआ प्रकाशित हो रहा था। बारात के बीच में जो है, वही दूल्हा है और उसके चारो तरफ जो है वे सब बाराती है। परमात्मा ने सहस्रों कलाओं वाला उसका रूप रचा था। वह सोने के रथ मे चढा हुआ आ रहा है। उसके माथे पर मणि है। देखने मे इतना देदीप्यमान है कि कोई उसके सामने आँख भरकर नही देख सकता।

वह दर्पण जैसे उज्ज्वल और निर्मल रूप वाला है। तू धन्य है जिसे ऐसा सुन्दर पति मिला। जैसा पति मिलना चाहिये था वैसा ही सुन्दर पति तुझे मिला है।

टिप्पणी—सखी······बाहु—यहाँ पर हेतु अलंकार है।

तू······नाहू—यहाँ पर चाँद का अर्थ है सुन्दर और सुरुजक अर्थ है पराक्रमी। यहाँ पर चाँद और सुरुज मे पदगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है।

छपा······परगासू—यहाँ पर कवि व्यंजना है कि पराक्रमी पुरुष का पराक्रम छिपा नही रहता है। यहाँ पर सुरुज और परकासु में अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। कुछ लोगों के अनुसार यहाँ पर उपमा अलंकार व्यंग्य है। उनका कहना है कि जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश नही छिपा रहता उसी प्रकार तेजस्वी का तेज छिपा नही रहता।

देखि······हुलासु—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

वह······परछाई—यहाँ पर व्यतिरेक अलंकार मे रतनसेन का पराक्रम एव रूपाधिक्य व्यजित किया गया है।

जस······राता—यहाँ पर उपमा अलंकार है।

मनि माथे—का लक्षणलक्षणा मे अर्थ लिया गया है कि सौभाग्य से उसका मस्तक चमक रहा है। मणि का अर्थ यहाँ पर सौभाग्य लिया गया है।

दर्शन उजियारा—यहाँ पर उजियारा मे विशेषण वक्रता है।

देखाँ चाँद सूर जस साजा। अस्टौ भाव मदन जनु गाजा॥
हुलसे नैन दरस मदमाते। हुलसे अधर रंग-रस-राते॥
हुलसा वदन ओप रवि पाई। हुलसि हिया कँचुकि न समाई॥
हुलसे कुच कसनी-वंद टूटे। हुलसी भुजा, वलय कर फूटे॥
हुलसी लंक कि रावन राजू। राम लखन दर साजहि आजू॥
आजु चाँद घर आवा सूरू। आजु सिगार होइ सब चूरू॥
आजु कटक जोरा है कामू। आजु विरह सौ होइ संग्रामू॥
अंग-अंग सब हुलसे, कोइ कतहूं न समाइ।
ठावहि ठाँव विमोही, गई मुरछा तनु आइ॥६॥

[इस अवतरण मे कवि ने रतनसेन के दर्शन की प्रतिक्रिया के रूप में पदमावती मे जो हाव-भाव जागृत हुए, उनका वर्णन किया है।]

पदमावती रूपी चाँद ने सूर्य रूपी रतन को जब पूर्ण रूप से सजा हुआ देखा तो उसके हृदय मे काम के आठो भाव जागृत हो उठे। उसके नेत्र हुलसित हो उठे और दर्शन के लिए उतावले हो गये। अधर जो कि शृङ्गारभाव से रञ्जित थे लालायित हो उठे। सूर्य जैसी कान्ति पाकर उसका मुख-मण्डल हुलसित हो उठा। उसका हृदय हुलसित होने के कारण कंचुकी में नही समा रहा था। उसकी भुजाएँ हुलसित हो उठी जिससे उसके हाथ के वलय फूट गये।

उसका अंग-प्रत्यंग हुलसित हो गया, कोई कही नही समा रहा था। अग-प्रत्यंग विमोहित हो गया था। शरीर मे मूर्छा आ गई थी।

टिप्पणी—अस्टौभाव—आठो सात्विक, स्वेद, स्तम्भ, रोमाच, स्वर भंग, कंप, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय।

विशेष—इस अवतरण मे पदमावती का चित्र आगतपतिका नायिका के रूप मे चित्रित किया गया है। इन्द्रावती में भी एक ऐसा ही वर्णन किया है—

इन्द्रावति मन मो हुलसानी। हुलसे कुच कंचुक सेकरानी॥
मुख पर छवि छाइ अधिकाई। गई पियराय भई ललताई॥

सखी सँभारि पियावहि पानी। राजकुँवरि कहे कुँभिलानी॥
हम तौ तोहि देखावा पीऊ। तू मुरझानि, कैस भा जीऊ॥
सुनहु सखी सब कहहिं बियाहू। मो कहँ भएउ चाँद कर राहू॥
तुम जानहु आवै पिउ साजा। यह सब सिर पर धम-धम बाजा॥
जेते बराती औ असवारा। आए सबै चलावनहारा॥
सो आगम हौ देखति झँखी। रहन न आपन देखौ, सखी॥
होइ बियाह पुनि होइह गवना। गवनव तहाँ बहुरि नहि अवना॥
अब यह मिलन कहाँ होइ? परा बिछोहा टूटि॥
तैसि गाँठि पिउ जोरब जनम न होइहि छूटि॥७॥

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती के द्वारा अपने मूर्च्छित होने के कारण का उल्लेख कराया है जो सर्वथा मनोवैज्ञानिक है।]

सखियाँ सँभालकर पानी पिलाती है और पूछती है—हे राजकुमारी! तुम क्यो कुम्हला गई? हमने तो तुम्हें प्रियतम के दर्शन कराये और तुम मुरझा गई। तुम्हारा जी कैसा हो रहा है? इस पर पदमावती ने उत्तर दिया—हे सखियो! तुम सब कहती हो कि विवाह हो रहा है, किन्तु मेरे लिए यह प्रियतम उसी प्रकार ग्रहण रूप हो

गया है जिस प्रकार चांद के लिए राहू हो जाता है। हे सखियो ! तुम कहती हो कि प्रियतम बारात सजाकर आ रहा है, किन्तु यह सब बाजे-गाजे हमारे सिर पर धम-धम की आवाज से लग रहे है। जितने बाराती और सवार है, वे सब बुलाने के लिए आए है। उफ ! भविष्य की मैं कल्पना कर रही हूं कि मुझे यहाँ यह लोग रहने नही देगे। पहले विवाह होगा और फिर गौना होगा और हम वहाँ जाएँगे, जहाँ से फिर लौट करके आना नही होगा। प्रियतम से ऐसी गाँठ जुड़ेगी कि जन्म भर नही छूटेगी और तुम सबका विछोह सहना पडेगा।

टिप्पणी—मो कहँ······राहू—यहाँ पर उपमा अलंकार व्यंग्य है। कवि की व्यंजना है कि जिस प्रकार चांद के लिए राहु कण्टकर होता है उसी प्रकार प्रियतम मेरे लिए कण्टकर हो रहा है।

गवनव······अवना—तहाँ' शब्द से कवि ने उस परमात्मा के लोक की व्यंजना की है। अतः अर्थान्तिर सक्रमित वाच्यध्वनि है।

आइ बजावति बैठि वराता। पान, फूल, सेंदुर सब राता ॥
जहँ सोने कर चित्तर-सारी। लेइ बरात सब तहाँ उतारी ॥
माँझ सिंघासन पाट सवारा। दूलह आनि तहाँ बैसारा ॥
कनक-खंभ लागे चहुँ पाँती। मानिक-दिया बरहिं दिन राती ॥
भएउ अचल ध्रुव जोगि पखेरू। फूलि बैठ थिर जैस सुमेरू ॥
आजु दैउ हौ कीन्ह सभागा। जत दुख कीन्ह नेग सब लागा ॥
आजु सूर सजि के घर आवा। ससि सूरहि जनु होइ मेरावा ॥
आजु इन्द्र होइ आएउँ, सजि बरात कविलास।
आजु मिली मोहि अपछरा, पूजी मन कै आस ॥८॥

[इस अवतरण मे कवि ने बरात की द्वार पर चढत का वर्णन किया है।]

बाजे गाजे के साथ बरात आकर द्वार पर स्थित हुई। लोग पान, फूल और सिन्दूर से स्वागत के लिए उत्सुक हो रहे थे। जहाँ पर सोने से सजी हुई चितर-सारी थी, वहाँ पर बारात लाकर उतार दी। बीच में सिंहासन की पीठिका सजाई गई। वहाँ पर दूल्हे को लाकर बैठाया गया। चारो तरफ सोने के खम्भे लगाये गये थे। दिन रात मणि-माणिक्य के दीपक जल रहे थे। पक्षी की तरह विचरने वाला जोगी आज ध्रुव की तरह अचल हो रहा था। वह प्रसन्नता से इस प्रकार स्थिर हो कर बैठ गया मानो कि सुमेरु पर्वत हो। आज दैव ने हमे भाग्यवान बनाया है। उसने जो दुख दिया था, वह आज नेग रूप लग रहा है। आज सूर्य चन्द्रमा के घर आया है और ऐसा लग रहा है कि सूर्य और चन्द्र का मिलन हो रहा है।

आज इन्द्र कैलाश मे बारात सजाकर आया है। आज मुझे अप्सरा मिली है और मन की इच्छा पूर्ण हुई है।

टिप्पणी—चित्तरसारी—मध्ययुग में चित्तरसारी शब्द का प्रयोग सम्भवतः उसी अर्थ मे होता था, जिस अर्थ में आजकल ड्राइंग रूम शब्द का प्रयोग होता है। यह चित्तरसारी महल के अन्दर या बाहर कही भी हो सकती थी। यही पर बैठकर राजा-रानी अपने अतिथियों का स्वागत-सत्कार करते थे। यहीं पर अतिथि कभी-कभी ठहराये भी जाते थे। कभी-कभी नव-दम्पती इस कक्ष में शयन भी करते थे।

भयउ......पखेरू—'भयउ अचल ध्रुव' मे उपमा अलंकार व्यंग्य है और जोगी पखेरू में रूपक अलंकार है। उससे उपमा व्यंग्य है। कवि की व्यंजना है कि जो रतनसेन पक्षी की तरह इधर-उधर घूमा करता था वह ही आज ध्रुव की तरह स्थिर हो गया है।

आजु......आवा—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार है। सूर और शशि मे शब्दशक्ति उद्भव अनुरणन ध्वनि भी है। यहाँ पर कवि ने यौगिक संकेत भी किया है। कवि की व्यंजना है कि रतनसेन और पदमावती का मिलन उसी प्रकार सिद्धि स्वरूप था जिस प्रकार योग क्षेत्र में सूर्य और शशि का मिलन सिद्धि रूप होता है। हठ योग में ह शब्द सूर्य का प्रतीक है और ठ चन्द्र का प्रतीक है। इन दोनों के मेलन को ही हठयोग कहते है।

शशि......सिरावा—यहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा अलंकार से रतनसेन और पदमावती के सम्बन्धौचित्य की व्यंजना की है। अतएव यहाँ पर कवि प्रौढोक्ति सिद्ध हेतूत्प्रेक्षा अलंकार से वस्तु व्यंग्य है।

आजु......कबिलास—यहाँ पर उपमा अलंकार व्यंग्य है। कवि ने व्यजित किया है—जिस प्रकार इन्द्रलोक में इन्द्र बारात सजा कर ले जाते हुए शोभायमान होते हैं, उसी प्रकार रतनसेन सिंघल मे बारात लाते हुए शोभायमान हो रहे है।

होइ लाग जेवनार पसारा। कनक पत्र पसरे पनवारा॥
सोन-थार मनि मानिक जरे। राय रंक के आगे धरे॥
रतन-जड़ाऊ खोरा खोरी। जन-जन आगे दस-दस जोरी॥
गडुवन हीर पदारथ लागे। देखि बिमोहे पुरुष सभागे॥
जानहुँ नखत करहि उजियारा। छपि गए दीपक औ मसियारा॥
गई मिलि चाँद सुरुज कै करा। भा उदोत तैसे निरमरा॥
जेहि मानुष कहँ जोति न होही। तेहि भइ जोति देखि वह जोती॥
पाँति भाँति-भाँति जेवनार।
कनक कनक-पत्र पनवार॥९॥

[इस अवतरण मे जेवनार की तैयारी का वर्णन किया गया है।]

जेवनार के लिए रसोई तैयार की जाने लगी। सोने के पत्तो की पत्तलें बिछाई गईं। उनके ऊपर सोने के थाल राजा और रंक सबके आगे रखे गये। रतन से जड़े हुए दस-दस जोड़ी कटोरा-कटोरी रखे गए। गडुओ मे हीरे और रतन जड़े हुए थे। भाग्यवान पुरुष भी उन्हे देख करके मोहित हो गए। ऐसा मालूम हो रहा था कि नक्षत्र प्रकाश कर रहे हो। उनके प्रकाश मे दीपक और मशाल दोनों छिप गये, जैसे चाँद और सूरज की किरणे मिल जाने से एक विचित्र शोभा उत्पन्न होती है उसी प्रकार रत्नो से जड़े इन सोने के वर्तनो की शोभा हो रही थी। जिस मनुष्य के कान्ति नही होती अथवा जिन मनुष्यो के नेत्रो में ज्योति नही थी उन वर्तनो की ज्योति से उनमे ज्योति आ गई।

लोग पक्तियो मे बैठे हुए थे और तरह-तरह की जेवनार हो रही थी। दोनो के नीचे सोने के पत्ते थे और सोने के पत्तो की ही पत्तले बनी हुई थी।

टिप्पणी—जेवनार पसारा—डाक्टर अग्रवाल ने इसका पाठान्तर दिया है 'जेवनार सुसारा'। सुसारा का कुछ लोग अर्थ स्वादिष्ठ लगाते है। तुलसी ने भी इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ मे किया है।

पनवार—अवध मे पत्तल को कहते हैं।

छपि······मसियारा—यहाँ पर व्यतिरेक अलंकार व्यंग्य है।

कनक-पत्र दोनन्ह तर—इसका डाक्टर अग्रवाल ने पाठान्तर दिया है 'कनक-पत्र तर धोती' और इसका अर्थ किया है कि कनक पत्र की धोती पहने हुए थे। इन का कहना है कि कनक पत्र नाम का एक कपड़ा होता था, जो सम्भवतः सोने के तारो से बुना रहता था। हमारी समझ मे दोनो ही पाठ अपनी-अपनी जगह पर ठीक है।

पहिले भात परोसे आना। जनहुँ सुवास कपूर बसाना॥
झालर माँडे आए पोई। देखत उजर पाग जस धोई॥
लुचुई और सोहारी धरी। एक तौ ताती औ सुठि कोंवरी॥
खँडरा वचका औ डुभकौरी। बरी एकोतर सौ, को हुँडौरी॥
पुनि सँधाने आए बसाँधे। दूध दही के मुरण्डा बाँधे॥
औ छप्पन परकार जो आए। नहि अस देख, न कबहूँ खाए॥
पुनि जाउरि पछियाउरि आई। घिरित खाँड़ कै बनी मिठाई॥
जेवंत अधिक सुवासित, मुँह-मुँह परत बिलाइ।
सहस स्वाद सो पावै, एक कौर जो खाइ॥१०॥

[इस अवतरण मे जेवनार परोसने का वर्णन किया गया है।]

पहले भात परोसा गया। उसमें ऐसी खुशबू आ रही थी, मानो कि कपूर बसाया गया है। फिर हाथों मे घी लगा कर पोये गये झालर माँड़े आये। वे ऐसे सफेद पाग मे पागे गये थे कि देखने में बिल्कुल धोये हुए से लगते थे। लुचुई और सुहारी रखी गयी। एक तो यह गरम थी, दूसरे कोमल थी। इसके बाद खँडरा और बचका डुभकोरी, वरी और एक सौ एक अन्य पदार्थ तथा कोंहडौरी लाई गई। पुनश्च अचार, दूध, दही, बंधे हुए मुरन्डे आदि जो छप्पनों प्रकार के व्यंजन, जो न कभी देखे गए थे न खाए गये थे लाए गए। इसके बाद जाउर और पछियावर आई, इसके अतिरिक्त घी और खाँड की बनी हुई मिठाईयाँ आई।

भोजन अत्यधिक सुगन्धित थे और इतने मुलायम थे कि मुँह मे पडते ही घुल जाते थे। जो एक कौर खा लेता था सहस्रो स्वाद आते थे।

टिप्पणी—झालर······धोइ—डाक्टर अग्रवाल मे इसका पाठान्तर इस प्रकार मिलता है : 'झालर माँड़ आए घिउ पोए। ऊजर देखि पाप गए धोए' झालर माँड़े किसे कहते थे यह निश्चित रूप से नही कह सकते। डाक्टर अग्रवाल ने लिखा है झालर का अर्थ निश्चित नही है। कवि का अभिप्राय झालर या घड़ियाल नामक बाजे के आकार वाले से है। माँड को स्पष्ट करते हुए उन्होने लिखा है 'मानसोल्लास' के अनुसार धुले हुए गेहूँ को धूप मे सुखाकर चक्की में पीस कर महीन चलनी मे छान लेते थे, तब आटे मे घी मिलाकर उसमे नमक डाल दूध और पानी डाल कर किसी बडे कठौते मे खूब माँडते थे। फिर उसके गोल पिण्डे बनाकर घी लगे हुए हाथो जितना बढ़ सकते थे बढ़ा लेते और उन चौड़े मण्डो को मिट्टी के तवे पर डाल कर चटपट सेकते थे जिससे काले न होने पाते थे। वही मिश्री की थाली जैसे सफेद माण्डे होते थे। हमारी समझ मे झालर माँड मालपुओ को कहते थे, जो हाथ में घी लगाकर पतले आटे के बढ़ाकर बनाए जाते थे। मालपुए बिल्कुल सम नही होते थे। झालर जैसी लटका करती थी, इसीलिए उनको झालर माँड़ कहते थे। माँड का ही माल हो गया है। आजकल माल मालपुओं को ही कहते है। वे सफेद मैदे के बनाए जाते थे। मध्य युग मे इनका बहुत प्रचार था। हमे डाक्टर अग्रवाल का पाठ अधिक उपयुक्त लगता है। उन्होने इस पंक्ति का अर्थ दिया है 'फिर हाथो मे घी लगाकर पोये हुए झालर माँड़े आये, जिनकी उज्ज्वलता देखने से ही पाप धुल जाते थे।'

टिप्पणी—लुचुई······धरी—डाक्टर अग्रवाल ने इसका पाठान्तर दिया है 'लुचुई पूरि सोहारी परी'। लुचुई एक प्रकार की पूड़ी होती है। डाक्टर अग्रवाल के अनुसार खूब भिगोये हुये मैदे की दो लोई बनाकर बीच मे घी लगाकर बेलन से चौड़ी और खूब बढाकर तवे पर घी मे सेकी हुई मुलायम और पतली पूरी को कहते है। डाक्टर अग्रवाल का अभिप्राय पराठे से मालूम होता है। हमारी समझ मे लुचुई से कवि का अभिप्राय पतली मोयनदार मुलायम मैदे की पूरी से है।

टिप्पणी—पूरी—पूरी से अभिप्राय कवि का कड़ाई मे उतारी गई पूड़ियो से है।

सोहारी—खूब मोयन डाल करके पतली-पतली नमकीन खसता पूडी को सोहारी कहते है।

खँड़रा—डाक्टर अग्रवाल ने खँडरा का अर्थ 'सकरपारा' माना है। आचार्य शुक्ल ने फेंटे हुए बेसन के भाप पर पके हुए चौखुण्टे टुकडे, जो दही मे या रसे मे डालकर झोंक कर बनाये जाते है, उन्हे खँडरा कहा है।

वचका—बेसन और मैदे को एक मे फेंट कर जलेबी के समान घी मे टपका कर एक व्यंजन बनाते है, फिर दूध मे भिगोकर रख देते है, इसी को वचका कहते है।

बरी……कोंहड़ौरी—डा० अग्रवाल ने इसका पाठान्तर दिया है 'परी एको- तर सै कंठहडी'। हमे शुक्ल जी के पाठ से यह पाठ अधिक उपयुक्त लगता है। उन्होने इसका अर्थ दिया है कि खँडरे काटकर खांड की चासनी से पकाये गए और वह १०१ हंडियो मे डालकर रख दिए गए।

सन्धान=अचार को कहते है। मोरन्डा=दूध मे छेने या दही को कपड़े मे छानकर घी मे भून कर जो मोर के अन्डे के समान रसगुल्ले बनाए जाते हैं, उन्हे मोरन्डा कहते है। यह अर्थ डाक्टर अग्रवाल का है। आचार्य शुक्ल ने गेहूँ के भुने हुए और गुड के बने हुए लड्डू को मुरन्डा कहा है। डा० अग्रवाल का अर्थ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

छप्पन परकार=डा० अग्रवाल के पाठ मे बावन प्रकार शब्द दिया है। लोक मे छप्पन प्रकार के व्यंजनों की चर्चा बराबर होती आई है किन्तु यह छप्पन प्रकार के व्यंजन कौन से थे इनका पता नही चलता।

जाउरि—दूध मे पकाई गई चावलों की खीर को कहते है।

जेंवन आवा, बाज न बाजा। बिन बाजन नहिं जेवै राजा॥
सब कुँवरन्ह पुनि खैचा हाथू। ठाकुर जेंव तौ जेवै साथू॥
विनय करहिं पंडित विद्वाना। काहे नहि जेंवहि जजमाना?॥
यह कबिलास इन्द्र कर बासू। जहाँ न अन्न न माछरि माँसू॥
पान-फूल-आसी सब कोई। तुम्ह कारन यह कीन्हि रसोई॥
भूख, तो जनु अमृत है सूखा। धूप, तौ सीअर नीबी रूखा॥
नीद, तौ भुइँ जनु सेज सपेती। छाँटहुँ का चतुराई एती?॥
कौन काज केहि कारन, बिकल भएउ जजमान।
होई रजायसु सोई बेगि देहि हम आन॥११॥

[इस अवतरण मे कवि ने रतनसेन की जेवनार का वर्णन किया है ।]

रतन और उनके साथियों के लिए भोजन लाया गया, किन्तु बीन नही बजी और बिना बाजे के राजा ने भोजन नही किया । सब कुमारों ने हाथ खीच लिया, जब राजा भोजन करता है तभी उसके साथी भोजन करते है । पडित और विद्वान् विनय करने लगे कि जजमान भोजन क्यो नही करते है । यह कैलाश है जहाँ पर इन्द्र का निवास है । यहाँ अन्न और मछली-मांस नहीं मिलते है । यहाँ सब पान-फूल का भोजन करके ही रहते है । तुम्हारे कारण यह रसोई बनाई गई । जब भूख होती है तो रूखा-सूखा भी अमृत लगता है । धूप मे नीम की छाया भी मधुर लगती है और जिस समय नीद लगी होती है उस समय पृथ्वी ही गुदगुदी शैया के सदृश लगती है । इतनी चतुरता आप क्यो दिखा रहे है । क्या कारण है किसलिए जजमान विकल है । आज्ञा करिये वही चीज हम लाकर रखें ।

टिप्पणी—खेंचा हाथु—यहाँ पर लक्षणलक्षणा से कवि ने यह प्रकट किया है कि उन्होंने भी खाना बन्द कर दिया ।

तुम पंडित जानहु सब भेदू । पहिले नाद भएउ, तब बेदू ।।
आदि पिता जो बिधि अवतारा । नाद संग जिउ ज्ञान सँवारा ।।
सो तुम बरजि नीक का कीन्हा । जेवन संग भोग बिधि दीन्हा ।।
नैन, रसन, नासिक, दुइ स्रवना । इन चारहु संग जेवै अवना ।।
जेंवन देखा नैन सिराने । जीवहि स्वाद भुगुति रस जाने ।।
नासिक सबै बासना पाई । स्रवनहि काह करत पहुनाई ? ।।
तेहि कर होइ नाद सौ पोखा । तब चारिहु कर होइ सँतोखा ।।
औ सो सुनहि सब्द एक जाहि परा किछु सूझि ।
पंडित! नाद सुनै कहँ बरजेहु तुम का बूझि ।।१२।।

[इस अवतरण में कवि ने बहुत से पारिभाषिक शब्दों के माध्यम से कुछ यौगिक बातें कही हैं और उससे कुछ व्यंजनाएँ निकाली है ।]

सिंघलवासी राजा रतनसेन से कहते हैं कि हे राजकुमार ! तुम सब रहस्य जानते हो । तुम्हे मालूम है कि पहले नाद की उत्पत्ति होती है और फिर वेद की रचना होती है । परमात्मा ने नाद के साथ ही जीव मे ज्ञान का सचार किया था लेकिन तुमने जीव को भोजन करने से रोक कर ज्ञान का दुरुपयोग किया । जेंवन के रूप में परमात्मा ने तुम्हें भोग दिया था । नेत्र, जिह्वा, नासिका और दोनो कान इन चारों के साथ जेवन का उपभोग होता है । जेवन देखने से नेत्रो को संतोष मिलता है और जिह्वा को स्वाद मिलता है । नासिका से सबको सुगन्ध मिलती है । प्रश्न है कि कानों का जेवन से क्या स्वागत हो सकता है । कानो का पोषण नाद से होता है ।

तब चारो का सन्तोष होता है। हम वह शब्द सुनना चाहते हैं जिससे कुछ ज्ञान हो। हे पडित, तुमने नाद सुनने के लिए क्या सोच करके मना कर दिया ? नाद सुनाने से क्यो मना कर दिया।

विशेष—इस अवतरण मे कवि नाथपथ के नाद के सिद्धान्त से प्रभावित है।

टिप्पणी—पहिले······वेदु—यहाँ पर इस पंक्ति मे वेदु के स्थान पर विन्दु भी हो सकता है। यहाँ पर कवि ने यह व्यंजित किया है कि पहले नाद रूपी ब्रह्म की उत्पत्ति हुई थी, फिर विन्दु रूपी जीव की उत्पत्ति हुई। अतएव कवि की व्यंजना है जीव का नाद से जन्य-जनक सम्बन्ध है। जब तक जीव नाद से उद्भूत स्वर्ण लहरी को नही सुनता तब तक उसे पूर्ण भोग प्राप्त नहीं होता। अतएव भोजन का आनन्द तभी प्राप्त हो सकता था, जबकि सगीत का आयोजन किया गया हो।

राजा! उतर सुनहु अब सोई। महि डोलै जौ वेद न होई ॥
नाद, वेद, मद, पैड़ जो चारी। काया महँ ते, लेहु बिचारी ॥
नाद हिये, मद उपनै काया। जहँ मद तहाँ पैंड नहि छाया ॥
होइ उनमद जूझा सो करै। जो न वेद-आँकुस सिर धरै ॥
जोगी होइ नाद सो सुना। जेहि सुनि काय जरै चौगुना ॥
कया जो परम तंत मन लावा। घूम माति, सुनि और न भावा ॥
गए जो धरम पन्थ होइ राजा। तिन कर पुनि जो सुनै तो छाजा ॥
जस मद पिए घूम कोइ नाद सुने पै घूम।
तेहि ते बरजे नीक है, चढै रहसि कै दूम ॥१३॥

[इस अवतरण मे कवि ने पडितो द्वारा राजा के प्रश्नो का उत्तर दिलवाया है।]

पंडितो ने उत्तर दिया कि हे राजा सुनो ! यदि वेद न होता तो पृथ्वी डोलायमान हो जाती। नाद, वेद, मद और पैंड यह जो चार चीजें हैं, उनको अपने शरीर मे खोजा जा सकता है। नाद, हृदय में उत्पन्न होता है। मद शरीर मे उत्पन्न होता है और जहाँ मद होता है वही पैंड होता है, छाया नही होती। यदि वेद अकुश न धरे तो जो जीव उन्मद हो करके जूझता रहता है। नाद वही सुन पाता है जो जोगी होता है। उस नाद को सुन करके काया चौगुनी भस्मीभूत होती है क्योकि जो जीव परमात्मा के नाद मे लीन हो जाता है वह उसमे ही उन्मत्त होकर तन्मय रहता है और कोई दूसरी बात नही दिखाई देती। जो धर्ममार्गी राजा हो गए हैं उनके विषय मे यदि सुना जाए तो अच्छा मालूम होता है।

जैसे कोई मद पी करके मतवाला होकर झूमने लगता है, उसी प्रकार कुछ लोग नाद सुन करके झूमने लगते है। इसीलिए हमने उसकी व्यवस्था नही की कि कही उसे सुन करके रतनसेन उन्मत्त न हो जाए।

टिप्पणी—नाद—शब्द ब्रह्म या अनहद नाद जो कि ब्रह्मरन्ध्र मे गुंजित रहता है।

वेद—ज्ञान को कहते है।

मद=प्रेम मद। पैंड=ईश्वर की ओर ले जाने वाला मार्ग।

नाद······बिचारी—इस पंक्ति से कवि ने यह व्यजित करने की चेष्टा की है कि योगियो में सबसे अधिक प्रतिष्ठा नाद की है और हिन्दुओ में सबसे अधिक प्रतिष्ठा वेद की है। सूफियो मे सबसे अधिक प्रतिष्ठा प्रेम मद की है और बौद्धो में सबसे अधिक प्रतिष्ठा सत्य मार्ग की है। इन सबकी मान्यता तभी तक है जब तक कि साधना वहिर्मुखी रहती है, और जब साधना अन्तर्मुखी हो जाती है इन सबकी स्थिति शरीर मे ही ढूंढी जा सकती है।

नाद······धरे—कवि ने यह व्यजित करने की चेष्टा की है कि जब योगी के हृदय मे नाद उत्पन्न हो जाता है तो काया अपने आप मस्त हो जाती है और जहाँ नादजनित उन्माद रहता है वहाँ सत्य के प्रति आस्था और माया के प्रति अनास्था स्वयमेव आ जाती है। इतना होते हुए भी नाद श्रवण करने वाले योगी को गुरु ज्ञान (वेद) की अपेक्षा बनी रहती है। अगर वेद या गुरु ज्ञान नादजनित उन्माद को नियन्त्रित न करता रहे तो योगी फिर उन्मत्त हो करके उचितानुचित कर सकते थे। इसीलिए नाद मद और पैड़ के साथ-साथ वेद का भी बडा महत्त्व है क्योकि वेद इन सबको नियन्त्रित रखता है।

जस······दूम—पडित लोग राजा रतन के प्रति यह व्यजित करना चाहते हैं कि तुम योगी थे, कही संगीत के नाद से उन्मत्त हो जाते और आध्यात्मिक सत्य मे तन्मय हो जाते तो फिर हमारी राजकुमारी का क्या होता। उसके प्रति तो तुम्हे विरक्ति हो जाती तो फिर हम क्या करते। इसी भय से भोजन के समय नाद की व्यवस्था नही की गई। यहाँ पर स्वतःसम्भवी वस्तु से वस्तु-व्यंग्य है।

भइ जेंवनार, फिरा खँडवानी। फिरा अरगजा कुँह-कुँह पानी॥
फिरा पान, बहुरा सब कोई। लाग बियाह-चार सब होई॥
माँड़ौ सोन क गगन सँवारा। वन्दनवार लाग सब बारा॥
साजा पाट छत्र कै छाहाँ। रतन-चौक पूरा तेहि माहाँ॥
कंचन-कलस नीर भरि धरा। इन्द्र पास आनी अपछरा॥
गाँठि दुलह-दुलहिन कै जोरी। दुऔ जगत जो जाइ न छोरी॥
बेद पढ़ै पंडित तेहि ठाऊँ। कन्या तुला राशि लेइ नाऊँ॥
चाँद सुरुज दुऔ निरमल, दुऔ संजोग अनूप।
सुरुज चाँद सौ भूला, चाँद सुरुज कै रूप॥१४॥

[इस अवतरण मे कवि ने जेवनार के बाद मे परोसे जाने वाले पेय एवं खाद्य पदार्थों का वर्णन किया है ।]

जेवनार हो चुकने के बाद खाँड का शरबत घुमाया गया । फिर कुमकुम के रंग का अरगजा सबको दिया गया । उसके बाद पान बाँटे गए और सब बराती जनमासे मे लौट आए । पुनश्च विवाह के रीति-रस्म का विधान किया जाने लगा । सोने का मंडप आकाश मे लगाया गया । सब मे वन्दनवार लगाए गए । छत्र की छाया में वर के बैठने का आसन लगाया गया और वहीं पर रत्नो का चौक लगाया गया । सोने का कलस जल से भर कर रखा गया और फिर इन्द्र के पास अप्सरा लाई गई । अर्थात् रतनसेन के पास पदमावती लाई गई और फिर दूल्हा-दुलहन की गाँठ जोड़ी गई जो दोनो संसारों मे अर्थात् इस लोक और परलोक दोनो मे नहीं छूट सकती थी । पण्डित वहाँ पर वेद पढ रहे थे, कन्या और तुला राशि का नाम ले रहे थे ।

चाँद सूरज दोनो ही निर्मल थे, दोनो का अनुपम संयोग था । सूर्य चाँद मे भूला था और चाँद सूर्य के रूप मे भूली थी ।

टिप्पणी—खण्डवानी—खाँड़ के पानी को खडवानी कहते हैं। भोजन के बाद सम्भवत. उस समय शर्बत पिलाने की प्रथा थी ।

इन्द्र·········अपछरा—यहाँ पर उपमा अलंकार व्यग्य है । कवि की व्यंजना है कि जिस प्रकार इन्द्र के लिए अप्सरा लाई गई थी, उसी प्रकार रतनसेन के लिए पदमावती लाई गई ।

चाँद·········रूप—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार है ।

कन्या·········नाउ—पदमावती की राशि कन्या थी और रतनसेन की राशि तुला थी ।

दुऔ नाँव लै गावहि बारा । करहि सो पदमिनि मंगलचारा ।।
चाँद के हाथ दीन्ह जयमाला । चाँद आनि सुरुज गिउ घाला ।।
सुरुज लीन्ह, चाँद पहिराई । हार नखत-तरइन्ह स्यों पाई ।।
पुनि धनि भरि अजुली जल लीन्हा । जोबन जनम कंत कहँ दीन्हा ।।
कत लीन्ह, दीन्हा धनि हाथा । जोरी गाँठि दुऔ एक साथा ।।
चाँद सुरुज सत भाँवरि लेहीं । नखत मोति नेवछावरि देहीं ।।
फिरहि दुऔ सतफेर, छुटै कै । सातहु फेर गाँठि सो एकै ।।
भइ भाँवरि, नेवछावरि, राज चार सब कीन्ह ।
दायज कहौ कहाँ लागि ? लिखि न जाइ जत दीन्ह ।।१५।।

[इस अवतरण मे कवि ने जयमाला के प्रसंग का चित्रण कराया है ।]

बालाएँ दोनो के नाम ले ले कर गाने लगी । पदमनियाँ मंगलाचार गाने लगी। उन्होने पदमावती के हाथ मे जयमाला दे दी । पदमावती ने सूर्य रूपी रतनसेन के गले

मे जयमाला डाल दी। सूरज रूपी रतनसेन ने चाँद रूपी पदमावती के गले मे जयमाला दी। नक्षत्र और तराई रूपी सखियों ने फिर रतनसेन को हार पहनाए। फिर पदमावती ने अंजुली भर जल लिया और अपना यौवन एवं जन्म पति को समर्पित कर दिया। पति ने वह समर्पण स्वीकार किया और स्त्री को रक्षा का हाथ सौप दिया। दोनो की एक साथ गाँठ जुड़ गई। पदमावती और रतनसेन की सात भाँवरें होने लगी। नक्षत्र रूपी सखियाँ मोतियों को निछावर करने लगी। भाँवरे हो गईं, निछावरी की गई और जो कुछ राज चार थे वह सब किए गए। दहेज का कहाँ तक वर्णन किया जाए। सिंघल के राजा ने रतनसेन को अनन्त दहेज दिया था।

टिप्पणी—इस अवतरण मे सर्वत्र रूपकातिशयोक्ति का आश्रय लिया गया है। रतनसेन के स्थान पर उनके उपमान सूरज का और पदमावती के उपमान चाँद का कथन किया गया है। इस अवतरण मे कवि ने मंगलाचार और लोकाचार इन दोनो का वर्णन किया है। इन परम्पराओ का निर्वाह लगभग सभी प्रेम-गाथाकारों ने किया है।

रतनसेन जब दायज पावा। गन्ध्रबसेन आइ सिर नावा॥
मानुस चित्त आनु किछु कोई। करै गोसाइँ सोइ पै होई॥
अब तुम सिंघल दीप-गोसांई। हम सेवक अहहीं सेवकाई॥
जस तुम्हार चितउर गढ़ देसू। तस तुम्ह इहाँ हमार नरेसू॥
जंबू दीप दूरि का काजू? सिंघल दीप करहु अब राजू॥
रतनसेन बिनवा कर जोरी। अस्तुति-जोग जीभ कहँ मोरी॥
तुम्ह गोसाई जेइ छार छुड़ाई। कै मानुस अब दीन्हि बढाई॥
जौ तुम्ह दीन्ह तौ पावा जिवन जनम सुख भोग।
नातरु खेह पाँय कै, हौ जोगी केहि जोग॥१६॥

[इस अवतरण मे कवि ने गन्धर्वसेन द्वारा रतनसेन के प्रति समर्पित समादर की बात कही गई है।]

रतनसेन ने जब दहेज प्राप्त कर लिया तो गन्धर्वसेन ने आकर रतनसेन को प्रणाम किया और कहा कि मनुष्य के चित मे कुछ और बात रहती है किन्तु परमात्मा मनुष्य के मन की सोची हुई न करके अपने मन की करता है। अब तुम सिंघल द्वीप के स्वामी हो। और हम सेवक है और आपकी सेवकाई मे प्रस्तुत है। जिस प्रकार तुम्हारा चितौड़गढ़ देश है उसी प्रकार तुम हमारे राजा हो। जम्बू द्वीप बहुत दूर है। तुम्हे उससे क्या प्रयोजन? अब तुम सिंघल द्वीप मे ही राज्य करो। रतनसेन ने प्रत्युत्तर मे गन्धर्वसेन से हाथ जोड़कर विनय की और कहा कि स्तुति के योग्य हमारी जिह्वा नही है। आप हमारे स्वामी है जिन्होने हमारे शरीर की

भस्म धोई है और मुझे मनुष्य बनाकर सम्मान दिया है। जब आपने दिया है तभी हमने जीवन और जन्म का सुखोपभोग प्राप्त किया है। नही तो मैं पैर की धूल जोगी किस योग्य था।

टिप्पणी—मानुष.........होइ—डाक्टर अग्रवाल ने इसका पाठान्तर इस प्रकार दिया है—

'मानस चित आन कछु निता।
करै गोसाईं न मन महँ चिता॥'

किन्तु हमे आचार्य शुक्ल का पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। यह पंक्ति एक सुन्दर सूक्ति है।

विशेष—यह अवतरण में दो सम्बन्धियों के पारस्परिक विनयभाव का बडा सुन्दर उदाहरण हैं।

धौराहर पर दीन्हा बासू। सात खण्ड जहवाँ कविलासू॥
सखी सहसदल सेवा पाई। जनहुँ चाँद संग नखत तराई॥
होइ मंडल ससि के चहुँ पासा। ससि सूरहि लेइ चढ़ी अकासा॥
चलु सूरुज दिन अथवै जहाँ। ससि निरमल तू पावसि तहाँ॥
गन्ध्रवसेन धौराहर कीन्हा। दीन न राजहि, जोगिहि दीन्हा॥
मिलि जाइ ससि के चहुँ पाहाँ। सूर न चाँपै पावै छाहाँ॥
अब जोगी गुरु पावा सोई। उतरा जोग, भसम गा धोई॥
सात खण्ड धौराहर, सात रग नग लाग।
देखत गा कविलासहि, दिस्टि-पाप सब भाग॥१७॥

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती और रतनसेन को रहने के लिए जो स्थान दिया गया था उसका वर्णन किया है।]

रतनसेन को धवल गृह में रहने के लिए स्थान दिया गया। वह सातवें खण्ड मे उस स्थल पर था जहाँ राज मन्दिर का कैलाश नामक स्थान था। दस सहस्र सखियाँ सेवा के लिए नियुक्त की गईं जैसे कि चाँद के साथ नक्षत्र और तराईयाँ होवें। चन्द्रमा के चारो ओर मण्डल बनाए रखती थी, अर्थात् वे सदैव पदमावती को घेरे रहती थी। पदमावती रूपी ससि सूर्य रूपी रतनसेन को लेकर उस ऊर्ध्व स्थित धवल-गृह को गई। हे सूर्य रूपी रतनसेन! तू वहाँ चल जहाँ तेरा सौन्दर्य रूपी दिन छिप जाए और पदमावती रूपी ससि अपनी निर्मलता प्राप्त कर सके। गन्धर्वसेन ने जो धवल गृह बनाया था वह किसी राजा को न देकर जोगी को दिया। सखियाँ सब पदमावती के चारो ओर मँडराने लगी कि कदाचित् रतनसेन रूपी सूर्य कही उसकी

छाया न पा जाए। अब योगी को जिस गुरु की आवश्यकता थी मिल गया, इससे उसका जोग उतर गया और भस्म धुल गई।

सातवें खण्ड पर वह धवल गृह था, उसमे सात रंग के नग लगे हुए थे, उसके दर्शन करते ही जीव की दृष्टि के सब पाप धुल जाते थे।

टिप्पणी—धौराहर·········कविलासु—गन्धर्वसेन ने पदमावती के लिए अपने सात खण्ड वाले महल मे सातवें खण्ड में जो सम्भवतः अपनी ऊँचाई के कारण कैलाश के नाम से अभिहित किया जाता था, कोई सुन्दर स्थान दिया था।

होइ·········प्रकासा—इस पक्ति मे रूपकातिशयोक्ति अलंकार है। शशि पदमावती के लिए सूर्य रतनसेन के लिए और आकाश सातवें खण्ड मे स्थित पदमावती के निवास स्थान के लिए उपमान रूप मे कथित है। शशि और सूर शब्द यौगिक संकेत भी लिए हुए है। इसलिए इन शब्दों मे शब्द शक्ति उद्‌भव अनुरणन ध्वनि है।

दीन्ह·········दीन्हा—कवि की व्यजना है कि गन्धर्वसेन ने जो स्थान पदमावती और उसके पति किसी राजकुमार के लिए निर्मित किया था उसके स्थान में अब पदमावती के साथ जोगी विहार करेगा, यह भाग्य की विडम्बना है।

सात खण्ड सातौ कबिलासा। का बरनौ जग ऊपर वासा॥
हीरा ईंट कपूर गिलावा। मलयागिरि चन्दन सब लावा॥
चूना कीन्ह औटि जगमोती। मोतिहु चाहि अधिक तेहि जोती॥
बिसुकरमैं सो हाथ सँवारा। सात खड सातहि चौपारा॥
अति निरमल नहि जाइ बिसेखा। जस दरपन महँ दरसन देखा॥
भुइँ गच जानहुँ समुद हिलोरा। कनक खंभ जनु रचा हिडोरा॥
रतन पदारथ होइ उजियारा। भूले दीपक औ मसियारा।
तहँ अछरी पदमावति रतनसेन के पास।
सातौ सरग हाथ जनु औ सातौ कबिलास॥१८॥

[इस अवतरण मे कवि ने सिघलगढ के सात खण्डो का वर्णन किया है।]

सातो खण्ड मानो सात स्वर्ग है। ऐसे संसार मे सर्वश्रेष्ठ निवासस्थान का क्या वर्णन करूँ। इस महल के निर्माण में हीरे की ईंटे बनाई गई थी और कपूर का गारा बनाया गया था। और मलयगिरि के चन्दन का लकड़ी के स्थान पर प्रयोग किया गया था। विश्वकर्मा ने अपने हाथो से उसे बनाया था। सात खण्डो मे सात चौपालें बनाई गई थी। गजमोतियों को पिघलाकर चूना बनाया गया था। उनकी कान्ति मोतियो से भी अधिक थी। वह इतना निर्मल था कि उसका वर्णन नही किया जा सकता था। जैसे दर्पण में स्वच्छ प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है, वैसा ही उस महल

मे स्वच्छ प्रतिविम्व दिखाई पड़ता था। भूमि पर फर्श इतना सुन्दर था मानो कि समुद्र की लहरें उठ रही हो। सोने के खम्भे में जो ग्राड़े तोरण लगे थे वे ऐसे लगते थे कि मानो हिंडोरे पड़े हुए हों। रतन ग्रौर हीरों का ऐसा प्रकाश हो रहा था कि दीपक ग्रौर मशालो को लोग भूल गए।

ऐसे सुन्दर महल मे पदमावती जैसी ग्रप्सरा रतनसेन के पास थी। ऐसा लगता था कि सातो स्वर्ग ग्रौर सातो कैलाश मानो उसके हाथों में हो।

टिप्पणी—सात.........कविलासा—कवि ने यहाँ पर कविलास शब्द का प्रयोग ऐसा जान पड़ता है कि व्युत्पत्ति मूलक ग्रर्थ मे किया है। 'क' का ग्रर्थ है पृथ्वी ग्रौर विलास का ग्रर्थ है श्रेष्ठ। कविलास का ग्रर्थ हुग्रा पृथ्वी के सर्वश्रेष्ठ। कवि की व्यजना है कि धवल-गृह मे सात खण्ड थे ग्रौर सातो पृथ्वी के समस्त वैभव ग्रौर सुखो से परिपूर्ण थे।

हीरा.........मसियारा—इन पंक्तियो में उदात्त ग्रलकार के द्वारा कवि ने सिंघलगढ का ग्रतुलनीय वैभव वर्णित किया है। ग्रतः यहाँ कवि प्रौढोक्ति सिद्ध ग्रलंकार से वस्तु व्यग्य है।

रतन.........मसियारा—यहाँ पर ग्रतिरेक ग्रलकार व्यग्य है।

सातौ.........कविलास—यहाँ पर भी कविलास शब्द का ग्रर्थ पृथ्वी का श्रेष्ठ वैभव है। कवि की व्यजना है कि रतनसेन को सातो पृथ्वी का वैभव ग्रौर सुख वहाँ प्राप्त था।

पुनि तहँ रतनसेन पगु धारा। जहाँ नौ रतन सेज सँवारा॥
पुतरी गढि-गढि खंभन काढ़ी। जनु सजीव सेवा सव ठाढी॥
काहू हाथ चन्दन कै खोरी। कोइ सेंदुर, कोइ गहे सिंधोरी॥
कोइ कुँह-कुँह केसर लिहे रहै। लावै ंग रहसि जनु चहै॥
कोई लिहे कमकुमा चोवा। धनि कव चहै, ठाढ़ि मुख जोवा॥
कोइ वीरा, कोइ लीन्हे वीरी। कोइ परमल ग्रति सुगँध-समीरी॥
काहू हाथ कस्तूरी मेदू। कोइ किछु लिहे, लागु तस भेदू॥
पाँतिहि पाँति चहूँ दिसि सव सोंधे कै हाट।
माँझ रचा इन्द्रासन, पदमावती कहँ पाट॥१६॥

[इस ग्रवतरण मे कवि ने केलि-गृह का वर्णन किया है।]

इसके वाद रतनसेन ने उस केलि-गृह मे पदार्पण किया जहाँ पर नवरत्नों की शैया सजाई गई थी। वहाँ खम्भो पर पुतलियाँ गढ-गढ कर उभारी गई थी। ऐसा मालूम होता था मानो कि सव सजीव सेवा के लिए खड़ी थी। किसी के हाथ मे

चन्दन की कटोरी थी, कोई सिन्दूर लिए हुई थी। कोई सिधौरा लिए हुई थी। कोई कुमकुम केसर लिए हुए थी। ऐसा लगता था कि वह अभी प्रसन्न होकर आपके शरीर मे कुमकुम और केसर लगा देंगी। कोई कुमकुमा और चोवा लिए हुए ऐसे खड़ी हुई थी कि पदमावति कब उन पर दृष्टि विक्षेपण कर दे। कोई वीणा लिए हुए थी, कोई मिस्सी की बीरी लिए हुई थी। कोई अत्यन्त सुगन्धित सुरभि लिए हुई थी, किसी के हाथ मे कस्तूरी और मेद था। इस प्रकार वे प्रतिमाएँ भाँति-भाँति के पदार्थ लिए हुई थी जिससे उनका रूप प्रकट हो रहा था। चारो ओर पुतलियाँ पंक्तियों मे खड़ी हुई थी मानो उनके हाथो मे सब सुगन्धियो का हाट भरा हुआ था और बीच मे इन्द्रासन रचा गया था, जिसमे पदमावती के बैठने का पटासन भी था।

विशेष—इन पक्तियो में कवि ने प्राचीन गृहो में पाई जाने वाली मूर्तिकला के वैभव का सजीव चित्रण किया है।

पदमावती-रतनसेन भेंट खण्ड

सात खण्ड ऊपर कविलासू । तहवाँ नारि-सेज सुखवासू ।।
चारि खम्भ चारहु दिसि खरे । हीरा रतन-पदारथ जरे ।।
मानिक दिया जरावा मोती । होइ उजियार रहा तेहि जोती ।।
ऊपर राता चन्दवा छावा । श्रौ भुइँ सुरँग बिछाव बिछावा ।।
तेहि महँ पालक सेज सो डासी । कीन्ह बिछावन फूलन्ह बासी ।।
चहुँ दिसि गेडुवा श्रौ गलसूई । काँची पाट भरी धुनि रुई ।।
बिधि सो सेज रची केहि जोगू । को तहँ पौढि मान रस भोगू ?।।
श्रति सुकुवाँरि सेज सो डासी, छुवै न पारै कोइ ।
देखत नवै खिनहि खिन, पावँ धरत कसि होइ ।।१।।

[इस श्रवतरण मे कवि ने कैलाश नामक केलि-गृह का वर्णन किया है ।]

कवि कहता है कि सात खण्डों के ऊपर कैलाश नामक केलि गृह है। वहीं पर सुख देने वाली पदमावती की शैया बिछी थी । चारों श्रोर चार खम्भे थे, जिनमे हीरे, रतन श्रौर श्रन्य मूल्यवान पत्थर जड़े हुए थे। माणिक्य श्रौर मोती के दीपक जैसे जलते हुए मालूम हो रहे थे । रात्रि मे उनके प्रकाश से प्रकाश छा जाता था । ऊपर लाल चँदवा छाया हुश्रा था श्रौर पृथ्वी पर सुन्दर बिछौना बिछा हुश्रा था । उसी मे पलंग पर बिस्तर बिछा हुश्रा था । वह शैय्या फूलो के बिस्तर से सुसज्जित थी । चारो श्रोर लम्बे तकिए श्रौर गोल चौकोर तकिए रखे हुए थे । कच्चे रेशम की रुई धुन कर उस मे भरी गई थी । मालूम नही यह शैया भगवान ने किसके योग्य बनाई थी। श्रौर वहाँ लेट करके न मालूम कौन सुखोपभोग करेगा । वह शैया श्रत्यन्त कोमल बनाई गई थी । कोई उसको छू नही सकता था । वह देखने मात्र से बार-बार दब जाती है । पाँव रखने पर न मालूम कैसी होगी ।

टिप्पणी—तहाँ.........सुखवासू—डाक्टर श्रग्रवाल ने इसका पाठान्तर इस प्रकार किया है. 'तहँ सोव नारि सेज सुखवासू' । इसका श्रर्थ करते हुए उन्होंने लिखा है : वहाँ सुखवासी मे सोने की शैय्या थी । टिप्पणी के श्रन्तर्गत उन्होने लिखा है कि सुखबास धवल-गृह के श्रन्तर्गत एक विशेष स्थान होता था ।

चारि.........भोगू—यहाँ पर उदात्त श्रलंकार है ।

विधि·········भोगू—यहाँ पर कवि ने काकुवैशिष्ट्य व्यंग्य के सहारे व्यंजित किया है कि पदमावती से विवाह करने वाला कोई महान् सौभाग्यशाली व्यक्ति होगा। यहाँ पर रतनसेन का परम सौभाग्य ही व्यग्य है।

देखत·········खिन—यहाँ पर चपलातिशयोक्ति अलंकार है।

विशेष—(क) यहाँ पर 'पुष्पास्तरण' नामक कला की अभिव्यक्ति हुई है। यह कामसूत्र मे वर्णित ६४ कलाओं में से एक है। प्रेमियो की शैया कैसे सजाई जाती है इस कला मे यही ज्ञेय विशेषता होती है।

राजै तपत सेज जो पाई। गाँठि छोरि धनि सखिन्ह छपाई ।।
कहैं, कुँवर हमरे अस चारू। आज कुँवरि कर करब सिगारू ।।
हरदि उतारि चढ़ाउब रंगू। तव निसि चाँद सुरुज सौ संगू ।।
जस चातक-मुख वूँद सेवाती। राजा-चख जोहत तेहि भाँति ।।
जोगि छरा जनु अछरी साथा। जोग हाथ कर भएउ वेहाथा ।।
वै चातुरि कर लै अपसई। मन्त्र अमोल छीनि लेइ गई ।।
ठेउ खोइ जरी ओ बूटी। लाभ न पाव, भूर भइ टूटी ।।
खाइ रहा ठग-लाडू, तत-मंत वुधि खोइ ।।
भा धौराहर बन-खंड, ना हँसि आव, न रोइ ।।२।।

[इस अवतरण मे कवि ने सुहाग के पूर्व के लोकाचारो का वर्णन किया है।]

राजा ने तपस्या करने के वाद जब शैया प्राप्त की तो सखियों ने पदमावती की गाँठ खोल करके उसको छिपा दिया और वोली, हे कुँवर ! हमारे यहाँ ऐसी प्रथा है कि आज रात कुमारी का शृंगार किया जाएगा। उसकी हल्दी उतार करके रंग चढ़ाया जाएगा। तव रात्रि में चाँद के समान पदमावती के साथ सूर्य के समान तुम्हारा मिलन होगा। जैसे चातक के मुख के सामने से स्वाती की वूँद निकल जाए उसी प्रकार सखियाँ पदमावती को राजा के सामने से लिवा ले गईं और राजा देखता ही रह गया। ऐसा लगा कि योगी को अप्सराओ ने मिलकर ठग लिया हो। जोग हाथ में आ करके भी हाथ से निकल गया। वे चतुर सहेलियाँ हाथ पकड करके पदमावती को ले गई। ऐसा लगा कि मानो रतनसेन से वह अमूल्य रत्न छीन करके ले गई हो। वह अपनी जड़ी-वूटी खो करके स्तम्भित हो गया। लाभ हुआ नही और गाँठ से मूल भी खो वैठा। जैसे कोई ठगो का लड्डू खा कर ठगा जाता है उसी प्रकार उसने अपना तन्त्र-मन्त्र और वुद्धि खो दी। धौराहर उसके लिए वनखण्ड हो गया। उसे न हँसी आ रही थी और न उसे रुलाई ही आ रही थी।

टिप्पणी—(१) सूरुज·········पाई—इस पंक्ति में सूरज मे रूपकातिशयोक्ति से वस्तु व्यंग्य है। रतनसेन का तेज, ओज और व्रह्मचर्यातिशय ही व्यंग्य

है। तपत मे कवि ने 'तपन' नामक स्वभावज अलंकार की अभिव्यक्ति की है। कामोद्वेग की अतिशयता की स्थिति ही 'तपन' की अवस्था मानी जाती है।

(२) ससि—रूपकातिशयोक्ति है।

(३) हरवि·········रंगू—यहाँ पर लक्षण-लक्षण मे अर्थ है कि एवं त्याग तपस्या को छुड़वाकर वासना और अनुराग का रंग चढ़ावेंगे।

(४) जनु·········स्वाती में—यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलंकार मे वस्तु व्यंग्य है। कवि ने राजा की चिन्ता, अभिलाषा, उद्वेग का एक सम्मिश्रित भाव व्यंजित किया है। यहाँ पर भाव संसृष्टि व्यंग्य है।

(५) त्वाई·········रोइ—यहाँ पर अभिलाषा हेतुक विरह जनित उन्माद, व्याधि और जड़ता के भावों की एक साथ व्यंजना की गई है। यहाँ पर स्वतःसम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंग्य है।

विशेष—इस अवतरण मे कवि ने 'छलित योग' नामक कला का बड़ा मार्मिक एवं सरस वर्णन किया है। कामसूत्र में ६४ कलाओं में यह एक कला है। इसमें प्रेमी और प्रेमिका को सखी-सहेलियाँ कैसे ठगती हैं यह सिखाया जाता है।

अस तप करत गएउ दिन भारी। चारि पहर बीते जुग चारी॥
परी साँझ, पुनि सखी सो आई। चाँद रहा, उपनी जो तराई॥
पूँछहि "गुरू कहाँ, रे चेला! बिनु ससि रे कस सूर अकेला॥
"धातु कमाय सिखे तैं जोगी। अब कस भा निरधातु बियोगी॥
"कहाँ सो खोएहु बिरवा लोना। जेहि ते होइ रूप औ सोना॥
"का हरतार पार नहि पावा। गंधक काहे कुरकुटा खावा॥
"कहाँ छपाए चाँद हमारा? जेहि बिनु रैनि जगत अँधियारा॥
नैन कौड़िया, हिय समुद, गुरू सो तेहि महँ जोति॥
मन मर जिया न होइ परे हाथ न आवै मोति॥३॥

[इस अवतरण में कवि ने रतनसेन की प्रतीक्षा भाव का वर्णन किया है।]

रतनसेन के लिए वह दिन बड़ा भारी पड़ गया। और उसके चार पहर चार युग के समान बीत गए। संध्या होने पर वह सखी फिर आ गई। तारिका तो दिखाई देने लगीं, किन्तु पदमावती चांद नही दिखाई दिया। वे पूछती हैं हे चेला! तुम्हारा गुरु कहाँ है? आज बिना पदमावती रूपी चांद के रतनसेन रूपी सूर्य अकेला कैसे है? हे जोगी, तूने धातु कमाना सीखा है। अर्थात् तू रसायनशास्त्री है। फिर आज तू कान्तिहीन क्यों हो रहा है? वह लावण्य की लता तुमने कहाँ खो दी है, जिससे सोने और चाँदी का निर्माण होता है। तेरा पारद कैसा है जो हरतार से नही जीत सका

वह सुगन्धमयी पदमावती कहाँ है, जिसके लिए तूने जोगी बनकर कष्ट सहे थे। तूने हमारा वह चाँद कहाँ छिपा रखा है, जिसके बिना संसार में अन्धकार छा रहा है। तेरे नेत्र कोड़िल्ला पक्षी है और हृदय समुद्र है और वह सुन्दर पदमावती गुरु है। मेरा मन जब तक मरजिया नही बनता तब तक मोती हाथ नहीं लगेगा।

टिप्पणी—अस—यहाँ संवृत्ति वक्रता है।

भारी—यहाँ क्रिया विशेषण वक्रता है।

चारि·········चारी—अतिशयोक्ति अलंकार है।

परी साँझ में क्रिया वैचित्र्य वक्रता है।

बिन ससि·········अकेला—यहाँ विनोक्ति और रूपकातिशयोक्ति का सकर है।

'धातु कमाय'—यहाँ पर श्लेष से दो अर्थ ग्रहण किए गए हैं—(क) ब्रह्मचर्य साध कर वीर्य संचित करना। (ख) रसायनशास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया है।

निरधातु—यहाँ पर उपसर्ग वक्रता है। निर् उपसर्ग के योग से वक्रता का समावेश हुआ है। निरधातु मे शब्दशक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि भी है। इसका एक अर्थ है धातु क्रियाहीन। दूसरा अर्थ है खिन्न अथवा कान्तिहीन।

बिरवा लोना—इसके दो अर्थ है (क) लोन नामक लता विशेष—(२) लावण्यमयी लता।

सो—में अर्थान्तर सक्रमित वाच्य ध्वनि है। सो मे पदमावती रूपी लावण्यमयी बाला अर्थान्तर संक्रमित है।

रूप औ सोना—इसके दो अर्थ है। (क) चाँदी को स्वर्ण बनाते है। (ख) जिसकीप्राप्ति से सौन्दर्य के साथ सम्पत्ति भी प्राप्त होती है। व्यंजना है कि पदमावती लक्ष्मीस्वरूपा है।

का हरतार·········पावा—(क) तेरा पारद (शुक्र) हड़ताल (पदमावती के रज) की बराबरी नही कर सकता है। (ख) चाँदी बनाने के लिए हड़ताल और सोने के लिए पारद या पारे की आवश्यकता पड़ती है। रागे में हडताल मिलाकर चाँदी और ताँबे मे पारा मिलाकर सोना बनाते है। उसी मे लोनी लता मिलाते है।

गंधक········ खावा—(क) वह सुगन्धियुक्त पदमावती कहाँ है, जिसके लिए तू ने जोगी बनकर भात का ढेर खाया था। (ख) पारा सब धातुओं को खा लेता है। किन्तु गन्धक पारे को खाती है। यदि गन्धक और पारा दोनो मिला दिए जाएँ तो गंधक पारे को खा लेगी। यहाँ पर कवि की व्यंजना है कि यदि पदमावती से तुम्हारा मिलन करा दिया जाय तो पदमावती विजयिनी होकर तुम्हे अपना बना लेगी।

चाँद—यहाँ पर साध्यवसाना गौणी लक्षणा और रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

जेहि बिनु............अँधियारा—यहाँ विनोक्ति अलंकार है।

नैन कौड़िया.........मोति—इस अवतरण मे कवि ने रूपक अलंकार से वस्तु व्यंजना की है। कवि यह व्यंजित कर रहा है कि हृदय की ज्योति ही पदमावती रूपी परब्रह्म है। उसे तभी प्राप्त किया जा सकता है जब कि जीवन्मुक्त बनकर योग की अन्तर्मुखी साधना की जाए। जिस प्रकार गोताखोर समुद्र मे गोता लगाकर मोती पा लेता है, उसी प्रकार साधना के बल पर उसे प्राप्त किया जा सकता है।

विशेष—इस अवतरण में कवि ने, शब्दशक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि तथा मुद्रा अलकार का प्रयोग किया है। धातु मे श्लेष निरधातु में शब्दशक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि और 'लोना' में मुद्रा अलंकार है। हरतार, पार मे शब्द शक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है। गन्धक.........खावा में—रूपकातिशयोक्ति से वस्तु ध्वनि है। कवि की व्यंजना है कि भला पदमावती जो सुगन्धमयी है, वह दुर्गन्धयुत कुरकुरा रूप रतनसेन का उपभोग कर सकती है? व्यंजना है कदापि नही कर सकती है। यहाँ पर काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य भी है। व्यंग्य सम्भवार्थी व्यंजना से पदमावती की श्रेष्ठता और रतनसेन की उसकी तुलना में तुच्छता व्यंजित की गई है।

यहाँ इस अवतरण मे, विनोक्ति, रूपकातिशयोक्ति, मुद्रा, श्लेष, रूपकादि कई अलकार ध्वनियाँ है। इस मे काव्य दोष भी है। अप्रतीतार्थ दोष तो है ही। यहाँ पर 'बिरवा लोना, हरतार, पार, रूप, सोना' आदि शब्द रसायन शास्त्र के पारिभाषिक शब्द है। इनके प्रयोग से ही यहाँ अप्रतीतार्थ शब्द दोष है। यहाँ पर शृंगार रस का पूर्ण परिपाक भी नही हो सका है। अतः रसाभास भी है।

यहाँ पर 'अक्षर मुष्टिका कथन' नामक कला का भी बोध होता है।

का पूँछहु तुम धातु, निछोही। जो गुरु कीन्ह अँतरपट ओही॥
सिधि-गुटिका अब मो सँग कहा। भएउँ राँग, सत हिए न रहा॥
सोन रूप जासौ दुःख खोलौं। गएउ भरोस तहाँ का बोलौं॥
जहँ लोना बिरबा कै जाती। कहि कै सँदेस आन को पाती?॥
कै जो पार हरतार करीजै। गंधक देखि अबहिं जिउ दीजै॥
तुम्ह जोरा कै सूर मयंकू। पुनि बिछोहि सो लीन्ह कलंकू॥
जो एहि घरी मिलावै मोही। सीस देउँ बलिहारी ओही॥
होइ अबरक ईंगुर भया, फेरि अगिनि मँह दीन्ह।
काया पीतर होइ कनक, जौ तुम चाहहु कीन्ह॥४॥

[इस अवतरण में कवि ने सखियों को रतनसेन से प्रत्युत्तर दिलाया है।]

रतनसेन कहता है, हे निर्मोही बालाओ ! जब तुमने हमारी गुरु रूप पदमावती को छिपा दिया तो फिर हमसे धातु की चर्चा क्या करती हो। अब मेरे पास सिद्धि गुटिका कहाँ है ? हृदय मे सत्य न रहने से मै रंक हो गया हूँ। वह पदमावती सुन्दरी अब हमारे पास नही है जिससे कि हम अपना दु ख निवृत्त करें। जिन पर (तुम सखियों) से विश्वास उठ गया है उनसे क्या बोलूँ। जहाँ पर लोना विरवा अर्थात् लावण्यरूपी पदमावती है, वहाँ से उससे मेरा सन्देश कह करके उसकी पत्री कौन ला रहा है। यदि कोई हरताल के सदृश मुझ पारे को संदेशवाहक मिल जाए तो मैं उस पदमावती मे जाकर समाहित हो जाऊँ। यदि तुमने सूर्य और चाँद को मिला दिया था और विछोह रूपी कलंक को दूर कर दिया था। जो इस समय मुझे मिला देगा मैं उसके ऊपर अपना मस्तक समर्पित करके निछावर करने के लिए प्रस्तुत हूँ। अबरक रूप पदमावती से मिलकर मैं ईंगुर रूप अर्थात् प्रेमरूप हो गया था। किन्तु तुम सखियो ने मुझ से उस सिन्दूर रूप को फिर से अग्नि मे डाल दिया है। यह पीतल की छाया अब भी स्वर्ण रूप हो सकती है यदि तुम चाहो तो।

टिप्पणी—का·········ओही—रतनसेन यह कह रहा है कि तुम रसायन शास्त्र की बात क्या करती हो, जो रसायन शास्त्र की हमारी गुरु रूपिणी पदमावती को ही छिपा दिया है। कवि का व्यंग्यार्थ है कि हे बालाओ, तुम हमारे पराक्रम और अपराक्रम की बात क्या पूछती हो, जिस अपनी पत्नी को अपने पराक्रम का परिचय दे सकता था उसे तो तुमने छिपा दिया। मै चरित्रहीन नही कि तुम्हें अपने पराक्रम का परिचय दे दूँ। तुम सब इतनी हृदयहीन हो कि मुझ कामोद्वेग से तपते हुए को तरसा रही हो। ओही मे संवृत्ति वक्रता है; कवि का भाव है कि जिससे मैं भोग कर सकता था।

भएउ रांग—श्लेष से दो अर्थ हैं .

(क) एक=गरीब।

(ख) रांगा नामक धातु विशेष।

सत—श्लेष से इसके भी दो अर्थ हैं :

(क) शक्ति नही रह गई है।

(ख) चाँदी रूप।

सो न रूप—(क) वह चाँदी नही है।

(ख) वह दिव्य रूप नही है। अर्थात् पदमावती नही है।

तुम जोरा·········मयंकू—(क) तुम्हारा और पदमावती का जोडा सूरज और चांद के जोड़े के समान है।

(ख) तोले भर रांगा और तोले भर चाँदी मिलाकर जोडा बनाना कहलाता है।

होय अबरक........कीन्ह—यहाँ पर लक्ष्योपमा से कवि ने वस्तु व्यंग्य किया है। व्यंजना है कि पारद रूप में अभ्रक रूप पदमावती से मिल ईंगुर रूप अर्थात् प्रेम रूप हो गया था। किन्तु तुमने मुझे फिर विरह की अग्नि मे डाल दिया है जिससे मैं पीतल रूप हो गया हूँ यदि अब भी अभ्रक रूपी पदमावती से मुझे मिला दो तो मैं अब स्वर्णरूप हो जाऊँगा।

रस सिन्दूर बनाने की प्रक्रिया है कि पारद मे अभ्रक और गन्धक मिलाकर तथा घोटकर बालुका यन्त्र मे पुट देकर सिद्ध करते है। इस ईंगुर को यदि ऊर्ध्व-पातन यन्त्र में डालकर फिर अग्नि पर चढा दें तो गन्धक अलग हो जाएगी और पारद अलग हो जाएगा।

जायसी का तात्पर्य है कि पारद रूप रतनसेन एवं अभ्रक और गन्धक रूप पदमावती को एक मे मिलाकर प्रेममय कर दिया था। किन्तु सखियाँ पदमावती रूपी अभ्रक और गन्धक से अलग करके मुझे विरह की अग्नि मे डाल रही है, जिसका परिणाम यह होगा कि पारद पीतल बनकर रह जाएगा। जिसका कोई मूल्य नहीं रहा है।

विशेष—(१) इस अवतरण मे भी अप्रतीतार्थ दोष है। 'अक्षर मुष्टिका कथ-नम्' कला का उपयोग किया गया है।

(२) यह संपूर्ण प्रसंग पाल्यसंभोग के अन्तर्गत आएगा। आचार्य शारदा तनय ने अपने भाव प्रकाश मे चार प्रकार का संभोग बताया है (१) पाल्य (दो प्रेमियो) का प्रथम बार मिलन, (२) मानान्तर सभोग को कौटिल्य सम्भोग कहते है, (३) प्रवास के पश्चात् का अभ्यवहार सम्भोग, (४) करुण के पश्चात् अनुभूतिकृत सम्भोग।

का बसाइ जौ गुरु अस बूझा। चकाबहु अभिमनु ज्यौ जूझा॥
विष जो दीन्ह अमृत देखराई। तेहि रे निछोही को पतियाई ?॥
मरै सोइ जो होइ निगूना। पीर न जानै विरह विहूना॥
पार न पाव जो गन्धक पीया। सो हत्यार कहौ किमि जीया॥
सिद्धि-गुटीका जा पहँ नाही। कौन धातु पूछहु तेहि पाही॥
अब तेहि बाज राँग भा डोलौ। होइ सार तौ बर कै बोलौ॥
अबरक कै पुनि ईंगुर कीन्हा। सो तन फेरि अगिनि मँह दीन्हा॥
मिलि जो पीतम बिछुरहि काया अगिनि जराइ।
की तेहि मिले तन तप बुझै, की अब मुए बुझाइ॥५॥

[इस अवतरण मे कवि ने रतनसेन द्वारा पदमावती पर व्यंग्य कसाया है।]

रतनसेन ने सखियो को उत्तर दिया—जब गुरु ने ही ऐसा निश्चय कर लिया तो मेरा क्या वश है ? गुरु के ही धोखा देने पर अभिमन्यु को चक्रव्यूह मे फँसना

पड़ा था। जिसने अमृत दिखाकर विष दिया, उस निष्ठुर का विश्वास कौन करे। जो गुरु रहित होता है वही मरता है। जिसको विरह ने नहीं सताया है वह विरह की पीर नही जानता। पारा कभी गन्धक की बराबरी नही कर सकता क्योकि गन्धक पारे को पी जाती है और जब गन्धक पारे को ही खा लेती है तो फिर हरताल जिसकी स्थिति पारे पर ही रहती है वह कैसे जी सकता है। जिसके पास सिद्ध गुटिका नही है उससे धातु की बात पूछना ही व्यर्थ है। अब उसके अभाव मे मैं रंक बनकर घूम रहा हूँ। जब मेरे पास कोई सार रूप पूंजी होगी तो मैं बलपूर्वक बोल सकूँगा। अबरक को पारद से मिला कर सिंदूर बनाते है। वह हमने बना लिया है। सखियाँ इस तरह सिन्दूर को अग्नि मे डालकर पारद और अबरक इन दोनो को अलग कर देना चाहती है।

जब प्रियतम से मिलन के बाद वियोग होता है तो फिर शरीर विरह ज्वाला में जलने लगता है। अब तो उससे मिलने पर ही शरीर की तपन बुझेगी।

टिप्पणी—गुरु का अर्थ द्विविध है :—

(क) पदमावती।

(ख) द्रोणाचार्य।

का·········जूझा—यहाँ पर 'गुरु' मे शब्द शक्ति उद्‌भव वस्तु ध्वनि है। काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यग्य भी है। रतनसेन की व्यंजना है कि जब मेरी रानी पदमावती, जो मेरे अस्तित्व की स्वामिनी है, वह ही सखियो का पक्ष ले रही है, तो फिर मेरी पराजय स्वाभाविक है।

विश्व·········जूझा—कवि का वाच्यार्थ है कि उसका विश्वास कौन करे जो अमृत दिखलाकर विष दे दे। रतनसेन यह व्यञ्जित करना चाहता है कि पदमावती और उसकी सखियाँ बिल्कुल भी विश्वसनीय नही है। यहाँ वाक्यगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है।

मेरे सोड·········निगूना—रतनसेन यह व्यंजित करना चाहता है कि यदि वह रसायन शास्त्र में पारंगत न होता तो पदमावती रूपी गुरु की परीक्षा मे असफल हो गया होता।

पार न पाव·········जीया—यहाँ पर कवि का वाच्यार्थ है कि जो गन्धक पारे को पी जाता है उसका फिर पता नही चलता है (रसायनियो का कहना है कि यदि पारे का योग गधक से कर दिया जाए तो पारे को गन्धक आत्मसात् कर लेती है।) कवि की व्यंजना है कि पदमावती रूपी गन्धक से सुहाग प्राप्त कर पारद रूप रतनसेन अपना अस्तित्व खो बैठेगा। अतः उसे अपनी आसक्ति मर्यादित रखनी चाहिए। यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलकार से वस्तु व्यंग्य है।

सो हत्यार·········जिया—यहाँ पर डा० अग्रवाल ने हत्यार के स्थान पर

हरताल पाठ दिया है। किन्तु जो चमत्कार हत्यार मे है वह हरताल में नही है। शुक्ल जी का पाठ ही उपयुक्त है।

रसायन शास्त्र के अनुसार हरताल अग्नि को तभी तक सह सकती है जबकि गन्धक और पारद का योग बना रहे। अन्यथा हरताल भी नष्ट हो जाती है। गन्धक पदमावती का और पारद रतनसेन का प्रतीक है। हत्यार सखियों को कहा गया है। रतनसेन की व्यंजना है कि यदि सखियों ने पारद रूप मुझे गन्धक रूप पदमावती से विमुक्त किया है तो हरताल रूपिणी सखियाँ कैसे जीवित रह सकती हैं। वे हत्या की भागिनी बनने के कारण स्वयं भी नष्ट हो जाएँगी। यहाँ रूपक अलकार व्यंग्य है।

सिद्धि गुटिका—यह एक प्रकार की रासायनिक गोली होती थी। इसकी सहायता से ही रसायनज्ञ लोग सब प्रकार की धातुओं के रासायनिक प्रयोग करते थे। उसके अभाव मे किसी भी धातु की चर्चा करना ही कठिन है। यहाँ पर कवि ने पदमावती को सिद्धि गुटिका और रतनसेन को रसायनज्ञ माना है। रतन सखियो से यह व्यंजित कर रहा है कि जब उसके पास उसकी सिद्धि रूप पदमावती ही नही है तो फिर वह ओज कान्ति आदि की बात ही क्यो करे।

अब तेहि.........डोलौ—एक अर्थ है सिद्ध गुटिका के अभाव में राँगा चाँदी मे परिणत नही हो सकता। दूसरा अर्थ है कि पदमावती रूपी सिद्धि गुटिका के अभाव में रसायनज्ञ रतनसेन निर्धन बना हुआ सा डोलता है।

होय सा.........**बोलौं**—(क) अब मेरे पास कुछ तत्त्व होगा तो बलपूर्वक कुछ कह सकूँगा।

(ख) यदि मेरे पास सोना-चांदी होता तो मैं बढकर बातें मारता। मैं तो पदमावती रूपी सिद्धि गुटिका के बल पर ही बढ-बढ कर बातें बनाता था। उसके अभाव मे मैं कुछ नही बोल सकता।

अबरक.........दीन्हा—पारद को गन्धक और अभ्रक से मिला देते हैं तो सिन्दूर रस बन जाता है। किन्तु यदि...।

मिलि.........बुझाइ—यहां स्वत.सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंग्य है। विरह की अतिशयता ही व्यग्य है।

विशेष—(१) इस अवतरण मे 'अक्षर मुष्टिका कथनं' कला की अभिव्यक्ति की गई है।

(२) यहाँ पर भी अप्रतीतार्थ दोष है।

(३) यहाँ पर दुर्वाचक योग नामक एक कला है। यह भी ६४ कलाओ मे से एक विशिष्ट कला है।

सुनि कै बात सखी सब हँसी। जनहुँ रैनि तरई परगसी॥
अब सौ चाँद गगन महँ छपा। लालच कै कित पावसि तपा? ॥
हमहुँ न जानहि दहुँ सो कहाँ। करब खोज औ बिनउब तहाँ॥

औ अस कहब आहि परदेसी। करहि मया, हत्या जनि लेसी ।।
पीर तुम्हारि सुनत भा छोहू। दैउ मनाउ, होइ अस ओहू ।।
तू जोगी फिरि तपि करु जोगू। तो कहँ कौन राजसुख-भोगू ।।
वह रानी जहवाँ सुख राजू। बारह अभरन करै सो साजू ।।
जोगी दिढ़ आसन करै, अहथिर धरि मन ठाँव।
जो न सुना तौ अब सुनहि, बारह अभरन नाँव ।।६।।

[इस अवतरण मे सखियों का प्रत्युत्तर रतनसेन के प्रति प्रस्तुत किया गया है।]

रतनसेन की बात सुनकर सखियाँ हँसी तो ऐसा लगा मानो कि रात्रि में तारिकाएँ खिल गई हों। अब पदमावती रूपी चाँद आकाश में छिप गया है। अब वह केवल लालसा मात्र से प्राप्त नही किया जा सकता। हम भी नही जानते कि पदमावती रूपी चाँद कहाँ है। हम खोज करेंगे और प्रार्थना करेंगे कि उससे तुम्हारा मिलन हो जाए और उससे यह कहेंगे कि वह बेचारा परदेसी है। उसके ऊपर दया करो। व्यर्थ हत्या मत करो। तुम्हारी पीड़ा सुन करके हमारे मन मे सहानुभूति पैदा हो गई। हम भगवान से यही मनाते हैं कि उसके हृदय मे भी तुम्हारे प्रति ऐसा ही प्रेम उत्पन्न हो जाए, जैसा कि तुम्हारे हृदय मे है। जहाँ वह रानी रहती है वही सुख साम्राज्य रहता है। वह बारह आभूषणों से अपना शृंगार करती है।

हे जोगी ! तू अपना आसन दृढ कर ले और अपने मन को दृढ और स्थिर कर ले। तूने यदि बारह आभूषणो के नाम न सुने हो तो अब सुन ले।

टिप्पणी—सो······छपा—यहाँ पर 'चाँद' मे रूपकातिशयोक्ति अलंकार है। 'सो' मे संवृत्ति वक्रता है। ब्रह्मरन्ध्र गगन में शब्द शक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है। कवि ने गगन से ब्रह्मरन्ध्र का और चाँद से चन्द्र तत्त्व का तात्पर्य लिया है। हठयोग में चन्द्र-सूर्य साधना को ही सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है। सूर्य की स्थिति मूलाधार में बताई गई है और चन्द्र की स्थिति सहस्रार मे। साधक का कर्त्तव्य इन दोनों का तादात्म्य भाव स्थापित करना है। कवि की यहाँ पर व्यंजना है कि चन्द्र सहस्रार मे स्थित है उसे कोई योगी केवल कामना करने मात्र से प्राप्त कर नही सकता। इसके लिए कठोर साधना की आवश्यकता है। यह ध्वनि चाँद और गगन जैसे शब्दो से उत्पन्न हुई है इसीलिए उसमे शब्द शक्ति उद्भव अनुरणन ध्वनि मानी गई है।

बारह अभरन—प्राचीन ग्रन्थो मे बारह आभरणो के नाम इस प्रकार दिए गए है—१. नुपुर २. किंकणी, ३. वलय, ४. अगूठी, ५. कंकण, ६. अंगद, ७. हार, ८. कंठश्री, ९. वेसर, १०. खूंट या बिदिया, ११. टीका, १२. शीश फूल।

अगले अवतरण में जायसी ने बारह आभरणो के नाम दिए है। किन्तु वे इस से मेल नही खाते।

प्रथमै मंजन होइ सरीरू। पुनि पहिरै तन चन्दन चीरू ॥
साजि माँगि सिर सेंदुर सारै। पुनि लिलाट रचि तिलक सँवारे ॥
पुनि अंजन दुहुँ नैनन्ह करै। औ कुण्डल कानन्ह महँ पहिरै ॥
पुनि नासिक भल फूल अमोला। पुनि राता मुख खाइ तमोला ॥
गिउ अभरन पहिरै जहँ ताईं। औ पहिरै कर कँगन कलाईं ॥
कटि छुआवति अभरन पूरा। पायन्ह पहिरै पायल चूरा ॥
बारह अभरन अहै बखाने। ते पहिरै बरही अस्थाने ॥
पुनि सोरही सिंगार जस, चारिहु चौक कुलीन।
दीरघ चारि, चारि लघु, चारि सुभर चौ खीन ॥७॥

[इस अवतरण मे कवि ने बारह आभरणो का अपने ढग पर वर्णन किया है।]

सबसे पहले शरीर का स्नान होता है। इसके बाद शरीर पर चन्दन लगा कर वस्त्र पहने जाते हैं, फिर माँग निकाल करके सिर पर सिन्दूर लगाया जाता है। फिर मस्तक पर तिलक लगाया जाता है। फिर दोनो आँखों मे अंजन लगाया जाता है। फिर कानो मे कुण्डल पहनने चाहिएँ, लेकिन इसके अतिरिक्त नाक में सुन्दर सा फूल या लौंग पहननी चाहिएँ, फिर पान खा करके मुंह को लाल करना चाहिए और गले के जितने भी आभूषण हैं वह सब पहनने चाहिएँ। फिर हाथ की कलाई मे कगन पहनने चाहिएँ। कमर मे छोटे-छोटे घुंघुरुओ के आभूषण पहनने चाहिएँ और पैरो मे पायल और चूडा पहनना चाहिए। इन्ही को बारह आभरण कहा गया है। इन्ही को बारह स्थान मे पहनना चाहिए।

फिर जैसे सोलह शृगार होते है और फिर चार-चार का समूह जैसा उत्तम बताया गया है वह सब उसको प्राप्त थे।

टिप्पणी—जायसी ने इस अवतरण मे सोलह शृगार और बारह आभरणो को मिला दिया है।

सोरह शृंगार—सोरहो शृगार के अन्तर्गत जायसी ने शरीर के सोलह अवयवो का वर्णन किया है। उनके अनुसार चार अंग दीर्घ होने चाहिएँ। उनके नाम हैं केश, अंगुली, नयन, ग्रीवा; चार अग लघु होने चाहिएँ। उनके नाम है दशन, कुच, ललाट और नाभि। चार अग भरे हुए होने चाहिएँ, कपोल, नितम्ब, कलाई और जाँघ; चार अग पतले होने चाहिएँ, नाक, कटि, पेट और अधर।

विशेष—इस अवतरण मे वासक सज्जा नायिका का वर्णन किया गया है।

पदमावति जो सँवारे लीन्हा। पुनिउँ राति दैउ ससि कीन्हा ॥
करि मंजन तन कीन्ह नहानू। पहिरे चीर, गएउ छपि भानू ॥
रचि पत्रावलि, माँग सँदूरू। भरे मोति औ मानिक चूरू ॥

चंदन चीर पहिर बहु भाँती । मेघ घटा जानहुँ बग-पाँती ।।
गूँथि जो रतन माँग बैसारा । जानहुँ गगन टूटि निसि तारा ।।
तिलक लिलाट धरा तरु दीठा । जनहुँ दुइज पर सुहल बईठा ।।
कानन्ह कुण्डल खूँट औ खूँटी । जानहुँ परी कचपची टूटी ।।
पहिरि जराऊ ठाढ़ि भइ, कहि न जाइ तस भाव ।
मानहुँ दरपन गगन भा तेहि ससि तार देखाव ।।८।।

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती के शृंगार का वर्णन किया है ।]

पदमावती ने जब शृंगार किया तो वह ऐसी लगने लगी, मानो कि पूर्णिमा का चाँद हो । उसने मज्जन करके स्नान किया, फिर वस्त्र पहने । उसका रूप देख करके सूर्य छिप गया । मुख पर पत्रावली रच कर माँग मे सिन्दूर भरा और मोती भर कर माथे पर माणिक्य पहने, चन्दन आदि का लेप करके और वस्त्र आदि पहन करके वह ऐसी शोभायमान हो रही थी जैसे मेघो के बीच मे बगुलो की पंक्ति शोभायमान होती है । माँग पर रतन गूँथ करके सुसज्जित किया था, वह ऐसा लग रहा था, मानो कि द्वीज के चाँद पर सुहेल नक्षत्र शोभायमान हो । कानो मे कुण्डल, खूँट और खूँटी नामक आभूषण शोभायमान थे । ऐसा मालूम होता था, मानो कि कचपचया नक्षत्र का समूह टूट पडा हो, वह जड़ाऊ वस्त्र धारण करके खड़ी हुई, तब उसके सौन्दर्य का वर्णन नही किया जा सकता था । ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो कि आकाश रूपी दर्पण मे जो चन्द्रमा और तारे दिखाई पड रहे थे वे इसी पदमावती का प्रतिबिम्ब थे ।

टिप्पणी—पुनिउ······कीन्हा—यहाँ पर वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार व्यंग्य है ।

करे······मानू—इस पक्ति मे प्रतीप अलंकार है ।

मेघ घटा जानहु बग पाँति—यहाँ पर वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है ।

मानहुँ······दिखाव—यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलकार से कवि ने पदमावती के रूप की दिव्यता और विराटता व्यंजित की है । अतएव यहाँ पर कवि प्रौढोक्ति सिद्ध अलकार से वस्तु-व्यंग्य है ।

विशेष—यहाँ से कवि ने पदमावती का चित्रण वासक सज्जा मुग्धा के रूप में किया है ।

बाँक नैन औ अंजन-रेखा । खंजन मनहुँ सरद ऋतु देखा ।।
जस जस हेर, फेर चख मोरी । लरै सरद महँ खंजन जोरी ।।
भौहैं धनुक धनुक पै हारा । नैनन्ह साधि बान-विष मारा ।।
करन फूल कानन्ह अति सोभा । ससि-मुख आइ सूर जनु लोभा ।।

सुरँग अधर औ मिला तमोरा। सोहै पान फूल कर जोरा॥
कुसुम गंध, आई सुरँग कपोला। तेहि पर अलक-भुअंगिनि डोला॥
तिल कपोल अलि कँवल बईठा। वेधा सोइ जेइ वह तिल दीठा॥
देखि सिगार अनूप विधि, विरह चला तव भागि।
काल-कस्ट इमि ओनवा, सव मोरे जिउ लागि॥९॥

[इस अवतरण मे भी कवि ने पदमावती के शृंगार का वर्णन किया है]

कवि कहता है उसके नेत्र वैसे ही वहुत कटीले थे। ऊपर से उसने अंजन रेखा लगा रखी थी। ऐसा लगता था मानो कि शरद् ऋतु मे खजन पक्षी शोभायमान हो। जव वह आँखे मोड़ करके इधर-उधर कटाक्ष करती थी तो ऐसा लगता था कि शरद् कालीन खंजन पक्षी की जोड़ी लड रही हो। उसकी भौहें धनुप के समान थी, धनुष भी उनसे परास्त हो जाता था। नेत्रो पर चढ़ा करके कटाक्ष रूपी विष वाण चलाती थी। कानो मे करन फूल अत्यधिक शोभायमान थे। ऐसा मालूम हो रहा था कि शशि मुख पर मानो कि सूर्य मोहित हो गया हो। अधर वैसे ही सुन्दर रंग के है और ऊपर से पानो से रजित है। उन अधरो पर अलक रूपी नागिन लोट रही है। कपोल पर स्थित तिल ऐसा शोभायमान हो रहा था, जैसा कि कमल पर वैठा हुआ भौरा शोभायमान होता है, जिसने वह तिल देखा वही विंध गया।

उस अनुपम विधि से सजाये हुए शृगार को देख कर विरह भाग गया और वह सोचने लगा कि उसके लिए यह शृगार काल कष्ट के समान आ पड़ा है।

टिप्पणी—भौहे······हारा—यहाँ पर प्रतीप अलंकार है।

शशि मुख······लोभा—यहाँ पर वस्तूत्प्रेक्षा अलकार है।

विशेष—इस अवतरण मे भी कवि ने वासकसज्जा का वर्णन किया है।

का बरनौ अभरन औ हारा। ससि पहिरे नखतन्ह कै मारा॥
चीर चारु औ चन्दन चोला। हीर हार नग लाग अमोला॥
तेहि झाँपी रोमावली कारी। नागिनि रूप डसै हत्यारी॥
कुच कंचुकी सिरीफल उभे। हुलसहिं चहहि कंत-हिय चुभे॥
बाँहन्ह वहुंटा टाँड सलोनी। डोलत बाँह भाव गति लोनी॥
तरवन्ह कँवल-करी जनु बाँधी। बसा-लंक जानहुँ दुइ आधी॥
छुद्रघंट कटि कँचन-तागा। चलतै उठहि छतीसौ रागा॥
चूरा पायल अनवट पायन्ह परहि बियोग।
हिये लाइ टुक हम कहँ समदहु मानहुँ भोग॥१०॥

[इस अवतरण मे कवि द्वारा पदमावती के साज-सौन्दर्य का ही वर्णन किया गया है।]

कवि कहता है कि मैं पदमावती के आभरणों और हार आदि का वर्णन कैसे करूँ। ऐसा लगता था कि चाँद ने मानो नक्षत्रों की माला पहन रखी हो। सुन्दर वस्त्र और शरीर में चन्दन का लेप था। हीरे का हार पहने हुए थी, जिसमें अमूल्य नग जडे हुए थे। उसने काली रोमावली ढक रखी थी। वह नागिन के सदृश डँसने वाली थी। कंचुकी के नीचे श्रीफल के समान कुच उभरे हुए थे।

बाहों में बहुँटा और सुन्दर टाँड़ पहने हुए थी और बड़े सुन्दर ढग से बाँहे घुमाती थी। तलुओं मे ऐसा लगता था, जैसे कमल की कली बाँध रखी हो। उसकी कटि बर्र के समान उसके अग के दोनों भागो को दो हिस्सो मे बाँटे हुए थी। कटि प्रदेश मे सुनहले तागे से छुद्र घटिका बँधी हुई थी, जिनसे चलने पर छत्तीसो राग निकलते थे।

चूड़ा पायल अनवँट और बिछिया पैरो मे पड़े हुए मानो कि विरह मे कह रहे थे कुछ देर के लिए तुम हमे हृदय मे लगा कर देखो फिर वास्तविक सुख का अनुभव होगा।

विशेष—इसमे भी वासक सज्जा मुग्धा का निरूपण किया है।

अस बारह सोरह धनि साजै। छाजन और आहि पै छाजै।।
बिनवहि सखी गहरु का कीजै। जेइ जिउ दीन्ह ताहि जिउ दीजै।।
सँवरि सेज धनि-मन भइ संका। ठाढ़ि तेवानि टेकि कर लंका।।
अनचिन्ह पिउ, कापौ मन-माहाँ। का मै कहब गहब जौ बाहाँ।।
बारि बैस गइ प्रीति न जानी। तरुनि भई मैमंत भुलानी।।
जोबन गरब न मै किछु चेता। नेह न जानौ साँव कि सेता।।
अब सो कंत जो पूछिहि बाता। कस मुख होइहि पीत किराता।।
हौ बारी औ दुलहिनि पीउ तरुन सह सेज।
ना जानौ कस होइहि चढ़त कंत के सेज।।११।।

[इस अवतरण मे कवि ने नवोढा-बाला की मनोवैज्ञानिक अनुभूतियो का वर्णन किया है।]

इस प्रकार उस पदमावती ने १२ आभरण पहने और १६ शृंगार सजाए। सखियाँ खड़ी हुई उससे विनती करती है—अब देर मत करो। जिसने तुमको अपने प्राण समर्पित किए हैं, उसे अपने प्राणदान दो। शैय्या का स्मरण करके बाला के हृदय में भय उत्पन्न हुआ। वह कटि पर हाथ रख कर खड़ी होकर सोचने लगी कि

प्रियतम अपरिचित है । जी घबडाता है, जब वह हाथ पकडेगा तब मै क्या कहूँगी । बालापन की अवस्था व्यतीत हो गई किंतु मैंने प्रेम के रहस्य को नही समझा। यौवन के आने पर मैं कामोन्माद मे आत्म-विस्मरण कर बैठी । यौवन के गर्व मे मुझे कुछ भी बोध नही हुआ । पता नही कि प्रेम काला होता है या सफेद होता है। जब वह पति हमसे बात करेगा तो पता नहीं मुख लाल होगा या पीला ।

मै बाला हूँ और दुलहिन हूँ या नवपरिणीता हूँ । पति युवा और तेजस्वी है। पता नही उस समय क्या होगा जब वह शैय्या पर आएगा ।

टिप्पणी—बारह······सोरह—बारह आभूषण और १६ शृंगारों से कवि का अभिप्राय है । इनके सम्बन्ध मे जायसी का अपना स्वतन्त्र ही मत है । वह यथा-स्थान द्रष्टव्य है ।

विशेष—(क) इसमे वासक सज्जा मुग्धा नवोढा नायिका का चित्र है ।

(ख) इस अवतरण मे 'रतिभय' का बड़ा मर्मस्पर्शी चित्र खीचा गया है। चित्रावली मे भी इसी प्रकार का एक चित्र है—"प्रथम समागम से बाला डरती है । किसी भी प्रकार आगे पैर नही बढाती ।" इत्यादि ।

सुनु धनि ! डर हिरदय तब ताईं । जौ लगि रहसि मिलै नहिं साईं ॥
कौन कली जो भौर न राई ? । डार न टूट पुहपु गरुआई ॥
मातु पिता जौ बियाहै सोई । जनम निबाह कन्त संग होई ॥
भरि जीवन राखै जहँ जहा । जाइ न मेंटा ताकर कहा ॥
ताकहँ बिलम्ब न कीजै बारी । जो पिउ-आयसु सोइ पियारी ॥
चलहु बेगि आयसु भा जैसे । कंत बोलावै रहिए कैसे ?॥
मान न करसि पोढ़ करु लाडू । मान करत रिस मानै चाँडू ॥
साजन लेइ पठावा, आयसु जाइ न मेंट ।
तन मन जोबन, साजि कै देइ चली लेइ भेंट ॥१२॥

[इस अवतरण मे सखियाँ पदमावती को प्रिय मिलन के लिए सजा कर ले जाती है ।]

हे बाले, सुन—हृदय मे भय तभी तक रहता है जब तक कि वह एकान्त मे रह कर पति से नही मिलती । भला वह कली कौन सी है जिसका रस भ्रमर ने न लिया हो । फल के भार से डाल नही टूटती । जब माता-पिता विवाह कर देते है तो फिर सारा जन्म पति के साथ ही व्यतीत करना पडता है । जहाँ सारा जीवन रहना है उस पति की आज्ञा की उपेक्षा नही की जा सकती । अतएव हे बाले, विलम्ब मत करो, जो पति की आज्ञा का पालन करती है वही पति को पियारी रहती है । पति ने जैसी

आज्ञा दी है उसी के अनुरूप शीघ्र ही चल दो। जब पति बुला रहा है तो कैसे रहा जा सकता है। मान नही करना चाहिए और प्रेम को दृढ करना चाहिए। मान करने से गूढ प्रेमी बुरा मानता है।

पति ने लेने के लिए भेजा है, आज्ञा की उपेक्षा नही की जा सकती। वह स्त्री तन-मन और यौवन का साज सजाकर पति को भेंट देने चली है।

टिप्पणी—कवन······राई :—यहाँ पर काक्वाक्षिप्तगुणीभूत व्यंग्य है। साथ ही साथ यहाँ रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

डार······गरुआई—यहाँ पर अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है।

मान न करसि पोढ़ कर लाडू—यहाँ पर कवि ने प्रणय मनोविज्ञान के सनातन सत्य खण्ड की व्यंजना की है।

विशेष—इस अवतरण में कामशास्त्र मे वर्णित 'अक्षर मुष्टिका कथनम्' नामक कला की अभिव्यक्ति मिलती है। कामसूत्र मे काम व्यापार के प्रसंगों मे ६४ कलाओ का प्रयोग विधेय बताया गया है, उनमे से एक कला है 'अक्षर मुष्टिका कथनम्' इसका अर्थ है साकेतिक अक्षरो का कथन अथवा पारिभाषिक या सांकेतिक भाषा संलाप या कथन करना। इसके अन्तर्गत कई प्रकार के अलंकार आते है। यहाँ पर अप्रस्तुत प्रशसा अलकार के सहारे साकेतिक कथन किया गया है।

पदमिनि-गवन हस गए दूरी। कुजर लाज मेल सिर धूरी ॥
बदन देखि घटि चद छपाना। दसन देखि कै बीजु लजाना ॥
खंजन छपे देखि कै नैना। कोकिल छपी सुनत मधु बैना ॥
गीव देखि कै छपा मयूरू। लंक देखि कै छपा सदूरू ॥
भौंहन्ह धनुक छपा आकारा। बेनी बासुकि छपा पतारा ॥
खडग छपा नासिका बिसेखी। अमृत छपा अधर रस देखी ॥
पहुँचहि छपी कवँल पौनारी। जघ छपा कदली होइ बारी ॥
अछरी रूप छपानी जबहि चली धनि साजि।
जावत गरब-गहेली सबै छपी मन लाजि ॥१३॥

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती के सौन्दर्य का वर्णन किया है।]

पदमावती की गति की सुन्दरता देखकर हंस पराजय अनुभव कर दूर भाग गए। कुँजर भी उसकी गति से लज्जित होकर अपने सिर पर धूल फेंकने लगा है। उसके मुख की सुन्दरता देखकर चन्द्रमा क्षीण होने लगा और अन्त में छिप गया। दाँतो की चमक से बिजली लज्जित हो गई। नेत्रों की चपलता देखकर खंजन छिप गए। उसकी मधुर वाणी सुनकर कोकिला भी हीनता अनुभव करती हुई छिप

गई। उसकी गर्दन की सुन्दरता देखकर मयूर लज्जित होकर छिप गया। उसकी कटि की सुन्दरता देखकर शार्दूल छिप गया। भौहो के आकार की सुन्दरता से धनुष छिप गया। उसकी वेणी की सुन्दरता देखकर वासुकी नाग पाताल मे जाकर छिप गया। नासिका की विशेष सुन्दरता के आगे तलवार हीन प्रतीत होने लगी। अधरो को देखकर अमृत छिप गया। उसकी भुजाओ की सुन्दरता देखकर कमलों की नाल छिप गई। उसकी जांघो की सुन्दरता देखकर कदली वाटिका में जाकर छिप गई।

जब वह बाला शृंगार करके चली तो अप्सराएँ उसके रूप को देखकर छिप गईं। जितनी भी अपने सौन्दर्य का गर्व करने वाली सुन्दरियाँ थी वे सब उसके रूप को देखकर लज्जित हो छिप गईं।

टिप्पणी—(१) पदमिनि······दूरी—यहाँ पर प्रतीप अलंकार व्यग्य है।

(२) **कुंजर······धूरी**—यहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा अलकार से प्रतीप अलंकार व्यंग्य है।

(३) **बदन······छपाना**—यहाँ पर भी हेतूत्प्रेक्षा अलंकार से प्रतीप अलंकार व्यंग्य है।

(४) **दसन······लजाना**—यहाँ पर प्रतीयमाना हेतूत्प्रेक्षा से प्रतीप अलकार व्यंग्य है।

विशेष—सम्पूर्ण अवतरण मे सर्वत्र प्राय. प्रतीयमाना हेतूत्प्रेक्षा अलंकार से प्रतीप अलंकार व्यंग्य है। सम्पूर्ण अवतरण मे नायिका के रूप की अतिशयता व्यंग्य है।

विशेष—(क) सम्पूर्ण अवतरण मे पर्यायोक्ति अलंकार है।

(ख) रूप गर्विता का चित्र है।

(ग) यहाँ पर कान्ति शोभा के वर्णन के साथ प्रगल्भता का भाव व्यंजित है।

मिली गोहने सखी तराई। लेइ चाँद सूरज पहँ आई॥
पारस रूप चाँद देखराई। देखत सूरुज गा मुरछाई॥
सोरह कला दिस्टि ससि कीन्ही। सहसौ कला सुरुज कै लीन्ही॥
भा रवि अस्त, तराई हँसी। सूर न रहा, चाँद परगसी॥
जोगी आहि, न भोगी होई। खाइ कुरकुटा गा पै सोई॥
पदमावति जसि निरमल गंगा। तू जौ कन्त जोगी भिखमंगा॥
आइ जगावहि चेला जागै। आवा गुरु, पॉव उठि लागै॥
बोलहि सबद सहेली कान लागि, गहि माथ।
गोरख आइ ठाढ़ भा, उठ, रे चेला नाथ॥१४॥

[इस अवतरण में पदमावती की सखियाँ उसको लेकर रतनसेन के पास आती हैं और उससे हास-परिहास करती है।]

सखियाँ रूपी तराइयाँ एक साथ पदमावती रूपी चाँद को लेकर रतनसेन रूपी सूर्य के पास आईं। उन्होने उस रतनसेन रूपी सूर्य को पारस मणि के समान पदमावती रूपी चाँद के दर्शन कराए। रतनसेन रूपी सूर्य उसे देखकर मूर्छित हो गया। उस पदमावती रूपी चाँद ने अपनी सोलहो कलाओं से रतनसेन रूपी सूर्य को देखा और उसने उसकी सहस्रों कलाएँ आत्मसात् कर लीं। रतनसेन रूपी सूर्य अस्त हो गया। सखियाँ रूपी तराइयाँ यह देखकर हँस पडी और कहने लगीं कि रतनसेन रूपी सूर्य का प्रकाश न रहा। पदमावती रूपी चाँद ने उसे आक्रांत कर लिया। यह कोई जोगी है भोगी नही है इसीलिए कुरकुटा खाकर वह बेहोश हो गया है। फिर वे सखियाँ पदमावती से कहने लगी—हे पदमावती, तू गंगा के समान निर्मल और सुन्दर रूप वाली है। किन्तु तेरा पति जोगी और भिखमंगा है। यह कहकर वे रतनसेन को आकर जगाने लगी और कहने लगी तुम्हारा गुरु आया है, उसके पैरो का उठकर स्पर्श कर ले।

सब सहेलियाँ उसके कान के पास मुँह ले जाकर और चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगी—हे नाथपथी साधक! उठ तेरा गुरु गोरखनाथ सामने खडा है।

टिप्पणी—(१) **मिली······तराईं**—इस पक्ति का पाठान्तर है—'मिली तराईं सखी सयानी। लिए सो चाँद सूरज पहँ आईं।' दोनो पंक्तियो के अर्थ मे कोई मौलिक अन्तर नही है।

(२) **लेई······आईं**—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलकार है।

(३) **पारस······मुरछाई**—यहाँ पर विरोधाभास अलंकार और रूपकातिशयोक्ति अलंकार का संकर है।

(४) **सोरह कला**—चन्द्रमा की १६ कलाओं के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं:—(१) अमृता (२) मानदा (३) पूषा (४) तुष्टि (५) पुष्टि (६) रति (७) टति (८) शशिनी (९) चन्द्रिका (१०) कान्ति (११) ज्योत्स्ना (१२) श्री (१३) प्रीति (१४) आनंदा (१५) पूर्णा (१६) पूर्णामृता।

(५) **सोरह······लीन्हीं**—यहाँ पर अधिक अलकार है। जहाँ पर वड़े आधेयो और आधारो की अपेक्षा वस्तुतः छोटे भी आधार और आधेयो के क्रमशः बड़े वर्णन किए जाते हैं वहाँ अधिक अलंकार होता है।

(६) **गोरख······नाथ**—यहाँ पर अप्रस्तुत प्रशंसा अलकार है। यहाँ पर गोरख अप्रस्तुत के सहारे प्रस्तुत पदमावती का वर्णन किया है। यह अप्रस्तुत प्रशंसा अलकार सादृश्य पर आधारित होने से सारूप्य निबन्धनामूलक है।

विशेष—इस अवतरण मे भी कवि ने पदमावती के हास-परिहास की 'अक्षर मुष्टिका कथनम्' कला के साँचे में ढाल कर अभिव्यक्ति की है।

सुनि यह सबद अमिय अस लागा । निद्रा टूटि, सोइ अस जागा ।।
गही बाँह धनि सेजवाँ आनी । अंचल ओट रही छपि रानी ।।
सकुचै डरै मनहि मन वारी । गहु न बाँह, रे जोगि भिखारी ।।
ओहट होसि, जोगि ! तोरि चेरी । आवै वास कुरकुटा केरी ।।
देखि भभूति छूति मोहि लागै । काँपै चाँद, सूर सौं भागै ।।
जोगि तोरि तपसी कै काया । लागि चहै मोरे अँग छाया ।।
बार भिखारि न माँगसि भीखा । माँगै आइ सरग पर सीखा ।।
जोगि भिखारि कोई मँदिर न पैठै पार ।
माँगि लेहु किछु भिच्छा, जाइ ठाढ होइ बार ।।१५।।

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती और रतनसेन के मिलन का एक मनोरम चित्र खीचा है ।]

ये वचन उसे अमृत जैसे लगे । उसकी निद्रा टूट गई और ऐसा लगा कि मानो वह सोकर जगा हो । स्त्री की बाँह पकडकर वह उसे शैय्या पर लाया । रानी ने अपना मुँह आँचल मे छिपा लिया । वह बाला मन ही मन डरती है और सकुचाती है और कहती है "ऐ जोगी भिखारी, मेरी बाँह मत पकड । हे जोगी भिखारी, तेरी चेली तुझसे हट रही है क्योकि तेरे पास कुरकुटा की दुर्गन्ध आ रही है । तेरी भभूत देखकर मुझे छूत लग रही है ।" इस प्रकार वह चाँद रूपी पदमावती रतनसेन रूपी सूर्य से भाग रही है । वह तपस्वी से पुनः कहती है, जोगी तेरी काया तपस्वी की है उसकी छाया कही मुझ पर न पड़ जाए । तूने द्वार पर ही भिक्षा क्यो नही माँगी । इस धवलगृह मे आकर भिक्षा माँगना क्यो सीखा है ।

कोई जोगी भिखारी मन्दिर के अन्दर प्रवेश नही करता । इसलिए तुम भी द्वार पर जाकर भिक्षा माँग लो ।

टिप्पणी—(१) **यह सबद**—यहाँ पर कवि का सकेत अनहद नाद की ओर भी है । सम्पूर्ण अवतरण मे कवि ने यौगिक अर्थ की सूक्ष्म व्यंजना की है ।

(२) **निद्रा······जागा**—यहाँ पर कवि की व्यंजना है कि रतनसेन रूपी साधक अनहदनाद रूपी शब्द को सुनकर ऐसा आनन्दित हुआ जैसे कोई अमृत पाकर आनन्दित हो उठता है । उसकी मोह निद्रा टूट गई और ज्ञान वृत्ति जग गई । उस समय ऐसा लगा मानो कि वह सोकर जगा हो ।

(३) **अंचल······रानी**—यहाँ पर कवि ने विलास नामक अनुभाव रूप स्वभावज अलंकार की अभिव्यक्ति की है । इसमें विलास के साथ-साथ बिब्बोक की भी थोडी सी व्यंजना है । चकित नाम स्वभावज अलंकार का मिश्रण भी यहाँ मालूम पड़ता है । विलास उसे कहते है जब प्रियतम के दर्शन आदि से नायिका मे मनोहर

चेष्टादि विशेष दिखाई देने लगती हैं। विब्वोक में नायिका गर्व के कारण मानपूर्वक पुरुष का अनादर करती है। चकित वह अवस्था है जब नायिका प्रिय के आगे अकारण डरती और घबराती है। उपर्युक्त पंक्ति मे स्त्री सौन्दर्य के इन तीनो अलंकारों की संसृष्टि दिखाई पडती है।

(४) सकुचै······बारी—यहाँ पर स्पष्ट रूप से चकित स्वभावज स्त्री अलकार की व्यंजना की गई है।

(५) गहु······भिखारी—यहाँ पर विब्बोक नामक स्वभावज अलंकार है।

(६) काँपै······भागै—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार है और चकित नामक स्वभावज अलंकार की व्यंजना की गई है। अतः कवि प्रौढ़ोक्ति अलंकार से वस्तुव्यंग्य है।

विशेष —(क) यह प्रणय मान का अच्छा उदाहरण है।

(ख) इस अवतरण मे विब्वोक का भाव चित्रित किया गया है। इसी प्रकार का वर्णन चित्रावली मे उसमान ने भी किया है—

'यह विनती कै रहे सुजानः, चित्रिन कही न एको माना।
तब उठि कुँवर भुजा कर गहा, झिझकि हाथ चित्रावलि कहा॥
गहु न हाथ रे बावरि जोगी, तासो लागि होइ तोरि जोगी।
तू भिखारि हौं राजा बारी, राज भिखारिहि कौन चिह्नारी॥

—चित्रावली, पृष्ठ २०३

मै तुम्ह कारन पेम-पियारी! राज छाँड़ि कै भएउँ भिखारी॥
नेह तुम्हार जो हिये समाना। चितउर सौ निसरेउँ होइ आना॥
जस मालति कहँ भौर वियोगी। चढ़ा वियोग, चलेऊँ होइ जोगी॥
भौर खोजि जस पावै केवा। तुम्ह कारन मै जिउ पर खेवा॥
भएउँ भिखारि नारि तुम्ह लागी। दीप-पतँग होइ अँगएउँ आगी॥
एक बार भरि मिलै जो आई। दूसरि बार मरै कित जाई॥
कित तेहि मीचु जो मरि कै जीया। भा सो अमर, अमृत-मधु पीया॥
भौर जो पावै कँवल कहँ बहु आरति, बहु आस।
भौर होइ नेवछावरि, कँवल देइ हँसि बास॥१६॥

[इस अवतरण मे कवि ने रतनसेन द्वारा पदमावती के प्रति अपने अनन्य प्रेमभाव की व्यंजना कराई है।]

राजा पदमावती से कहता है—हे प्राणाधारे! मै तुम्हारे कारण ही राज्य त्याग कर भिखारी बना हूँ। तुम्हारा अनुराग मेरे हृदय मे समा गया था। इसलिए मै चित्तौड़गढ़ त्यागकर पराया बन कर निकल पड़ा। जैसे मालती के लिए भौंरा व्याकुल

होता है उसी प्रकार मैं वियोग में व्याकुल होकर भौंरा बनकर चल दिया। जिस प्रकार भौरा कमल को खोज लेता है उसी प्रकार मैं तुम्हारी खोज में अपने प्राणो की उपेक्षा कर निकल पड़ा हूँ। हे रानी, तुम्हारे लिए मैं भिखारी बन गया हूँ। जिस प्रकार पतंगा अग्नि का आह्वान कर अपने प्राण दे देता है उसी प्रकार मैं तुम्हारी खोज मे प्राण देने के लिए निकल पड़ा था। जो एक बार मर कर अपने प्रिय से मिल लेता है उसे दूसरी बार मरना नही पड़ता। जो मर कर जीवित हुआ हो उसका मृत्यु क्या कर सकती है। वह तो प्रेम का मधुर अमृत पीकर अमर हो जाता है।

भौंरा जब बहुत प्रयत्न और क्लेश के बाद कमल से मिलता है तो वह अपने को न्योछावर कर देता है तब कही कमल हँसकर अपनी सुरभि देता है।

टिप्पणी—जस'''जोगी—यहाँ पर उपमा अलंकार से कवि ने रतनसेन के पूर्ण समर्पण और आत्मबलिदान भाव की व्यंजना की है।

दीप·········आगी—यहाँ पर उपमा अलंकार व्यंग्य है।

भौंर·········बास—यहाँ पर सारूप्य निबंधना अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है। कवि ने अप्रस्तुत भ्रमर के व्याज से यह प्रकट करने की चेष्टा की है कि रतनसेन बड़ी आशाओ और प्रयत्न के बाद पदमावती को प्राप्त कर सका है। अतः पदमावती भी उसे निराश नही करेगी।

विशेष—(क) इस अवतरण मे कवि ने रतनसेन का चित्रण अनुकूल नायक के रूप मे किया है।

(ख) इस अवतरण मे कवि ने भ्रमर सम्बन्धी कवि समय का कथन किया है। मालती की डाल मे छोटे-छोटे काँटे होते हैं। किन्तु भौरा उनसे नही डरता है। भ्रमर मालती से इतना प्रेम करता है और उसकी सुरभि से इतना मदहोश हो जाता है कि काँटे में छिदता चला जाता है और अन्त में मर जाता है।

अपने मुँह न बड़ाई छाजा। जोगी कतहुँ होहि नहि राजा॥
हौ रानी, तू जोगि भिखारी। जोगिहि भोगिहि कौन चिन्हारी॥
जोगी सबै छंद अस खेला। तू भिखारि तेहि माहिं अकेला॥
पौन बाँधि अपसवहिं अकासा। निकसहि जाहिं ताहि के पासा॥
एही भाँति सिस्टि सब छरी। एही भेख रावन सिय हरी॥
भौरहि मीचु नियर जब आवा। चंपा बास लेइ कहँ धावा॥
दीपक-जोति देखि उजियारी। आइ पाँखि होइ परा भिखारी॥
रैनि जो देखै चन्दमुख ससि तन होइ अलोप।
तुहुँ जोगी तस भूला करि राजा कर ओप॥१७॥

[इस अवतरण मे पदमावती ने रतनसेन के आत्मनिवेदन पर कटाक्ष किया है।]

पदमावती रतनसेन से कहती है कि अपने मुँह से बडाई करना शोभा नहीं देता। जोगी कही भी राजा नही होते। मैं रानी हूँ। तू योगी है। योगी और भोगी की क्या जान पहचान ? योगी सभी इस प्रकार का प्रपंच रचा करते है, और तू तो उनमें अकेला ही है। वे प्राणायाम करके ब्रह्मरंध्र में प्राणों को चढा लेते हैं जिससे वह इच्छागामी हो जाते है। जहाँ इच्छा होती है वहाँ पहुँच जाते है। इसी प्रकार सारी सृष्टि छली गई है। रावण ने यही वेश धारण करके सीता जी को छला था। भौरे की मृत्यु जब निकट आती है तब वह चम्पा की सुगन्ध लेने दौडता है। तू भिखारी मुझ युवती रूपी दीप शिखा को प्रज्वलित देखकर क्यो पंखी बन रहा है। रात्रि में जो चन्द्रमा का मुख देखता है वह अपने मुख को भी चन्द्रमा के समान समझने लगता है। ऐसे ही तूने मुझ रानी के रूप का श्रवणकर अपने को राजा रूप समझ लिया है।

टिप्पणी—पौन······पासा—यहाँ पर कवि का सकेत खेचरी सिद्धि की ओर है। योगी को जब यह सिद्धि प्राप्त हो जाती है तब वह आकाशचारी ही नही सर्वचारी हो जाता है।

भौरहि············धावा—यहाँ पर सारूप्य निबंधना अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है।

दीपक············भिखारी—यहाँ पर भी सारूप्य निबंधना अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है।

रैनि·········ओप—इसका एक दूसरा पाठान्तर भी मिलता है।

रैनि जो देखै चन्दमुख ससि तन होइ अलोप।
तुहुँ जोगी तस भूला करि राजा कर ओप॥

इस पाठ को स्वीकार करने पर दोहे का अर्थ इस प्रकार होगा—"रात में चन्द्रमा के मुख का सौदर्य देखकर कोई समझ लेता है कि कदाचित् मेरा शरीर भी ऐसा ही निर्मल हो। वैसे ही तू भी जोगी मेरे रूप पर भूला हुआ राजा के सुन्दर रूप में आया है। हमारी समझ मे शुक्ल जी का पाठ अधिक उपयुक्त है। कवि की व्यंजना है कि रात्रि में जो चन्द्रमुख को देखता है वह इतना मुग्ध हो जाता है कि उसे अपनत्व भूल जाता है। उसे यह ज्ञान नही रहता है कि मैं एक क्षुद्र मानव हूँ। और चन्द्रमा एक दैवी विभूति है, मुग्धावस्था मे वह उसे प्राप्त करने के लिए तड़प उठता है। इसी प्रकार तुम मेरी रूप चर्चा सुनकर इतना मुग्ध हो गए कि इस बात का बोध न रहा कि तुम्हारे और हमारे मिलन मे कोई औचित्य नही है। एक जोगी का एक राजकुमारी से प्रणय संबंध कदापि उचित और सम्भव नही है। यहाँ पर प्रणय सम्बन्ध का अनौचित्य ही व्यंग्य है।

विशेष—(क) इस अवतरण मे कवि ने पदमावती का चित्रण रूपगर्विता नायिका के रूप मे किया है।

(ख) यहाँ 'बिब्बोक' नामक स्वभावज स्त्री अलकार है।

(ग) यहाँ पर धैर्य नामक अयत्नज अलंकार भी है।

अनु धनि तू निसिअर निसि माँहा। हौ दिनिअर जेहि कै तू छाहाँ॥
चाँदहि कहाँ जोति औ करा। सुरुज के जोति चाँद निरमरा॥
भौर बास-चम्पा नहि लेई। मालति जहाँ तहाँ जिउ देई॥
तुम्ह हुँत भएऊँ पतँग कै करा। सिघल दीप आइ उड़ि परा॥
सेएउँ महादेव कर बारू। तजा अन्न भा पवन अहारू॥
अस मैं प्रीति गाँठि हिय जोरी। कटै न काटे छुटै न छोरी॥
सीतै भीखि रावनहि दीन्ही। तूँ असि निठुर अँतर पट कीन्ही॥
रंग तुम्हारे हिरातेउँ, चढेउँ गगन होइ सूर।
जहँ ससि सीतल तहँ तपौ, मन हीछा, धनि! पूर॥१८॥

[इस अवतरण मे रतनसेन द्वारा मानिनी पदमावती की अनुनय-विनय कराई गई है।]

रतनसेन पदमावती से कहता है—हे रानी! तुम प्रसन्न हो, रात्रि मे तुम चाँद हो तो मैं सूर्य रूप हूँ जिसकी तू प्रतिच्छाया है। चन्द्रमा मे अपनी ज्योति और कला कहाँ होती है। चाँद तो सूर्य की ज्योति से ही निर्मित हुआ है। भ्रमर चम्पा की सुरभि नही लेता वह तो जहाँ मालती होती है वही अपने प्राणो की वलि चढा देता है। तुम्हारे लिए मै पतग के समान बना हूँ और सिहल द्वीप मे उड कर आया हूँ। मैंने महादेव के द्वार का सेवन किया है। मैंने अन्न त्याग दिया और पवन के आधार पर प्राणो की रक्षा कर रहा हूँ। मैंने प्रेम की गाँठ हृदय से ऐसी जोडी है कि वह काटने पर कटती नही है, खोलने से खुलती नही है।

सीता ने रावण को भिक्षा दी थी तू ऐसी निष्ठुर है कि मुझसे पर्दा किए हुए है।

मैं तो तुम्हारे रंग मे ही रंगा हुआ हूँ और सूर्य वनकर आकाश पर चढा हूँ। मैं वहाँ तप रहा हूँ जहाँ शीतल चन्द्रमा है।

टिप्पणी—धनि·········छाहाँ—यहाँ पर कवि ने रतनसेन के मुख से पदमावती के प्रति यह व्यंजित कराया है कि उसका मान करना सर्वथा निरर्थक है, क्योकि उसमे अपना कुछ नही है। उसका वैभव एवं सौन्दर्य उसी प्रकार उस पर आश्रित है जिस प्रकार चाँद की शोभा और ज्योत्स्ना सूर्य पर आश्रित होती है। इस प्रकार यहाँ पर कवि निवद्ध पात्र की प्रौढोक्तिसिद्ध लुप्तोपमा वस्तुव्यंग्य है।

चाँदहि·········निरमरा—यहाँ पर कवि ने रतनसेन के मुख से पदमावती के प्रति यह व्यजित कराया है कि वह उससे कही अधिक महिमामय है। यहाँ पर कवि निवद्ध पात्र की स्वत.सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंग्य है।

भौर·········देई—यहाँ पर सादृश्य मात्र पर आधारित सारूप्य निबन्धना अप्रस्तुत प्रशसा अलकार है। प्रस्तुत कथनीय है कि रतनसेन नागमती को त्यागकर

पदमावती की खोज करके उसी के लिए अपने प्राण निछावर किए हुए है। इस प्रस्तुत का कथन कवि ने भ्रमर, चम्पा और मालती के प्रतीको से किया है।

सीता·········कीन्ही—यहाँ पर स्वतःसम्भवी वस्तु से वस्तुव्यंग्य है। पदमावती की अतिशय निष्ठुरता ही व्यग्य है।

चढ़ेऊ·········सूर--यहाँ 'गगन' और 'सूर' शब्दो मे शब्दशक्ति उद्‌भव अनुरणन ध्वनि है। यौगिक अर्थ ही यहाँ व्यंग्य है। 'गगन' से कवि का व्यजन ब्रह्मरन्ध्र से और 'सूर' कवि की व्यजना योग मे वर्णित सूर्य तत्त्व से है।

जह·········पूर—यहाँ पर भी 'ससि' शब्द में शब्दशक्ति उद्‌भव अनुरणन ध्वनि है। व्यंग्यार्थ है योग में वर्णित चन्द्र तत्त्व।

विशेष—यहाँ पर नायक मे 'धैर्य' प्रगल्भता, बिब्बोक आदि की अभिव्यक्ति है। यह भाव नायकपक्षीय है।

जोगि भिखारि! करसि बहु बाता। कहसि रंग देखौ नहि राता॥
कापर रँगे रंग नहि होई। उपजै औटि रंग भल सोई॥
चाँद के रंग सुरुज जस राता। देखै जगत साँझ परभाता॥
दगधि-बिरह नीति होइ अँगारा। ओही आँच धिक्कै संसारा॥
जो मजीठ औटै बहु आँचा। सो रंग जनम न डोलै राँचा॥
जरै बिरह जस दीपक बाती। भीतर जरै, उपर होइ राती॥
जरि परास होइ कोइल-भेसू। तब फूलै राता होइ टेसू॥
पान, सुपारी, खैर जिमि मेरइ करै चकचून।
तौ लगि रंग न राँचै, जौ लगि होइ न चून॥१६॥

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती से रतनसेन को प्रत्युत्तर दिलवाया है।]

पदमावती रतनसेन से कहती है—हे जोगी भिखारी! तुम बहुत बातें बना रहे हो। मै तो तुम्हे अपने प्रेम मे अनुरक्त नही पाती। वस्त्र रगने मात्र से कोई अनुरागी नही होता। अनुराग का रग वही असली होता है,जो हृदय औटि कर परिपक्व होता है। सूर्य चांद के रग मे जैसा अनुरक्त है, संसार में उसकी साक्षी संध्या और प्रभात है। अगारा नित्य उसी के विरह मे जलता है, उसी की अग्नि से ससार दग्ध होता है। जब मंजीठ औटता और पकता है, उसका रगा हुआ पक्का रंग जन्म भर भी फीका नही पडता है। विरह इस प्रकार जलता है जैसे दीपक की वत्ती जलती है। जिस प्रकार वत्ती तो अन्दर जलती है ऊपर लाल रहती है (उसी प्रकार प्रेमी भीतर से जलता है) वाहर से अनुरक्त दीखता है। पलास जल कर कोयले के समान काला हो जाता है। वह तब टेसू की भाँति लाल-लाल फूलता है।

जिस प्रकार पान तब तक रग नही देता जब तक पान सुपारी और कत्था मिलाकर पीस कर एक नही कर दिए जाते है। इसी प्रकार, जब तक वह पिस कर एक नही हो जाता है तब तक प्रेम का रूप नही निखरेगा।

टिप्पणी—करसि वहु·········बाता—यहाँ रग का अर्थ है प्रेम और राता का अर्थ है अनुरक्त होना। पदमावती यह कहना चाहती है कि तू प्रेम की बात करता है किन्तु मैं तुझ मे अपने प्रति विल्कुल प्रेम की अनुभूति नही करती हूँ। यह अर्थ अभिधामूला शाब्दी व्यजना से लिया गया हे। यह व्यंजना प्रकरणमूलक है।

चाँद के रंग·········राता—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलकार है।

दगध·········अंगारा—यहाँ हेतूत्प्रेक्षा अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। विरह की दिव्यता, तीव्रता और विराटता ही व्यग्य है।

जो·········राँचा—पदमावती की व्यंजना है कि जो विरह मे अपना जीवन व्यतीत करते हैं उन्ही का जीवन सार्थक और सफल होता है। यहाँ पर सारूप्य निबधना अप्रस्तुत प्रशसा अलकार है।

जरै विरह जस दीपक बाती·········राती—यहाँ पर उपमा अलकार से वस्तु व्यग्य है। विरह ज्वाला की विशेषता ही व्यंग्य है।

जरि·········टेसू—यहाँ पर सारूप्य निबधना अप्रस्तुत प्रशंसा अलकार है।

पान सुपारी·········चून—यहाँ आक्षेप अलकार हे।

विशेष—यहाँ पर नायिकापक्षीय मद एव विव्वोक नामक स्वभावज अलकार है।

का, धनि पान रग का चूना। जेहि तन नेह दाध तेहि दूना॥
हौ तुम्ह नेह पियर भा पानू। पेड़ी हुँत सोनरास वखानू॥
सुनि तुम्हार ससार वड़ौना। जोग लीन्ह, तन कीन्ह गड़ौना॥
करहि जो किगरी लेइ वैरागी। नौती होइ विरह कै आगी॥
फेरि-फेरि तन कीन्ह भुँजौना। औटि रकत रँग हिरदय औना॥
सूखि सोपारी भा मन मारा। सिरहि सरौता करवत सारा॥
हाड चून भा, विरहहि दहा। जानै सोइ जो दाध इमि सहा॥
सोई जान वह पीरा जेहि दुख ऐस सरीर।
रकत-पियासा होइ जो का जानै पर पीर? ॥२०॥

[यह उक्ति रतनसेन की पदमावती के प्रति है।]

रतनसेन पदमावती से कहता है—हे प्रिये! तुम पान और चूने के रंग की क्या बात कहती हो। जिसके शरीर मे प्रेम होता है उसका शरीर विरह मे प्रज्वलित हो

दुगुना अरुण रहता है। मैं तुम्हारे प्रेम मे पान की भान्ति पीला हो गया हूँ। पेडी के पान से सोनरास रूपी पदमावती का बखान किया गया है। तुम्हारी जो कि संसार में बड़ौना रूप की चर्चा सुनकर मैने जोग लेकर शरीर को गड़ौना कर दिया है। किंगरी लेकर बैरागी के रूप में करभंजपान बन गया और विरह की आग में पक कर नेवती पान की दशा को प्राप्त हो गया हूँ। अपने शरीर को बार-बार फेक कर भुजौने पान की तरह पकाया। विरह की ज्वाला से जो रक्त खौला उसका रंग हृदय में छा गया। मारा हुआ मन सूखी सुपारी हो गया है। मैने सिर पर सरौते की तरह आरा चलवाया यानि अनेक कष्ट सहे। विरह मे जलने के कारण हड्डियों का चूना बन गया। इस रहस्य को वही समझ सकता है जिसने इस प्रकार की ज्वाला का सहन किया है।

उस पीड़ा को वही जानता है जिसके शरीर मे विरह की ज्वाला है। जो दूसरे के रक्त के प्यासे है वे दूसरो की पीड़ा को नही जानते।

विशेष—इस अवतरण मे कवि ने अभिधामूलक शाब्दी व्यजना के सहारे एक रतनसेन परक अर्थ भी व्यंजित किया है वह इस प्रकार है :—

"हे बाले! लाल रंग और हड्डियो के जल कर चूना हो जाने की बात तुम क्या कहती हो, जिसके शरीर मे अनुरागी का रंग होता है, वह दूना जलता है। मुझे तुम्हारा स्नेह ऐसा प्यारा लगा जैसा राज मजूषा के लिए सोने की राशि का वर्णन प्रिय लगता है।"

विशेष—यहां पर 'अक्षर मुष्टिका कथनम्' नामक कला के प्रयोग की अभि-व्यक्ति है। रूपक, उपमादि अलकार व्यग्य हैं।

जोगिन्ह बहुत छन्द, न ओराही। बूँद सेवाती जैस पराही ॥
परी भूमि पर होइ कचूरू। परहि कदलि पर होइ कपूरू ॥
परहि समुद्र खार जल ओही। परहि सीप तौ मोती होही ॥
परहि मेरु पर अमृत होई। परहि नागमुख विष होइ सोई ॥
जोगी भौर निठुर ए दोऊ। केहि आपन भए ? कहै जो कोऊ ॥
एक ठाँव ए थिर न रहाही। रस लेइ खेलि अनत कहुँ जाही ॥
होइ गृही पुनि होइ उदासी। अन्त काल दूबौ बिसवासी ॥
तेहि सौ नेह को दिढ़ करै ? रहहि न एकौ देस।
जोगी, भौर, भिखारी · इन्ह सौ दूरि अदेस ॥२१॥

[इस अवतरण मे कवि ने योगियो के छल-छन्दो का वर्णन भी किया है।]

जोगियो को इतने छल-छन्द आते है कि उनका कभी अन्त नही होता है। जिस प्रकार स्वाति बूंद अनेक रूप धारण करती है वैसे ही जोगी अनेक रूप धारण कर लेते है। स्वाति की जो बूंद भूमि पर गिरती है वह कचूर (हल्दी की तरह का

पौधा) बन जाती है, जो केले पर गिरती है वह कपूर बन जाती है। किन्तु जब वह समुद्र मे गिरती है तो खारा पानी मात्र रह जाती है। सीपी के मुख मे गिर कर वह मोती बन जाती है। सुमेरु पर गिरने पर वही अमृत रूप हो जाती है। सर्प के मुख मे वही विष बन जाती है। जोगी और भौरे बड़े निष्ठुर होते है। वे किसी के अपने नही होते है। यदि वे किसी के अपने हुए हो तो बताइए। वे कभी एक स्थान पर नही रहते है। भौरा रस लेकर और योगी खेल कर दूसरे स्थान पर चले जाते है। वे गृहस्थ होकर भी सन्यासी बन जाते है। अन्त मे दोनो ही विश्वासघात करते हैं।

उस से दृढ प्रेम कौन कर सकता है जो किसी स्थान पर नही टिकता है। योगी, भौर और भिखारी से दूर रहना ही अच्छा होता है।

टिप्पणी—ओराहीं—समाप्त होते है।

बूँद.........सोई—इन पक्तियो मे कवि ने एक कवि समय का उल्लेख किया है। कवि प्रसिद्धि है कि स्वाति जल की बूंद पृथ्वी पर पड़ कर कचूर बन जाती है, केले पर गिर कर कपूर बन जाती है, समुद्र मे खारा पानी हो जाती है, सीपी मे गिरकर मोती हो जाती है, सर्प के मुख मे विष हो जाती है और सुमेरु पर्वत पर गिरकर अमृत बन जाती है।

केहि.........आपन भय—इसमे काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य है। कवि की व्यंजना है कि किसी के अपने नही हुए।

जोगी.........अदेस—तुल्ययोगिता अलंकार है।

विशेष—(क) इस अवतरण मे स्वाती जल सम्बन्धी कवि समय का उपयोग किया गया है।

(ख) यहाँ पर भी बिब्बोक नामक स्वभावज अलंकार व्यग्य है।

थल-थल नग न होहि जेहि जोती। जल-जल सीप न उपनहि मोती॥
बन-बन बिरिछ न चन्दन होई। तन-मन विरह न उपनै सोई॥
जेहि उपना सो औटि भरि गयऊ। जनम निनार न कबहुं भएऊ॥
जब अंबुज, रवि रहै अकासा। जौ इन्ह प्रीति जानु एक पासा॥
जोगी भौर जो थिर न रहाही। जेहि खोजहि तेहि पावहि नाहीं॥
मै तोहि पायउँ आपन जीऊ। छाँड़ि सेवातिन आनहिं पीऊ॥
भौर मालती मिलै जो आई। सो तजि आन फूल कित जाई॥
चंपा प्रीति न भौरहि, दिन-दिन आगरि बास।
भौर जो पावै मालती मुएहु न छाँड़ै पास॥२२॥

[इस अवतरण मे कवि ने प्रेम और प्रेमी के आदर्श स्वरूप की व्यंजना की है।]

जिसमे ज्योति होती है ऐसा मोती प्रत्येक जलाशय की सीपी में नही होता है। प्रत्येक वन के वृक्ष मे चन्दन नही होता है। प्रत्येक मनुष्य मे आध्यात्मिक विरह नही उत्पन्न होता है। और जिसके अन्तर में वह विरह जगता है वह उसमें औट कर प्रेमी से तद्रूप हो जाता है और कभी जीवन भर उससे अलग नही होता है। कमल जल मे और चाँद आकाश मे रहता है। किन्तु दोनों मे सहज प्रेम होने से दोनों एक दूसरे के समीप रहते है। जोगी और भौंरे स्थिर नही रहते हैं। वे जिसको खोजते है उसको पाते नही है। मैने तुझमे अपने प्राणों को पाया है। स्वाँति का प्रेमी उसे छोडकर कही नही जाता है। जब भौरे का मालती से प्रेम हो जाता है फिर वह अन्य किसी फूल के पास जाकर क्या करे। चम्पा की सुगन्धि दिन-दिन बढती ही जाती है किन्तु भौरा उसकी ओर आकृष्ट नही होता। जिस भौंरे को मालती का प्रेम पड़ जाता है वह मर जाने पर भी उसका सामीप्य नही छोड़ता है।

टिप्पणी—थल.........सोई—इन पंक्तियों पर सस्कृत के निम्नलिखित श्लोक का प्रभाव दिखाई पडता है :—

शैले-शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे-गजे।
साधवो न हि सर्वत्र चन्दनं न हि वने-वने॥

सोई—यहाँ सवृत्तिवक्रता है। विरह की दिव्यता व्यजित की है।

जल.......पासा—इस पक्ति पर कबीर की निम्नलिखित पक्ति का प्रभाव है :—

कमोदनी जलहर बसै चन्दा बसै अकास।
जो जाही को भावता सो ताही के पास॥

चम्पा.........पास—सारूप्य निबन्धना अप्रस्तुत प्रशसा अलकार है। कवि ने यहाँ पर अप्रस्तुत भ्रमर के आचरण वर्णन द्वारा प्रस्तुत रतनसेन और पदमावती के पारस्परिक प्रणय भाव का वर्णन किया है।

यहाँ पर कवि ने भ्रमर सबधी कवि प्रसिद्धि का वर्णन भी किया है।

विशेष—(क) यहाँ पर 'अक्षरमुष्टिका कथनम्' नामक कला की ही अभिव्यक्ति हुई है।

(ख) यहाँ पर क्लिष्टार्थ और अप्रतीतार्थ दोष है।

ऐसे राजकुँवर नही मानौ। खेलु सारि पाँसा तब जानौ॥
काँचे बारह परा जो पाँसा। पाके पैंत परी तनु रासा॥
रहै न आठ अठारह भाखा। सोरह सतरस रहै त राखा॥
सत जो धरै सो खेलनहारा। ढ़ारि इगारह जाइ न मारा॥
तू लीन्हे आछसि मन दूवा। औ जुग सारि चहसि पुनि छूवा॥

हौं नव नेह रचौ तोहि पाहाँ । दसवें दावँ तोरे हिय माहाँ ।।
तौ चौपर खेलौं करि हिया । जौ तरहेल होइ सौतिया ।।
जेहि मिलि बिछुरन औ तपनि अंत होइ जौ निंत ।
तेहि मिलि गंजन को सहै ? वरु विनु मिले निचिंत ।।२३।।

[इस अवतरण मे कवि ने श्लेष के वल पर तीन स्वतन्त्र अर्थो की एक साथ अभिव्यक्ति की है—एक चौपड़परक अर्थ है; दूसरा अध्यात्मपरक और तीसरा प्रेमपरक है। तीनो अर्थों का यहाँ अलग-अलग निर्देश किया जा रहा है।]

चौपड़परक अर्थ—पदमावती रतनसेन से कहती है—"मेरे साथ गोट और पाँसा खेलो तो मैं जानूं। कच्चे वारह का पाँसा पडने पर केवल वारह घर चलने पड़ेगे। किन्तु यदि पक्के वारह का दांव पड़ा तो गति मे स्थिरता आवेगी । तू आठ पर नहीं टिकता। अठारह की रटना लगाए रहता है। सोलह और सत्रह का दाव पड़ने पर खिलाडी (मात होने से बच जाता है) अगर तू ग्यारह का दांव प्राप्त कर ले तो गोट नही मर सकती। मन मे उत्साह होते हुए भी मेरे पास केवल दुआ है; और तू उतने से ही दो गोटें चलना चाहता है। मैं तो तेरे लिए, नौ का दांव चाहती हूँ। किन्तु तेरे मन मे दस का दांव वसा है। फिर भी हिम्मत करके तेरे साथ चौपड़ खेलना चाहती हूँ। जो तीन वाजी खेलेगा वही तीन का दाँव लेने वाला तिआ होगा।

जुग बांधने के वाद जुग से अलग होना कष्टकर होता है, फिर खेल के अन्त तक उसी की इच्छा वनी रहती है। जुग वाँधकर विछुड जाने की अपेक्षा यह अच्छा है कि वह बांधा ही न जाए और प्रत्येक गोट अपनी निश्चित गति से चली जाय।

शृंगारपरक अर्थ—पदमावती राजा रतनसेन से कहती है कि—"हे राजकुँवर ! मैं यो नही मान सकती कि तुम मे शक्ति है या नही। जव तुम मेरे साथ चित्तरसारी मे काम क्रीडा करोगे तो मैं तुम्हारे (महत्त्व) को समझूँगी। यदि तुम कच्चे होगे तो द्वार पर ही भटकते रहोगे और यदि तुम पक्के होगे अर्थात् कामशास्त्र मे पक्के होगे तो अन्दर प्रवेश पा जाओगे। आठ मे रहते और अठारह की चर्चा करते हो (अर्थात् कामशास्त्र के आठ अंगो का सही रूप से ज्ञान नही रखते हो और डीग वहुत मारते हो)। सोलह (सोलह शृंगारों को देखकर) के आगे सत किसका रहा है अर्थात् किसका मन स्थिर रहा है। जिसका सत आलिंगन मे स्खलित होता है वही कामकेलि का मर्मज्ञ है। यदि तुम ग्यारह (१० इन्द्रियाँ और १ मन) को केलि मे ढालोगे तो सदा सुखी रहोगे और मृत्यु दुःख को प्राप्त नही होओगे। तुम्हारे मन मे यदि कोई और वसी है तो तुम इन युगल गोटियो (मेरे कुचो) को नही छू सकते। मैं तुम्हारे प्रति नया अनुराग अनुभव करती हूँ। किन्तु तुम्हारे मन मे मेरे प्रति छल का भाव है। फिर भी मैं मन से तुम्हारे साथ चौपड (सम्भोग क्रीड़ा) खेलने को प्रस्तुत हूँ, जो तीन प्रकार की केशाकर्षण रूप सुरति क्रीड़ाओ को झेल जाती है वही स्त्री है। जिस प्रिय से मिलने पर वियोग होता है अन्त तक उसी की

अभिलाषा वनी रहती है। उससे मिलकर वियोग का कष्ट कौन सहन करे। उससे बिना मिले शांत रहना ही अच्छा है।"

योगपरक अर्थ—पदमावती राजा रतनसेन से कहती है—"हे राजकुँवर, मैं तेरे महत्त्व को तब समझूँगी जब तू योग मार्ग मे निपुणता प्रकट करेगा। साधना में तू कच्चा होगा तो द्वार-द्वार भटकेगा। पर यदि पक्का होगा तो उस मार्ग में सफल होगा और स्थिर रहेगा। योगी को आठ चक्रों की साधना में दत्तचित्त होना चाहिए। उसे अठारह धन्धो मे नही फँसना चाहिए। सोलहवर्षीय योगी का सत तभी रहता है जबकि वह उसकी (वीर्य की) रक्षा करता रहता है। जिस योगी का सत ढुलक जाता है तो वह योग मार्ग मे पराजित हो जाता है। यदि दसो इन्द्रियों और ग्यारहवे मन को साध लिया जाए तो योगी मृत्यु के अधीन नही होता। तेरे मन में अभी द्वैत भाव ही भरा है। तो भी तू दो लक्ष्यो को छूना चाहता है। मैं तेरे लिए नौ चक्रो की साधना का उपक्रम कर रही हूँ। किन्तु तू दस इन्द्रियो के वासना चक्र में फँसा हुआ है। तू साहस करके स्वतन्त्र भाव से योग साधना कर। इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना इन तीनो नाडियो की साधना मे जो पारंगत है वही सफल योगी होता है।

(१) **टिप्पणी—सारि**'''...(१) **गोट**—(पासापरक अर्थ)।

(२) **चित्तरसारी**—शृंगारपरक अर्थ।

(३) **शक्ति या बल**—योगपरक अर्थ।

पाँसा—(१) चौपड़ के खेल मे पाँसे होते है। पाँसा प्रायः हाथीदाँत का बना होता है। चार-पाँच अगुल लम्बा चार पर्त वाला टुकडा होता है। चौपड के खेल मे ऐसे तीन पाँसे होते है (खेलपरक अर्थ)।

(२) **समीप**—(शृगारपरक अर्थ)

(३) **निस्सार**—(योगपरक अर्थ)

कच्चे आरह—(१) पाँसे के खेल मे बारह का एक दाँव होता है, इसमें दो गोटे एक साथ दस घर और तीसरी दो घर चलती है और पक्के बारह मे दो गोट बारह घर और तीसरी एक घर चलती है (खेलपरक अर्थ)।

(२) कामकला में कच्चे होने के कारण द्वार पर बार-बार घूमोगे (शृंगार-परक अर्थ)।

(३) योग मे कच्चे होवोगे तो द्वार-द्वार घूमोगे (योगपरक अर्थ)।

रहे न आठ अठारह भाखा—(१) चौपड़ के खेल मे खिलाडी लोग आठ का दाँव पड़ने पर अठारह चिल्लाने लगते है (खेलपरक अर्थ)।

(२) अठारह कामकलाओ की बात करने पर साधक आठ कामकलाओ को भी प्राप्त नही कर पाता (शृंगारपरक अर्थ)।

(३) जो आठ चक्रो की साधना करना चाहता है उसे अठारह अर्थात् दुनियादारी की बात नही करनी चाहिए।

सत जो धरै—(१) चौपड़ के खिलाड़ियो मे सात का दाँव अशुभ मानते हैं (खेलपरक)।

(२) जो वीर्य धारण करते है वे कामक्रीड़ा मे हारते नही है (शृंगारपरक)।

(३) जो योगी ब्रह्मचर्य धारण करते है वे योग साधना मे सफल नही होते (योगपरक)।

खेलनहारा—(१) वह खेल मे हार जाता है (खेलपरक अर्थ)।

(२) वह कामक्रीडा मे हार जाता है (शृंगारपरक)।

(३) वह योग साधना मे असफल नही होता है (योगपरक)।

ढारि इगारह—अगर ग्यारह का दाँव ले तो (खेलपरक अर्थ)।

(२) ग्यारहो इन्द्रियों से भोग करते हुए भी विनाश नही होता (शृंगारपरक)।

(३) जो ग्यारहों इन्द्रियो को बस में कर लेता है (योगपरक)।

दुवा—(१) पाँसे के खेल मे दुवा वह दाव होता है जिस में दो बिंदियाँ ऊपर रहती है। इस दाव मे दो गोटे केवल दो घर चल सकती है। ऐसा भी होता है कि तीनो ही गोटें केवल दो घर चल सकती है (खेलपरक अर्थ)।

(२) **दूसरी रमणी**—जिस रसिक के मन मे दूसरी रमणी रहती है वह दोनो कुचो को नही छू सकता।

(३) द्वन्द्व या दुविधा अर्थात् जिस जोगी का मन प्रपच में रमा रहता है वह सूर्य और चन्द्र इन दोनो की साधना करना चाहे तो कैसे कर सकता है (योगपरक)।

नव नेह—(१) नौ के दाँव का प्रेम (खेलपरक)।

(२) नवनूतन स्नेह (शृंगारपरक)।

(३) नव चक्रो का नेह।

दसव दाँव—(१) दस का दाव (खेलपरक अर्थ)।

(२) कपट भाव (शृंगारपरक)। कुछ लोगों के अनुसार दसव दाँव का अर्थ पाँच प्रकार के नख क्षत और पाँच प्रकार के दशन क्षत (शृंगारपरक)।

विशेष—यहाँ 'अक्षर मुष्टिका कथनम्' तथा 'द्यूत विशेष:' नामक कलाओं का वर्णन किया गया है। यहाँ पर अप्रतीतार्थ दोष है।

बोलौ रानि ! बचन सुनु साँचा। पुरुष क बोल सपथ औ बाचा ।।
यह मन लाएऊँ तोहि अस, नारी। दिन तुइ पासा औ निसि सारी ।।
पौ परि बारहि बार मनाएऊँ। सिर सौ खेलि पैंत जिउ लाएउँ ।।
हौ अब चौक पंज ते बाँची। तुम्ह बिच गोट न आवहि काँची ।।

पाकि उठाएउँ आस करीता । हौं जिउ तोहि हारा, तुम जीता ।।
मिलि कँ जुग नहि होहु निनारी । कहाँ बीच दूति देनिहारी ?।।
अब जिउ जनम-जनम तोहि पासा । चढ़ेउँ जोग, आएउँ कबिलासा ।।
जाकर जीउ बसै जेहि तेहि पुनि ताकरि टेक ।
कनक सोहाग न बिछुरै औटि मिलै होइ एक ।।२४।।

[इस अवतरण मे रतनसेन ने पदमावती के प्रति अपने अनन्य प्रेमभाव की व्यंजना की है ।]

खेलपरक अर्थ—राजा रानी से कहता है, "हे रानी ! मैं सत्य वचन कहता हूँ सुनो ! पुरुष का मुँह से कह देना ही शपथ और त्रिवाचा के बराबर है । मेरा मन तुममें इतना अधिक लग गया है कि दिन मे तेरे पास पाँसा खेला करता हूँ और रात को गोटी चलता हूँ । मैं जानता हूँ कि बारह की पौ की याचना मैंने बार-बार की और दिलोजान से खेल मे मन लगाया । मैं अब चौप और पंजे दाँवों से बच गया हूँ, और प्रार्थना करता हूँ कि अगर ठीक दांव न पड़ा तो पक्की गोटी भी कच्ची हो जाएँगी । और मै बाजी हार जाऊँगा और तुम जीत जाओगी । गोटियों का युगल मिल कर अलग न हो तो अच्छा है । यदि कोई दुवा और तिया का दाँव खेलने मे निपुण होगा तो फिर अन्तर कहाँ हो सकता है । अब तो जन्म जन्म तुम्हारे साथ पाँसा खेलने को मन करता है । मैं जुग करके कैलाश अर्थात् अन्तिम कोठे मे आ गया हूँ । जिसका जी जिस वस्तु मे बसता है उसे उसी का सहारा होता है । कनक सुहागे से कभी बिछुड़ता नही है । दोनो मिलकर तद्रूप हो जाते है ।

शृंगारपरक अर्थ—हे रानी ! मैं सच कहता हूँ कि पुरुष के बोल ही सच्ची शपथ और त्रिवाचा के समान अटल होते है । यह मन तुममें ऐसा अनुरक्त है कि दिन मे तुम्हारे पास रहता है, और रात में भी सारी रात तुम्हारे ही पास रहना चाहता है । पाँव पकड़ कर मै तुम्हें बार-बार मनाता हूँ और चुम्बन केश कर्षण आदि करने पर जब तुम रति में प्रवृत्त नही होती तो तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ । मैं तुम्हारे छल कपट से बचकर तुम्हारी वास्तविक गोटो पर अधिकार करूँगा । मैंने पक्की गोटरूप असली कुचों को किसी आशा से पकड़ा है । प्रणय व्यापार में मै हार गया तुम जीत गई हो, अब जोड़ा मिलाकर तुम अलग न होना । अब मध्यस्थता करने वाली दूती की आवश्यकता नही रही है । मैं संयोग को प्राप्त होकर भौतिक विलास की पूर्णावस्था में पहुँच गया हूँ ।

जिसका मन जिसमे बसता है वह उसी का सहारा पकड़ता है । स्वर्ण और सुहागा मिलकर एक दूसरे से विलग नही होते हैं वरन् तद्रूप हो जाते हैं ।

योगपरक अर्थ—इसमे योगपरक अर्थ का सर्वत्र पूर्ण और सफल निर्वाह नही मिलता है । कही-कही पर उस अर्थ की व्यंजना हो जाती है । इसलिए हम यहाँ

पर इसका अकारण विस्तार नही कर रहे है। इसके लिए डा॰ अग्रवाल की पुस्तक देखी जा सकती है। उन्होने कुछ पाठान्तर करके योगपरक अर्थ के निर्वाह की भी चेष्टा की है।

टिप्पणी—पौं............परि—(१) खेल मे पौ पडना सफलता का चिन्ह माना जाता है।

(२) पैर पड करके (शृंगार मे)।

"बारहिबार"—(१) बाहर के दाँव (खेलपरक अर्थ)।

(१) बारबार।

सिर सौं खेल—(१) दिल लगाकर देखना (खेलपरक अर्थ)।

(२) चुम्बन केश कर्षण आदि कामक्रीडाएँ सिर से प्रारम्भ करके खेलना। (शृंगारपरक अर्थ)।

"पैत जिउ लायउ"—(१) मन मे दाँव बसा हुआ है (खेलपरक अर्थ)।

(२) विविध कामक्रीडाएँ और संभोग के आसन मन में बसे हुए है। (शृंगार-परक अर्थ)।

बिहँसी धनि सुनि कै सत बाता। निहचय तू मोरे रग राता॥
निहचय भौर कँवल-रस रसा। जो जेहि मन सो तेहि मन बसा॥
जब हीरामन भएउ सँदेसी। तुम हुँत मंडप गइउँ, परदेसी॥
तोर रूप तस देखिउँ लोना। जनु, जोगी! तू मेलेसि टोना॥
सिधि गुटिका जो दिस्टि कमाई। पारहि मेलि रूप बैसाई॥
भुगुति देइ कहँ मै तोहि दीठा। कँवल-नैन होइ भौर बईठा॥
नैन पुहुप, तू अलि भा सोभी। रहॉ बेधि-अस, उड़ा न लोभी॥
जाकर आस होइ जेहि, तेहि पुनि ताकरि आस।
भौर जो दाधा कँवल कहँ, कस न पाव सोबास?॥२५॥

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती के रतनसेन के प्रति प्रकट किए गए स्वीकारात्मक प्रेमभाव की मार्मिक अभिव्यक्ति की है।

रतनसेन की बात सुनकर पदमावती मुस्कराई और बोली कि हे राजन! तुम निश्चय ही मेरे प्रेम मे रंगे हुए हो। इसमे कोई सन्देह नही कि भौंरा कमल के रस मे रमा हुआ है। जो जिसके मन मे होता है उसका मन उसी मे रमता है। जब हीरामन संदेश लेकर आया था तो हे परदेसी, मैं तेरे लिए मडप मे गई थी। जब मैंने तुम्हारा अत्यन्त मनोरम रूप देखा तो ऐसा लगा कि तू ने मेरे ऊपर जादू कर दिया है। अपनी सिद्धि गुटिका से तुमने मेरी दृष्टि को वश मे कर लिया है। फिर उस पारे में अपना रूप मिलाकर तुमने हमारे हृदय मे बैठाल दिया। भोग देने के लिए मैंने तुझे देखा तो तुम भौरा बनकर मेरे कमलरूपी नेत्रों पर बार-बार बैठ गए। नेत्ररूपी

मुख के ऊपर तू भौरा बनकर शोभायमान होने लगा। और तू रस का लोभी बनकर ऐसा बिंध गया कि उड़ नही सका। जिसमे जिसकी आशा बन्धी होती है दूसरा भी उस मे अपनी आकांक्षाएँ रखता है। जो भौरा कमल के लिए दग्ध होकर काला होता है; कमल भी फिर उसे अपना रस और सुरभि देता है।

टिप्पणी—निहचय ·······बसा—यहाँ पर सारूप्य निबन्धना अप्रस्तुत-प्रशंसा अलंकार है।

पाकि उठाएउँ—(१) पक्की गोटी उठाई है (खेलपरक अर्थ)।

(२) ज्ञात यौवना से जो कि काम कला मे पक्कीया निपुण है उससे प्रेम किया है (शृंगारपरक अर्थ)।

मिलिकै जुग—(१) चौसर के खेल में जुग फूटना खेल की एक स्थिति है (खेलपरक अर्थ)।

(२) जोडा बिछुड़ना। (शृंगार परक अर्थ)।

चढ़ेउ जोग—(जुग को एक खाने मे प्राप्त किया है खेलपरक अर्थ)।

(२) संयोग प्राप्त हुआ है (शृंगारपरक अर्थ)।

आएउँ कबिलासा—(२) अन्तिम खाने को प्राप्त हुआ हूँ (खेलपरक अर्थ)।

(२) भौतिक विलास की पराकाष्ठा को प्राप्त हुआ हूँ (शृंगारपरक अर्थ)।

टिप्पणी—इस अवतरण में कवि ने "पौ परि" "पैंत", आदि कई शब्दो के सहारे शब्दशक्ति उद्‌भव वस्तु ध्वनि की प्रतिष्ठा की है और उसी के बल पर खेल-परक अर्थ के साथ-साथ शृंगारपरक अर्थ और कही-कही योगपरक अर्थ की भी व्यजना की है।

विशेष—यहाँ 'मोट्टायित' नामक स्वभावज अलंकार है। प्रियतम की कथा सुनकर अनुराग उत्पन्न होने को ही 'मोट्टायित' कहते है। 'मुग्धता' का भाव भी व्यंग्य है।

कौन मोहनी दुहुँ हुति तोही। जो तोहि बिथा सो उपनी मोही॥
बिनु जल मीन तलफ जस जीऊ। चातक भइउँ कहत "पिउ पीऊ"॥
जरिउँ बिरह जस दीपक बाती। पंथ जोहत भइ सीप सेवाती॥
डाढि-डाढि जिमि कोइल भई। भइउँ चकोरि, नीद निसि गई॥
तोरे पेम-पेम मोहि भएऊ। राता हेम अगिनि जिमि तएऊ॥
हीरा दिपै जौ सूर उदोती। नाहि त कित पाहन कहँ जोती॥
रवि परगासे कँवल बिगासा। नाहि त कित मधुकर कित बासा॥

तासौ कौन अँतरपट जो अस पीतम पीउ।
नेवछावरि अब सारौ तन, मन जोवन जीउ॥२६॥

[इस अवतरण मे पदमावती ने प्रणयाभिभूत होने की अवस्था का चित्रण किया है ।]

मालूम नही तुममें क्या आकर्षण शक्ति थी कि तुम्हारी व्यथा मुझ में उत्पन्न हो गई। बिना जल के जैसे मछली तडपती है वैसे ही मेरा हृदय तडप रहा था। पी-पी रटती मै चातक हो गई थी। विरह में ऐसे जल गई जैसे दीपक की वत्ती जल जाती है। मार्ग देखती हुई स्वाति के लिए सीप सी तडपती रही। जल-जल कर मैं कोयले के समान काली हो गई। मैं तुम्हारे मुख रूपी चन्द्र की चकोरी होने के कारण रात भर जगती थी। तुम्हारे प्रेम से ही मेरे हृदय मे प्रेमोदय हुआ। जिस प्रकार अग्नि मे डालने से सोना स्वय लाल हो जाता है उसी प्रकार मै तुम्हारी विरह अग्नि से अनुराग रजित हो गई। जैसे सूरज की चमक से हीरा प्रकाशित होता है उसी प्रकार मै तुम्हारे प्रेम मे विह्वल हो गई। नही तो कहाँ पत्थर और कहाँ ज्योति। रवि के प्रकाशित होने पर कमल विकसित होता है। नही तो कहाँ मधुकर और कहाँ सुरभि ?

जिसका ऐसा पति हो उससे फिर क्या दुराव किया जाए। अव मैंने अपना तन-मन और यौवन सव कुछ आप पर न्योछावर कर दिया है।

टिप्पणी—कौन·········तोही—यहाँ पर काकुवैशिष्ट्य व्यग्य है। यहाँ पर रतनसेन की मोहिनी शक्ति की दिव्यता एव अलौकिकता व्यजित की गई है।

जो······मोही—यहाँ पर असगति अलकार से व्यथा की दिव्यता व्यंजित की गई है। अत. कवि प्रौढोक्तिसिद्ध अलकार से वस्तुव्यग्य है।

बिनु······जीऊ—यहाँ पर विनोक्ति और उपमा अलकार से वेदना की तीव्रता व्यंजित की गई है। अतएव यहाँ पर भी कवि प्रौढोक्तिसिद्ध अलंकार से वस्तु व्यंग्य है।

जरिउँ······वाती—यहाँ पर उपमा अलंकार से विरह की तीव्रता व्यंजित की गई है। अतएव यहाँ पर भी कवि प्रौढोक्तिसिद्ध अलकार से वस्तुव्यंग्य है।

पंथ·· ···सेवाती—यहाँ पर लक्ष्योपमा से विरहजनित व्याकुलता की अतिशयता व्यग्य है। यहाँ पर कवि प्रौढोक्तसिद्ध अलकार से वस्तुव्यंग्य है।

दाढ़ि······भई—यहाँ पर उपमा अलकार से विरह की ज्वलन शक्ति की तीव्रता व्यंजित की गई है। अतएव यहाँ पर भी कवि प्रौढोक्तिसिद्ध अलंकार से वस्तु व्यंग्य है।

भयेउँ······चकोरि—यहाँ पर लक्ष्योपमा से वस्तुव्यग्य है। विरह की तीव्रता ही व्यग्य है।

हीरा······ज्योति—यहाँ पर निदर्शना अलंकार है।

रवि······बासा—यहाँ भी निदर्शना है।

विशेष—यहाँ पर 'प्रगल्भता' नामक अयत्नज अलकार की अभिव्यक्ति की गई है।

हँसि पदमावती मानी बाता। निहचय तू मोरे रँग राता ॥
तू राजा दुहुँ कुल उजियारा। अस कै चरचिउँ मरम तुम्हारा ॥
पै तूँ जंबूदीप बसेरा। किमि जानेसि कस सिहल मोरा ?॥
किमि जानेसि सो मानसर केवा। सुनि सो भौंर भा, जिउ पर छेवा ॥
ना तुँइ सुनी, न कबहूँ दीठी। कैस चित्र होइ चितहि पईठी? ॥
जौ लहि अगिनि करै नहिं भेदू। तौ लहि औटि चुवै नहिं मेदू ॥
कहँ संकर तोहि ऐस लखावा ? मिला अलख अस पेम चखावा ॥
जेहि कर सत्य सँधाती तेहि कर डर सोइ मेट।
सो सत कहु कैसे भा, दुवौ भाँति जो भेंट ॥२७॥

[इस अवतरण मे पदमावती राजा से पूछती है, "हे राजन्, जम्बू द्वीप मे रहते हुए तुमको मुझ सिहलगढ की राजकुमारी का पता कैसे चला ?"]

पदमावती ने हँसकर राजा से कहा—"निश्चय ही तू मेरे प्रेम में अनुरक्त है। तुम दोनो कुलों को प्रकाशित करने वाले हो, तुम्हारा यह रहस्य मैंने समझा है। किन्तु तुम्हारा जम्बू द्वीप मे निवास स्थान है फिर तुम्हे हमारे सिहल का कैसे पता चला ? तुमने मुझ मानसरोवर रूपी कमल को कैसे जाना। और उसके विषय में जानकर प्राणो पर खेलते हुए तुम कैसे भ्रमर वन कर आए हो ? तुमने न मुझे कभी देखा और न कुछ सुना—फिर मेरा चित्र तुम्हारे हृदय मे कैसे वैठ गया ? जव तक अग्नि नही तपाई जाती तव तक औट कर शराब नही चूती है। तुम्हे शंकर ने ऐसा क्या दिखाया था कि जिससे विना देखे ही तुमने मेरे प्रति प्रेम की अनुभूति कर ली। जो सत्य पर आरूढ रहता है उसके भय को वह परमात्मा ही दूर कर देता है। यह वतलाओ कि इस प्रकार का सच्चा प्रेम तुम्हारे हृदय मे कैसे उत्पन्न हुआ जो दोनो प्रकार की भेंट का कारण वना।"

टिप्पणी—दुँहु कुल······उजियारा—कवि का अभिप्राय पितृकुल और श्वसुर कुल दोनों से है।

सो मानसर······केवा—सो मे सवृत्तिवक्रता है। मानसर केवा में रूपकातिशयोक्ति है।

सो·········भौंर—सो मे सवृत्तिवक्रता है और भौर में रूपकातिशयोक्ति है।

जौ लहि······मेदू—अप्रस्तुत प्रशसा अलकार है।

दुवौ······भेंट—कवि का अभिप्राय शायद मानसिक और शारीरिक दोनो मिलन से है।

विशेष—यहाँ पर 'प्रगल्भता' नामक अयत्नज अलंकार व्यजित है।

सत्य कहौ सुनु पदमावती। जहँ सत पुरुष तहाँ सुरसती॥
पाएउँ सुवा, कही वह वाता। भा निहचय देखत मुख राता॥
रूप तुम्हारा सुनेउँ अस नीका। ना जेहि चढ़ा काहु कहँ टीका॥
चित्र किएउँ पुनि लेइ-लेइ नाउँ। नैनहि लागि हिये भा ठाऊँ॥
हौ भा साँच सुनत ओहि घडी। तुम होइ रूप आइ चित चढी॥
हौ भा काठमूर्ति मन मारे। चहै जो कर सब हाथ तुम्हारे॥
तुम्ह जौ डोलाइहु तबही डोला। मौन साँस जौ दीन्ह तौ बोला॥
को सोवै, को जागै! अस हौ गएउँ बिमोहि।
परगट गुपुत न दूसर, जहँ देखौं तहँ तोहि॥२८॥

[इस अवतरण मे राजा ने पदमावती के इस प्रश्न का कि उसने जम्बू द्वीप मे रहते हुए उसका परिचय कैसे प्राप्त किया, इसका प्रत्युत्तर दिया है।]

पदमावती से राजा कहता है—"हे पदमावती, मैं सत्य ही कहता हूँ जहाँ सत्पुरुष होता है वही सरस्वती निवास करती है। मेरी भेंट तोते से हुई थी, और उसने सारी बात कह दी थी। उसका मुख लाल था इसलिए उस पर मुझे विश्वास हो गया। तुम्हारा ऐसा सुन्दर रूप सुना था जैसा कि कभी किसी का अलंकार नही बना था। नाम ले ले कर तुम्हारा चित्र बनाता था और नेत्रो के माध्यम से हृदय मे बैठाल लेता था। मैं उसी समय सत्य स्वरूप हो गया, जिस क्षण तुम रूप बनकर हमारे हृदय मे समा गईं। अथवा मै तुम्हारे रूप के लिए सांचा बन गया और तुम्हारा रूप उस साँचे मे ढल गया। तब से मैं काठ की मूर्ति बन गया हूँ और मन को मार लिया है। तुम चाहे जो कुछ भी करो सब कुछ तुम्हारे ही हाथ है। तुम जब डुलाओगी तभी डोलूँगा। मौन साँसें चल रही है, जब नव चेतना दोगी तभी वाणी मुखरित होगी।

मुझे बोध नही कि मैं कब सोता हूँ कब जागता हूँ। तुम्हारी ऐसी मोहिनी मुझ पर पड गई है। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से तुम्ही चारो ओर दिखाई देती हो, अन्य कोई दिखाई नही देता है।

टिप्पणी—इस अवतरण मे प्रणयजनित मुग्धावस्था का बडा मनोवैज्ञानिक चित्रण खीचा गया है।

जहँ······सुरसति—यह सूक्ति है। कवि का अभिप्राय है कि जहाँ पुरुष मे सत्यनिष्ठा होती है वही सिद्धि भी उसे प्राप्त होती है। यहाँ कवि ने सुरसती का प्रयोग सिद्धि के अर्थ मे किया है।

हौ भा सांच······चढ़ी—यहाँ पर सांच और रूप शब्द श्लिष्ट है। यहाँ सांच का अर्थ सांचा भी है और सत्य भी है। इसी प्रकार रूप का अर्थ सौन्दर्य और चांदी है।

को सोवै को जागै—यहाँ पर काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य है।

विशेष—इसमें मौग्ध्य स्थिति का बड़ा व्यापक चित्रण किया गया है।

बिहँसी धनि सुनि कै सत भाऊ। हौ रामा तू रावन राऊ॥
रहा जो भौर कँवल के आसा। कस न भोग मानै रस बासा॥
जस सत कहा कुँवर ! तू मोही। तस मन मोर लाग पुनि तोही॥
जबहुँत कहि गा पंखि सँदेसी। सुनिउँ कि आवा है परदेसी॥
तब हुँत तुम बिनु रहै न जीऊ। चातकि भइउँ कहत "पिउ पिऊ" ?॥
भइउँ चकोरि सो पंथ निहारी। समुद सीप जस नैन पसारी॥
भइउँ विरह दहि कोइल कारी। डार-डार जिमि कूकि पुकारी॥
कौन सो दिन जब पिउ मिलै यह मन राता तासु।
वह दुःख देखै मोर सब, हौ दुःख देखौं तासु॥२९॥

[इस अवतरण मे कवि ने रतनसेन की बातों पर विश्वस्त पदमावती को उससे मिलने के लिए प्रस्तुत दिखलाया है।]

पदमावती राजा के सच्चे प्रेम को जानकर प्रसन्न हुई और बोली, "मै रमणी हूँ और तू रमणकर्त्ता है। जो भ्रमर कमल की आशा में रहता है वह कमल की सुरभि और रस को पाकर क्यो सुख का अनुभव न करे। हे कुँवर ! जैसे तुमने मेरे प्रति अपने सच्चे प्रेम भाव का वर्णन किया है उसी प्रकार मेरा मन भी तुम में अनुरक्त है। जब से तोता यह संदेश कह गया कि तुम परदेशी मुझे प्राप्त करने आए हो तब से मेरा जी तुम्हारे बिना नहीं रह रहा है। और पी-पी रटती-रटती चातक बन गई हूँ। तुम्हारी बाट देखते-देखते मै चकोरी बन गई और इस प्रकार आँखें फैलाए रहती थी जैसे कि समुद्र की सीप स्वाति जल के लिए खुली रहती है। मै विरह में जल कर काली कोयल बन गई हूँ, और डाल-डाल पर तुम्हारी स्मृति में कूकने लगी थी। यह प्रतीक्षा करती थी कि वह कौन-सा दिन आए कि जब उस प्रियतम से मिलन हो जिसमे मेरा मन अनुरक्त है। वह मेरा सब दुःख देखे और मै उसका सब सुख देखूँ।

टिप्पणी—**हौ रामा······राऊ**—यहाँ पर रामा और रावण शब्दों के सहारे कवि ने शब्दशक्ति उद्भव वस्तुध्वनि की प्रतिष्ठा की है। पदमावती यह व्यंजित करना चाहती है कि इसमे कोई सन्देह नही कि तुम रावण के सदृश शक्तिशाली हो किन्तु मैं रामा भी राम के समान हूँ जिसके आगे तुम्हे प्रणय युद्ध में मात खानी पड़ेगी।

रहा······बासा—यहाँ पर अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है।

कस······बासा—यहाँ पर काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य अलंकार है। कवि ने

यह व्यंजित करने की चेष्टा की है कि कमल का लोभी भ्रमरा कमल की सुरभि और रस को पाकर अवश्य ही सुखी होता है।

चातकि······पिउ—यहाँ पर कवि ने लक्ष्योपमा से प्रणयजनित अतिशय-व्याकुलता व्यंजित की है। यहाँ पर कवि प्रौढोक्तिसिद्ध अलंकार से वस्तु व्यंग्य है।

भइउँ······निहारी—यहाँ पर भी लक्ष्योपमा से वस्तुव्यंग्य है। अतिशय व्याकुलता ही व्यंजित की गई है।

समुद······पसारी—यहाँ पर उपमा अलंकार है।

भइउँ विरह············कारी—यहाँ पर भी लक्ष्योपमा अलंकार से वस्तु व्यग्य है। कवि यह व्यजित करना चाहता है कि वह विरह में जलकर काली कोयल के समान हो गई है। इस विरह की अतिशयता भी व्यंग्य है।

विशेष—यहाँ पर 'प्रगल्भता' नामक अयत्नज अलंकार की स्थिति है।

कहि सत भाव भई कँठ लागू। जनु कचन औ मिला सोहागू॥
चौरासी आसन पर जोगी। खटरस, बंधक चतुर सो भोगी॥
कुसुम-माल असि मालति पाई। जनु चंपा गहि डार ओनाई॥
कली वेधि जनु भँवर भुलाना। हना राहु अरजुन के वाना॥
कंचन करी जरी नग जोती। बरमा सौ वेधा जनु मोती॥
नारँग जानि कीर नख दिए। अधर आमरस जानहुँ लिए॥
कौतुक केलि करहिं दुःख नंसा। खूँदहि कुरलहिं जनु सर हँसा॥

रही वसाइ बासना चोबा चन्दन मेद।
जेहि अस पदमिनि रानी सो जानै यह भेद॥३०॥

[इस अवतरण मे रानी पदमावती और राजा रतनसेन के पूर्ण मिलन का चित्रण खीचा गया है।]

राजा के और अपने सत्य प्रेम की व्यजना के पश्चात् वह प्रेमालिगन मे कठ से लग गई। वे दोनो एक दूसरे से इस प्रकार मिलकर एक हुए जैसे सोना सुहागे से मिल जाता है। उस जोगी ने चौरासी आसनो से संभोग किया। प्रणयालिगन मे लेने वाला वह चतुर भोगी संभोग के छहो अंगो का स्वाद जानता था। उसने मानो मालती फूलो की माला पा ली थी अथवा चम्पा की डाल खीचकर अपनी क्रोड मे कर ली थी। जिस प्रकार भौरा कली को भेदकर उसके रसपान में वेसुध हो जाता है उसी प्रकार रतनसेन पदमावती के रसपान में वेसुध हो गया। अथवा जैसे अर्जुन बाण से राहु मछली का भेदन कर विजय के आनन्द मे निमग्न हो गया था उसी प्रकार रतनसे नपदमावती का रसपान करने में आनन्द विभोर था। उसका लाजस्थान ऐसा था

कि मानो सोने की कली में माणिक जड़ा हुआ है और उसको राजा ने मानो कि सुहाग काल में वर्मा से बीध दिया हो। रतनसेन रूपी तोते ने मानो कि पदमावती के कुच रूपी नारंगी पर नखक्षत किए हो। और अधररूपी आम्ररस का मानो उसने पान किया हो। वे कौतुकपूर्वक वे कामक्रीड़ा कर रहे थे, जिससे कि सब दु:ख दूर हो गए। वे दोनो इस प्रकार शैया पर क्रीड़ा कर रहे थे मानो सरोवर मे हंसो का जोड़ा क्रीड़ा कर रहा हो। चोवा चन्दन और मेंद (कस्तूरी) के साथ-साथ रति परिमल फैल रही थी। जिसके ऐसी पदमनी है वही इस रहस्य को जान सकता है।

टिप्पणी—जनु······सुहागू—यहाँ पर स्वत:संभवी उत्प्रेक्षा अलंकार से वस्तु व्यजना है। कवि यह व्यंजित करना चाहता है कि उन दोनों का इतना अधिक पूर्णातिपूर्ण मिलन हुआ और एक-दूसरे में इतने तद्रूप हो गए मानो कि सोने में सुहागा मिलकर तद्रूप हो गया हो। अन्य सूफी कवियो ने भी इस साम्य को स्वीकार किया है। मंझन ने मधुमालती मे 'ओटे जिमि दोउ सोन सोहागे' लिखा है।

चौरासी······आसन—जिस प्रकार योगशास्त्र में योग के चौरासी आसनों का वर्णन किया है उसी प्रकार कामशास्त्र में चौरासी आसनों की चर्चा की गई है।

षट्रस······षट्रस के अन्तर्गत आलिंगन, चुम्बन, नखक्षत, आसन और प्रहणन जनित रसानुभूतियो की ओर संकेत किया गया है।

बंधक—आलिंगन मे बाँधने वाला बंधक कहलाता है।

कुसुमसाल······पाई—यहाँ स्वत:संभवी उत्प्रेक्षा अलकार से सौंदर्यातिशय्य रूप वस्तु व्यग्य है।

जनु······ओनाई—यहाँ पर भी उपर्युक्त विशेषता है।

कंचन······मोती—स्वत:सभवी उत्प्रेक्षा अलंकार से वस्तु व्यग्य है। सौदर्य्यातिशय्य व्यंग्य है।

नारंगजानि······दिए—रूपकातिशयोक्ति और भ्रान्तिमान अलंकारो का संकेत है।

खूँदै······हँसा—यहाँ स्वत सम्भवी उत्प्रेक्षा अलंकार से उपमा अलंकार व्यंग्य है।

विशेष—(क) यहाँ पर 'केलि' नामक स्वभावज अलंकार है।

(ख) कामशास्त्र मे वर्णित 'आलिंगन' नामक मृदु उपचार का वर्णन किया गया है।

(ग) यहाँ पर लतावेष्टिक नामक आलिंगन का वर्णन किया गया है।

(घ) यहाँ केलि नायिका के द्वारा आरब्ध दिखाई गई है।

विशेष—अन्य सूफी कवियो ने भी जायसी के सदृश संभोग के वड़े मनोरम और अश्लील चित्र खीचे है।

तुलना करिए

(क) भरी सेज रुधिर से विरह का भा संहार।
अंग अंग भंग भा जीत नौ सत सिंगार।।

—पुहुपावती

(ख) सम्पुट बंधी कली खिल गई।
सिज्जा पर वसन्त ऋतु भई।।

(ग) इस अवतरण मे नखक्षत, अधर चुम्बन नामक सुरतोपचारो का उल्लेख है। अधरपान का वर्णन चित्रवली मे किया गया है।

अधर घूँट सो अमृत पीया।
जेहि के पियत अमर भा हिया।।

—चित्रावली, ५३६

रतनसेन सो कंत सुजानू। खटरस-पंडित, सोरह बानू।।
तस होइ मिले पुरुप औ गोरी। जैसी बिछुरी सारस-जोरी।।
रची सारि दूनौ एक पासा। होइ जुग-जुग आवहि कविलासा।।
पिय धनि गही, दीन्हि गलबाही। धनि बिछुरी लागी उर माही।।
ते छकि रस नव केलि करेही। चौका लाइ अधर-रस लेही।।
धनि नौ सात, सात औ पाँचा। पुरुष दस तेरह किमि बाँचा।।
लीन्ह बिधाँसि विरह धनि साजा। औ सब चरन जीत हुत राजा।।

जनहुँ औटि कै मिलि गए तस दूनौ भए एक।
कचन कसत कसौटी हाथ न कोऊ टेक।।३१।।

[इस अवतरण मे कवि ने रतनसेन और पदमावती की संभोगावस्था का वर्णन किया है।]

रतनसेन बड़ा रसिक कन्त था। वह संभोग के छहो अंगो के रसो का पूर्ण ज्ञाता था। वह सोलह कलाओ से देदीप्यमान था। वे दोनो पति-पत्नी इस प्रकार मिलकर एक हो गए, जिस प्रकार बिछुडी हुई सारस जोड़ी मिलकर एक हो जाती है। दोनो ने चित्रसारी मे एक साथ संभोग क्रीड़ा की और वे दोनो युगन्नद्ध होकर आनन्द के कैलाश को पहुँच गए। पति ने अपनी पत्नी की बाँह पकड़ कर गलबाँही देकर प्रगाढ़ आलिगन किया। बिछुड़ी हुई स्त्री भी उसके हृदय से चिपट गई। वे दोनो नई-नई रसानुभूति करके विलास और क्रीडा कर रहे थे। पति ने पत्नी के अधरो को जोर-जोर से चूसकर अधरो का रस लिया। स्त्री के नौ-सात अर्थात् सोलह शृंगार और बारह आभूपण पुरुष की दसों उँगलियो की क्रीड़ाओं से विशृंखल हुए बिना नही रहते। उस स्त्री ने विरह के सारे साज-शृंगार को पूर्ण रूप से विध्वंस कर दिया। राजा ने सब शृंगारो को जीत लिया था। दोनों इस प्रकार संभोग मे मिलकर

एक हो रहे थे मानो कि कसौटी पर कंचन कसा जा रहा हो। कोई भी तृप्त होकर अलग होना नही चाहता था।

टिप्पणी—षट्रस······पण्डित—संभोग के प्रमुख रूप से ६ अंग बताए गए है। उनके रसास्वादन को ही षट्रस कहते है। सभोग के छः अंगों से उद्भूत विविध प्रकार के आनन्द है। संभोग के छः अंग है—अलिगन, चुम्बन, नखक्षत, दन्तदशन, प्रहणन।

सोरह······बानू—सोलह कलाओ से युक्त चन्द्रमा के समान देदीप्यमान। लक्ष्योपमा से सौन्दर्यातिशय्य व्यंग्य है।

सारस······जोरी—कवि लोग प्रणयमूलक तादात्म्य और संभोग की अतिशयता व्यंजित करने के लिए सारस की उपमा दिया करते है। कहते है कि सारस बड़ा कामुक पक्षी है। वह सदैव जोड़े से ही रहता है। जब भी जोड़ा बिछुड़ जाता है तभी दूसरा साथी भी मर जाता है।

रची···सार—प्राचीन काल मे संभोग गृह के रूप मे चित्रसारी सजाई जाती थी। उसमे अनेक प्रकार के सुन्दर चित्र और रमणीय वस्तुएँ होती थी। इस प्रकार उपलक्षण से सारी रचना का अर्थ होता था संभोग की तैयारी करना। यहाँ पर कवि ने सारी से चौपड़ की भी व्यजना की है।

एकपासा—समीप, एक साथ, दूसरा अर्थ पासा लिया गया है। पूरी पंक्ति मे कवि ने यह व्यजित किया है कि नायक-नायिका प्रेम के चौपड खेल मे लग गए!

होई······कविलासा—यहाँ पर भी दो अर्थ व्यजित किए गए है। एक अर्थ है कि वे युगन्नद्ध होकर स्वर्गिक आनन्द लूटते है। दूसरा अर्थ पासा परक है। पासे मे गोटियां जोड़ी के साथ कविलास नामक स्थान पर जब पहुँचती है, तभी जीत समझी जाती है।

नौ······सात—१६ शृंगारो के नाम इस प्रकार है—उबटन, वस्त्र, ललाट पर विन्दी, काजल, कान मे कुडल, नाक में मोती, गले मे हार, चोटी, फूलो के गहने, सिंदूर, शरीर मे चन्दन, केसर का अनुलेपन, अगिया, पान, कमर मे कर्धनी, हाथ मे चूड़ी और कगन अन्य आवश्यक अलंकार।

सात······औ पॉचा—जायसी ने १२ आभरणो का वर्णन किया है। उनका यथाप्रसग वर्णन कर दिया गया है।

दस—यहाँ पर कवि का अभिप्राय पुरुष के हाथ की १० उँगलियों से है।

जानहु······एक—यहाँ पर स्वत सम्भवी उत्प्रेक्षा अलंकार से वस्तु व्यजना है। कवि ने सभोग की अतिशयता व्यजित की है।

विशेष—(क) यहाँ पर 'केलि' नामक स्वभावज अलकार है।

(ख) यहाँ पर वात्सायन आचार्य द्वारा वर्णित आसन नामक वाह्य उपचार का वर्णन किया गया है।

(ग) दोहे मे कवि ने नायिका के संभोगकालीन विरुत का सुन्दर वर्णन किया है। सीत्कार के समान उत्पन्न होने वाले शब्द को विरुत कहते है। यह आठ प्रकार का होता है। टिकार, स्वनित, कूजित, रुदित, सूत्कृत, दूत्कृत, फूत्कृत। यहाँ कूजित नामक विरुत दिखाया गया है।

(घ) इस अवतरण मे कवि ने नायिका के रजःक्षरणजनित सुख और शान्ति का बड़ा मार्मिक चित्र खीचा है।

(ङ) कृष्ण साहित्य मे तो रतिकाल मे 'काम कनक सिहासन' के प्रत्यक्ष तरलित होने तक की बात कही है।

काम कनक सिंहासन तरलित।
सिथिल बसन कटि डोरी॥

(च) प्रस्तुत अवतरण मे नखक्षत् का वर्णन किया गया है।

चतुर नारि चित अधिक चिहूँटी। जहाँ पेम बाढ़ै किमि छूटी॥
कुरला काम केरि मनुहारी। कुरला जेहि नहि सो न सुनारी॥
कुरलहि होइ कत कर तोखू। कुरलहि किए पाव धनि मोखू॥
जेहि कुरला सो सोहाग सुभागी। चन्दन जैस साम कँठ लागी॥
गेद गोद कै जानहु लई। गेंद चाहि धनि कोमल भई॥
दारिऊँ, दाख, बेल रस चाखा। पिय के खेल धनि जीवन राखा॥
भएउ बसत कली मुख खोली। बैन सोहावन कोकिल बोली॥
पिउ-पिउ करत जो सूखि रहि धनि चातक की भाँति।
परी सो बूँद सीप जनु, मोती होइ सुख-साँति॥३२॥

[इस अवतरण मे भी सभोग क्रीड़ा का ही वर्णन किया गया है।]

जो स्त्री संभोग क्रीड़ा मे चतुर होती है वह चित्त मे अधिक रमती है। वह जिससे प्रेम करती है वह उसे अपने प्रेमजाल से नही छोड़ता है। कामेच्छा काम क्रीड़ाओ से ही शान्त होती है। सभोग मे जो नारी कुरला नही करती वह सुनारी नही समझी जाती अर्थात् काम की दृष्टि से अच्छी नही समझी जाती। कुरला से ही पति को सतोष होता है। और कुरला करने पर ही स्त्री-कृतकृत्य और धन्य होती है। जिसमे कुरला होती है वही सुहागन होती है और वही सौभाग्यशालिनी होती है। वह पति के कठ मे लगी हुई चन्दन के समान सुखदायक होती है। पति उसे गेद के समान गोद मे ले लेता है। गेंद चाहे कठोर लगे किन्तु वह उसे मधुर लगती है। अधरपान बेल के रस, अनार और अंगूर के रस से भी अधिक मधुर लगता है। प्रिय की क्रीड़ाएँ ही पत्नी के जीवन का सम्बल होती हैं। जब सम्भोग लीला समाप्त हो गई तो वह मधुर वाणी मे कोकिल के समान बोली कि जिस स्त्री का मुख पी-पी

करते हुए चातक की भांति सूख रहा था उसे मानो कि स्वाँति की बूँद मिल गई हो और वह मोती बनकर उसकी सुख शांति का कारण बन गई।

टिप्पणी—कुरला······हंस का जोड़ा जब कामातुर होकर सम्भोग के लिए प्रवृत्त होता है तब विलासमयी क्रीड़ाएँ और मधुरध्वनि करता है। वही से यह शब्द मानवी कामशास्त्र मे प्रयुक्त किया जाने लगा है। स्त्रियो की विलासमयी क्रीड़ाएँ जिसमे उनके मुख से मधुर ध्वनि निकलती रहती है, 'कुरला' कहलाती है। सभोग मे वही स्त्री प्रिय लगती है जो विविध आकर्षणमयी काम क्रीड़ाएँ करती हुई कुछ रसमयी वाणियाँ या चीत्कार तथा हुँकार करती रहती है।

पिउ······शांति—यहाँ पर उपमा और उत्प्रेक्षा अलकार से कवि ने पदमावती की कामतृप्ति का पूरा वर्णन किया है।

विशेष—(क) यहाँ पर 'केलि' नाम स्वभावज अलकार है।

(ख) यहाँ पर आलिगन नामक बाह्य उपचार का सकेत किया गया है।

(ग) कुरला से कवि का अभिप्राय सभवतः शयनोपचारित कलाओ से है। यह कलाएँ कामसूत्र मे १५ बताई गई है।

(१) भाव-ग्रहण अर्थात् स्त्री-पुरुष का रति सदन मे एक दूसरे के रति भाव को समझना।

(२) अगदान—आलिगनादि के लिए प्रेमी युगलो का एक दूसरे को अपने-अपने अगो का आदान-प्रदान।

(३) नखक्षत दतक्षत—खेल-खेल मे एक दूसरे को नखो से नोचना और दाँतो से काटना।

(४) नीवी खोलना।

(५) संस्पर्श करना।

(६) दाम्पत्य सभोग।

(७) हर्षण—किसी बात से प्रसन्न होना।

(८) दम्पती की साथ ही समाप्ति की रतिक्रिया की विधि जानना।

(९) अनुप्रोत्साहन।

(१०) मृदुक्रोध।

(११) बढे हुए क्रोध को रोकना।

(१२) क्रुद्ध प्रसाधन।

(१३) रति शय्या से उठने की विधि।

(१४) सावधानता।

(१५) गुह्याङ्ग गोपन।

भएउ जूझ जस रावन रामा। सेज बिधाँसि बिरह संग्रामा॥
लीन्हि लंक, कंचन गढ़ टूटा। कीन्ह सिंगार अहा सब लूटा॥
औ जोबन मैमत बिधाँसा। बिचला बिरह जीउ जो नासा॥
टूटे अंग-अंग सब भेसा। छूटी माँग, भग भए केसा॥
कंचुकि चूर, चूर भइ तानी। टूटे हार, मोति छहरानी॥
बारी टाड सलोनी टूटी। बाँहू कँगन कलाई फूटी॥
चंदन अग छूट तस भेंटी। बेसरि टूटि तिलक गा मेंटी॥
पुहुप सिगार सँवार सब जोवन नवल प्रसन्त।
अरगज जीमि हिय लाय कै मरगज कीन्हो कत॥३३॥

[इस अवतरण मे पदमावती और रतनसेन के प्रणय युद्ध के परिणाम का मधुर वर्णन किया गया है।]

पदमावती और रतनसेन मे ऐसा युद्ध हुआ जैसा राम और रावण मे हुआ था। विरह के उस युद्ध मे शैया बिलकुल विध्वंस हो गई। रतनसेन ने लका रूपी लंकलेली और पदमावती का शरीर रूपी कचनगढ जीत लिया। उसका उन्मुक्त यौवन मसल दिया गया। दोनों के बीच मे जो विरह था वह प्राण लेकर भागा। क्योकि रतनसेन ने पदमावती के अग-अग का प्रगाढ आलिगन कर आभूषण तोड दिए। कचुकी चूर-चूर हो गई, तनी टूट गई, और हार बिखर गया तथा उसके मोती फैल गए। बाली और सुन्दर टड्डे टूट गए और भुजबन्द और कलाई के कंगन टूट गए। उस आलिगन से अंगो पर लगा हुआ चन्दन पुँछ गया। नाक की बेसर टूट गई और मस्तक का तिलक हट गया।

पुष्पादि के शृगार से अपने को सुसज्जित कर उसने अपने यौवन रूपी नवल वसन्त को सुशोभित किया है। उसे पति ने हृदय मे अरगजे की भाँति लगा कर अच्छी तरह मसल डाला।

टिप्पणी—लीन्ह............टूटा—लंक मे शब्दशक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है।

कंचनगढ़—मे रूपकातिशयोक्ति है। कवि ने यह व्यंजित किया है कि रतनसेन ने पदमावती का अतिशय संभोग कर कौमार्य भग कर उसके सुन्दरतम शरीर पर अपना पूर्ण अधिकार कर लिया। कचनगढ टूटा मे कवि प्रौढोक्तिसिद्ध रूपकातिशयोक्ति से वस्तु व्यंजना की गई है।

विशेष—(क) सभोग के पश्चात् होने वाली अस्तव्यस्त दशा का मनोरम चित्र खीचने में कवियो की वृत्ति अधिक रमी है। प्रस्तुत अवतरण मे कवि ने यही किया है। तुलना कीजिए :—

छिटकी माँग छिटक गे बारा, टूटा गा गज मुक्तन हारा।
टीका मिलि भा ललित लिलारा, फीका भयो रंग रतनारा ।।
टूक-टूक भई कंचुकि चोली, पावन वास भई कोकिल बोली।
छूटि गए बन्द जो छतियन साजे, खुलि गए पायल पायन बाजे ।।
ठावहि ठांव मसक गा जोरा, जहं-जहं हाथ कंत गहि बोरा।
(देखिए कासिम साह कृत हंस जवाहर)

इसी प्रकार सभोग और तत्पश्चात् का मिला हुआ चित्र देखिए—

(क) घूंघट खोलि अधर रस चाखा।
मैन बियपार हैन राखा ।।
कंचुकि खोलि अंकम लायो।
करयो अंग उमंग बढ़ायो ।।
गहत लंक बिरहै गढ़ तजा।
जाइ पावरी पर गाडो धजा ।।
नौबत बाजे लागु नगारा।
बिछिया घुंघरन भा झनकारा ।।
मैन भंडार जाई उघारा।
लेइ कुंजी जनु खोला तारा ।।
भरी सेज रुधिर सो बिरह का भा सहार।
अंग अंग भंग भा जोति नौसत सिंगार ।।
—पहुपावती

(ख) घूंघट खोलि रूप अस देखा।
सो देखा जो सीस सुरेखा ।।
अधर घूट सो अमृत पीया।
जेहि को पियत अमर हीया ।।
राहु गरास कलानिधि कांपा।
लोचन पल आनन पर छापा ।।
पुनि मनमथ रति फागु सवारी।
खोलि अछूत कनक पिचकारी ।।
रंग गुलाल दोउ लै भरे ।।
रोम रोम तन मोती झरै ।।
सेद थंभ रोमच तनू आसू पतन सुरभंग।
प्रथम समागम जो किया सीतल भा सब अंग ।।
—चित्रावली, पृ० २०४

संभोग के पश्चात् के चित्र भी द्रष्टव्य हैं :—

सुरति प्रेम रस अंकम भरेऊ, रतन अवेध वेध जो परेउ ।
कंचुकि तरकि तरकि उर फाटी, बोध सिस मौग ओर पाटी ॥
सेंदुर मिलिगा तिलक लिलारा, काजर नैन पीक रतनारा ।
कंठ हार गिउ हार जो टूटे दलि मल दले देह सो छूटे ॥
वहुरि फूटिगो अम्रित खानी, भो सांति जो मालति रानी ।
काम सकति उर जीतिए कही एक न टार ।
तव गै दुओ सातिमों जव गगन ते छिटकी धार ॥

(ख) यहाँ जायसी ने रति रण का वर्णन किया है । इस रति रण का उल्लेख करते हुए रति रहस्यकार ने लिखा है कि—

प्रथम मदनयुद्धे योषितः स्वल्पभावा ।
कथमपि चिरकालतृप्ति योगं लभन्ते ।
धृत गुरु तरभावाः क्षिप्र काला द्वितीये ।
भवति तु विपरीतः पुरुषेषु क्रमोऽयम् ॥

अर्थात् प्रथम मदन युद्ध मे स्त्री दुर्वल पड़ती है, द्वितीय में प्रवल हो जाती है। रति रहस्य के इस सिद्धान्त की जायसी मे पूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है । उन्होने उपर्युक्त सिद्धान्त राम-रावण युद्ध के रूपक से व्यक्त किया । प्रस्तुत अवतरण मे कवि ने प्रथम मदन युद्ध का वर्णन किया है । अतएव रामा (योषित) की पराजय दिखाई है । इसके वाद ऋतु वर्णन में कवि ने नायिका की प्रगल्भता और प्रौढता व्यजित की है । देखिए अवतरण ३३३ ।

रति रण का दूसरा रूपक गढ विजय का है । कवि ने कचनगढ टूटने की वात कही है । राम पक्ष मे तो अर्थ होगा राम का शरीररूपी कंचन गढ रावण युद्ध श्रम मे चूर-चूर हो गया । स्त्री पक्ष में कंचन गढ़ कौमार्य छद (Virgin Knot) का प्रतीक है । रमणकर्त्ता ने प्रथम रति युद्ध मे उसका भेदन कर नायिका रूपी राम का साज शृंगार लूट लिया ।

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती के समर्पणभाव की वडी सुन्दर व्यंजना की है ।]

पदमावती वाला विनय करती हुई कहती है हे पति ! मुझे कुछ होश नही है । आपने मुझ स्त्री रूपी सुराही के अधर-रस के प्याले कव पिए । पति की आज्ञा मेरे सिर माथे पर है, आप जो आज्ञा देंगे वह झुक कर प्रदान करूँगी, किन्तु हे पति, मेरी एक प्रार्थना है । वह यह है कि हे स्वामी, कामरस का आस्वादन थोड़ा ही-थोडा करें । प्रेमसुरा का रस वही जानता है जो इसे ढग से पीता है । कोई दूसरा जान नही पाता कि किसने दी । अंगूर की मदिरा केवल एक वार पीने मे ही रसानुभूति होती है दूसरी वार पीने पर तो पीने वाला वेसुध हो जाता है । जो उसे एक वार पीकर ही

रह जाता है उसी को जीवन और भोजन के सुख की अनुभूति होती है। अब पान फूल से रस रंग करो और अधर-से-अधर का स्वाद लो।

तुम जो चाहो करो मैं भला-बुरा कुछ नहीं जानती। मुझे चाहे जो कुछ भी हो किन्तु ईश्वर तुम्हे सुखी रखे।

टिप्पणी—सुराही पिएउ······पियाला—यहाँ पर सुराही मे रूपकातिशयोक्ति है। कवि का अभिप्राय स्त्री रूपी सुराही से है।

विशेष—(क) इस अवतरण में पदमावती के रूप मे एक पतिपरायणा भारतीय पत्नी का बडा सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है।

(ख) इसमे 'केलि' के पश्चात् नायिका के केलिभय का वर्णन है।

सुनि, धनि ! प्रेम-सुरा के पिए। मरन जियन डर रहै न हिए ।।
जेहि मद तेहि कहाँ संसारा। की सो घूमि रह, की मतवारा ।।
सो पै जान पियै जो कोई। पी न अघाइ, जाइ परि सोई ।।
जा कहँ होइ बार एक लाहा। रहै न ओहि बिनु, ओही चाहा ।।
अरथ दरब सो देइ बहाई। की सब जाहु, न जाइ पियाई ।।
रातिहु दिवस रहै रस-भीजा। लाभ न देख, न देखै छीजा ।।
भोर होत तब पलुह सरीरू। पाव खुमारी सीतल नीरू ।।
एक बार भरि देहु पियाला, बार-बार को माँग ?।
मुहमद किमि न पुकारै, ऐस दाँव जो खाँग ? ।।३४।।

[इस अवतरण मे रतनसेन पदमावती से प्रेमसुरा के प्रभाव का वर्णन कर रहा है।]

"हे प्रिये ! सुनो, प्रेम सुरा के पीने से जीने-मरने का भय नही रह जाता है, जिसे प्रेम का मद चढा होता है उसे ससार के अस्तित्व का बोध नही रहता है। वह या तो मदहोश रहता है या खुमारी मे पड़ा रहता है। इसे वही जानता है जो पीता है। इसे पीता हुआ वह अघाता नहीं है और बार-बार मद से बेसुध हो जाता है। जिसको एक बार एक लाभ हो जाता है वह उस लाभ के बिना फिर नही रह पाता। उसी को चाहता है। वह पीने के पीछे धन-दौलत सब बहा देता है। वह कहता है हमारी धन-दौलत सब चली जाय किन्तु हमारा पीना न छूटे। वह रात दिन रस में भीजा रहता है। वह न हानि देखता है न लाभ देखता है। प्रातः होते ही उसका शरीर फिर हरा-भरा हो जाता है। पीने के लिए उसमे नई चेतना आ जाती है। ऐसा लगता है कि मानो खुमारी की दशा मे उसे शीतल जल मिल गया हो।

एक बार मे ही हे प्रिये, हमारा प्याला भर दो ताकि बार-बार हमे न माँगना पड़े। जो ऐसा अवसर छोड़ दे फिर वह उस रस के लिए क्यो नही व्याकुल रहेगा।

टिप्पणी— सुनि······हिए—यहाँ पर सूफियों का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। सुरा और सुन्दरी की मान्यता सूफियों में ही थी।

विशेष—यहाँ पर 'मद' नामक स्वभावज अलंकार का वर्णन किया गया है।

भा बिहान ऊठा रवि साई। चहुँ दिसि आईं नखत तराईं॥
सब निसि सेज मिला ससि सूरू। हार चीर वलया भए चूरू॥
सो धनि पान, चून भइ चोली। रँग-रँगीलि निरँग भइ भोली॥
जागत रैनि भएउ भिनसारा। भई अलास सोवत बेकरारा॥
अलक सुरंगिनी हिरदय परी। नारँग छुव नागिनी विष-भरी॥
लरी मुरी हिय-हार लपेटी। सुरसरि जनु कालिंदी भेंटी॥
जनु पयाग अरइल बिच मिली। सोभित बेनी रोमावली॥
नाभी लाभु-पुन्निकै कासी कुँड कहाव।
देवता करहिं कलप सिर आपुहि दोष न लाव॥३५॥

[इस अवतरण में कवि ने रात्रिकालीन सभोग के बाद प्रातःकाल नायक-नायिका की जो अवस्था होती है, उसका सश्लिष्ट चित्र खीचा है।]

प्रातःकाल हुआ और सूर्य रूपी स्वामी उठा। शशि रूपी पदमावती के समीप नक्षत्र और तराई रूपी सहेलियाँ सिमट आई। सारी रात शैय्या पर सूर्य और चन्द्रमा का मिलन हुआ। हार, चीर, और वलय चकनाचूर हो गए। वह बाला पान की तरह थी, उसकी चोली चूने के सदृश हो गई। सारी रात जागते हुए प्रातःकाल हो गया। आलस्य के कारण सोने के लिए बेकरार हो गई। जो रगरंगीली थी वह भोली बाला निरंग हो गई। उसकी सुन्दर अलक गले पर लटक रही थी। वह विष भरी नागिन के समान नारगी रूपी कुचो का स्पर्श कर रही थी। तुड़मुड कर वह हृदय के हार से उलझ रही थी। ऐसा लगता था मानो कि कालिंदी का मिलन सुरसरि से हो गया हो। ऐसा मालूम होता था कि प्रयाग मे अरइल के बीच दोनो का संगम हुआ हो और रोमावली ने मिलकर त्रिवेणी की रचना कर ली थी। बड़े पुण्यो से नाभि रूप काशी कुण्ड की प्राप्ति होती है। देवता भी वहाँ अपना सिर काटकर बलि चढ़ा देते हैं और किसी को भी दोष नही होता है।

टिप्पणी—रवि साईं—यहाँ पर रूपक अलंकार से वस्तु व्यंजना है। रतनसेन के अद्वितीय तेज की व्यजना की है।

नखत तराईं—रूपकातिशयोक्ति अलकार है।

शशि सूरू—यहाँ रूपकातिशयोक्ति है।

सो धनिपान—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि है। यहाँ पर नायिका का पूर्ण यौवन भाव व्यजित किया गया है।

चून······भई—चूर्ण हो गई अर्थात् मसल गई।

चोली—यहाँ पर उपादान लक्षणा से सम्पूर्ण शरीर का उपादान किया गया है। कवि की व्यजना है कि नायिका का सम्पूर्ण शरीर मसल गया। यहाँ पर अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है।

नारंग—रूपकातिशयोक्ति है।

नागिन······विषभरी—रूपकातिशयोक्ति है।

सुरसरि··· · भेटी—उत्प्रेक्षा अलकार है। मोती के हार के लिए सुरसरि और काली लट के लिए कालिन्दी की उत्प्रेक्षा की गई है।

बेनी—यहाँ पर बेनी का प्रयोग सम्भवतः सरस्वती के लिए किया गया है। किन्तु ऐसा प्रयोग क्यो किया, समझ मे नही आता। रोमावली के लिए प्रायः कालिन्दी की उपमा दी गई है सरस्वती की नही। किन्तु यहाँ पर कवि ने रोमावली की उपमा सरस्वती से दी है।

बिहँसि जगावहि सखी सयानी। सूर उठा, उठु पदमिनि रानी॥
सुनत सूर जनु कँवल बिगासा। मधुकर आइ लीन्ह मधु बासा॥
जनहु माति निसयानी बसी। अति बेसँभार फूलि जनु अरसी॥
नेन कँवल जानहु दुइ फूले। चितवनि मोहि मिरिग जनु भूले॥
तन न सँभार केस औ चोली। चित अचेत जनु बाउरि भोली॥
भइ ससिहीन गहन अस गही। बिथुरे नखत, सेज भरि रही॥
कँवल माँह जनु केसरि दीठी। जोबन हुत सो गँवाइ बईठी॥
बेलि जो राखी इंद्र कहँ पवन बास नहि दीन्ह।
लागेउ आइ भौर तेहि, कली बेधि रस लीन्ह॥३६॥

[इस अवतरण मे सखियाँ पदमावती को जगा रही है।]

चतुर सखियाँ पदमावती को जगाती हुई कहती है—हे पदमावती! रतनसेन रूपी सूर्य उठ चुका है, अब तू भी उठ जा। रतनसेन रूपी सूर्य का नाम सुनते ही पदमावती रूपी कमल खिल उठा। सखियो से घिरी हुई वह पदमावती ऐसी मालूम पड रही थी कि मानो कमल मधुकरो से घिरा हुआ हो। अथवा पदमावती की पद्म जैसी सुरभि को लेने के लिए मानो भौरे मडरा रहे हो। वह ऐसी प्रतीत हो रही थी जैसे कोई रात भर मद से बेहोश रहा हो और प्रातः वह अलसाया हुआ दीख रहा हो। वह ऐसी पीली पड़ रही थी मानो कि अलसी फूली हुई हो और रात्रि की सुरति मद से मदहोश हो रही थी। उस बाला के नेत्र ऐसे सुन्दर थे मानो कि दो कमल खिले हुए हो। उनकी चितवन भूले हुए मृगो को मोहित करने वाली थी। उसे न तो अपने शरीर का सभार था न केशादि का संभार था। और न उसे अपने वस्त्राभूषणों की सुध थी। वह चित्त से अचेत और मन से बावली हो रही थी।

उसकी शोभा उस समय ऐसी हो रही थी मानो कि कमल केसर से पीला पड गया हो। अपने यौवन को वह गँवा वैठी थी।

जो लता किसी इन्द्र के लिए सुरक्षित रखी गई थी, जिसकी सुरभि पवन तक नही पाता था, उससे भौरा रूपी रतनसेन लग गया और उस पदमावती रूपी कली का रसपान करने लगा।

टिप्पणी—सूर······उठा—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार है। सूर मे 'सूर' शब्द श्लिष्ट भी है। और दूसरा अर्थ है प्रातः हो गया। दोनो अर्थ तर्क संगत है।

पदमिनी······रानी—यहाँ पर परिकराकुर अलंकार है। पर्याय ध्वनि भी है। कवि ने इस शब्द से पदमावती की रतनसेन के प्रति एक ओर तो एक-निष्ठता व्यंजित की है और दूसरी ओर उसने सूर्य के उदय होने पर कमल रूपी पदमावती के जगने और उत्फुल्ल होने का सदेश दिया है।

अति······अरसी—यहाँ पर स्वत.संभवी उत्प्रेक्षा अलकार से वस्तु व्यजना है। यहाँ पर कवि ने नायिका की सुरतिजनित म्लानता व्यजित की है।

नैन······फूले—यहाँ पर कवि प्रौढोक्ति सिद्ध उत्प्रेक्षा अलंकार से वस्तु व्यग्य है। नायिका के नेत्रों की अतिशय सुन्दरता ही व्यजित की गई है।

चितवनि······भूले—यहाँ पर प्रतीप अलकार है।

केस औ······चोली—यहाँ पर अर्थान्तिर सक्रमित वाच्यध्वनि है। कवि की व्यजना है कि नायिका को न तो अपने अंगो-प्रत्यंगो का सभार था और न उसे अपने वस्त्राभूषणो की ही सुधि थी।

कँवल······दीठी—यहाँ पर कवि ने प्रौढोक्तिसिद्ध उत्प्रेक्षा अलंकार से नायिका के सुरति जनित म्लान सौदर्य की अभिव्यक्ति की है। अतएव यहाँ पर कवि स्वतः-संभवी अलकार से वस्तु व्यंजना है।

वेलि······लीन्ह—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

विशेष—इस अवतरण मे रहस्य भावना व्यंग्य है।

हँसि हँसि पूछहि सखी सरेखी। मानहुँ कुमद चद्र-मुख देखी॥
रानी ! तुम ऐसी सुकुमारा। फूल बास तन जीव तुम्हारा॥
सहि नहि सकहु हिये पर हारू। कैसे सहिउ कंत कर भारू॥
मुख-अंबुज बिगसै दिन राती। सो कुँभिलान कहहु केहि भाँती॥
अधर-कँवल जो सहा न पानू। कैसे सहा लाग मुख भानू॥
लंक जो पैग देत मुरि जाई। कैसे रही जौ रावन राई॥
चदन चोब पवन अस पीऊ। भइउ चित्र सम, कस भा जीऊ॥
सब अरगज-मरगज भयउ, लोचन बिब सरोज।
'सत्य कहहु पदमावति' सखी परीं सब खोज॥३७॥

[इस अवतरण में सखियाँ पदमावती से हास-परिहास कर रही है।]

चतुर सखियाँ पदमावती से हँस-हँस कर कह रही हैं—हे सखी ! ऐसा मालूम होता है कि तुझ कुमुदिनी ने राजा रूपी चाँद का मुख देख लिया है। रानी, तुम इतनी सुकुमार हो कि फूल जैसा तुम्हारा शरीर है और सुरभि जैसा तुम्हारा जीव है। तुम तो हृदय पर हार का भार नही सहन कर पाती थी फिर पति का भार कैसे सहन किया ? जो मुख-कमल सदैव खिला रहता था वह बताओ क्यो कुम्हला रहा है। अधर-कमल जो पान भी सहन नही कर पाते थे वे राजारूपी भानु के मुख को कैसे सहन कर सके ? जो कमर झूले की पेंग देने से मुड़ जाती थी, वह पति के रमण किए जाने पर बिना भंग हुए कैसे बची ?

चन्दन, खसखस की सुरभि को हरण करने मे पति पवन के समान होता है। तुम चित्र लिखी सी मुग्धा दिखाई दे रही हो। तुम्हारा मन कैसा हो रहा है ? जितना अर्गज था वह सब चूर्ण हो गया है। कमल नेत्र बिंबफल जैसे अरुण हो रहे हैं। हे सखी ! सब रहस्य ठीक-ठीक बता दो। इस प्रकार सब सखियाँ उससे मिलन की बात कहलाने की चेष्टा करने लगी।

टिप्पणी—मानो······पेखो—यहाँ पर स्वतःसम्भवी उत्प्रेक्षा अलकार से वस्तुव्यंग्य है। सखियाँ यह व्यजित कर रही हैं कि तेरा मिलन अपने पति से हो गया है।

फूल तुम्हारा—यहाँ पर अतिशयोक्ति अलंकार से उपमा अलंकार व्यंग्य है।

सो······भाँति—यहाँ पर काकुवैशिष्ट्य व्यंग्य है। कवि ने सुरति की अतिशयता और प्रगाढता व्यंजित की है।

चन्दन······चोव—चोव का अर्थ यहाँ पर सुरभि है। कवि की व्यंजना है कि स्त्री के सौन्दर्य और शृंगार का पति उसी प्रकार उपभोग कर लेता है जिस प्रकार वायु चन्दन की सुरभि का आहरण कर लेती है।

विशेष—यहाँ पर कवि ने 'प्रहेलिका' नामक कला के अनुकरण पर सखियों द्वारा किए गए हास-परिहास का वर्णन किया है।

कहौ, सखी ! आपन सतभाऊ। हौ जो कहति कस रावन राऊ ॥
काँपी भौर पुहुप पर देखे। जनु ससि गहन तैस मोहि लेखे ॥
आजु भरम मैं जाना सोई। जस-पियार पिउ और न कोई ॥
डर तौ लगि हिय मिला न पीऊ। भानु के दिस्टि छुटि गा सीऊ ॥
जत खन भानु कीन्ह परगासू। कँवल-कली मन कीन्ह बिगासू ॥
हिये छोह उपना औ सीऊ। पिउ न रिसाउ लेउ बरु जीऊ ॥
हुत जो अपार बिरह दुख दूखा। जनहुँ अगस्त-उदय जल सूखा ॥

हौ रंग बहुतै आनति, लहरैं जैस समुंद।
पै पिउ वै चतुराई खसेउ न एकौ वुंद ।।३८।।

[इस अवतरण मे मिलन के वाद की पदमावती की दशा और उसके अनुभव का वर्णन है।]

हे सखी ! मैं सच्चे दिल से बताती हूँ कि मैं जो यह कहा करती थी कि रमणकर्त्ता पति कैसा होगा तथा भ्रमर को फूल के साथ देखकर मेरा मन डर जाता था और शरीर कम्पायमान हो जाता था। आज वह रहस्य मैं जान गई हूँ। पति के प्यार जैसा प्यार किसी का नही होता है अथवा जितना प्यारा पति लगता है उतना प्यारा कोई नही लगता है। भय तभी तक रहता है जब तक प्रिय से मिलन नही होता है। सूर्यरूपी पति के दर्शनमात्र से भयरूपी शीत छूट जाता है। जिस क्षण पतिरूपी सूर्य ने प्यार रूपी प्रकाश किया उसी समय मुझ कमल की मनरूपी कली खिल उठी। हृदय मे प्रेम और 'शीतलता' उत्पन्न हो गई। मन यह कहने लगा कि पति रुष्ट न हो चाहे हमारे प्राण ले लें। जो विरह का महान् दुःखरूपी वर्षा जल था वह पति रूपी अगस्त के उदय से सब सूख गया। जिस प्रकार समुद्र मे असंख्य तरंगें होती हैं, उसी प्रकार मुझ मे असंख्य क्रीड़ाएँ थी। किन्तु पति की चतुराई के सामने मैं अपनी एक बूंद भी अर्थात् रत्ती भर भी चतुराई न दिखा सकी।

टिप्पणी—जहाँ······अंगू—यहाँ पर स्वतःसम्भवी वस्तु से वस्तु व्यग्य है। कवि की व्यजना है कि नायिका पति द्वारा संभोग की कल्पना करके भयभीत हो जाती। यहाँ पर कंप सात्विक का भी संकेत किया गया है।

भानु······सीऊ—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति है।

जत······बिगासू—इसमे रूपकातिशयोक्ति है।

करि सिंगार तापहँ का जाऊँ। ओही देखहुँ ठाँवहि ठाऊँ।।
जौ जिउ महँ तौ उहै पियारा। तन-मन सौ नहि होइ निनारा।।
नैन माँह है उहै समाना। देखौ तहाँ नाहि कोउ आना।।
आपन रस आपुहि पै लेई। अधर सोइ लागे रस देई।।
हिया थार कुच कंचन लाडू। अगमन भेंट दीन्ह कै चाँडू।।
हुलसी लंक लंक सौ लसी। रावन रहसि कसौटी कसी।।
जोवन सबै मिला ओहि जाई। हौ रे बीच-हुँत-गइउँ हेराई।।
जस किछु देइ धरै कहँ, आपन लेइ सँभारि।
रसहि गारि तस लीन्हेसि, कीन्हेसि मोहि ठँठारि ।।३९।।

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती के प्रेमभाव की अद्वैतमूलकता की अभिव्यक्ति की है।]

पदमावती सखियों से कहती है कि मेरा अपने पति से ऐसा अद्वैत भाव हो गया है कि समझ में नही आता कि शृंगार करके उसके पास कहाँ जाऊँ ? वह तो मुझे अब सर्वत्र दिखाई पडता है । मन को टटोलती हूँ तो वही प्रियतम मिलता है । मन तन से अलग नही हो सकता है । नेत्रो में भी वही समाया हुआ है । वहाँ सिवाय उसके किसी को नही देखती हूँ । वह अपना रस अपने आप ही लेता है और अधरों का पान करने पर वह मुझे भी रस देता है । हृदय थाल के समान है और कुच कंचन के लड्डू के समान है जिन्हे मैंने बड़े चाव से आगे बढकर उसकी भेंट किया है । मेरी लंक भेंट देने के उपरान्त उनकी लक से हुलसकर चिपट गई तब रमणकर्त्ता पति ने प्रसन्न होकर संभोग किया । सम्पूर्ण यौवन उसी में मिल गया । मेरा ममत्व बीच मे खो गया । द्वैतभाव दूर हो गया ।

जैसे कोई कही धरोहर रख दे और फिर बाद में अपनी धरोहर लौटाकर संभाल ले, उसी प्रकार पति ने मेरा सब रस निचोड़ लिया और मुझे रस से रिक्त कर दिया ।

टिप्पणी—इसमे कवि ने नायिका के प्रेमभाव की अद्वैतता की व्यंजना की है । इसमें लौकिक वर्णन के सहारे उस परमात्मा के अद्वैत भाव का भी वर्णन किया गया है । यह वर्णन 'ओही' और 'उह' जैसे संवृत्तिवक्रतापूर्ण प्रयोगो से प्रकट है । इसलिए यहाँ पर रहस्यवाद है ।

अनु रे छबीली ! तोहि छबि लागी । नैन गुलाल कंत सँग जागी ।।
चंप सुदरसन अस भा सोई । सोनजरद जस केसर होई ।।
बैठ भौर कुच नारँग बारी । लागे नख, उछरी रँग-धारी ।।
अधर-अधर सों भीज तमोरा । अलका उर भुरि-भुरि गा तोरा ।।
रायमुनी तुम औ रतमुहीं । अलिमुख लागि भई फुलचुहीं ।।
जैस सिगार-हार सौ मिली । मालति ऐसि सदा रहु खिली ।।
पुनि सिंगार करु कला नेवारी । कदम सेवती बैठु पियारी ।।
कुद कली सम बिगसी ऋतु बसंत औ फाग ।
फूलहु फरहु सदा सुख औ सुख सुफल सोहाग ।।४०।।

[इस अवतरण में सखियाँ पदमावती की सुरति के पूर्व और सुरति के पश्चात् की दशा का वर्णन कर रही है ।]

वे सखियाँ कहती है—"हे छबीली ! तुझ में निश्चय ही नई छबि आ गई है । तेरे नेत्र पति के साथ जगने से गुलाल के समान लाल हो रहे है । तेरा पहला रंग चम्पा के समान था किन्तु अब तू सोने के समान केसरवर्ण हो गई है । रतनसेनरूपी भँवरा तेरे कुच रूपी नारगी के बगीचे में प्रवृष्ट हुआ और नारगियो पर नख मारे

जिससे वे चिन्हित हो गई हैं और जिस से तेरा रंग ढल गया है। अधर-से-अधर मिलाकर ताम्बूल रग के कर दिए। तेरी कुटिल अलकावली अस्त-व्यस्त हो गई है। तू नन्ही-सी प्यारी-सी राजकुमारी थी और ब्रह्मचारिणी एव पवित्र थी। रतनसेनरूपी भ्रमर के रसपान से तू चूसे हुए फूल जैसी हो गई है। जिस प्रकार हर्षपूर्वक तू अपने शृंगार हरण करने वाले से मिली है उसी प्रकार तू मालती के सदृश सदैव ही खिली रहे। तू पुनः शृंगार करके कलह मिटा दे और पुनः चरणो की सेवा करके प्रिय की प्यारी बन।

कुदकली के समान तू खिली हुई है। यह यौवनरूपी वसंत का मधुर समय है और प्रथम मिलन की फाग मची हुई है। तुम खूब फलो-फूलो और सदैव सुखी, फलवती और सौभाग्यवती रहो।

टिप्पणी—नैन गुलाल—यहाँ पर लक्षण-लक्षणा से कवि ने नायिका के अनुरागपूर्ण होने की व्यजना की है। यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि है। मिलन-जनित अनुरागाधिक्य ही व्यजित है।

चम्प सुदर्शन—ये दो फूलो के नाम है। इसी प्रकार कवि ने सम्पूर्ण अवतरण में सोन जरद, शृंगार हार, मालती और निवाड़ी और कदम्ब सेवती, कुन्द आदि विविध फूलो के नामो की अभिव्यक्ति की है। ऐसा उसने बहुज्ञता प्रदर्शन की कामना से किया है। ये प्रयोग श्लिष्ट ध्वनि के अन्तर्गत आयेंगे।

राय मुनी—यह शब्द भी श्लिष्ट है। राजा की बेटी, दूसरा अर्थ है लाल मुख की चिड़िया! यह देखने मे बहुत सुन्दर लगती है।

रतमुही से कवि ने नायिका के ब्रह्मचर्यपूर्ण पवित्र जीवन की व्यंजना की है। यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि है।

शृङ्गार हार—यह शब्द भी श्लिष्ट है।

(१) शृंगार हरण करने वाले रमणकर्त्ता पति।

(२) हार शृंगार का फूल।

कदम सेवती—एक अर्थ है 'चरणो' की सेवा करती थी। दूसरी ओर कदम और सेवती नामक दो फूलों का व्यंजना की गई है।

ऋतु वसंत और फाग मे रूपकातिशयोक्ति है।

विशेष—(क) इस अवतरण में मुद्रा अलकार है।

(ख) कवि ने अपने पुष्प ज्ञान का प्रदर्शन किया है।

(ग) यहाँ पर श्लिष्टार्थ सौन्दर्य भी है।

कहि यह बात सखी सब धाई। चंपावति पहँ जाइ सुनाई॥
आजु निरँग पदमावति बारी। जीवन जानहुँ पवन-अधारी॥
तरकि-तरकि गई चंदन चोली। धरकि-धरकि हिय उठै, न बोली॥

अही जो कली-कँवल रसपूरी । चूर-चूर होइ गई सो चूरी ।।
देखहु जाइ जैसि कुँभिलानी । सुनि सोहाग-रानी बिहँसानी ।।
सेइ सँग सबही पदमिनि नारी । आई जहँ पदमावति बारी ।।
आइ रूप सो सब ही देखा । सोन-बरन होइ रही सो रेखा ।।
कुसुम फूल जस मरदै, निरँग देख सब अंग ।
चंपावति भइ बारी, चूम केस औ मंग ।।४१।।

[इस अवतरण मे पदमावती की सौभाग्य प्राप्ति की चर्चा सखियो द्वारा उसकी माता चम्पावती से कराई गई है ।]

सखियाँ यह सब बात कह कर चंपावती के पास गईं और उससे सब कुछ कह दिया । उन्होने कहा, आज पदमावती रंगहीन हो गई है । मानो उसमें प्राण ही न रहा हो । केवल पवन के आधार पर चल रही है । उसकी चन्दन कपड़े की चोली तड़क-तड़क कर टूट गई और हृदय धडक-धडक कर रह जाता है, बोल नही पाती है । जो पदमावती रसभरी कली के समान थी, वह चकनाचूर होकर चूर्ण बन गई है । जाकर देखो कैसी कुम्हला गई है ! सुहाग की बात सुनकर रानी बडी प्रसन्न हुई । वह बहुत-सी पद्मिनी स्त्रियों को लेकर पदमावती के पास आई । उसने आकर उसका वह सब रूप देखा । वह अब सोने की रेखा जैसी हो रही थी ।

जिस तरह से कुसुम्भा का फूल मसल दिया जाता है तो वह निरंग हो जाता है, उसी प्रकार उसके सब अंग निरंग दिखाई पड रहे थे । चम्पावती ने उसके केश और मांग का चुम्बन लिया और उस पर बलि हो गई ।

टिप्पणी—अहि-चूरी—यहाँ पर सारोप्यनिबन्धना अप्रस्तुत प्रशसा अलंकार है ।

सोन बरन······रेखा—यहाँ पर कवि प्रौढोक्तिसिद्ध उपमा अलकार से वस्तु व्यंग्य है । नायिका की कोमलता, सुकुमारता और सुरतिजन्य सौन्दर्य ही यहाँ व्यंग्य है ।

सब रनिवास बैठ चहुँ पासा । ससि-मंडल जनु बैठ अकासा ।।
बोली सबै बारि कुँभिलानी । करहु संभार, देहु खँड़वानी ।।
कँवल-कली कोमल रँग भीनी । अति सुकुमारि, लंक कै छीनी ।।
चाँद जैस धनि हुत परगासा । सहस करा होइ सूर बिगासा ।।
तेहि के झार गहन अस गही । भइ निरंग, मुख-जोति न रही ।।
दरब बारि किछु पुन्नि करेहू । औ तेहि लेइ संन्यासिहि देहू ।।
भरि कै थार नखत गज मोती । वारा कीन्ह चंद कै जोती ।।
कीन्ह अरगजा मरदन औ सखि कीन्ह नहानु ।
पुनि भइ चौदसि चाँद सो रूप गएउ छपि भानु ।।४२।।

[इस अवतरण में कवि ने रानियों से आक्रान्त सुरतित्रस्ता पदमावती का मनोरम चित्र चित्रित किया है।]

सब रानियाँ उसके चारो ओर बैठी हुई थी। ऐसा मालूम होता था कि मानो आकाश मे शशि मण्डल शोभित हो। वे सब कह रही थी कि बाला कुम्हला गई है। इसकी देखभाल करो और इसे पीने के लिए खाँड का पानी दो। वह बाला कोमल कली जैसे रग से भीगी हुई थी।

वह अत्यन्त सुकुमारी थी और उसकी कटि अत्यन्त क्षीण थी। वह स्त्री चाँद के समान प्रकाशमान थी। किन्तु रत्नसेन रूपी सूर्य अपने तेज की सहस्रों किरणो से प्रकाशित हुआ। उसके प्रकाश से वह ग्रहण जैसी ग्रहीन हो गई। वह निरंग हो गई और उसके मुख पर कान्ति नही रही। धन न्योछावर करके कुछ पुण्य करना चाहिए। और उसे वह द्रव्य सन्यासियो को बाँट देना चाहिए। आकाश रूपी थाल मे नक्षत्र रूपी गज मोती भरकर उसे चन्द्र ज्योति रूपी पदमावती के ऊपर न्योछावर करें।

उसे अरगजा मर्दन करके सखियों ने स्नान कराया। चाँदरूपी पदमावती का तेज रत्नसेन रूपी सूर्य के आगे छिप गया था। वह फिर चौदहवीं के चाँद के सदृश खिल उठा।

टिप्पणी—भरि.........गज मोती—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

पुनि......भानु—यहाँ पर इस्लामी प्रभाव है। इस्लामी साहित्य में रूप के लिए चौदहवी के चाँद की उपमा दी जाती है।

गयेउ......छपि भानु—यहाँ रूपकातिशयोक्ति है।

पुनि वहु चीर आन सब छोरी। सारी कंचुकि लहर-पटोरी॥
फुँदिया और कसनिया राती। छायल बँद लाए गुजराती॥
चिकवा चीर मघौना लोने। मोति लाग औ छापे सोने॥
सुरँग-चीर भल सिहल दीपी। कीन्ह जो छापा धनि वह छीपी॥
पेमचा डरिया औ चौधारी। साम, सेत, पीयर, हरियारी॥
सात रग औ चित्र चितेरे। भरि कै दीठि जाहि नही हेरे॥
चँदनौता औ खरदुक भारी। बाँसपूर झिलमिल कै सारी॥
पुनि अभरन बहु काढा, अनबन भाँति जराव।
हेरि फेरि निति पहिरै, जब जैसे मन भाव॥४३॥

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती के शृंगार के वस्त्राभूषण का वर्णन किया है।]

फिर बहुत-सी साड़ियाँ लाकर रखी गईं। बहुत-सी कंचुकियाँ और लहर पटोरी लाकर एकत्रित की गईं। लाल कसनियाँ और फुंदियाँ भी रखी गईं। गुजराती सुन्दर बन्द लाए गए। सुन्दर सिंहलद्वीपी वस्त्र थे जिन पर बड़े सुन्दर छापे लगे हुए थे। इनके छापने वाले छीपी धन्य थे। चिकवा और मघौना नाम के सुन्दर कपड़े रखे गए। काले, सफेद, पीले और हरे रंग के ये सब कपड़े थे। इनमें कुछ पीमचा थे, कुछ डोरिया थे और कुछ चौधारी थे। ये कपड़े सात रंग के थे और सुन्दर-सुन्दर चित्र बने हुए थे। वे इतने प्यारे लगते थे कि देखते नहीं बनते थे। चंदनौता, खरदुक आदि भारी लहगे वाले कपडे थे और बाँसपुर नाम की झलमलाती हुई मलमल की साड़ी थी। बहुत-से आभरण निकाले जो अनेक प्रकार के जड़ाऊ थे। जैसा उसका मन होता था उन्हें वह उलट फेर के पहनती थी।

टिप्पणी—चीर—प्रायः साधारणतया वस्त्र के लिए चीर शब्द का प्रयोग होता था।

कंचुकी—चोली।

लहर पटोरी—पुराने ढंग का रेशमी लहरिया कपड़े की साडी।

फुँदिया—लहगे के इजार बंद के फुलरे।

कसनियाँ—एक प्रकार की चोली जो कसकर बाँधी जाती है।

छायल—सुन्दर, फैशनेबिल।

बन्द—एक प्रकार का वस्त्र।

चिकवा—एक प्रकार का रेशमी कपड़ा।

मघौना—नीले रंग का एक प्रकार का रेशमी कपड़ा।

पेमचा—एक प्रकार का कपड़ा जिसको आजकल प्लेन या एक रंग का कहते हैं।

डरिया—आजकल इसी को डोरिया कहते है।

चौधारी—इसे आजकल चैक कहते हैं।

चन्दनौता—सभवतः यह एक प्रकार के मूल्यवान वस्त्र का बना लहंगा होता था।

बाँसपुर—एक प्रकार की मलमल होती थी जिसका थान बाँस के छेद में से निकल जाता था।

झिलमिल—एक प्रकार का चमकीला कपड़ा।

अनवन—विविध रंगी।

रतनसेन साथी खण्ड

रतनसेन गए अपनी सभा। बैठे पाट जहाँ अठ खँभा॥
आइ मिले चितउर के साथी। सबै बिहँसि कै दीन्ही हाथी।
राजा कर भल मानहु भाई। जेइ हम कहँ यह भूमि देखाई॥
हम कहँ आनत जौ न नरेसू। तो हम कहाँ, कहाँ यह देसू॥
धनि राजा तुहँ राज विसेखा। जेहि के राज सबै किछु देखा॥
भोग-विलास सबै किछु पावा। कहाँ जीभ जेहि अस्तुति आवा?॥
तब तुम आइ अँतरपट साजा। दरसन कहँ न तपावहु राजा॥
नैन सेराने, भूखि गइ, देखे दरस तुम्हार।
नव अवतार आजु भा, जीवन सफल हमार॥१॥

[इस अवतरण मे राजा रतनसेन ने अपने साथियो के प्रति कृतज्ञता प्रकट की है।]

रतनसेन अपनी सभा मे गए और आठ खम्भो वाले आस्थान मण्डप मे राजसिंहासनारूढ हो गए। तभी उनके चित्तौड़ के साथी उनसे आकर मिले। उन्होने आकर राजा को करबद्ध प्रणाम किया। और आपस मे कहने लगे कि हमे तो राजा की आज्ञा स्वीकार करनी चाहिए क्योकि उसी ने हमे यह भूमि दिखाई है। अगर राजा हमे यहाँ नही लाते तो हम कहाँ थे और कहाँ यह देश था। वे फिर राजा को सम्बोधित करके कहते है। हे राजा! तू धन्य है और तेरे शासन को धन्य है जिसके राज्य मे हम लोगो को सब कुछ देखने को मिला। आपकी स्तुति करने की शक्ति हमारी जिह्वा मे नही है। हमने यहाँ पर भोग-विलास सब कुछ प्राप्त किया है। किन्तु हे राजा! तुम हमें अपने दर्शनो के लिए मत तड़पाया करो। क्योकि यहाँ आकर तुमने परदे मे रहना सीखा। तुम्हे देखकर हमारे नेत्र शीतल हो गए और भूख मिट गई। आज हमारा नया अवतार हुआ है और हमारा जीवन सफल हो गया है।

टिप्पणी—अठ······खँभा—प्राचीन काल मे आठ खम्भो को आधार बनाकर एक विशेष आस्थान मण्डप बनाया जाता था जिसमें राजा अपनी विशेष सभा किया करता था। यह परम्परा मुगलो तक प्रचलित रही।

दीन्हीं······हाथी—इसका अर्थ शुक्लजी ने हाथ मिलाया दिया है किन्तु हाथ मिलाने की प्रथा सम्भवतः नवीन है और यह पाश्चात्यो के प्रभाव से प्रचलित

हुई, अतएव इसका अर्थ हम करबद्ध प्रणाम लेना अधिक उपयुक्त समझते हैं।

नैन सेराने भूख गइ देखे दरस तुम्हार—यहाँ विभावना और असगति का संकर है।

हँसि कै राज रजायसु दीन्हा। मै दरसन कारन एत कीन्हा॥
अपने जोग लागि अस खेला। गुरु भएउँ आपु, कीन्ह तुम चेला॥
अहक मोरि पुरुषारथ देखेहु। गुरु चीन्हि कै जोग बिसेखेहु॥
जो तुम्ह तप साधा मोहि लागी। अब जिनि हिए होहु बैरागी॥
जो जेहिं लागि सहै तप जोगू। सो तेहि के सँग मानै भोगू॥
सोरह सहस पदमिनी माँगी। सबै दीन्हि, नहि काहुहि खाँगी॥
सब कर मन्दिर सोने साजा। सब अपने-अपने घर राजा॥
हस्ति घोर औ कापर सबहि दीन्ह नव साज।
भए गृही औ लखपती, घर-घर मानहुँ राज॥२॥

[यह उक्ति राजा की अपने साथियो के प्रति है।]

हँसकर राजा ने आज्ञा दी और कहा—"मैने दर्शन पाने के लिए यह सब किया था। अपने जोग के लिए मैंने यह आयोजन किया था। स्वयं गुरु बना था और तुम सबको चेला बनाया था। इस सम्बन्ध मे मेरा पुरुषार्थ देखो। मैंने योग साधकर गुरु को पहचान लिया। तुमने मेरे लिए योग साधना की है अत: अब मेरे कहने से तुम वैरागी मत हो। जो जिसके लिए तप और जोग सहता है वह उसके साथ भोग मे भी सम्मिलित होता है। यह कह कर सोलह सहस्र पदमिनियाँ माँगी। वे उसने अपने साथियो को सौप दी। किसी को कमी नही रही। सब का धवल गृह सोने का सजाया गया। सब अपने-अपने घर के राजा हो गए।

सभी को हाथी घोडे तथा नए वस्त्रादि दिए गए। सभी गृहस्थ और लखपति हो गए। वे घर घर में राज सुख मनाने लगे।

विशेष—इस अवतरण में रतनसेन के चरित्र की उदात्तता वर्णित की गई है।

षट्ऋतु वरणन

पदमावति सब सखी बोलाई। चीर पटोर हार पहिराई॥
सीस सबन्ह के सेंदुर पूरा। औ राते सब अंग सेंदूरा॥
चन्दन अगर पत्र सब भरी। नए चार जानहु अवतरी॥
जनहुँ कँवल सँग फूली कूई। जनहुँ चाँद सँग तरई ऊई॥
धनि पदमावति, धनि तोर नाहू। जेहि अभरन पहिरा सब काहू॥

बारह अभरन, सोरह सिंगारा। तोहि सौह नहिं ससि उजियारा।।
ससि सकलंक रहै नहिं पूजा। तू निकलक, न सरि कोई दूजा।।
काहू बीन गहा कर, काहू नाद मृदंग।
सबन्ह अनंद मनावा रहसि कूदि एकसग।।३।।

[इस अवतरण मे पदमावती अपनी सखियो के साथ आनन्द क्रीडा करती हुई चित्रित की गई है।]

पदमावती ने अपनी सब सखियाँ आमन्त्रित की और सबको सुन्दर वस्त्र, सुन्दर साडियाँ तथा हारादि सुन्दर आभूषण पहनाए। सबने अपने सिर पर सिन्दूर लगाया। उन सबके सभी अंग सिंदूर के समान देदीप्यमान हो रहे थे। वे सब चन्दन अगर आदि से सुशोभित बड़ी चित्रित लग रही थी। ऐसा मालूम होता था मानो कि वे नए रूप से अवतरित हुई हैं। उन सबसे घिरी हुई पदमावनी ऐसी शोभायमान हो रही थी मानो कि कमल के साथ कोकावेली खिली हुई हो या चाँद के साथ तराईयाँ उगी हुई हो। सखियाँ पदमावती से कहती है हे पदमावती! तझे और तेरे पति को धन्य है जिनके कारण हम सबको सौभाग्य प्राप्त हुआ है। १२ आभरण और १६ शृंगारो से सुसज्जित होकर तू ऐसी सुन्दर लगती है कि सुन्दर चन्द्रमा भी तेरे सामने नही आ सकता अर्थात् तेरी समता नही कर सकता फिर चन्द्रमा कलङ्कयुक्त है और कभी पूर्ण नहीं बना रहता है किन्तु तू निष्कलक है। तेरी समता और कोई दूसरा नही कर सकता है।

इस प्रकार किसी ने बीन ली, किसी ने नाद और मृदग लिए, सब ने मिलजुल कर खूब आनन्द मनाया और एक साथ कूदकर खूब क्रीडाएँ की।

टिप्पणी—रातें……सेंदूरा—यहाँ पर कवि ने स्वत संभवी वस्तु वर्णन से वस्तुव्यंग्य किया है। कवि की व्यजना है कि वे सब सखियाँ यौवन के सौन्दर्य और अनुराग से परिपूर्ण थी।

तोहि ……उजियारा—यहाँ प्रतीप अलंकार है।
शशि……दूजा—व्यतिरेक अलकार है।

पदमावति कह सुनहु, सहेली। हौ सो कँवल, तुम कुमुदिनि बेली।।
कलस मानिहौ तेहि दिन आई। पूजा चलहु चढ़ावहि जाई।।
मँझ पदमावति कर जो बेवानू। जनु परभात परै लखि भानू।।
आस-पास बाजत चौढोला। दुंदुभि, झाँझ, तूर, डप, ढोला।।
एक सग सब सोंधे-भरी। देव-दुवार उतरि भइ खरी।।
अपने हाथ देव नहवावा। कलस सहस इक घिरित भरावा।।
पीता मँडप अगर औ चन्दन। देव भरा अरगज-औ चन्दन।।

कै प्रनाम आगे भई, विनय कीन्हि बहु भाँति ।
रानी कहा चलहु घर, सखीं ! होति है राति ।।४।।

[इस अवतरण में पदमावती सखियों से पूजा चढ़ाने के लिए मंडप में जाने का प्रस्ताव रख रही है ।]

पदमावती सखियो से कह रही है, "हे सहेलियो ! सुनो, मैं कमल हूँ और तुम कुमुदिनी के समान हो । मैं उस दिन कलश मानकर आई थी इसलिए सब मिलकर पूजा चढ़ाने चलो । (सबने प्रस्थान किया) सबके बीच में पदमावती का विमान था । वह ऐसी शोभायमान हो रही थी जैसे प्रभात मे सूर्य शोभायमान होता है । पालकी के चारों ओर दुँदुभी, झाँझ, तूर, डरू और ढोल आदि बाजे बज रहे थे । सुरभि से भरी हुई वे सब सुन्दरियाँ जाकर देवद्वार पर उतर पड़ी । उन्होने अपने हाथ से देवता को स्नान कराया और एक सहस्र कलश घी से भराए गए । मडप अगर और चन्दन से लीपा गया । देवता अरगज और चन्दन से परिपूर्ण हो गए ।

देवता को प्रणाम करके सामने खडी हुई और बहुत प्रकार से विनय की । रानी ने कहा हे सखियो ! घर चलो, बड़ी देर हो रही है ।

टिप्पणी—हौं······बेलि—यहाँ पर लक्षण-लक्षणा से पदमावती और उसकी सखियो का पारस्परिक सौन्दर्यभाव एव पदमावती का सबसे अधिक सुन्दर होना लक्षित किया गया है ।

भइ निसि, धनि जस ससि परगसी । राजै देखि भूमि फिर बसी ।।
भइ कटकई सरद-ससि आवा । फेरि गगन रवि चाहै छावा ।।
सुनि चनि भौह-धनुक फिरि फेरा । काम कटाछन्ह कोरहि हेरा ।।
जानहु नाहि पैज, पिय ! खाँचौ । पिता सपथ हौ आज न बाँचौ ।।
कालिह न होइ रही महि रामा । आजु करहु रावन सग्राम ।।
सेन सिगार महूँ है सजा । गज-गति चाल, अँचल गति ध्वजा ।।
नैन समुद औ खड़ग नासिका । सरवरि जूझ को मो सहुँ टिका ।।
हौ रानी पदमावति, मै जीता रस भोग ।
तू सरवरि करु तासौ, जो जोगी तोहि जोग ।।५।।

[इस अवतरण मे पदमावती के रात्रि मे पुन. शृंगार करने पर उदित होने वाले अभिनव सौन्दर्य की झाँकी प्रस्तुत की गई है ।]

रात्री हुई और वह स्त्री चन्द्रमा के समान प्रकाशित हो उठी । राजा ने देखा कि पृथ्वी फिर शोभायमान हो रही है । आकाश को सूर्य फिर छूना चाहता है । फिर उस बाला ने भौ का धनुष घुमाया और काम कटाक्षो से धनुष को टंकोरती हुई देखने

लगी। हे प्रियतम ! मैं नही जानती कि तुम्हारी क्या प्रतिज्ञा है। मैंने अपने पिता जी की शपथ खा ली है कि आज मै युद्ध में पराङ्मुख होकर नहीं जाऊँगी। कल की तरह आज नही होगा कि रमणी को पराजित कर दिया था। हे रमणकर्त्ता ! आज तुम मुझसे रति युद्ध करो तो जानू। मैंने भी आज शृंगार की सेना सजाई है। जिसमे गज की गति है और अंचल की ध्वजा है। नेत्र समुद्र के समान है और नासिका ही खडग है। युद्ध मे मेरी समता करके टिकने वाला कौन है ? मै रानी पदमावती हूँ। मैंने सब रस भोग जीत कर अपने वस मे कर लिए है। ऐ जोगी, तू उससे बराबरी कर जो तेरे जैसी योगिनी हो।

टिप्पणी—राज······वसी—यहाँ पर अर्थान्तर संक्रमित वाच्यध्वनि है। कवि की व्यजना है कि पदमावती के शृंगार करने से पृथ्वी पर नई शोभा फिर से अवतरित हुई।

फेरि······छावा—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार से वस्तु व्यंजना है। कवि यह व्यजित करना चाहता है कि रतनसेन रूपी सूर्य वासना रूपी (सभोग) गगन मे बड़े ओज के साथ पदमावती से भोग करना चाहता है।

जानहु······नाहिं पैज—कवि की व्यंजना है कि तुम चाहे कल के युद्ध से थक गए हो और जिसके कारण आज रति-युद्ध मे प्रवृत्त होना नही चाहते हो। किन्तु मैंने तो पिता जी की शपथ खा ली है कि मै रति-युद्ध से पराङ्मुख नही होऊँगी। यहाँ पर वक्तृ वैशिष्ट्य व्यग्य है।

रहो मही······रामा—कवि की व्यंजना है कि रमणी प्रथम समागम के लज्जा, सकोच और भय से रति-युद्ध मे पूर्ण रूप से प्रवृत्त नही हुई थी अतः पराजित हो गई थी। यह व्यजना अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि से की गई है।

सेन······टिका—रूपक अलकार है।

हौं रानी······पदमावती—यहाँ पर पदमावती में रूढि वैचित्र्य वक्रता है।

विशेष—(क) यहाँ पर प्रणयमान के अन्तर्गत 'बिब्बोक' एवं 'धैर्य' भाव प्रदर्शन किया गया है। बिब्बोक वहाँ होता है जहाँ नायक या नायिका अतिगर्व के कारण अभिलषित वस्तुओ का भी निरादर करते हैं। 'धैर्य' अयत्नज अलकार है। आत्मश्लाघा से युक्त अचचल मनोवृत्ति को धैर्य कहते है। यहाँ पर कवि ने रतिप्रिया प्रौढा नायिका का चित्र खीचा है।

(ख) यहाँ पर कवि ने रतिरण सज्जा का अच्छा चित्र खीचा है।

हौ अस जोगि जान सब कोऊ। बीर सिगार जिते मै दोऊ॥
उहाँ सामुहे रिपु दल माहाँ। इहाँ त काम-कटक तुम्ह पाहाँ॥
उहाँ त हय चढ़ि कै दल मंडौ। इहाँ त अधर अमिअ-रस खडौ॥
उहाँ त खड़ग नरिदहि मारौ। इहाँ त बिरह तुम्हार सँघारौ॥
उहाँ त गज पेलौ होइ केहरि। इवाँ त कामिनि करिसि हहेहरि॥

उहाँ त लूसौ कटक खँधारू। इहाँ त जितौ तुम्हार सिगारू ।।
उहाँ त कुम्भस्थल गज नावौ। इहाँ त कुच कलसन्ह कर लावौ ।।
परा बीचु धरहरिया पेम राज कँ टेक।
मानहि भोग छहूँ रितु मिलि दूनौ होइ एक ।।६।।

[इस अवतरण में रतनसेन ने पदमावती की चुनौती का प्रत्युत्तर दिया है।]

मै ऐसा जोगी हूँ कि मैने वीर और शृंगार दोनो को एक साथ जीत लिया है। इस बात से सब परिचित है। वहाँ पर तो शत्रुओ के दल मे साम्य रहता था। यहाँ पर जो तुम्हारे पास काम की सेना है उसके सामने हूँ। वहाँ क्रुद्ध होकर मै शत्रुओं के समूह का मर्दन करता था और यहाँ मै तुम्हारे अमृत रस के लिए अधरो का खण्डन करूँगा। वहाँ पर मै तलवार से शत्रुओ को मारता था और यहाँ मै तुम्हारे विरह का संहार करूँगा। वहाँ सिंह बनकर हाथियो पर झपटता था यहाँ काम मे कामिनी के हृदय या कुचों का मर्दन करूँगा। वहाँ कटक और स्कधावार का नाश करता था और यहाँ तुम्हारे शृंगार को जीतूंगा। वहाँ हाथियो के गंडस्थल को झुकाता था यहाँ पर कुच कलशो पर हाथ चलाऊँगा।

प्रेम की टेक लेकर राजा बिचवनियो की तरह वीर और शृंगार के बीच मे पडा हुआ था। दोनो मिलकर एक बने हुए छहो ऋतुओ मे सुखोपभोग कर रहे थे।

टिप्पणी—वीर ...... सिगार—यहाँ पर उपादान लक्षण से वीर रस और शृंगार रस का अर्थ लिया गया है।

प्रथम बसंत नवल ऋतु आई। सुऋतु चैत बैसाख सोहाई ।।
चन्दन चीर पहिरि धनि अंगा। सेंदुर दीन्ह बिहँसि भरि मगा ।।
कुसुम हार औ परिमल बासू। मलयागिरि छिरिका कविलासू ।।
सौर सुपेती फूलन डासी। धनि औ कंत मिले सुखबासी ।।
पिउ सँजोग धनि जोबन बारी। भौंर पुहुप सँग करहि धमारी ।।
होइ फाग भलि चाँचरि जोरी। विरह जराइ दीन्ह जस होरी ।।
धनि ससि सरिस, तपै पिय सूरू। नखत सिगार होहि सब चूरू ।।
जिन्ह घर कंता ऋतु भली, आव बसंत जो नित्त।
सुख भरि आवहि देवहरै, दुख न जानौ कित्त ।।७।।

[इस अवतरण मे कवि ने वसन्त ऋतु कालीन सुखोपभोगो का वर्णन किया है।]

सर्वप्रथम नवल वसंत ऋतु आई। यह सुन्दर ऋतु चैत और बैसाख मे रहती है। उस रमणी ने चन्दन नामक वस्त्र की साड़ी पहनकर माँग मे सिन्दूर भरा। पुष्प-

हार पहन कर परिमल की सुरभि लगाई और धवल गृह के सातवें खण्ड के अपने विलासगृह में मलयगिरि का चन्दन छिड़का और फूलों से शैया तैयार की। सुखवासी मे अर्थात् शयनागार मे दोनों का मिलन हुआ। उधर उस बाला की यौवनरूपी वाटिका से प्रिय का सयोग हुआ अर्थात् पति ने उस बाला के यौवन को प्राप्त किया। इधर भौंरे फूलो के साथ उछल-कूद करने लगे। फाग और चांचर के खेल होने लगे। बाला ने विरह को होली की तरह भस्म कर दिया। बाला चाँद की तरह शीतल थी और प्रिय सूर्य के सदृश तप रहा था। सूर्य के समीप आने से शशि के नक्षत्र रूपी शृंगार चूर-चूर हो गए। कहते है कि जिनके घर मे पति रहते है उन्ही के गृह में सुन्दर वसन्त ऋतु रहती है। वे देवगृह मे आकर सुखी होते है। उन्हे कभी दु.ख का अनुभव नही होता है।

टिप्पणी—चन्दन··· ·चीर—एक प्रकार का बहुत मूल्यवान और सुन्दर कपड़ा।

परिमल—कई सुगन्धियों की मिली हुई सुगन्ध को परिमल कहते है।

कविलासू—सतखण्डे पर स्थित राजा-रानी का विलासगृह।

सौर सुपेती—मोटे कपड़े की रूई भर कर बनाई गई रजाई।

सुखवासी—विलासगृह का वह स्थान जहाँ सुखशैय्या बिछी रहती है।

चाँचरि—एक प्रकार का खेल। इसमे स्त्री-पुरुष हाथ में रंगीन डंडे लेकर उन्हे बजाते हुए खेलते है।

विशेष—(क) इस अवतरण मे वासक सज्जा का स्वरूप चित्रित किया गया है।

(ख) इस अवतरण में कवि द्वारा 'पुष्पास्तरण' नामक कला का वर्णन किया गया है।

'विच्छित्ति' नामक स्वभावज अलंकार का वर्णन किया गया है। कान्ति को बढाने वाली अल्पवेश रचना को विच्छित्ति कहते हैं।

ऋतु ग्रीष्म कै तपनि न तहाँ। जेठ असाढ़ कन्त घर जहाँ॥
पहिरि सुरंग चीर धनि झीना। परिमल मेद रहा तन भीना॥
पदमावती तन सिअर सुबासा। नैहर राज, कन्त-घर पासा॥
औ बड़ जूड़ तहाँ सोवनारा। अगर पोति, सुख तने ओहारा॥
सेज बिछावन सौर सुपेती। भोग बिलास कहिंर सुख सेंती॥
अधर तमोर कपुर भिमसेना। चन्दन चरचि लाव तन बेना॥
भा अनन्द सिघल सब कहूँ। भागवन्त कहँ सुख ऋतु छहूँ॥
दारिउँ दाख लेहि रस, आम सदाफर डार।
हरियर तन सुअटा कर जो अस चाखनहार॥८॥

[इस अवतरण में कवि ने ग्रीष्मकालीन विलास का वर्णन किया है ।]

ग्रीष्म ऋतु मे वहाँ गर्मी नही रहती जहाँ जेठ-आषाढ मे पति रहता है । उस बाला ने सुन्दर रग की महीन साड़ी पहनी । परिमल और मेद से उसका शरीर सुरभित हो रहा था । पदमावती का शरीर सुगन्धित और सुवासित था । नैहर के राज्य में उसे पति का सुहाग प्राप्त था । जहाँ शयनागार था वहाँ बड़ी शीतलता थी । अगर से सुवासित करके पर्दे लगाए गए थे । सौर सुपेती का सुन्दर बिछावन बिछाया गया था । वहाँ वह सुखपूर्वक घोर विलास करते थे । उनके अधरो मे ताम्बूल था और भीमसेनी कपूर था जिससे उनके होठ लाल थे । वह शरीर में रोजाना चन्दन लगाकर खस लगाती थी । सिंहल मे सब जगह आनन्द छा गया । वहाँ के भाग्यशाली छहों ऋतुओ का सुख भोगते थे ।

वे अनार और अगूर का रस लेते थे । वे आम और सहकार खाकर विलास करते थे । इस प्रकार के फलो को खाने वालो का शरीर तोते के समान हरा और ताजा रहता है ।

टिप्पणी—कपूर भिमसेना—कपूर की ६ किस्में बताई जाती हैं जिनमे सर्वश्रेष्ठ भीमसेनी कपूर माना जाता है ।

ओहारा—पर्दे ।

हरियरतन······चाखनहार—यहाँ पर सारूप्य निबन्धना अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है ।

ऋतु पावस बरसै पिउ पावा । सावन भादौं अधिक सोहावा ।।
कोकिल बैन पाँति बग छूटी । धनि निसरी जनु बीर बहूटी ।।
चमकै बिज्जु बरिस जल सोना । दादर मोर सबद सुठि लोना ।।
रंगराती पिय, सँग निसि जागै । गरजै चमकि चौकि कँठ लागै ।।
सीतल बुँद ऊँच चौबारा । हरियर सब देखिअ संसारा ।।
मलै समीर बास, सुख बासी । बेइलि फूल सेज सुख डासी ।।
हरियर भुम्मि कुसुँभी चोला । औ पिय संगम रचा हिंडोला ।।
पौन झरक्के हिय हरख लागै सियरि बतास ।
धनि जानै यह पौनु है पौनु सो अपनी आस ।।६।।

[इस अवतरण मे पावस ऋतुकालीन विलास का वर्णन किया गया है ।]

पावस ऋतु मे यदि बाला के पास पति हो तो उसे सावन और भादो के महीने बड़े प्रिय लगते है । पद्मावती ने मनमानी ऋतु प्राप्त की । आकाश और पृथ्वी सब बड़े सुहावने लग रहे थे । उस समय कोयल की बोली सुनाई पड़ती थी और बगुलों की पक्तियाँ मेघो मे फैली हुई थी । सुन्दरियाँ बीर बहूटी की तरह बाहर निकलती हुई शोभायमान हो रही थी । बिजली चमक रही थी और सोने जैसा जल

बरस रहा था। दादुर और मोरों का शब्द मधुर प्रतीत होता था। पति के संग रस मे सराबोर बाला रात भर जगती थी और मेघो के चमक कर गरजने से चौक कर पति से कण्ठालिगन कर लेती थी। ऊँचे चौबारे पर शीतल बूंदे पड रही थी। सारा ससार हरा-भरा मालूम पड रहा था। भूमि पर हरियाली छाई हुई थी और बाला ने कुसुम्भी रग की साड़ी पहन रखी थी और पति के साथ उसने हिंडोला सजा रखा था।

शीतल वायु के झोको से मन में हर्ष उत्पन्न होता था और स्त्री यह समझती थी कि पवन सुरभि ला रहा है और पवन वास्तव मे स्त्री के पास सुरभि लेने पहुँच रहा था।

टिप्पणी—बरसै जलसोना—यहाँ पर लक्ष्योपमा अलंकार से वस्तुव्यग्य है। संयोग काल मे वर्षा की बूंद कितनी सुहावनी लगती है इस बात को व्यजित करने के लिए ही लक्ष्योपमा का प्रयोग किया गया है।

विशेष—सयोगकालीन उद्दीपन का बड़ा सुन्दर चित्र खीचा गया है।

आइ सरद ऋतु हो अधिक पियारी। आसिन कातिक ऋतु अजियाली॥
पदमावति भइ पूनिउँ कला। चौदसि चाँद उई सिहला॥
सोरह कला सिगार बनावा। नखत भरा सूरुज ससि पावा॥
भा निरमल सब धरति अकासू। सेज सँवारि कीन्ह फुल-बासू॥
सेत बिछावन औ उजियारी। हँसि-हँसि मिलहि पुरुष औ नारी॥
सोन-फूल भइ पुहुमी फूली। पिय धनि सौ, धनि पिय सौ भूली॥
चख अजन देइ खँजन देखावा। होइ सारस जोरी रस पावा॥
एहि ऋतु कन्ता पास जेहि, सुख तेहि के हिय माँह।
धनि हँसि लागै पिउ गरै, धनि-गर पिउ कै बाँह॥१०॥

[इस अवतरण मे कवि ने शरद्कालीन विलास सुख का वर्णन किया है।]

अत्यन्त प्यारी शरद् ऋतु आई। नए क्वार और कार्तिक की उजियाली फैल गई। पदमावती पूनो की कला के समान शोभायमान हो उठी। ऐसा मालूम हुआ कि सिंहल में चौदस का चाँद उदित हुआ है। उसने सोलहो कलाओ जैसे सोलह शृगार सजाए। ऐसा मालूम हुआ कि सूरज को नक्षत्रो से सुशोभित चाँद मिल गया हो। सफेद बिछावन था और ऊपर से उस पर हँस-हँस कर दोनो पति-पत्नी सम्भोग कर रहे थे। ऐसा जान पड़ता था कि पृथ्वी सोने के फूलो से फूली हुई है। पति पत्नी मे और पत्नी पति मे मगन थे। अजन लगाने से उसके नेत्र खजन जैसे लग रहे थे और वे सारस जोड़ी बनकर एक दूसरे का रस ले रहे थे।

इस ऋतु मे वही स्त्री सुखी रहती है जिसके घर पर पति रहते है। स्त्री पति के गले मे हँसकर बाँह डालकर मिल रही है और पति भी गले मे बाँह डाले है।

टिप्पणी—नव उजियारी—यहाँ पर विशेषण वैचित्र्य वक्रता है।

पदमावति······कला—यहाँ पर लक्ष्योपमा से पदमावती का अतिशय रूप सौन्दर्य व्यजित किया गया है। यहाँ पर कवि प्रौढोक्तिसिद्ध अलंकार से वस्तु-व्यंजना है।

चौदसि······सिहला—यहाँ पर चौदसि चाँद मे रूपकातिशयोक्ति है और रूपकातिशयोक्ति से उत्प्रेक्षा व्यग्य है।

सोरह कला····· पावा—यहाँ रूपक अलंकार है। चन्द्रमा की सोलह कलाएँ सोलह शृगारो से उपमित की गई है।

सूरज ससि······पावा—रूपकातिशयोक्ति है।

सोन फूल······फूली—यहाँ पर अत्यन्त तिरष्कृत वाच्यध्वनि है। कवि की व्यजना है कि पृथ्वी पर सर्वत्र सुख का साम्राज्य छाया हुआ था।

ऋतु हेमंत सँग पिएउ पियाला। अगहन पूस सीत सुख काला॥
धनि औ पिउमहँ सीउ सोहागा। दुहुँन्ह अंग एकै मिलि लागा॥
मन सौंमन, तन सौ तन गहा। हिय सौ हिय, बिचहार न रहा॥
जानहु चन्दन लागेउ अगा। चन्दन रहै न पावै संगा॥
भोग करहि सुख राजा रानी। उन्ह लेखे सब सिस्टि जुड़ानी॥
जूझ दुवो जोबन सौ लागा। बिच हुँत सीउ जीउ लेइ भागा॥
दुइघट मिलि एकै होइ जाही। ऐसे मिलहि, तबहूँ न अघाही॥
हँसा केलि करहि जिमि? खूँदहि कुरलहि दोउ।
सीउ पुकारि कै पार भा, जस चकईक बिछोउ॥११॥

[इस अवतरण मे हेमत ऋतु कालीन विलास का वर्णन किया गया है।]

हेमत ऋतु मे दोनो प्याला पीकर अगहन और पूस के शीतकाल मे शीतलता पति-पत्नी के बीच सुहागे का काम कर रही थी। दोनो के शरीर मिले हुए थे। इस प्रकार उनके मन-मन से, तन-तन से और हृदय-हृदय से मिले हुए थे। बीच मे कोई बाधक नही था। दोनो राजा-रानी भोग कर रहे थे। उनकी दृष्टि मे सारी सृष्टि शीतल हो रही थी। वे एक-दूसरे के यौवन से जूझ रहे थे। दोनो के बीच मे जो शीत स्थित था वह अपने प्राण लेकर भाग गया। उन दोनो के शरीर मिलकर एक हो गए थे किन्तु फिर भी उनका मन नही अघा रहा था।

जैसे सरोवर मे हसो की जोड़ी क्रीडा करती है उसी प्रकार दोनो उछल-कूद कर कुरला कर रहे थे। प्रियतमा मे जो शीत था वह उसके पास से भागकर अलग खडा होकर इस प्रकार पुकार रहा था जैसे कोई चकवा चकवी के विछोह मे पुकारता है।

टिप्पणी—धनि······लागा—यहाँ पर रूपक अलंकार से तादात्म्य भाव के पूर्णत्व की व्यंजना की गई है।

बिच······भागा—यहाँ पर मानवीकरण अलंकार है।

हँसा······बिछोउ—उपमा अलकार है।

आइ सिसिर ऋतु, तहाँ न सीऊ। जहाँ माघ फागुन घर पीऊ॥
सौर सुपेती मन्दिर राती। दगल चीर पहिरहि बहु भाँती॥
घर-घर सिघल होइ सुख जोजू। रहा न कतहुँ दुःख कर खोजू॥
जहँ धनि पुरुष सीउ नहि लागा। जानहुँ काग देखि सर भागा॥
जाइ इन्द्र सौं कीन्ह पुकारा। हौं पदमावती देस निसारा॥
एहि ऋतु सदा संग-मह सेवा। अब दरसन ते भोर बिछोवा॥
अब हँसि के ससि सूरहि भेटा। रहा जो सीउ बीच सो भेटा॥
भएउ इन्द्र कर आयसु, बड़ सताव यह सोइ।
कबहुँ काहु के पार भइ, कबहुँ काहु के होइ॥१२॥

[इस अवतरण मे शिशिर-ऋतु के विलास का वर्णन किया गया है।]

शिशिर ऋतु आई लेकिन वहाँ पर शीतलता नही थी। जब माघ फागुन के शीत के समय मे पति-पत्नी साथ होते है तब शीतलता नही रहती है। पति-पत्नी रात दिन रजाई मे छिपे रहते है। बहुत प्रकार के दगले (अंगरखे) और चीर पहनते हैं। सिघल मे घर-घर सुखोपभोग हो रहा है। खोज करने पर भी वहाँ कही दुख दिखाई नही पडता है। जहाँ स्त्री और पुरुष होते है वहाँ शीतलता नही रहती है। वहाँ से शीत ऐसे भागता है जैसे कउआ बाण देखकर भागता है। शीत ने इन्द्र से जाकर शिकायत की कि पदमावती ने मुझे देश निकाला दे दिया है। इस ऋतु मे मैं सदैव उसके पास सोता था किन्तु इस बार तो उसके दर्शन भी दुर्लभ हो गए है। अब तो शशिरूपी पदमावती सूर्यरूपी रतनसेन से हँस-हँसकर भेट कर रही है। शीतलता को अपने बीच से मिटा दिया है।

इस पर इन्द्र ने कहा कि यह शीत पदमावती को बहुत सताता था। कभी-कभी किसी बात का प्रभाव होता है और कभी किसी बात का यह तो समय की बात है कभी कोई जीतता है कभी कोई।

टिप्पणी—दगल······अगरखा।

शशिसूरहि भेटा—रूपकातिशयोक्ति अलकार से वस्तुव्यग्य है। कवि रतनसेन से भेट करके पदमावती को लेशमात्र भी शीतलता नही सताती थी।

नागमती वियोग-खण्ड

नागमती चितउर-पथहेरा। पिउ जो गए पुनि कीन्ह न फेरा ।।
नागर काहु नारि वस परा। तेइ मोर पिउ मौसौं हरा ।।
सुआ काल होइ लेइगा पीऊ। पिउ नहि जात, जात बरु जीऊ ।।
भएउ नरायन बावँन करा। राज करत राजा बालि छरा ।।
करन पास लीन्हेउ कै छंदू। बिप्र रूप धरि भिलमिल इंदू ।।
मानत भोग गोपिचन्द भोगी। लेइ अपसवा जलधर जोगी ।।
लेइगा कृस्नहि गरुड़ अलोपी। कठिन बिछोह, जियहिं किमि गोपी ?।।
सारस जोरि कौन हरि, मारि बियाधा लीन्ह ?।।
भुरि-भुरि पींजर हौ भई, विरह-काल मोहि दीन्ह ।।१।।

[इस अवतरण मे कवि ने नागमती की वियोगकालीन चिन्ता का वर्णन किया है।]

नागमती चित्तौड मे पति का मार्ग देखती रही किन्तु पति ऐसे गए कि फिर लौटे ही नही। ऐसा लगता है कि रसिक पति किसी स्त्री के जाल मे फँस गए है। उसने मेरे पति को मुझसे छीन लिया है। तोता काल बनकर मेरे पति को ले गया है। कितना अच्छा होता जो मेरे पति न जाते और प्राण चले जाते। नारायण ने बलि को वावन रूप धर के छला था। उसी भगवान ने इन्द्र का रूप धारण करके छल करके पाश और कवच ले लिए। गोपीचन्द राजा भोग कर रहा था कि जलन्धर जोगी लेकर भाग गया। गरुड कृष्ण को चुपचाप लेकर भाग गया। फिर विचारी गोपियाँ कृष्ण की अनुपस्थिति मे कैसे जीती।

न मालूम किसने सारस जोडी मे से एक का हरण कर लिया है। मै सूख-सूख कर पजर मात्र रह गई हूँ। विरहरूपी काल मेरे भाग मे पड़ा है।

टिप्पणी······**नागर**—चतुर या रसिक नायक।

करन······**इन्दू**—इस पक्ति के बहुत से पाठान्तर मिलते है किन्तु सबसे अधिक उपयुक्त पाठ शुक्ल जी का ही है। अन्तर कथा है कि कर्ण की सम्पूर्ण शक्ति उसके कवच और कुंडलो मे थी। अर्जुन कवच और कुण्डलो के कारण कर्ण को जीत नही सकते थे। भगवान् कृष्ण उन्हे इन्द्र के पास ले गए तो इन्द्र ने कर्ण से

ब्राह्मण याचक का रूप धारण कर उससे कवच और कुंडल मांग लिए जिससे इन्द्र-पुत्र अर्जुन सूर्य-पुत्र कर्ण को पराजित करने मे सफल हुए ।

मानत······जोगी—गोपीचन्द पजाब के राजा माणिकचन्द्र के पुत्र थे । उनकी माता का नाम मैनावती था । उनकी प्रेरणा से जलंधर योगी ने उनको योगी बना लिया था । जलधर योगी मत्स्येन्द्र नाथ के गुरु भाई थे ।

लेइगा······गोपी—इसका पाठान्तर है—

"लै कान्हहि गा अकरूर अलोपी ।"

अर्थ की दृष्टि से यह पाठ उपयुक्त प्रतीत होता है । इसक. अर्थ है कि कृष्ण को अक्रूर लेकर अलोप हो गए थे ।

सारस······दीन्ह—इसका पाठान्तर है जोकि डा० अग्रवाल ने दिया है—

"सारस जोरी किमि हरी-मारि गएउ किन खग्गि ।
झुरि-झुरि पीजरि धनि भई बिरह कै लागी अग्नि ॥"

उस स्थान मे अर्थ होगा कि सारस की जोड़ी मे से एक को हर कर क्यों ले गया । जब हरण करना ही था तो सारसनी को ले जाता । विरह की ऐसी आग लगी कि बाला सूख-सूख कर पजर हो गई । इस दोहे मे सारूप्य निबंधना अप्रस्तुत प्रशसा अलंकार है ।

विशेष—(क) इस अवतरण मे विरहमूलक चिन्ता, गुणकथन—नामक अवस्थाओ की व्यजना की गई है ।

(ख) इस अवतरण मे प्रवास विरह के अन्तर्गत ईर्ष्या हेतुक विरह का चित्रण किया गया है ।

(ग) नायिका प्रोषित पतिका है ।

(घ) इस अवतरण मे असूया, श्रम, नामक संचारी व्यजित हुए है ।

(ङ) यहाँ पर कवि ने शरीर पर पडे हुए विरह के प्रभाव का निर्देशन दिया है ।

(च) इस अवतरण से लेकर नागमती का सम्पूर्ण विरह प्रवासमूलक विरह के अन्तर्गत आएगा ।

पिउ वियोग-अस-बाउर जीऊ । पपिहा निति बोलै "पिउ पिऊ" ॥
अधिक काम दाधै सो रामा । हरि लेइ सुवा-गएउ-पिउ नामा ॥
बिरह बान तास लाग न डोली । रकत पसीज, भीजि गइ चोली ॥
सूखा हिया, हार भा भारी । हर हर प्रान तजहि सब नारी ॥
खन एक आब पेट महँ ! साँसा । खनहि जाइ जिउ, लेइ निरासा ॥
पवन डोलावहि सीचहि चोला—। पहर एक समुझहि मुख बोला ॥
प्रान पयान होत को राखा ? । को सुनाव पीतम कै भाखा ? ॥

आहि जो मारै विरह कै, आगि उठै तेहि लागि।
हंस जो रहा सरीर महँ, पाँख-जरा, गा भागि ।।२।।

[इस अवतरण मे कवि ने नागमती की वियोगजनित विह्वलता और उद्विग्नता का वर्णन किया है ।]

नागमती कहती है कि पति के वियोग मे मेरा मन बावला हो रहा है । प्राण रूपी पपीहा पी-पी बोल रहा है । उस स्त्री को काम बहुत जला रहा था । तोता प्रियतम के नाम से उस स्त्री के प्राणो को ही हर ले गया है । विरह का बाण ऐसा लगा कि वह डोल भी न सकी । रक्त के पसीने से चोली भीग गई । हृदय सूख गया और हार बोझिल मालूम पड़ने लगा । और सब नारियाँ काँपकाँप कर अपने प्राण छोड़ने लगी । क्षण भर तो साँस पेट मे आती थी और दूसरे क्षण निकल जाती थी जिससे सबको निराशा होने लगती थी । लोग हवा कर रहे थे और शरीर पर जल सिंचन कर रहे थे । एक पहर बाद वह बाला होश मे आई और बोली "निकलते हुए प्राणो की रक्षा कौन कर सकता है । प्रियतम की भाषा कौन सुनाए ।"

जब उसके मुख से विरह की आह निकलती है तो उससे ज्वाला जल उठती है । शरीर मे जो हस था उसके पंख जलने लगे और वह उड़ने को हो गया ।

टिप्पणी—पिय वियोग अस बाउर जीउ—यहाँ पर उन्माद नामक विरहावस्था व्यंग्य है ।

पपीहा नित बोले पिउपिऊ—यहाँ पर प्रलाप नामक विरहावस्था व्यग्य है ।

विरह बान तस लागि न डोली—यहाँ पर विरह की जड़ता नामक अवस्था व्यंग्य है ।

रक्त पसीज भीज गई चोली—यहाँ पर स्वेद नामक सात्विक व्यग्य है ।

सूखा......भारी—यहाँ पर हार मे शब्दशक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है । कवि यह व्यजित करना चाहता है कि नायिका विरह से युद्ध करते-करते पराजित हो गई है ।

हर हर प्राण तजै सब नारी—यहाँ पर नारी मे शब्दशक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है । कवि की व्यजना है कि विरह से पराजित होकर नायिका के प्राण धीरे-धीरे नाडियो से निकल रहे थे । अर्थात् विरह की दशम अवस्था समीप थी ।

पवन .....बोला—इसमे विरह की व्याधि नामक अवस्था—व्यजित की गई है । अत. स्वत सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यग्य है ।

प्राण पयान होत को राखा—यहाँ पर विरह की मृत्यु नामक अवस्था व्यजित की है ।

आई····· लागि—यहाँ पर चौथी विभावना अलकार है ।

हँस······भागि—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति से वस्तु व्यंग्य है । कवि की

व्यजना है कि नायिका के प्राण निकले जा रहे थे और विरह की दशम अवस्था समीप थी।

विशेष—यहाँ पर कवि ने उद्वेग, प्रलाप, व्याधि आदि विरह दशाएँ वर्णित की हैं। स्वेद और स्तम्भ नामक सात्विक भाव भी व्यग्य है।

पाट महादेइ ! हिय न हारू। समुझि जीउ, चित चेतु सँभारू ॥
भौर कँवल सँग होइ मेरावा। सँवरि नेह मालति पहँ आवा ॥
पपिहै स्वाती सौ जस प्रीती। टेकु पियास, वाँधु मन थीती ॥
धरतिहि जैस गगन सौ नेहा। पलटि आव वरषा ऋतु मेहा ॥
पुनि वसंत ऋतु आव नवेली। सो रस, सो मधुकर, सो वेली ॥
जिनि अस जीव करसि तू वारी। यह तरिवर पुनि उठिहि सँवारी ॥
दिन दस विनु जल सूखि विधंसा। पुनि सोइ सरवर, सोइ हंसा ॥
मिलहि जो विछुरे साजन, अंकम भेटि गहंत ॥
तपनि मृगसिरा जे सहैं, ते अद्रा पलुहंत ॥ ३॥

[इस अवतरण मे सखियाँ विरहिणी नागमती को समझा रही है।]

वे कहती है कि "हे पटरानी तुम हृदय मे खिन्न न होओ। अपने प्राणो की रक्षा के विचार से अपने चित्त को संभाल लो। भौंरे रूपी रत्नसेन और कमल (पदमावती) का मिलन अवश्य होगा किन्तु मालती (नागमती) का स्मरण कर वह पुन. लौटेगा।

पपीहे को जिस प्रकार स्वाँति से प्रेम होता है वह उसी की प्यास की टेक लिए रहता है उसी प्रकार तू भी अपने मन को प्रियतम मे लगा। जैसे पृथ्वी को आकाश से प्रेम होता है और आकाश उलट कर वर्षा ऋतु मे जल वनकर उतर आता है उसी प्रकार तुम्हारा पति भी फिर से लौटेगा। यदि तुम्हारी टेक उसमे वनी रही तो मिलन अवश्य ही होगा। हे नवेली, वसत ऋतु पुन. आयेगी और वही रस विलास होगा। वही भौरा होगा और वही लता होगी। हे वाले ! तू अपना मन ऐसा छोटा मत कर। यह शरीर रूपी तरुवर फिर सँवर उठेगा। दस दिन के लिए तालाव सूखकर नष्ट हो जाता है और फिर वही सरोवर होता है और वही हँस होते है।

विछुडे हुए प्रियतम जव मिलते है तव गोद मे लेकर आलिगन करते है। जो मृगशिरा नक्षत्र मे होने वाली तपन को सहते हैं वे ही आर्द्रा नक्षत्र मे होने वाली तपन से पल्लवित हो उठते है। (व्यजना है कि जो विरह की ज्वाला सहते है वे ही सयोग सुख भी प्राप्त करते है।)

टिप्पणी—भौर······आवा—यहाँ पर सारूप्य निवंधना अप्रस्तुत प्रशसा अलकार है।

सो······वेनी—यहाँ पर 'सो' मे सर्वत्र अर्थान्तिर-सक्रमित-वाच्य ध्वनि है। कवि की व्यजना है कि जैसे पहले अत्यधिक रसोपभोग होता था उसी प्रकार अव फिर होगा।

यह तरिवर—यहाँ पर संवृत्तिवक्रता और रूपकातिशयोक्ति है। संवृत्तिवक्रता इसलिए है कि "यह" मे नागमती की सुन्दरता का भी संकेत सन्निहित किया गया है। और तरिवर-शरीर उपमेय के लिए उपमान मात्र है।

दिन······हँसा—यहाँ पर सादृष्य निबधना अप्रस्तुत प्रशसा अलंकार है।

तपनि······पलुहंत—यहाँ पर प्रतिवस्तूपमा अलंकार है।

विशेष—(क) यहाँ प्रोपितपतिका नायिका के प्रति सखियों का आश्वासन है।

चढ़ा असाढ़, गगन घन गाजा। साजा बिरह दुंद दल बाजा ॥
धूम, साम, धोरे घन धाए। सेत धजा बग-पाँति देखाए ॥
खड़ग-बीजु चमकै चहुं ओरा। बुंद-बान बरसहि घन घोरा ॥
ओनई घटा आइ चहुं फेरी। कंत ! उबार मदन हौ घेरी ॥
दादुर मोर कोकिला पीऊ। गिरै बीजु, घट रहै न जीऊ ॥
पुष्य नखत सिर ऊपर आवा। हौ बिनु नाह, मंदिर को छावा ? ॥
अद्रा लाग, लागि भुइँ लेई। मोहिं बिनु पिउ को आदर देई ॥
जिन्ह घर कंता ते सुखी, तिन्ह गारौ औ गर्व।
कंत पियारा बाहिरै, हम सुख भूला सर्व ॥४॥

[इस अवतरण मे नागमती के वर्षाकालीन विरहोद्दीपन का चित्र खीचा है।]

आषाढ़ आते ही आकाश मे मेघ गर्जने लगे। विरह ने द्वंद्व युद्ध के लिए अपनी सेना सजा ली। घूमिल, श्यामल और सफेद बादल उमड़ पड़े। बगुलो की पक्ति उनमे सफेद ध्वजा सी दिखाई पड रही थी। तलवार रूपी बिजली चारो ओर चमक रही थी। बूंद रूपी बाण घनघोर रूप से बरस रहे थे। घनघोर घटाएँ चारो ओर से घिर रही थी। हे पति ! मेरी रक्षा करो मुझे काम ने घेर रखा है। दादुर मोर और कोकिल तथा पपीहे बोल रहे हैं। उनकी बोली बिजली के समान कटु प्रतीत होती हैं। उसे सहन न करने के कारण प्राण शरीर से निकलना ही चाहते हैं। पुष्य नक्षत्र मेरे ऊपर आ गया है किन्तु मेरे पति मेरे पास नही है इसलिए मेरे छप्पर को कौन छायेगा। आर्द्रा नक्षत्र लग गया है। बादल पृथ्वी तक उमड रहे हैं। ऐसे समय मे हमे पति के बिना और कौन आदर दे सकता है।

जिनके घर मे पति है वे सुखी हैं, वे ही गौरवशाली हैं और उन्ही को गर्व करने का अधिकार है मेरे पति बाहर हैं इसलिए सारे सुख भूल गए है।

टिप्पणी—चढ़ा····· गाजा—यहाँ पर असंगति अलंकार है।

अद्रा······लेई—इसमे "लागि" के स्थान पर बीज शब्द मिलता है। हमारी समझ में यह शब्द अधिक उपयुक्त है। क्योकि लागि का अर्थ बहुत स्पष्ट नही है।

हौं......छावा—इस पक्ति मे जायसी यह भूल गए है कि नागमती का विरह एक रानी का विरह है। उन्होने एक भारतीय साधारण ग्रामीण के हृदय की अभिव्यक्ति की है। साधारणीकरण के लिए यह आवश्यक भी था।

विशेष—(क) यहाँ उद्वेग, प्रलाप, जडता व्याधि आदि काम दशाएँ है।

(ख) बारह मासा की परम्परा का निर्वाह चित्रावली और मधु-मालती मे भी किया गया है किन्तु तीनो बारह मासो का प्रारम्भ भिन्न-भिन्न महीनो से किया गया है। चित्रावली मे बारह मासा चैत से प्रारम्भ किया गया है मधु मालती मे श्री गणेश श्रावण मास से किया है। किन्तु हमारे जायसी ने आषाढ के महीने से किया है। कालिदास ने भी विरह वर्णन आषाढ़ के महीने से ही किया है। हमारी समझ मे आषाढ से बारह मासे का प्रारम्भ करना अधिक उपयुक्त रहता है क्योकि वर्षा ऋतु तभी से प्रारम्भ होती है। विरहोद्दीपन वर्षा मे सबसे अधिक होता है। बारह मासा की परम्परा अपभ्रश काव्य से चली है। नेमिनाथ चतुष्पादिका मे बारह मासा का सर्वप्रथम उल्लेख है।

(ग) विश्वनाथ ने अपने साहित्य दर्पण मे प्राचीन दश विरह दशाओ के अतिरिक्त कुछ अन्य काम दशाएँ वर्णित की है जैसे—(१) अगो मे असौष्ठव (२) सन्ताप (३) पाण्डुता (४) दुर्बलता (५) अरुचि (३) अधीरता (७) तन्मयता (८) मूर्च्छा (९) उन्माद (१०) मरण। प्रस्तुत अवतरण मे अधीरता का वर्णन किया गया है।

सावन बरस मेह अति पानी। भरनि परी, हौ विरह झुरानी॥
लाग पुनर बसु पीउ न देखा। भइ बाउरि, कहँ कंत सरेखा॥
रक्त के आँसु परहि भुइँ टूटी। रेगि चली जस बीर बहूटी॥
सखिन्ह रचा पीउ सग हिडोला। हरियारि भूमि, कुसुभी चोला॥
हिय हिडोल अस डोलै मोरा। बिरह झुलाइ देह झकझोरा॥
बाट असूझ अथाह गँभीरी। जिउ बाउर, भा फिरै भँभीरी॥
जग जल बूड़ जहाँ लगि ताकी। मोरि नाव खेवक बिनु थाकी॥
परबस समुद्र अगम बिच, बीहड़ घन बन ढाँख।
किमि कै भेटों कंत तुम्ह ? ना मोहि पाँव न पाँख॥५॥

[इस अवतरण मे कवि ने नागमती की सावन मास की विरह व्यथा की व्यजना की है।]

सावन के महीने मे अत्यधिक वर्षा हो रही है। चारो ओर पानी भर रहा है किन्तु मैं विरहिणी सूख रही हूँ। पुनर्वसु नक्षत्र लग गया है किन्तु पति के दर्शन नही हो रहे है। बावली हो गई किन्तु पता नही कि चतुर पति कहाँ है। रक्त के आँसू पृथ्वी पर गिर रहे है, ऐसा लगता है कि वीर बहूटियाँ रेंग चली हो। सखियो ने

अपने-अपने पतियों के साथ हिंडोला सजाया है। पृथ्वी चारो ओर से हरी-भरी है और कुसुम्भी रग के वस्त्र भी पहने हुए है। मेरा हृदय हिंडोले के सदृश कम्पायमान हो रहा है और विरह हिडोले के सदृश उसे झकझोर रहा है। मार्ग बिल्कुल अधेरा असीम और बडा बीहड है। जी बावला होकर भंभीरी की तरह घूम रहा है। जहाँ तक दृष्टि जाती है वहाँ तक ससार जल मे डूबा हुआ दिखाई पडता है। किन्तु मेरी नाव खेवक के विना रुकी पडी है।

पर्वत, अगम समुद्र और बीहड़ घने ढाक के वन बीच मे है जो दोनो के मिलन में बाधक है। मेरे पैरो मे भी शक्ति नही है और न पंख ही है जो मै प्रियतम से मिल सकूं।

भरणि······झुरानी—यहाँ पर विशेपोक्ति और विरोधाभास का संकर है।

लागि······देखा—यहाँ पर चिता नामक विरहावस्था व्यजित की गई है। अतः स्वत सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंग्य है।

रक्त······टूटी—यहाँ पर लक्ष्योपमा से विरहाधिक्य व्यंजित किया गया है। अत. कवि प्रौढोक्तिसिद्ध अलकार से वस्तु व्यग्य है।

परवत······पंख—यहाँ पर रहस्य भावना का आरोप किया गया है अर्थात् स्वत. मभवी वस्तु से वस्तु व्यंग्य है।

विशेष—(क) यहाँ उन्माद, व्याधि, उद्वेग नामक विरह दशाएँ है।

(ख) यहाँ विश्वनाथ द्वारा निर्दिष्ट दुर्बलता नामक दशा हे।

(ग) यहाँ अश्रु नामक सात्विक भाव है।

(घ) यहाँ रक्त के आँसू वर्णन करके रसाभास उत्पन्न कर दिया है।

(ङ.) आचार्य भोज ने शृगार के उद्दीपन की सामग्री को पाँच भागो मे विभक्त किया है।

(१) ऋतु
(२) वाह्य प्रसाधन
(३) प्राकृतिक दृश्य
(४) काल
(५) चौंसठ कलाएँ

इस अवतरण मे तथा अन्य अवतरणो मे ऋतु विरहोद्दीपन के रूप मे चित्रित की गई है।

भा भादों दूसर अति भारी। कैसे भरौ रैनि अँधियारी ॥
मँदिर सून पिउ अनतै बसा। सेज नागिनी फिरि फिरि डसा ॥
रहौ अकेलि गहे एक पाटी। नैन पसारि मरौ हिय फाटी ॥
चमक बीजु, घन गरजि तरासा। बिरह काल होई जीउ गरासा ॥
बरसै मघा झकोरी झकोरि। भोर दुइ नैन चुवै जस ओरी ॥

घनि सूखै भरे भादौ माहाँ। अवहु न आरगन्हि सीचेन्हि नाहा ॥
पुरवा लाग भूमि जल पूरी। आक जवास भई तस झूरी ॥
थल जल भरे अपूर सब, धरति गगन मिलि एक।
धनि जोवन अवगाह महँ दे बूड़त, पिउ ! टेक ॥६॥

[इस अवतरण मे भादो मे अनुभव होने वाली नागमती की विरह व्यथाओ का वर्णन किया गया है।]

अवेरी रात कैसे सहन करूँ, सहन नही होती। घर सूना हो रहा है। पति कही दूसरी जगह दूसरे स्थान पर वस गया है। शैय्या रूपी नागिनी वार-वार डसना चाहती है। एक पट्टी पकडे मैं प्रतीक्षा मे अकेली पड़ी रहती हूँ। प्रतीक्षा मे नेत्र फैलाए-फैलाए हृदय फटा जा रहा है। विजली चमकती है और घन गरज कर त्रसित करते हैं। विरह काल वनकर हमारे प्राणो का हनन करना चाहता है। मघा नक्षत्र झकझोर झकझोर कर वरस रहा है। मेरे दोनो नयन ओरी (छपरी) के समान चू रहे हैं किन्तु फिर भी पति न आए और न सीचा ही पूर्वा, नक्षत्र लगने पर पृथ्वी जल से परिपूर्ण हो गई, मैं आक और जवासा की तरह सूखकर काँटा हो गई।

जल-थल सव आप्लावित है। पृथ्वी और आकाश मिलकर सव एक हो गए है। स्त्री को यौवन रूपी अगाध जल में डूवने से प्रियतम वचाइए।

टिप्पणी—सेज नागिनि फिरि फिरि डसा—यहाँ पर रूपक अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। शैया की असह्यता और कटुता ही यहाँ पर व्यजित की गई है।

मोरे······ओरी—यहाँ पर उपमा अलंकार से अश्रु की प्रचुरता और वेदना की तीव्रता व्यजित की गई है। यहाँ पर कवि प्रौढ़ोक्तिसिद्ध अलंकार से वस्तु व्यग्य है।

धनि······माह—यहाँ पर विशेपोक्ति और विरोधाभास का सकर है।

विशेष—(क) यहाँ पर कवि ने विरहोद्दीपन सामग्री का अच्छा वर्णन किया है।

(१) यहाँ पर अभिलापा, चिन्ता, उद्वेग है।

(२) यहाँ पर विश्वनाथ के द्वितीय वर्गीकरण के अनुसार दुर्वलता तन्मयता नामक विरहावस्था है।

(३) यहाँ पर अश्रु नामक सात्विक अवस्था है।

(४) फारसी काव्य शास्त्र के अनुसार यहाँ पर चश्मेतर और वेकरारी की स्थिति का वर्णन है।

लाग कुवार, नीर जग घटा। अबहूँ आउ, कंत ! तन लटा ॥
तोहि देखे, पिउ पलुहै कया। उतरा चितु, बहुरि करु मया ॥
चित्रा मित्र मीन कर आवा। पपिहा पीउ पुकारत पावा ॥
उआ अगस्त, हस्ति-घन गाजा। तुरय पलानि चढ़े रन राजा ॥

स्वाति-बूंद चातक मुख परे। समुद सीप मोती सब भरे।।
सरवर सँवरि हँस चलि आए। सारस कुलरहिं, खजन देखाए ।।
भा परगास, कांस बन फूले। कंत न फिरे, बिदेसहि भूले।।
बिरह-हस्ति तन सालै, धाय करै चित चूर।
वेगि आइ, पिउ ! बाजहु, गाजहु होइ सदूर ।।७।।

[इस अवतरण मे क्वार मे अनुभव होने वाली नागमती की विरह व्यथा का वर्णन किया गया है।]

क्वार का प्रारम्भ होते ही ससार मे जल कम होने लगा। हे प्रियतम ! तुम अब भी आ जाओ हमारा शरीर बिल्कुल ही लट गया है। तुम्हे देखकर ही यह काया पल्लवित होगी। चित्त मेरा दुखी है, अब भी आने की कृपा करो। अथवा उत्तरा से चित्रा—नक्षत्रो के बीच मे अवश्य ही आ जाओ। चित्रा का मित्र चन्द्रमा मीन राशि मे आ गया है। और पपीहा ने पी-पी करते अपना प्रिय पा लिया है। अगस्त्य नक्षत्र उदित हुआ और हस्ति नक्षत्र के बादल गर्जे। राजाओ ने घोडो पर जीन कसकर युद्ध की तैयारी कर दी। चातक के मुख मे स्वाति की बूदे पड़ गई। समुद्र की सीपियाँ मोतियो से भर गईं। सरोवरो का स्मरण कर हँस आ गये। सारस कुरला करने लगे और खंजन दिखाई पड़ने लगे। चारो ओर प्रकाश छा गया और वन मे कास फूल उठे किन्तु पति घर को नही लौटे। वह विदेश मे ही भटक गए है।

विरह रूपी हाथी शरीर को कष्ट दे रहा है। वह चित्त पर चोट करके उसे घायल किए दे रहा है। हे प्रिय ! तुम शीघ्र ही आकर विरह रूपी हाथी के लिए सिंह बनकर गर्जो।

टिप्पणी—उतरा······चीत—यहाँ पर शब्दशक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है। कवि की व्यजना है कि चित्रा और उत्तरा नक्षत्र आ गए जो कि शरद ऋतु के सूचक है किन्तु पति फिर भी नही आए।

चित्रामित्र—चित्रा का मित्र चन्द्रमा माना जाता है। जब वह मीन नक्षत्र मे आ जाता है तो क्वार की पूर्णिमा समीप समझी जाती है। यहाँ पर स्वत.सभवी वस्तु से वस्तु व्यजना है। नायिका की व्यंजना है कि चित्रा का प्रेमी चन्द्रमा तो अपनी मीन राशि पा अपने घर मे आ गया किन्तु मैं इतनी अभागी हूँ कि मेरा पति आज भी नही आया।

स्वॉति······परे दिखाए—यहाँ पर स्वत सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंजना है। नायिका यह व्यजित करना चाहती है कि प्रकृति के पदार्थो को तो मनोवाछित प्राप्ति हो रही है किन्तु मुझ अभागिनी की इच्छा फिर भी पूर्ण नही हुई है।

विरह······सदूर—यहाँ रूपक अलंकार है।

विशेष—(क) यहाँ पर चिन्ता और स्मृति नामक विरह दशाएँ व्यंजित की है।

(ख) यहाँ पर विश्वनाथ के द्वितीय वर्ग* के अन्तर्गत परिगणित अधीरता नामक अवस्था है।

*साहित्य दर्पण मे विश्वनाथ ने पहले तो १० काम दशाएँ वर्णित की है। उनके नाम है : अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, उद्वेग, गुणकथन, उन्माद, प्रलाप, जड़ता, व्याधि, मरण।

इस प्रसग के आगे उन्होने कुछ विरह दशाएँ और वर्णित की है, जैसे (१) अगो मे असौष्ठव (२) सताप (३) पाण्डुता (४) दुर्वलता (५) अधीरता (६) अस्थिरता (७) तन्मयता (८) उन्माद (९) मूर्च्छा (१०) मरण।

(ग) फारसी काव्य शास्त्र के अनुसार यहाँ 'वेसवर' नामक अवस्था है।

कातिक सरद-चद उजियारी। जग सीतल, हौ बिरहै जारी॥
चौदह करा चाँद परगासा। जनहुं जरै सब धरति अकासा॥
तन मन सेज करै अगि दाहू। सब कहँ चंद, भएउ मोहि राहू॥
चहूं खड लागै अँधियारा। जौ घर नाहीं कंत पियारा॥
अबहूं, निठुर! आउ एहिबारा। परव देवारी होइ संसारा॥
सखि झूमक गावै अँग मोरी। हौ झुरावँ विछुरी मोरि जोरी॥
जेहि घर पिउ सो मनोरथ पूजा। मो कहँ विरह, सवति-दुख दूजा॥
सखि मानै तिउहार सब, गाइ देवारी खेलि।
हौ का गावौ कंत बिनु, रही छार सिर मेलि॥८॥

[इस अवतरण मे कार्तिक मास मे होने वाली विरहानुभूति का वर्णन है।]

कार्तिक मे शरदकालीन चन्द्रमा की सर्वत्र-ज्योत्स्ना फैली रहती है। ससार शीतल हो रहा है किन्तु मै विरह से जल रही हूँ, चन्द्रमा चौदह कलाओ से प्रकाशित हो रहा है किन्तु मालूम ऐसा हो रहा है कि पृथ्वी और आकाश जल रहा है। तन मन और शैय्या ये सब अग्नि से जल रहे है। चन्द्रमा सबके लिए तो चन्द्रमा है किन्तु मेरे लिए राहु है। जब घर मे पति नही होते तो चारो ओर अँधकार दिखाई पड़ता है। हे निष्ठुर! तू अब भी आ जा। संसार मे दिवाली का पर्व मनाया जा रहा है। सखियाँ अंग मोड-मोड़कर झूमर गा रही है। मै सूख रही हूँ क्योकि मेरी जोडी विछुड रही है। जिसके घर मे पति होते है उसके सभी मनोरथ पूर्ण रहते है। मुझे एक दु ख विरह का है और दूसरा दु ख सौत का है।

सखियाँ सब गा कर और खेल कर दिवाली का त्यौहार मना रही है। मै पति विना क्या गाऊँ, सिर मे धूल डाले फिर रही हूँ।

टिप्पणी—जग शीतल हौं बिरहै जारी—विरोधाभास अलकार है।

रही छार सिर मेलि—यहाँ पर अर्थान्तरसक्रमित-वाच्यध्वनि है। कवि का

अभिप्राय है कि सारा शरीर दुखी, खिन्न और म्लान हो रहा है। नैराश्य और विरहाधिक्य का भाव ही यहाँ व्यंग्य है।

विशेष—(क) अन्य सूफी कवियो मे भी इस प्रकार वर्णन मिलते है। तुलना कीजिए—

> कातिक सरद सताई जारा, अभी बुन्द बरखै विष धारा।
> मोहि तन विरह अगिनि परचारा, सरद चाँद मोंहि सेज अगारा॥
> सरद रैन तेहि सीतल जेहि पिय कंठ निवास।
> सब कहै परब दिवारी मोहि कहँ भा बनवास॥
>
> —मंझन कृत मधु मालती से

(ख) यहाँ पर विश्वनाथ द्वारा वर्णित द्वितीय वर्ग की 'सन्ताप' नामक अवस्था है।

(ग) यहाँ पर उद्वेग नामक विरह अवस्था भी है।

> अगहन दिवस घटा, निसि बाढ़ी। दूभर रैनि, जाइ किमि गाढी ?॥
> अब यहि विरह दिवस भा राती। जरौ विरह जस दीपक-बाती॥
> काँपै हिया जनावै सीऊ। तौ पै जाइ होइ सँग पीऊ॥
> घर घर चीर रचे सब काहू। मोर रूप-रंग लेइगा नाहू॥
> पलटि न बहुरा गा जो बिछोई। अबहुं फिरै-फिरै रँग सोई॥
> बज्र-अगिनि विरहिनि हिय जारा। सुलुगि-सुलुगि दगधै होइ छारा॥
> यह दुख-दगध न जानै कंतू। जोबन-जनम करै भसमंतू॥
> पिउ सौं कहेहु सँदेसड़ा, हे भौंरा! हे काग।
> सो धनि बिरहै जरि मुई, तेहिक धुवाँ हम्ह लाग॥९॥

[इस अवतरण मे कवि ने अगहन के महीने मे होने वाली नागमती की विरहानुभूति का वर्णन किया है।]

अगहन का महीना आ गया, दिन घट गया और रात्रि बढ़ गई। रात्रि असह्य हो चली। उसे काटना कठिन हो जाता है। अब इस विरह में दिन भी रात की तरह दुःखदायी हो गया है। मैं विरह मे ऐसी जल रही हूँ जैसी दिये की बत्ती जलती है। शीत हृदय को कंपाता है और त्रसित करता है। पति के संग होने पर ही वह दूर हो सकता है। घर-घर सबने सुन्दर वस्त्र पहने हैं किन्तु मेरा रंगरूप तो मेरा पति ले गया है। वह विछोही जब से [illegible] लौटा नहीं है। यदि वह अब भी आ जाए तो मेरा रंगरूप लौट आएगा। [illegible] हृदय को जला रखा है। व[illegible] सुलग कर जलता है और छा[illegible] इस दुःख की ज्वाला [illegible] समझता। वह हमारे यौवन जन्म [illegible] है।

है भौंरा ! हे काग ! तुम पति से जाकर सदेश कहना कि तुम्हारी पत्नी विरह मे जलकर खाक हो गई है, उसी का धुँग्रा मुझसे लगा है जिससे कि हम भी अधिक काले है ।

टिप्पणी—जरौं विरह-जस दीपक बाती—यहाँ पर उपमा अलकार से वस्तु व्यग्य है । विरहाधिक्य की व्यजना की गई है ।

संदेशड़ा—यहाँ पर प्रत्यय वक्रता है ।

सो धनि विरह जरी मुई—यहाँ पर विरह की मृत्यु वाली अवस्था का वर्णन है ।

तेहिक धुंग्राँ मोहि लाग—यहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा अलंकार व्यग्य है । अतः यहाँ स्वत सभवी वस्तु से कवि प्रौढोक्ति सिद्ध अलंकार है ।

विशेष—(क) यहाँ पर कम्प नामक सात्विक अवस्था है ।

(ख) यहाँ पर मरण नामक विरह दशा है । यह स्मरण रखना चाहिए कि साहित्य मे मरण नामक अवस्था चित्रित नही की जाती । उसकी आशंका, अभिव्यक्ति या भूमिका मात्र वर्णित की जाती है ।

(घ) आचार्य भोज ने शृंगारोद्दीपन के अन्तर्गत (१) ऋतु (२) वाह्य प्रसाधन (३) प्राकृतिक दृश्य (४) काल (५) ६४ कलाएँ मानी है ।

प्रस्तुत अवतरण मे 'ऋतु' को और वाह्य प्रसाधन इन दोनो को विरहोद्दीपन के रूप मे चित्रित किया है ।

पूस जाड़ थर-थर तन काँपा । सुरुज जाइ लंका-दिसि चाँपा ।।
बिरह बाट दारुन भा सीऊ । कँपि-कँपि मरौ, लेइ हरि जीऊ ।।
कंत कहाँ लागौ ओहि हियरे । पंथ अपार, सूझ नहि नियरे ।।
सौर सपेती आवै जूड़ी । जानहु सेज-हिवंचल बूड़ी ।।
चकई निसि बिछुरै, दिन मिला । हौं दिन-राति बिरह कोकिला ।।
रैनि अकेली साथ नहि सखी । कैसे जियै बिछोही पखी ।।
बिरह सचान भएउ तन जाड़ा । जियत खाइ औ मुए न छाँड़ा ।।
रकत ढरा माँसू गरा, हाड़ भएउ सब सख ।
धनि सारस होइ ररिमुई, पीउ समेटहि पख ।।१०।।

[इस अवतरण मे पूस के महीने मे होने वाली नागमती की विरहानुभूति की व्यजना की गई है ।]

पूस के महीने मे जाडे से शरीर थर-थर काँप रहा है और सूरज दक्षिण दिशा मे चला गया है । विरह वढ गया है, शीत वडा भयानक हो गया है । मै काँप-काँपकर मरी जा रही हूँ । वह प्राणो का हरण कर लेगा, पति कहाँ है जो मैं उनके हृदय लग जाऊँ । अपार मार्ग पड़ा हुआ है और समीप मे कुछ दिखाई नही पड़ता है । रजाइयो

मे जाडा लगता है। ऐसा लगता है कि शैया हिम के आँचल मे डूब गई है। चकई रात को विछुडती है तो दिन मे तो मिल जाती है। किन्तु मै ऐसी हूँ जो न दिन मे मिल पाती हूँ और न रात्रि मे। रात्रि मे मेरे पास कोई सहेली भी नही रहती है। विछुडा हुआ पक्षी (प्राण) कैसे जीवित रहे। विरह रूपी वाज ने जाड़े मे शरीर पर आक्रमण कर रखा है। वह जीते जी खा जायेगा और मरने पर भी छोड़ेगा नही।

रक्त सब आँसू बनकर ढल गया है और माँस सब गल गया है तथा हड्डियाँ सब शख की तरह हो गई है। स्त्री सारस की तरह रटती हुई मर गई। पति अब आकर केवल पख समेटेगा।

टिप्पणी—लंकादिसि दक्षिण दिशा—यहाँ पर्यायोक्ति अलंकार है।

चकई-कोकिला—यहाँ व्यतिरेक अलंकार है।

रक्त……शंख—यहाँ पर विरह से नायिका के शरीर पर जो प्रतिक्रिया हुई है उसका वर्णन किया गया है।

विशेष—(क) यहाँ पर भी ऋतु को ही विरहोद्दीपन के रूप मे चित्रित किया गया है।

(ख) यहाँ पर 'मरण' की अवस्था का वर्णन किया गया है।

(ग) यहाँ विरहोद्दीपन के रूप मे 'सन्देश' का वर्णन किया गया है।

(घ) यहाँ पर अश्रु नामक सात्विक अवस्था है।

(ङ) फारसी काव्य शास्त्र के अनुसार 'चश्मेतर' की अवस्था है।

(च) विरह वर्णन पर यहाँ फारसी काव्य शास्त्र का प्रभाव है जिसके परिणाम-स्वरूप यहाँ पर रसाभास हो गया।

(छ) यहाँ पर 'दुर्वलता' नामक विश्वनाथ द्वारा वर्णित अवस्था वर्णित है।

लागेउ माघ, परै अब पाला। बिरहा काल भएउ जड़काला॥
पहल पहल तन रूई झाँपै। हहरि हहरि अधिकौ हिय काँपै॥
आइ सूर होइ तपु, रे नाहा। तोहि विनु जाड़ न छूटै माहा॥
एहि माह उपजै रसमूलू। तूं सो भौर मोर जोबल फूलू॥
नैन चुवहिं जस महवट नीरू। तोहि विनु अग लाग सर चीरू॥
टप टप बूंद परहिं जस ओला। विरह पवन होइ मारै झोला॥
केहि क सिगार, को पहिरु पटोरा?। गीउ न हार, रही होइ डोरा॥
तुम बिनु काँपै धनि हिया, तन तिन उर भा डोल
तेहि पर विरह-जराइ कै चहै उड़ावा झोल॥११॥

[इस अवतरण मे कवि ने माघ महीने मे अनुभव होने वाली विरह वेदना का वर्णन किया है।]

माघ का महीना लग गया है और पाला पडने लगा है। जाडे के समय मे विरह काल सा प्रतीत होता है। शरीर को जितना रुई के पहलो से ढका जाता है हृदय उतना ही कॉपता है। हे पति, तुम सूरज वनकर आकर तपो। माघ के महीने मे विना पनि के जाडा नही जाता है। इसी महीने मे उद्दाम काम उत्पन्न होता है! मेरे फूल जैसे शरीर के लिए तुम भौरा वनकर आ जाओ। नेत्रो से आँसू इस प्रकार वह रहे है जैसे महावट मे पानी वहता है। टपटप वूदे जो पडती है वे शीतलता के कारण ओले जैसी प्रतीत होती है। विरह पवन वनकर झकझोरता है। कौन शृगार करे और कौन सुन्दर वस्त्र पहने। गर्दन डोरा हो गई है, उसमे हार तक नही टिकता है।

तुम्हारे विना इस स्त्री का हृदय काँप रहा है और शरीर तिनके के सदृश उड रहा है। इस पर भी विरह उसे जलाकर क्षार वनाकर उड़ा देना चाहता है।

टिप्पणी—रसभूलू—यहाँ पर पर्यायोक्ति अलकार के सहारे इसका अर्थ कामोन्माद लिया गया है।

तू''' ''फूलू—स्वत संभवी वस्तु से वस्तु व्यंग्य है। नायिका यह व्यजित करना चाहती है कि नायिका पूर्ण यौवना है तथा काम से पीडित है अतएव पति को आकर उससे संभोग करके उसे तृप्त कर देना चाहिए।

टपटप''''''ओला—यहाँ पर कवि प्रौढोक्ति सिद्ध उपमा अलंकार से वस्तु व्यग्य है। जल की वूंदे जो माघ मास मे वरसती है वे अत्यधिक कटु, कठोर और असह्य होती है।

रही होई डोरा—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। गर्दन की अतिशय क्षीणता ही व्यग्य है।

तन विन उरभा डाल—यहाँ पर लक्ष्योपमा से वस्तु व्यंग्य है। शरीर की अतिशय क्षीणता ही यहाँ व्यग्य है।

विशेष—(क) यहाँ पर भी ऋतु को ही विरहोद्दीपन के रूप मे वर्णित किया गया है।

(ख) यहाँ पर अश्रु कम्प नामक सात्विक अवस्था है।

(ग) फारसी काव्य शास्त्र के अनुसार यहाँ पर 'चश्मेतर' की अवस्था है।

(घ) विश्वनाथ के द्वितीय वर्ग मे वर्णित अवस्थाओ मे से यहाँ दुर्वलता नामक अवस्था है।

फागुन पवन झकोरा वहा। चौगुन सीउ जाई नहि सहा ॥
तन जस पियर पात भा भोरा। तेहि पर बिरह देइ झकझोरा ॥
तरिवर झरहि झरहि जब ढाखा। भइ ओनंत फूलि फरि साखा ॥
करहि वनसपति हिये हुलासू। भो कहँ भा जग दून उदासू ॥

फागु करहिं सब चाँचरि जोरी । मोहि तन लाइ दीन्ह जस होरी ।।
जो पै पीउ जरस अस पावा । जरत-मरत मोहिं रोष न आवा ।।
राति-दिवस बस यह जिउ मोरे । लगौ निहोर कंत अब तोरे ।।
यह तन जारौ छार कै, कहौ कि 'पवन ! उड़ाव' ।
मकु तेहि मारग उड़ि परै कंत धरै जहँ पाव ।।१२।।

[इस अवतरण में फागुन महीने मे अनुभव होने वाली विरहानुभूति का वर्णन किया गया है ।]

फागुन का महीना आया और झकझोरने वाली तीव्र वायु बहने लगी जिससे कि शीत चौगुना अनुभव होने लगा । शीताधिक्य सहन नही होता है । शरीर पीले पत्ते के समान हो गया है, उस पर उसे विरह झकझोर रहा है । वृक्ष समूह और ढाक के वन झरते है । फूल और फलो की शाखाएँ पल्लवित हो उठी है और वनस्पतियाँ हृदय मे उल्लसित है । किन्तु मेरी वेदना दुगुनी हो गई है । सब चाँचर खेलते हुए फाग खेल रहे हैं । मेरे शरीर मे होली सी जल रही है । इस प्रकार जलते मरते हुए भी मुझे पति पा ले तो मुझे मरने मे भी क्रोध नही आयेगा । रात दिन मेरे मन मे यही है कि हे प्रियतम ! मैं तुम्हारे किसी प्रकार काम आ जाऊँ ।

नायिका की सबसे बडी कामना है कि वह इस शरीर को पति वियोग मे जलाकर राख बनादे और उस राख को उडाकर पवन ले जाए तथा उस मार्ग में गिरा दे जहाँ पर पति के पैर पड़ रहे हो ।

टिप्पणी—तन से······भोरा यहाँ पर स्वतः सभवी उपमा अलंकार से वस्तु व्यंग्य है । नायिका अपने शरीर की अत्यधिक क्षीणता ही व्यजित करना चाहती है ।

राति······तोरे—इसमे नायिका की अभिलापा नामक विरह दशा वर्णित की गई है ।

विशेष—(क) यहाँ पर विश्वनाथ की द्वितीय वर्ग की विरह अवस्थाओ मे से 'पाण्डुता' नामक अवस्था है ।

(ख) विरहजनित अभिलाषा का वडा मार्मिक रूप चित्रित किया गया । कवि ने ऐसा लगता है कि विरहिणी की अभिलापा साकार करके सामने रख दी है । आत्म-बलिदान की भावना ने उस अभिलाषा मे स्वर्ण सुगन्ध सयोग प्रगट कर दिया है । नूर मुहम्मद साहब ने इन्द्रावती में इसी प्रकार के भाव की मार्मिक व्यजना की है ।

माटी होऊँ छार होइ कबहु लेइ कोहार ।
गढ़ै पियाला लै अधर लावै कंत हमार ।।

—इन्द्रावती, पृ० ४८

चित्रावली मे अभिलाषा की ऐसी ही मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है—

अब तन होरी लायकर होय चहौं जरि छार।
चहु दिसि मारुत संग होइ ढूढौं प्रान अधार ॥

—चित्रावली, पृ० २४६

चैत वसंता होइ धमारी। मोहिं लेखे संसार उजारी ॥
पचम बिरह पंच सर मारै। रकत रोइ सगरौ बन ढारै ॥
बूड़ि उठे सब तरिवर पाता। भीजि मजीठ, टेसु बन राता ॥
बौरे आम फरै अब लागे। अबहुं आउ घर, कंत सभागे ॥
सहस भाव फूलीं बनसपती। मधुकर घूमहिं सँवरि मालती ॥
मोकहँ फूल भए सब काँटे। दिस्टि परत जस लागहिं चाँटे ॥
फरि जोबन भए नारँग साखा। सुआ बिरह अब जाइ न राखा ॥
घिरिनि पेखा होइ, पिउ ! आउ बेगि, परु टूटि।
नारि पराए हाथ है, तोहि बिनु पाव न छूटि ॥१३॥

[इस अवतरण मे चैत मे होने वाली नागमती की विरहानुभूति का वर्णन है।]

चैत मे वसत की धूम धाम है किन्तु मेरे लिए संसार उजाड है। कोयल पचम राग गाकर काम के पाँच बाण मारती है और रक्त के आँसू रोकर वन मे बहाती है। उन आँसुओ मे डूबकर वृक्षो के नए पत्ते ताम्रवर्ण के हो गए है। मजीठ भी उन्ही रक्त के आँसुओ मे भीगा हुआ है। वन मे टेसू उसी रंग से लाल है। बौरे हुए आम फलने लगे है। हे सभागे कत अब भी मेरा स्मरण करके घर आ जाओ। वनस्पतियाँ सहस्रो रूपो मे फूली हुई है। भौंरे मालती का स्मरण कर घूम रहे हैं। मुझे फूल काँटे जैसे लग रहे है, उन्हे देखते ही मेरे शरीर मे चाँटे से लगते हैं। नारंग वृक्ष की शाखाओ मे यौवन फल गया है। (शरीर लता नारगी के वृक्ष के समान है और दो कुच उसमे लगे हुए २ नारगी के फल है।)

हे प्रियतम गिरहबाज कबूतर जैसे आता है उसी प्रकार तुम भी आकर टूटो। यह स्त्री पराए वश मे है। तुम्हारे बिना उसके चगुल से छूट नही सकती है।

टिप्पणी—रक्त रोय सगरौं बन ढ़ारौं—यहाँ पर सबंधातिशयोक्ति अलंकार है।

बूड़ो······राता—यहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा व्यग्य है।

फटि······नारंग शाखा—यहाँ पर कवि प्रौढोक्तिसिद्ध रूपक अलंकार से उत्प्रेक्षा व्यंग्य है।

नारि······छूटि—यहाँ पर 'नारि' मे शब्द शक्ति उद्‌भव वस्तु ध्वनि है। कवि की व्यंजना है कि नायिका तुम्हारी होने से वियोग मे प्राण भी नही त्याग सकती। प्राण नाड़ी मे आ आकर रह जाते है।

विशेष—(क) इस अवतरण में 'ऋतु' और प्राकृतिक दृश्यो को विरहोद्दीपन के रूप मे चित्रित किया गया है।

(ख) यहाँ पर चिन्ता और स्मृति नामक विरह अवस्थाएँ व्यजित की गई है।

(ग) यहाँ पर 'चश्मेतर' नामक फारसी विरह अवस्था है।

(घ) यहाँ पर रसाभास हो गया है। वियोग शृंगार मे रक्त का उल्लेख इसका कारण है।

(ङ) यहाँ पर मरण नामक विरहावस्था की आशंका वर्णित है।

(च) यहाँ विरह वर्णन की व्यंजनात्मक शैली का ही अनुसरण किया गया है।

भा बैसाख तपनि अतिलागी। चोआ चीर चंदन भा आगी ॥
सूरुज जरत हिवं चल ताका। बिरह बजागि सौह रथ हाँका ॥
जरत बजागिनि करु, पिउ! छाहाँ। आइ बुझाउ, अँगारन्ह माहाँ ॥
तोहि दरसन होइ सीतल नारी। आइ आगि ते करू फुलवारी ॥
लागिउँ जरै, जरै जस भारू। फिरि फिरि भूंजेसि, तजिउँ न बारू ॥
सरवर हिया घटत निति जाई। टूक-टूक होइ कै बिहराई ॥
बिहरत हिया करहु, पिउ! टेका। दीठि-दवँगरा मेरवहु एका ॥
कवँल जो बिगसा मानसर बिनु जल गएउ सुखाइ ॥
अबहुँ बेलि फिरि पलुहै जौ पिउ सीचै आइ ॥१४॥

[इस अवतरण मे कवि ने वैसाख मे अनुभूत होने वाली विरह वेदना का वर्णन किया है।]

वैसाख का महीना आते ही तपन वहुत वढ गई है। चोआ, (इत्र) चन्दन और चीर ये सव अग्नि से लगने लगे है। सूरज ने जलते हुए हिमालय दिशा ग्रहण की है। विरह की वज्राग्नि ने अपना रथ हमारे सामने हाँक दिया है। विरह की वज्राग्नि जल रही है। हे प्रियतम! शीघ्र आकर उसे शीतल कर दो। मैं अंगारो से जल रही हूँ उन अंगारो को वुझा दो। तुम्हारे दर्शनो से यह नारी शीतल हो जायेगी, अतएव तू आकर जलती हुई मेरी जीवन वाटिका को हरी-भरी फुलवारी मे परिणत कर दे। मैं विरह मे ऐसे जल रही हूँ जैसे भाड मे चना जलता है। भाड की वालू उसे वार-वार जलाती है किन्तु वह वार-वार उसी मे गिरता है। मैं वार-वार तुम्हारे विरह मे जल रही हूँ किन्तु तुम्हारे ही प्रेम मे अनुरक्त हूँ। हृदय रूपी सरोवर नित्य घटता जाता है। वह टुकड़े-टुकड़े होकर विदीर्ण हो रहा है। हृदय विदीर्ण हो रहा है हे प्रियतम! आकर सहारा दो। अपने दृष्टि रूपी दवँगरे से उसे सजल कर दो।

मानसरोवर में जो कमल खिला था वह विना जल के सूख गया है। अव भी वह लता पल्लवित हो सकती है यदि प्रियतम उसे आकर सीचे।

टिप्पणी—सूरज······ताका—यहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा अलंकार है।

विरह······हाँका—यहाँ पर कवि प्रौढोक्तिसिद्ध वस्तु से वस्तु व्यंजना है। नायिका यह व्यजित करना चाहती है कि उसकी विरह वेदना और अधिक उद्दीप्त हो उठी है।

लागू······वारू—यहाँ पर उपमा अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। नायिका की एक-निष्ठता ही व्यंग्य है।

सरवर······विहराई—यहाँ रूपक अलकार से वस्तु व्यंग्य है। विरह वेदना की अतिशय तीव्रता ही कवि व्यंजित करना चाहता है।

कमल······आए—यहाँ पर सारूप्य निवन्धना अप्रस्तुत प्रशंसा अलकार है।

विशेष—(क) यहाँ पर विश्वनाथ द्वारा वर्णित द्वितीय वर्ग की 'सन्ताप' नामक अवस्था व्यजित है।

(ख) यहाँ पर मानवीकरण शैली से विरहोद्दीपन दिखाया गया है।

(ग) प्रकृति के साम्य द्वारा वेदना की मार्मिक विवृति हुई है।

(घ) जीवन के सामान्य व्यापारो के साम्य द्वारा वेदना की मार्मिकता व्यंजित की गई है।

(ङ) यहाँ पर 'दुर्वलता' नामक विरह अवस्था व्यग्य है।

तपै लागि अव जेठ-असाढी। मोहि पिउ विनु छाजनि भइ गाढी॥
तन तिन उर भा, झूरौ खरी। भइ बरखा, दुख आगरि जरी॥
बंध नाहि औ कंध न कोई। बात न आव कहौ का रोई?॥
साँठि नाठि, जग बात को पूछा?। बिनु जिउ फिरै भूँज तनु छूँछा॥
भई दुहेली टेक बिहूनी। थाँभ नाहिं उठि सकै न थूनी॥
बरसै मेह, चुवहि नैनाहा। छपर-छपर होइ रहि विनु नाहा॥
कोरौ कहाँ ठाट नव साजा? तुम बिनु कंत न छाजनि छाजा॥
अबहूँ मया-दिस्टि करि, नाह निठुर! घर आउ॥
मँदिर उजार होत है, नवकै आई बसाउ॥१५॥

[इस अवतरण मे कवि ने जेठ असाढ मे अनुभूत होने वाली विरह वेदना का वर्णन किया है।]

जेठ और असाढ तपने लगे है, मुझे पति के विना वे छाए हुए घर दु:खदायी हो गए है। शरीर तिनके के समान हो गया है और मै खडी सूख रही हूँ। वर्षा प्रारम्भ हो गई है। किन्तु मैं विरह के महान् दु:ख मे जल रही हूँ। ठाट बाँधने के लिए रस्सी भी नही है और कोई सहारा देने वाला भी नही है। कहते नही वनता क्या कहूँ।

ससार मे जब मूल नष्ट हो जाता है तो ससार में कोई बात नही पूछता है। बिना जीव के शरीर मूँज के सदृश शुष्क और जड़वत् हो जाता है। सहारे के बिना मैं बड़ी दुखी हो रही हूँ। थूनी के बिना भला छप्पर कैसे उठे। वर्षा हो रही है और नेत्र चू रहे है। बिना पति के सर्वत्र चारो ओर भरे हुए वर्षा के जल मे मै छप्पर-छप्पर करती घूम रही हूँ। अब मैं नए साज क्या सजाऊँ। तुम्हारे बिना हे पति! कोई छाजन अच्छी नही लगती है।

हे निष्ठुर पति! तू अब भी घर आकर दया दृष्टि कर दे। यह घर उजाड हो रहा है, तू अब भी आकर इसे बसा दे।

टिप्पणी—छाजनि—छाए हुए छप्पर इत्यादि को छाजन कहते है।

तन तिनउर भा—यहाँ लक्ष्योपमा से वस्तु व्यग्य है।

कवि की व्यजना है कि नायिका अत्यन्त दुर्बल हो गई है।

भई बरखा······जरी—विरोधाभास अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। विरह वेदना की अतिशयता ही व्यग्य है।

बंध······कोई—यहाँ पर वर्ण विन्यास वक्रता है।

बात न आव······रोई—यहाँ पर काकुवैशिष्ट्य व्यंग्य है। कवि दुःख की अतिशयता व्यजित कर रहा है :

गई······थूनी—यहाँ पर दृष्टान्त अलंकार है।

बरसै······नाहा—यहाँ पर असगत अलकार से वस्तु व्यंग्य है।

छपर······नाहा—कवि ने नायिका की उद्विग्नता और व्याकुलता व्यजित की है। वर्षा के कारण उसके घर मे सर्वत्र जल भरा हुआ है। वह घर की वस्तुओं को बचाने के लिए छप्पर-छप्पर करती पानी मे घूम रही है। यदि उसका पति घर मे होता तो उसे पृथ्वी पर पैर भी नही रखने देता। नौकर-चाकर पति की अनुपस्थिति मे कार्य नही करते है इसलिए वह पानी मे स्वय ही सब काम करती घूमती है। यहाँ पर स्वत.सभवी वस्तु से वस्तु व्यजना है।

विशेष—डा० अग्रवाल ने इस अवतरण का छप्पर परक अर्थ भी दिया है; वह यहाँ अविकल उद्धृत किया जा रहा है—'जब जेठ असाढ़ी तपने लगी है। मेरे लिए छाजन दु खदायी हो गई है। इसका तान या फैलाव सिमिट कर ढेर हो गया है। मैं उसके नीचे खडी सूखती हूँ। उसकी अर्गला निकल गई है, और द्वार खोलने वाले के सिर पर आ गिरती है। इसमे सेठे नही लगे। बत्ते का तो कहना ही क्या, डोरी के न रह जाने से मूँज की तानें छूछी हो गई है। बंद भी नही रहे और दीवार भी कोई नही है। घुडिया भी नही है। किस से रोकर व्यथा कहूँ। यह कमजोर छान अपने स्थान से सरक (ररि) टेक विहीन हो गई है। इसमे जो थंभ था वह नही रह गया। सहारे के लिए थूनी भी नही लग सकती। इसके ऊपर धुआँ निकलने को जो

घमाले या धूम नेत्र बने थे वे पानी बरसने पर अब घर मे ही टपकते हैं। हे कंत! तुम्हारे बिना अब छाजन छाह नही करती। पूरे बाँस (कोरे) कहाँ है जिससे छान का ठाट नया बनाया जाय। हे कत तुम्हारे बिना छाजन नही छाई जा सकती।

अब भी कृपा दृष्टि करो और विजन छोड़ो, घर मे आओ। यह राज मदिर उजाड़ हो रहा है।

—(डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के पदमावत से)

टिप्पणी—(१) छाजनि (क) छप्पर
(ख) एक रोग
(२) तन (क) तान या फैलाव
(ख) शरीर
(३) तिन उर (क) तृणो का ढेर
(ख) क्षीण
(४) विरह (क) विरह
(ख) अलग अलग हुई
(५) आगरि (क) अर्गला
(ख) अधिक
(६) सोठि (क) सेठे
(ख) पूजी

बात न आव (क) वत्ते नही मिलते है
(ख) मुँह से बात नही निकलती

जिय (क) डोरी
(ख) जी

दुहेली—डा० अग्रवाल के दुहेली के स्थान पर 'ररि दुबरि भई' अर्थ मे कोई मौलिक अन्तर नही पडता है।

(क) दूबरि
(ख) दु खी

टेक विहूनी— (क) सहारे के बिना
(ख) आश्रय के बिना

थाँव (क) खम्भा
(ख) पति रूपी स्तम्भ

थूनी (क) थूनी
(ख) स्त्री

नैन (क) धुँआरा (ख) नेत्र

कोरो कहाँ (क) नए बास
(ख) कौन कहाँ

ठाट नवसाजा	(क) नया टट्टर बनाएगा
	(ख) नए साज सजाएगा
छाजनी छाजा	(क) छाजनि नही छाई जा सकती
	(ख) शृंगार शोभा नही देता

विशेष—(क) यहाँ 'दुर्बलता' नामक अवस्था व्यंजित की गई है।

(ख) यहाँ पर 'चश्मेतर' नामक अवस्था व्यग्य है।

जेठ जरै जग, चलै लुवारा। उठहि बवंडर परहि अँगारा ॥
बिरह गाजि हनुवँत होइ जागा। लंका दाह करै तनु लागा ॥
चारिहु पवन झकोरै आगी। लंका दाहि पलंका लागी ॥
दहि भई साम नदी कालिदी। बिरह क आगि कठिन अति मदी॥
उठै आगि औ आवै आँधी। नैन न सूझ, मरौ दुख बाँधी ॥
अधजर भइउँ, माँ सुतनुसूखा। लागेउ बिरह काल होइ भूखा ॥
माँसु खाइ अब हाड़न्ह लागै। अबहुँ आउ, आवत सुनि भागै ॥
गिरि, समुद्र, ससि मेघ, रवि सहि न सकहि वह आगि।
मुहमद सती सराहिए, जरै जो अस पिउ लागि ॥१६॥

[इस अवतरण मे कवि ने जेठ मास मे विरह ज्वाला की नागमती की जैसी अनुभूति हुई उसकी व्यजना की है।]

जेठ मास तप रहा है, लूएँ चल रही है। बंवडर उठते है और अँगारे बरसते है। विरह हनुमान की तरह जगकर गर्ज उठा है। वह शरीर रूपी लका को जला रहा है। चारो ओर की हवाएँ विरहाग्नि को प्रज्वलित कर रही है। वह विरहाग्नि लंका (शरीर) को जलाकर पलग को जलाना चाहती है। उसी विरहाग्नि से जलकर कालिन्दी काली पड़ गई है। विरह की अग्नि वडी कठिन और मंद-मद जलने वाली होती है। अग्नि उठ रही है और आँधी आ रही है। नेत्रो से मुझे कुछ दिखाई नही पड़ रहा है। मैं विरह मे मरी जा रही हूँ। मैं अधजली हो गई हूँ और शरीर का सव मास सूख गया है। विरह भूखे काल की तरह लग गया है। वह मास को खाकर अब हड्डियो मे लगा हुआ है। हे प्रियतम ! तू अब भी आ जा, तेरा शुभागमन सुनकर यह भाग जायेगा।

प्रेम अग्नि की ज्वाला को गिरि, समुद्र, शशि, मेघ और रवि भी सहन नही कर पाते। महोम्मद कवि कहते है कि वह सती धन्य है जो प्रियतम के लिए ऐसी अग्नि मे जल रही है।

टिप्पणी—दही······कालिन्दी—यहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा अलंकार व्यंग्य है।

गिरी······लागि—यहाँ पर समासोक्ति अलंकार है और समासोक्ति अलंकार से रहस्य भावना की अभिव्यक्ति की गई है। 'वह' शब्द मे अर्थान्तर संक्रमित वाच्यध्वनि है। अग्नि की दिव्यता और विराट्ता ही यहाँ व्यग्य है।

विशेष—(क) यहाँ पर 'दुर्बलता' 'सताप' नामक अवस्थाएँ व्यंजित की गई है।

(ख) यहाँ पर 'ऋतु' को ही विरहोद्दीपन के रूप मे चित्रित किया गया है।

रोइ गँवाए बारह मासा। सहस सहस दुख एक एक साँसा॥
तिल तिल बरख बरख परि जाई। पहर पहर जुगजुग न सेराई॥
सो नहि आवै रूप मुरारी। जासौ पाव सोहाग सुनारी॥
साँझ भए झुरिझुरि पथ हेरा। कौनि सो घरी करै पिउ फेरा ?॥
दहि कोइला भइ कत सनेहा। तोला माँसु रही नहि देहा॥
रकत न रहा, बिरह तन गरा। रती रती होइ नैनन्ह ढरा॥
पाय लागि जोरै धनि हाथा। जारा नेह, जुड़ावहु नाथा॥
बरस दिवस धनि रोइ कै, हारि परी चित झँखि।
मानुष घर घर बूझि कै, बूझै निसरी पंखि॥१७॥

[इस अवतरण मे नागमती की विरहजनित वेदना का मार्मिक चित्रण किया गया है।]

नागमती ने रो रोकर बारह महीने काट दिए। उसकी एक-एक साँस मे सहस्रो दुखो की अनुभूति थी। तिलतिल समय वर्ष के समान बीत रहा था। एक पहर एक-एक युग के समान बीतता था। कृष्ण के समान सुन्दर उसका पति नही आ रहा है जिससे कि वह सुन्दर स्त्री अपना सौभाग्य प्राप्त कर सके। सध्या तक वह स्त्री मुर्झायी हुई बाट देखा करती है और सोचती है कि वह कौन सी घड़ी होगी जब उसका पति लौटेगा। पति के स्नेह मे जलकर वह कोयला हो गई है। उसके शरीर मे तोला भर मास भी नही रह गया है। रक्त भी नही रहा है। विरह मे तन गल गया है। नेत्रो से रक्त रत्ती-रत्ती वह गया है। वाला कहती है कि हे पति, मै तुम्हारे पैरो पडती हूँ, हाथ जोडती हूँ कि जलते हुए नेह को शान्त कर दो।

इस प्रकार एक वर्ष तक रोकर वह बाला अत्यन्त दुखी हो गई और झुँझला गई। वह घर-घर मनुष्यो से पूछ-पूछकर निराश होकर पक्षियो से पूछने निकल पडी।

टिप्पणी—सहस·· ··साँसा—यहाँ पर कवि प्रौढोक्तिसिद्ध अतिशयोक्ति अलकार से वस्तु व्यजना है। विरह वेदना की अतिशयता और प्रचुरता ही व्यंग्य है।

तिल ···· सिराई—यहाँ पर भी अतिशयोक्ति अलकार से वस्तु व्यंग्य है। विरहाधिक्य की ही व्यजना कवि को अभीष्ट है।

सो—इसमे सवृति वक्रता है। इसमे पति के अर्थ का संवरण है।

सुनारी—यहाँ उपसर्ग वक्रता है और श्लेष भी है।

=सुन्दर स्त्री

=सुनार की स्त्री

दही कोयला भई—यहाँ पर लक्ष्योपमा से वस्तु व्यंग्य है। विरहजन्य ज्वाला की अतिरेकता व्यंजित की गई है।

तोला……देहा—यहाँ पर अतिशयोक्ति अलंकार से वस्तु व्यग्य है। कवि नायिका की अतिशय दुर्बलता प्रकट करना चाहता है।

विशेष—(क) यहाँ चिन्ता, उद्वेग, अभिलाषा, विरह अवस्थाओ का चित्रण किया गया है।

(ख) साहित्य दर्पण मे वर्णित दूसरे वर्ग की विरह अवस्थाओ मे से यहाँ 'अंगो में असौष्ठव' नामक अवस्था है।

(ग) यहाँ 'अश्रु' या चश्मेतर नामक फारसी काव्य शास्त्र मे वर्णित विरह अवस्था वर्णित है।

भई पुछार, लीन्ह बनबासू। बैरिनि सवति दीन्ह चिलवाँसू॥
होइ खर बान बिरह तनु लागा। जौ पिउ आवै उड़हि तौ कागा॥
हारिल भई पंथ मैं सेवा। अब तहँ पठवौं कौन परेवा ?॥
धौरी पडुक कहु पिउ नाऊँ। जौ चित रोख न दूसर ठाँऊँ॥
जाहि बया होइ पिउ कँठ लवा। करै मेराव सोइ गौरवा॥
कोइल भई पुकारति रही। महरि पुकारै 'लेइ लेइ दही'॥
पड़े तिलोरी औ जल हंसा। हिरदय पैठि बिरह कटनंसा॥
जेहि पंखी के निअर होइ कहै बिरह कै बात।
सोई पंखी जाइ जरि, तरिवर होइ निपात ॥१८॥

[इस अवतरण मे नायिका की बाह्य जगत् मे पशु-पक्षियो के बीच अनुभूत होने वाली विरह वेदना का वर्णन किया है।]

पक्षिपरक अर्थ—नागमती कहती है कि मैने मोरनी वनकर प्रिय के लिए वनवास लिया किन्तु वैरिन सौत ने मेरे लिए फदा लगा दिया है। विरह का तीक्ष्ण बाण लगा हुआ है। हे काग! यदि पति आ रहे हो तो तू उड़ जा। मै मार्ग मे प्रतीक्षा करते-करते हारिल हो गई। अब मै वहाँ कौन पक्षी भेजूँ। हे धौरी! हे पंडुक! प्रिय का स्थान बताओ। यदि चितरोक पक्षी मिले तो दूसरे का नाम न लूँ। हे बया तू जाकर पति को ले आ। गोरैया वही है जो हमे अपने पति से मिला दे। मैं कोयल

बनी हुई पुकार रही हूँ। महर बनकर दही (जली) दही पुकार रही हूँ। पेड पर तिलोरी और जल हंस के समान व्याकुल हूँ। हृदय मे विरह का कठनंसा बैठा है।

जिस पक्षी के समीप होकर वह निकलती है और बात करती है वही पक्षी जल जाता है और वह वृक्ष भी गिर जाता है।

नागमतीपरक अर्थ—नागमती ने पूछने वाली बनकर बनवास लिया। किन्तु वैरिन सौत ने पक्षियो को फँसाने के लिए चिलवाँस लगा रखा है। (व्यजना है कि पक्षी भी सौत के चिलवाँस के डर से कही नही दिखाई पड़ते जिससे कि मैं पति के विषय मे पूछ लूं।) कउआ यदि किसी प्रकार दीखता भी है तो विरह तीक्ष्ण बाण बनकर उसे सताने लगता है इसलिए वह नही रुकता है। (यदि पति आवें तो फिर विरह नही रहेगा और विरह के बाण का भय भी नही रहेगा)। नागमती प्रतीक्षा करते-करते थक गई है। कोई ऐसा सदेशवाहक भी नही मिलता जिसको वह भेज सके क्योंकि सौतन के चिलवाँस के डर से कोई पक्षी उधर जाता ही नही है। सफेद और पीली पडी हुई मैं पति का नाम रटती हूँ। यदि चित्त मे क्रोध भी करूँ तो भी दूसरे का नाम नहीं ले सकती हूँ। मैं उसी को गौरवशाली समझूगी जो जाकर हमारे पति को बुलाकर लायेगा। मैं कोयल की तरह विरह मे काली पड गई हूँ और कुहूकुहू पुकारती रहती हूँ। कैसी विडम्बना है कि रानी यह कहकर पुकार रही है कि अरे ! मैं जली, अरे ! मैं जली। जब पेड पर तिलौरी पक्षी आता है तो हमारा जी जलने लगता है। हृदय मे नाश करने वाला विरह रूपी पक्षी बैठा हुआ है।

दोहे का अर्थ पूर्ववत् ही है।

विशेष—(क) इस अवतरण मे पुछार, हारिल, परेवा, गौरवा, पियकठलवा आदि पक्षी वाचक शब्दों में सर्वत्र श्लेष और मुद्रा अलकारों का चमत्कार है।

(ख) अन्य सूफी कवियो मे हमें इसी प्रकार के वर्णन मिलते हैं। तुलना करिए—

> महर जो प्रेम दह-दह रही, तिन दुःख सदा पुकारे दही।
> मोरो निपट प्रेम दुःख दाई, निसि दिन मेउ-मेऊ चिल्लाई।
> कोकिल विरह जरी भई कारी कुहू कुहू सब दिवस पुकारी। इत्यादि
>
> —नल दमन से

(ग) इस अवतरण मे विरह वर्णन की ऊहात्मक पद्धति का अनुसरण किया गया है।

(घ) यहाँ प्रलाप, व्याधि, अभिलाषा, चिन्ता आदि विरह दशाएँ व्यंग्य है।

(ङ) यहाँ विरहहेतुक विरह है।

कुहुकि कुहुकि जस कोइल रोई। रकत आँसु घुँघची बन बोई ॥
भइ करमुखी नैन तन राती। को सेराव ? बिरहा दुख ताती ॥
जहँ जहँ ठाढ़ि होइ बन बासी। तहँ तहँ होइ घुँघुची कै रासी ॥
बूँद बूँद महँ जानहुँ जीऊ। गुँजा गूँजि करै 'पिउ पिऊ' ॥
तेहि दुख भए परास निपाते। लोहू बूड़ि उठे होइ राते ॥
राते बिब भीजि तेहि लोहू। परवर पाक, फाट हिय गोहूँ ॥
देखौ जहाँ होइ सोइ राता। जहाँ सो रतन कहै को बाता ॥
नहि पावस ओहि देसरा, नहिं हेवंत बसंत।
ना कोकिल न पपीहरा, जेहि सुनि आवै कंत ॥१९॥

[इस अवतरण मे कवि ने नागमती के रुदन और विलाप का वर्णन किया है।]

नागमती कोयल के सदृश कुहुक-कुहुक कर रोई। रक्त के आँसुओ से मानो कि उसने घुँघचियाँ बो दी थी। उसका मुँह ऐसा लगता था कि मानो बुझकर काला हो गया है। पर नेत्र और शरीर लाल अगारे के सदृश दहक रहे थे। जो विरह दु.ख में जल रहा है उसे कौन शान्त कर सकता है। वन मे वह वनवासिनी जहाँ-जहाँ खड़ी होती है वही-वही उसके रक्त के आँसुओं से घुँघचियो का ढेर लग जाता है। ऐसा लगता था कि मानो वूँद-वूँद मे उसका प्राण गूँज रहा था। सम्भवत. इसीलिए प्रत्येक कुंज मे पी-पी की गूँज उठ रही थी। उनके दु.ख से पलाश जलकर विना पत्ते के हो गए ऐसा लगा कि मानो लहू मे डूबकर चमक उठे हो। उसी रक्त से बिम्बाफल लाल हो गए। परवल उसी की सहानुभूति मे पक गया। और गेहूँ का हृदय फट गया। वह लाल रत्न कहाँ है ? जहाँ वह लाल रत्न था उसका पता कौन बतावे।

उस देश में न पावस है, न हेमत है और न वसत है। न वहाँ कोकिल है न पपीहा है जिसकी वाणी सुनकर पति लौट आवे।

टिप्पणी—कुहुकि······रोई—यहाँ पर उपमा अलंकार से वस्तु व्यग्य है। विरह-वेदना का आधिक्य ही व्यंग्य है।

रक्त······बोई—यहाँ पर विभावना अलकार है।

भई······राती—यहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा अलकार व्यंग्य है।

जहाँ जहाँ······रासी—यहाँ पर भी विभावना अलकार है।

तेही······राते—यहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा व्यग्य है।

राते ·····गोहूँ—यहाँ पर भी हेतूत्प्रेक्षा व्यग्य है।

देखौं······राता—यहाँ पर विभावना अलकार मे वस्तु व्यंग्य है। कवि विरह के विराट् भाव को व्यजित करना चाहता है।

सो रतन—सो मे अर्थान्तरसंक्रमितवाच्य ध्वनि है और दिव्यता व्यग्य है।

रतन मे शब्द शक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है। रतन से कवि की व्यजना उस परमपिता परमात्मा से भी है।

नहीं……कंत—यहाँ पर ओही मे अर्थान्तरसक्रमितवाच्य ध्वनि है, रहस्य भावना व्यग्य है।

देसरा— प्रत्यय वक्रता है।

विशेष—(क) सम्पूर्ण अवतरण मे रहस्य भावना व्यंग्य है।

(ख) यहाँ पर अश्रु या चश्मेतर की अवस्था व्यग्य है।

(ग) यहाँ पर 'विरह संताप' की अवस्था का प्रभावोत्पादक वर्णन किया गया है।

नागमती संदेश-खण्ड

फिरि फिरि रोव कोई नहिं डोला । आधी राति बिहंगम बोला ॥
"तू फिरि फिरि दाहै सब पाँखी । केहि दुख रैनि न लावसि आँखी" ॥
नागमती कारन कै रोई । का सोवै जो कंत बिछोई ॥
मनचित हुँते न उतरै भोरे । नैन क जल चुकि रहा न मोरे ॥
कोइ न जाइ ओहि सिंहल दीपा । जेहि सेवाति कहें नैना सीपा ॥
जोगी होइ निसरा सो नाहू । तव हुँत कहाँ सँदेस न काहू ॥
निति पूछौ सब जोगी जंगम । कोइ न कहै निज बात, विहंगम ॥
चारिउ चक्र उजार भए, कोइ न सँदेसा टेक ।
कहौ बिरह दुख आपन, बैठि सुनहु दँड एक ॥१॥

[इस अवतरण मे नागमती का वन गमन और आधी रात मे उसके विलाप से द्रवित पक्षी से उसका उत्तर-प्रत्युत्तर वर्णित है ।]

नागमती वार-बार रोती है किन्तु कोई बोलता नही है । अन्त मे आधी रात मे पक्षी बोला । तू बार-बार सब पक्षियो को क्यो जला रही है । किस दुःख से दु खी होकर तू सोती नही है । यह सुनकर नागमती फूट-फूटकर रो उठी और बोली, वह भला कैसे सो सकती है जो पति से वियुक्त है । उसका ध्यान मन और चित्त से उतर गया है । नेत्रो से जल नही रुकता है । उस सिंहल देश को कोई नही जाता है जहाँ वह स्वाति है जिसके लिए हमारे नेत्र सीपी बने हुए है । जब से हमारा पति जोगी होकर निकला है तबसे हमे उसका कोई सन्देशा नही मिला है । मै जोगी जंगमो से नित्य उसकी बात पूछती हूँ किन्तु कोई भी उसका सन्देशा नही कहता है ।

मेरे लिए चारो दिशाएँ उजाड हो गई है । कोई सन्देशा पहुँचाने का ढाढस नही देता है । हे पक्षी ! मै तुझसे अपना दुःख कहना चाहती हूँ, एक घडी बैठकर सुन लो ।

टिप्पणी—ओही—यहाँ पर सवृति वक्रता है । कवि ने सिंहल द्वीप की रहस्य-मयता की ओर सकेत किया है ।

सो—यहाँ पर भी सवृवि तक्रता है । नायक की निष्ठुरता और रसिकता का संवरण किया गया है ।

विशेष—(क) यहाँ पर स्मृति उद्वेग, एवं उन्माद की अवस्थाएँ व्यंग्य है ।

(ख) यहाँ पर पक्षी और मानव मे हृदयसाम्य दिखलाकर विरह की 'तन्मयता' नामक विरह अवस्था व्यग्य है ।

वासौ दुख कहिए, हो वीरा । जेहि सुनि कै लागै पर पीरा ॥
को होइ भिउँ अँगवै पर दाहा । को सिंघल पहुँचावै चाहा ? ॥
जहँवाँ कत गए होइ जोगी । हौ किंगरी भइ झूरि बियोगी ॥
वै सिंगी पूरी, गुरु भेटा । हौ भइ भसम, न आइ समेटा ॥
कथा जो कहै आइ ओहि केरी । पाँवरि होउँ, जनम भरि चेरी ॥
ओहि के गुन सँवरत भइ माला । अबहुँ न बहुरा उड़िगा छाला ॥
बिरह गुरू, खप्पर कै हीया । पवन अधार रहै सो जीया ॥
हाड़ भए सब किंगरी, नसै भई सब ताँति ।
रोवँ रोवँ तें धुनि उठै, कहौ बिथा केहि भाँति ? ॥२॥

[इस अवतरण मे पदमावती ने अपनी उस दयनीय स्थिति का चित्रण किया है जिसे वह पति के वियोग मे भोग रही है ।]

हे भाई ! दुःख उससे कहना चाहिए जो सुनकर दूसरे की पीडा का अनुभव कर सके । ऐसा कौन है जो भीम बनकर दूसरे की अग्नि अपने ऊपर सहन कर सके और सिंहलगढ हमारा सदेश पहुँचा दे । जब से हमारे पति योगी बनकर गए है मैं वियोग मे सूखकर किंगरी बन गई हूँ । उन्होने सिंगी बजाकर गुरु से भेट कर ली है ? मैं विरह मे जलकर भस्म हो गई हूँ । वह उस भस्म को समेटने भी नही आया है । मैं उसके चरणो पर गिरकर जन्म भर चेली बनी रहूँगी । उसके गुणो का स्मरण करती हुई मै माला हो गई हूँ । वह आज भी नही लौटा ऐसा योगी बनकर गया है। विरह गुरु है और हृदय खप्पर है । प्राणो को पवन के आधार पर रोके हुए हूँ ।

हड्डियाँ सूखकर किंगरी हो गई है । नसें सब ताँत हो गई है । शरीर के रोम-रोम से उसकी ही धुन उठ रही है । हे विहंगम इस प्रकार अपनी व्यथा कैसे कहूँ ।

टिप्पणी—को दाहा—डा० माताप्रसाद ने इसका पाठान्तर दिया है । इस पाठान्तर मे अगवै के स्थान पर दंगवै है । उसका अर्थ डा० अग्रवाल ने गढपति या राजा लिया है । यहाँ पर एक लोक कथा सदर्भित है । वह महाभारत पर आधारित है । कहते है एक बार वन मे बडी दावाग्नि लगी हुई थी उस वन मे एक राक्षस ने एक राजकुमारी को ले जाकर रखा था । भीम उसकी रक्षा करने के लिए उस वन मे घुस गए और जलते हुए वन से राजकुमारी को निकाल लाए ।

डा० अग्रवाल ने भीम से गुजरात के चालुक्य राजा भीम का अर्थ लिया है । वह भोलो भीम के नाम से प्रसिद्ध थे । उन्होने कई बार मुहम्मद गोरी को युद्ध मे पराजित किया था । उनकी कीर्ति सारे उत्तरा पथ मे फैली हुई थी । उनके सम्बन्ध

मे कहते है कि वह पराए दु ख से इतने दुःखी हो जाते थे कि दुःखी की सहायता अपने सवंधी के सदृश करते थे। हम उनके इस सदर्भ से सहमत नही है।

हौं किंगरी भई—यहाँ पर लक्ष्योपमा से वस्तु व्यंग्य है। कवि व्यंजित करना चाहता है कि नायिका विरह मे अत्यधिक क्षीण और दुर्बल हो गई है कि पहचानी भी नही जाती है।

हौं भई भसम—यहाँ पर भी लक्ष्योपमा से वस्तु व्यग्य है। विरह के अत्यधिक ज्वलन भाव की व्यंजना की गई है।

ओहि······भाला—यहाँ पर भी लक्ष्योपमा से वस्तु व्यंग्य है। अतिशय क्षीणता की ध्वनि ही इसमे व्यजित की गई है।

हाड़······भाँति—यहाँ पर अतिशयोक्ति अलकार से वस्तु व्यंग्य है। कवि ने नायिका की अत्यधिक विरहजन्य वेदना की अभिव्यक्ति की है।

विशेष—(क) यहाँ पर स्मृति, गुण कथन और प्रलाप नामक विरह अवस्थाएँ व्यंग्य है।

पदमावति सौ कहेहु, बिहंगम। कंत लोभाइ रही करि संगम॥
तू घर घरनि भई पिउ हरता। मोहि तन दीन्हेसि जप औ बरता॥
रावट कनक सो तोकहँ भएऊ। रावट लंक मोहि कै गएऊ॥
तोहि चैन सुख मिलै सरीरा। मो कहँ हिये दुंद दुख पूरा॥
हमहुँ बियाही-सग ओहि पीऊ। आपुहि पाइ जानु पर जीऊ॥
अबहुँ मया करु, करु जिउ फेरा। मोहि जियाउ कंत देइ मेरा॥
मोहि भोग सौ काज न बारी। सौ दीठि कै चाहन हारी॥
सवति न होंहि तू बैरिनि, मोर कंत जेहि हाथ।
आनि मिलाव एक बेर, तोर पाँय भोर माथ॥३॥

[इस अवतरण मे कवि ने नागमती के द्वारा पति के प्रति विहगम के माध्यम से विरह सदेश भेजने का वर्णन किया है।]

हे पक्षी! पदमावती से यह जाकर कहना "तूने नागमती के पति से सगम कर उसको लुभा लिया है। तूने विवाहिता पत्नी से उसका पति छीन लिया है और नागमती को केवल जप और व्रत करने के लिए छोड दिया है। तेरे लिए तो सोने का महल बन गया है और मेरा महल लका बन गया है। तुझे शरीर मे सुख और चैन मिलता है और मेरे हृदय को दुःख-द्वद्व ही सताता है। मै भी उस पति के साथ व्याही गई थी। दूसरे का जी भी अपनी तरह ही समझना चाहिए। अब भी दया कर और मेरे प्राण लौटाल दे। मेरा पति मुझे लौटाकर मुझे जीवन दान दे। हे वाले! मैं भोग नही चाहती, मै तो केवल उसके दर्शन मात्र करते रहना चाहती हूँ।

तू सौत नही तू मेरी शत्रु है क्योकि तूने मेरा पति ले रखा है। एक बार तू मुझे उससे मिला दे। मै तेरे पैरो पर मस्तक रखती हूँ।

टिप्पणी—**घर घरनी**—गृह मे रहने वाली गृहिणी अर्थात् विवाहिता पत्नी।

रावट—महल

रावट···गयउ—मेरे महल को भस्म हुई लंका बना गया।

यहाँ पर वक्तृ वैशिष्ट्य व्यंग्य है।

सवति····· बैरिन—अपह्नुति अलकार है।

विशेष—(क) यहाॅ पर ईर्ष्या मूलक विरह प्रधान पड गया है। किन्तु इसका उदय प्रवास मूलक विरह मे ही हुआ है।

(ख) यहाॅ पर कवि ने नागमती की निरालम्बता व्यजित की है।

(ग) यहाॅ पर सौत के प्रति विनय भावना परिस्थितिजन्य अधिक है सरल कम।

रतनसेन के माइ सुरसती। गोपीचँद जसि मैनावती॥
आँधरि बूढि होइ दुख रोवा। जीवन रतन कहाँ दहुँ खोवा॥
जीवन अहा लीन्ह सो काढी। भइ बिनु टेक, करै को ठाढी?॥
बिनु जीवन भइ आस पराई। कहाँ सो पूत खँभ होइ आई॥
नैन दीठि नहिं दिया बराही। घर अँधियार पूत जौ नाही॥
को रे चलै सरवर के ठाँऊँ। टेक देह औ टेकै पाऊँ॥
तुम सरवन होइ काँवरि सजा। डार लाइ अब काहे तजा?॥
"सरवन! सरवन!" ररि मुई माता काँवरि लागि।
तुम्ह बिनु पानि न पावै, दसरथ- लावै आगि॥४॥

[इस अवतरण मे कवि ने रत्नसेन की माता की पुत्र के वियोग में जो दयनीय अवस्था हुई थी उसका मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है।]

रत्नसेन की माता का नाम सरस्वती था। वह गोपीचन्द की माता मैनावती के सदृश (अत्यन्त दुःखी) हो रही थी। वह रो-रोकर दुःख से अधी और बूढी हो गई थी। वह अपने यौवन के उस रत्न को पृथ्वी मे न जाने कहाँ खो बैठी थी। जो उसमे जीवन था वह किसी ने निकाल लिया था। वह बिना सहारा हो गई थी। उसको फिर से कौन खडा करे। बिना पुत्र के वह पराश्रित हो गई थी। वह पुत्र कहाँ है जो सहारा बनकर आ जाए। नेत्रो मे दृष्टि के दीपक नही जल रहे है। पुत्र जब घर मे नही होता तो घर अन्धकारमय दीखता है। अब सरवन के समान पुत्र के स्थान पर

कौन ले जाए। ऐसा कौन है जो शरीर को सहारा दे और पैर टिकावे। वह कौन अपने मन मे कहती है कि तुमने सरवन होकर भी काँवर त्याग दी है। डाल पर बैठाकर अब क्यो त्याग दिया है।

माता काँवर के लिए सरवन-सरवन करते हुए मर गई है। तुम्हारे बिना उसे जल नही मिलेगा। दशरथ तो केवल आग ही लगायेगे।

टिप्पणी—जोवन······खोवा—शुक्ल जी ने जोवन के स्थान पर जीवन पाठ दिया है जो हमारी समझ मे ठीक नही है। जोवन ही हमारी समझ मे ठीक है। कवि की व्यजना है कि पुत्र स्त्री के यौवन से अर्जित एक महान् रत्न होता है। वह पति को अपना यौवन दान देकर उस रत्न को प्राप्त करती है। स्त्री के पास यौवन से मूल्यवान वस्तु और हो भी क्या सकती है। इतना मूल्य चुकाकर जो वस्तु प्राप्त की जायेगी वह निश्चय ही अत्यधिक प्रिय होगी। उसके खो जाने पर प्राप्तकर्त्ता को दु:ख होगा। यही स्थिति रत्नसेन की माता की हुई। रत्नसेन के खो जाने पर वह बहुत अधिक दु:खी हुई। यहाँ पर जोवन रत्न मे अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। रत्न मे शब्द शक्ति उद्‌भव वस्तु ध्वनि है। इससे पुत्र और रत्नसेन दो अर्थो की व्यजना होती है। रत्न मे रूपकातिशयोक्ति भी है।

जीवन······काढ़ी—यहाँ उपादान लक्षणा से जीवन का अर्थ है जीवन शक्ति।

सरवन······आगि—यहाँ पर सारूप्य निबंधना अप्रस्तुत प्रशंसा अलकार है।

विशेष—(क) इस अवतरण मे वात्सल्य मूलक विप्रलम्भ का चित्र खीचा गया है।

(ख) यह अवतरण जायसी की सहृदयता और व्यापक दृष्टि का परिचायक है। कवि शृगार मे डूबा रहते हुए भी वात्सल्य की मनोरम एव मार्मिक स्थिति की उपेक्षा नही कर सका है।

लेइ सो सँदेस बिहंगम चला। उठी आगि सगरौ सिघला॥
बिरह-बजागि बीच को ठेघा ? । धूम सो उठा साम भए मेघा॥
भरिगा गगन लूक अस छूटे। होइ सब नखत आइ भुइँ टूटे॥
जहँ जहँ भूमि जरी भा रेहू। बिरह के दाघ भई जनु खेहू॥
राहु केतु, जब लंका जारी। चिनगी उड़ी चाँद महँ परी॥
जाइ बिहंगम समुद डफारा। जरे मच्छ, पानी भा खारा॥
दाघे बन बीहड़, जड़, सीपा। जाइ निअर भा सिंहल दीपा॥
समुद तीर एक तरिवर, जाइ बैठ तेहि रूख।
जौ लागि कहा सँदेस नहि, नहि पियास, नहि भूख॥५॥

[इस अवतरण मे कवि ने विरह की अतिरेकता व्यंजित की है।]

वह पक्षी नागमती का संदेश लेकर चला। सारे सिंहल मे आग प्रज्वलित हो उठी। विरह की वज्राग्नि के बीच मे भला कौन टिका है। उससे जो धुआँ उठा मेघ उसी से काले हो गये है। उस विरह की ज्वाला से ऐसे अँगारे निकले हैं कि उनसे सारा आकाश भर गया है। वे ही नक्षत्र बनकर पृथ्वी पर टूटते है। जहाँ-जहाँ भूमि जल गई है वहाँ-वहाँ रेहू हो गया है। विरह की ज्वाला से ऐसा लगता है कि वह जलकर भस्म हो गई है। राहू केतु ने जब लंका जलाई तब वही चिनगी उडकर चाँद मे पड गई। वह पक्षी इस प्रकार समुद्र मे जाकर चिल्ला-चिल्लाकर पुकारने लगा। उसकी उस विरहजनित पुकार से समुद्र के मच्छ जल गए। पानी उसका खारा हो गया। बीहड वन जड और सीप ये सब जल गए। इस प्रकार वह सिहल द्वीप के समीप पहुँचा।

समुद्र के किनारे पर एक वृक्ष है। वह उसी वृक्ष पर जाकर बैठ गया। जब तक वह संदेश नही कहेगा तब तक भूख और प्यास नही है।

टिप्पणी—लेई·· ···चला—यहाँ पर कारणातिशयोक्ति अलकार है।

धूम······मेघा—यहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा अलंकार व्यंग्य है।

भरिगा····· टूटे—यहाँ पर भी हेतूत्प्रेक्षा अलकार व्यंग्य है।

जहँ······रेहू—यहाँ सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा अलंकार है।

राहु······जारी—यह जायसी के पौराणिक ज्ञान की अपूर्णता है। राहु और केतु ने लका नही जलाई थी।

जाय······खारा—यहाँ पर कारणातिशयोक्ति और हेतूत्प्रेक्षा का सकर है।

दाघे······दीपा—यहाँ चपलातिशयोक्ति अलंकार है।

विशेष—इस अवतरण मे विरह का वर्णन ऊहात्मक शैली मे किया गया है। अन्य कवियो ने भी इस प्रकार वर्णन किए है। तुलना कीजिए—

(क) **लै सदेस चली ओहि ओरा विरह लूक धाई चहुँ ओरा।**
छूटत जाय विरह कै छारा, बन खण्ड जर भए पतभारा॥

—कासिम शाह कृत हंस जवाहिर

(ख) यहाँ पर ऊहात्मक अतिशयोक्तिपूर्ण वेदना की विवृति हुई है।

रतनसेन बन करत अहेरा। कीन्ह ओही तरिवर-तर फेरा॥
सीतल विरिछ समुद के तीरा। अति उतग औ छाँह गँभीरा॥
तुरय बाँधि कै बैठ अकेला। साथी और सब करहि खेला॥
देखत फिरै सो तरिवर-साखा। लाग सुनै पखिन्ह कै भाखा॥
पंखिन्ह महँ सो बिहंगम अहा। नागमती जासौ दु:ख कहा॥

पूछहि सबै बिहंगम नामा । अहो मीत ! काहे तुम सामा ? ॥
कहेसि "मीत ! मासक दुइ भए । जवूदीप तहाँ हम गए ॥
नगर एक हम देखा गढ़ चितउर ओहि नाँव ।
सो दुःख कहौ कहाँ लगि, हम दाढ़े तेहि ठाँव ॥६॥

[इस अवतरण मे राजा वृक्ष पर बैठे हुए तोते से नागमती के सदेश को सुनता है ।]

रत्नसेन मृगया खेलते-खेलते वन मे उसी वृक्ष के नीचे विश्राम करने लगा जो अत्यन्त विशाल और शीतल छाँह वाला था । वह घोडा बाँध कर अकेला बैठ गया । उसके सब साथी मृगया मे लगे रहे । वह पेड की शाखाओ को जब देख रहा था तो उसने पक्षियो की भाषा सुनी । उन पक्षियो मे वह पक्षी भी था जिससे नागमती ने अपना सदेश कहा था । सब पक्षी उससे उसका नाम पूछते है और साथ ही काले होने का कारण भी पूछते है । उसने उत्तर दिया हे मित्र ! दो महीने हुए तब मैं जम्बू द्वीप गया था, वहाँ मैंने एक नगर देखा था जिसका नाम चित्तौड़ गढ था । वहाँ का दुःख मैं कहाँ तक कहूँ, मै वही जल गया था ।

टिप्पणी—सो दुख मे संवृतिवक्रता है । कवि का अभिप्राय उस देश की पटरानी नागमती के महान् दुःख से है । यहाँ पर अतिशयोक्ति एव हेतूत्प्रेक्षा से वस्तु व्यंग्य है । विरह की अतिशयता व्यंग्य है ।

विशेष—यहाँ पर ऊहात्मक एवं व्यंजनात्मक शैलियो का मिश्रित रूप सामने रखा गया है ।

जोगी होइ निसरा सो राजा । सून नगर जानहु धुँध बाजा ॥
नागमती है ताकरि रानी । जरी बिरह, भइ कोइल-बानी ॥
अब लगि जरि भइ होइहि छारा । कही न आइ बिरह कै झारा ॥
हिया फाट वह जबहीं कूकी । परै आँसु सब होइ होइ लूकी ॥
चहूँ खड छिटकी वह आगी । धरती जरति गगन कहँ लागी ॥
विरह-दवा को जरत बुझावा ? । जेहि लागै सो सौहै धावा ॥
हौ पुनि तहाँ सो दाढै लागा । तन भा साम, जीउ लेइ भागा ॥
का तुम हँसहु गरब कै, करहु समुद महँ केलि ।
मति ओहि बिरहा बस परै, दहै अगिनि जो मेलि ॥७॥

[इस अवतरण मे कवि ने तोते के मुख से रत्नसेन की पूरी कथा कहलाई है ।]

वह राजा योगी होकर निकल पड़ा । नगर शून्य हो गया । ऐसा मालूम हुआ जैसे कि अन्धकार छा गया हो । नागमती उसकी रानी है जो विरह में जलकर कोयल

के समान वर्ण वाली हो गई है। अब तक जलकर वह क्षार हो गई होगी। विरह ज्वाला की तीक्ष्णता का वर्णन नही किया जा सकता। वह जब करुणा से कूकती है तो हृदय फट जाता है। उसके सब आँसू लूक बन-बन गिरते हैं। वह अग्नि चारो ओर छिटक गई है। पृथ्वी को जलाकर वह आकाश तक पहुँची है। इस विरह की जलती हुई दावाग्नि को कौन बुझा सकता है। जिसके वह लगती है वह उसके सामने दौडने लगता है। मै भी वहाँ पर जलने लगा था। शरीर जब मेरा श्याम हो गया तो किसी प्रकार मै प्राण लेकर भागा।

तुम गर्व से क्या हँसते हो ? तुम समुद्र मे यहाँ क्रीडा करते रहते हो। ईश्वर न करे कि तुम्हे कभी विरह ज्वाला मे जलना पडे। वह शरीर मे अग्नि लगा देती है।

टिप्पणी—हिया······कूकी—यहाँ पर कारणातिशयोक्ति अलकार से वस्तु व्यंग्य है। विरह की अतिरेकता ही ध्वनित की गई है।

परस······लूकी—यहाँ पर अतिशयोक्ति अलकार से वस्तु व्यंग्य है। विरह ज्वाला की तीक्ष्णता वर्णित करना ही कवि का अभीष्ट है। यहाँ सवृतिवक्रता है। विरहाग्नि के विराट् भाव का ही सवरण किया गया है।

धरती····· लागी—यहाँ पर स्वत सभवी वस्तु से वस्तु व्यग्य है। विरहाग्नि की विराटता ही व्यंजित की गई है।

तन·····साम—सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा अलकार व्यग्य है।

ओहि····· बिरहा—यहाँ पर 'ओही मे' अर्थान्तर सक्रमित वाच्य ध्वनि है। यहाँ पर विरह की दिव्यता और विराटता व्यजित की गई है।

सम्पूर्ण अवतरण मे रहस्य भावना व्यग्य है। अत. सम्पूर्ण अवतरण मे स्वतः संभवी वस्तु से वस्तु व्यग्य माना जायेगा। कुछ दूसरे विद्वानो के अनुसार इस सम्पूर्ण अवतरण मे अर्थान्तर सक्रमित वाच्य ध्वनि भी है। हमारी समझ मे द्वितीय मत ही अधिक उपयुक्त है।

विशेष—(क) विरह वेदना की विश्व व्यापकता दिखलाकर विरह की दिव्यता व्यंजित की गई है।

(ख) यहाँ पर विरह की दाहक शक्ति की व्यजना की गई है।

सुनि चितउर-राजा मन गुना। बिधि-सँदेस मै कासौ सुना॥
को तरिवरि पर पंखी-बेसा। नागमती कर कहै सँदेसा ?॥
को तुँ मीत मन-चित-बसेरू। देव कि दानव पवन पखेरू ?॥
ब्रह्म बिस्नु बाचा है तो ही। सो निज बात कहै तू मोही॥
कहाँ सो नागमती तै देखी। कहेसि बिरह जस मनहि बिसेखी॥
हौ सोई राजाभा जोगी। जेहि कारन वह ऐसि बियोगी॥
जस तूँ पखि महूँ दिन भरौ। चाहौ कबहि जाइ उड़ि परौं॥

पाँखि ! आँखि तेहि मारग लागी सदा रहाहिं।
कोइ न सँदेसी आवहि, तेहिक सँदेश कहाँहि ।।८।।

[इस अवतरण मे कवि ने पक्षी के सदेश पर राजा रत्नसेन के हृदय मे जो भाव उठे उनका चित्रण किया है ।]

चित्तौड की बात सुनकर राजा मन मे सोचने लगा कि यह सदेश मैं किस से सुन रहा हूँ। पेड पर पक्षी के वेश मे कौन है जो नागमती का सदेश कह रहा है। हे मित्र ! मन के अन्दर बस जाने वाले तुम कौन हो। वायु में विचरने वाले पक्षी हो, देव हो या दानव हो। तेरे वचन ब्रह्मा और विष्णु की वाणी मालूम होते है। जो तू मुझ से मेरी बात कह रहा है। तूने वह नागमती कहाँ देखी है ? या तूने उसके विरह का इतना मन को छूने वाला वर्णन अपने मन से किया है। मैं वही राजा हूँ जो योगी हो गया था जिसके कारण वह इतनी वियोगिनी है। हे पक्षी, जैसे तू दु.खी है वैसे ही मै अपने दिन भर रहा हूँ। सोचता हूँ कौन सा वह दिन होगा जो मै उड़-कर वहाँ पहुँचूँगा।

हे पक्षी ! मेरी आँखे सदैव उसी मार्ग मे लगी रहती है। कोई ऐसा सदेश-वाहक आता ही नही जो उसका सदेश कह सके।

टिप्पणी—ब्रह्म······तोही—इसका पाठान्तर है 'रुद्र ब्रह्म शिव बाचा तोही।' उस अवस्था मे अर्थ होगा तुम्हारी वाणी रुद्र शिव और ब्रह्म के सदृश कल्याणी लग रही है।

पूछसि कहाँ सदेस बियोगू । जोगि भए न जानसि भोगू ।।
दहिने संख न, सिगी पूरै । बाएँ पूरि राति दिन झूरै ।।
तेलि बैल जस बाँव फिराई । परा भँवर महँ सो न तिराई ।।
तुरय, नाव, दहिने रथ हाँका । बाएँ फिरै कोहाँर क चाका ।।
तोहि अस नाही पखि भुलाना । उड़ै सो आव जगत महँ जाना ।।
एक दीप का आएउँ तोरे । सब संसार पाँय तर मोरे ।।
दहिने फिरै सो अस उजियारा । जस जग चाँद सुरुज मनियारा ।।
मुहमद बाई दिसि तजा, एक स्रवन, एक आँखि ।।
जब ते दाहिन होइ मिला बोल पपीहा पाँखि ।।९।।

[इस अवतरण मे कवि ने पक्षी के द्वारा राजा को प्रत्युत्तर दिलवाया है ।]

पक्षी राजा से कहता है तू वियोग के सदेश की बात क्या पूछता है। जोगी होने पर तू भोग को नही समझ सकता है। तू उचित ढग से न तो सिंगी पूरता है और न शख ही बजाता है। बाएँ ढग से सिंगी पूरकर रात-दिन सूखा करता है। कवि की व्यंजना है कि न तो तू दक्षिण मार्गीय ढग से वैष्णव मार्ग को ग्रहण करता

है और न योग साधना को ही अपनाता है। तू योग में वाम मार्ग का अनुसरण करता है। तेली के वैल के सदृश तू बाएँ फिरा करता है अर्थात् वाम मार्ग का अनुसरण करता रहता है। वह चक्कर काटा करता है, कभी सामने नही चलता है। इसी प्रकार तू भवचक्र मे पड़ा हुआ है और ब्रह्म का साक्षात्कार नही कर पाता है। घोडी, नाव और रथ ये सब दाहिने हाँके जाते है इसीलिए ये आगे वढ जाते है। किन्तु कुम्हार का चाक बाएँ घूमता है इसीलिए एक जगह पडा रहता है। (कवि की व्यजना है कि जो दक्षिण मार्ग का अनुसरण करता है वह अग्रगामी होता है और जो वाम मार्ग को अपनाता है वह कूप मंडूक बना रहता है, उसे जीवन मे सफलता नही मिलती है।)

पक्षी तुम्हारी तरह एक स्थान के भुलावे मे नही पड़ता है। वह ससार में उडना जानता है। मै कोई तुम्हारे इसी एक ही द्वीप में नही आया हूँ। सारा ससार मेरे पैर के नीचे है। जो दक्षिण मार्ग का अनुसरण करता है वही उज्ज्वल यश का भागी रहता है। वह संसार मे ऐसे प्रकाशित होता है जैसे चाँद और सूर्य।

मोहम्मद कवि कहते हैं कि उन्होने अपने वामाग के एक नेत्र और एक श्रवण का परित्याग कर दिया है। जवसे दक्षिण मार्ग का अनुगमन करके उस परमात्मा से मिला हूँ तब से यह जीव रूपी पक्षी उसी प्रियतम की धुन मे लगा है।

टिप्पणी—दहिने······पूरे—यहाँ पर अर्थान्तर सक्रमित वाच्य ध्वनि है। शख का अर्थ है दक्षिण मार्गीय वैष्णव मत का समर्थन करना। और न सही रूप से सात्विक योग का अनुसरण करता है। सिगी पूरने का अर्थ है सात्विक योग का अनुसरण करना।

जोगी······भोगू—कवि की व्यंजना है कि जो योगी हो चुका है उसे भोग से कोई सम्पर्क नही रखना चाहिए। किन्तु रत्नसेन योगी बनकर भी वाम पंथी साधना मे लग गया है और भोग मे लिप्त हो गया है। यहाँ पर स्वत संभवी वस्तु से वस्तु व्यग्य है।

तेलि······तिराई—यहाँ पर उपमा अलंकार से वस्तु व्यग्य है। कवि यह व्यजित करना चाहता है कि जो जीव इस ससार मे वाम मार्ग का अनुसरण करते हैं वे भव चक्र मे फँसे रह जाते हैं, उनका उद्धार नही होता है।

तुरय······हाँका—यहाँ पर भी स्वत.संभवी वस्तु से वस्तु व्यंजना है। कवि यह व्यजित करना चाहता है कि जो लोग साधना मे दक्षिण मार्ग का अनुसरण करते है वे शीघ्र ही ऊर्ध्वगामी हो जाते है।

बाएँ·····चाका—कवि की व्यंजना है जो वाम मार्ग का अनुसरण करते हैं वे कुम्हार के चाक के सदृश एक ही जगह पर पड़े हुए भ्रमित होते रहते है। यहाँ पर स्वतः सभवी वस्तु से उपमा अलकार व्यंग्य है।

एक······मोरे—यहाँ तोता यह व्यजित करना चाहता है कि जो लोग एक स्थान पर टिक कर रह जाते है उन्हे सुख और शान्ति नही मिलती है। यहाँ स्वतः सभवी वस्तु से वस्तु व्यंजना है।

दहिने······मनियारा—यहाँ पर उपमा अलकार से वस्तु व्यग्य है। कवि यह व्यजित करना चाहता है कि दक्षिण मार्ग ससार मे सब प्रकार से सुखद, यश और प्रतिष्ठा प्रदान करने वाला होता है।

मोहमद······पाँख—यहाँ पर भी स्वत सभवी वस्तु से वस्तु व्यजना है। कवि यह व्यजित करना चाहना है कि उसे भी अपने प्रियतम के साक्षात्कार की और सिद्धि की प्राप्ति वाम मार्ग त्याग कर दक्षिण मार्ग अपनाने पर ही हुई है। वाम मार्ग सर्वथा त्याज्य है और दक्षिण मार्ग ही ग्राह्य है सर्वथा सव जगह इसमे यही व्यंग्य है।

हौ ध्रुव अचल सौ दाहिनि लावा। फिर समेरु चितउर गढ़ आवा॥
देखेऊँ तोरे मँदिर घमोई। मातु तोरि आँधरि भइ रोई॥
जस सरवन बिनु अँधी अँधा। तस ररि मुई, तोहि चित वँधा॥
कहेसि मरौ को काँवरि लेई ?। पूत नाहि, पानी को देई ?॥
गई पियास लागि तेहि साथा। पानि दीन्ह दशरथ के हाथा॥
पानि न पिय, आगि पै चाहा। तोहि अस सुत जनमें अस लाहा॥
होइ भगीरथ करु तहँ फेरा। जाहि सबार, मरन कै ढोरा॥
तू सपूत माता कर, अस परदेस न लेहि।
अब ताई भुइ होइहि, भुए जाइ गति देहि॥१०॥

[इस अवतरण मे कवि ने दक्षिण मार्ग की महिमा ही व्यंजित की है। और रत्नसेन की माता की दयनीय दशा का चित्रण किया है।]

तोता कहता है कि मैंने अचल ध्रुव को दाहिने हाथ रखते हुए सुमेरु की परिक्रमा की और फिर चित्तौडगढ को आया। मैने तुम्हारा नष्ट-भ्रष्ट महल देखा है। तुम्हारी माँ वहाँ अन्धी होकर रो रही है। जिस प्रकार श्रवण कुमार के बिना उसके माता-पिता रोकर मर गए थे उसी प्रकार तेरी माँ तेरा ध्यान करते हुए मरी जा रही है और कहती है अब मुझे कोई काँवरि पर ले जाने वाला नही है इसलिए मरी जा रही हूँ। पुत्र नही है कौन पानी दे। मेरी प्यास उसी के साथ चली गई है। जब कोई दशरथ उसे पानी देना चाहता है तो वह पानी नही पीती है, आग माँगती है। तेरे जैसे पुत्र का जन्म हुआ तभी तुमसे ऐसा भाग्य मिला है। तू भगीरथ बनकर वहाँ फेरा कर और उसके मरने से पहले ही वहाँ पहुँच जा।

तू तो माता का सपूत है तो फिर ऐसा परदेस क्यो पकड़ रखा है। अब तक तो वह मर गई होगी अतएव मर कर ही जाकर उसे गति प्रदान करो।

टिप्पणी—हौं······लावा—यहाँ पर शब्दशक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है। कवि यह व्यजित कर रहा है कि वह दक्षिण मार्गी है।

घमोई—नष्ट-भ्रष्ट हो जाना—

पानी······हाथा—यहाँ पर दशरथ शब्द का अर्थ है कोई भी सहानुभूति-कर्ता व्यक्ति। यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है।

होई भगीरथ—साहसी बनकर यहाँ भी अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है।

नागमती दुख विरह अपारा। धरती सरग-जरै तेहि झारा॥
नगर कोट घर-बाहर सूना। नौजि होइ घर पुरुष-विहूना॥
तू काँवरु परा बस टोना। भूला जोग, छरा तोहि लोना॥
वह तोहि कारन मरि भइ छारा। रही नाग होइ पवन अधारा॥
कहुँ बोलहि 'मो कहँ लेइ खाहू'। माँसु न, काया रचै जो काहू॥
बिरह मयूर, नाग वह नारी। तू मजार करु वेगि गोहारी॥
माँसु गिरा, पाँजर होइ परी। जोगी! अबहुँ पहुँचु लेइ जरी॥
देखि बिरह दुःख ताकर मैं सो तजा वनवास॥
आएउँ भागि समुद्रतट तबहुँ न छाड़ै पास॥११॥

[इस अवतरण मे कवि ने नागमती की विरह की असह्यता और तीक्ष्णता व्यंजित की है।]

तोता रतनसेन से कहता है कि नागमती का विरह दु:ख अपार है। पृथ्वी और स्वर्ग उसी की ज्वाला से जलते है। नगर, कोट, घर, बाहर सर्वत्र सूनापन है। भगवान् न करे कि किसी का घर पुरुष से सूना हो। तू कामरूप देश की लोना चमरिन के टोने मे छला गया है और योग भूल गया है। वह तुम्हारे हेतु मरकर क्षार हो गई है और नाग बनकर वह पवन के सहारे जीवित है। कभी तो वह चीलो आदि से विरह की अतिरेकता मे कहती है—'ले मुझे खा जा'। मेरे शरीर मे माँस नही है जो किसी को अच्छा लगे। विरह मयूर है और वह नारी साँप है और तू मार्जार (बिल्ली) बनकर शीघ्र ही विरहरूपी मयूर का भक्षण कर जा। माँस सब गिर गया है वह केवल पिंजर मात्र रह गई है। हे जोगी अब भी पहुँच कर उस जलती हुई को बचा ले।

उसका विरह दु ख देखकर मैंने वनवास त्याग दिया और मैं समुद्र के किनारे भाग आया हूँ फिर भी वह पीछा नही छोडता है।

टिप्पणी—नागमती·········झारा—संबधातिशयोक्ति अलकार से वस्तु व्यग्य है। विरह की विराटता और भव्यता स्पष्ट करना ही कवि को अभीष्ट है।

तू······लोना—कवि की व्यजना है कि किसी काम-कला मे निपुण स्त्री ने रतनसेन पर अपनी कामकला का जादू फेर दिया है जिससे वह योग त्यागकर भोग मे लिप्त है। इस पंक्ति मे कामरूँ का अर्थ है वह देश जहाँ स्त्रियो का साम्राज्य रहता है, पुरुषों को वे टोना करके अपने दास बनाए रखती है। यहाँ अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। इसी प्रकार लोना नाम की प्राचीन काल मे एक चमारी थी जो जादू

टोने मे निपुण थी। यहाँ पर उसी आधार पर लक्षण-लक्षणा से अर्थ लिया गया है रूप का जादू करने वाली कोई परम सुन्दरी, यह अर्थ अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनिजन्य है इसमे शब्द शक्तिउद्भव वस्तुध्वनि भी मानी जा सकती है। उस स्थिति मे 'लोना' का अर्थ सुन्दरी होगा।

रही नाग····· होई—यहाँ पर 'नाग' मे रूढिवैचित्र्यवक्रता है।

काया रचै जो······काउ—यहां पर रचै के स्थान पर रुचै होना चाहिए वैसे अर्थ बैठालने मे कठिनाई पड़ती है।

विरह······गोहारी—यहाँ पर रूपक अलकार से वस्तु व्यंग्य है। कवि यह व्यंजित करना चाहता है कि नायिका के प्राणो की रक्षा सर्वथा उसके नायक-मिलन से ही सभव है।

देखि······पास—यहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा अलकार से वस्तु व्यंग्य है। कवि विरह की अत्यधिक तीव्रता और विराटता व्यजित करना चाहता है।

अस परजरा बिरह कर गठा। मेघ साम भए धूम जो उठा॥
दाढ़ा राहु, केतु गा दाधा। सूरज जरा, चाँद जरि आधा॥
औ सब नखत तराई जरही। टूटहि लूक, धरती महँ परही॥
जरै सो धरती ठावँहि ठाऊँ। दहकि पलास जरै तेहि दाऊँ॥
बिरह-साँस तस निकसै झारा। दहि-दहि परबत होहि अँगारा॥
भँवर पतग जरै औ नागा। कोइल, भुजइल, डोमा कागा॥
वन-पखी सब जिउ लेइ उड़े। जल महँ मच्छ दुखी होइ बुड़े॥
महूँ जरत तहँ निकसा, समुद्र बुझाएउँ आइ॥
समुद्र, पानि जरि खारभा, धुँआ रहा जग छाइ॥१२॥

[इस अवतरण मे कवि ने विरह के विराट् स्वरूप का वर्णन किया है।]

विरह का गट्ठा ऐसा जला कि उसके धुएँ से मेघ श्याम हो गए। उसकी अग्नि से ही राहु प्रज्वलित हो उठा और केतु भी जल गया। सूरज भी उसकी ज्वाला से जल रहा है और चाँद भी आधा जल गया है। सब नक्षत्र और तराइयाँ जलती है, लूक टूटते है और पृथ्वी पर गिरते है जिससे कि जगह-जगह पर पृथ्वी जल गई है। पलाश भी उसी ज्वाला मे जलकर लाल हो रहे है। नागमती के मुख से ऐसी ज्वाला-मयी साँस निकल रही है कि जो पर्वत जल-जल कर अगारे हो जाते है। भ्रमर, पतगे और सूर्य, कोयल, भुजइल और बडा कउआ आदि सब वन के पक्षी उस ज्वाला से जल कर काले हो गए। वन के अन्य सब पक्षी जब उसे सहन न कर सके तो अपने प्राण लेकर उड गए। उसी ज्वाला से दु खी होकर मच्छ जल मे छिप गए।

मैं भी वहाँ से जलता हुआ ही निकला। मैने अपनी अग्नि समुद्र मे ही

बुझाई जिसका परिणाम यह हुआ कि समुद्र का पानी जलकर क्षार हो गया और सारे ससार मे धुआँ छा गया।

टिप्पणी—मेघ……उडा—यहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा अलकार और अतिशयोक्ति का व्यग्य है।

दाढ़ा……आगा—इन सब पक्तियो मे सर्वत्र हेतूत्प्रेक्षा अलंकार व्यग्य है और उससे वस्तु व्यग्य है। विरह की विराटता, भव्यता और विशालता ही कवि व्यजित करना चाहता है। यहाँ पर कवि ने राहू और केतु के काला होने का हेतु नागमती के विरह को माना है। इसी प्रकार सूरज जलता हुआ दिखाई पडता है। उसका हेतु भी नागमती का विरह कल्पित किया गया है। चाँद मे जो काले-काले दाग है उससे वह अधजला लगता है। उसका हेतु भी नागमती का विरह ही है। इसीलिए यहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा अलकार है।

औ……दाँउ—यहाँ पर भी हेतूत्प्रेक्षा अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। कवि विरह की विराटता ही व्यजित कर रहा है।

विरह……अंगारा—यहाँ पर अतिशयोक्ति अलंकार से वस्तु व्यग्य है।

महू……छाए—यहाँ पर भी रूपकातिशयोक्ति अलंकार से विरह की विराटता व्यंग्य है।

विशेष—(क) यहाँ पर कवि ने विरह की विराटता व्यजित कर उसकी दिव्यता ध्वनित की है।

राजै कहा, रे सरग-सँदेसी। उतरि आउ, मोहिं मिलु रे विदेसी॥
पाय टेकि तोहि लायो हियरे। प्रेम-सँदेस कहहु होइ नियरे॥
कहा विहगम जो बनवासी। "कित-गिरही ते होइ उदासी?॥
"जेहि तरिवर-तर तुम्ह असकोउ। कोकिल काग बरावर दोऊ॥
"धरती महँ विप-चारा परा। हारिल जानि भूमि परिहरा॥
"फिरौ बियोगी डारहि डारा। करौ चलै कहँ पंख सँवारा॥
"जियै क घरी घटति निति जाही। साँझहि जीउ रहै, दिन नाहीं॥
जौ लहि फिरौ मुकुत होइ परौ न पीजर माहँ॥
जाउँ वेगि थल आपने, है जेहि बीच निबाह॥१३॥"

[इस अवतरण मे राजा पक्षी से अपने औत्सुक्य और जिज्ञासा को प्रकट करता है।]

राजा पक्षी से कहता है कि हे स्वर्ग से सदेश देने वाले परदेसी पक्षी नीचे उतर कर मुझे दर्शन दे। तुम्हारे पैरो पर गिर कर तुम्हे हृदय से लगाऊँगा। प्रेम सदेश समीप आकर कहो। तोते ने कहा कि जो वनवासी हुआ है वह गृहस्थ छोडकर उदासी क्यो बनता है। जिस पेड़ के नीचे तुम्हारे जैसा व्यक्ति हो उस पर चाहे कोयल बोले

चाहे कउग्रा । उसके लिए दोनो मे कोई ग्रन्तर नही है । धरती मे विष का चारा फैला हुग्रा है यह सोचकर हारिल पृथ्वी पर उतरता ही नही है । मै वियोगी बनकर डाल-डाल पर फिर रहा हूँ । इसलिए उड़ने के लिए पंख संवार रहा हूँ । जीने की घडी नित्य घटती जाती है । सध्या को जीव तो रह जाता है किन्तु दिन नही रहता है । जव तक मै मुक्त भाव से घूम रहा हूँ तव तक मै पिंजड़े मे नही रह सकता । मै तो ग्रपने स्थल पर जाऊँगा जहाँ मेरा निर्वाह हो सकता है ।

टिप्पणी—सरग······संदेसी—यहाँ पर कवि ने 'सरग' शब्द का प्रयोग ग्रत्यधिक दूरी के लिए तथा ग्रपने देश की ग्रनुपम सुन्दरता के लिए किया है । ग्रतएव इस शब्द मे ग्रत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि है । लक्षण-लक्षणा से इसका ग्रर्थ लिया गया है स्वर्ग के समान महान् ग्रौर ग्रत्यन्त दूर देश चित्तौड़गढ का सदेश वहन करने वाला ।

कित······उदासी—यहाँ पर काकुवैशिष्ट्य व्यंग्य है । कवि यह व्यजित करना चाहता है कि यदि मनुष्य का मन शुद्ध नही हुग्रा है तो उसको गृहस्थाश्रम छोड़कर उदासी ग्रौर वनवासी होना व्यर्थ होता है । तुमने गृहस्थाश्रम का त्याग करके वैराग्य, योग ग्रौर वनवास स्वीकार किया था किन्तु भोग कामना तुम्हारे हृदय मे विद्यमान थी जिसका परिणाम यह हुग्रा कि तुम वन मे ग्राकर भी पदमावती के जाल मे फँस गए ग्रौर योग तथा वैराग्य ग्रादि भूल गए । इसलिए तुम्हारा गृह-त्याग निरर्थक ग्रौर ग्रनुचित था इसलिए तुम ग्रब भी ग्रपने घर लौट जाग्रो ग्रौर नागमती को जो तुम्हारे विरह मे ग्रत्यधिक दु:खी है उसे सुहाग प्रदान करो ।

जेहि······दोऊ तुम्ह ग्रसकोऊ—यहाँ पर 'ग्रस' मे ग्रर्थान्तर सक्रमित वाच्य ध्वनि है । पक्षी रतनसेन के विषय मे यह व्यजित करना चाहता है कि वह रतनसेन से मिलना पाप समझता है क्योकि उसकी दृष्टि मे गुण ग्रौर ग्रवगुण का कोई भी भेद नही है । ग्रगर ऐसा न होता तो वह सर्वगुण सम्पन्न नागमती को त्याग कर वनवास ग्रौर योग न स्वीकार करता ।

कोकिल······दोऊ—यहाँ पर सारूप्य निवन्धना ग्रप्रस्तुत प्रशंसा से वस्तु व्यंग्य है ।

धरती······परिहरा—यहाँ पर सारूप्य निबधना ग्रलकार से उपमा ग्रलकार व्यंग्य है । जिस प्रकार हारिल पक्षी यह समझकर कि पृथ्वी पर सर्वत्र पक्षियो को फँसाने वाला चारा ही रहता है, इसलिए पृथ्वी पर पैर नही रखता है । चगुल मे सदैव लकड़ी लिए रहता है उसी के सहारे टिकता है । उसी प्रकार रतनसेन को यह भ्रम हो गया है कि गृहस्थ जीवन विष रूप होता है । ग्रतएव वह गृहस्थ जीवन त्यागकर योगी वन गया था । जिस प्रकार हारिल पक्षी को पृथ्वी का सहारा लेना ही पडता है । यह वात दूसरी है कि वह लकडी के सहारे टिक जाए । उसी प्रकार रतनसेन योगी होकर भी गृहस्थ जीवन को त्यागने मे ग्रसमर्थ रहा । योग की ग्राड मे उसे फिर गृहस्थाश्रम स्वीकार करना पड़ा । जिस प्रकार हारिल पक्षी इतना सब होने पर भी उस लकड़ी

का परित्याग नही करता उसी प्रकार राजा भी सब कुछ जानते हुए भी अपने घर नही लौटा। इस प्रकार राजा निन्दनीय है।

जिय......नाही—यहाँ स्वतःसम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंजना है। कवि यह व्यजित करना चाहता है कि मनुष्य का जीवन बहुत अस्थाई और क्षणिक है। जो क्षण बीत जाते है वे लौट कर नही आते इसलिए जीवन के प्रत्येक क्षण का सदुपयोग करना चाहिए। उमे अपने अगले जन्म के लिए सब पुण्य अपने जीवनकाल मे ही कमा लेने चाहिए।

कहि सदेस बिहगम चला। आगि लागि सगरौ सिंघला॥
घरी एक राजा गोहरावा। भा अलोप, पुनि दिस्टि न आवा॥
पंखी नाँव न देखा पाँखा। राजा होइ फिरा कै साँखा॥
जस हेरत वह पंखि हेराना। दिन एक हमहूं करव पयाना॥
जौ लगि प्रान पिंड एक ठाऊँ। एक बार चितउरगढ़ जाऊँ॥
आवा भँवर मँदिर महँ केवा। जिउ साथ लेइ गएउ परेवा॥
तन सिंघल, मन चितउर बसा। जिउ बिसँभर नागिनि जिमि ड़सा॥
जेति नारि हँसि पूछहि अमिय वचन जिउ तंत॥
रस उतरा, बिष चढ़ि रहा, ना ओहि तंत न मंत॥१४॥

[इस अवतरण मे राजा के प्रति पक्षी द्वारा संदेश कहकर उड़ जाने पर सिंहल और राजा की जो दशा हुई उसका वर्णन किया गया है।]

पक्षी इस प्रकार सदेश देकर चल दिया। सारे सिंहल मे आग लग गई। एक घडी तक राजा ने उसे पुकारा किन्तु वह अलोप हो गया और दृष्टिपथ पर नही आया। पक्षी जिसका नाम है उसका क्षण भर मे पंख भी नही दिखाई पड़ा। राजा होकर भी मन मे क्षुब्ध होकर वापस लौट आया। जिस प्रकार देखते-देखते वह पक्षी खो गया उसी प्रकार एक दिन हम भी चले जाएँगे। जब तक प्राण और पिंड एक साथ है तब तक मैं एक बार चित्तौडगढ जाना चाहता हूँ। यह सोचकर वह रतनसेन रूपी भँवरा राजमन्दिर में वहाँ आया जहाँ कमलरूपी पदमावती थी। उसके प्राण पक्षी अपने साथ ही लेता गया था। शरीर सिंहल मे था और चित्त चित्तौड़गढ मे था। इस प्रकार वह बेसुध हो रहा था मानो कि उसे नागिन ने डस लिया हो।

जितना ही वह बाला नित्य की भाँति हँस-हँस कर पूछती है उतना ही उसका रस उतरता जाता है और विष चढता जाता है। उस पर न तो तन्त्र का प्रभाव था न मन्त्र का ही।

टिप्पणी—कही......सिंहला—यहाँ विभावना अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। विरह की व्यापकता और अतिशय ज्वलनशीलता ही व्यंजित करना कवि को अभीष्ट है।

जेत……भंत—यहाँ पर विषादन अलंकार है ।

विशेष—(क) यहाँ पर अतिशयोक्तिपूर्ण ऊहात्मक पद्धति का अनुसरण किया गया है ।

(ख) यहाँ पर 'उच्चाटनमूलक' विरह की व्यजना की गई है । उच्चाटन-मूलक विरह मेरी अपनी स्थापना है । जहाँ आचार्यो ने विरह के—

(१) अभिलाषा हेतुक
(२) मान हेतुक (क) अनुमा (ख) अध्यक्ष या प्रत्यक्ष (ग) श्रवण
(३) प्रवास हेतुक
(४) ईर्ष्या हेतुक
(५) करुण विप्रलम्भ ।

इनके अतिरिक्त एक उच्चाटनमूलक विरह भी होता है । उच्चाटन अनेक कारणो से होता है—यन्त्र, मन्त्र, सदेश आदि । यहाँ पर संदेशमूलक उच्चाटनमूलक विरह है ।

बरिस एक तेहि सिहल भएउ । भोग बिलास करत दिन गयऊ ।।
भा उदास जौ सुना सँदेसू । सँवरि चला मन चितउर देसू ।।
कँवल उदास जो देखा भँवरा । थिर न रहै अब मालति सँवरा ।।
जोगी, भँवरा, पवन परावा । कित सो रहै जो चित उठावा ?।।
जो पै काढि देइ जिउ कोई । जोगी भँवर न आपन होई ।।
तजा कँवल मालति हिय धाली । अब कित थिर आछै अलि, आली ।।
गध्रबसेन आव सुनि बारा । कस जिउ भएउ उदास तुम्हारा ?।।
मै तुम्हही जिउ लावा, दीन्ह नैन महँ बास ।।
जौ तुम होहु उदास तौ यह काकर कविलास ।।१५।।

[इस अवतरण मे कवि ने नागमती के सदेश की प्रतिक्रिया के रूप मे उत्पन्न होने वाली मानसिक स्थिति का वर्णन किया है ।]

सिहलगढ मे रहते-रहते एक वर्ष हो गया । भोग-विलास करते हुए सब दिन बीत गए । संदेश को सुनकर वह उदास हो गया । चित्तौड़गढ याद आने लगा । पदमावती रूपी कमल ने जब रतनसेन रूपी भ्रमर को उदास देखा तो वह समझ गई कि उसने मालतीरूपिणी नागमती का स्मरण किया है इसलिए अब यह यहाँ रुक नही सकता है । योगी, भ्रमर और पवन ये सब पराए रहते है । जब इनके मन मे आ जाता है तो फिर ये नही ठहरते है । हे सखी ! रतनसेन रूपी भौरे ने पदमावती रूपी कमल को छोड़कर नागमती रूपी मालती को हृदय मे स्थान दिया है । अब वह कैसे टिक सकता है । गन्धर्वसेन ने जब यह बात सुनी तो वह रतनसेन के द्वार पर आया और पूछने लगा कि तुम्हारा जी क्यो उदास हो रहा है ? मै तो तुम्हारे मे ही जी

लगाए हुए था। अपने नेत्रों में ही तुम्हे बसाया था। और जब तुम उदास होओगे तो यह सारा सुख-विलास और वैभव किसका होगा।

टिप्पणी—कमल······संवरा—रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

योगी······उठावा—यहाँ तुल्ययोगिता अलकार है।

तजा······आली—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

कविलास—इसका अर्थ वैभव और विलास है। यह अर्थ लक्षण-लक्षणा से लिया गया है। अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। वैभव की अतिशयता ही व्यग्य है।

विशेष—इस अवतरण मे भी उच्चाटनमूलक विरह का ही वर्णन किया गया है।

रतनसेन विदाई खण्ड

रतनसेन बिनवा कर जोरी। अस्तुति जोग जीभ नहि मोरी ।।
सहस जीभ जौ होहि, गोसाईं। कहि न जाइ अस्तु ते जहँ ताईं ।।
काँच रहा तुम कंचन कीन्हा। तब भा रतन जोति तुम्ह दीन्हा ।।
गंग जो निरमल-नीर कुलीना। नार मिले जल होइ मलीना ।।
पानि समुद मिला होइ सोती। पाप हरा, निरमल भा मोती ।।
तस हौं अहा मलीनी कला। मिला आई तुम्ह भा निरमला ।।
तुम्ह मन आवा सिंघलपुरी। तुम्ह तें चढ़ा राज औ कुरी ।।
सात समुद्र तुम राजा, सरि न पाव कोइ खाट।
सबै आइ सिर नावहि जहँ तुम साजा पाट ।।१।।

[इस अवतरण में रतनसेन के द्वारा अपने ससुर के प्रति की गई स्तुति का वर्णन किया गया है ।]

रतनसेन ने हाथ जोड कर विनय की और कहा कि मेरी जिह्वा स्तुति के योग्य नही है। हे स्वामी! यदि मेरे एक सहस्र जिह्वाएँ हो तो भी आपकी स्तुति नही की जा सकती। मै काँच के सदृश निर्मूल्य था। मुझे स्वर्ण के सदृश आपने मूल्यवान बना दिया। जब तुमने पदमावती रूपी ज्योति प्रदान की तभी मै वास्तविक रतन बन सका। गंगा के निर्मल जल से नाले का जल भी मिलकर पवित्र हो जाता है। उसी प्रकार मै मलिन होते हुए भी तुमसे मिलकर मोती के सामान निर्मल हो गया हूँ। मैं सीपी के सदृश था किन्तु समुद्र के समान तुमसे आकर मिलने पर मेरा पाप दूर हो गया और मैं निर्मल हो गया। मैं तुम्हारे पास सिंहलपुरी की मणि रूप पदमावती के लिए तुम्हारे पास आया था। तुम्हारी कृपा से ही मुझे राज्य मिला और कुल की प्रतिष्ठा मिली।

तुम सात समुद्रो के राजा हो। कोई छोटा व्यक्ति तुम्हारी समता नही कर सकता। जहाँ पर तुम्हारा सिंघासन सुसज्जित है वहाँ आकर सब सिर नवाते है।

टिप्पणी—सहस······ताईं—यहाँ पर सम्बन्धातिशयोक्ति अलकार है।

काँच······कीन्हा—रतनसेन यह व्यजित करना चाहता है कि मै पदमावती के विना काँच के समान मूल्यहीन था किन्तु तुम्हारी कृपा से पदमावती पाकर मैं स्वर्ण के समान देदीप्यमान और मूल्यवान बन गया। इस पंक्ति मे अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है।

तबभा......दीन्हा—यहाँ पर रतन मे रूढिवैचित्र्य वक्रता है। ज्योति मे रूपकातिशयोक्ति है। अर्थ है पदमावती रूपी ज्योति।

तुम्ह..... सिंघलपुरी—डाक्टर अग्रवाल ने मन के स्थान पर मनि पाठ दिया है। इससे अर्थ और स्पष्ट हो गया है।

अब विनती एक करौ, गोसाईं। तौ लगि कया जीउ जव ताईं॥
आवा आजु हमार परेवा। पाती आनि दीन्ह मोहिं देवा॥
राज-काज औ भुईं उपराहिं। सत्रु भाइ सम कोई नाहीं॥
आपन-आपन करहिं सो लीका। एकहि मारि एक चह टीका॥
गए अमावस नखतन्ह राजू। हम्ह कँ चन्द चलावहु आजू॥
राज हमार जहाँ चलि आवा। लिखि पठइनि अव होइ परावा॥
ऊहाँ नियर दिल्ली सुलतानू। होइ जो भोर उठै जिमि भानू॥
रहहु अमर महि गगन लगि तुम महि लेइ हम्ह आउ।
सीस हमार तहाँ निति जहाँ तुम्हारा पाउ॥२॥

[इस अवतरण मे रतनसेन ने गन्धर्वसेन से चित्तौडगढ जाने की प्रार्थना प्रस्तुत की है।]

रतनसेन ने गन्धर्वसेन से प्रार्थना की कि हे महाराज ! मै आपसे विनती करता हूँ जब तक यह शरीर है तब तक यह जीव आपका ही रहेगा। आज हमारा पक्षी आया है। हे महाराज ! उसने हमे पत्री लाकर दी है। राज-काज और भूमि के विषय में भाई से बढकर शत्रु और कोई नही होता। वे अपना-अपना हिसाब लगाते है, एक को मार कर दूसरा राजतिलक चाहता है। हमारे प्रभाव मे चित्तौडगढ मे अमावस्या छा गई (अर्थात् अन्धकार हो गया अथवा अराजकता फैल गई है)। नक्षत्रो का अर्थात् छोटे-छोटे सामन्तो का प्रभाव बढ गया है इसलिए मुझ चाँद को चलने की आज्ञा दीजिए। जहाँ तक हमारा पैतृक राज्य है। वहाँ से पत्री आयी है कि अब तुम्हारा राज्य पराया होना चाहता है। वहाँ समीप मे दिल्ली का सुलतान है। यदि वह सूर्य की तरह चढ आया तो मेरे लिए भोर हो जायगा।

जब तक धरती और आकाश है तुम्हे चिर जीवन प्राप्त हो। जब तक मै जीवित हूँ तब तक जहाँ तुम्हारा पैर होगा वहाँ मेरा सिर रहेगा।

टिप्पणी—भयऊ......राजू—कवि की व्यजना है कि अराजकता फैल गई है और सामन्तो का राज्य हो गया है। यहाँ पर लक्षण-लक्षणा से अर्थ लिया गया है।

होई......भानु—कवि की व्यजना है कि दिल्ली का सुलतान सूर्य के समान है और रतनसेन चाँद के समान है। यदि रतनसेन अपने राज्य मे न पहुँचा तो सुल-तान रूपी सूर्य उसको आक्रान्त कर लेगा।

शीश......पाऊँ—कवि की व्यजना है कि पूर्ण आज्ञाकारी बना रहूँगा। यहाँ स्वतःसम्भवी वस्तु से वस्तु व्यजना है।

राज सभा पुनि उठी सवारी। "अनु, विनती राखिय पति भारी॥
भाइन्ह माँह होइ जिनि फूटी। घर के भेद लंक अस टूटी॥
बिरवा लाइ न सूखै दीजै। पावै पानि दिस्टि सो कीजै॥
आनि रखा तुम दीपक लेखी। पै न रहै पाहुन परदेसी॥
जाकर राज जहाँ चलि आवा। उहै देस पै ताकह भावा॥
हम तुम नैन घालि कै राखे। ऐसि भाख एहि जीभ न भाखे॥
दिवस देहु सह कुसल सिधावहि। दीरघ आइ होइ, पुनि आवहि॥
सबहि विचार परा अस, भा गवने कर साज॥
सिद्धि गनेस मनावहिं, बिधि पुर वहु सब काज॥३॥

[इस अवतरण मे कवि ने रतनसेन की प्रार्थना पर राज्यसभा के समर्थन की बात कही है।]

रतनसेन की विनय सुनकर समस्त राज्यसभा समर्थन मे उठ खडी हुई और बोली—महाराज रतनसेन की प्रार्थना स्वीकार कीजिए। भाइयो में फूट होनी नही चाहिए। घर के भेद से ही लंका ऐसी टूटी थी। पेड लगा करके उसे सूखने नही देना चाहिए। ऐसी दृष्टि कीजिए जिससे कि उसे पानी मिले। तुमने एक दीपक लगाकर रख छोडा है। किन्तु परदेसी अतिथि रुकता नही है। जहाँ पर जिसका राज्य परम्परा से चला आया है वही देश उसको अच्छा लगता है। हम तुम नेत्रों मे उसे डालकर रखेंगे, ईश्वर करे कि आगे की भाषा हमारी जिह्वा से न निकले। दिन निश्चित कर दीजिए ताकि यह अपने घर जाए, इनकी आयु दीर्घ हो और यह फिर यहाँ आये। सभी का ऐसा विचार हुआ और जाने की तैयारियाँ की जाने लगी और सब लोग सिद्ध गणेश को मनाने लगे और प्रार्थना करने लगे कि भगवान् सब काम पूर्ण करे।

टिप्पणी—नैन घालि कै······राखै—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। रतनसेन ससुर से कहता है कि आपने मुझे बेहद लाड़-चाव से रखा है।

दिवस······देहु—यहाँ देहु क्रिया का प्रयोग क्रिया वैचित्र्य वक्रता का द्योतक है।

बिनय करै पदमावति बारी। "हौ पिउ! जैसी कुन्द नेवारी॥
मोहि असि कहाँ सो मालति बेली। कदम सेवती चंप चमेली॥
हौ सिंगार हार जस तागा। पुहुप-कली अस हिरदय लागा॥
हौ सो बसंत करौ निति पूजा। कुसुम गुलाल सुदरसन कूजा॥
बकुचन बिनवौ रोस न मोही। सुनु, बकाउ तजि चाहु न जूही॥
नाग सरे जो है मन तोरे। पूजि न सकै बोल सरि मोरे॥
होइ सदबरग लीन्ह मै सरना। आगे करु जो, कंत तोहि करना॥

केत बारि समुझावै, भवँर न काँटै वेध ॥
कहै मरौ पै चितउर, जज्ञ करौं असुमेध ॥४॥

[इस अवतरण मे पदमावती ने श्लेष के वल पर अपने पति से आत्मप्रशसा की और नागमती की निन्दा की है ।]

पदमावती अपनी वाटिका की प्रशसा करती हुई कहती है कि—हे प्रिय मैं कमल हू और वह (नागमती) कुन्द और निवारी के फूलो के समान है । वह मालती लता मेरी समता कैसे कर सकती है । कदम्ब, सेवती, चम्पा और चमेली भी सब मेरे समान नही है । नागमती हार मे पडे हुए डोरे के समान है और मैं पुष्प की कली के समान होकर हृदय से लगती हूँ । मै वह वसन्त हूँ जो गुलाल, सुदर्शन और कुब्जक पुष्पो से सदा परिपूर्ण रहता हूँ । मै चुने हुए वाक्यो से प्रार्थना कर रही हू कि मुझ मे रोप नही है । मै सरल भाव से कहती हूँ कि वकावली के पुष्प के समान मुझको छोड़ करके तू जूही के फूल के समान नागमती के प्रति न जा । जो नाग केसर के समान नागमती तुम्हारे मन मे है वह मेरी वाणी की बरावरी नही कर सकती । मैने पतिव्रता होकर तेरी शरण ली है । हे पति ! आगे तेरी इच्छा हो चाहे सो कर । कितनी बार समझाया जाए ऐ भ्रमर रूप रतनसेन तू काँटो मे न बिंध । परन्तु फिर भी तू यही कहता है कि मे चित्तौडगढ मे ही मरूँगा और मै अश्वमेध यज्ञ करूँगा ।

डा० अग्रवाल ने इसका दूसरा अर्थ पदमावती परक माना है—पदमावती बाला विनती करने लगी—'हे प्रिय मै पद्मिनी हू, वह (नागमती) खराद पर बनाई हुई (कठपुतली) है । वह मेरी जैसी तीन भगिमाओ वाली सुन्दरी नहीं है । मैं आपके चरणो की सेवा करती हूं और चमेली का तेल मलती हूँ । उसका शृगार करने वाला हार जैसा है, वह कली किए हुए पीतल की भाँति हृदय मे चुभता है । मै आपके साथ शयन करने के लिए गुलाल सदृश पुष्प (ऋतु धर्म) से सदा भरती हूँ और आपके दर्शन से कूजती हूँ । आपके रूप से अपने वश मे रह कर मै मोहित हो गई हू और वाक्य चुन-चुन कर मै विनती करती हूँ । उन्हे सुनकर आप मुझे वहकाकर यदि चले जाएँगे तो मै आपकी वाट जोहूगी । यदि आपके मन मे वह सर्पिणी वसी है तो वह मोर की (मेरी) वोली के सामने ठहर नही सकती । सत्य के वल की अनुयायी होकर मैने आपकी शरण ली है । हे कत आगे आप जैसा करना चाहे करे ।

स्त्री कितना ही समझाती थी किन्तु भौरा काँटे मे नही विधता था, कहता था मै चित्तौड मे ही मरूँगा और वही अश्वमेध यज्ञ करूँगा (डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के पदमावत से उद्धृत) ।

विशेष—यहाँ पर श्लेष और मुद्रा अलकारो का सकर है । अतः सम्पूर्ण अवतरण द्वि-अर्थक है । स्थान-स्थान पर रूपकातिशयोक्ति लक्षण-लक्षणा भी है ।

टिप्पणी—(१) कँवल=(क) कँवल का पुष्प
(ख) कँवल रूपी पदमावती
(२) वारी (क) वाला
(ख) वाटिका
(३) सो—यहाँ पर सवृतिवक्रता है।

मालति बेली—(क) मालती की लता।

(ख) दूसरा अर्थ लक्ष्योपमाजन्य है। यहाँ पर लक्ष्योपमा से वस्तु व्यग्य है। नागमती को कवि ने मालती की लता कहा है जिसके काँटो मे लिपट भ्रमर नष्ट होता है। यहाँ पर नागमती की विषाक्तता ही व्यग्य है।

डा० अग्रवाल का अर्थ मेरे अर्थ से भिन्न है और वहुत दूरारूढ और शृगारिक है। वे लिखते है—'मालती वेली अर्थात् तीन मोड़ या त्रिभग या लतावध नामक रति करण जानने वाली।'

कदम—(क) चरणो की सेवा करती हू।
(ख) कदम्व और सेवती नाम के फूल।

चाप चमेली—(क) चमेली जैसी सखियाँ पैर दवाती है।
(ख) चम्पा और चमेली नामक फूल।

सिंगारहार—(क) हर सिंगार का फूल।
(ख) शृगार करने का हार।

जसताका—(क) जैसा तागा होता है।
(ख) जस्ता का वना है।

पुहुप—(क) पीतल।
(ख) पुष्प।

करि—(क) फूल की कली।
(ख) कलई।

हृदय लागा—(क) हृदय मे या कठ मे पहना हुआ।
(ख) हृदय मे चुभता है।

हौ सौ बसन्त—(क) मै आपके साथ सोने के लिए हू।
(ख) मै वह वसन्त हूँ।

नित पूजा करौ—(क) नित्य पूजा करती हूँ।
(ख) ऋतु धर्म से नियमित रूप से होती हू।

वकुचन—(क) वाक्य या शब्द चुन-चुनकर विनती करती हूँ।
(ख) एक प्रकार का फूल।

विनवौ—(क) विनती करती हूँ।
(ख) फूल चुनती हूँ।

नागेसरि—(क) नाग की स्त्री।

(ख) नागमती। यहाँ पर पर्यायवक्रता है।

मोर—(क) मयूर।

(ख) मेरे (मयूर रूपिणी पदमावती के)।

सतबरग—(क) सत्य के बल पर चलने वाली।

(ख) एक प्रकार का फूल।

करना—(क) एक प्रकार का सुन्दर सौदा।

(ख) पदमावती का अभिप्राय नागमती रूपी मदार के फूल से।

केत—(क) केतकी का फूल।

(ख) बाजा।

गवन चार पदमावति सुना। उठा धसकि जिउ औ सिर धुना॥
गहबर नैन आए भरि आँसू। छाँडब यह सिघल कबिलासू॥
छाँडिउँ नैहर, चलिउँ बिछोई। एहि रे दिवस कहँ हौं तब रोई॥
छाँडिउँ आपन सखी सहेली। दूरि गवन, तजि चलिउँ अकेली॥
जहाँ न रहन भएउ बिनू चालू। होतहि कंस न तहाँ भा कालू॥
नैहर आइ काह सुख देखा। जनु होइगा सपने कर लेखा॥
राखत बारि सो पिता निछोहा। कित बियाहि अस दीन्ह बिछोहा?॥
हिये आइ दुःख बाजा, जिउ जानहु गाछेकि॥
मन तेकन कै रोवै हर मंदिर कर टेकि॥५॥

[इस अवतरण मे रतनसेन के जाने के समाचार से पदमावती के हृदय मे जो प्रतिक्रिया हुई उसका वर्णन किया है।]

जब पदमावती ने रतनसेन की जाने की तैयारी का हाल सुना तो उसका जी धसक गया और सिर पीट लिया। घबडाये हुए नेत्र आँसू से भर गए और सोचने लगी कि स्वर्ग के समान सिहल छोड़ना पडेगा। अब मायका छोडना पड रहा है। अपने माता-पिता से बिछुड कर जा रही हूँ, इसी दिन के लिए मैं विवाह के समय रोई थी मै अपनी सखि-सहेलियाँ छोड़ रही हूँ, मै सबको त्यागकर अकेली दूर जा रही हूँ। जहाँ रह न सकी जिसको छोडकर चलना अनिवार्य हो गया ऐसे पिता गृह मे, मै उत्पन्न होते हुए ही क्यो न मर गई। पिता के घर मैने कौन-सा सुख देखा, यहाँ का रहना सपने के समान हो गया। वह निष्ठुर पिता हमे कुमारी ही रखता तो अच्छा था। विवाह होने पर यह जो वियोग दु:ख सहना पड़ रहा है वह तो नही सहना पड़ता। हृदय मे दु:ख व्याप्त हो रहा है। ऐसा लगता है मानो प्राण रुँध गए हो। कमर पर हाथ रख कर वह मन मे सोच-सोच कर रो रही थी।

टिप्पणी—ऐहि ·····रोई—डाक्टर अग्रवाल ने इसका पाठान्तर दिया है 'ऐहि रे दिवस मै होति रोइ' दोनो ही पाठ अपने-अपने ढग पर ठीक है किन्तु शुक्ल जी का पाठ अधिक साँकेतिक है। तब शब्द मे सवृतिवक्रता है। कवि की व्यजना है कि जीव

आते ही ससार मे इसलिए रोता है कि हमें इस ससार को छोडकर एक दिन जाना पडेगा।

नइहर······देखा—यहाँ पर काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य से कवि ने यह व्यजित किया है कि नैहर मे किसी को सुख नही मिलता है। नइहर मे रूपक अलकार भी है। कवि का अभिप्राय इस ससार रूपी नैहर से है।

विशेष—कवि ने इस अवतरण मे पदमावती का चित्र प्रवत्स्यपतिका के रू मे चित्रित किया है।

पुनि पदमावति सखी बुलाई। सुनि कै गवन मिलै सब आई॥
मिलहु, सखी! हम तहँवाँ जाही। जहाँ जाइ पुनि आउब नाही॥
सात समुद्र पार वह देसा। कित रेमिलन, कित आव सदेसा॥
अगम पंथ परदेस सिधारी। न जनौ कुसल कि बिथा हमारी॥
पितै न दोह कीन्ह हिय माँहा। तहँ को हमहि राख गहि बाहाँ॥
हम तुम मिलि एकै संग खेला। अंत बिछोह आनि गिउ मेला॥
तुम्ह अस हित सघती पियारी। जियत जीउ नहि करौ निनारी॥
कंत चलाई का करौ आयसु जाइ न मेटि॥
पुनि हम मिलहिं कि ना मिलाहि, लेहु सहेली भेटि॥६॥

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती और सखियो का सवाद वर्णित किया है।]

फिर पदमावती ने अपनी सखियो को बुलाया। उससे जाने का समाचार पाकर वे वहाँ आई। उनसे पदमावती कहने लगी, हे सखि, आओ भेट लो। हम वहाँ जा रही है जहाँ से कोई लौटकर नही आता। वह देश सात समुद्र के पार है। फिर मिलन कब होगा, कैसे होगा। सन्देश आएगा या नही, अगम मार्ग के प्रदेश को जा रही हूं। मालूम नही कि कुशल से रहूँगी या कष्ट से पिता ने। हमसे जरा भी दया नही की। तो वहाँ फिर हमे हाथ पकड़ कर कौन रखेगा। हम तुम मिलकर एक साथ खेले थे। किन्तु अन्त मे हम लोगो के गले यह वियोग पड़ रहा है। तुम्हारी जैसी हितैषिणी और साथ देने वाली प्रिय सखियो को जीते जी अलग नही करना चाहती थी किन्तु क्या करूँ पति की आज्ञा से चलना पड़ रहा है। इसलिए मै चल रही हू। उसकी आज्ञा मेटी नही जा सकती। पता नही हम फिर मिलेगी या नही इसलिए हे सखियो भेट लो।

टिप्पणी—मिलहुँ······नाही—इस पक्ति मे कवि ने तँहवा और जहाँ शब्द मे सम्वृतिवक्रता का प्रयोग किया है। यहाँ पर कवि का संकेत परलोक से है।

विशेष—इस अवतरण मे कवि ने एक नवोढा की पति के घर चलने के समय की भावनाओ का मार्मिक चित्र खीचा है।

धनि रोवत रोवहिं सब सखी। हम तुम्ह देखि आपु कहँ झरँखी ।।
तुम्ह ऐसी जौ रहै न पाई। पुनि हम काह जो आहिं पराई ।।
आदि अंत जो पिता हमारा। ओहु न यह दिन हिये विचारा ।।
छोह न कीन्ह निछोही ओहू। का हम्ह दोष लाग एक गोहूँ ।।
मकु गोहूँ कर हिया चिराना। पै सो पिता न हिये छोहाना ।।
औ हम देखा सखी सरेखा। एहि नैहर पाहुन के लेखा ।।
तब तेइ नैहर नाहीं चाहा। जौ ससुरारि होइ अति लाहा ।।
चालन कहुँ हम अवतरी, चलन सिखी नहिं आय।
अब सो चलन चलावै, को राखै गहि पाय? ।।७।।

[इस अवतरण में भी पदमावती और उसकी सखियो के सम्वाद का विस्तार किया गया है।]

पदमावती के रोने पर सब सखियाँ रोने लगी और कहने लगी तुम्हें देखकर हम सब बड़ी खिन्न है। जब तुम्हारी जैसी राजकुमारी मायके में नही रह पायी तो हमारी जो पहले से ही पराये आश्रित है क्या कहा जाय? हमारा जो आदि पिता परमात्मा है, उसने इस दिन के विषय मे ना मालूम क्यों नही सोचा था। वह भी बड़ा निष्ठुर है, उसने हमारे ऊपर दया नही की। हमें केवल गेहूँ के लिए दोषी ठहराया गया। इस गेहूँ का हृदय तो फट गया परन्तु हमारे परमपिता परमात्मा का हृदय द्रवित नही हुआ। ऐ चतुर सखियो हमने खूब देख लिया कि इस पिता के घर मे हम अतिथि के समान थी। पिता गृह को वही लड़की नहीं चाहती जिसे ससुराल मे अधिक सुख मिलता। जाने के लिए ही हमारा जन्म हुआ था। किन्तु आ करके हमने चलना नही सीखा। अब जब पति ने चलने की आज्ञा दी है तो उसके चरणों को पकड करके मुझे जाने से कौन रोक सकता है।

टिप्पणी—का······गु हूँ—इसमे एक अन्तर्कथा है। मुसलमानो के अनुसार जिस पौधे के फल को खुदा के मना करने पर भी हऊआ ने आदम को खिलाया था वह गेहूँ था। इसी निषिद्ध फल के खाने के दोष से खुदा ने हऊआ और आदम को बहिश्त से निकाल दिया था। इस स्वतः सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंग्य है कि विवाह करने के छोटे से अपराध के बदले आज यह दुःख देखना पड रहा है।

आदि······हमारा—डाक्टर अग्रवाल ने लिखा है कि यहाँ पर एक मध्यकालीन प्रथा की ओर सकेत किया गया है। उस प्रथा के अनुसार सामन्त लोग अपनी सुन्दर कन्याओं को राजमहल मे सौंप दिया करते थे। राजा रानी उनके पिता समझे जाते थे। इसीलिए यहाँ पर सखियों ने अपने वास्तविक पिता के लिए आदि पिता शब्द का प्रयोग किया है।

तुम वारी, पिउ दुहुँ जग राजा। गरब किरोध ओहि पै छाजा ॥
सब फर फूल ओहि के साखा। चहै सो तूरै, चाहै राखा ॥
आयसु तिहे रहिहु निति हाथा। सेवा करिहु लाइ भुइँ माथा ॥
बर पीपर सिर ऊभ जो कीन्हा। पाकरि तिन्हहि छीन कर दीन्हा ॥
बौरि जो पौढ़ि सीस भुइँ लावा। बड फल सुफल ओहि जग पावा ॥
आम जो फरि कै नवै तराही। फल अमृत भा सब उपराही ॥
सोइ पियारी पियहि पिरीती। रहै जो आयसु सेवा जीती ॥
पत्रा काढ़ि गवन दिन देखहिं, कौन दिवस यहुँ चाल।
दिसा सूल चक जोगिनी सौहँ न चलिए, काल ॥८॥

[इस अवतरण मे कवि ने सखियो के द्वारा पदमावती को पति की आज्ञा-पालन का उपदेश दिलाया है।]

सखियाँ कहती है कि तुम अभी वाला हो और पति दोनो जग का स्वामी है। गर्व और विरोध करना उसी को शोभा देता है, तुम्हे नही। उसी की जीवन शाखा मे सब फल-फूल फूलते-फलते हैं, जिसको चाहे उसे तोडे और जिसको चाहे उसे रखे यह उसका अधिकार है। उसकी आज्ञा नित्य पालन करती रहना और पृथ्वी पर मस्तक टेक कर उसकी सेवा करना। वरगद, पीपल और पाकड इनके वृक्ष ऊँचे होते हैं इसीलिए भगवान ने इनमे छोटे फल दिये है। लेकिन वेले जो धरती पर फैलती है वे वडे-वडे फलो से लदी रहती है। आम जो फल कर नीचे झुकता है तभी वह अमृत फल देता है। वही स्त्री पति को प्यारी लगती है जो उसकी सेवा मे रहकर आज्ञा पालन करती है।

पत्रा निकाल कर जाने का दिन देखती कि कौन दिन चाल है। दिशा सूल, जोगनी चक्र और काल सम्मुख हो तो नही चलना चाहिए।

टिप्पणी—तुम······छाजा—यहाँ पर सखियाँ यह व्यजित करना चाहती है कि तुम ससुराल मे जाकर न तो गर्व करना और न किसी बात मे पति का विरोध करना।

विशेष—यहाँ पर कवि अपनी ज्योतिष सम्बन्धी वहुज्ञता का निदर्शन करना चाहता है।

अदित सूक पच्छिउँ दिसि राहू। बीफै दखिन लंक-दिसि दाहू ॥
सोम सनीचर पुरुब न चालू। मंगल वुद्ध उतर दिसि कालू ॥
अवसि चला चाहै जौ कोई। औपद कहौ, रोग नहि होई ॥
मंगल चलत मेल मुख धनिया। चलत सोम देखै दरपनिया ॥
सूकहि चलत मेल मुख राई। वीफै चलै दखिन गुड़ खाई ॥

अदित तँवोल मेलि मुख मंड़ै। बायविरंग सनीचर खंड़ै ॥
बुद्धहि दही चलहु करि भोजन। औषद इहै, और नहिं खोजन ॥
अब सुनु चक्र जोगिनी ते पुनि थिर न रहाहिं ॥
तीसौ दिवस चन्द्रमा आठौ दिसा फिराहिं ॥६॥

[इस अवतरण में कवि ने दिशा सूल की स्थिति का वर्णन किया है।]

इतवार और शुक्रवार को पश्चिम दिशा में दिशा सूल रहता है। बृहस्पति को दक्षिण मे दिशा सूल रहता है। सोम शनिचर को पूरब की ओर नही चलते। मंगल, बुध को उत्तर की ओर नही जाते क्योकि उधर काल रहता है। यदि किसी को अनिवार्य रूप से उधर जाना ही हो तो फिर उसके लिए उपाय बताते है। मंगल को यात्रा करते समह मुँह मे धनिया रख लेना चाहिए। सोमवार को दिशासूल की ओर जाना हो तो दर्पण में अपना मुख देख कर जाना चाहिए। शुक्रवार को मुँह मे राई डाल करके दिशा सूल की ओर जाना चाहिए। इतवार के दिन पान खाकर दिशा सूल की ओर जाना चाहिए। शनिचर के दिन वाईविड़ग मुँह मे डाल कर चलना चाहिए। बुध के दिन दधि का भोजन करके चलना चाहिए। दिशासूल को दूर करने के यही उपाय है। दूसरे उपाय खोजने की आवश्यकता नही है।

अब जोगिनी चक्र के विपय मे सुनिये। जोगिनी और चन्द्रमा तीसो दिन आठों दिशाओं मे घूमते रहते है। वे कभी स्थिर नही रहते।

टिप्पणी—चक्र जोगिनी—यात्रा करते समय तान्त्रिक दृष्टि से योगिनी विचार भी आवश्यक होता है। प्राचीन ज्योतिपी इसको महत्त्व नही देते थे। सूफी कवियो ने अपनी जानकारी प्रकट करने की कामना से दिशा सूल और जोगिनी विचार को महत्त्व दिया है।

विशेष—जोगिनी चक्र की चर्चा अन्य सूफी कवियों ने भी की है।

सूफी परम्परा के कविवर नूर मोहम्मद ने अपनी इन्द्रावती मे योगिनी चक्र का वर्णन इस प्रकार किया है—

सत्ताइस उन्निस बारह चारी योगिनि पश्चिम चली विचारी।
इन नौ सोरह चौबिस माही पूरब दखिन कोण विच माही।
छब्बिस अठारह ग्यारह तीन योगिन देखे पाँच प्रवीन।
दुइ पचीस सत्रह दस होई दखिन पच्छिम बिच जानो सोई। इत्यादि

इसी प्रकार कासिम शाह ने हस जवाहिर मे दिशा सूल का वर्णन किया है।

देखे पण्डित वेद विचारी अदिति सूक पच्छिम दिसि भारी
मंगल बुद्ध उत्तर दिसि गाढा, समहु काल कटक लिए ठाढा।
सोम सनिचर पूरब हीना, बेफे दखन सो औगुन चीन्हा ॥ इत्यादि

इस प्रकार के वर्णनो से इन सूफी कवियो ने हिन्दू आस्थाओ और भावनाओ की अपनी जानकारी एव आस्था प्रकट की है।

बारह ओनइस चारि सताइस । जोगिनि पच्छिउँ दिसा गनाइस ।।
नौ सोरह चौबिस औ एका । दक्खिन पुरुब कोन तेइ टेका ।।
तीन इगारह छबिस अठारहु । जोगिनि दक्खिन दिसा बिचारहु ।।
दुइ पचीस सत्रह औ दसा । दक्खिन पछिउँ कोन बिच बसा ।।
तेइस तीस आठ पन्द्रहा । जोगिनि होहि पुरुष सामुहा ।।
चौदह बाइस ओनतिस साता । जोगिनि उत्तर दिसि कहँ जाता ।।
बीस अठाइस तेरह पाँचा । उत्तर पछिउँ कोन तेइ नाचा ।।
एकइस औछ जोगिनि उत्तर पुरुब के कोन ।।
यह गनि चक्र जोगिनि बाँच जौ चह सिध होन ।।१०।।

[इस अवतरण मे कवि ने जोगिनी चक्र के आधार पर यात्रा विचार की चर्चा की है ।]

महीने की चौथी, वारहवी, उन्नीसवी और सत्ताईसवी तिथियो मे जोगिनी दक्षिण पश्चिम कोने मे रहती है । अत. पश्चिम दिशा की यात्रा मे इन तिथियो मे जोगिनी का विरोध समझना चाहिए, नवी, सोलहवी, चौदहवी, पहली इन तिथियो मे पूर्व दक्षिण मे नही जाना चाहिए, क्योकि जोगिनी पूर्व मे रहती है । अतः दक्षिण दिशा मे जोगिनी का विचार करते हुए यात्रा नही करनी चाहिए । दूसरी, पच्चीसवी, सत्रहवी, दसवी इन तिथियो मे जोगिनी उत्तर मे रहती है । अतः दक्षिण पश्चिम के कोने मे यात्रा की जा सकती है क्योकि जोगिनी दाहिने हाथ रहने से यात्रा कल्याण-प्रद रहती है । तेईस, तीस, आठ और पन्द्रह इन तिथियो मे जोगिनी उत्तर दिशा मे निवास करती है । इसलिए पूर्व दिशा मे इन तिथियो मे यात्रा वर्जित है । बीस, अट्ठाईस, तेरह, पाँच इन तिथियो मे जोगिनी का निवास दक्खिन दिशा मे रहता है । अत. उत्तर-पश्चिम के कोने की यात्रा वचानी चाहिए, चौदह, वाईस, सात और उन्तीस इन तिथियो मे जोगिनी की स्थिति उत्तर-पश्चिम कोने मे रहती है । अतः उत्तर दिशा मे यात्रा नही करनी चाहिए ।

इक्कीस, छ, चौदह इन तिथियो मे जोगिनी पश्चिम मे रहती है । अत' उत्तर-पूरब कोण मे यात्रा जोगिनी दोप करती है । इस प्रकार जोगिनी चक्र को दृष्टि मे रख कर ही सिद्धि के अभिलाषी व्यक्ति को यात्रा करनी चाहिए ।

टिप्पणी—इस अवतरण मे कवि ने जोगिनी चक्र का विचार दिया है । ज्योतिप के अनुसार जोगिनी सामने और वाएँ अशुभ रहती है । दाहिने और पीठ पीछे रहने पर शुभ होती है । जायसी का यह जोगिनी विचार भारतीय ज्योतिप के अनुरूप है ।

परिवा, नवमी पुरुब न भाए । दूइज दसमी उतर अदाएँ ।।
तजि एकादसि अगनिउ मारै । चौथि, दुवादसि नैऋत वारै ।।
पाँचइँ तेरसि दखिन रमेसरी । छठि चौदसि पच्छिउँ परमेसरी ।।

सतमी पूनिउँ वायव आछी। अठइँ अमावस ईसन लाछी ॥
तिथि नछत्र पुनि वार कहीजै। सुदिन आय प्रस्थान धरीजै ॥
सगुन दुघरिया लगन साधना। भद्रा औ दिकसूल वाचनाँ ॥
चक्र जोगिनी गनै जो जानै। परवर जीति लच्छि घर आनै ॥
सुख समाधि आनन्द घर कीन्ह पयाना पीउ।
थरथराह तन, काँपै धरकि धरकि उठ जीउ ॥११॥

[इस अवतरण में कवि ने तिथियो के अनुसार यात्रादोष का वर्णन किया है।]

पड़वा और नौमी को पूरब की ओर नही जाना चाहिए। द्वीज और दशमी को उत्तर जाना अनुचित होता है। तीज और एकादशी को अग्नि कोण मे नही जाना चाहिए। चौथ और द्वादशी को नैर्ॠत्य कोण मे नही जाना चाहिए। पंचमी और तेरस को रमेशरी जोगिनी दक्खिन मे रहती है। छठ और चौदस को परमेशरी पच्छिम में रहती हैं। सप्तमी और पूर्णिमा को वायव्य दिशा मे जोगिनी रहती है। आठे और अमावस को ईशान कोण मे महालक्ष्मी रहती है। तिथि नक्षत्र और वार विचार करके अच्छा दिन सोच करके प्रस्थान करना चाहिए। दुघरिया मुहूर्त का भी विचार करके चलना चाहिए। भद्रा और दिशा सूल भी देख लेने चाहिए। जो जोगिनी चक्र इत्यादि गिनना जानता है वह शत्रु को बलपूर्वक जीत कर लक्ष्मी को घर लाता है।

घर मे सुख, सम्पत्ति और आनन्द सब कुछ होने पर भी पति ने परदेश प्रस्थान किया है। शरीर थर-थर काँपता है और हृदय धडक-धडक उठता है।

टिप्पणी—इस अवतरण मे कवि ने जोगिनी विचार का ही विस्तार किया है। यह विचार एक पखवारे का है। दूसरे पखवारे की तिथियो के लिए पन्द्रह दिन जोड़ देने चाहिए, जैसे चार और बारह मे पन्द्रह जोड देने से क्रमशः उन्नीस और सत्ताईस हो जाएँगे। योगिनी वास चक्र एक पखवारे का इस प्रकार है—

योगिनी वास चक्र

वायव्य ७, १५	उत्तर २, १०	ईशान ८, ३०
पश्चिम ६, १४	××××	पूर्व १, ९
नैर्ॠत्य ४, १२	दक्षिण ५, १३	आग्नेय ३, ११

'चलहु चलहु' भा पिउ कर चालू । घरी न देख लेत जिउ कालू ।।
समपि लोग पुनि चढ़ी विवाना । जेहि दिन डरी सो आइ तुलाना ।।
रोवहिं मात-पिता औ भाई । कोउ न टेक जौ कंत चलाई ।।
रोवहि सब नैहर सिंघला । लेइ बजाइ कै राजा चला ।।
तजा राज रावन, का केहू ? । छाड़ाँ लंक विभीपन लेहू ।।
भरी सखी सब भेंटत फेरा । अन्तकंत सौ भएउ गुरेरा ।।
कोउ काहू कर नाहि निप्राना । मया मोह बाँधा अरुझाना ।।
कंचन-कया सो रानी रहा न तोला माँसु ।
कंत कसौटी घालि कै चूरा गढै कि हाँसु ।।१२।।

[इस अवतरण में कवि ने पदमावती के प्रस्थान का वर्णन किया है ।]

चलो-चलो कहकर पति ने प्रस्थान कर दिया । काल प्राण लेते समय घडी नही देखता । लोगो को प्रणाम करके पदमावती विमान पर चढी । जिस दिन को वह डर रही थी वह दिन आ पहुँचा । माता-पिता और भाई रो रहे थे जब पति विदा करा कर लिये जा रहा था । तब उसको रोकने की शक्ति किसी मे नही थी । सिहल-गढ़ मे जो कि पदमावती का पिता गृह था, सब रो रहे थे । राजा दहेज लेकर बाजा बजा कर चल दिया । और दूसरे की किसकी कही जाय रावण के समान शक्तिशाली राजा को भी लका का राज्य त्याग कर चलना पड़ा और लंका विभीषण के लिए अर्थात् दूसरों के लिए छोड दी । सखियो से भेट कर और भीड़ को छोडकर पदमावती घूम कर चल दी । अन्त मे पति से ही उसका साथ रह गया । अन्त मे कोई किसी का नही होता । सब मायामोह मे ही बँधे और उलझे हुए है ।

पदमावती का शरीर कंचन के समान सुन्दर था, लेकिन उसमे तोला भर माँस भी न रहा । पति उसे कसौटी पर डालकर चाहे चूरा कर दे या गले की हंसली बना ले ।

टिप्पणी—समादि=भेंट करके ।

तजा······लेऊँ—कवि की व्यजना है कि ससार का सुख वैभव शक्तिशाली से शक्तिशाली जीव तक को छोड़ना पडता है । फिर उस भौतिक साम्राज्य का उपभोग कोई भी करे, इसी प्रकार मुझे भी सिहल का वैभव छोड कर जाना पड रहा है । अब मेरे पीछे इस वैभव का उपभोग चाहे कोई करे । यहाँ पर स्वत सम्भवी वस्तु से उपमा अलंकार व्यंग्य है ।

जब पहुँचाइ फिरा सब कोऊ । चला साथ गुन अवगुन दोऊ ।।
औ सँग चला गवन सब साजा । उहै देइ अस पारै राजा ।।
डोली सहस चली सँग चेरी । सब पदमिनि सिंघल केरी ।।
भले पटोर जराव सँवारे । लाख चारि एक भरे पेटारे ।।

रतन पदारथ मानिक मोती । काढ़ि भँडार दीन्ह रथ जोती ॥
परखि सो रतन पारखिन्ह कहा । एक-एक दीप एक-एक लहा ॥
सहसन पाँति तुरय कै चली । श्रौ सौ पाँति हस्ति सिघली ॥
लिखनी लागि जौ लेखै, कहै न परै जोरी ।
श्ररब, खरब दस नील, संख श्रौ श्ररवुद पदुम करोरि ॥१३॥

[इस श्रवतरण मे कवि ने पदमावती के साथ जो दहेज के रूप मे सम्पत्ति दी गई थी उसका वर्णन किया है ।]

जब सब लोग पदमावती को कुछ दूर तक पहुँचा कर लौट श्राए तो उसके साथ केवल उसके गुण श्रौर श्रवगुण ही रह गए । इसके श्रतिरिक्त उसके साथ गौने का जितना सामान दिया गया था उसे गन्धर्वसेन राजा ही दे सकता था । उसके साथ मे एक सहस्र चेरियाँ पालकियो मे वैठ कर चली । वे सब सिंहल की पदमिनियाँ थी । सुन्दर-सुन्दर जडाऊ साडियाँ सजा कर रखी गई थी जिनसे चार लाख पिटारे भर गए । रत्न पदार्थ, माणिक्य श्रौर मोती यह सब राजकोष मे से निकाल कर जुते हुए रथो मे साथ कर दिये गए । उन रत्नो को परखने वाले पारखियो ने कहा कि उनमे से प्रत्येक नग सृष्टि मे सर्वोत्तम तथा श्रतुलनीय था । एक सहस्र पक्तियाँ घोडों की चली श्रौर सैकडो पक्तियाँ सिंहली हाथियो की चली ।

यदि उनका हिसाब कोई लाखो मे भी लगाना चाहता तो सबको जोड़ करके सही सख्या नही बता सकता था । उनका जोड करोड़, श्ररब, खरब, नील, सख श्रौर पद्मो मे था ।

टिप्पणी—उहै—का श्रर्थ है उतना श्रधिक । इसमे सम्वृतिवक्रता है ।

श्रौ सौ—इसमे भी सम्वृतिवक्रता है ।

भले······सँवारे– डाक्टर श्रग्रवाल मे इसका पाठान्तर है ।

'भव पटवन्ह खरवार सँवारे ।'

इसमे खरवार का श्रर्थ स्पष्ट नही है । हमारी समझ मे शुक्ल जी का पाठ ही श्रधिक उपयुक्त है ।

देखि दरब राजा गरबाना । दिस्टि माँह कोइ श्रौर न श्राना ॥
जौ मैं होहुँ समुद्र के पारा । को है मोहि सरिस संसारा ॥
दरब ते गरब, लोभ बिष-भूरी । दत्त न रहै सत्त होइ दूरी ॥
दत्त-सत्त है दूनौ भाई । दत्त न रहै, सत्त पै जाई ॥
जहाँ लोभ तहँ पाप सँघाती । सँचि कै मरै श्राना कै थाती ॥
सिद्ध जो दरब श्रागि कै थापा । कोई जार, जारि कोई तापा ॥
काहू चाँद, काहू भा राहू । काहू श्रमृत, विष भा काहू ॥

तस भुलान मन राजा लोभ-पाप अँधकूप।
आइ समुद्र ठाढ़ भा कै दानी कर रूप ।।१४।।

[इस अवतरण मे कवि ने लोभ और अभिमान की निन्दा की है।]

द्रव्य को देख करके राजा अभिमान से भर गया, उसकी दृष्टि मे अब और कोई नही आ रहा था। वह सोचने लगा यदि मै समुद्र के पार हो जाऊँ तो संसार मे मेरे समान और कोई नही होगा। धन से अभिमान होता है। लोभ विष की जड है। अभिमान और लोभ के कारण दिये हुए दान का भी महत्त्व नही रहता और सत्य भी चला जाता है। जहाँ लोभ होता है वहाँ पर पाप साथी बन जाता है। दूसरे के लिए जोड़-जोड़ मर जाते है। सिद्ध पुरुषो के लिए धन अग्नि के समान होता है। संसार मे धन किसी लोभी के लिए तो जला देता है। इसके विपरीत कोई सिद्ध धन को जला कर तापता है। वह धन किसी के लिए राहु रूप होता है, किसी के लिए चाँद रूप होता है। किसी के लिए वह अमृत रूप होता है, किसी के लिए वह विष रूप होता है। राजा का मन लोभ और पाप के अन्धे कुएँ को देखकर आत्म-विस्मरण कर बैठा। इसी बीच मे समुद्र दान लेने वाले याचक के रूप मे सामने आकर खड़ा हो गया।

विशेष—इस अवतरण मे कवि ने अभिमान और लोभ के दुष्परिणाम व्यंजित किए हैं।

देश यात्रा खण्ड

बोहित भरे, चला लेइ रानी। दान माँगि सत देखै दानी॥
लोभ न कीजै दीजै दानू। दान पुन्नि ते होइ कल्यानू॥
दरव-दान देवै विधि कहा। दान मोख होइ, दुख न रहा॥
दान आहि सब दरव क जूरू। दान लाभ होइ बाँचै मूरू॥
दान करै रच्छा मँझ नीरा। दान खेइ कै लावै तीरा॥
दान करन कै दुइ जग तरा। रावन सँचा, अगिनि महँ जरा॥
दान मेरु बढि लागि अकासा। सैंति कुबेर मुए तेहि पासा॥
चालिस अंस दरब जहँ एक अँस तहँ मोर।
नाहित जरै कि बूड़ै, की निसि मूसहि चोर॥१॥

[इस अवतरण मे कवि ने दान की महिमा का वर्णन किया है।]

राजा जहाज को द्रव्य से भरे हुए तथा रानी को लिए हुए जा रहा था। इतने मे समुद्र याचक का रूप धर कर उसके सत की परीक्षा लेने के लिए दान माँगने आ पहुँचा और राजा से बोला—हे राजन्! आप लोभ न करे, आप दान दे। दान पुण्य से कल्याण होता है। दान ही वास्तव मे द्रव्य को जोडता है। दान से यह लाभ होता है कि दान देने पर भी मूल बच जाता है। दान जल के भीतर रक्षा करता है और दान ही खे कर किनारे लाता है। कर्ण दानी था इसलिए इस लोक और परलोक दोनो मे उसकी प्रतिष्ठा हुई। इसके विपरीत रावण ने दान न देकर केवल धन सचय भर किया था तो उसकी लका अग्नि से जल गई। दान सुमेरु की तरह बढ करके आकाश तक पहुँच जाता है और कुबेर सग्रह करके उसी के साथ मर जाता है।

याचक समुद कहता है चालीस अश द्रव्य से एक अंश हमारा अवश्य होता है और यदि जो इसे नही देता है तो उसका धन या तो जल जाता है या डूब जाता है या यात्रा मे चोर चुरा कर ले जाते है।

टिप्पणी—इस अवतरण मे जायसी ने इस्लाम मे वर्णित जकात या दान की महिमा का वर्णन किया है।

जायसी के सदृश ही अन्य सूफी कवियो ने भी दान की महिमा का वर्णन किया है—

(१) चालिस अंस मह एक निकारो देउ दान तों पार सिधारो।
एक दिए जो दस गुन पावे, ऐस वनिज कतीर करावे।।
—नूर मोहम्मद कृत अनुराग वासुरी, पृष्ठ १५४

(२) चालिस अंस मे एक अलाना।
रब के नॉव दउ तुम दाना।।
—शेखरहीम, प्रेमरस

(३) दान दियो तहि होउ उबारा। दान विना बूदो मझधारा।।
दान सुपत ऊपर पति होई। दान शुद्ध पावै सब कोई।।
दान देत दोउ जग केरा जिन दीना तिन कीन उजेरा।।
—कासिमशाह कृत जवाहिर, पृष्ठ १९८

(४) दुई जग हित दान समनाही।
बूड़त दधि कोढ़े गहि बाही।।
—उसमान कृत चित्रावली, पृष्ठ ८८

(५) चालिस दरब मां एक मोहि देवो।
उतरो पार राह तब पावो।।
अलीमुराद कृत—कुँवरावत से

सुनि सो दान राजै रिस मानी। केइ बौराएसि बौरे दानी।।
सोई पुरुष दरब जेइ सैंती। दरबहि तैं सुनु बातैं एती।।
दरब ते गरब करै जे चाहा। दरब तें धरती सरग वेसाहा।।
दरब ते हाथ आव कबिलासू। दरब ते अछरी छाँड़ न पासू।।
दरव ते निरगुन होइ गुनवंता। दरव ते कुब्रुज होइ रूपवंता।।
दरव रहै भुइँ दिपै लिलारा। अस मन दरव देइ को पारा?।।
दरब ते धरम-करम औ राजा। दरब ते सुद्ध बुद्धि बल गाजा।।
कहा समुद्र, रे लोभी। बैरी दरब न झाँपु।
भएउ न काहू आपन। मूँद पेटारी साँपु।।२।।

[इस अवतरण मे कवि ने याचक के प्रति राजा के रोष भाव की व्यजना की है।]

याचक समुद्र की वात सुन कर राजा क्रुद्ध हो गया और कहने लगा—हे बावले याचक! तुझको किसने वौरा दिया है। पुरुष वही होता है जिसके पास धन होता है। समझ ले धन से ही सव वाते होती है। धन से ही मनुष्य मनमाना गर्व कर सकता है। धन से ही धरती और आकाश खरीदे जा सकते है। धन से ही स्वर्ग भी हाथ मे आ सकता है। धन से अप्सराएँ साथ नही छोड़ती है। धन से ही गुणहीन

गुणवान वन जाता है। और धन से ही कुवडा रूपवान वन जाता है। धन होने से संसार मे मनुष्य का ललाट दिपता है। जो मन मे धन के इस मूल्य को पहचानता है वह उसे दान मे कैसे दे सकता है। धन से ही धर्म-कर्म और राज्य सब कुछ रहता है।

यह सुनकर समुद्र ने कहा—अरे लोभी इस वैरी धन को इस प्रकार न छिपा। यह किसी का अपना नही हुआ है। जिस प्रकार पिटारी मे वन्द साँप का कुछ विश्वास नही होता उसी प्रकार इसका कुछ विश्वास नही।

टिप्पणी—दरव······लिलारा—यहाँ पर असंगत अलंकार है।

मूंद पिटारी······साँप—यहाँ पर उपमा अलंकार व्यंग्य है। कवि यह व्यंजित करना चाहता है कि यदि साँप को पिटारी मे वन्द करके रखा जाय जिस प्रकार फिर भी वह धोखा देता है उसी प्रकार धन को चाहे कितना भी छिपा कर संचित रखा जाय वह मनुष्य को धोखा देता है।

यहाँ पर उपमा अलंकार से वस्तु व्यग्य है। द्रव्य की नश्वरता व्यंग्य है।

विशेष—द्रव्य महिमा वर्णन सूफी कवियो का प्रिय विषय था। उस्मान ने चित्रावली मे लिखा है—

दरवहि ते यह राज पसारा।
दरव लागि जग होइ जो हारा॥

आधे समुद ते आए नाही। उठीं वाउ आँधी उतराही॥
लहरैं उठी समुद उलथाना। भूला पंथ, सरग नियराना॥
अदिन आइ जौ पहुँचै काऊ। पाहन उड़ै वहै सा वाऊ॥
वोहित चले जो चितउर ताके। भए कुपंथ, लंक-दिसि हाँके॥
जो लेइ मार निवाहि न पारा। सो का गरव करै कंधारा॥
दूरव-भार सग काहु न उठा। जेइ सैता ताही सौ रूठा॥
गहे परवान पंखि नहिं उड़ै। 'मौर मौर' जो करै सो वुड़ै॥
दरव जो जानहि आपना, भूलहि गरब मनाहि।
जौरे उठाइ न लेइ सके, वोरि चले जल माहिं॥३॥

[इस अवतरण मे कवि ने समुद्री तूफान का, जिसके परिणामस्वरूप राजा रतनसेन के वे जहाज जो सम्पत्ति से भरे हुए थे, पथ भ्रष्ट हुए, वर्णन किया है।]

कवि कहता है कि वह आधे समुद्र मे आ भी नही पाए थे। उत्तरी आँधी के साथ-साथ तेज हवा चली या ऊपरी हवा का अन्धड़ आता हुआ दिखाई पड़ा, लहरे उठने लगी और समुद्र उमडने लगा। मार्ग भूल गया और ऐसा लगा कि मानो आकाश पास आ गया हो। जव किसी का वुरा दिन आता है तो ऐसी वायु चलती है।

कि पत्थर तक उडने लगते है। जो जहाज चित्तौड की ओर चल रहे थे वे पथ भ्रष्ट होकर लंका की ओर चल दिए। जब तक जहाज का कर्णधार बोझे को दूसरी पार पहुँचा न दे तब तक उसका घमण्ड व्यर्थ होता है। धन का बोझ किसी के साथ नही जाता है। जो उसको एकत्रित करता है, उसी से वह रूठ जाता है। जो पक्षी पत्थर लेकर उड़ना चाहता है वह उड नही सकता। जिसने मेरा-मेरा किया वही डूब गया। धन को जो अपना मानते है वे मन मे घमण्ड से भूले रहते है। यदि बोझे को उठा कर चलने की सामर्थ्य न हो तो उसे उचित है कि बोझा जल मे डुबा कर यात्रा करे।

टिप्पणी—जेइ······रूठा—यहाँ पर असगत अलंकार है।

केवट एक विभीषन केरा। आव मच्छ कर करत अहेरा॥
लंका कर राकस अति कारा। आवै चला होइ अँधियारा॥
पाँच मूँड़, दस बाही ताही। दहि भा साँव लंक जब दाही॥
धुआँ उठै मुख साँस सँघाता। निकसै आगि कहै जो बाता॥
फेकरे मूँड़ चँवर जनु लाए। निकसि दाँत-मुह बाहर आए॥
देह रीछ कै, रीछ डराई। देखत दिस्टि धाइ जनु खाई॥
राते नैन नियर जौ आवा। देखि भयावन सब डर खावा॥
धरती पाँय सरग सिर, जनहुँ सहस्राबाहु।
चाँद सूर औ नखत महँ अस देखा जस राहु॥४॥

[इस अवतरण मे कवि ने विभीषण के एक राक्षस के द्वारा रतनसेन के प्रति किए गए आक्रमण का वर्णन किया है।]

विभीषण का एक केवट मछली मारता हुआ उधर आ पहुँचा। लका का वह अत्यन्त काला राक्षस जब चला आ रहा था तो अन्धकार होता जा रहा था। उसके पाँच सिर और दस भुजाएँ थी। जब लंका जली थी तब वह जल कर काला हो गया था। साँस के साथ उसके मुह से धुँआ निकलता था और जब बात कहता था तो अग्नि निकलती थी। नगे सिर पर ऐसे बाल बिखरे हुए थे मानो कि चमर हो। दाँत मुख से बाहर निकले हुए थे। उसका शरीर रीछ जैसा था। रीछ भी उसको देख कर डर जाता था। आँखो की तरफ देखते ही ऐसे लगता था मानो कि झपट कर खा जाएगा। लाल-लाल आँखे किए हुए जब वह समीप आया तो उस भयानक रूप वाले को देखकर सब डर गए।

उसके पैर धरती पर थे और सिर आकाश को छू रहा था। ऐसा लगता था मानो कि सहस्रबाहु अर्जुन हो। चाँद, सूरज और नक्षत्रो के मध्य मे वह राहू सा दिखलाई पडता था।

टिप्पणी—इस अवतरण मे कवि ने मल्लाहो की कपोल-कल्पित कथाओ के

आधार पर राक्षस का चित्र खींचा है।

दहि······दाही—यहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा अलकार है।

निकसे······बाता—वाच्यार्थ है कि जब वह बात कहता था तो उसके मुंह से आग निकलती थी। यहाँ असंगत अलकार है और असंगत अलकार से राक्षस की भयानकता व्यग्य है। अत यहाँ पर कवि प्रौढोक्ति सिद्ध अलकार मे वस्तु व्यग्य है।

धरती पॉय······सरग सिर—यहाँ पर सम्बन्धातिशयोक्ति अलकार है। उससे वस्तु व्यग्य है। राक्षस की विशालता ही यहाँ व्यंग्य है।

बोहित बहे, न मानहि खेवा। राजहि देखि हँसा मन देवा।
बहुतै दिनहि बार भइ दूजी। अजगर केरि आइ मुख पूजी॥
यह पदमिनी बिभीषन पावा। जानहु आजु अजोध्या छावा॥
जानहु रावन पाई सीता। लंका बसी राम कहँ जीता॥
मच्छ देखि जैसे बग आवा। टोइ टोइ भुइँ पाँव उठावा॥
आइ नियर होइ कीन्ह जोहारू। पूजा खेम कुसल बेवहारू॥
जो बिस्वासघात कर देवा। बड़ बिसवास करै कै सेवा॥
कहाँ, मीत ? तुम भूलेहु औ आएहु केहि घाट ?।
हौ तुम्हार अस सेवक, लाइ देउँ तोहि बाट॥५॥

[इस अवतरण मे कवि ने राक्षस के माया-जाल का वर्णन किया है।]

जहाज बह चले, वे मल्लाहो का खेवा नही मान रहे थे। वह राक्षस राजा को देखकर मन मे हँसा और कहने लगा—आज दूसरी बार अवसर हुआ है कि अजगर को भूख भर भोजन मिला है। अगर यह पद्मिनी विभीषण पायेगा तो ऐसा अनुभव होगा कि उसे अयोध्या प्राप्त हो गई हो। अथवा ऐसा मालूम होगा मानो कि रावण को सीता मिल गई हो। अथवा राम को जीत करके लंका फिर से बस गई हो। मछली देखकर बगुला जैसे धीरे-धीरे आता है और धीरे-धीरे पृथ्वी पर पैर रखता है वैसे ही राक्षस ने समीप आकर प्रणाम किया और कुशल-छेम पूछ करके व्यावहारिक बाते की। जो विश्वासघाती राक्षस था वह सेवा द्वारा गहरा विश्वास जमाना चाहता था।

(वह राजा से कहने लगा) मित्र तुम कहाँ भटक गए हो और किस घाट से आए हो। मैं तुम्हारे सेवक के समान हूँ। मैं तुम्हे उसी मार्ग पर पहुँचा दूंगा।

टिप्पणी—बहुते······पूजी—राक्षस यह व्यंजित करना चाहता है कि उसे उसी प्रकार जीवन मे दूसरी बार मनचाहा भूख भर भोजन मिल रहा है जैसे कि अजगर को सौभाग्य से भूख भर भोजन मिलता है। यहाँ पर उपमा अलकार व्यंग्य है। यहाँ पर स्वत सम्भवी वस्तु से उपमा अलंकार व्यंग्य है।

जानउ······छावा—कवि की व्यंजना है कि विभीषण सीता के समान सुन्दरी पदमावती को पाकर ऐसा अनुभव करेगा मानो कि उसे अयोध्या मिल गई हो। यहाँ पर पदमावती को सीता के समान सुन्दरी व्यजित किया गया है। यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार से उपमा अलंकार व्यंग्य है।

गाढ़ परे जिउ वाउर होई। जो भलि वात कहै भल सोई॥
राजै राकस नियर वोलावा। आगे कीन्ह, पंथ जनु पावा॥
करि बिस्वास राकसहि बोला। वोहित फेरू, जाइ नहिं डोला॥
तू सेवक सेवकन्ह उपराही। वोहित तीर लाउ गहि बाही॥
तोहि ते तीर घाट जौ पावौ। नौगिरिही तोड़र पहिरावौ॥
कुँडल वस्त्रन देउँ पहिराई। महरा कै सौपौ महराई॥
तस मै तोरि पुरावौ आसा। रकसाई कै रहै न बासा॥
राजै बीरा दीन्हा, नहि जाना बिसवास।
वग अपने भख कारन होई मच्छ कर दास॥६॥

[इस अवतरण मे कवि ने राजा और राक्षस के संवाद का प्रत्याहार किया है।]

कवि कहता है आपत्ति के समय मनुष्य का जी वावला होता है। जो कोई भली वात कहता है वही भला मालूम होता है। राजा ने राक्षस को अपने समीप वुलाया और उसको अगुवा वना लिया और ऐसा अनुभव करने लगा मानो कि मार्ग मिल गया हो। वहुत प्रेम-भाव से राजा राक्षस से बोला—पृथ्वी को जल्दी ही स्थिर कर तुम सव नाविको के ऊपर नाविक हो। जहाज पकड करके किनारे ले चलो। अगर तुम्हारे प्रयत्न से मुझको किनारे पर घाट मिल जाएगा तो मैं तुझे नवग्रही टोडर पहना दूंगा। तुम्हारे दोनो कानो के लिए नग जड़े कुण्डल दूँगा और नाविक वनने का पुरस्कार भी तुम्हे दिया जाएगा। मै तुम्हारी इच्छाएँ ऐसी पूर्ण करूँगा कि तुम मे राक्षसपन रह ही नही जाएगा। राजा ने उसे इस प्रकार सम्मान दिया। वह उसके विश्वासघात को नही समझा। वगुला अपने भक्ष्य के कारण मच्छ का दास वन जाता है।

टिप्पणी—नौ······ग्रही—इसमे नवग्रहो की शाति के लिए नौ रत्नो को एक मे गूँथ कर एक आभूषण वना लिया जाता है। सूर्य की शाति के लिए वैदूर्य और चन्द्रमा की शाति के लिए नीलम और मंगल के लिए माणिक, वुद्ध के लिए पुखराज, वृहस्पति के लिए मोती, शनि के लिए मूँगा, राहू के लिए गोमेध और केतु के लिए पन्ना जड़ा जाता है।

टोडर—यह एक प्रकार का कई लड़ो का हार होता है। इसी को शेष हार कहते है।

महरा—यह शब्द केवटो और नाविको के लिए प्रयुक्त किया जाता है। यह महाराज का विगडा हुआ रूप है।

रकसाई—राक्षसपन। यहाँ ऐसा लगता है राक्षस का अर्थ जगली और असभ्य लिया गया है।

राजै······दास—यहाँ पर दृष्टान्त अलंकार है।

राकस कहा "गोसाईं बिनाती। भल सेवक राकस कै जाती॥
जहिया लंक दही श्री रामा। सेव न छाँड़ा यहि भा सामा॥
अबहूँ सेवक करौं सँग लागे। मनुष भुलाइ होउँ तेहि आगे॥
सेतु बँध जहँ राघव बाँधा। तहवाँ चढौ भार लेइ काँधा॥
अब तुरत दान किछु पावौ। तुरत खेइ ओहि बाँध चढ़ावौ॥
तुरत जो दान पानि हँसि दीजै। थोरे दान वहुत पुनि लीजै॥
सेव कराइ जौ दीजै दानू। दान नाहि, सेवा कर मानू॥
दिया बुझा, सत ना रहा हुत निरमल जेहि रूप।
आँधी बोहि उठाई कै लाइ कीन्ह अधकूप॥७॥

[इस अवतरण मे कवि ने राक्षस के द्वारा आत्मप्रशसा करवाई है।]

राक्षस वोला कि हे स्वामी! आपसे मेरी एक विनती है। राक्षस की जाति अच्छी सेवक होती है। जब रामचन्द्र जी ने लका जलाई थी तव भी मै उनकी सेवा मे निरत रहा और जल कर के काला हो गया। अव भी मै संग रह कर सेवा करता हूँ। जो मनुष्य रास्ता भूल जाते है, उनका अगुवा वन करके रास्ता वतलाता हूँ तथा उनको रास्ता दिखलाता हूँ। रामचन्द्र जी ने जहाँ सेतुबन्ध बाँधा था वहाँ पर मैं कन्धे पर वोझा ले करके चढता हूँ। यदि मुझे तुरन्त कुछ दान मिल जाय तो मैं तुरन्त ही खेह करके उस बाँध पर पहुँचा दूँ। जो दान हँस करके तुरन्त हाथ से ही दिया जाता है ऐसा थोड़ा दान भी वहुत पुण्यकारक होता है। इसके विपरीत सेवा कराकर जो दान दिया जाता है उसे दान नही सेवा के वदले मे दिया हुआ धन समझना चाहिए। जिस प्रकार तेल समाप्त होने पर दिया बुझ जाता है जो सवको प्रकाशित करता है उसी प्रकार जब दिया हुआ दान समाप्त हो जाता है तो उसका वह सत्य क्षीण समझना चाहिए जिससे उसका रूप निर्मल रहता है। प्रचण्ड आँधी उठी और उसने आकर सव अधकूप कर दिया।

टिप्पणी—दिया······रूप—यहाँ पर दिया और रूप मे श्लेप है। यहाँ पर श्लेप अलकार से उपमा अलकार व्यंग्य है और उपमा अलकार से भी एक वस्तु, ध्वनि और निकलती है, वह यह है कि राजा रतनसेन का दानजनित पुण्य सव समाप्त हो गया और वह इसीलिए भाग्यहीन हो गया है, जिसके परिणामस्वरूप उसका दुर्भाग्य आ गया है। यहाँ पर कई ध्वनियो का संकर है।

जहाँ समुद्र मझधार मँड़ारू। फिरै पानि पातार-दुआरू॥
फिरि-फिरि पानि ठाँव ओहि मरै। फेनि न निकसै जो तहँ परै॥
ओही ठाँव महिरावन-पुरी। हलका तर जम-कातर छुरी॥
ओही ठाँव महिरावन मारा। परे हाड़ जनु खरे पहारा॥
परी रीढ़ जो तेहि कै पीठी। सेतबंध अस आवै दीठी॥
राकस आइ तहाँ के जुरे। बोहित भँवर-चक्र महँ परे॥
फिरै लगै बोहित तस आई। जस कोहाँर धरि चाक फिराई॥
राजै कहा, रे राकस ! जानि बूझि बौरासि।
सेतुबन्ध यह देखै, कस न तहाँ लेइ जासि॥८॥

[इस अवतरण मे कवि ने राक्षस के छल का वर्णन किया है।]

समुद्र के बीच मे जहाँ पर पानी का गड्ढा था वही पर पाताल का द्वार था। वहाँ पर बार-बार पानी भरता था। जो वहाँ पर फँस जाता था वह वहाँ से निकल नही पाता था। वही पर महिरावणपुरी थी। लहरो के नीचे यम की कटारी थी। उसी स्थान पर महिरावण मारा गया था। वहाँ पर उसकी अस्थियाँ पडी हुई थी। ऐसा लगता था जैसे जहाज खडा हो। जहाँ पर उसकी पीठ की रीढ़ की हड्डी पडी थी वहाँ सेतुबंध का पुल जैसा दिखाई पडता था। राक्षस छल करके जहाज को वहाँ पर डाल देता था जहाँ वे भँवर मे पड जाते थे। ऐसे स्थानो पर जहाज कुम्हार के चक्र की तरह घूमने लगता था। राजा ने कहा, हे राक्षस ! तू जान-बूझ करके बावला बन रहा है; सेतुबन्ध आगे दिखाई दे रहा है। तू वहाँ पर जहाज क्यो नही ले जाता।

टिप्पणी—जम···कातर—जम की कटारी। जायसी यह व्यजित करना चाहते हैं कि वहाँ पहुँच कर हर व्यक्ति मृत्यु के मुख मे समा जाता है। यहा पर अर्थान्तर सक्रमितवाच्य ध्वनि है।

'सेतुबध' सुनि राकस हँसा। जानहु सरग टूटि भुइँ खसा॥
को बाउर ? बाउर तुम देखा। जो बाउर, भख लागि सरेखा॥
पाँखी जो बाउर घर माटी। जीभ बढ़ाइ भखै सब चाँटी॥
बाउर तुम जो भखै कहँ आने। तबहि न समझे, पंथ भुलाने॥
महिरावन कै रीढ़ जो परी। कहहु सो सेतुबध, बुधि धरी॥
यह तो आहि महिरावन पुरी। जहवाँ सरग नियर घर दुरी॥
अब पछिताहु दरब जस जोरा। करहु सरग चढ़ि हाथ मरोरा॥
जो रे जियत महिरावन लेत जगत कर भार।
सो भरि हाड़ न लेइगा, अस होइ परा पहार॥९॥

[इस अवतरण मे राक्षस ने अपने कपट का उद्घाटन किया है।]

सेतुवन्ध की वात मुनकर राक्षस हँस पड़ा। ऐसा मालूम हुआ जैसे पृथ्वी पर आकाश टूट पड़ा हो। कौन वावला है, मैं या तुम, यह तो तुझ वावले ने देख ही लिया। क्या वह वावला है जो अपना भोजन प्राप्त करने मे चतुर हो। वावली तो वह दीमक होती है जो मिट्टी मे अपना घर वनाती है और चीटी उसे चाट जाती है। वावला तो तू है जिसे मैं भोजन के लिए लाया हूँ। तू तव भी नही समझा जव कि मैंने तुझे मार्ग भुलवाया, महिरावण की जो रीढ़ पड़ी है उसको तुम सेतुवन्ध कहते हो। तुम्हारी वुद्धि भ्रष्ट हो गई है। यह तो महिरावण की नगरी है। जहाँ से स्वर्ग समीप है और घर दूर है। अव उसी तरह से पश्चात्ताप करो कि धन जोड़ने मे व्यर्थ समय गँवाया था। अव तो स्वर्ग मे जा करके हाथ मलो। जव तक महिरावण जीवित था तव तक सारे ससार का भार उठाए हुए था। जंव वह मर गया तो अपनी हड्डी साथ न ले जा सका, वह ऐसा पहाड़ जैसा पड़ा है।

टिप्पणी—जानहुँ······हसा—यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलंकार से राक्षस की भयंकरता व्यंग्य है।

को वाउर—राक्षस का अभिप्राय यह है कि तेरी यह भूल है कि मुझे वावला समझ रहा था। यहाँ पर काकुवैशिष्ट्य व्यंग्य है।

पाँखि······चाँटी—कवि की व्यजना है कि वावले तो तुम हो कि जिसको यह पता नही चला कि मैं तुमको वहकाये हुए लिए जा रहा था। जिस प्रकार पाखी यह नही समझती कि मिट्टी मे घर वनाने से चीटी हमको खा जाएँगी, उसी प्रकार तुमने यह नही समझा कि राक्षस का साथ करने से हमारा सत्यानाश हो जाएगा। यहाँ पर उपमा अलंकार व्यग्य है।

वोहित भँनहि, भँवै सव पानी। नाचहि राकस आस तुलानी॥
वूड़हि हस्ती, घोर, मानवा। चहुँ दिसि आइ जुरे मँस-खावा॥
ततखन राज पंखि एक आवा। सिखर टूट जस डसन डोलावा॥
परा दिस्टि वह राकस खोटा। ताकेसि जैस हस्ति वड़ा मोटा॥
आइ ओही राकस पर टूटा। गहि लेइ उड़ा, भँवर जल छूटा॥
वोहित टूट-टूट सव भए। एहु न जाना कहँ चलि गए॥
भइ राजा रानी दुइ पाटा। दूनौ वहे, चले दुइ वाटा॥
काया जीउ मिलाइ कँ, मारि किए दुइ खड।
तन रोवै धरती परा ; जीउ चला वरम्हंड॥१०॥

[इस अवतरण मे कवि ने राक्षस का विनाश पक्षी के द्वारा दिखाया है। साथ-ही-साथ रतनसेन के वेड़े के नष्ट-भ्रष्ट होने पर राजा रानी के दो लकडी के टुकडो पर वहने की वात कही गई है।]

जहाज चक्कर काट रहे थे और सब पानी भी चक्कर काट रहा था। राक्षस लोग नाच रहे थे कि उनकी आशा पूर्ण हुई। हाथी, घोड़े और मनुष्य डूब रहे थे। माँस खाने वाले राक्षसो ने आकर चारो ओर से घेर लिया। उसी समय एक राज-पक्षी आया जो अपने डैने इस प्रकार चला रहा था मानो कि पहाड टूट रहे हों। उसकी दृष्टि मे वह दुष्ट राक्षस पड गया। उसने उसको ऐसे देखा जैसे कोई मोटा हाथी हो और आकर उस राक्षस पर टूट पडा और पकड करके उड़ गया। उसी समय भँवर का पानी ऊपर उछलने लगा। सब जहाज टुकड़े-टुकडे हो गए। यह पता भी नही चला कि कहाँ चले गए। राजा और रानी दो अलग-अलग पाटो पर अलग-अलग मार्गो मे बह गए। काया और जीव के समान अभिन्न राजा-रानी को पहले तो भगवान ने मिला दिया और उसके बाद मार कर दो अलग भागो मे कर दिया। शरीर पृथ्वी पर पडा रो रहा था और जीव बह्माड मे चला गया।

टिप्पणी—राज······पंखी—कवि का राज पंखी का किस पक्षी से अभिप्राय है यह नही कह सकते। मध्ययुग मे नाविको की ऐसी धारणा थी कि गरुड़ की जाति का कोई पक्षी था जो कि बड़े-बड़े जहाजो और हाथियो तक को उठा कर ले जाता था। वह गरुड़ की जाति का पक्षी था। इसीलिए उसे राजपक्षी कहा जाता था। मोर भी गरुड़ की जाति का है। अतः आज भी उसे राजपक्षी का पद दिया गया है।

काया······ब्रह्मांड—डाक्टर अग्रवाल ने इस दोहे का पाठान्तर इस प्रकार दिया है—

'काया जीउ मिलाइ कै कीन्हेसि अनन्द उछाहुँ।'

इसका अर्थ उन्होने दिया है शरीर और जीव को मिलाकर दैव आनन्द और उछाह करता है। फिर उलट कर ऐसा विछोह देता है कि कोई दूसरे को जानता भी नही कि कहाँ पहुँचा।

लक्ष्मी समुद्र खण्ड

मुरछि परी पदमावति रानी। कहाँ जीउ, कहँ पीउ, न जानी ॥
जानहु चित्र मूर्ति गहिलाई। पाटा परी वही तस जाई ॥
जनमन सहा पवन सुकुवाँरा। तेड सो परी दुख-समुद्र अपारा ॥
लछिमी नांव समुद्र के वेटी। तेहि कहँ लच्छि होइ जहँ भेटी ॥
खेलति अहीं सहेलिन्ह सेती। पाटा जाइ लाग तेहि रेति ॥
कहेसि सहेली "देखहु पाटा। मूरति एक लागि वहि घाटा ॥
जो देखा, तिवइ है साँसा। फूल मुवा, पै मुई न वासा" ॥
रंग जो राती प्रेम के, जानहु वीरवहूटि।
आइ वही दवि-समुद्र महँ, पै रंग गएउ न छूटि ॥१॥

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती और लक्ष्मी के मिलन की वात कही है।]

रानी पदमावती मूर्च्छित होकर गिर पडी। उसे पता नही चला कि कहाँ पर उसके प्राण है। कहाँ पर उसके पति है। पटरे पर पटी हुई वह इस प्रकार वहे जा रही थी जैसे कोई विचित्र मूर्ति लेकर किसी ने उस पटरे पर लगा दी हो। जिस सुकुमारी ने जीवन मे कभी पवन के झोके की चोट सहन नही की थी वह आज दुःख के अपार समुद्र मे पड़ी है। लक्ष्मी समुद्र की वेटी का नाम है। जिससे उसकी भेंट हो जाती है वह धनवान हो जाता है। वह अपनी सहेलियो के साथ खेल रही थी। उसी रेती मे यह पटरा जाकर के लग गया। सहेलियों ने कहा यह पटरा देखो कोई मूर्ति आ करके इस घाट पर लग गई है। उन्होने जो देखा वह स्त्री थी और उसके साँस थी। फूल मर गया था किन्तु सुगन्ध नही मरी थी। वह प्रेम के रग से इस प्रकार अनुरजित थी कि लालिमा के कारण ऐसी लग रही थी जैसे कि वीर वहूटी हो। वह उस भयकर समुद्र मे वह कर आई किन्तु उसके प्रेम की लालिमा नही नष्ट हुई।

टिप्पणी—जनम······अपारा—यहाँ पर विपम अलंकार है।

जो······वाँसा—यहाँ पर वैधर्म्यमूलक प्रतिवस्तूपमा अलकार है।

रंग······वहूटी—यहाँ वस्तु उत्प्रेक्षा अलकार है।

आए······छूटी—यहाँ पर विशेपोक्ति अलंकार है।

लछमी तखन बत्तीसौ तखी। कहेसि "न मरै, सभारहु सखी ।।
कागर पतरा ऐस सरीरा। पवन उड़ाइ परा माँझ नीरु ।।
लहरि झकोर उदधि-जल भीजा। तवहूँ रूप-रंग नहि छीजा" ।।
आपु सीस लेइ बैठी कोरै। पवन डोलावै सखि चहुँ ओरै ।।
वहुरि जो समुझि परा तन जीऊ। माँगेसि पानि बोलि कै पीऊ ।।
पानि पियाइ सखी मुख धोई। पदमिनि जनहुँ कँवल संग कोंई ।।
तब लछिमि दुख पूछा ओही। "तिरिया समुझि वात कहु भोले ।।
देखि रूप तोर आगर, लागि रहा चित मोर।
केहि नगरी कै नागरी, काउ नाँव धनि तोर ? ।।२।।

[इस अवतरण में कवि ने लक्ष्मी और उसकी सखियो द्वारा पदमावती के प्रति प्रकट किए गए सद्भाव, स्नेह और सहानुभूति का वर्णन किया है।]

लक्ष्मी ने पदमावती मे वत्तीसो लक्षण देख कर कहा—हे सखियो, इसे संभालो यह मरने न पाए, इसका शरीर कागज के समान पतला है। मालूम होता है कि पवन ने उडा कर इसे समुद्र के वीच डाल दिया है। लहरो के प्रभाव से यह समुद्र के जल से भीग गई है। परन्तु फिर भी इसका रूप-रग नष्ट नही हुआ। वह अपनी गोद मे उसका सिर लेकर वैठ गई और सखियाँ चारो ओर से हवा करने लगी। फिर ऐसा प्रतीत हुआ कि शरीर मे प्राण है। उसने अपने पति को सम्वोधित करके जल माँगा। सखि ने पानी पिला करके उसका मुँह धोया। पदमावती के साथ मे वे सखियाँ ऐसी लगती थी जैसे कमल के साथ मे कोका बेलि हो। तव लक्ष्मी ने उससे उसका दु:ख पूछा और कहा हे वाले! तू अपना दु:ख मुझसे कह। तुम्हारा रंग-रूप देख करके हमारा मन तुम से प्रभावित हो गया है। तुम यह वताओ कि तुम किस नगर की रहने वाली सुन्दरी हो और तुम्हारा क्या नाम है।

टिप्पणी—लखन......बत्तीसौं—स्त्री के सौन्दर्य के वत्तीसो लक्षणो की चर्चा हम पीछे कर आए है। कुछ लोग सामुद्रिक शास्त्र के वत्तीसो लक्षणो को महत्त्व देते हैं और कुछ लोग सौन्दर्य शास्त्र के वत्तीसो लक्षणो को प्रधान मानते है। इन वत्तीस लक्षणो के लिए देखिए शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त भाग १, पृष्ठ २३९-४०।

नैन पसार देख धन चेती। देखै काह, समुद कै रेती ।।
आपन कोइ न देखेसि तहाँ। पूछेसि, तुम्ह हौ को ? हौ कहाँ ? ।।
कहाँ सो सखी कँवल सँग कोई। सो नाही, मोहि कहाँ विछोई ।।
कहाँ जगत महँ पीउ पियारा। जो सुमेरु बिधि गरूअ सँवारा ।।
काकर गरूई प्रीति अपारा। चढ़ी हिये जनु चढ़ा पहारा ।।

रहौं जो गरूइ प्रीति सौ झाँपी । कैसे जिऔं भार दुःख चाँपी ।
कँवल-करी जिमि चूरी नाहाँ । दीन्ह वहाइ उपधि जल माहाँ ॥
आवा पवन विछोह कर, पाट परी वेकरार ।
तीखर तजा जौ चूरि कै, लागौं केहि के डार ? ॥३॥

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती के विरह-विलाप का वर्णन किया है ।]

वह स्त्री आँखे खोल कर होश मे आई । देखती क्या है कि वह समुद्र की रेती पर पडी हुई है । उसे वहाँ अपना कोई नही दिखाई पडा । वह पूछने लगी कि मैं कहाँ हू । तुम कौन हो और कहाँ हो । मेरी जो सखियाँ कमल के साथ कुमुदिनी सी शोभायमान होती थी वे कहाँ है । उन्होने मुझे कहाँ छोड दिया है । संसार मे मणि के समान श्रेष्ठ मेरा प्यारा प्रियतम कहाँ है । जिसे भगवान ने सुमेरु जैसा गौरवशाली और महान् वनाया है । उसका अपार और गम्भीर प्रेम मेरे हृदय पर इस प्रकार टिका हुआ है जैसे कोई अडिग पहाड स्थिर रहता है । दु ख के वोझे से दवी हुई मैं कैसे जीवित रहूंगी । मेरे पति ने मुझ कमल की कली को चूर करके समुद्र मे क्यो फेक दिया ।

विछोह की हवा आई और पत्ता वेकरार हो करके गिर पडा । यदि वृक्ष ही उसको चूर करके फेक दे तो वह किस डाल मे जा करके लगेगा ।

टिप्पणी—आवा······डार—यहाँ पर साहश्य पर आधारित सारूप्य निवन्धना नामक अप्रस्तुत प्रशसा अलंकार है । यहाँ पर हवा, पत्ता और वृक्ष आदि का वर्णन अप्रस्तुत है । अप्रस्तुत प्रशंसा अलकार वहाँ होता है जहाँ अप्रस्तुत के वर्णन द्वारा प्रस्तुत अर्थ की प्रतीति कराई जाती है । जव श्लिष्ट शब्द के प्रयोग के विना अप्रस्तुत का ऐसा वर्णन किया जाता है जो प्रस्तुत के वर्णन से समानता रखता है वहाँ पर साहश्य पर आधारित सारूप्य निवन्धना नामक अप्रस्तुत प्रशंसा नामक अलकार होता है ।

कहेन्हि "न जानहि हम तोर पीऊ । हम तोहि पाव, रहा नहि जीऊ ॥
पाट परी आई तुम वही । ऐन न जानहिं यहुँ कहँ अही" ॥
तव सुधि पदमावति मन भई । सँवरि विछोह मुरुछि मरि गई ॥
नैनहि रकत-सुरही ढरै । जनहुँ रकत सिर काटे परै ॥
खन चेतै खन होइ बेकरार । भाँ चन्दन-वन्दन सव धारा ॥
वाउरि होइ परी पुनि पाटा । देहुँ वहाइ कंत जेहि घाटा ॥
को मोहि आगि देइ रचि होरी । जियत न विछुरै सारस-जोरी ॥
जेहि सिर परा विछोहा, देहु ओहि सिर आगि ।
लोग कहै यह सर चढ़ी, हौ सो जरौ पिउ लागि ॥४॥

[इस अवतरण मे कवि ने लक्ष्मी और पदमावती का संलाप वर्णित किया है।]

लक्ष्मी और सखियो ने कहा, हम तुम्हारे पति को नही जानती। हमने तो तुम्हे जब पाया था तब तुम्हारे शरीर मे प्राण नही थे। तुम पाटे पर पडी हुई बहती हुई आ रही थी। हम नही जानती थी कि तुम कहाँ से आई थी। तब पदमावती को फिर स्मरण हो आया और वियोग की बात सुन करके वह फिर मूच्छित हो करके गिर गई। नेत्रो से रक्त की सुराही ढलक रही थी। ऐसा मालूम होता था कि जैसे सिर काटने पर रक्त बहता है वैसे नेत्रो से रक्त बह रहा था। वह क्षणभर को बेकरार हो जाती थी और क्षणभर में ही वह फिर विह्वल हो जाती थी। चन्दन और माथे का आभूषण सब धूल से भर गए। वह पागलो की तरह पाट पर लेट गई और कहने लगी हमे उधर ही बहा दो जहाँ पर हमारे प्रियतम है। मुझे होली जला करके कौन अग्नि देगा, कभी जीते जी सारस की जोड़ी न बिछुडे।

जिसके सिर पर वियोग पड़ा है उसके सिर पर आग दे देनी चाहिए। लोग कहेगे वह चिता मे जल रही है और मै कहूँगी कि मै पति के लिए जल रही हूँ।

टिप्पणी—बन्दन—एक प्रकार का माथे का अभूषण होता है।

जियत······जोरी—यहाँ पर प्रतिवस्तूपमा अलंकार है।

विशेष—इस अवतरण मे पदमावती की विरह व्यथा का वर्णन किया गया है। इस चित्र मे फारसी विरह दशाओ मे से चश्मेतर (आँसू बहाना), इन्तजारी, बेकरारी, और बेसबर, नामक अवस्थाओ की व्यंजना की गई है।

काया-उदधि चितव पिउ पाहाँ। देखौ रतन सो हिरदय माहाँ॥
जनहुँ आहि दरपन मोर हीया। तेहि महँ दरस देखावै पीया॥
नैन नियर पहुँचत सुठि दूरी। अब तेहि लागि मरौ मै झूरी॥
पिउ हिरदय महँ भेट न होइ। को रे मिलाव, कहौ केहि रोई॥
साँस पास निति आवै जाई। सो न सँदेस कहै मोहि आई।
नैन कौड़िया होइ मँडराही। थिरकि मार पै आवै नाही॥
मन भँवरा भा कँवल-बसेरी। होइ मरजिया न आनै हेरी॥
साथी आकि निआकि जो सकै साथ निरबाहि।
जौ जिउ जारे पिउ मिलै, भेटु रे जिउ! जरि जाहि॥५॥

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती की प्रणयानुभूतिजन्य अन्तर्दृष्टि की वर्णना की है।]

पदमावती कहती है इस शरीर रूपी समुद्र मे जब प्रियतम की खोज करती हूँ तो मुझे हृदय मे ही रतन रूप प्रियतम के दर्शन हो जाते है। ऐसा मालूम होता है कि

मेरा हृदय दर्पण है और मेरा प्रियतम उसी में प्रतिविम्बित है। हृदय नेत्रों से बहुत समीप है किन्तु दृष्टि वहाँ नही पहुँच पाती। अब मैं उस प्रियतम के लिए सूख कर मरी जा रही हूँ। प्रियतम हमारे हृदय मे है। किससे मिल कर कहूँ कि वह मुझसे मिला दिया जाय। साँस नित्य प्रति वहाँ से आती जाती है किन्तु वह यहाँ आकर मुझसे कोई सदेश नही कहती। नेत्र कौडिल्ला पक्षी बन कर मँडराते है। वे थिरक कर डुबकी लगाते है किन्तु पति नही आता है। मन का भौरा रतनसेन रूपी कमल का प्रेमी हो गया है किन्तु फिर भी वह भरजिया की तरह हृदय सरोवर में घुस कर उस रतनसेन रूपी कमल को ढूँढ कर नही ले आता।

वह साथी अपनी पूँजी खोकर निर्धन हो गया है। वह साथ निभाने मे असमर्थ हो गया है। यदि प्राण जलाने से ही प्रियतम मिल सके तो मैं उसे जला कर ही प्रियतम से भेट करना चाहती हूँ।

टिप्पणी—काहा'' '''पाहाँ—यहाँ पर रूपक अलंकार है। कवि ने यहाँ पर शब्दशक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि से 'रतन से' रतनसेन की व्यंजना भी की है।

सो—यहाँ पर सम्वृतिवक्रता है, सो से कवि का अभिप्राय अत्यधिक प्रेम करने वाले पति से है।

नयन''''''दूरी—यहाँ पर विरोधाभास अलंकार है।
पीयु''''' होई—यहाँ पर विशेपोक्ति और विरोधाभास का संकर है।
साँस''''''आई—यहाँ पर विशेपोक्ति अलंकार है।
मन''''''हेरि—यहाँ पर रूपक अलकार है।

सती होइ कहँ सीस उघारा। मन महँ बीजु घाव जिमि मारा ॥
सैंदुर, जरै आगि जनु लाइ। सिर कै आगि सँभारि न जाई ॥
छूटि माँग अस मोति पिरोई। वारहि बार चरै जौ रोई ॥
टूटहिं मोति बिछोह जो भरै। सावन-बूंद गिरहिं जनु झरै ॥
भहर-भहर कै जोबन बरा। जानहुँ कनक अगिनि महँ परा ॥
अगिनि माँग, पै देइ न कोई। पाहुन पवन पानि सब कोई ॥
खीन लक टूटी दु:ख भरी। बिनु रावन केहि बर होइ खरी ॥
रोवत पंखि विमोहे जस कोकिला-अरंभ।
जाकरि कनक लता सो बिछुरा पीतम खभ ॥६॥

[इस अवतरण मे पदमावती सती होने का उपक्रम करती हुई चित्रित दिखाई गई है।]

उसने सती होने के लिए अपना सिर उघाड लिया। ऐसा मालूम हुआ कि बिजली ने बादल में चोट मार कर घाव किया हो। उसका सिन्दूर जल रहा था।

ऐसा लग रहा था मानो किसी ने आग लगा दी हो। सिर की आग सँभाली नही जाती। मोतियो से पिरोई हुई माँग सब बिखर गई थी। जब वह रोती थी तो बार-बार जलती हुई मालूम पडती थी। माँग में भरे हुए मोती वियोग से ऐसे टूट रहे थे मानो कि सावन की बूंदे ढलक रही हो। उसका यौवन धधक-धधक कर जल रहा था। ऐसा लग रहा था मानो कि सोना अग्नि मे जल रहा हो, वह अग्नि माँग रही थी लेकिन कोई देता नही था। अतिथि को पानी और पान तो सब देते है लेकिन अग्नि कोई नही देता। लका दु.ख के कारण नष्ट-भ्रष्ट हो गई थी, बिना रावण के वह किसके बल पर खड़ी होती।

उसके रोने से पक्षी मोहित हो गए। उन्हे लगा मानो कि कोकिला ने अपना राग अलापना शुरू किया जिसकी वह कनक लता है। यह प्रियतम रूपी खम्भा कहाँ गया है। यह कह कर वह रो रही थी।

टिप्पणी—सेदुर,……जरै—यहाँ पर कवि विरहिणी के विरहाधिक्य की व्यजना कर रहा है। सेदुर का अर्थ मस्तक ही नही सम्पूर्ण शरीर है। यहाँ पर अर्थान्तरसंक्रमितवाच्य ध्वनि है।

रूखीन……खरी—यहाँ पर शब्दशक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है। कवि की व्यंजना है कि पदमावती पति के वियोग मे बिल्कुल जर्जर हो गई थी। रमणकर्त्ता पति के वियोग मे उसकी कमर टूट गई थी। अर्थात् वह बिल्कुल निर्जीव हो गई थी।

जाकर ……खंभ—यहाँ पर रूपक अलकार है।

लछिमी लागि बुझावै जीऊ। "ना मरू बहिन ! मिलहि तोर पीऊ ॥
पीउ पानि होइ पवन-अधारी। जसि हौ तहूँ समुद कै बारी ॥
मैं तोहि लागि लेउँ खटवाटू। खोजिहि पिता जहाँ लगि घाटू ॥
हौ जेहि मिली ताहि बड़ भागू। राज-पाट औ देउँ सुहागू" ॥
कहि बुझाइ लेइ मदिर सिधारी। भइ जेवनार न जेवै बारी ॥
जेहि रे कंत कर होइ बिछोवा। कहँ तेहि भूख, कहाँ सुख-सोवा ॥
कहाँ सुमेरू, कहाँ वह सेसा। को अस लेहि सौ कहाँ सँदेसा ॥
लछिमी जाइ समुद पहँ रोइ बात यह चालि।
कहा समुद्र "वह घट मोरे, आनि मिलावौ कालि" ॥७॥

[इस अवतरण मे लक्ष्मी पदमावती को समझा रही है।]

लक्ष्मी पदमावती को समझाने लगी—हे बहिन ! तू मृत्यु को मत प्राप्त हो। तेरा पति मिल जाएगा। तू पानी पी और पवन का सहारा ले। जैसे मै हूँ तैसी ही तू भी समुद्र की पुत्री है। मै तेरे लिए अनसन पाटी लूंगी तो मेरे पिता जहाँ तक उनके

घाट है, वह उसकी खोज करायेगे। मैं जिसको मिलती हूँ वह वड़ा सौभाग्यशाली होता है। उसको राज-पाट और सौभाग्य प्रदान करती हूँ। इस प्रकार समझा-वुझा कर लक्ष्मी उसे अपने मन्दिर मे ले गई। वहाँ जेवनार हुई किन्तु पदमावती ने भोजन नही किया। जिसे पति का विछोह होता है उसे न तो भूख होती है और न नीद होती है। कहाँ सुमेरु और कहाँ वह शेषनाग, ऐसा कौन है जो उससे मेरा सदेश कहे।

लक्ष्मी ने समुद्र से जाकर यह वात कही। समुद्र ने कहा वह मेरे घर मे है। मैं कल उसे लाकर मिला दूगा।

टिप्पणी—कहा······सन्देशा—यहाँ पर निदर्शना अलकार है।

राजा जाइ तहाँ वहि लागा। जहाँ न कोइ सँदेसी कागा ॥
तहाँ एक परबत अह डूंगा। जहवाँ सव कपूर औ मूँगा ॥
तेहि चढ़ि हेर कोइ नहि साथा। दरव सैंति किछु लाग न हाथा ॥
अहा जो रावन लंक वसेरा। गा हेराइ, कोइ मिला न हेरा ॥
ढ़ाढ मारि कै राजा रोवा। केइ चितउर गढ़-राज बिछोवा ? ॥
कहाँ मोर सब दरव भँडारा। कहाँ मोर सव कटक खँधारा ? ॥
कहाँ तुरगंम वाँका वली। कहाँ मोर हस्ती सिघली ॥
कहाँ रानी पदमावति जीउ वसै जेहि पाँह।
'मोर मेर' कै खोएउँ, भूति गरव अवगाह ॥८॥

[इस अवतरण मे कवि ने जहाज भंग हो जाने के वाद की स्थिति का वर्णन किया है।]

राजा वहता हुआ वहाँ जाकर के लगा जहाँ कोई सदेश भेजने के लिए कौआ तक नही था। वहाँ पर एक ऊँचा पर्वत था। जहाँ पर सव कूपर और मूँगे ही थे। उस पर चढ करके देखा तो कोई साथी नही मिला। धन एकत्रित करके भी कुछ हाथ नही लगा। मैं उस अथाह समुद्र मे आ करके पड़ा जिसका कोई अन्त और आदि तथा थाह नही है। जहाँ रावण का रात मे रहने का स्थान था वहाँ वह रास्ता भूल गया। ढूंढने से भी कोई उसे रास्ता वताने वाला नही मिला। राजा धाड़ मार कर रोने लगा और कहने लगा कि चित्तौड़गढ़ का राज्य किसने नष्ट कर दिया। सेरा सव द्रव्य भण्डार कहाँ है ? मुझे सहारा देने वाली मेरी सव सेना कहाँ है ? मेरा वलवान सुन्दर घोडा कहाँ है ? मेरे सिहली हाथी कहाँ है ? वह पदमावती रानी कहाँ है ? जिसमे हमारे प्राण वसते है। मेरा-मेरा करते हुए मैंने अपना सव कुछ खो दिया। और मन मे घमण्ड करके मैं भूल गया।

विशेष—इस अवतरण मे कवि ने अभिमान और द्रव्य लोभ के दुष्परिणाम दिखलाए है।

भँवर केतकी गुरू जो मिलावै। माँगै राज बेगि सो पावै ॥
पदमिनि-चाह जहाँ सुनि पावौ। परौ आगि औ पानि धसावौ ॥
खोजौ परवत मेरू पहारा। चढ़ौ सरग औ परौ पहारा ॥
कहाँ सो गुरू पावौ उपदेसी। अगम पंथ जो कहै गवेसी ॥
परेउँ समुद माँह अवगाहा। जहाँ न वार पार नहि थाहा ॥
सीता-हरन राम संग्रामा। हनुवँत मिला त पाई राम ॥
मोहि कोइ, बिनवौ केहि रोई। को बार बाँधि गवेसी होई ॥
भँवर जो पावा कँवल कहँ, मन चीता बहु केलि।
आइ परा कोइ हस्ती, चूर कीन्ह सो बेलि ॥६॥

[इस अवतरण मे कवि ने रतनसेन का पदमावती के प्रति अटूट प्रेम-भाव वर्णित किया है।]

यदि कोई ऐसा गुरु मिल जाए जो मुझ भँवर को पदमावती रूपी केतकी से मिला दे। वह यदि राज माँगेगा तो उसे राज भी मिल जाएगा। पदमावती के समाचार जहाँ भी सुन पाऊँ वहाँ पर पहुँचने के लिए आग मे भी कूद सकता हूँ और पानी मे भी धँस सकता हूँ। मै पर्वत सुमेरु और पहाड़ो पर भी खोज सकता हूँ। स्वर्ग में चढ सकता हूँ और पाताल मे घुस सकता हूँ। ऐसा उपदेश देने वाला गुरु कहाँ पाऊँ जो उस अगम मार्ग का निर्देश कर सके। मै समुद्र मे पड़ा हुआ हूँ। उस समुद्र का न आदि है न अन्त है और न थाह है। सीता हरण के वाद राम के सामने युद्ध की समस्या उत्पन्न हुई। जब हनुमान जी से उनकी भेट हुई तो सीता जी उन्हे प्राप्त हुई। मुझे तो कोई नही मिला जिससे मै रो करके विनय करूँ। कौन वल बाँध करके उसकी खोज करेगा।

भौरे को जब कमल की प्राप्ति हुई तो उसने बहुत सी क्रीडाओ की कल्पना की किन्तु इसी वीच मे कोई हाथी आ पड़ा जिसने सारी लता चूर कर दी।

टिप्पणी—कहा······गवेसी—यहाँ पर समासोक्ति अलकार है।

सीता·········रामा—यहाँ पर सारूप्य निवन्धना अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है।

भमर······वेलि—यहाँ पर भी सारूप्य निवन्धना अप्रस्तुत प्रशसा अलंकार है।

काहि पुकारौ, का पहँ जाऊँ। गाढ़ँ मीत होइ एहि ठाऊँ ॥
को यह समुद मथै वल गाढै। को मथि रतन पदारथ काढ़ै ॥
कहाँ सो बरम्हा, विसुन महेसू। कहाँ सुमेरू कहाँ वह सेसू ॥
को अस साज देइ मोहि आनी। बासुकि दाम, सुमेरू मथानी ॥

को दधि-समुद्र मथै जस मथा। करनी सार न कहिए कथा॥
जौ लहि मथै न कोइ देउ जोऊ। सूधी अँगुरि न निकसै घीऊ॥
लेइ नग मोर समुद्र भा वटा। गाढ परै तौ लेइ परगटा॥
लीलि रहा अब ढील होइ पेट पदारथ मेलि।
को उजियार करै जग झाँपा चन्द उघेलि॥१०॥

[यहाँ पर कवि ने राजा की पदमावती के लिए व्यग्रता प्रकट की है]

(राजा अपने मन में सोचता है) किसको बुलाऊँ? किसके पास जाऊँ? हमारा इस विपत्ति मे कौन मित्र होगा। कौन इसमे से मथ कर वह उत्तम रत्न निकालेगा। वे ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहाँ है। कहाँ सुमेरु है? और कहाँ वह शेषनाग है? ऐसा साज ला करके हमे कौन देगा कि वासुकि की रस्सी हो और सुमेरु की मथानी हो। दधि का समुद्र किस तरह मथा जाए। कहने मे तो कोई कष्ट नही होता किन्तु करने मे बडा सार है। अर्थात् बडा कठिन है। जब तक कोई अपना प्राण देकर मथन नही करता तब तक सीधी उँगली से घी नही निकलता। मेरा नग ले करके समुद्र चलता बना। उसके ऊपर यदि कुछ दबाव पडे तभी वह उसे ला सकता है। वह उसे निगल करके चुपचाप बैठ गया है। ढके हुए चाँद को उघाड़ कर संसार मे अब कौन उजाला करेगा।

टिप्पणी—लेई नग······बँटा—नग में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।
समुद भा·· ···बँटा—यहाँ पर पर्यायोक्ति अलकार है।
लीलि ····उघेली—यहाँ पर निदर्शना अलकार है।

ए गोसाईं। तू सिरजन हारा। तुइँ सिरजा यह समुद्र अपारा॥
तुइँ अस गगन अतरिख थामा। जहाँ न टेक, न थूनि न खाँभा॥
तुइँ जल ऊपर धरती राखी। जगत भार लेइ भार न थाकी॥
चाँद सुरुज औ नखतन्ह-पाँती। तोरे डर धावहि दिन-राती॥
पानी पवन आगि औ माटी। सब के पीठ तोरि है साँटी॥
सो मूरुख औ बाउर अँधा। तोहि छाँडि चित औरहि बँधा॥
घट-घट जगत तोरि है दीठी। हौ मुधा जेहि सूझ न पीठी॥
पवन होइ भा पानी, पानि होइ भा आगि।
आगि होइ भा माटी, गोरख धन्धै लागि॥११॥

[इस अवतरण मे रतनसेन भगवान की महान् महिमा का वर्णन कर रहा है।]

(वह कहता है)—हे भगवान, तू सबका सिरजनहार है। तूने ही यह समुद्र रचा है। तू ही जल के ऊपर धरती को टेके हुए है। संसार का बोझा उठा करके भी

तू थकता नही है। तूने यह आकाश अन्तरिक्ष मे रोक रखा है। जहाँ न कोई टेक है न कोई थूनि है, न कोई खम्भा है। चाँद, सूर्य और नक्षत्रो की पंक्ति तेरे डर से दिन रात दौड़ती रहती है। पानी, पवन, आग और मिट्टी इन सबके ऊपर तुम्हारा ही अनुशासन है। वह मूर्ख वावला और अन्धा है जो तुझे छोड़ करके दूसरे मे मन लगाता है। संसार मे घर-घर पर तेरी दृष्टि है। मै अन्धा हूँ ; मुझे अपनी पीठ भी नही दीखती। हवा से पानी हुआ है, पानी से आग हुई है, आग से मिट्टी हुई है। इसी गोरख-धन्धे मे संसार लगा है।

टिप्पणी—तू······खाँभा—यहाँ पर विभावना अलकार है।

चाँद दिन······राती—यहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा अलंकार है।

पानि······माटी—यहाँ पर जायसी ने चार तत्त्वों की चर्चा की है। पृथ्वी तत्त्व (माटी), जल तत्त्व, वायु तत्त्व तथा अग्नि तत्त्व इस्लाम धर्म के केवल चार तत्त्व ही माने गए है। आकाश तत्त्व की मान्यता वहाँ पर नही है। जायसी यहाँ पर इस्लाम से ही प्रभावित है।

पवन······माटी—यहाँ पर जायसी ने तत्त्व विकासक्रम दिया है। उन्होने वतलाया है कि पवन से पानी उत्पन्न होता है। पानी से अग्नि उत्पन्न होती है और अग्नि से पृथ्वी तत्त्व उत्पन्न होता है। यह क्रम भारतीय विकास क्रम से थोडा भिन्न है। उपनिषदो मे लिखा है, आत्मा से आकाश तत्त्व उत्पन्न हुआ। आकाश से वायु तत्त्व उत्पन्न हुआ। वायु से अग्नि उत्पन्न हुई और अग्नि से जल तत्त्व उत्पन्न हुआ और जल तत्त्व से पृथ्वी तत्त्व उत्पन्न हुआ। ऐसा लगता है जायसी ने जो क्रम दिया है वह इस्लामी क्रम है।

विशेष—इस अवतरण मे जायसी ने परमात्मा की महिमा का वर्णन किया है, उसके प्रति अटूट आस्था व्यक्त की है।

तुइँ जिउ तन मेलेसि देइ आऊ। तुही बिछोवसि, करसि मेराऊ॥
चौदह भुवन सो तोरे हाथा। जहँ लगि बिछुर आव एक साथा॥
सब कर मरम भेद तोहि पाहाँ। रोवँ जमावसि टूटै जाहाँ॥
जानसि सबै अवस्था मोरी। जस बिछुरी सारस कै जोरी॥
एक मुए ररि मुवै जो दूजी। रहा न जाइ, आउ अब पूजी॥
झूरत तपत बहुत दु.ख भरऊँ। कलपौ माँथ बेनि निस्तरउँ॥
मरौ सो लेइ पदमावति नाऊँ। तुइँ करतार करेसि एक ठाऊँ॥
दुःख सौ पीतम भेटि कै, सुख सौ सोव न कोइ।
एहि ठाँव मन डरपै, मिलि न बिछोहा होइ॥१२॥

[इस अवतरण में भी कवि ने उस परमात्मा की महिमा का वर्णन किया है।]

(हे परमात्मन्) तू ही आयु देकर प्राण और शरीर का वन्धन वनाए रखता है। चौदहो भुवन तेरे हाथ मे हैं, उनका विछुड़ना और उनका मिलना भी तेरे अधीन है। सवका मर्मभेद तेरे पास ही है। जहाँ एक रोम भी टूट जाता है उसे वही जमाने की शक्ति तुझ मे है। तू मेरी सारी अवस्था जानता है। मैं अपनी पत्नी से इस प्रकार विछुड गया हूँ जिस प्रकार सारस की जोड़ी विछुड जाती है। जिस प्रकार सारस की जोडी में से यदि एक भी मर जाता है तो दूसरा उसके लिए रो-रोकर प्राण दे देता है उसी प्रकार मुझसे अव नही रहा जाता, मेरी अव आयु समाप्त हो चली है। सूखते हुए और विरह मे तपते हुए मैं वहुत दुःखी हो रहा हूँ। यदि मैं अपना मस्तक काट डालूँ तो मेरा उद्धार शीघ्र ही हो जाएगा। मरते समय भी मैं उस पदमावती का ही नाम रटूँगा। यदि तुम जो कि करतार हो कृपा कर दोगे तो हमारा उससे मिलन हो जाएगा।

प्रियतम के मिलन के वाद जो विरह दुःख होता है उसके कारण कोई सुख-पूर्वक नही सो सकता। इसीलिए मिलन मे प्रेमी का मन डरपा करता है कि मिलकर कही विछोह न हो जाए।

कहि कै उठा समुद पहँ आवा। काढ़ि कटार गीउँ महँ लावा॥
कहा समुद्र पाप अव घटा। वाम्हन रूप आइ परगटा॥
तिलक दुवादस मस्तक कीन्हे। हाथ कनक-वैसाखी लीन्हे॥
मुद्रा स्रवन, जनेऊ काँधे। कनक पत्र धोती तर वाँधे॥
पाँवरि कनक जराऊँ पाँऊँ। दीन्हि असीस आइ तेहि ठाऊँ॥
कहसि कुँवर मो सौ सत वाता। काहे लागि करसि अपघाता॥
परिहँस मरसि कि कौनिउ लाजा। आपन जीउ देसि केहि काजा॥
जिनि कटार गर लावसि, समुझि देखु मन आप।
सकति जीउ जौ काढै, महा दोष औ पाप॥१३॥

[इस अवतरण मे राजा के द्वारा आत्महत्या करने के प्रयास का वर्णन किया गया है।]

यह कह कर राजा उठ कर समुद्र के किनारे आया। कृपाण निकाल कर वह अपने गले के पास ले गया। समुद्र सोचने लगा कि अव हत्या हो गई और हमे पाप पड़ेगा। वह व्राह्मण का रूप धारण करके सामने आया। शरीर में वारह स्थानो पर तिलक लगे हुए थे। हाथ मे सोने का वैसाखी लिए हुए थे। कान मे मुद्रा पडी हुई थी कन्धे पर जनेऊ था। नीचे कनक पत्र नामक वस्त्र की धोती वाँधे हुए था। पैरों पर सोने की कामदानी की खड़ाऊँ थी। उसने वही आ करके आशीर्वाद दिया और कहने लगा हे राजकुमार! मुझसे सत्य वात कहो कि तुम आत्महत्या क्यो कर रहे हो अथवा किसी परिहास या लज्जा के मारे मर रहे हो। अपने प्राण किसलिए दे रहे हो।

अपने गले में कटार मत मारो। अपने मन मे सोचकर देख लो जो बलपूर्वक आत्म-हत्या कर डालते है उनके लिए महादोष होता है और बहुत बडा पाप पड़ता है।

विशेष—इस अवतरण मे कवि ने मध्ययुगीन ब्राह्मण का बड़ा सश्लिष्ट वर्णन किया है। आत्महत्या के सम्बन्ध मे भारतीय विचार भी बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किए गए है।

को तुम्ह उतर देइ, हो पाँडे। सो बोलै जाकर जिउ माँडे ॥
जंबू दीप केर हौ राजा। सो मैं कीन्ह जो करत न छाजा ॥
सिघल दीप राज घर बारी। सो मैं जाइ बियाही नारी ॥
बहु बोहित दायज उन दीन्हा। नग अमोल निरमर भरि लीन्हा ॥
रतन पदारथ मानिक मोती। हुति न काहु के संपति ओती ॥
बहल घोड़, हस्ती सिघली। औ संग कुंवरि लाख दुइ चलीं ॥
ते गोहने सिघल पदमिनि। एक सों एक चाहि रूपमनी ॥
पदमावति जग रूपमति, कहँ लगि कहौ दुहेल ॥
तेहि समुद्र महँ खोएउँ, हौ का जियौं अकेल ॥१४॥

[इस अवतरण मे रतनसेन ब्राह्मण रूपधारी समुद्र के प्रति इस प्रकार प्रति-उत्तर दे रहा है।]

वह कहता है—हे पाण्डे! तुम्हे कौन उत्तर दे जिसका जीव अपने शरीर मे न हो वही प्रति-उत्तर दे सकता है। मैं जम्बू द्वीप का राजा हूँ। मैने वह किया जो मुझे करना नही चाहिए था। सिंहलद्वीप के राजा की राजकुमारी से मैने विवाह किया। उन्होने बहुत से जहाज दान मे दिए जिनमे बहुत से अमूल्य रत्न भरे हुए थे। उनमें रत्न, हीरे, माणिक, मोती इतने अधिक भरे हुए थे कि इतनी सम्पत्ति किसी के पास न होगी। बहल घोड़े, सिंहली हाथी और साथ मे दो लाख कुमारियाँ थी। इस प्रकार सिंहल की पद्मिनी के साथ एक-से-एक अधिक रूपवती स्त्रियाँ थी। पदमावती संसार मे सबसे अधिक रूपवती थी। कहाँ तक अपने दुःख का वर्णन करूँ। उसे समुद्र मे मैने खो दिया। अब मैं अकेले जी कर क्या करूँ।

टिप्पणी—**बहल**—रथ के समान एक प्रकार की बैलगाड़ी।

गोहन—साथ या पास मे स्थित किसी चीज का समूह या गऊओ का समूह। इस शब्द के विस्तृत विवेचन के लिए डाक्टर अग्रवाल की पुस्तक का ४१६ पृष्ठ देखिए।

हँसा समुद, होइ उठा अँजोरा। जग बूड़ा सब कहि कहि 'मोरा' ॥
तोर होइ तोहि परे न बेरा। बूझि विचारी तहूँ केहि केरा ॥
हाथ मरोरि धुनै सिर झाँखी। पै तोहि हिये न उघरै आँखी ॥

बहुतै आइ रोइ सिर मारा। हाथ न रहा झूठ संसारा॥
जो पै जगत होति फुर माया। सैंतत सिद्धि न पावत, राया॥
सिद्धै दरब न सैंता गाड़ा। देखा भार चूमि कै छाँड़ा॥
पानी कै पानी महँ गई। तू जो जिया कुसल सब भाई॥
जा कर दीन्ह कया जिउ, लेइ चाह जब भाव।
धन लछिमी सब ताकर, लेइत का पछिताव?॥१५॥

[इस अवतरण मे समुद्र ने राजा को साँत्वना दी है।]

समुद्र हँस पड़ा। उसकी हँसी से चारो ओर उजाला हो गया। लोग मेरा-मेरा कहते हुए ससार मे फँसे हुए है। अगर तुम्हारे अन्दर तेरे पन की भावना होती तो ऐसा समय नही पडता। तू ही सोच-विचार कर देख यह सब किसका है। बहुतो ने इसी प्रकार रो-रो कर सिर पटका किन्तु यह झूठा ससार किसी के हाथ नही लगा। अगर यह ससार की माया सत्य होती तो सिद्ध लोग उसे ही समेट लेते। राजा न पाते। सिद्धो ने माया को न तो एकत्रित किया और न उसे गाड कर ही रखा क्योकि वह जानते थे कि उसमे कितना भार है। इसीलिए उन्होने उसे चूम कर छोड़ दिया। पानी की माया पानी मे ही चली गई। तू जीवित रह गया यही सबसे बड़ी बात है। जिसने यह काया और जीव दिया है वह इसे जब चाहे तब ले सकता है। धन और लक्ष्मी सब उसी की है। यदि वह ले लेता है तो पछताने की क्या बात है।

टिप्पणी—हँसा·········अँजोरा—यहाँ पर सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार है।

हाथ······संसारा—यहाँ पर कवि ने संसार के मिथ्यात्व की व्यजना की है। कवि वेदान्त के मायावाद और स्वप्नवाद से प्रभावित है।

माया—यहाँ माया शब्द का प्रयोग जायसी ने सम्पत्ति के अर्थ मे किया है।

पानी कै पानी यह गई—यहाँ पर कवि ने संपत्ति की उत्पत्ति और लय दोनो पानी से बताई है। कवि की व्यंजना है जिस प्रकार पानी के बुलबुले पानी में ही क्षण भर के लिए उत्पन्न होते है और क्षणभर मे पानी मे ही लीन हो जाते है। यहाँ पर स्वत.सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंजना है। नश्वरता ही यहाँ व्यंग्य है।

अनु, पाँडे। पुरुपहि का हानी। जो पावौ पदमावति रानी॥
तपि कै पावा, मिलि कै फूला। पुनि तेहि खोइ सोइ पथ भूला॥
पुरुष न आपनि नारि सराहा। मुए गए सँवरे पै चाहा॥
कहँ अस नारि जगत उपराहीं?। कहँ अस जीवन कै सुख छाही॥
कहँ अस रहस भोग अब करना। ऐसे जिए चाहि भल मरना॥
जहँ अस परा समुद नग दीया। तहँ किमि जिया चहै मरजिया॥
जस यह समुद दीन्ह दुख मोकाँ। देइ हत्या भगरौ सिवलोका॥

का मैं ओहिक नसावा, का सवँरा सो दाव।
जाइ सरग पर होइहि एहि कर मोर नियाव ॥१६॥

[इस अवतरण मे राजा रतनसेन का विप्र रूपधारी समुद्र के प्रति प्रत्युत्तर वर्णित है।]

रतनसेन कहता है। पाँडे जी आपकी बात ठीक है। यदि पुरुष को पदमावती जैसी स्त्री मिल जाय तो उसके लिए कोई हानि, हानि नही है। तप करके मैंने उसे प्राप्त किया था और मिल करके प्रफुल्लित हुआ था और उसे खो करके पथ-भ्रष्ट हुआ हूँ। पुरुष अपनी स्त्री की सराहना नही करता पर मरने या विछोह होने पर उसका स्मरण अवश्य करता है। संसार मे इतनी उत्तम स्त्री कहाँ मिलेगी और जीवन की इतनी उत्तम सुख छाया कहाँ होगी। कहाँ अव इतना भोग-विलास मिलेगा। ऐसे जीवन से तो मरना ही अच्छा है। जहाँ समुद्र मे ऐसा दीपक जैसा रत्न रूपी पदमावती प्रकाशमान हो वहाँ मेरा जैसा मरजिया अपने जीवन को बचा कर कैसे रख सकता है। इस समुद्र ने मुझे जैसा दु.ख दिया है मैं भी शिवलोक मे इसके ऊपर हत्या देकर शिवलोक में न्याय के लिए झगडा करूँगा। मैंने उसका क्या बिगाड़ा था। इसने मुझसे कौन-सा दाँव लिया है। स्वर्ग मे जाकर मेरा और इसका न्याय होगा।

टिप्पणी—जहाँ·····मरजिया—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार है। उस अलकार से कवि ने पदमावती के प्रति रतनसेन की अटूट आसक्ति की व्यजना की है। अतएव यहाँ पर कवि प्रौढ़ोक्तिसिद्ध अलंकार से वस्तु व्यजना है।

जो तु मुवा, कित रोवसि खरा ?। ना मुइ मरै, न रौवे मरा ॥
जो मरि भा औ छाँडेसि काया। बहुरि न करै मरन कै दायाँ ॥
जो मरि भएउ न बूडै नीरा। बहा जाइ लागै पै तीरा ॥
तुही एक मैं बाउर भेंटा। जैस राम, दसरथ कर बेटा ॥
ओहू नारि कर परा बिछोहा। एहि समुद महँ फिरि-फिरि रोवा ॥
उदधि आइ तेइ बंधन कीन्हा। हति दसमाथ अमर पद दीन्हा ॥
तोहि बल नाहि मूँदु अव आँखी। लावौं तीर, टेक बैसाखी ॥
बाउर अँध प्रेम कर सुनत लुबुधि भा बाट।
निमिप एक महँ लेइगा पदमावति जेहि घाट ॥१७॥

[इस अवतरण मे राजा के प्रति समुद्र का प्रत्युत्तर प्रस्तुत किया गया है।]

समुद्र कहता है जो तू मर गया है तो खड़ा-खडा रो क्यो रहा है। न तो कोई मर कर मरता है न मरा हुआ रोता है। यदि तू मर ही गया और अपना शरीर छोड़ चुका है तो दूसरी वार मरने की चेष्टा मत कर। जो मर जाता है वह पानी मे नही

डूवता। वह वह करके किनारे लग जाता है। तू भी मुझे एक वावला मिला है।
जैसे दशरथ का वेटा राम था। उसको भी स्त्री का वियोग था। वह भी वार-वार
समुद्र के पास आकर रोता था। उसने समुद्र मे आकर सेतु वाँधा और रावण को मार
करके उसे अमर पद दिया था। किन्तु तुझमे वल नही है। इसलिए तू आँखें वन्द कर
ले। मैं तुझे वैसाखी टेक कर किनारे पर पहुँचा दूँगा।

प्रेम के वावले और अन्धे ने उसकी वात सुनकर उसका अनुगमन किया।
एक पल भर वह उस घाट ले गया जहाँ पदमावती थी।

टिप्पणी—तहूँ......वेटा—यहाँ पर कवि ने राम का चित्र एक साधारण
विरही के रूप मे चित्रित किया। मुसलमान होने के नाते उन्हे राम के प्रति कोई
श्रद्धा नही थी।

पदमावति कहँ दु:ख तसवीता। जस असोक-वीरौ तर सीता॥
कनक लता दुइ नारँग फरी। तेहि के भार उठि होइ न खरी॥
तेहि पर अलक भुअंगिनी डसा। सिर पर चढ़ै हिये परगसा॥
रही मृनाल टेकि दु:ख-दायी। आँधी कँवल भई, ससि आधी॥
नलिन खड दुइ तस करिहाऊँ। रोमावली विछूक कहाऊँ॥
रही टूटि जिमि कचन-लागू। को पिउ मेटै, देइ सोहागू॥
पान न खाइ करै उपवासू। फूल सव, तन रही न वासू॥
गगन धरती जल वुड़ि गए, वूड़त होइ निसाँस।
पिउ-पिउ चातक ज्यों ररै, मरै सेवाति पियास॥१८॥

[इस अवतरण मे कवि ने वियुक्त पदमावती की अवस्था का चित्रण किया है।]

पदमावती की शोक मे ऐसी अवस्था हुई, जैसी अशोक वृक्ष के नीचे सीता जी
की हुई थी। पदमावती उस लता के समान थी जिसमे दो नारगियाँ फली हुई थी।
उनके भार से वह उठ कर खड़ी नही हो पाती थी। उस लता पर चढी हुई अलकरूपी
भुजगिनी सवको डस लेती थी। वह नागिनी सिर पर रहते हुए हृदय पर दिखाई देती
थी। वह दु:ख की सताई हुई मृणाल के समान थी। आधी वह चन्द्रमा के समान थी
और आधी वह कमल के समान थी। उसका कटि भाग कमल नाल के दो अण्डो के
समान था। वीच मे रोमावली तन्तु-सी दीख रही थी। वह वीच मे ऐसी टूटी थी
जैसे कि कचन का तागा हो। वह प्रियतम कहाँ मिले जो उसे सुहाग रूपी सुहागा देकर
उस तार को जोड सके। वह पान तक न खाकर केवल उपवास कर रही थी। फूल
सूख गया था पर शरीर में सुगन्ध वच गई थी।

उसके नेत्रो ने धरती और आकाश को जल से भर दिया। उसमे डूवती हुई वह
विना साँस के हो गई। वह चातक की तरह पीउ-पीउ रट रही थी और स्वाँती के
जल के लिए तड़प रही थी।

टिप्पणी—कनक······खरी—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार है। कवि ने पदमावती के सौन्दर्य का हृदयग्राही चित्रण किया है।

तेहि चढ़······डसा—यहाँ रूपक अलकार से वस्तु व्यजना है। कवि ने अलकों की अतिशय विषाक्तता व्यजित की है।

रहै······सोहागू—यहाँ पर कवि ने उपमा अलंकार से वस्तु व्यग्य किया है। नायिका की अतिशय क्षीणता ही यहाँ व्यग्य है। सोहागू मे शब्द शक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि भी है।

सूख फूल ·····सुबासू—यहाँ अप्रस्तुत प्रशसा अलकार से वस्तु व्यग्य है। कवि ने नायिका की अनुपमता और दुर्बलता व्यजित की है।

गगन······पियास—यहाँ पर सम्बन्धातिशयोक्ति अलकार से वस्तु व्यंग्य है। विरह की अतिशयता ही व्यंग्य है।

विशेष—(क) इस अवतरण मे नख-सिख वर्णन की समाहारात्मक शैली का अनुसरण किया गया है। एक अवतरण मे नख से लेकर सिख तक सौन्दर्य चित्रित कर दिया गया है।

(ख) इसमे 'दुर्बलता' की अवस्था का चित्रण किया गया है।

(ग) यहाँ पर फारसी काव्यशास्त्र मे वर्णित 'चश्मेतर' नामक विरह अवस्था का वर्णन किया गया है।

लछमी चंचल नारि परेवा। जेहि सत होइ धरै कै सेवा ॥
रतनसेन आवै जेहि घाटा। अगमन होइ बैठी तेहि बाटा ॥
औ भई पदमावति के रूपा। कीन्हेसि छाँह जरै जहँ धूपा ॥
देखि सो कँवल भँवर होइ धावा। साँस लीन्ह वह बास न पावा ॥
निरखत आइ लच्छमी दीठी। रतनसेन तब दीन्ही पीठी ॥
जौ भलि होति लच्छमी नारी। तजि महेस कित होत भिखारी ॥
पुनि धनि फिरि आगे होइ रोई। पुरुष पीठि कस दीन्ह निछोई ॥
हौ रानी पदमावति, रतनसेन तू पीउ।
आनि समुद्र महँ छाँड़ेहु, अब रोवौ देइ जीउ ॥१६॥

[इस अवतरण में कवि ने लक्ष्मी के स्वरूप का वर्णन किया है।]

लक्ष्मी कबूतरी की तरह चचल होती है। जिसमे सत देखती है उसी की सेवा करके उसे छलती है। जिस घाट पर रतनसेन आ रहा था उसी घाट मे आकर वह पहले से बैठ गई और उसने पदमावती का रूप धारण कर लिया। जहाँ पर धूप थी वहाँ पर उसने छाया कर ली। उस लक्ष्मी रूप कमल को देख कर रतनसेन रूपी भौरे का मन दौड़ पड़ा। उसने संतोष की साँस ली किन्तु उसे वह सुगन्ध न मिली जो पदमावती में थी। उसने देखा कि लक्ष्मी बैठी हुई है। उसने उसकी ओर पीठ कर ली और सोचने

लगा। यदि लक्ष्मी स्त्री अच्छी होती तो महेश उसे छोड करके भिखारी नही हो जाते। वह स्त्री रतन से आगे होकर रो कर कहने लगी—हे निष्ठुर पुरुष! तुमने मुझे पीठ कैसे दी।

मैं पदमावती रानी हूँ और रतनसेन नामक तू मेरा प्रियतम है। तुमने आकर हमे समुद्र मे छोड़ दिया। अब मै प्राण छोड़ कर रो रही हूँ।

टिप्पणी—देखि भ्रमर मन''' ''धावा—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलकार से वस्तु व्यग्य है, रतनसेन की आतुरता ही व्यंग्य है।

विशेष—यहाँ पर रतनसेन के प्रेम की एकनिष्ठता व्यंजित की गई है।

मै हो साइ भँवर औ भोजू। लेत फिरौ मालति कर खोजू॥
मालति नारी, भँवरा पीऊ। लहि वह वास रहै फिर जीऊ॥
का तुइँ नारि वैठि अस रोई। फूल' सोई पै वास न सोई॥
भँवर जो सब फूलन कर फेरा। वास न लेई मालतिहि हेरा॥
जहाँ पाव मालति कर वासू। वारै जीव तहाँ होइ दासू॥
कित वह वास पवन पहुँचावै। नव तन होइ, पेट जिउ आवै॥
हौ ओहि वास जीउ वलि देऊँ। और फूल कै वास न लेऊँ॥
भँवर मालतिहि पै चहै काँट न आवै दीठि।
सोहै भाव खाइ, पै फिरि कै देइ न पीठि॥२०॥

[इस अवतरण मे रतनसेन पदमावती के प्रति अपने भाव को प्रकट कर रहा है।]

मै वही भोगी भौरा हूँ जो मालती की खोज करता फिरता है। मालती स्त्री है और भँवरा पुरुष है। तेरे पास वह सुरभि कहाँ है जिसे पाकर फिर भौरे का मन स्थिर हो जाय। तू कौन स्त्री है जो ऐसा रोती है। भौरा जो सब फूलो मे चक्कर काटता है वह किसी दूसरे की सुगन्ध नही लेता। वह मालती को ही खोजा करता है। उसे जहाँ मालती की सुगन्ध मिलती है वहाँ दास बन करके वह अपने प्राणो को निछावर कर देता है। मालूम नही कब वह वायु हमारे लिए सुगन्धि लाएगी जिस से कि शरीर मे नव चेतना और प्राणो की प्रतिष्ठा होगी। मैं उस सुगन्धि के लिए अपने प्राणो की बलि चढ़ा दूँगा और दूसरे फूल की सुरभि नही लूँगा।

भौरा मालती को ही चाहता है। उसकी दृष्टि मे काँटा नही आता। वह सामने से भाले खाता है किन्तु पीठ नही देता।

टिप्पणी—सोई—यहाँ पर सम्वृतिवक्रता है।

भँवर—यहाँ पर लक्षण-लक्षणा से इस शब्द का अर्थ प्रेमी लिया गया है। यहाँ पर अर्थान्तरसक्रमितवाच्य ध्वनि है। यहाँ पर प्रेम की अतिशयता ही व्यग्य है।

मालति कर······खोजूँ—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

भँवर······दीठि—यहाँ सारूप्यनिबन्धना अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। यहाँ पर कवि ने रतनसेन के प्रेम की एकनिष्ठता व्यजित की है।

तव हँसि कह राजा ओहि ठाऊँ। जहाँ सो मालति लेइ चलु, जाऊँ।।
लेइ सो आइ पदमावति पासा। पानि दियावा मरत पियासा।।
पानी पिया कँवल जस तपा। निकसा सुरुज समुद्र महँ छपा।।
मैं पावा पिउ समुद के घाटा। राज कुवर मनि दिपै लिलाटा।।
दसन दिपै जस हीरा-मोती। नैन-कचोर भरे जनु मोती।।
भुजा लंक उर केहरि जीता। मूरति कान्ह देख गोपीता।।
जस राजा नल दमनहि पूजा। तस बिनु आन पिड है छूँछा।।
जस तू पदिक पदारथ, तैस रतन तोहि जोंग।
मिला भँवर मालति कहँ, करहु दोउ मिलि भोग।।२१।।

[यह आशीर्वादात्मक उक्ति लक्ष्मी की राजा के प्रति है।]

लक्ष्मी हँस कर बोली—हे राजा! तुम आयुष्मान हो। मुझे वहाँ ले चलो जहाँ मालती रूपी पदमावती है। वह उसे लेकर पदमावती के पास गई। पदमावती ऐसी सुखी हुई मानो कि प्यास से मरते हुए को पानी मिल गया हो। उसकी वैसे ही तृप्ति हुई जैसे कि तपते हुए कमल की तृप्ति पानी पाकर होती है। जो सूरज समुद्र मे छिपा था वह बाहर निकल आया। मैंने समुद्र के घाट पर अपने प्रियतम को प्राप्त कर लिया। राजकुँवर के ललाट पर भाग्य की मणि चमकती है। उसके दाँत ऐसे दिखते है जैसे हीरे की ज्योति हो। नेत्र ऐसे है जैसे मोतियों से भरे कटोरे हो। उसने अपनी भुजा, कटि और वक्षःस्थल से सिंह को जीत लिया है। हे गोपी, वह साक्षात् कृष्ण की मूर्ति है। जिस प्रकार राजा नल दमयन्ती को ही पूछता था तैसे ही प्राण रूप तेरे विना उसका शरीर व्याकुल था। जैसी तू उत्तम हीरा रूप है वैसा ही तेरे योग्य वह रतन है। मालती को भौरा मिल गया है। दोनो मिलकर रस-भोग करो।

टिप्पणी—जहाँ सो······मालति—सो मे सम्वृतिवक्रता है। यहाँ पर शुद्धा-सारोपा लक्षण-लक्षणा है। इसका लक्ष्यार्थ है—पदमावती रूपी मालती।

पानी······पियासा—यहाँ पर दृष्टान्त अलंकार है। दृष्टान्त अलकार से कवि ने पदमावती की विरहजनित तड़पन तथा रतनसेन की प्राप्ति से पैदा होने वाली तृप्ति की अतिशयता व्यजित की है। अतएव यहाँ पर कवि प्रौढोक्तिसिद्ध अलकार से वस्तु व्यंग्य है।

पानी······तपा—यहाँ पर उपमा अलंकार है।

निकसा······छपा—यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलकार से पदमावती के हृदय का ईर्ष्याधिक्य व्यंजित किया गया है।

भुजा······जीता—यहाँ पर प्रतीप अलंकार है।

मूरति······कान—यहाँ पर लक्ष्योपमा है। रतनसेन को कृष्ण की मूर्ति कहा गया है। अतएव उपमा लक्ष्यार्थमूलक है।

तस······छूँछा—यहाँ पर विनोक्ति अलकार है।

जस······जोग—यहा पर सम अलकार है।

मिला······कहाँ—यहाँ पर साध्यावसाना लक्षणा है और रूपकातिशयोक्ति अलकार है।

जिनि काहू कहँ होइ विछोऊ। जस वै मिले मिलै सब कोऊ॥
पदमावति जौ पावा पीऊ। जनु मरजियहि परा तन जीऊ॥
कै नेवछावरि तन मनवारी। पायन्हँ परी घालि गिउ नारी॥
अब अवतार दीन्ह विधि आजू। रही छार भई मानुप-साजू॥
राजा रोव घालि गिउ पागा। पदमावति के पायन्हँ लागा॥
तव जीउ महँ बिधि दीन्ह विछोउ। अस न करै तौ चीन्ह न कोऊ॥
सोई मारि छार कै मेटा। सोइ जियाइ करावै भेंटा॥
मुहमद मीत जौ मन वसै, विधि मिलाव ओहि आनि।
संपति विपति पुरुष कहँ, काह लाभ, का हानि॥२२॥

[यह कवि की सूक्ति है।]

किसी को किसी का वियोग न सहना पडे। जैसे वे दोनो मिले सब लोग उसी प्रकार मिल जाया करें। पदमावती ने जव पति को प्राप्त किया तो उसमे ऐसी नई चेतना आई तो ऐसा लगा कि मरजीया को नया जीवन मिला हो। वह वाला अपने शरीर और तन को पति पर निछावर करते हुए गर्दन झुका करके पति के पैरो पड़ी। आज परमात्मा ने हमे नया जीवन दिया है। मैं छार से सुसज्जित मनुष्य हो गई। राजा गर्दन मे दुपट्टा डाल कर रोने लगा और पदमावती के पैरों मे गिर गया। वोला—शरीर और जीव के वीच ईश्वर ने वियोग दिया था। यदि वह ऐसा न करे तो उसे कोई न पहचाने। वही मार करके धूल मे मिलाता है। और वही जीवित करके फिर भेट कराता है। मुहम्मद कवि कहते है जो प्रेमी मनुष्य के हृदय मे वसता है परमात्मा उससे अवश्य भेट कराता है। सम्पत्ति और विपत्ति मनुष्य पर पडती ही रहती है। लाभ और हानि भी मनुष्य को ही भोगने पड़ते है।

टिप्पणी—मोहम्मद······आनि—तुलसीदास जी की निम्नलिखित पंक्ति इसकी छाया मालूम पड़ती है—

जेहि पर जेहि कर सत्य सनेहू।
सो तेहि मिले न कछु संदेहू॥

पदिक पदारथ खीन जो होती। सुनतहि रतन चढ़ी मुख जोती ।।
जानहुँ सूर कीन्ह परगासू। दिन वहुरा, भा कँवल-बिगासू ।।
कँवल जो बिहँसि सूर-मुख दरसा। सूरज कँवल दिस्टि सौ परसा ।।
लोचन-कँवल सिरी-मुख सूलू। भइउ अनन्द दुहूँ रस-मूरू ।।
मालति देखि भँवर गा भूली। भँवर देखि मालति-बन फूली ।।
देखा दरस, भइ एक पासा। वह ओहिके, वह ओहि के आसा ।।
कचन दाहि दीन्ह जनु जीऊ। ऊवा सूर, छूटिगा सीऊ ।।
पाँय परी धनि पीउ के, नैनन्ह सौ रज मेट।
अचरज भएउ सबन्ह कहँ, भइ ससि कँवलहिं भेंट ।।२३।।

[इस अवतरण मे कवि ने समुद्र के घर में रतनसेन और पदमावती के पुर्नमिलन का वर्णन किया है।]

मूल्यवान पदार्थ के सदृश सुन्दर पदमावती जो विरह में क्षीण थी वह रतनसेन रूपी रतन का नाम सुनते ही देदीप्यमान हो उठी। ऐसा मालूम हुआ कि सूर्य ने मानो प्रकाश कर दिया हो और फिर से दिन हो गया हो जिससे कि पदमावती रूपी कमल फिर से खिल उठा हो। जब पदमावती रूपी कमल ने प्रफुल्लित होकर रतनसेन रूपी सूर्य के दर्शन किए तो रतनसेन रूपी सूर्य ने पदमावती रूपी कमल का अपनी दृष्टि से स्पर्श किया। कमल रूपी पदमावती के नेत्र और सूर्य रूपी रतनसेन का श्री मुख दोनो एक-दूसरे को देख करके अत्यन्त रस-द्रवित हुए। पदमावती रूपी मालती को देख करके रतनसेन रूपी भौरा मन्त्रमुग्ध हो गया। और रतनसेन रूपी भौरे को देख करके पदमावती रूपी मालती खिल गई, उस निर्जन समुद्र रूपी वन मे फूल उठी। दोनो ने एक-दूसरे के दर्शन किए और फिर एक-दूसरे के पास आ गए। रतनसेन को पदमावती की कामना थी और पदमावती को रतनसेन के प्रति अनुराग था। ऐसा मालूम हो रहा था जैसे कि सोने को तपा कर उसे जीवन दान दिया गया हो। सूर्य उदय हुआ और शीत जाता रहा। उस स्त्री ने प्रियतम के चरण स्पर्श किए और अपने नेत्रो से उसके चरणो की रज धोई। सबको आश्चर्य हुआ कि कमल और चन्द्रमा की यह भेट कैसी।

टिप्पणी—पदिक······होती—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार है और लिग वैचित्र्यमूलक वक्रता है।

सुनतहि······ज्योति—यहाँ पर रतन शब्द मे शब्दशक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है। रतन से यहाँ पर कवि की व्यंजना रतनसेन से भी है।

विशेष—(क) यहाँ पर कवि ने पदमावती का चित्रण आगतपतिका नायिका के रूप मे किया है।

जगन्नाथ कहँ देखा आई। भोजन रोंधा भात बिकाई ।।
राजै पदमावति सौं कहा। साँठि-नाँठि, किछु गाँठि न रहा ।।
साँठि होइ जेहि तेहि सब बोला। निसँठ राव सब कह बौराई ।।
साँठिहि एक चले झौंराई। निसँठ राव सब कह बौराई ।।
साँठिहि आव गरव तन फूला। निसँठ हि बोल बुद्धि बल भूला ।।
साँठिहि जागि नींद निसि पाई। निसँठहि काह होइ औघाई ।।
साँठिहि दिस्टि, जोति होइ नैना। निसँठ होइ, मुख आव न बैना ।।
साँठिहि रहै साधि तन, निसँठहि आगरि भूख।
बिनु गथ बिरिछ निपात जिमि ठाढ़-ठाढ़ पै सूख ।।२५।।

[इस अवतरण मे कवि ने जगन्नाथजी नामक तीर्थस्थान का वर्णन किया है।]

कवि कहता है कि रतनसेन और पदमावती समुद्र पार करके जगन्नाथपुरी मे आ पहुंचे। वहाँ पर पका हुआ चावल बिक रहा था। राजा ने पदमावती से कहा—मूल सब नष्ट हो गया। अब कुछ गाँठ मे नही रहा। जब पास मे कुछ धन होता है तब बोलते बनता है। मूल धन रहित व्यक्ति की दशा उस पत्ते की तरह होती है जो हवा के झोके से कभी इधर कभी उधर चला जाता है। उसी प्रकार पूंजी रहित मनुष्य केवल मनोरथ के झूले मे झूला करता है। पूंजी होने पर रक भी झूम कर चलता है। बिना पूजी के राजा भी बावला हो उठता है। पूंजी से ही शरीर गर्व से फूल उठता है। पूंजी वाला ही रात मे प्रेम से सोता है और दिन मे प्रेम से जगता है। बिना पूंजी वाले को नीद नही पडती। पूंजी वाले की आँखो मे ही चमक दिखाई पडती है। किन्तु बिना पूंजी वाले के मुख से बोली नही निकलती। पूंजीवाला ही शरीर साधना कर पाता है। बिना पूंजी का व्यक्ति भूख से व्याकुल रहता है।

बिना पूंजी के मनुष्य वैसा ही हो जाता है जैसा वृक्ष से गिरा हुआ पत्ता सूख जाता है।

टिप्पणी—निसंठ जो पुरुष पात······जिमि डोला—यहाँ पर व्यग्योपमा अलंकार है। कवि की व्यजना है कि पूंजी रहित व्यक्ति ससार मे स्थिरता, सुख और शान्ति प्राप्त नही कर पाता।

साँठिहि····· आई—डा० अग्रवाल ने इस पक्ति का अर्थ दिया है—पूजी से ही आदमी जागता है और रात मे नीद भी चली जाती है। यह अर्थ हमे उपयुक्त नही लगता बल्कि यह व्यजित करना चाहता है कि जिस व्यक्ति के पास पूंजी होती है उसे रात्रि मे अच्छी तरह नीद आती है और दिन मे अच्छी तरह जागता है। अर्थात् उसे दिन-रात सुख और शान्ति रहती है।

निसंठहि······औघाई—कवि की व्यंजना है कि पूंजी रहित व्यक्ति को न दिन चैन रहती है न रात चैन रहती है।

(ख) यहाँ पर 'किलकिंचित' स्वभावज स्त्री अलंकार व्यक्त किया गया है।

(ग) यहाँ पर विहृत और मौग्ध नामक स्वभावज स्त्री अलंकार भी व्यंग्य है।

दिन दस रहे तहाँ पहुनाई। पुनि भए विदा समुद्र सौं जाई ॥
लक्षमी पदमावति सौं भेंटी। औ तेहि कहा 'मोरि तू वेटी' ॥
दीन्ह समुद्र पान कर बीरा। भरि कै रतन पदारथ हीरा ॥
और पाँच नग दीन्ह विसेखे। सरवन सुना, नैन नहिं देखे ॥
एक तौ अमृत, दूसर हँसू। औ तीसर पंखी कर वसूँ ॥
चौथ दीन्ह सावक-सादूरू। पाँचवँ परस, जो कंचन मूरू ॥
तरुन तुरंगम आनि चढ़ाए। जल-मानुप अगुवाँ सँग लाए ॥
भेट-घाँट कै समदि तव फिरे नाइकै माथ।
जल-मानुप तवहीं फिरे जव आए जगनाथ ॥२४॥

[इस अवतरण मे समुद्र द्वारा रतनसेन और पदमावती को जो भेंटे समर्पित की गई थी उनका वर्णन किया गया है।]

वहाँ वे दस दिन नक अतिथि रूप मे रहे। फिर उन्होने समुद्र से विदा ली। लक्ष्मी पदमावती से भेटी और वोली कि तू मेरी वेटी है। समुद्र ने रतनसेन को पान का वीडा दिया और मन भर के रतन, जवाहरात और हीरे दिये। उसने पाँच विशेष रत्न दिये। वे रत्न ऐसे थे जिनके सम्वन्ध मे कानों से चाहे किसी ने सुना हो किन्तु उन्हे आँखो से किसी ने नही देखा था। उनमे एक अमृत था, दूसरा हँस, तीसरा एक राज पक्षी था, चौथा शार्दूल (सिंह) का वच्चा था और पाँचवाँ स्वर्ण का निर्माण करने वाला पारस पत्थर था। पुनश्च राजा और रानी को युवा घोड़ो पर चढ़ाया गया और मार्गदर्शक जलमानुष साथ मे भेजे गए।

घाट पर भेट करके विदा करके सिर नवा करके सव लोग लौट गए। जल-मानुप तव लौटे जव रतनसेन और पदमावती जगन्नाथपुर मे पहुँच गए।

टिप्पणी—दिन......पहुनाई—इसका पाठान्तर डा० अग्रवाल ने निम्न प्रकार से दिया है—

'ओहि दिन आइ रहे पहुनाई।'

हमारी समझ मे शुक्ल जी की पंक्ति अधिक उपयुक्त है।

ओ......**वसु**—इसका पाठान्तर डाक्टर अग्रवाल ने दिया है—

औ सोनहा पंछी कर वसूँ।

डाक्टर अग्रवाल का पाठ हमे अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। शुक्ल जी की पक्ति से वात स्पष्ट नही होती। सुनहरे रग के पक्षी की चर्चा प्राचीन साहित्य मे वहुत आई है। महाभारत मे भी हिरण्य-वर्ण शकुनि का उल्लेख मिलता है।

जनन्नाथ कहँ देखा आई। भोजन रोंधा भात बिकाई॥
राजै पदमावति सौं कहा। साँठि-नाँठि, किछु गाँठि न रहा॥
साँठि होइ जेहि तेहि सब बोला। निसँठ राव सब कह बौराई॥
साँठिहि एक चले झौराई। निसँठ राव सब कह बौराई॥
साँठिहि आव गरब तन फूला। निसँठ हि बोल बुद्धि बल भूला॥
साँठिहि जागि नीद निसि पाई। निसँठहि काह होइ औघाई॥
साँठिहि दिस्टि, जोति होइ नैना। निसँठ होइ, मुख आव न बैना॥
साँठिहि रहै साधि तन, निसँठहि आगरि भूख।
बिनु गथ बिरिछ निपात जिमि ठाढ़-ठाढ पै सूख॥२५॥

[इस अवतरण में कवि ने जगन्नाथजी नामक तीर्थस्थान का वर्णन किया है।]

कवि कहता है कि रतनसेन और पदमावती समुद्र पार करके जगन्नाथपुरी मे आ पहुँचे। वहाँ पर पका हुआ चावल बिक रहा था। राजा ने पदमावती से कहा—मूल सब नष्ट हो गया। अब कुछ गाँठ मे नही रहा। जब पास मे कुछ धन होता है तब बोलते बनता है। मूल धन रहित व्यक्ति की दशा उस पत्ते की तरह होती है जो हवा के झोके से कभी इधर कभी उधर चला जाता है। उसी प्रकार पूँजी रहित मनुष्य केवल मनोरथ के झूले मे झूला करता है। पूँजी होने पर रक भी झूम कर चलता है। बिना पूजी के राजा भी बावला हो उठता है। पूँजी से ही शरीर गर्व से फूल उठता है। पूँजी वाला ही रात मे प्रेम से सोता है और दिन में प्रेम से जगता है। बिना पूँजी वाले को नीद नही पडती। पूँजी वाले की आँखो मे ही चमक दिखाई पडती है। किन्तु बिना पूँजी वाले के मुख से बोली नही निकलती। पूँजीवाला ही शरीर साधना कर पाता है। बिना पूँजी का व्यक्ति भूख से व्याकुल रहता है।

बिना पूँजी के मनुष्य वैसा ही हो जाता है जैसा वृक्ष से गिरा हुआ पत्ता सूख जाता है।

टिप्पणी—निसंठ जो पुरुष पात···· जिमि डोला—यहाँ पर व्यंग्योपमा अलंकार है। कवि की व्यंजना है कि पूँजी रहित व्यक्ति संसार मे स्थिरता, सुख और शान्ति प्राप्त नही कर पाता।

साँठिहि······आई—डा० अग्रवाल ने इस पक्ति का अर्थ दिया है—पूजी से ही आदमी जागता है और रात मे नीद भी चली जाती है। यह अर्थ हमे उपयुक्त नही लगता बल्कि यह व्यजित करना चाहता है कि जिस व्यक्ति के पास पूँजी होती है उसे रात्रि मे अच्छी तरह नीद आती है और दिन मे अच्छी तरह जागता है। अर्थात् उसे दिन-रात सुख और शान्ति रहती है।

निसंठहि······औघाई—कवि की व्यजना है कि पूँजी रहित व्यक्ति को न दिन चैन रहती है न रात चैन रहती है।

चित्तौड़ आगमन खण्ड

चितउर श्राइ नियर भा राजा । वहुरा जीति, इंद्र श्रस गाजा ।।
वाजन वाजहि, होइ श्रंदोरा । श्रावहि वदल हस्ति श्रौ घोरा ।।
पदमावति चंडोल वईठी । पुनि गइ उलटि सर्ग सौं दीठी ।।
यह मन ऐंठा रहै, न सूझा । विपति न संवरै संपति-श्ररूझा ।।
सहस वरिस दुःख सहै जो कोई । घरी एक सुख विसरै सोई ।।
जोगी इहै जानि मन मारा । तौहुँ न यह मन मरै श्रपारा ।।
रहा न वाँधा-ब्राँधा जेही । तेलिया मारि डार पुनि तेही ।।
मुहमद यह मन श्रमर है, केहुँ न मारा जाइ ।
ज्ञान मिलै जौ एहि घटे, घटते घटत विलाइ ।।१।।

[इस श्रवतरण में कवि ने विजयी होकर चित्तौड़गढ श्राने पर राजा रतनसेन की श्रौर उसकी रानी पदमावती के श्रपूर्व हर्षोल्लास की सरल व्यंजना की है ।]

राजा चित्तौड के समीप श्रा पहुँचा । वह विजयी होकर लौटा था इस कारण इन्द्र के समान गरजना कर रहा था । वाजो के वजने से कोलाहल मचा हुश्रा था । श्रनेक हाथी-घोडे श्रौर रथ श्रा रहे थे । पदमावती श्रपनी पालकी मे वैठी हुई थी, उसकी दृष्टि उलट कर फिर श्राकाश मे चली गई थी । मनुष्य का यह मन श्रपने श्रहकार मे कुछ सोचता-विचारता नही है । वह विपत्ति का स्मरण नही करता सुख-सम्पत्ति मे ही डूवा रहता है । कोई चाहे सहस्र वर्षो तक दुःख उठाता रहे, किन्तु उसे एक क्षण के लिए सुख मिल जाए तो वह सव दुःख भूल जाता है । यही समझ कर जोगी लोग श्रपने मन का दमन करते है । किन्तु यह श्रमर मन फिर भी नही मरता । जिसने इसे वाँधने की चेष्टा की उससे भी यह नही वँधा । वह उसे उसी प्रकार परास्त कर देता है जिस प्रकार तेलिया विप मनुष्य को पराभूत कर देता है ।

मोहम्मद कवि कहते है यह मन श्रमर है । कोई भी इसका दमन नहीं कर पाता । ज्ञान से यह क्षीण किया जा सकता है, धीरे-धीरे क्षीण होते-होते यह नष्ट भी हो सकता है ।

टिप्पणी—श्रंदोरा—इस शब्द का प्रयोग हलचल या कोलाहल के श्रर्थ में होता है ।

बहल—प्राचीनकाल मे इस प्रकार के रथ को बहल कहते थे।

चंडोल—यह एक प्रकार की पालकी होती थी जो अपवरी या हौदे के आकार की बनी होती थी।

पुनि······दीठी—यहाँ पर वाक्यगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। कवि यह व्यंजित करना चाहता है कि पदमावती दु ख को भूल कर सुख की अहकारजन्य नई कल्पनाओ मे डूब गई।

तौहूँ······अपारा—इस पक्ति का पाठान्तर डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल ने इस प्रकार दिया।

'उलव न मुवा यह मन औ पारा।'

इसका अर्थ उन्होने लिखा है—'तब भी यह मन और पारा मारे नही मरते।

तिल्या······तैंही—डाक्टर अग्रवाल ने इसका पाठान्तर भी इस प्रकार दिया है—

'तेलिया मुवा डारू पुनि तेही।'

इस पंक्ति का अर्थ उन्होने लिखा है—'तेलिया कन्द से पारा और तीन दिन-रात के उपवास से मन मरता है।'

मुहम्मद······बिलाइ—यहाँ पर कवि ने गीता की समस्या उठाई है। गीता मे मन को अत्यन्त चपल और बलवान कहा गया है—

"चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढं।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥"

अर्थात् मन बडा चंचल और बलवान् है, किन्तु अभ्यास और वैराग्य से वह ग्रहण किया जा सकता है। हमारे कवि ने मन को दमन करने का प्रमुख साधन ज्ञान बताया है। यह उसका अपना अनुसंधान है।

नागमति कहै अगम जनवा। गई तपनि बरषा जनु आवा॥
रही जो मुइ नागिनि जसि तुचा। जिउ पाएँ तनि कै भइ सुचा॥
सब दुख जस केंचुरि गा छूटी। होइ निसरी जनु बीरबहूटी॥
जसी भुइं दहि असाढ़ पलुहाई। परहि बूंद औ सोंधि बसाई॥
ओहि भाँति पलुही सुख-बारी। उठी करिल नइ कोंप सँवारी॥
हुलसि गंग जिमि बाढ़िहि लेई। जोबन लाग हिलोरै देई॥
काम धनुक सर लेइ भइ ठाढ़ी। भागेउ बिरह रहा जो डाढ़ी॥
पूछहि सखी सहेलरी, हिरदय देखि अनन्द।
आजु बदन तोर निरमल, अहै उवा जस चद॥२॥

[इस अवतरण मे कवि ने पति के आगमन की सहज भावना के उदय होने के

कारण रानी पदमावती के हृदय मे जो नव-उत्साह और उल्लास उद्भूत हुआ था, उसका ही चित्रण किया है।]

नागमती को पति के आने का सहज संकेत प्राप्त हो गया जिसके परिणाम-स्वरूप उसकी विरह की तपन शान्त हो गई और शीतलता की वर्षाऋतु मानो आ गई हो। उसकी त्वचा विरह के कारण पुरानी नागिन की कैंचुल के समान हो गई थी। वह अब नवीन प्राणो के संचार से स्वच्छ हो गई। बाद मे उसके सब दुःख इस प्रकार समाप्त हो गए, जिस प्रकार केंचुल छूट जाने से नागिन के सब कष्ट दूर हो जाते है। वह वीरबहूटी के समान अरुण हो उठी। जिस प्रकार पृथ्वी ग्रीष्म मे जलते रहने के पश्चात् आषाढ मे पहली बूंदे पड़ने पर सुरभिपूर्ण वायु को छोडती है, और अच्छी तरह से सजल हो जाती है तथा पल्लवित हो उठती है। उसी भान्ति नागमती की सुख वाटिका पल्लवित हो उठी। उसमे नए-नए कल्ले और कोपल आने लगे अर्थात् सुख और आनन्द की नई-नई भावनाओ का समावेश होने लगा। जिस प्रकार गंगा उल्लसित होकर तरंगित होने लगती है, उसी प्रकार वह कामरूपी धनुष और कटाक्ष रूपी बाणो को लेकर उठ खडी हुई। जो विरह जला रहा था वह भाग गया हुआ। सखी-सहेलियाँ हृदय को आनन्दित देख कर कहने लगी आज तेरा मुख ऐसा निर्मल हो रहा है, मानो कि चन्द्रमा उदय हुआ हो।

टिप्पणी—गई······आवा— यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलंकार से कवि ने संयोग-कालीन सुख शीतलता के उदय की व्यजना की है। यहाँ पर स्वतःसम्भवी वस्तु व्यजना है।

होइ······वीरबहूटी—यहाँ पर भी स्वतःसम्भवी अलंकार से वस्तु व्यजना है। कवि उत्साह और अनुराग का आधिक्य व्यंजित कर रहा है।

विशेष—इस अवतरण मे कवि ने व्यजित किया है कि प्रेम का सम्बन्ध दो हृदयो से होता है। यही कारण है कि नागमती को पति के आगमन से पहले ही आगमन सूचना मिल जाती है।

अब लगि रहा पवन, सखि ताता। आजु लाग मोहिं सीअर गाता॥
महि हुलसै जस पावस-छाहाँ। तस उपना हुँलास मन माहाँ॥
दसवें दाँव कै गा जो दसहरा। पलटा सोइ नाव लेइ पहरा॥
अब जोवन गंगा होइ बाढ़ा। औटन कठिन मारि सब काढा॥
हरियर सब देखौं संसारा। नए,चार जनु भा अवतारा॥
भागेउ विरह करत जो दाहू। भा मुख चन्द, छटि गा राहू॥
पलुहे नैन, बाँह हुलसाही। कोउ हितु आवै जाहि मिलाही॥
कहतहि बात सखिन्ह सौं, ततखन आवा भाँट।
राजा आइ निअर भा, मन्दिर बिछावहु पाट॥३॥

[इस अवतरण मे पति के आगमन पर वह प्रकृति जो विरह-काल मे व्यथा को उद्दीपित करने वाली थी वही आज नागमती के लिए परम सुखद बन गई है। इस तथ्य का कवि ने सुन्दर चित्रण किया है।]

नागमती सखी से कहती है, हे सखी! विरह जो पवन चलता हुआ लगता था, वही आज मिलन के अवसर पर शीतल लग रहा है। जैसे पृथ्वी वर्षा ऋतु की छाया मे हुलसती है, उसी प्रकार मेरे मन आनन्द हुलस उठा है। जो दशहरा हमारे साथ मृत्यु का दाँव खेल गया था, वही आज ससुर का नाम लेकर लौट आया है। अब यौवन गंगा की तरह तरगित है। विरहकालीन जो जलन थी वह सब उस पति ने निकाल कर बाहर कर दी है। सारा संसार मुझे हरा दिखाई पड रहा है। ऐसा मालूम होता है कि मेरा नया जन्म हुआ हो, जो विरह हमे जला रहा था, वह भाग गया है। मेरे मुख-चन्द्र को जो विरहराहु ग्रसित किए हुए था वह छोड़ कर भाग गया है, नेत्र खिल उठे है और भुजाएँ फडक उठी है। किसी हितैषी से मिलन होने वाला है।

जिस समय वह इस प्रकार की बाते कर रही थी उसी समय भाट आ पहुँचा और रानी से बोला—राजा समीप आ गए है। मन्दिर में शीघ्र ही सिहासन सजाओ।

टिप्पणी—दसवं दावं······दसहरा—इस पक्ति का सीधा-सादा अर्थ है। जो पति दशहरे जैसे त्योहार के दिन हमे विरह की दशम अवस्था मृत्यु का शिकार बना कर चला गया था वही आज ससुर का नाम लेवा हमारा पति लौट आया है। डाक्टर वासुदेव शरण अग्रवाल ने इसका अर्थ करते हुए लिखा है—सुरत के दशो दॉव करके जो दशहरे के दिन गया था, वह विचित्र सेना लेकर आज लौट आया है। हमारी समझ मे यह अर्थ थोड़ा दूरारूढ है। कवि की व्यंजना है कि जो पति निर्मोही बन कर हमे त्याग गया था वही आज हमारे त्याग और तपस्या से प्रभावित होकर हमारा नाम रटता हुआ लौट आया। यह व्यजना तभी स्वीकार की जाएगी जबकि महरा का अर्थ ससुर न लेकर पति लिया जाएगा। महरा शब्द महाराज शब्द से बना है। जो पति और ससुर दोनो के लिए प्रयुक्त हो सकता है।

मामुक···चन्द—यहाँ पर कवि की व्यंजना है कि उसका मुख चन्द्र विरह के कारण मुरझा गया था, वह पूर्ण चन्द्रमा के समान प्रफुल्लित हो गया है। यहाँ पर चन्द्र शब्द मे अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि एवं रूढि वैचित्र्य वक्रता है।

पलुहे······नैन—पलुहे का अर्थ प्रफुल्लित होना है।

विशेष—(क) इस अवतरण मे कवि ने प्रकृति के उद्दीपक रूप का वर्णन किया है।

(ख) इसमे कवि ने पदमावती को आगत पतिका नायिका के रूप मे चित्रित किया है।

(ग) यहाँ पर किलकिंचित नामक स्वभावज अलंकार व्यंग्य है। इसमें अति-प्रिय वस्तु के मिलने आदि से हर्ष और उत्साह आदि की व्यंजना की जाती है। कभी-कभी हर्ष विषादादि विरोधी भावों का आकस्मिक सम्मिलन चित्रित किया जाता है।

(घ) यहाँ पर विभ्रम का भाव भी व्यंग्य है।

सुनि तेहि खन राजा कर नाऊँ। भा हुलास सब ठांवहि ठाऊँ॥
पलटा जनु बरषा-ऋतु राजा। जस असाढ़ आवै दर साजा॥
देखि सो छत्र भई जग छाहाँ। हस्ति-मेघ ओनए जग माहाँ॥
सेन पूरि आई घन घोरा। रहस-चाव बरसै चहुँ ओरा॥
धरति सरग अब होइ मेरावा। भरीं सरित औ ताल तलावा॥
उठी लहकि महि सुनतहि नामा। ठावहिं ठावें दूब अस जामा॥
दादुर मोर कोकिला बोले। हुत जो अलोप जीभ सब खोले॥
होइ असवार जो प्रथीमैं मिलै चले सब भाइ।
नदी अठारहगंडा मिली समुद कहँ जाइ॥४॥

[इस अवतरण मे कवि ने राजा के आगमन की सूचना पाकर पदमावती के हृदय मे जो आनन्द उत्पन्न हुआ उसकी बड़ी सरल व्यंजना की है।]

राजा का नाम सुनते ही सर्वत्र हर्षोल्लास छा गया। ऐसा मालूम हुआ मानो कि वर्षा ऋतु में आषाढ रूपी राजा ससैन्य अपने घर लौट आया हो। उसका छत्र देखकर जग मे सर्वत्र छाया हो गई और संसार मे हाथी रूपी मेघ झुक आये। सेना की भाँति मेघों का दल चारो तरफ से बादलों ने घेर लिया और हर्षोल्लास चारो ओर बरसने लगे। पृथ्वी और स्वर्ग का मिलन हो रहा है। ताल, सरोवर और सरिताएँ सब पूरित हो गयी। राजा का नाम सुनते ही पृथ्वी उल्लसित हो उठी और स्थान-स्थान पर दूब के रूप में उसका उल्लास दिखलाई पड़ने लगा। दादुर, मोर और कोकिल बोलने लगे। जो पहले छिपे हुए पडे हुए थे सब मुखरित हो उठे।

जितने भाई-बन्धु थे, वे सब सवार हो कर के मिलने आगे चल दिए। जिस प्रकार वे नदियाँ आगे चलकर समुद्र से मिलने चली।

टिप्पणी—सुनि······ठाऊँ—यहाँ पर चपला अतिशयोक्ति अलकार है।

सोछत्र—यहाँ पर अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। छत्र का उपादान लक्षणा से अर्थ लिया गया है छत्रधारी राजा। यहाँ पर राजा की प्रजा रक्षक प्रवृत्ति की व्यंजना की गई है।

उठि लहकि······महि—यहाँ पर महि का अर्थ है पृथ्वी पर की समस्त वनस्पतियाँ। यह अर्थ उपादान लक्षणा से लिया गया है।

नदी अठारह गंडा—गंडा का अर्थ होता है चार, अठारह को चार से गुणा करने से बहत्तर की संख्या आती है। अवध के लोगो का विश्वास है कि समुद्र मे बहत्तर नदियाँ जाकर मिलती है।

बाजत-गाजत राजा आवा। नगर चहूँ दिसि बाज बधावा॥
बिहँसि आइ माता सौ मिला। राम आइ भेटी कौसिला॥
साजे मन्दिर वंदनवारा। होइ लाग बहु मंगल चारा॥
पदमावति कर आम केवानू। नागमती जिउ महँ भा आनू॥
जनहुँ छाँह महँ, धूप देखाई। तैसइ झार लागि जौ आई॥
सही न जाइ सवति कै झारा। दुसरे मन्दिर दीन्ह उतारा॥
भई उहाँ चहुँ खंड बखानी। रतनसेन पदमावति आनी॥
पुहुप गंध सँसार महँ, रूप बखानि न जाइ।
हेम सेत जनु सघरि गा, जगत पात फहराइ॥५॥

[इस अवतरण में राजा के शुभागमन का वर्णन किया गया है।]

बाजे-गाजे के साथ राजा नगर मे प्रविष्ट हुआ। नगर मे चारो ओर बधावा होने लगा। राजा प्रसन्न होकर के माता से उसी प्रकार मिला जैसे कौशल्या की भेंट राम से हुई हो। राजमन्दिर मे बन्दनवार सजाये गये। चारों तरफ अनेक प्रकार के मंगलाचार होने लगे। फिर पदमावती का विमान आकर पहुँचा। वह पदमावती के लिए सूर्य के समान दहक उठा। जब पदमावती आई तो नागमती को वैसी ही ज्वाला सताने लगी जैसी कि छाँह में धूप आ जाने पर जलन हो जाती है। सौत की ज्वाला सहन नही होती। उसे दूसरे मन्दिर मे उतारा गया। नगर मे चारो ओर चर्चा फैल गई कि रतनसेन पदमावती को लाया है।

पुष्प की सुगन्ध और मणि के रूप का वर्णन करना सम्भव नही होता। इसी प्रकार राजा का यश इस तरह फैल गया मानो कि किसी ने श्वेत हिम का आवरण उतार दिया हो। उस यश की पताका सारे ससार मे फहराने लगी।

टिप्पणी—हेम······फहराइ—डा० अग्रवाल और डा० गुप्त ने इस पंक्ति का पाठान्तर दिया है—

हेम सेत औ गौर गाजना अगत बात फिरि आइ।

किन्तु यह पाठ हमें अधिक उपयुक्त नही लगता। शुक्ल जी के पाठ मे उत्प्रेक्षा के सहारे यथाधिक्य की जो व्यंजना की गई है, वह बडी सुन्दर है। इसमे स्वतःसंभवी अलंकार से वस्तु व्यजना है। इससे चारुता बढ गई है।

डा० अग्रवाल ने अपनी पंक्ति का पाठ इस प्रकार दिया है—

उन दोनों के यश की बात हिमालय से सेतुबन्ध रामेश्वर तक और गौड़ बंगाले से गजनी तक फिरती हुई कही न अटक कर उसके स्वामी के पास फिर आ जाती है।

बैठ सिघासन लोग जोहारा । निघनी निरगुन दरव वोहारा ।।
अगनित दान निछावरि कीन्हा । मंगतन्ह दान वहुत कै दीन्हा ।।
लेइ कै हस्ति महाउत मिलै । तुलसी लेइ उपरोहित चलै ।।
वेटा भाइ कुँवर जत आवहि । हँसि-हँसि राजा कंठ लगावहिं ।।
नेगी गए, मिले अरकाना । पवरिहि वाजै घरहिं निसाना ।।
मिले कुँवर कापर पहिराए । देइ दरव तिन्ह घरहि पठाए ।।
सब कै दसा फिरी पुनि दुनी । दान डाँग सवही जव सुनी ।।
वाजै पाँच सबद निति, सिद्धि वखानहि भाँट ।
छतिस कूरि षट दरसन, आइ जुरे ओहि पाट ।।६।।

[इस अवतरण मे कवि ने नगर निवासियो द्वारा किए गए राजा के स्वागत का वर्णन किया है ।]

राजा के सिंहासन पर वैठते ही सवने आकर के उसको प्रणाम किया। जो निर्धन और निर्गुण थे वे उसकी कृपा से सगुण और धनी हो गये। अनेक प्रकार दान-दक्षिणा और न्योछावर दी गई। याचको को वहुत दान-दक्षिणा दी गई। हाथी लेकर के महावत प्रणाम करने आए और पुरोहित लोग तुलसी-दल लेकर राजा से मिलने आये। भाई और वेटे आदि जो भी राजा से मिलने आते थे उनको वह हँस-हँस कर गले लगा लेता था। जो आश्रित राजा और सामत लोग राजा से भेंट करने आए वे सब भेट मे राजा के लिए वस्त्र लाए। राजा ने उन्हे प्रति-दान मे धन देकर के विदा कर दिया। जव नेग लेने वाले गये तो फिर सरदार और सामन्त लोग आकर मिले। द्वार पर गाहगहे वाजे वजे। संसार मे लोगो की स्थिति एक वार फिर अच्छी हो गई। उसके दान का डंका सारे जग मे गूँज उठा।

नित्य पच-स्वर से वाद्य संगीत होता था और भाट लोग राजा की सिद्धियो का वर्णन करते थे। छत्तीस जाति के क्षत्री और छहो दर्शनों के पण्डित ब्राह्मण उसके राज्य में एकत्रित हो गये थे।

टिप्पणी—दाख······वुहारा—यहाँ पर धन का आधिक्य व्यजित किया गया है। इसलिए यहाँ अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है।

छतिस······कूरि—यहाँ पर उपादान लक्षणा से छत्तीस जातियो के क्षत्रियो का अर्थ है।

षट······दर्शन—यहाँ पर उपादान लक्षणा से अर्थ है छ. दर्शनो में पारंगत ब्राह्मण।

पाट—यहाँ पर इस शब्द का प्रयोग राज्य के अर्थ मे किया गया है, यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है।

सब दिन राजा दान दिआवा। भइ निसि, नागमती पहँ आवा ।।
नागमती मुख फेरि बईठी। सौंह न करै पुरुषसौ दीठी ।।
ग्रीषम जरत छाँड़ि जो जाई। सो मुख कौन देखावै आई ।।
जबहि जरै परबत बन लागे। उठी झार, पंखी उड़ि भागे ।।
जब साखा देखै औ छाहाँ। को नहिं रहसि पसारै बाहाँ ।।
को नहि हरषि बैठ तेहि डारा। को नहिं करै केलि कुरिहारा ? ।।
तू जोगी होइगा बैरागी। हौ जरि छार भयउँ तेहि लागी ।।
काह हँसौ तुय मोसौ, किएउ और सौ नेह।
तुम्ह मुख चमकै बीजुरी, मोहिं मुख बरिसै मेह ।।७।।

[इस अवतरण मे कवि ने राजा और नागमती के प्रवास के पश्चात् के साक्षात्कार का चित्रण किया है।]

राजा ने उसी दिन दान दिलवाया। रात्रि हुई तब वह नागमती के पास आया। नागमती मुँह फेर कर बैठ गई। वह पति की तरफ दृष्टि नही करती है। जो ग्रीष्म मे जलते हुए को छोड़ कर चला जाता है वह कौन-सा मुख आकर दिखा सकता है। जबकि पर्वत और वन जलने लगे, उससे ज्वाला उठी, पक्षी उड कर भाग गए। नई शाखा और छाँह देखकर ऐसा कौन है जो प्रसन्न होकर हाथ नही फैला देता है। ऐसा कौन है जो उल्लसित होकर उस डाल मे नही बैठता और कौन ऐसा है जो केलि क्रीड़ा नही करता है। हे योगी! तू तो वैरागी हो गया है मै तेरे लिए जल कर क्षार हो गई थी।

तुम हमसे क्या हँसते हो, तुमने दूसरे से प्रेम किया है। तुम्हारे मुख पर प्रसन्नता की बिजली चमक रही है और मेरे मुख से अश्रुओ की वर्षा हो रही है।

टिप्पणी—नागमती······बैठी—यहाँ पर नागमती का मान दिखलाया गया है।

ग्रीषम······आई—यहाँ पर स्वत सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंजना है। कवि यह व्यंजित करना चाहता है कि रतनसेन नागमती को यौवन के ग्रीष्म मे विरह मे जलता हुआ छोड़ गया था। इतना बड़ा अपराध करके भला वह फिर नागमती को अपना मुँह दिखाने स्वय कैसे आता। इसीलिए उसे इतना विलम्ब लगा। नागमती का सदेश पाकर ही वह लौटा जबकि उसे विश्वास हो गया कि नागमती उसे क्षमा कर देगी।

जबहि······भागे—यहाँ पर कवि यह व्यजित कर रहा है कि नागमती के विरह की ज्वाला लौकिक से अलौकिक हो गई तब उसकी उस विरह ज्वाला के परिणामस्वरूप जब वन और पर्वत जलने लगे तभी पक्षी ने जाकर रतनसेन से सन्देश कहा। उस सन्देश को पाकर ही रतनसेन लौटा है।

जब······कुरिहारा—यहाँ पर सारूप्य निबन्धना अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। यहाँ पर वस्तु व्यंग्य से उपमा अलंकार भी व्यंग्य है। नागमती रतनसेन को यह व्यंजित करना चाहती है कि उसका उसके प्रति सच्चा प्रेम नहीं है केवल सामयिक प्रेम है। सुन्दर शाखा और मधुर छाँह देखकर जिस प्रकार उसे छूने आदि की इच्छा होती है उसी प्रकार अवसरवादी लोग जहाँ पर भी मधुर वातावरण और शाखा जैसी लावण्यमयी सुन्दरी देखते हैं वहीं उसका आलिंगन कर लेते हैं। तुम भी अब मेरे रूप यौवन के कारण पदमावती के साथ-ही-साथ मुझसे भी भोग करना चाहते हो। ऐसे अवसरवादी से मैं बात करना उचित नहीं समझती। इस पंक्ति में काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य भी है।

तू······बैरागी—यहाँ स्वतःसम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंजना है। नागमती रतनसेन से यह व्यंजित कर रही है कि तेरी नागमती तो विरह में जल गई। तू योगी और बैरागी हो गया था, तुझे उसकी कामना नहीं थी। इसलिए उसने भी विरह में अपने प्राण दे दिए। मैं तो तेरे लिए परस्त्री रूप हूँ। मेरा रूठना ठीक है। तेरा मेरे प्रति आकर्षण अब अनुचित है। दूसरे, मैं तुम्हारा विश्वास भी नहीं कर सकती कि तुम मेरा साथ दोगे।

तुम······नेह—यहाँ पर असंगति अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। कवि यह व्यंजित करना चाहता है कि रतनसेन तो पदमावती को प्राप्त करने के कारण प्रसन्न है और नागमती पति के परनारीगत होने से अत्यन्त दुःखी है।

चमकै······बिजुरी—यहाँ अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से प्रसन्न होना अर्थ है।

मुख······मेह—का अर्थ है अत्यन्त दुःखी होना। यहाँ पर भी अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। यहाँ दो ध्वनियों का संकर है।

फरे सहस······भीर—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। कवि यह व्यंजित करना चाहता है कि रतनसेन द्वारा आलिंगित किए जाते ही दाड़िमरूपी उसके दाँत तथा अधररूपी दाख और कुचरूपी जंभीर उल्लास से पुलकित हो उठे। और जो दास-दासी रूपी पक्षी रतनसेन के चले जाने पर नागमती की उपेक्षा करने लगे थे, वे सेवा में आकर रामजुहार करने लगे। फिर वैसी ही धूमधाम होने लगी। यहाँ पर रतनसेन के मिलन से उद्भूत नागमती के जीवन और शरीर में जो उल्लासपूर्ण विकास हुआ उसकी व्यंजना की गई है।

विशेष—(क) साहित्याचार्यों ने विप्रलम्भ के विभिन्न रूपों के आधार लेकर सम्भोग के अनेक रूप बताए हैं—

(१) पूर्वरागान्तर सम्भोग
(२) मानान्तर सम्भोग
(३) प्रवासान्तर सम्भोग
(४) करुण विप्रलम्भान्त सम्भोग।

गौणीय वैष्णव साहित्य शास्त्रियों ने इनके नामो का उल्लेख अपने ढंग पर किया है। उन्होने प्रथम को सक्षिप्त सभोग, द्वितीय को संकीर्ण संभोग और तृतीय को समृद्धमान संभोग कहा है। प्रस्तुत वातावरण से समृद्धमान और संकीर्ण का श्रीगणेश है।

(ख) यहाँ पर ईर्ष्यामान भी है। मान की व्याख्या एवं परिभाषा देने की चेष्टा अनेक आचार्यो ने की है। आचार्य भोज ने शृगार प्रकाश में लिखा है कि मान शब्द मा+न इन दो शब्दो के सयोग से बना है। ये दोनो ही शब्द निषेध सूचक हैं। दोनो का अर्थ 'नही-नही' है। प्रेम का मधुर मार्ग इन दोनो के रस से भरा हुआ है। दो निषेध एक स्वीकृति के वाचक हो जाते है। प्रेम का सौन्दर्य इसी निषेधात्मक स्वीकृति में होता है।

यह मान ईर्ष्यामूलक और प्रणयमूलक भेद से दो प्रकार का होता है। नायक का सपत्नी रत होने पर नायिका मे जिस मान का उदय होता है उसे ईर्ष्यामान कहते हैं। यह ईर्ष्यामान आचार्य शारदातनय के मतानुसार तीन प्रकार का होता है—

(१) **अनुमा**—गोत्र स्खलन, भोगांक, और स्वप्नादि कारणो से उत्पन्न ईर्ष्यामान को अनुमा ईर्ष्यामान कहते है।

(२) **अध्यक्ष ईर्ष्यामान**—पति को अपनी आँखो के सामने परकीया से सम्भोगादि करते देख कर जो क्रोध उत्पन्न होता है उस क्रोध से विशिष्ट ईर्ष्यामान को अध्यक्ष सज्ञा दी गई है।

(१) **श्रवण**—दास-सखी आदि से पर स्त्री सभोग का समाचार पाकर जो क्रोधजन्य ईर्ष्यामान उदय होता है उसे श्रवण ईर्ष्यामान कहते है।

प्रणयमान का स्वरूप निरूपण करते हुए आचार्य ने लिखा है—'मान प्रकर्ष प्रभव तथा रोष के आस्वाद से कषायित प्रेम यदि प्रकर्ष को प्राप्त हो तो वह प्रणय-मान कहलाता है। यह प्रणयमान नायक और नायिका मे उभयपक्षीय हो सकता है।

प्रस्तुत अवतरण मे अध्यक्ष ईर्ष्यामान ही माना जाएगा।

नागमती तू पहिलि बियाही। कठिन प्रीति दाहै जस दाही ॥
बहुतै दिनन आव जो पीऊ। धनि न मिलै धनि पाहन जीऊ ॥
पाहन लोह पोढ़ जग दोऊ। तेउ मिलहि जौ होइ बिछोऊ ॥
भलेहि सेत गंगाजल दीठा। जमुन जो साम, नीर अति मीठा ॥
काह भएउ तन दिन दस दहा। जौ बरषा सिर ऊपर अहा ॥
कोइ केहु पास आस कै हेरा। धनि ओहि दरस-निरासन-फेरा ॥
कंठ लाइ कै नारि मनाई। जरी जो बेलि सीचि पलुहाई ॥
फरे सहस साखा होइ दारिउँ, दाख, जँभीर।
सबै पंखि मिलि आइ जोहारे, लौटि उहै भइ भीर ॥८॥

[इस अवतरण मे कवि ने रतनसेन के द्वारा मानवती नागमती के प्रति अनुनय विनय करवाई है ।]

राजा कहता है—"हे नागमती ! तू पदमावती से पहले व्याही गई थी इसलिए तेरा प्रेम मुझको वहुत अधिक दु.खी करता है । जब पति वहुत दिन वाद आता है और स्त्री उससे नही मिलती है तो निश्चय ही वह वहुत कठोर हृदय होती है। पाहन और लोहा ये ससार मे सवसे कठोर कहे जाते है किन्तु यदि वे विछुड़े हुए होते है तो भी मिल जाते हैं । इसमे कोई सन्देह नही कि गंगाजल देखने मे सफेद होता है किन्तु जमुना जल काला होते हुए भी मीठा अधिक होता है। क्या हुआ जो दस दिन तक जलना पडा । वर्षा तो होने ही वाली थी । कोई किसी के पास कुछ आशा लेकर आता है । वह धन्य है जो उसे निराश नही करता ।" यह कह कर उसने नागमती को प्रेमालिंगन मे गले लगा लिया । जो लता (नागमती) मुर्झा गई थी वह पल्लवित हो उठी ।

दाडिम, द्राक्षा और जंभीरी नीवू सहस्र शाखाओ वाले होकर फल उठे । सब पक्षी मिलकर आए और उन्होने उन वृक्षो को प्रणाम किया । पलट कर फिर वैसी ही भीड हो गई ।

टिप्पणी—नागमती''' ''दाही—कवि यह व्यंजित करना चाहता है कि नागमती उसकी प्रथम परिणीता पत्नी है । अतएव उसका उसके प्रति सच्चा, सहज और अधिक प्रेम है ।

वहुतै '''''जीऊ—रतनसेन नागमती से यह व्यंजित करना चाहता है कि तुझे इस अवसर पर जवकि मैं इतने दिनो वाद आया हूँ तो मान न करके संभोग कराना चाहिए ।

पाहन''''''विछोहू—यहाँ पर दृष्टान्त अलकार है । कवि नागमती के हृदय की निष्ठुरता व्यंजित करना चाहता है । अत: यहाँ पर कवि प्रौढोक्ति अलंकार से वस्तु व्यजना है ।

भलेहि''' ''मीठा—इस पक्ति मे रतनसेन नागमती से यह व्यंजित कर रहा है कि इसमें कोई सन्देह नही है कि एक पत्नीव्रत वाला व्यक्ति देखने मे गंगाजल के समान पवित्र दिखाई पडता है किन्तु परकीया परक व्यक्ति का भी अपना अलग महत्त्व है । यद्यपि वह यमुना जल के समान देखने मे कलंकित दिखाई पडता है किन्तु वह अधिक रसिक होने के कारण अधिक सुखद होता है । इसी भाव की व्यंजना जायसी ने एक दूसरे स्थल पर निम्नलिखित पक्ति मे की है—

'जौ लहि घरी कलंक न परा ।
काँच होइ नहिं कंचन करा ।।'

यहाँ पर सारूप्य निवन्धनामूलक अप्रस्तुत प्रशंसा अलकार से वस्तु व्यग्य है ।

काह''''''अहा—इस पक्ति मे रतनसेन नागमती से यह व्यंजित करना

चाहता है कि यदि नागमती को विरह की तपन के कुछ दिन काटने पड़े है तो वह अब मिलन की वर्षा से तृप्त भी तो होगी। यहाँ पर उपमा अलकार व्यंग्य है।

कोउ····· फेरा—यहाँ पर काकुवैशिष्ट्य व्यग्य है। कवि नागमती से यह व्यजित कराना चाहता है कि उसे उसका तिरस्कार नही करना चाहिए बल्कि उसे स्वीकार कर लेना चाहिए।

विशेष—मान भग करने की भेद पद्धति का उपयोग रतनसेन ने यहाँ पर किया है।

जौ भा मेर भएउ रँग राता। नागमती हँसि पूछि बाता॥
कहहु, कंत! ओहि देस लोभानें। कस धनि मिली, भोग कसमाने॥
जौ पदमावति सुठि होंइ लोनी। भोरे रूप कि सरवरि होनी?॥
जहाँ राधिका गोपिन्हँ माहाँ। चन्द्रावलि सरि पूज न छाहाँ॥
भँवर-पुरुष अस रहै न राखा। तजै दाख, महुआ-रस चाखा॥
तजि नागसेर फूल सोहावा। कँवल बिसै धहि सौ मन लावा॥
जौ अन्हवाह भरै अरगजा। तौहुँ बिसायंध वह नहि तजा॥
काह कहौ हौ तोसौ, किछु न हिये तोहि भाव।
इहाँ बात मुख मोसौ, जहाँ जीउ ओहि ठाँव॥६॥

[इस अवतरण मे रतनसेन और नागमती का मिलनकालीन वार्तालाप वर्णित है।]

जव मिलन हुआ तो दोनो एक-दूसरे मे अनुरक्त हो गए। तव नागमती ने हँसकर पूछा—"हे पति! यह वताओ कि उस देश पर कैसे लुभा गए, कैसी स्त्री मिली, कैसा भोग माना? हो सकता है पदमावती सुन्दर हो किन्तु क्या वह मेरे रूप की वरावरी कर सकती है। जहाँ गोपियों के मध्य मे राधा हो वहाँ चन्द्रावली उसकी छाँह की समता भी नही कर सकती है। पुरुष भौरे की तरह होता है जो रोकने पर भी नही रुकता है। वह अगूर को छोड कर महुआ के रस को चखना चाहता है। वह नागकेसर के सुन्दर फूल को त्यागकर कमल के वदवूदार फूल पर मंडराता है। चाहे उसे स्नान करा कर कितनी भी अर्गजा लगाई जाए फिर भी कमल की वदवू मे उसका मन रमा रहता है।

मैं तुझसे क्या कहूँ। तेरा मेरे प्रति विल्कुल प्रेम नही है। यहाँ मुझसे वात कर रहे हो और मन दूसरे स्थान पर पड़ा है।

टिप्पणी—जहाँ······छाँहाँ—यहाँ पर सारूप्यनिवन्धना अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। नागमती यह व्यजित करना चाहती है कि वह पदमावती से कही अधिक सुन्दर है।

तजि······लावा—इस पंक्ति मे नागकेसर और कंवल शब्दों में शब्दशक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है। कवि यह व्यंजित करना चाहता है कि नागमती अपने को पदमावती से कही अधिक सुन्दर मानती है।

भँवर······चाखा—यहाँ रूपक और रूपकातिशयोक्ति अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। कवि यह व्यंजित करना चाहता है कि पुरुष की वृत्ति मधुकरी है। वह एक स्त्री से तृप्त नही होता। वह सम्भोग मे परिवर्तन चाहता है। इस परिवर्तन के लिए सुन्दर-से-सुन्दर स्त्री को छोडकर कुरूप-से-कुरूप स्त्री का रस लेना चाहता है।

जौं······तजा—इसका पाठान्तर है—

'जौं नहवाइ भरिअ अरगजा।'

हमे डा० अग्रवाल का पाठ अधिक उपयुक्त नही प्रतीत होता है। शुक्ल जी के पाठ को स्वीकार करने पर अर्थ स्पष्ट नही होता और चमत्कारपूर्ण नही रहता। डा० अग्रवाल के पाठ को स्वीकार करने पर अर्थ होगा कि हाथी को चाहे कितना ही अर्गजा लगाकर स्नान कराया जाए किन्तु वह अपने ऊपर धूल डाले विना नही रहता है। यहाँ पर दृष्टान्त अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। कवि यह व्यंजित करना चाहता है कि कामुक पुरुष की स्त्री कितनी ही अनुपम क्यो न हो किन्तु वह साधारण-से-साधारण परस्त्री सेवन विना नही रह सकता।

यहाँ······ठाऊँ—यहाँ पर असंगति अलकार से वस्तु व्यंग्य है। नागमती यह कहना चाहती है कि रतनसेन को उससे प्रेम नही है दिखावामात्र कर रहा है।

विशेष—यहाँ पर कवि नागमती का चित्रण रूपगर्विता स्वाधीन पतिका के रूप मे किया गया है।

कहि दुख कथा जौ रैनि बिहानी। भएउ भोर जहँ पदमिनी रानी॥
भानु देख ससि-बदन मलीना। कँवल नैन राते, तनु खीना॥
रैनि नखत गनि कीन्ह बिहानू। बिकल भई देखा जब भानू॥
सूर हँसै, ससि रोइ डफारा। टूट आँसु जनु नखतन्ह-मारा॥
रहै न राखी होइ निसाँसी। तहँवा जाहु जहाँ निसि बासी॥
हौ कै नेह कुआँ महँ मेली। सीचै लागि झुरानी बेली॥
नैन रहे होइ रहँट क घरी। भरी ते ढारी, छूँछी भरी॥
सुभर सरोवर हँस चल, घटतहि गए बिछोह।
कँवल न प्रीतम परिहरै, सूखि पक बरु होइ॥१०॥

[इस अवतरण मे रतनसेन रात्रि-भर नागमती के पास रहने के बाद प्रातःकाल पदमावती के पास जाता है। उस समय जो दोनो की नोक-झोक हुई है उसका वर्णन किया गया है।]

अपने दु.ख की कथा कहते हुए नागमती ने रात बिता दी। राजा प्रातःकाल होते ही पदमावती के पास चला गया। राजा रूपी सूर्य ने देखा कि पदमावती रूपी शशि निराश थी। उसके कमल नयन रोष से लाल हो रहे थे, शरीर क्षीण हो गया था, तारे गिनकर उसने रात काटी थी। जब उसने सूर्यरूपी राजा को देखा तो विकल हो गई। सूर्यरूपी राजा मुस्कराया और शशिरूपी पदमावती दु.खी थी। रो-रो कर घर महल भरे दे रही थी। किसी भी प्रकार मनाने से नही मान रही थी। रोते-रोते हिचकियाँ बँध गई थी। उसके आँसू ऐसे टूट रहे है मानो कि नक्षत्रो की माला टूट कर बिखर गई हो। वह धैर्य बँधाने पर भी शान्त नही होती थी और बेसाँस हो रही थी और कह रही थी—वही जाओ जहाँ रात बिताई है। हमको तो प्रेम के बहाने कुएँ मे लाकर डाल दिया है। अब सूखी हुई लता सीचने आए है। मेरे नेत्र अरहट की घडिया हो रहे है। आँसू भर आते है और ढुलक जाते है।

भरे हुए सरोवर मे रहने वाला हँस उसमे जल घटते ही उसे छोड़ कर चला जाता है। किन्तु कमल सरोवर से अपना नेह कभी भी नही छोड़ता चाहे जल सूखकर कीचड़ ही क्यो न हो जाए।

टिप्पणी—भानु······खना—यहाँ स्वतःसम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंजना है। कवि ने यहाँ पर खण्डिता नायिका के रोषाधिक्य की व्यंजना की है।

सर······डफारा—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार से वस्तु व्यग्य है। कवि यहाँ पर नागमती के सापत्न्यजनित रोषाधिक्य को व्यजित कर रहा है।

हौं······भेली—यहाँ पर रूपक अलकार से वस्तु व्यंग्य है। पदमावती रतनसेन से यह व्यजित कर रही है कि तुमने प्रेम के बहाने मुझे बहुत बड़ा धोखा दिया है जो चित्तौड़गढ मे लाकर डाल दिया है। अब दूसरे से प्रेम कर रहा है।

सीचैं······बेली—पदमावती यह व्यंजित कर रही है कि शरीररूपी लता मुर्भा गई है। उसका अब प्रयास वैसा ही है जैसा कि सूखी हुई लता को सीचने का प्रयास होता है। यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार से उपमा अलंकार व्यंग्य है।

नयन······भरी—यहाँ लक्ष्योपमा अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। कवि नायिका के सापत्न्य डाहजनित विरह से उद्भूत विरह-वेदना की तीक्ष्णता व्यंजित कर रहा है।

सुभर······होय—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार से कवि ने पदमावती की भावनाओ को व्यजित किया है। पदमावती व्यंजित कर रही है कि उसका मन रूपी हँस तो अब सरोवर रूपी रतनसेन के सुभर जलरूपी प्रेम के कम होने पर हट गया है। किन्तु शरीररूपी कमल उस सरोवररूपी रतनसेन का तब भी त्याग नहीं करेगा जबकि उसमे चाहे उसके प्रति कुवासनाओ का कीचड़ शेष रह जाएगा।

विशेष—यहाँ पर पदमावती का चित्र अन्य सुरत दुःखिता नायिका का है।

पदमावति तुइँ जीउ पराना। जिउत जगत पियार न आना॥
तुइँ जिमि कँवल बसी हिय माहाँ। हौ होइ अलि बेधा तोहि पाहाँ॥
मालति-कली भँवर जौ पावा। सो तजि आन फूल कित भावा?॥
मैं हौं सिंघल कै पदमिनि। सरिन पूज जंबू-नागिनी॥
हौ सुगंध निरमल उजियारी। वह विप-भरी डेरावनि कारी॥
भोरी वास भँवर सँग लागहि। ओहि देखत मानुप डरि भागहि॥
हौ पुरुपन्ह कै चितवन दीठी। जेहि के जिउ अस अही पईठी॥
ऊँचे ठावँ जो बैठे, करै न नीचहि संग।
जहाँ सो नागिनि हिरकै करिया-करै सो अंग॥११॥

[इस अवतरण मे रतनसेन मानवती पदमावती से अनुनय-विनय करता हुआ चित्रित किया गया है।]

रतनसेन कहता है—"हे पदमावती! तुम मेरा जीवन और प्राण हो। प्राण से अधिक प्रिय कोई वस्तु नही होती है। तू कमल के समान मेरे हृदय मे बसी हुई है। भ्रमर जब मालती कली को प्राप्त कर लेता है तो फिर उसे त्यागकर वह दूसरे फूल पर नही जाता है।" इस प्रकार की वार्ता सुनकर पदमावती कहती है—"मैं सिंहल की पदमिनी हूँ। जम्बू द्वीप की नागिनी मेरी समता नही कर सकती है। मैं सुरभिमयी हूँ और रूप तथा गुण मे अद्वितीय हूँ और वह विप की भरी हुई और भयानक है। मेरी सुरभि के साथ भौरे मडराते रहते हैं। उसे देख कर लोग डरकर भाग जाते हैं। मैं पुरुषो की चितवन और दृष्टि का केन्द्र बनी रहती हूँ और जिसके हृदय मे कहो स्थान ग्रहण कर सकती हूँ।

जो ऊँचे स्थान पर बैठता है वह नीच का सग नहीं करता है जहाँ पर वह नागिनी फुफकारती है वह सबको काला बना देती है।

टिप्पणी—मालति······भावा—यहाँ पर सारूप्य निबन्धना अलंकार से वस्तु व्यग्य है। रतनसेन पदमावती के प्रति यह व्यंजित कर रहा है कि उसने मालती की कली रूप जब पदमावती को प्राप्त कर लिया है फिर उसे दूसरे के प्रति अनुराग नहीं हो सकता है। जो होगा वह केवल दिखावटी ही होगा।

ऊँचे······अग—यहाँ दृष्टात अलंकार से वस्तु व्यग्य है। पदमावती यह व्यंजित करना चाहती है कि वह नागमती की अपेक्षा बहुत उच्च है। अतएव राजा को उच्च की संगति करनी चाहिए नागिनी जैसी नीच नागमती का सग नही करना चाहिए। कुसग से मनुष्य का पतन ही होता है उत्थान नही।

विशेप—(क) यहाँ पर रतनसेन दक्षिण नायक के रूप मे चित्रित किया गया है।

(ख) यहाँ पर पदमावती का चित्रण अन्य सुरति दु.खिता, प्रेमगर्विता, रूप-गर्विता मानिनी नायिका के रूप में किया गया है।

पलुही नागमती कै बारी। सोने फूल फूलि फुलवारी ॥
जावत पंखि रहे सब दहे। सबै पंखि बोलत गहगहे ॥
सारिउँ सुवा महरि कोकिला। रहसत आइ पपीहा मिला ॥
हारिल सबद, महोख सोहावा। काग कुराहर करि सुख पावा ॥
भोग-बिलास कीन्ह कै फेरा। बिहँसहिं, रहसहि करहि बसेरा ॥
नाचहि पंडुक मोर परेवा। बिफल न आइ काहु कै सेवा ॥
होइ उजियार सूर जस तपै। खूसट मुख न देखावै छपै ॥
संग सहेली नागमति, आपनि बारी माँह।
फूल चुनहिं, फल तूरहि, रहसि कूदि सुख-छाँह ॥१२॥

[इस अवतरण मे कवि ने नागमती रूपी बगीची के पति मिलन पर फूलने-फलने पर पक्षियो की प्रसन्नता का दिग्दर्शन कराया है। इसलिए इस अवतरण के दो अर्थ है—एक वाटिकापरक और दूसरा नागमती यौवनपरक।]

(१) **वाटिकापरक अर्थ**—नागमती की वाटिका फिर से पल्लवित हो उठी पहले जो उसके विरहकाल मे उसकी वाटिका के पक्षी जल रहे थे वे सब आनन्दोल्लसित हो कलरव करने लगे। मैना, तोता, ग्वालिन कोकिला से रहसता हुआ पपीहा आ मिला। हारिल बोलने लगा। महोख पक्षी शोभायमान होने लगा। कउआ शोर मचाते हुए सुखी हो रहा था। उन्होने फिर से भोग-विलास प्रारम्भ कर दिया। वे खूब विहंसते थे, रहसते थे और वही बसेरा भी लेते थे। पडुखी मोर और कबूतर सब नाच रहे हैं। किसी की भी सेवा विफल नही जाती है। जब सूर्य तपने लगता है और प्रकाश हो जाता है तो फिर उल्लू वहाँ दिखाई नही पडता है।

नागमती अपनी सखी-सहेलियों के साथ अपनी ही वाटिका में विद्यमान है। वे सब फूल चुनती है, फल तोडती है और सुखपूर्वक रहसती कूँकती है।

नागमती परक अर्थ—नागमती की यौवन वाटिका फिर से प्रफुल्लित हो उठी। सुनहरी कामनाओ के फूल फिर से खिल उठे। मधुर भावनाओ के पक्षी जो सब दग्ध हो गए थे वे फिर से उल्लसित हो उठे। सभी कल्पनाएँ आनन्दोल्लास से मुखरित सी हो उठी। वह मैना के समान चहक उठी। नासिका रूपी तोते ने नई शोभा प्राप्त की। वह रानी कोकिला बनकर कूँकने लगी। उसका प्राणरूपी पपीहा रहस उठा। जो मुर्झाया हुआ शब्द था वह मधुर और ऊँचा हो गया। कउए रूपी कामभाव कोलाहल करके सुख देने लगे। भोग-विलास फिर से लौट आया और विहँस रहसकर उसने उसमें बसेरा ले लिया। उसकी ग्रीवा मयूर, पडुक और परेवा की तरह हर्षोल्लास से नाच उठी। किसी की भी तपस्या व्यर्थ नही जाती है। जब पतिरूपी सूर्य पत्नी के पास आकर तपने लगता है तो खूसट रूपी दु.ख छिप जाता और दिखाई नही पड़ता है।

नागमती अपनी सहेलियो के साथ अपने विहार के केलि भवन मे है। वे मधुर भावनाओ के फूल चुनती हैं, काल्पनिक आनन्द रूपी फल का अनुभव करके खूब हँसती, रहसती, कूदती और उल्लसित होती है।

टिप्पणी—नागमती……बारी—नागमती की वाटिका—वाटिकापरक अर्थ। नागमती की यौवनवाटिका—यौवनपरक अर्थ। यहाँ पर बारी मे श्लेप है।

सोने……फूल—सुनहरे फूल—वाटिकापरक अर्थ। सुन्दर भावरूपी फूल—यौवनपरक अर्थ।

नागमती-पदमावती विवाद खण्ड

जाही जूही तेहि फुलवारी। देखि रहस रहि सकी न बारी॥
दूतिन्ह बात न हिये समानी। पदमावति पहँ कहा सो आनी॥
नागमती है आपनि बारी। भँवर मिला रस करै धमारी॥
सखी साथ सब रहसहिं कूदहिं। औ सिंगार-हार सब गूँथहिं॥
तुम जो बकावरि तुम्ह सौ भरना। बकुचन गहै-चहै जो करना॥
नागमती नागेसरि नारी। कँवलन आछै आपनि बारी॥
जस सेवती गुलाल चमेली। तैसि एक जनु बहू अकेली॥
अलि जो सुदरसन कूजा, कित सदबरगै जोग ?।
मिला भँवर नागेसरिहि, दीन्ह ओहि सुख-भोग॥१॥

[इस अवतरण मे कवि ने एक ओर तो फूलों का वर्णन किया है और दूसरी तरफ सखियों द्वारा पदमावती के प्रति नागमती के भोग-विलास और आनन्दोल्लास का वर्णन किया गया है।]

फूल परक अर्थ—उस फुलवारी मे जाही जूही खिली हुई थी। उसको देखकर वाटिका उल्लास से उल्लसित हुए बिना न रह सकी। दूतियों के मन में बात रुक न सकी। उन्होने नागमती की वाटिका के समाचार पदमावती से कह दिये। उन्होंने कहा कि पदमावती की पुष्पित वाटिका मे कलियो से भ्रमर आ मिला। सखियों के साथ वे रहसती कूदती हैं और सब हार शृंगार की माला बनाती है। तुम जो बकावरी के फूल के समान हो तो क्या तुमसे राजा का मन नही भरता है। वह तो करना फूल को पकड़ना चाहता है। नागमती नागकेसर जैसी नारी है। पदमावती का अपना घर या बगीचा नही है। जैसे सेवती और गुलाला और चमेली आदि है वैसे ही एक कमल है।

जो भँवरा सुदर्शन फूल पर कूजेगा वह गेंदा के योग्य कैसे रह जाएगा। भ्रमर नागकेसर से मिल गया है और वह उसी को सुख भी दे रहा है।

नागमती और पदमावती परक अर्थ—नागमती की वाटिका मे कुछ दूती रूपी जूहियाँ थी। वे नागमती का उल्लास देखकर उसकी बाटिका मे न रह सकी। उन दूतियो के हृदय मे बात रह न सकी। उन्होने पदमावती से आकर सब बात-कह दी। नागमती अपने महल मे हैं और रतनसेन रूपी भ्रमर उससे मिलकर आनन्द क्रीड़ा

कर रहा है। सखियाँ सब उसके साथ रहसती कूदती है और उसके शृगार के लिए हार बनाती है। भ्रमररूपी रतनसेन तुम्हे बातों मे बहला देता है। उसकी तुमसे तृप्ति नही होती है। जो वह करना चाहता है वही करता है। नागमती नागकेसर जैसी स्त्री है। वह अपनी वाटिका मे कमलरूपी पदमावती को रखना नही चाहती है। वह चाहती है जैसी गुलाला और चमेली आदि दासियाँ उसकी सेवा करती है पदमावती भी वैसी ही है। जो रतनसेन रूपी भ्रमर सुन्दर रूप का लोभी है वह (पदमावती) तुझ जैसी सदाचारिणी के योग्य नही है। भँवररूपी रतनसेन नागकेसर रूपी नागमती से मिला हुआ है और उसी को सुखभोग दे रहा है।

टिप्पणी—जाही······जूही—(१) एक प्रकार की जूही फूल की जाति—फूलपरक अर्थ।

(२) जाने वाली जो थी अर्थात् दूती—नागमतीपरक अर्थ।

नागमती······बारी—दूतिका यह व्यंजित करना चाहती है कि नागमती अपने घर में है अर्थात् चित्तौड की असली स्वामिनी है और तू पराये घर में सेविका के रूप मे पड़ी हुई है।

भँवर ···धमारी—यहाँ पर भ्रमर मे रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

शृंगार····· हार—हर शृगार फूल का नाम है।

—आभूषण के रूप मे हार।

तुमजो····· बकावरि—तुम बकावली का फूल हो।

—तुमसे लच्छेदार बाते करता है।

तुम्ह सौं····· भरना—तुमसे तृप्त नही है।

चहै जौं······करना—जो करना चाहता है उसे ही करता है।

—करना नामक फूल को पसन्द करता है।

नागेसरि—नागकेसर नामक फूल।

—नागेश्वरी अत्यन्त भयानक नागिन जैसी।

कँवल—एक फूल।

—पदमावती।

आपनि बारी—अपनी वाटिका मे।

—अपने घर मे।

सेवती—सेवा करती है।

—सेवती एक प्रकार का फूल।

सुदरसन—एक फूल।

—सुन्दर रूप।

सदबरगै जोग—गेदे का फूल।

—पतिव्रता स्त्री (सदाचारिणी स्त्री)।

"सद्‌बरगा"—शब्द है जिसका अर्थ है श्रेष्ठ वर से गमन की जाने वाली।

जोग—योग्य ।

विशेष—इस अवतरण मे कवि ने कही पर श्लेष और कही पर पर्यायवक्रता और कही पर शब्दशक्ति उद्भव वस्तुध्वनि का सहारा लिया है। रूपक, रूपकातिशयोक्ति, अर्थान्तर न्यास आदि कई अलंकारो का सौदर्य दिखाई पड़ता है।

सुनि पदमावती रिस न सँभारी। सखिन्ह साथ आई फुलवारी ॥
दुवौ सवति मिलि पाट बईठी। हिय विरोध, मुख बातै मीठी ॥
बारी दिस्टि सुरँग सो आई। पदमावति हँसि बात चलाई ॥
बारी सुफल अहै तुम रानी। है लाई, पै लाइ न जानी ॥
नागेसर औ मालति जहाँ। सँगतराव नहि चाही तहाँ ॥
रहा जो मधुकर कँवल पिरीता। लाइउ आनि करीलहि रीता ॥
जहाँ अमिली पाकै हिय माँहा। तहँ न भाव नौरँग कै छाहाँ ॥
फूल फूल जस फर जहाँ, देखहुँ हिये विचारि।
आँब लागि जेह बारी, जाँबु काह तेहि बारि ?॥२॥

[इस अवतरण मे कवि ने सखियों की वार्ता सुनकर रोष मे आक्रात पदमावती का चित्र खीचा है।]

पदमावती यह समाचार सुनकर क्रोध मे भर गई और अपने को सँभाल न सकी और वह अपनी सखियो के साथ नागमती रूपी वाटिका के पास आई। दोनो सौते डटकर अपने-अपने सिहासनो पर वैठ गई। हृदय मे विरोध है किन्तु मुँह से मीठी वाते कर रही है। पदमावती ने नागमती की सुन्दर वाटिका देखी और फिर हँसकर उसने वात छेड़ी। हे रानी! तुम्हारी वाटिका सुन्दर फलवाली है किन्तु तुम्हे उसका लगाना आया नही है। जहाँ नागकेसर और मालती हो वहाँ पर सतरा नही लगाया जाता है। पदमावती की व्यजना है कि तेरी यौवनरूपी वाटिका मे जहाँ नागकेसर रूप तू और मालती रूपिणी तेरी सखियाँ (राजा की अन्य नारियाँ) स्थित हो वहाँ राव (राजा) की संगत अर्थात् मिलन शोभा नही देता। पदमावती की व्यजना है कि राजा मुझ कमलरूपिणी पदमावती का है। नागेश्वरी के समान विपरूपिणी और मालती के समान भ्रमरो को फँसाकर मार डालने वाली तेरी अन्य सखियो की राजा को फँसाने की यह चेष्टा सर्वथा अनुचित और दुस्साहसपूर्ण है। जो भ्रमरा कमल का प्रेमी है उसको सूखे करील ने अटका लिया है। जहाँ पर हृदय मे विरह तड़प चुका है वहाँ नव अनुराग नही जग सकता।

जहाँ जैसा फूल होता है वहाँ वैसा ही फल होता है। यह वात हृदय मे विचार कर देख लो कि जिस वाटिका मे आम लगना चाहिए उसमे जामुन का क्या काम ?

टिप्पणी—सुनि······सँभारी—यहाँ पर कवि ने असूया, ईर्ष्या, अमर्ष आदि कई सचारियो की व्यजना की है।

सखिन्ह······फुलवारी—यहाँ पर कवि ने पदमावती के सापत्न्य दाह जनित ईर्ष्या की अतिरेकता व्यजित की है।

हिय····· मीठी—डा० अग्रवाल के अनुसार यह उक्ति इस प्रकरण का सूत्र है। उन्होने लिखा है कि चौपाइयो के अर्थ भी ऊपर से प्रशंसासूचक पर भीतर से विरोध प्रकट करने वाले कूटपरक होने चाहिएँ।

बारी······आई इसका प्रत्यक्ष अर्थ है कि वह वाटिका पदमावती को सुन्दर दिखाई पडी। इसका व्यग्यार्थ है कि वाटिका को देखकर पदमावती की आँखें रक्तिम हो गईं। यहाँ पर शब्दशक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है।

बारी······रानी—इसका प्रत्यक्ष अर्थ है कि वाटिका खूब फलवती है। व्यंग्यार्थ है कि हे रानी! तुम्हे किसी ने सुन्दर फल से वंचित कर रखा है।

नागेसर······तहाँ—इसका प्रत्यक्ष अर्थ है कि नागमती और उसकी सहेलियों को राजा की सगति करने का कोई अधिकार नही है क्योंकि राजा मेरा है। मेरा होने के नाते किसी दूसरी को अनधिकार चेष्टा नही करनी चाहिए। यह इसका व्यग्यार्थ है, इसका अभिधेयार्थ बहुत स्पष्ट और सरल है। कवि कहता है कि जहाँ नागकेसर और मालती जैसे फूल हो वहाँ संतरे के पेड नही होने चाहिएँ। नागकेसर और मालती मे काँटे होते है अतएव संतरा जैसे चिकने और मधुर फल का इनके समीप होना उचित नही है। यहाँ पर स्वत सम्भवी वस्तु वर्णन से वस्तु व्यजना है।

रहा······रीता—इसका अभिधेयार्थ है कि जो भ्रमर कमल का प्रेमी है उसे शुष्क करील से क्यो उलझा दिया है। पदमावती का व्यंग्यार्थ है कि रतनसेन जोकि मुझ पदमावती का अनुरागी है उसे तूने जो कि करील के समान शुष्क और नीरस है उसे अपने मे क्यो उलझा लिया है।

जहाँ····· छाहाँ—इसका साधारण अर्थ है कि जिस स्थल पर पकी हुई इमली होती है वहाँ नारगी अच्छी नही लगती है। व्यग्यार्थ है कि जिसके हृदय मे विरह पनप चुका है उसके हृदय मे (नवरग) अनुराग का नया उत्साह नही जम सकता। इस व्यग्यार्थ का भी दूसरा व्यंग्यार्थ है कि तू विरहिणी है और विरहिणी के हृदय में रति-भाव का नवोत्साह नही जग सकता। वह वैसी क्रीड़ा नही कर सकती जैसी कि मैं कर सकती हूँ। जिसके वक्षस्थल मे कुच नारंगी के समान है और कभी विरह न होने के कारण रति का नवोल्लास भी है।

अनु, तुम कही नीक यह सोभा। पै फल सोइ भँवरि जेहि लोभा॥
साम जाँवु कस्तूरी चोवा। आँब ऊँच, हिरदय तेहि रोवाँ॥
तेहि गुन अस भई जाँवु पियारी। लाई आनि माँझ कै बारी॥
जल बाढ़े बहि इहाँ जो आई। है पाकी अमिली जेहि ठाईं॥

तु कस पराई वारी दूखी । तजा पानि, धाई मुह-सूखी ॥
उठै आगि दुइ डार अभेरा । कौन साथ तहँ वैरी केरा ॥
जो देखि नागेसर बारी । लगे मरै सब सूआ सारी ॥
जो सरवर जल बाढै रहै सो अपने ठाँव ।
तजि कै सर औ कुडहि जाहि न पर अँवराव ॥३॥

[इस अवतरण में पदमावती के प्रति नागमती का प्रत्युत्तर है ।]

नागमती पदमावती से कहती है, "हे पदमावती ! तुम रुष्ट न होओ । तुमने हमारी इस वाटिका की शोभा को अच्छा कहा है जिस का कि विपरीत लक्षण से अर्थ है कि वह वुरी है । किन्तु तुम्हे यह स्मरण होना चाहिए कि फूल वही सुन्दर और मधुर कहा जाता है जिस पर भौरा मँडराता है । जामुन श्याम वर्ण की होती है किन्तु वह फिर भी कस्तूरी जैसा रग चुआती है । आम ऊँचा होता है किन्तु उसके हृदय मे रुदन भरा रहता है । जामुन अपने उसी गुण के कारण इतनी प्यारी लगती है । उसको वगीची के वीच मे लगाया जाता है । जल मे जव बाढ आती है तो वह वहाँ तक पहुँचती है जहाँ पक्की इमली का पेड़ होता है । तू पराई वाटिका देखकर क्यों जलती है । राजा ने जब तेरा साथ ही छोड दिया है तो मुर्भाया हुआ मुँह लेकर तू यहाँ आई है । जव केला और बेरी की दो डाले आपस मे भिड़ जाती है तो उनसे आपस मे आग पैदा हो जाती है । वे दोनों बैरी है इसलिए दोनो को एक साथ नहीं लगाना चाहिए । जिस वाटिका में नागिनी दीख जाती है उस वाटिका मे तोते और सारिकाएँ डर से मरने लगते है ।

यदि सरोवर का जल वढ भी जाय तो वह अपने ही स्थान पर रहेगा । ऐसा नही कि वह अपने तालाव और कुँड को त्याग कर दूसरे की अमराई मे चला जाए ।

टिप्पणी—व्यंग्यार्थ—अनु······लोभा—नागमती पदमावती के प्रति यह व्यजित कर रही है कि उसने जो व्यंग्य किया कि उसकी वाटिका सुन्दर नही है, यह निरर्थक है क्योकि वाटिका वही सुन्दर समझी जाती है जिसमे सुन्दर फूल होते है । फूल वही सुन्दर होता है जिस पर भौरा मँडराता है । रतनसेन रूपी भँवरा मेरे यौवनरूपी फूल पर मँडरा रहा है अतएव मेरी जीवन-वाटिका निश्चय ही सुन्दर है । अतएव तुम्हारा यह कहना कि "तुम्हारी वाटिका सुन्दर है" सर्वथा यथार्थ और ठीक है ।

साभ······रोवाँ—नागमती पदमावती से व्यजित कर रही है कि इसमे कोई सदेह नही कि मै काली हूँ किन्तु मुझमे कस्तूरी जैसी सुरभि है । तुम चाहे अपने को बहुत ही रसमयी समझती हो किन्तु आज तुम्हारा हृदय रो रहा है ।

तेही गुन······बारी—नागमती पदमावती से व्यजित कर रही है कि यद्यपि मैं सावली हूँ किन्तु अपनी त्याग-तपस्या से मै पति की प्यारी वन गई हूँ । उसने मुझे अपनी हृदयरूपी वाटिका के बीच मे स्थान दे दिया है ।

जल······ठाईं—पदमावती से नागमती व्यंजित कर रही है कि मैंने तुझे नीचा दिखला दिया। मैं तेरे द्वार पर नही गई और तू मेरे द्वार पर घिसटती चली आई। मुझे तू पकी इमली के सदृश वृद्धा समझती है और अपने को नवरंगमयी युवती मानती है। प्रेमरूपी जल के बढने पर यहाँ तक घसीटती चली आई है। अतएव जिस यौवन पर तुझे अभिमान था वह व्यर्थ रहा।

तूं······सूखी—नागमती पदमावती के प्रति यह व्यंजित कर रही है कि तू मेरी फूलती-फलती वाटिका देखकर व्यर्थ ही जलती और दुःखी होती है। तुझे अपने सौभाग्य पर बडा अभिमान था फिर आज तू क्यो मुर्झाई हुई दिखाई पड़ती है। आज तेरा स्वाभिमान (पानी) कहाँ चला गया, उसे तूने कैसे छोड़ दिया।

उठै······केरा—नागमती पदमावति के प्रति व्यंजित करती है कि जहाँ दो स्त्रियाँ होती है वहाँ संघर्ष अवश्य होता है। और जबकि स्त्रियाँ परस्पर वैर रखती हो तब तो सघर्ष का कहना ही क्या? इतना जानते हुए भी तू मुझ वैरिन के पास क्यो आईं।

जो······वारी—नागमती पदमावती के प्रति यह व्यंजित कर रही है कि मेरी वाटिका को फलती-फूलती देखकर सारिका जैसी तू और तेरा हितैषी तोता सब डाह से जलने लगे है।

जो······अँबराव—नागमती यह व्यजित कर रही है कि यदि मनुष्य मे आवेश भी आ जाय तो उसे निर्लज्ज होकर दूसरे की जीवन-वाटिका पर कुठाराघात नहीं करना चाहिए। तेरा मेरे यहाँ इस प्रकार आना सर्वथा अनुचित है। यहाँ आकर तूने द्वेषभाव और मर्यादाहीनता को प्रकट कर दिया है।

तुइँ अँबराव लीन्ह का जूरी ?। काहे भई नीम विप मूरी ॥
भई वैरि कित कुटिल कटैली। तेंदु टेंटी चाहि कसैली ॥
दारिउँ दाख न तोरि फुलवारी। देखि मरहिं का सूआ सारी ? ॥
औ न सदाफर तुरँज जँभीरा। लागे कटहर वड़हर खीरा ॥
कँवल के हिरदय भीतर केसर। तेहि न सरि पूजै नागेसर ॥
जहँ कटहर ऊमर को पूछै ?। वर पीपर का वोलहि छूँछै ॥
जो फल देखा सोई फीका। गरव न करहिं जान मन नीका ॥
रहु आपनि तू बारी मो सौं जूझु, न बाजु।
मालति उपम न पूजै, वन कर खूझा खाजु ॥४॥

[इस अवतरण मे कवि ने नागमती के प्रति पदमावती का प्रत्युत्तर प्रस्तुत किया है।]

"हे नागमती! तूने अपनी बगीची मे एकत्रित ही क्या किया है। विप की मूल नीम लगाने से क्या लाभ? कुटिल काँटेदार वेरी लगाकर भी तूने क्या किया।

तूने अपनी वाटिका मे तेंदू और टेटी जैसी कसैली चीजे लगा रखी है। तेरी फुलवारी में न दाडिम है न दाख है जिसको देखकर तोता मैना प्राण दे। उसमे न सदाफल है, न तुरज है और न जभीरी ही है। उसमे तो कटहर, बड़हर और खीरे लगे हुए है। कंवल के भीतर केसर होती है, उसकी वरावरी नागकेसर कैसे कर सकती है। जहाँ केसर है वहाँ गूलर को कौन पूछेगा। बड़ और पीपल क्या बोलेंगे, वे तो विल्कुल खाली ही रहते है। तेरी वाटिका मे जो फल देखा वही फीका है, फिर तू उनको देख कर इतना अभिमान क्यो करती है, उन्हे अच्छा क्यों समझती है।"

तू अपनी ही वाटिका मे रह, मुझसे लडाई झगड़ा मत कर। वन के खर पतवार मालती की समता नही कर सकते है।

टिप्पणी—तुही······जूरी—पदमावती नागमती से यह व्यजित कर रही है कि तेरी सखी-सहेलियो से युक्त तेरी फुलवारी राजा को प्रिय नही है क्योकि इसमें वे फल नही है जो राजा को प्रिय लगते है।

कहि······बिषमूरी—पदमावती नागमती से व्यंजित कर रही है कि तू इतने कटु स्वभाव वाली और कर्कशा है कि राजा तुम्हारे पास रहना कदापि पसन्द नहीं करेगा। तुमने उसे जवरदस्ती रोक रखा है, वह तुम्हारे जैसी कर्कशा से प्रेम नही कर सकता है।

भई······कटैली—पदमावती नागमती के प्रति सम्बोधित करती हुई व्यंजित करती है, "हे बैरिनी तू इतनी कठोर और कटु क्यो हो रही है।"

तेंदु······कसैली—पदमावती नागमती से व्यजित करती हुई कहती है, "तेरी सखियाँ भी बडी रूखी और कठोर है।"

दरिउँ······फुलवारी—तेरी सखियो की वाटिका मे कोई भी ऐसी नही है जिसके अधर दाड़िम और दाख के समान मधुर हों और जिन्हे देखकर कोई आकर्षित हो।

औ······खीरा—तेरी सखियो सहेलियो के और तेरे, किसी के भी कुच सदाफल, तुरँज और जंभीरी जैसे नही है या तो कटहल के सदृश लम्वे-लम्वे लटकते हुए है या वडहर की तरह छोटे से है या खीरे के सदृश लटक रहे है।

कँवल······केसर—मुझ पदमावती के हृदय मे पति के लिए अत्यधिक अनुराग है। ऐसी मुझ पदमावती की जिसके हृदय मे केसर के समान पति प्रेम है तू क्या उसकी वरावरी कर सकती है। तेरा प्रेम शुष्क और नीरस है।

जहँ······छूछै—जहाँ हमारे समान पति से प्रेम करने वाली स्त्री है वहाँ तुम्हारी और तुम्हारी सखियो की आवश्यकता नही है क्योकि तुम सब गूलर जैसी नीरस हो। तेरे पक्षपाती भला क्या वोल सकते है जो विल्कुल सारहीन है।

जो······नीका—नागमती से पदमावती व्यजित करती हुई कहती है कि तेरे समाज मे जिसे देखा वही रूखी और नीरस दिखाई पडी है। तू इतने पर भी गर्व करती है। तेरा गर्व निरर्थक है।

रहु······खाजु—तू मुझसे क्यो झगडती है। तू अपनी खरपतवार पर क्यों इठलाती है। समझ ले भौंरा रूपी पति उन पर आसक्त नही हो सकता क्योंकि मैं मालती के समान अपने पति को ऐसा फँसाऊँगी कि फिर उसे कभी मुक्त ही नही करूँगी कि जो तुम्हारे पास जा सके। एक बार पति पाकर इतना इठला रही है।

कँवल सो कौन सोपारी रोठा। जेहि के हिय सहस दस कोठा।।
रहै न झाँपे आपन गटा। सो कित उघेलि चहै परगटा ? ।।
कँवल-पत्र तर दारिउँ, चोली। देखे सूर देसि हैं खोली ।।
ऊपर राता, भीतर पियरा। जारौ ओहि हरदि अस हियरा ।।
इहाँ भँवर मुख बातन्ह लावसि। उहाँ सुरुज कहँ हँसि बहरावसि ।।
सब निसि तपि-तपि मरसि पियासी। भोर भए पावसि पिय बासी ।।
सेजवाँ रोइ रोइ निसि भरसी। तू मोसौं का सरवरि करसी ?
सुरुज किरिन बहरावै, सरवर लहरि न पूंज।
भँवर हिया तोर पावै, धूप देह तोरि भूंज ।।५।।

[इस अवतरण मे कवि ने नागमती का पदमावती के प्रति प्रत्युत्तर प्रस्तुत किया है।]

कमल कौन अच्छा होता है। सुपारी के टुकड़े के समान कठोर होता है और उसमे सैकडो कोठे होते हैं। वह अपना बीजकोष ढककर नही रहता है। वह अपनी शक्ति दिखाकर प्रकट हो जाना चाहता है। कमल पत्र के नीचे कमल दाड़िम के सदृश चमकता है और जब सूर्य को कमल देखता है तो अपने को खोल देता है। ऊपर से तो लाल होता है और अन्दर से पीला होता है। जिसका हृदय हल्दी के समान होता है उसे तो जला देना चाहिए। एक ओर अपना मुख भौंरे को देकर उसे बातो मे बहला लेती है और दूसरी ओर वह सूर्य से हँसकर दिल बहलाव करती है। सारी रात तडप-तडप कर प्यासी मरती है और प्रातः होने पर बासी पति पाती है। रात भर तू रो-रोकर शैय्या भर देती है। तू मेरी बराबरी क्या करेगी।

तू ऐसा कमल है कि सूर्य की किरणे ही तेरा मन बहलाती है और सरोवर की लहर तेरा पूरा नही डाल पाती है। भौंरा तेरे हृदय को प्राप्त करता है और धूप तेरे शरीर को जलाती है।

टिप्पणी—कँवल······कोठा—नागमती पदमावती के प्रति यह व्यजित कर रही है कि तू सुपारी के समान तो कठोर हृदया है और तुझमे सैकड़ो कोठे (छिद्र) या दोष है। व्यजना है कि तू कठोर हृदया है और तेरे मन मे अनेक दोष और कुभावनाएँ है।

रहै······परगटा—नागमती यह व्यंजित कर रही हे कि पदमावती बड़ी निर्लज्ज है। वह अपने घटा (स्तनो को) को ढककर नही रखती है जिससे वे हर

समय प्रकट हो जाना चाहते है। भला ऐसी भी निर्लज्ज स्त्री किस काम की।

कँवल······खोली—नागमती यह व्यंजित कर रही है कि पदमावती जो चोली पहने हुए है उसमे नग्न दिखाई पडती है, उसके कुच नगे चमकते है। उसके लिए उसने कमल के पत्ते से ढके हुए कमल की उपमा दी है। पदमावती इतनी निर्लज्ज है कि वह उन अर्ध आवृत कुचो को भी सूरज रूपी उपपति को देखकर बिल्कुल अनावृत कर देती है।

ऊपर······हियरा—नागमती यह व्यजित कर रही है कि पदमावती ऊपर से तो प्रेम दिखाती है किन्तु अन्दर हृदय मे कपट भरा हुआ है। ऐसे कपटी हृदय से वह घृणा करती है।

यहाँ······वहरावसि—नागमती यह व्यजित कर रही है कि पदमावती व्यभिचारिणी भी है। वह एक से अधर पान कराती है और दूसरे से बाते बनाती है।

सबनिसि······बासी—नागमती यह व्यंजित कर रही है कि पदमावती सौभाग्यहीन है क्योकि पति के मन से उतरी है। इसका प्रमाण यह है कि रात्रि भर मेरे साथ रहता है और प्रात. जब सोने का समय होता है तब तुझ दासी के पास सेवा करवाने पहुँचता है। नागमती अपने को यहाँ रानी और पदमावती को दासी कह रही है।

सेजवाँ······करसी—नागमती इन पक्तियो मे पदमावती के दुर्भाग्य और अपने सौभाग्य की व्यंजना कर रही है।

सूरज······मूँज—नागमती ने इस पक्ति मे पदमावती की व्यभिचारी स्त्री की व्यंजना की है, वह कहती है, तू ऐसी घृणित नारी है कि जब तेरी तृप्ति अपने पति से नही होती तो उपपति की भावनाओ से खिलवाड़ करती है। हृदय से भ्रमर-रूपी उपपति से अनुराग करती है और शरीर सूरजरूपी पति को दे रखा है इसीलिए तो पति तेरे पास नही जाता है।

मै हौ कँवल सुरुज कै जोरी। जौ पिय आपन तौ का चोरी ? ॥
हौ ओहि आपन दरपन लेखौं। करौ सिगार, भर मुख देखौ ॥
मोर बिगास ओहिक परगासू। तू जरि मरसि निहारि अकासू ॥
हौ ओहि सौ, वह मोसौ राता। तिमिर बिलाइ होत परभाता ॥
कँवल के हिरदय महँ जो गटा। हरि हर हार कीन्ह का घटा ?॥
जाकर दिवस तेहि पहँ आवा। कारि रैनि कित देखै पावा ? ॥
तू ऊमर जेहि भीतर माखी। चाहहि उड़ै मरन कै पाँखी ॥
धूप न देखहि, विपभरी ! अमृत सो सर पाव।
जेहि नागिनी डस सो मरै, लहरि सुरुज कै आव ॥ ६॥

[इस अवतरण मे पदमावती नागमती को उत्तर देती हुई चित्रित की गई है।]

मै तो कमल हूँ और सूरजरूपी रतनसेन मेरा ही पति है। जब पति अपना है तो फिर चाहे दिन मे भोग किया जाए चाहे रात मे कोई चोरी है। उसे मैं अपना दर्पण समझती हूँ। सवेरे उठकर शृगार करके उसमे अपना मुख (सौन्दर्य) देखती हूँ। उसके प्रकाश से ही मुझ कमल का विकास होता है। तू सूर्योदय देखकर जल भुन जाती है। वह मुझ मे और मै उसमे अनुरक्त हूँ। प्रातः होते ही अधकार दूर हो जाता है। कमल के हृदय मे जो गट्टा होता है उसकी माला शिव और विष्णु तक पहनते है। उसे किस प्रकार नीचा कहा जा सकता है। जिसका दिन होता है वह उसी के पास आता है। अधेरी रात भला दिन को कैसे देख सकती है। तू तो गूलर के फूल के सदृश है जिसमे तमाम भुनगे रहते हैं। मरने से पहले उनके पर निकल आते है।

हे विष भरी नागमती, तू सूरज की धूप को अर्थात् सूरज के सौन्दर्य को नही देख सकती। उसके अमृत भाव को तो सरोवर ही जानता है। तू नागिनी जिसको डस लेती है वह मर जाता है। यहाँ तक कि तेरे प्रभाव से मेरा पति रूपी सूर्य भी लहरे लेने लगा है।

टिप्पणी—मै······चोरी—पदमावती व्यजित कर रही है कि रतनसेन रूपी सूर्य से मुझ कमल रूपिणी पदमावती का सहज सम्बन्ध है और जिस पति से पत्नी का सहज सम्बन्ध है तो उससे यदि वह किसी समय भी सभोग करती है तो वह व्यभिचार नही कहला सकता क्योकि वह तो उसका स्वाधिकार है।

जाकर····· पावा—पदमावती यह व्यजित कर रही है कि रतनसेन वास्तव में उसका पति है। नागमती जैसी दुष्ट पत्नी से उसका कोई सम्बन्ध नही है।

तू······पाँखी—पदमावती नागमति के प्रति यह व्यंजित कर रही है कि नागमती के अब बुरे दिन आए है। जिसके बुरे दिन आते है वह बहुत बहकने लगता है। जैसे मरने से पहले भुनगो के पर जम आते हैं।

धूप······आव—इन पक्तियो मे पदमावती यह व्यंजित कर रही है कि नागमती जैसी विष भरी ने सूर्यरूपी रतनसेन को भी दूषित कर दिया है। उसने पति को हानि पहुँचाई है, उससे लाभ नही उठाया है। सूरजरूपी पति से लाभ तो मुझ सरोवर मे रहने वाले कमल ने ही लिया है। उसके अमृत को मैं ही प्राप्त कर पाई हूँ। नागमती उसे प्राप्त नही कर सकी थी।

जो कटहर बड़हर झड़बेरो। तोहि असि नाही, कोका बेरी॥
साम जाँवु मोर तुरँज जँभीरा। करुई नीम तौ छाँह गँभीरा॥
नारियर दाख ओहि कहँ राखौ। गलगल जाउँ सवति नहि भाखौ॥
तोरे कहे होइ मोर काहा? । फरे विरिछ कोइ ढेल न वाहा॥
नवै सदाफर सदा जो फरई। दारिउँ देखि फाटि हिय मरई॥
जायफर लौग सोपारि छोहारा। मिरिच होई जो सहै न झारा॥
हौ सो रंग पूज न कोई। विरह जो जरै चूनि जरि होई॥

लाजहिं बूड़ि मरसि नहि, ऊभि उठावासि वाँह।
हौ रानी, पिय राजा, तो कहँ जोगी नाह ।।७।।

[इस अवतरण मे पदमावती के प्रति नागमती का प्रत्युत्तर प्रस्तुत किया गया है।]

नागमती कहती है कि यदि मेरी वाटिका मे कटहल, बड़हर और झड़वेरी के वृक्ष है (तो यह उसकी वड़ाई है)। वह तेरी जैसी नही है जो कोकावेली है। मेरे यहाँ काले जामुन है तो तुरँज और जभीरी भी है (जिनका स्वाद हमारा पति ही जानता है)। हमारी वाटिका में यदि नीम है तो उसकी छाया मधुर होती है। नारियल और दाख उस पति के लिए मैंने रख छोडे है। मै चाहे घुल-घुलकर मर जाऊँ पर सौत के पास नही जाऊँगी। तेरे कहने से मेरा क्या हो जाएगा। कही फले हुए वृक्ष ढेला मारने से झड तो नही जायेंगे। सदाफल क्योकि सदा फलता है इसलिए झुका रहता है, अनार उसे देखकर ईर्ष्या से फट जाता है। जायफल, लौग, सुपारी और छुआरा ये सव मेरी वाटिका मे है जिसे इनकी झार पसन्द नही आती वह ज्वाला से मिर्च हो जाती है। मैं तो ऐसा पान हूँ जिसके रग की बरावरी कोई नही कर सकता। जो विरह मे जलती है वह चूने के समान जल जाती है।

तू लज्जा से डूब नही मरती, तुझे वाँह उठाकर चलते हुए शर्म नही आती। मुझे राजा पति मिला था, मैं रानी हूँ, तुझे जोगी पति मिला था (फिर तू इतनी वाते क्यो बनाती है, तू कैसे रानी कहलाने के योग्य है)।

टिप्पणी—जो······कोकावेली—नागमती पदमावती को प्रत्युत्तर देती हुई व्यजित करती है कि अगर मेरी वाटिका मे ऐसी सखियाँ है जिनके कुच कटहल जैसे बड़े-वडे लटकते हुए है (अर्थात् प्रौढ़ाएँ हैं)। वडहर अर्थात् छोटे-छोटे कुचो वाली वालाएँ है और झड़वेरी जैसे अविकसित कुचों वाली वालाएँ है किन्तु ये सव है वड़े घर की क्योकि इनके जनक रूपी वृक्ष वडे ऊँचे होते है। किन्तु तू तो कोकावेली है जिसका वृक्ष ही नही होता है। अर्थात् तू वहुत नीचे घर की है। दूसरी व्यंजना है कि तू सरोवर रूप स्वपति के साथ में रहते हुए भी उपपति चाँद के लिए तड़पती रहती है। हमारी सहेलियाँ सव वड़े घर की है और पतिव्रता है, उनमे से कोई भी व्यभिचारिणी नही है।

साम······गंभीरा—नागमती व्यंजित कर रही है कि अगर हमारी वगीची मे (रनिवास मे) जामुन जैसे कुचो वाली वालाएँ है तो तुरँज और जभीरी जैसे कुचो वाली मैं भी हूँ। और यदि नीम के समान कडवे स्वभाव वाली वालाएँ है तो उनकी छाया भी तो वडी शीतल होती है अर्थात् वे राजा की सेवा भी तो वहुत करती है।

नरीयर······भाखौं—मेरी रनवास रूपी वाटिका मे मेरे जैसी रानियाँ है जिनके कुच नारियल जैसे कठोर और पीन है, जिनके अधर द्राक्षा जैसे मधुर हैं और मैं

ऐसी स्वाभिमानिनी हूँ कि चाहे विरह मे घुल-घुलकर मर जाऊँ किन्तु सौत से बात करना पसन्द नही करती हूँ। व्यजना है कि मैं तेरी तरह नही हूँ कि जो एक दिन पति नही पहुँचा तो सौत के घर लडने चली आई।

तोरे······बाहा—नागमती पदमावती से कहती है कि तेरे निन्दा करने से मेरा क्या बिगड जायेगा। तेरे अतिरिक्त और कोई तो मेरी निन्दा नही करेगा। क्योकि फले हुए वृक्ष पर कोई ढेला नही मारता अर्थात् पतिव्रता परिणीता पर कोई दोषारोपण नही कर सकता है।

नवै····· भरै—नागमती यह व्यजित कर रही है कि यह सदाफल के समान है इसलिए वह सदैव सुहागिन रहती है। इसीलिए वह विनयसम्पन्न है और तुम्हारे जैसी दाडिम के स्वभाववाली ईर्ष्यालु नारियो का मुझ चिरसौभाग्यवती को देखकर ईर्ष्या से हृदय फटता है।

जायफल······झारा—हमारे रनिवास मे सभी स्वभाव की नारियाँ है। किन्तु तेरे जैसे मिर्च स्वभाववाली कोई नही है।

हौं····· होई—मैं ऐसी अनुरागमयी और पतिप्राणा हूँ कि मेरी बराबरी कोई नही कर सकता है। तू तो विरहिणी है। विरह की ज्वाला मे जलकर चूना हो गई है।

लाजै······नाहा—नागमती यह व्यंजित कर रही है कि पदमावती बड़ी निर्लज्ज भी है। वह मुझ रानी के पति पर जो उसके लिए पराया है जबरदस्ती अधिकार करना चाहती है। क्योकि उसका विवाह राजा से नहीं हुआ था वरन् एक योगी से हुआ था। वह योगी के बदले मे मेरे पति को चाहती है।

हौं पदमिनी मानसर केवा। भँवर मराल करहि मोरि सेवा॥
पूजा—जोग दई हम्ह गढ़ी। औ महेस के माथे चढ़ी॥
जानै जगत कँवल कै करो। तोहि असि नहि नागिन विषभरी॥
तुइँ सब लिए जगत के नागा। कोइल भेस न छांडि से कागा॥
तू भुजइल, हौ हँसिनी मोरा। मोहि तोहि मोति पोति कै जोरा॥
कचन करी रतन नग बाना। जहाँ पदारथ सोह न आना॥
तू तौ राहु, हौ ससि उजियारी। दिनहि न पूजै निसि अँधियारी॥
ठाढि होसि जेहि ठाई मसि लागै तेहि ठावँ।
तेहि डर राँध न बैठौ मकु साँवरि होई जावँ॥८॥

[इस अवतरण मे पदमावती की उक्ति नागमती के प्रति कही गई है।]

पदमावती कहती है कि मैं तो मानसरोवर का कमल हूँ। भ्रमर और मराल मेरी सेवा करते है। परमात्मा ने हमे पूजा के योग्य बनाया है। मैं शिवजी की सिर चढी हूँ। सारा संसार जानता है कि तू विषभरी नागिन के समान है। तेरा सम्बन्ध

सारे जगत् के नागो से है। शकल कोयलो की वनाए है और कउओ का साथ नही छोड़ती है। तू काली भुँजगिनी है और मै भोली हसिनी हूँ। मै मोती हूँ और तू काँच के पोत की जोडी है। सोने की कली (पदमावती) मे रत्न नग शोभित होता है। और जो हीरा रूप (नागमती) है उसके पास रत्न शोभित नही होता। तू तो राहू है और मै चाँद जैसी उजियाली हूँ। भला अधेरी रात दिन की बरावरी कर सकती है ?

जहाँ पर तू खड़ी होती है वही पर कालिख लग जाती है। इसीलिए मै तेरे पास नही वैठी। ऐसा कही न हो कि मैं भी काली हो जाऊँ।

टिप्पणी—हौं······सेवा—पदमावती यह व्यजित कर रही है कि वह पद्मिनी जाति की सर्वश्रेष्ठ नारी है। बड़े-वड़े रसिक और बडे-वड़े महापुरुष उसके रूप-गुण पर न्यौछावर रहते है फिर भी वह उनको दास के रूप मे देखती है स्वामी के नही।

तुइँ······कागा—पदमावती नागमती को एक दुष्ट स्त्री सिद्ध कर रही है। वह कहती है कि उसका सम्पर्क दुष्टो से है और इसीलिए रानी होकर भी वह नीचों का साथ करती है।

तू······जोरी—नागमती अपने को भोली "हसिनी" कहकर सुलक्षणा और नागमती को "भुजइल" कहकर दुष्टा व्यजित कर रही है। इसी प्रकार वह अपने को सच्चा मोती कहकर सच्ची वास्तविक कांतिवाली सुन्दर स्त्री मानती है और नागमती को वनावटी स्त्री व्यंजित करती है।

कंचन······आना—पदमावती यह व्यजित कर रही है कि रतनसेन सुन्दर कंचन कली के समान पदमावती का पति होने योग्य है। जहाँ हीरा होता है वहाँ रत्न शोभा नही पाता। पदमावती ने नागमती को हीरा इसलिए कहा है कि वह वहुत कठोर हृदया और विपभरी है। हीरे के सम्वन्ध मे कहते है कि वह कठोर होता है और विष-भरा होता है। उसको चाटने से मर जाते है।

तू······अंधियारी—यहाँ पर पदमावती नागमती की उसके प्रति प्रकट की गई विरोध वृत्ति और दुष्टता व्यजित कर रही है। साथ ही साथ वह उसकी कुरूपता और अपनी सुन्दरता भी व्यजित कर रही है। नागमती को राहू और अपने को शशि की उजियाली, और इसी प्रकार अपने को दिन और नागमती को रात्रि की अधियारी कहकर उपर्युक्त भाव व्यजित कर रही है।

ठाड़ी······जावँ—यहाँ पर पदमावती की श्यामता और कुरूपता व्यजित की है और साथ-ही-साथ अपने को उससे अलग रखने के हेतु की उत्प्रेक्षा भी की है।

फूल न कवँल भानु विनु ऊए। पानी मैल होइ जरि छूए॥
फिरहि भँवर तोरे नयनाहाँ। नीर बिसाइँध होइ तोहि पाहाँ॥
मच्छ कच्छ दादुर कर बासा। वग अस पंखि वसहि तोहि पासा॥
जे जे पांखि पास तोहि गए। पानी महँ सो बिसाइँध भए॥

जौ उजियार चाँद होइ ऊआ। वदन कलंक डोम लेइ छूआ॥
मोहि तोहि निसि दिनकर बीजू। राहु के हाथ चाँद कै मीचू॥
सहस बार जौ धोवै कोई। तौहु बिसाइँध जाइ न धोई॥
काह कहौ ओहि पिय कहँ, मोहि सिर धरेसि अँगारि।
तेहि के खेल भरोसे तुई जीती, मैं हारि॥६॥

[इस अवतरण मे नागमती का पदमावती के प्रति प्रत्युत्तर वर्णित है।]

नागमती कहती है कि कमल सूर्य के विना उदय हुए नही खिलता है किन्तु सूर्य उस पानी को सुखाकर मैला कर देता है। तेरे नेत्रो के समान जो भौंरे चंचल थे वे तेरी विसायंध के कारण तेरे पास आते हैं। मच्छ, कच्छ और दादुर का तेरे समीप वास रहता है। वगुले जैसे पक्षी तेरे पास रहते हैं। जो भी पक्षी तुम्हारे पास गए वे सव तेरी विसायँध से मर गए। अगर चन्द्रमा प्रकाशवान होकर उदित होता है तो उसके मुख पर कलक है। डोम तक उसको छूते हैं। मुझ मे और तुझ में वही अंतर है जो दिन और रात मे होता है। राहू के हाथ चाँद की मृत्यु होती है। अगर कोई कँवल की बिसायँध को हजार बार घोए तो भी वह दूर नहीं होती है।

उस पति को मैं क्या कहूँ जिसने मेरे ऊपर अंगारे रख दिए हैं। इसीलिए उसी के वल पर तू जीत गई मैं हार गई।

टिप्पणी—फूल······छूए—नागमती यह व्यंजित कर रही है कि जिस रतनसेन पर तू इतना फूलती है वह तेरा सगा नही है। वह तेरी हानि ही करना चाहता है।

फिरे······पाँहा—नागमती यह व्यंजित कर रही है कि रतनसेन भ्रमररूपी प्रेमी था। उसके चपल नेत्रों ने उसे फँसा लिया। तेरे प्रभाव में निर्मल जल जैसे पवित्र व्यक्ति भी आ जाते है।

मच्छ······पासा—नागमती यह व्यजित कर रही है कि तू व्यभिचारी वृत्ति की है। जहाँ तूने एक ओर तो पति को फँसा लिया है वही तू मच्छ, कच्छ और बगुले जैसी ढोगी व्यक्तियों को भी फँसाए रखती है।

जेहि······मए—नागमती यह व्यंजित कर रही है कि जो भी प्रेमी तेरे पास गए उन सबको तूने अपने इन्द्रजाल मे फँसा रखा है। तू ऐसी व्यभिचारिणी है कि पर-पुरुष को फसाने मे लजाती नही है।

जौ उजियार····· छुआ—नागमती व्यंजित कर रही है कि रूप से ही क्या होता है यदि स्त्री की मनोवृत्ति ही दूषित हो। चाँद उज्ज्वल होता है किन्तु वह कलकित है। डोम जाति का राहू उसको छूता है। इसी प्रकार तू सुन्दरी है तो क्या। किन्तु व्यभिचारिणी होने के कारण तू कलकित है और नीच पर-पुरुषों से सम्वन्ध रखती है।

मोहि······शृंगार—नागमती पदमावती से कह रही है कि तूने मुझे घोर विरह मे प्रज्वलित किया है।

तोर अकेल का जीतिउँ हारूँ। मै जीतिउँ जग कर सिगारू॥
बदन जितिउँ सो ससि उजियारी। बेनी जितिउँ भुअँगिनि कारी॥
नैनन्ह जितिउँ मिरिग कै नैना। कंठ जितिउँ कोकिल कै बैना॥
भौह जितिउँ अरजुन धनुधारी। गीउ जितिउँ तमचूर पुछारी॥
नासिक जितिउँ पुहुप तिल, सूआ। सूक जितिउँ बेसरि होइ ऊआ॥
दामिनि जितिउँ दसन दमकाही। अधर रंग जीतिउँ बिवाहीं॥
केहरि जितिउँ, लंक मैं लीन्हीं। जितिउँ मराल चील वै दीन्हीं॥
पुहुप बास मलयागिरि निरमल अग बसाई।
तू नागिनी आसा लुबुध डससि काहु कहँ जाइ॥१०॥

[इस अवतरण मे पदमावती की उक्ति नागमती के लिए है।]

पदमावती कहती है कि मैने तेरा ही पति नही जीता है वरन् ससार के शृगारो को जीत रखा है। मैंने अपने मुख की शोभा से ज्योत्स्ना को जीत रखा है और अपनी वेणी से भुंजगिनी को जीता है और अपनी वाणी से कोयल को जीत रखा है। अपनी भौहों से धनुर्धारी अर्जुन को जीत रखा है। मैने गर्दन से मोर और मुर्गे को जीता है। नासिका से तिल का फूल और तोता जीत रखा है। तिलक से शुक्रतारा जीता है जिससे कि वह वेसर वनकर उदय हुआ है। चमकते हुए दाँतो से मैने विद्युत् को जीत रखा है। अधरो के रग से मैने विंवाफल को जीत रखा है। कमर से केहरी को जीत रखा है। चाल से मैंने मराल को जीत रखा है और मैंने ही अपनी चाल उसे दे रखी है।

मलयागिरि के फूलो की सुन्दर सुगंधि मेरे शरीर मे वसती है। और तू नागिन इस कामना मे रहती है कि किसी को चिपट जाए और डस ले।

टिप्पणी—इस अवतरण मे सर्वत्र प्रतीप अलकार है।

का तोहि गरब सिगार पराए। अबही लैहि लूट सब ठाएँ॥
हौ साँवरि सलोन मोर नैना। सेत चीर, मुख चातक वैना॥
नासिक खरग, फूल धुव तारा। भौह धनुक गगन गा हारा॥
हीरा दसन सेत औ सामा। छपै बीजु जो बिहँसे बामा॥
विद्रुम अधर रंग रस राते। जूड़ अमिय अस रवि नहि ताते॥
चाल गयंद गरव अति भरी। बसा लक नागेसर करी॥
साँवरि जहाँ लोनि सुठि नीकी। का सरवरि तू करसि जों फीकी॥

पुहुप बास औ पवन अधारी कँवल मोर तरहेल।
चहौ केस धरि नावौ, तोर मरन मोर खेल ॥११॥

[इस अवतरण में कवि ने नागमती की उक्ति पदमावती के प्रति प्रकट कराई है।]

पराए शृंगार पर तू क्यो गर्व करती है। जिनकी शोभा तूने ली है वे सब फिर तुझसे लौटा सकते है। मै साँवली होते हुए भी बडे सलोने नेत्रो वाली हूँ। मेरे शरीर पर श्वेत वस्त्र शोभायमान होता है और मैं मुख से पीऊ-पीऊ रटा करती हूँ। मेरी नासिका खड्ग के समान है, तेरी नाक का फूल शुक्र जैसा है और मेरा ध्रुव नक्षत्र के तुल्य है। मेरी भौहो की तुलना आकाश का इन्द्र धनुप भी नही कर सकता है। मेरे दाँत हीरे से श्वेत हैं जिनके बीच मे मिस्सी की श्यामता है। जब मैं हँसती हूं तो बिजली भी छिप जाती है। मेरे अधर के लाल रस से विद्रुम लाल हो गए है। वे अमृत के समान ठडे और प्रात: के सूर्य के समान अरुण है। मेरी चाल गजेन्द्र के समान गर्व से भरी हुई है। मेरी कटि बर्र के समान क्षीण है। मैं साँवरी होते हुए भी अत्यन्त सुन्दरी हूं। तू रसहीना गोरी होकर भी मेरी समता नही कर सकती।

मैं पवन के समान केवल पुष्पो की सुगंधि के आधार पर रहती हूँ। हे कमला! तू मुझसे सब प्रकार से घटकर है। जब चाहूँ तब मैं तुझे केश पकड़कर पटक सकती हूँ। मेरा खेल तेरा मरण हो सकता है।

का······ठाएँ—नागमती यह व्यंजित कर रही है कि पदमावती का सौन्दर्य कृत्रिम है। जिन-जिन से उसने सुन्दरता प्राप्त की है वे सब उससे सुन्दरता छीन सकते है। किन्तु नागमती की सुन्दरता सहज है।

पदमावति सुनि उतर न सही। नागमती नागिनि जिमि गही॥
वह ओहि कहँ, वह ओहि कहँ गहा। काह कहौं तस जाइ न कहा॥
दुवौ नवल भरि जोबन गाजे। अछरी जनहुँ अखारे बाजैं॥
भा बाहुँन-बाहुँन सौ जोरा। हिय सौ हिय, कोई बाग न मोरा॥
कुच सों कुच भइ सोहैं अनी। नवहि न नाए, टूटहिं तनी॥
कुँभस्थल जिभि गज मैमंता। दूवौ आइ भिरे चौदंता॥
देवलोक देखत हुत ठाढ़े। लगे बान हिय, जाहि न काढ़े॥
जनहुँ दीन्ह ठगलाडू देखि आई तस मीचु।
रहा न कोइ धरहरिया करै दुहुँन्ह महँ बीचु ॥१२॥

[इस अवतरण मे कवि ने दोनो सौतों के मल्लयुद्ध का वर्णन किया है।]

पदमावती नागमती के उत्तर को सुनकर सह न सकी। उसने नागमती को नागिन के सदृश पकड़ लिया। पदमावती ने नागमती को और नागमती ने पदमावती

को पकड लिया। दोनो मे ऐसी गुत्थमगुत्था होने लगी कि कवि उसका वर्णन करने मे अपने को असमर्थ पाता है। दोनो नई यौवनावस्था मे गर्ज-गर्ज कर लड़ रही थी। मालूम होता था मानो कि दो अप्सराएँ अखाड़े मे उतरी हो। एक-दूसरे को एक-दूसरे ने वाहुओ मे जकड लिया। हृदय-से-हृदय ने टक्कर ली, तव कुचो-से-कुच भिड़ गए। दोनो मे से कोई भी भुकाए नही भुकती है। दोनो किसी भी प्रकार से नियन्त्रित नही होती है। जिस प्रकार दो मतवाले और अल्हड हाथी अपने कुम्भ-स्थलो को टकराकर चौदता भिड जाते है ऐसे ही वे दोनो भिड गईं। यह दृश्य देवता लोग खड़े हुए देख रहे थे। उनके हृदय मे उन्हें देखकर जो कामबाण लग रहे थे वे निकाले नही जा रहे थे।

ऐसा लग रहा था मानो उन्हे किसी ने ठग लड्डू खिला दिए हो। इस प्रकार उनकी मृत्यु निकट आई दिखाई पड़ी। कौन ऐसा सिर धरा था जो दोनो मे वीच बचाव करता।

टिप्पणी—अछरी······बाजै—इस पर टिप्पणी लिखते हुए डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा है—"अखड़िया रंगभूमि मे उतर कर दो अप्सराओ का आपसी लाग डॉट से एक साथ नृत्य करना मध्यकाल के नृत्य की विशेषता थी। इसके कितने ही चित्र मुगलकला मे मिलते है। शरीर की लोच, अगो की तोड-फोड़, बॉहों के फिराने और जोडने एव अनेक प्रकार से नृत्य की मुद्राएँ प्रदर्शित करने में वे अद्-भुत फुर्ती का परिचय देती थीं और दोनो आपस की स्पर्धा से ताल मिलाकर नाचती थी। उसी ओर जायसी का भी संकेत है। किशनगढ़ के चित्र संग्रह मे सुरक्षित चित्र मे इन दो अप्सराओ को उर्वशी और तिलोत्तमा कहा गया है। मेरी अपनी समझ में जायसी ने सभवतत. इतनी गहराई तक नही सोचा था। वे केवल सौदर्य की दृष्टि से अप्सराओ की उपमा दे रहे है।

बागन······भोरा—एक-दूसरे से युद्ध करने में नही हिचकती है।

तनी—चोली के वन्द।

चौदत—दो बड़े-वडे दाँतो वाले हाथियों के परस्पर भिड़ने को चौदंत कहते है।

पवन स्रवन राजा के लागा। कहेसि लड़हि पदमिनि औ नागा॥
दूनौ सवति साम औ गोरी। मरहि तौ कहँ पावसि असिजोरी॥
चलि राजा आवा तेहि वारी। जरत बुझाई दूनौ नारी॥
एक वार जेइ पिय मन बूझा। सो दूसरे सौ काहे क जूझा?॥
अस गियान मन आव न कोई। कबहूँ राति, कबहुं दिन होई॥
धूप छाँह दोउ पिय के रंगा। दूनौ मिली रहहि एक संगा॥
जूझ छाँड़ि अब बूझहु दोऊ। सेवा करहु सेव-फल होऊ॥

गंग-जमुन तुम नारी दोउ, लिखा मुहम्मद जोग।
सेव करहु मिलि दूनौ तौ मानहु सुख भोग ॥११३॥

[इस अवतरण मे जायसी ने दोनो स्त्रियो के संघर्ष के बीच राजा रतनसेन के द्वारा बीच बचाव कराने की चेष्टा कराई है।]

राजा ने उडते-उडते पदमावती और नागमती दोनो के सघर्ष का समाचार सुना। दोनो सांवली और गोरी सौतो की जोड़ी है। यदि मर गई तो कहाँ से ऐसी सुन्दर जोटी मिलेगी। इसलिए राजा चलकर उनके घर मे आया और क्रोध से जलती हुई दोनो रानियो को शान्त किया। और बोला जो एक बार पति के मन को प्रसन्न कर देती है उसे फिर दूसरे से जूझने की क्या आवश्यकता है। उसे तो अपने मन मे यह ज्ञान रखना चाहिए कि कभी रात होती है और कभी दिन। धूप और छाँह दोनों ही प्रियतम के रग हैं। दोनो एक साथ मिलकर रहो। युद्ध छोडकर दोनों समझकर शान्त हो जाओ। धूप और छाँह दोनो पति के रंग है और वे दोनो इसीलिए एक साथ मिले रहते है। अब संघर्ष छोड़कर तुम दोनो समझ जाओ। सेवा करो तो तुम्हे सेवा का फल मिलेगा।

मुहम्मद कवि कहते है कि तुम दोनो स्त्रियाँ गंगा और यमुना के समान हो। यह विधान ईश्वर ने ही लिख दिया है। यदि तुम दोनों मिलकर सेवा करोगी तो दोनो को सुख और शान्ति मिलेगी।

टिप्पणी—पवन स्रवन''''''लागा—यहाँ पर एक योग परक अर्थ की व्यंजना की गई है। वह है कि राजयोगी को अपनी प्राणायाम साधना से पता चला कि इडा और पिगला इन दोनो नाडियो मे संघर्ष हो गया है अथवा पद्म शक्तियों और कुंडलनी में सघर्ष हो गया है। इस यौगिक अर्थ का निर्वाह लगभग संपूर्ण अवतरण में ही किया गया है। वह अर्थ इस प्रकार होगा—

यौगिक अर्थ—प्राणायाम साधना के बीच राजयोगी को अनुभव हुआ कि इडा और पिगला नाड़ियों की साधना मे कुछ व्यतिक्रम हो गया है। एक नाडी श्याम है और दूसरी गौर वर्ण है। उसने सोचा यदि इन नाडियो की साधना मे व्यतिक्रम पड गया तो इन दोनो से उत्पन्न होने वाला सिद्धि का योग नष्ट हो जाएगा। इसलिए राजयोगी ने उन दोनो का संयमन किया और विकृत होती हुई नाडियों के विकार को दूर कर दिया। दोनो नाड़ियाँ जब एक बार शिवद्वार में पहुंच जाती है और अपने पति शिव को पहचान लेती है तो दोनो मे संघर्ष नही होता है। इस प्रकार का ज्ञान कि दोनो नाडियाँ साधक को ब्रह्मरंध्र मे ले जाकर शिवजी के दर्शन कराती है किसी-किसी को ही होता है। अतएव कभी साधनावस्था रूपी रात्रि रहती है और कभी सिद्धि रूपी दिन होता है। यह भी व्यंजना है कि कभी राजयोगी चन्द्र तत्त्व में लीन रहता है और कभी सूर्य तत्त्व में। वे दोनो नाड़ियाँ धूप और छाँह की तरह होती है

और दोनों मे ही पतिरूपी परमात्मा का अंश होता है। परस्पर संघर्ष छोड़कर जब ये दोनो नाड़ियाँ मिल जाती है तभी भुक्ति और मुक्ति की प्राप्ति होती है।

टिप्पणी—उपर्युक्त हठ यौगिक अर्थ शब्दशक्ति उद्भव वस्तुध्वनि रूप है।

अस······होई—कवि यह व्यंजित कर रहा है कि कोई-कोई सौत इस प्रकार सोचती है कि कभी एक की बारी होती है तो कभी दूसरी की भी। दोनों मे से प्रत्येक को अधिकार समान है इसलिए एक-दूसरे को एक-दूसरे से ईर्ष्या नही करनी चाहिए।

असकहि दूनौ नारि मनाई। विहँसि दोउ तब कंठ लगाई॥
लेइ दोउ संग मँदिर महँ आए। सोन-पलँग जहँ रहे विछाए॥
सीझी पाँच अमृत-जेवनारा। औ भोजन छप्पन परकारा॥
हुलसीं सरस खजहजा खाई। भोग करत बिहँसी रहसाई।
सोन-मंदिर नागमति कहँ दीन्हा। रूप-मंदिर पदमावति लीन्हा॥
मंदिर रतन-रतन के खंभा। बैठा राज जोहरै सभा॥
सभा सो सबै सुभर मन कहा। सोई अस जो गुरु भल कहा॥
बहु सुगध, बहु भोग सुख, कुरलहि केलि कराहि।
दुहुँ सौं केलि नित मानै, रहस अनँद दिन जाहि॥१४॥

[इस अवतरण मे रतनसेन अपनी दोनो पत्नियो को मना कर शान्त कर रहा है।]

इस प्रकार कह कर दोनों नारियो को मनाया और प्रसन्न होकर दोनों को कंठ से लगा लिया। दोनो को साथ लेकर राजा अपने महल मे आया जहाँ कि सोने के पंलग विछे हुए थे। अमृत जैसी स्वादिष्ट पचमेल मिठाई की जेवनार हुई और छप्पन प्रकार के भोजन खिलाए। मधुर और सरस मिठाई खाकर वे बहुत प्रसन्न हुईं और भोग करके साथ ही बहुत उल्लसित हुई। नागमती को सोने का मन्दिर दिया गया और पदमावती ने रूपे का मन्दिर लिया और रतनसेन का महल रत्नो से जडा हुआ था और उसमे रत्न के ही खम्भे थे। वही जाकर राजा वैठा और सभा ने वही उसका स्वागत किया। सब सभा ने प्रसन्नता से कहा वही ठीक है जो गुरु की आज्ञा हो।

इस प्रकार राजा रतनसेन बहुत सुरभिपूर्ण वस्तुओ और भोगो का भोग करते हुए आनन्द क्रीड़ा करता रहा। वह नित्य नया आनन्द अनुभव करता था। इस प्रकार आनन्दोल्लास मे उसके दिन व्यतीत हो रहे थे।

टिप्पणी—सीझी······जेवनारा—सीझी का अर्थ होता है भोजन पका कर

जीमना। पाँच अमृत से कवि का अभिप्राय शायद पाँच मिठाइयों से है। वैसे पंचामृत उस पेय पदार्थ को कहते है जिसे दूध, दही, शहद, गंगाजल और तुलसी दल मिलाकर बनाते है।

छप्पन······परकारा—छप्पन प्रकार के व्यंजनो की चर्चा कही भी नही मिलती है। अब तो छप्पन प्रकार केवल उपलक्षणात्मक ही समझना चाहिए।

रतनसेन संतति खण्ड

जाएउ नागमती नगसेनहि । ऊँच भाग, ऊँचै दिन रैनहि ।।
कँवलसेन पदमावति जाएउ । जानहुँ चन्द धरति महँ आएउ ।।
पंडित वहु बुधिवत बोलाए । रासि बरग औ गरह गनाए ।।
कहेन्हि वड़े दोउ राजा होही । ऐसे पूत होंहि सब तोही ।।
नवौ खंड के राजन्ह जाही । औ किछु दुंद होइ दल माहीं ।।
खोलि भँडारहि दान देवावा । दुखी सुखी करि मान बढ़ावा ।।
जाचक लोग, गुनीजन आए । औ अनंद के बाज बधाए ।।
वहु किछु पावा जोतिसिन्ह औ देई चले असीस ।
पुत्र, कलत्र, कुटुँब सब जीयहि कोटि बरीस ।।१।।

[इस अवतरण मे राजा रतनसेन की संतति का वर्णन है ।]

नागमती ने नागसेन को जन्म दिया । उसका भाग्य वहुत बड़ा था और दिन-रात विकसित हो रहा था । पदमावती ने कमलसेन को जन्म दिया । ऐसा मालूम हुआ कि पृथ्वी पर चाँद उतर आया हो । वहुत वुद्धिमान पण्डित वुलाए गए और उनसे ग्रह, नक्षत्र, वर्ग, दिन आदि दिखलाए गए । पण्डितो ने यह कहा कि दोनो वडे राजा होगे । ऐसे ही तेरे सव पुत्र हो । नवो खण्डो के राजाओ पर ये विजय प्राप्त करेंगे किन्तु सेना मे कुछ सघर्ष होगा । इस प्रकार उन ज्योतिषियो ने भण्डार खुलवाकर दान दिलवाया । इस प्रकार राजा ने ज्योतिपियो को दु खी और सुखी करके अपनी प्रतिष्ठा वढ़ाई । याचक और गुणी लोग आए और आनन्द के वधाए वजने लगे

ज्योतिषियो ने बहुत कुछ प्राप्त किया और यह आशीर्वाद देकर चले गए कि तुम्हारे पुत्र कलत्र (स्त्रियाँ) और कुटुम्वी लोग कोटि वर्ष तक जीवित रहे ।

राघवचेतन देशनिकाला खण्ड

राघव चेतन चेतन महा । आऊ सरि राजा पहँ रहा ॥
चित चेता, जानै वहु भेऊ । कवि बियास पंडित सहदेऊ ॥
बरनी आइ राज कै कथा । पिंगल महँ सब सिंघल मथा ॥
जो कवि सुनै सीस सो धुना । सरवन नाद वेद सो सुना ॥
दिस्टि सो धरम-पंथ जेहि सूझा । ज्ञान सो जो परमारथ बूझा ॥
जोगि, जो रहै समाधि समाना । भोगि सो, गुनी केर गुनजाना ॥
वीर जो रिस मारै, मन गहा । सोइ सिंगार कंत जो चहा ॥
वेद-भेद जस वररुचि, चित चेता तस चेत ।
राजा भोज चतुरदस, भा चेतन सौं हेत ॥१॥

[इस अवतरण मे कवि ने राघवचेतन का वर्णन किया है ।]

राघवचेतन बड़ा बुद्धिमान व्यक्ति था और वह जीवनभर राजा के ही पास रहा था । वहा बड़ा व्युत्पन्न था और समस्त रहस्यो को जानने वाला था । वह व्यास के समान कवि और वासुदेव के समान पण्डित था । उसने सिंहल नामक काव्य मे राजा की सारी कथा कह दी थी । और समस्त पिंगलशास्त्र उसमे कूट-कूट कर भर दिया था । जो कवि उसे सुनता था वह इस प्रकार सिर घुमाने लगता था मानो कि उसने अपने कानो से वेद-पाठ की ध्वनि सुनी हो । दृष्टि वास्तव मे उसे कहते हैं जिससे धर्म-मार्ग दिखाई देता है और ज्ञान वह है जिससे परमार्थ का बोध होता है । योगी वही है जो समाधि मे समाया रहता है और भोगी वही है जो गुणी के गुण को समझता है । वीर वह है जो क्रोध को अपने आधीन रखता है और अपने मन को संयमित रखता है । शृंगार वही है जो अपने पति को अच्छा लगे ।

वेद का भेद समझने मे वह वैसा ही था जैसे वाररुचि थे । और उसका चित्त प्रतिभा से चमत्कृत था । वह चतुर्दश विद्याओ मे राजा भोज के समान था । इस प्रकार के चेतन से राजा का प्रेम था ।

टिप्पणी—राघौ······चेतनि—राघव चेतन ऐतिहासिक व्यक्ति था । जैन सिद्धान्त भास्कर नामक ग्रन्थ के प्रमाण पर डा० अग्रवाल ने लिखा है कि राघवचेतन नामक एक ब्राह्मण था । अलाउद्दीन पर उसका बहुत बड़ा प्रभाव था । उसी सम्राट् के दरबार मे जिन प्रेम सूरि नामक जैन विद्वान भी था । दोनो मे परस्पर बड़ी स्पर्धा

थी। एक दिन राघवचेतन ने सम्राट् की मुद्रिका चुरा कर जैन मुनि के रजोहरण मे डाल दी। वाद मे उसकी पोल खुल गई। परिणामस्वरूप, राघवचेतन की प्रतिष्ठा कम हो गई। हो सकता है जायसी इस कथा से प्रभावित हो गए हो।

कवि पियास पण्डित सहदेऊ—व्यास जी भारतीय साहित्य मे अपने विराट् कविरूप के लिए प्रसिद्ध थे। उन्होने अठारह पुराणो की रचना की थी। सम्भवतः सहदेव नामक कोई वहुत वड़े पण्डित थे जो अपने पाण्डित्य के लिए प्रसिद्ध थे। कुछ लोगो की धारणा है कि सहदेव से कवि का अभिप्राय पाण्डुपुत्र सहदेव से था। पाँचों पाँडवो मे वे अपने पाण्डित्य के लिए प्रसिद्ध थे।

सिंहल······कवि—यहाँ पर कवि का अभिप्राय रतनसेन और पदमावती-परक किसी महाकाव्य से है। इस उल्लेख से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पदमावती और रतनसेन की कथा को लेकर जायसी के पूर्व भी कुछ काव्य लिखे गए थे।

नाद······वेद—नाद से कवि का अभिप्राय अनहद नाद से है। योगी लोग इस अनहद नाद का अभ्यास करते है।

वेद—इसका अर्थ है वेदशास्त्रो मे लिखा ज्ञान। कवि यह व्यजित करना चाहता है कि राघवचेतन योगी और ज्ञानी दोनो था।

वररुचि—मध्ययुग मे वररुचि अपने ज्ञान और वुद्धि के लिए वहुत अधिक प्रसिद्ध थे।

चतुरदस ·····विद्या—चार वेद, छ वेदाग, पुराण, मीमाँसा न्याय और धर्म-शास्त्र इन चौदह की गणना चतुर्दश विद्याओ मे की जाती है।

होइ अचेत धरी जौ जाई। चेतन कै सब चेत भुलाई॥
भा दिन एक अमावस सोई। राजै कहा 'दुइज कव होई?'॥
राघव के मुख निकसा 'आजू'। पँडितन्ह कहा 'काल्हि, महराजू'॥
राजै दुवौ दिसा फिरि देखा। इन मँह को बाउर को सरेखा॥
भुजा टेकि पंडित तब बोला। 'छाँड़हि देस बचन जौ डोला'॥
राघव करँ जोखिनी-पूजा। चहै सो भाव देखावै दूजा॥
तेहि ऊपर राघव वर खाँचा। 'दुइज आजु तौ पंडित साँचा॥
राघव पूजि जोखिनी, दुइज देखाएसि साँझ।
वेद-पंथ जे नहि चलहि ते भूलहि बन माँझ॥२॥

[इस अवतरण मे राघवचेतन विषयक एक घटना का वर्णन है।]

कवि कहता है कि जव अचेत होने की घड़ी आ जाती है तो वुद्धिमान की भी मति भुला जाती है। एक दिन अमावस के दिन राजा ने कहा कि दुइज कव है? राघवचेतन के मुँह से निकल गया कि दुइज आज है। दूसरे पण्डितो ने कहा—"महा-

राज, दुइज कल होगी ।" राजा ने उलट कर दोनो दिशाओ मे देखा और सोचने लगा कि इनमे से कौन बावला है और कौन चतुर है। पण्डितो ने प्रतिज्ञा करते हुए कहा —"अगर दुइज कल न होगी तो हम देश को छोड देंगे।" राघव जोखनी की पूजा करता था इसलिए वह जैसा चाहता वैसा ही भाव दिखा सकता था। उसके बल पर राघव ने प्रतिज्ञा करके कहा—"अगर मै असली पण्डित हूँ तो दुइज आज ही होगी।"

राघव ने जोखनी की पूजा करके शाम को दुइज दिखा दी। जो वैदिक मार्ग से नही चलते है वे बीच मे ही पथभ्रष्ट हो जाते है।

टिप्पणी—राघव····· चेतन—राघवचेतन के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि अल्लाउद्दीन के दरबार मे राघव और चेतन नामक दो ब्राह्मणो का प्रभाव बहुत अधिक था। इन ब्राह्मणो ने जैनियो के विरुद्ध सुलतान को भड़काया था। यह बात 'जैन सिद्धान्त भास्कर' नामक ग्रन्थ मे उल्लिखित है। इसी घटना को 'जिन प्रभसूरी चरित' नामक ग्रन्थ मे एक दूसरे ही प्रकार से वर्णित किया गया है—"इसमे लिखा है कि एक बार सम्राट् मुहमद तुगलक की सेवा मे काशी से चतुर्दश विद्या निपुण मंत्र-तन्त्रज्ञ राघव चेतन नामक विद्वान आया। उसने अपनी चातुरी से सम्राट् को रंजित कर लिया। सम्राट् पर जैनाचार्य जिन प्रभसूरी का प्रभाव उसे बहुत ही अखरता था। अत. उन्हे दोषी ठहराकर सम्राट् पर उनका प्रभाव कम करने के लिए सम्राट् की मुद्रिका का अपहरण कर सूरी जी के रजोहरण मे प्रच्छन्नरूप से डाल दी। बाद मे राघव चेतन की इस कुटिलता का पता सम्राट् को चला तो उन्होने उसे देशनिकाला दे दिया। उपर्युक्त कथाओ का आधार लेकर ही जायसी ने राघव चेतन की कथा गढी है।

जोखनी—प्राचीनकाल मे तान्त्रिको मे यक्षिणी पूजा का बहुत ही प्रचार था और यक्षणियाँ सिद्ध करके लोग उचित और अनुचित बहुत से कार्य करते थे।

वेद ' '' माँझ—यहाँ पर जायसी ने वैदिक मार्ग की श्रेष्ठता और तान्त्रिक मार्ग की हेयता को व्यंजित किया है।

पँडितन्ह कहा परा नहि धोखा। कौन अगस्त समुद जेइ सोखा ॥
सो दिन गएउ साँझ भइ दूजी। देखी दुइज घरी वह पूजी ॥
पँडितन्ह राजहि दीन्ह असीसा। अब कस यह कंचन औसीसा ॥
जौ यह दुइज काल्हि कै होती। आजु तेज देखत ससि-जोती ॥
राघव दिस्टि बंध कल्हि खेला। सभा माँझ चेटक अस मेला ॥
एहि कर गुरू चमारिनि लोना। सिखा काँवरू पाढ़न टोना ॥
दुइज अमावस कहँ जो देखावै। एक दिन राहु चाँद कहँ लावै ॥
राज-बार असगुनी न चहिय जेहि टोना कै खोज।
एहि चेटक औ विधा-छला सो राजा भोज ॥३॥

[इस अवतरण में दूसरे दिन राघव चेतन की पोल खुल जाने की स्थिति का वर्णन किया गया है।]

पण्डितो ने कहा कि हम लोगो से धोखा नही हुआ है। फिर ऐसा कौन व्यक्ति आ गया कि जिसने अमावस मे ही चाँद के दर्शन करा दिए। वह दिन व्यतीत हो गया और दूसरी सध्या आ गई। ठीक निश्चित समय पर दुइज का चाँद दिखाई दिया। पण्डितो ने जाकर राजा को आशीर्वाद दिया और जाकर कहा कि आप अब शीशा और कचन अलग कर दीजिए। (अर्थात् कौन सत्य कहता था और कौन असत्य कहता था इसका निर्णय कर लीजिए। यदि दुइज कल हुई होती तो आज चन्द्रमा मे दुइज-कालीन काँति न होती, आज शशिकला मे तेजी होती। कल राघव ने दृष्टि बाँध दी थी। सारी सभा मे जैसे जादू डाल दिया था। इसकी गुरु लोना चमारिन है और इसने कामरूप देश मे जादू करना सीखा है। जो अमावस मे ही दुइज दिखा सकता है वह चाँद के लिए राहू भी ला सकता है (कवि की व्यजना है कि राघव चेतन राजा पर विपत्ति भी ला सकता है।)

राज-दरवार मे ऐसा गुणी नही चाहिए जो जादू-टोना मे ही लगा रहे। जिसको जादू-टोना आता है वह राजा भोज जैसे राजा को भी धोखा दे सकता है फिर आपकी वात ही क्या है ?

टिप्पणी—कौन······सीखा—यहाँ पर काकुवैशिष्ट्य व्यंग्य है। कवि की व्यंजना है कि इतनी अधिक प्रत्यक्ष बात को अप्रत्यक्ष करके दिखाने की क्षमता किसी मनुष्य मे नही हो सकती। यह तो किसी जादू-टोना या दैविक शक्ति मे ही सम्भव है।

अब······सीसा—यहाँ पर भी काकुवैशिष्ट्य व्यंग्य है। कवि यह व्यंजित कर रहा है कि सत्य और असत्य का निर्णय आप कर सकते है। यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है।

राहू चाँद कै······लावै—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार से वस्तु-व्यंग्य है।

राघव-बैन जो कंचन-रेखा। कसे बानि पीतर अस देखा॥
अज्ञाभई, रिसान नरेसू। मारहु नाहि, निसारहु देसू॥
झूठ बोलि थिर रहै न राँचा। पंडित सोइ वेद-मत साँचा॥
वेद-बचन मुख साँच जो कहा। सो जुग-जुग अहथिर होइ रहा॥
खोट रतन सोई फटकरै। केहि घर रतन जो दारिद हरै॥
चहै लच्छि बाउर कवि सोई। जहँ सुरसती, लच्छि कित होई?॥
कविता-सँग दारिद मति भंगी। काँटै-कूँट पुहुप कै संगी॥

कवि तौ चेला, विधि गुरू; सीप सेवाती-बुंद ।
तेहि मानुष कै आस का जो मरजिया समुंद ।।६।।

[इस अवतरण मे कवि ने राघव चेतन की पोल खुल जाने पर राजा के क्रोध और राघव के देशनिकाला की बात कही है ।]

राघव के वचन जो सोने जैसे लगे थे वे पीतल जैसे कसौटी पर कसने से सिद्ध हुए। राजा क्रुद्ध हुए और उन्होने आज्ञा दी कि इसको मारो मत, देश से निकाल दो। झूठ बोल कर कोई स्थिर और सुखी नही रह सकता है। पण्डित वही है जो वेद-मन्त्र को सत्य मानता है। जो वेद-वचन को धारण करते हुए सत्य बोलता है वह युग-युग तक स्थिर रहता है। जो खोटा रत्न है वही फेंक दिया जाता है। जिसके घर मे असली रत्न होता है वह दरिद्र होता है। जो बावले कवि है वे लक्ष्मी की कामना करते है। जहाँ सरस्वती होती है वहाँ लक्ष्मी कैसे रह सकती है। कविता के साथ बुद्धि को कुँठित कर देने वाला दारिद्रय उसी प्रकार रहता है जिस प्रकार फूल के साथ काँटे की कटुता रहती है।

ब्रह्मारूपी गुरु से शिष्य के पास कविता ऐसी आती है जैसे स्वाति की बूंद सीप मे उतरती है। जो समुद्र मे घुस कर मोती लाने वाला है वह मनुष्य से आशा क्यो करे।

टिप्पणी—राघव······कंचन रेखा—यहाँ पर कचन रेखा मे अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। कंचन रेखा का अर्थ है 'सत्य वचन'। कवि कहना चाहता है कि राघव के वचन जो सत्य लगे थे।

कैसे······देखा—कवि का तात्पर्य है कि परीक्षा करने पर वे असत्य प्रतीत हुए।

खोट······फटकरैं—कवि की व्यंजना है कि राघवचेतन अपने मन मे सोचता है कि जो खोटा राजा होता है वही निकाला देता है।

केहि······हरैं—इसका पाठान्तर है—

'कहँ घर रतन जो दारिद हरैं।'

शुक्ल जी का पाठ स्वीकार करने पर व्यजना होगी कि किसी परम सौभाग्यशाली राजा के राज्य मे ऐसा रत्नरूपी पण्डित होता है जो उसके घर मे सब प्रकार से लक्ष्मी का निवास करा देता है और डा० अग्रवाल का पाठ स्वीकार करने पर अर्थ होगा कि असली रत्न बड़ी कठिनाई से मिलता है जो दारिद्रय दूर कर देता है। राघव यह व्यजित कर रहा है कि राजा रतनसेन ऐसा राजा नही निकला जो सारे जीवन के लिए उसे सर्वगुणसम्पन्न बना देता।

एहि रे बात पदमावति सुनी। देस निसारा राघव गुनी ।।
ज्ञान-दिस्टि धनि अगम बिचारा। भल न कीन्ह अस गुनी निसारा ।।

जेइ जाखिनी पूजि ससि काढ़ा। सुर के ठाँव करै पुनि ठाढ़ा।।
कवि कै जीभ खड़ग हरद्वानी। एक दिसि आगि, दुसर दिसि पानी।।
जिनि अजुगुति काढ़ै मुख भोरे। जस बहुते, अपजस होइ थोरे।।
रानी राघव बेगि हँकारा। सूर-गहन भा लेहु उतारा।।
बाम्हन जहाँ दच्छिना पावा। सरग जाइ जौ होइ बोलावा।।
आवा राघव चेतन, धौरा हर के पास।
ऐस न जाना तेहियै, बिजुरी, बसै अकास।।५।।

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती की राघव के प्रति सहानुभूति एव सद्-भावना का वर्णन किया है।]

जब पदमावती ने यह बात सुनी कि गुणज्ञ राघव को देशनिकाला दे दिया गया है तो उस स्त्री ने बडी ज्ञान दृष्टि से यह सोचा कि ऐसे गुणी को राजा ने देश-निकाला देकर अच्छा नही किया जिसने यक्षिणी की पूजा करके चन्द्रोदय कर दिया था। वह सूर्य की जगह दूसरा सूर्य भी लाकर खडा कर सकता है। कवि की जिह्वा हरद्वानी तलवार के समान होती है। उसमे एक ओर आग और दूसरी ओर पानी रहता है। ऐसा न हो कि यह कही मूर्खतावश अयुक्त बात कह दे। यश तो मुश्किल से मिलता है किन्तु अपयश सरलता से मिल जाता है। रानी ने राघव को शीघ्र ही बुला भेजा। कहला दिया कि सूर्य ग्रहण का दान ले लो। ब्राह्मण को यदि दक्षिणा मिलनी हो तो वह स्वर्ग से बुलावा आने पर वहाँ भी चला जाएगा।

राघव चेतन धवलगृह के पास आया। उसने ऐसा नही सोचा था कि आकाश में बिजली बसती है।

टिप्पणी—सूर······ठाढ़ा—कवि की यहाँ पर व्यजना है कि कही यह सुल्तान को राजा पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित करके उसे यहाँ ले आए। यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति वस्तु व्यंग्य है।

कवि कै······पानी—खडग हरद्वानी में लक्ष्योपमा है। 'एक दिसि आगि दुसर दिसि पानी' मे अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। पदमावती की व्यंजना है कि कवि की जिह्वा मे वह शक्ति होती है कि वह यदि चाहे तो कही पर भी क्रान्ति कर सकता है और कही पर भी शान्ति स्थापित कर सकता है। यहाँ आग का अर्थ क्रांति है और पानी का अर्थ शान्ति है। ये दोनों अर्थ लक्षण-लक्षणामूलक है। कवि जिह्वा का परम वैशिष्ट्य ही व्यग्य है।

बिजुरी बसै······अकास—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति से वस्तु व्यंग्य है। कवि पदमावती की अतिशय सुन्दरता व्यजित करना चाहता है।

पदमावति जो झरोखे आई। निहकलंक ससि दीन्ह दिखाई।।
ततखन राघव दीन्ह असीसा। भएउ चकोर चंदमुख दीसा।।

पहिरे ससि नखतन्ह कै मारा। धरती सरग भएउ उजियारा॥
औ पहिरे कर कंकन-जोरी। नग लागे जेहि महँ न कोरी॥
कँकन एक कर काढ़ि पवारा। काढ़त हार टूट औ मारा॥
जानहुँ चाँद टूट लेइ तारा। छुटी अकास काल कै धारा॥
जानहुं टूटि बीजु भुइँ परी। उठा चौंधि राघव चित हरी॥
परा आइ भुइँ कँकन, जगत भएउ उजियार।
राघव बिजुरी मारा, बिसँभर किछु न सँभार॥६॥

[इस अवतरण मे राघव द्वारा पदमावती के दर्शन किए जाने तथा पदमावती द्वारा राघव को कगन दिए जाने का प्रसंग वर्णित है।]

पदमावती ने झरोखे से आकर अपना निष्कलंक मुख चन्द्र दिखा दिया। उसी समय राघव ने आशीर्वाद दिया तभी से उसका मन उस चन्द्रमुख का चकोर बन गया। वह पदमावतीरूपी चन्द्रमा मोतीरूपी नक्षत्रो की माला पहने थी। वह ऐसे कंगनो की जोडी पहने हुई थी जिसमे नौ करोड के रत्न लगे थे। एक कंगन उसने उतारकर राघव की ओर फेक दिया। उसको निकालने मे हार का सूत टूट गया। ऐसा लगा कि मानो चाँद तारो के साथ नीचे उतर पडा हो। अथवा आकाश से सूर्य अपनी कलाओ के साथ टूटकर गिरा हो। अथवा ऐसा मालूम हुआ कि पृथ्वी पर बिजली टूटकर गिरी हो। राघव उस प्रकाश को देखकर चौंधिया गया और उसका चित्त पराभूत हो गया।

कंगन पृथ्वी पर आकर गिरा जिससे सारे संसार मे प्रकाश फैल गया। राघव को जैसे बिजली मार गई हो। उसे कुछ सुधि ही नही रही।

टिप्पणी—पहिरै······माला—यहाँ रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

धरती······उजियाला—कवि प्रौढोक्तिसिद्ध अलंकार से वस्तुव्यग्य है। कवि ने पदमावती के दिव्य सौंदर्य और आभूषण की दिव्यता व्यंजित की है।

कोरी—शिरेफ साहब ने इस पक्ति का अर्थ लिया है कि उसमे नौ कौड़ी (१८०) रत्न लगे हुए थे। मुझे कोरी करोड़ी का अपभ्रश लगता है। वैसे शिरेफ साहब का अर्थ भी ग्राह्य है।

परा······उजियारा—यहाँ पर कारणातिशयोक्ति अलकार है।

राघव······मारा—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। कवि यह व्यंजित कर रहा है कि राघव चेतन पदमावती के अनुपम सौंदर्य को देखकर मुग्ध हो गया।

पदमावति हँसि दीन्ह झरोखा। जौ यह गुनी मरै, मोहि दोखा॥
सबै सहेली देखै धाई। 'चेतन चेतु' जगावहि आई॥

चेतन परा, न आवै चेतू। सबै कहा "एहि लाग परेतू" ।।
कोइ कहै, अहि सनिपातू। कोई कहै, कि मिरगी बातू।।
कोइ कह, लाग पवन झरझोला। कैसेहु समुझि न चेतन बोला ।।
पुनि उठाइ बैठाएन्हि छाहाँ। पूछहि, कौन पीर हिय माहाँ ?।।
दहुँ काहू के दरसन हरा। की ठग धूत भूत तोहि छरा ।।
को तोहि दीन्ह काहु किछु, की रे डसा तोहि साँप।
कहु सचेत होइ चेतन, देह तोरि कस काँप ।।७।।

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती के महान् सौदर्य से मुग्ध होकर वेसुध हुए राघव चेतन की व्याधि का वर्णन किया है।]

पदमावती झरोखे मे हँसी और सोचने लगी कि अगर यह गुणी मर गया तो हत्या मुझे ही पड़ेगी। सभी सहेलियाँ उसे देखने दौड आई। उसे आकर जगाने लगी। वह वेहोश पड़ा था, उसे सुधि नही आ रही थी और सहेलियाँ—चेत जा, चेत जा, कह रही थी। सब लोग कहने लगे कि इसे प्रेत लग गया है। कोई कहती थी कि इसे सन्निपात हो गया है, कोई कहती थी कि मिरगी हो गई है, किसी के अनुसार उसे वर्फीली पवन का झोका लग गया है। किसी भी प्रकार से चेतन होश मे आकर नही बोल रहा था। फिर उसे उठाकर छाया मे बैठाया और पूछा—"तुम्हारे हृदय मे क्या कष्ट है," उन्होने पूछा—"क्या किसी के दर्शन से तुम्हारा चित्त मुग्ध हो गया है या किसी धूर्त ठग ने या भूत ने तुम्हे कपट से छल लिया है।"

या किसी ने तुझे कुछ दे दिया है। या साँप ने डस लिया है। हे चेतन ! होश मे आकर वता कि तेरी काया क्यो काँप रही है।

टिप्पणी—चेतन······चेतू—यहाँ पर विशेषोक्ति और विरोधाभास का सकर व्यंग्य है। यहाँ पर स्वत.सम्भवी वस्तु से अलंकार ध्वनि है।

भएउ चेत, चेतन चित चेता। नैन झरोखे, जीउ सँकेता ।।
पुनि जो वोला मति बुधि खोवा। नैन झरोखा लाए रोवा ।।
बाउर बहिर सीस पै धुना। आपनि कहै, पराइ न सुना ।।
जानहु लाई काहु ठगौरी। खन पुकार, खन बातै बौरी ।।
हौ रे ठगा सहि चितउर माहाँ। कासौं कहौ, जाउँ केहि पाहाँ ।।
यह राजा सठ बड़ हत्यारा। जेहि राखा अस ठग-बटपारा ।।
ना कोइ बरज, न लाग गोहारी। अस एहि नगर होइ बटपारी ।।
दिस्टि दीन्ह ठगलाडू, अलक-फाँस परेगीउ।
जहाँ भिखारि न बाँचै, तहाँ बाँच को जीउ ?।।८।।

[इस अवतरण मे कवि ने चेत आने पर जो चेतन की अवस्था हुई उसका वर्णन किया है ।]

जब होश आया तो चेतन ने मन मे सोचा कि झरोखे के नयनों ने मेरे प्राण खीच लिए । होश आने पर जब वह बोला तो उसकी बुद्धि और समझ खो गई थी । वह बावला और बहरा होकर सिर धुन रहा था । वह अपनी कह रहा था, दूसरे की कुछ नही सुनता था । ऐसा लग रहा था कि मानो किसी ने उसे ठग लिया हो । क्षणभर मे वह पुकारता था और क्षणभर में वह बावली बातें करता था । वह कहता था कि मैं चित्तौड़ मे ठगा गया हूँ, मै किससे कहूँ और किसके पास जाऊँ ? यह राजा बहुत हत्यारा और दुष्ट है जिसने ठग और बटमार रख छोड़े हैं । कोई न उसको रोकता है और न कोई आवाज पर दौड़ता है । इस नगर मे बटोहियो की ऐसी ठगाई होती है ।

उसकी दृष्टि ने हमे ठगो के लड्डू खिला दिए हैं, अलकों की फाँस इसने मेरे गले मे डाल दी है । जहाँ भिखारी तक नही बचते फिर वहाँ कौन-सा प्राणी बच सकता है ।

टिप्पणी—इस अवतरण मे कवि ने प्रणय प्रताड़ित मानव का बड़ा मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है ।

हाँ······माहा—यहाँ पर 'चितउर' शब्द मे शब्दशक्ति उद्भव वस्तुध्वनि है । कवि की व्यजना है कि उसका चित्त और हृदय दोनो ही ठगे गए है । यहाँ पर अतिशय मुग्धता का भाव भी व्यंग्य है ।

दिस्टि······लाडू—यहाँ कवि व्यंजित कर रहा है कि पदमावती की दृष्टि ने उसको अत्यधिक मुग्ध और प्रणय प्रताडित कर दिया । यहाँ अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है ।

जहाँ······जीऊ—यहाँ पर काकुवैशिष्ट्य व्यंग्य है । कवि ने यह व्यंजित किया है कि पदमावती के रूप का प्रभाव अत्यधिक व्यापक और सार्वभौमिक है ।

कित धौराहर आइ झरोखे ?। ले गइ जीउ दच्छिना धोखे ॥
सरग ऊइ ससि करै अँजोरी । तेहि ते अधिक देहुँ केहि जोरी?॥
तहाँ ससिहि जो होति वह जोती । दिन होइ राति, रैन कस होती ?॥
तेइ हँकारि मोहि कंकन दीन्हा । दिस्टि जो परी जीउ हर लीन्हा ॥
नैन-भिखारि ढीठ सतछँडा । लागै तहाँ बान होइ गड़ा ॥
नैनहिं नैन जो बेधि समाने । सीस धुनै निसरहिं नहिं ताने ॥
नवहि न नाए निलज भिखारी । तबहिं न लागि रही मुखकारी ॥
कित करमुहे नैन भए, जीउ हरा जेहि बाट ।
सरवर नीर-निछोह जिमि दरकि दरकि हिय फाट ॥६॥

[इस अवतरण मे कवि ने राघव चेतन की पदमावती के प्रति प्रणयानुभूति-जनित प्रतिक्रिया का वर्णन किया है।]

राघव चेतन कहता है कि न मालूम क्यों वह झरोखे से आई और दक्षिणा देने के बहाने मेरे प्राण हर कर ले गई। आकाश में उदित हुए चन्द्रमा के समान वह प्रकाश कर रही थी। चन्द्रमा से भी अधिक सुन्दर कौन-सी वस्तु है जिससे उसकी उपमा दी जा सके। चन्द्र मे यदि ऐसा प्रकाश होता तो रात्रि दिन मे परिणत हो जाती। रात्रि फिर होती ही नही। उसी ने बुलाकर मुझे कंगन दिया। उस पर जो दृष्टि पडी तो उसी ने मेरे प्राणो को हर लिया। मेरे यह ढीठ भिखारी की तरह के नेत्र सदाचरण का त्याग करके वहाँ ऐसे टिक गए है जैसे कि बाण चुभ गया हो।

नेत्र जो नेत्रो को बेधकर समाये वे ऐसे अड़े हुए है कि निकलते ही नहीं है और मेरे भिखारी नयन सिर धुन रहे है। वे निर्लज्ज भिखारी नेत्र झुकाने से भी नीचे नही झुकते है। इसीलिए तो उनमे काली पुतली के रूप में कालिख लग गई है।

मेरे ये नेत्र कलमुँहे क्यो हो गए है, इसका कारण यह है कि इन्ही के द्वारा मेरे प्राणो का हरण किया गया है। जैसे सरोवर मे जल के सूखने पर दरारे पड़ जाती है वैसे ही मेरा हृदय तडप-तड़प कर फट रहा है।

टिप्पणी—सरग···जोरी—यहाँ पर प्रतीप और अनन्वय का संकर व्यंग्य है।

तहाँ······होती—यहाँ व्यतिरेक व्यंग्य है।

दिस्टि······लीन्हा—यहाँ पर कारणातिशयोक्ति है।

लागै······गड़ा—यहाँ पर स्वत सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंग्य है। यहाँ पर कवि दृष्टि की निर्निमेपता ही व्यंजित कर रहा है।

तबहीं······कारी—यहाँ हेतूत्प्रेक्षा अलंकार व्यंग्य है।

सरवर······फाट—यहाँ पर उपमा अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। वेदना की तीव्रता ही यहाँ व्यंग्य है।

सखिन्ह कहा, चेतसि बिसँभारा। हिये चेतु जेहि जासि न मारा॥
जौ कोइ पावै आपन माँगा। न कोई मरै, न काहू खांगा॥
वह पदमावति आई अनूपा। बरनि न जाइ काहु के रूपा॥
जो देखा सो गुपुत चलि गएऊ। परगट कहाँ, जीउ बिनु भएऊ॥
तुम्ह अस बहुत बिमोहित भए। धुनि-धुनि सीस जीउ देइ गए॥
बहुतन्ह दीन्ह नाइ कै गीवा। उतर देइ नहि, मारै जीवा॥
तुइँ पै मरहि होइ जरि मूई। अबहुँ उघेलु कान कै रूई॥
कोई माँगे नहि पावै, कोई माँगे बिनु पाव।
तू चेतन औरहि समुझावै, तो कहँ को समुझाव ? ॥१०॥

[इस अवतरण मे सखियाँ राघव चेतन को समझा रही है।]

पदमावती की सखियाँ उसे समझा रही है कि "हे बेसुध चेतन हृदय में चेत जा ताकि मृत्यु का सामना न करना पडे । जो कोई अपनी माँग पाता है तो किसी को मारने की भी आवश्यकता नही पडती है और वस्तु के न देने की बात भी नही होती है । वह पदमावती परम अनुपम सुन्दरी है । उसका रूप किसी प्रकार वर्णित नहीं किया जा सकता । जिसने देखा वह चुपचाप मुग्ध होकर चला गया । जिसने अपने प्रेम भाव को प्रकट किया वह प्राणो से ही अलग कर दिया गया । तुम्हारे जैसे बहुत से विमोहित हो गए और सिर धुन-धुनकर जीव देकर ही चले गए । बहुतो ने अपने प्राण सिर झुकाकर दे दिए । वह उत्तर नही देती है और प्राण ही हर लेती है । तू भी मर जायेगा, रूई हो जायेगा, अब भी तू कानो की रूई निकालकर सुन ले ।

कोई माँग कर मर जाता है किन्तु उसे प्राप्त नही कर पाता है और कोई विना माँगे ही उसे पा जाता है । हे चेतन ! तू तो दूसरो को समझाता है, तुझे कौन समझाये ।

टिप्पणी—जो······जीवा—यहाँ पर स्वत.सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंजना है । रहस्य भावना और दिव्यता ही व्यग्य है ।

अवहूँ······रूई—यहाँ पर कवि यह व्यजित कर रहा है कि राघव तू अब भी सुन ले ।

तू ·····समुझाव—यहाँ पर स्वत.सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंजना है । सखियाँ यह व्यजित कर रही है कि हे राघव ! तू तो स्वयं ही बुद्धिमान है, तुझे कौन समझा सकता है । तुझे किसी अलभ्य वस्तु की कामना नही करनी चाहिए ।

भएउ चेत, चित चेतन चेता । बहुरि न आइ सहौ दुख एता ॥
रोवत आइ परै हम जहाँ । रोवत चले, कौन सुख तहाँ ?॥
जहाँ रहे ससौ जिउ केरा । कौन रहनि? चलि चलै सवेरा ॥
अब यह भीख तहाँ होइ माँगौ । देइ एत जेहि जनम न खाँगौ ॥
अस ककन जौ पावौ दूजा । दरिद हरै, अस मन पूजा ॥
दिल्ली नगर आदि तुरकानू । जहाँ अलाउदीन सुलतानू ॥
सोन ढरै जेहि के टकसारा । बारह बानी चलै दिनारा ॥
कवँल बखानी जाइ तहँ जहँ अलि अलाउदीन ।
सुनि कै चढै भानु होइ, रतन जो होइ मलीन ॥११॥

[इस अवतरण में कवि ने राघव चेतन के रूप में उत्पन्न होने वाली प्रतिक्रिया का वर्णन किया है ।]

राघव चेतन को जब होश आया तो उसके मन में सद्बुद्धि के उदय के कारण ज्ञान उत्पन्न हुआ । जहाँ पर हम रोते हुए आए और रोते हुए चले गए । जहाँ पर सन्देह बना हो वहाँ रहने से क्या लाभ ? वहाँ से तो शीघ्र ही चल देना चाहिए । अब

मैं यह भीख वहाँ जाकर माँगूंगा, जो इतना देगा कि जन्म-भर कमी नहीं पडेगी। अगर मैं एक और ऐसा कंगन पा जाऊँ तो मेरा दारिद्र्य दूर हो जाए और मेरी आशा पूरी हो जाए। दिल्ली नगर मे तमाम तुरुक रहते है, उसकी टकसाल मे सोना ढलता है। उसके यहाँ द्वादश वर्णी शुद्ध सोने का दीनार (सिक्का) चलता है।

वहाँ जाकर मै कमलरूपिणी पदमावती का वर्णन करूँगा जहाँ भ्रमररूप अलाउद्दीन है। वह यह समाचार पाकर रतनसेन पर आक्रमण करेगा और रतनसेन की प्रभुता नष्ट हो जायेगी।

टिप्पणी—राता—इसमें संवृतिवक्रता है।

जहाँ······तहाँ—यहाँ भी सवृतिवक्रता है। कवि की व्यंजना इस नश्वर संसार की ओर है।

कँवल—अलाउद्दीन रूपक अलकार है।

रतन—रूपकातिशयोक्ति है।

राघवचेतन दिल्ली गमन खण्ड

राघव चेतन कीन्ह पयाना। दिल्ली नगर जाइ नियराना॥
आइ साह के बार पहुँचा। देखा राज-जगत पर ऊँचा॥
छत्तिस लाख तुरुक असवारा। तीस सहस्र हस्ती दरबारा॥
जहँ लगि तपै जगत पर भानू। तहँ लगि राज करै सुलतानू॥
चहूँ खण्ड के राजा आवहि। ठाढ झुराहि, जोहार न पावहि॥
मन तेवान कै राघव झूरा। नाहि उबार, जीउ—डर पूरा॥
जहँ झुराहि दीन्हें सिर छाता। तहँ हमार को चालै बाता ?॥
बार पार नहि सूझै, लाखन उमर अमीर।
अब खुर खेह जाहँ मिलि, आइ परेउँ एहि भीर॥१॥

[इस अवतरण मे कवि ने राघव के गमन और दिल्ली पहुँचने का चित्र प्रस्तुत किया है।]

राघव चेतन ने प्रस्थान किया और चलते-चलते दिल्ली नगर के पास आ गया और राजा के द्वार पर पहुँचा तो उसने देखा कि उसका राज्य संसार मे सबसे ऊँचा था। उसके छत्तीस लाख तुर्क सवार थे। उसके दरबार मे तीस हजार हाथी थे। संसार मे जहाँ तक सूर्य का प्रकाश पहुँचता है वहाँ तक उस सुलतान का साम्राज्य था। चारो खंड के राजा आते थे और खडे सूखा करते थे। उनका वह प्रणाम तक स्वीकार नही करता था। राघव मन मे चितित होकर खिन्न हो गया और सोचा कि यहाँ पर मेरा उन्नति करना कठिन है। यह सोचकर वह घबड़ाने लगा। जहाँ पर छत्रधारी खडे सूखा करते है तो हमारे जैसो का वहाँ कहाँ ठिकाना है।

जहाँ लाखो अमीर-उमरा खडे हुए है, जिनका वार-पार दिखाई नही पडता है। अब तो मै इन सवारो के खुरो की धूल मे ही मिल जाऊँगा। ऐसी भीड मे आ पडा हूँ।

टिप्पणी—दिल्ली—दिल्ली का प्राचीन नाम ढीली या दिल्ली था।

जहँ लगी ··· सुलतानू—यहाँ पर स्वत.सम्भवी अतिशयोक्ति अलंकार से वस्तु व्यग्य है। साम्राज्य की विशालता ही कवि व्यजित करना चाहता है।

जाहाँ······छाता—यहाँ पर विशेपोक्ति अलकार से वस्तु व्यग्य है। सम्राट् के दिव्य तेज और प्रताप को कवि व्यजित करना चाहता है।

तहाँ······बाता—यहाँ पर काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यग्य से वस्तु व्यंग्य है। हमारे जैसों की कोई बात पूछने वाला नही है, वही यहाँ पर काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य है। राघव चेतन की क्षुद्रता ही वस्तु व्यग्य है।

अब······भौर—यहाँ पर स्वत.सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंग्य है। राघव चेतन यह व्यंजित कर रहा है कि यहाँ पर तो उसका अस्तित्व ही लुप्त हो जायेगा।

बादसाह सब जाना बूझा । सरग पतार हिये महँ सूझा ॥
जौ राजा अस सजग न होई। काकर राज, कहाँ कर कोई ॥
जगत-भार उन्ह एक सँभारा। तौ थिर रहै सकल संसारा ॥
औ अस ओहिक सिहासन ऊँचा। सब काहू पर दिस्टि पहूँचा ॥
सब दिन राज काज सुख भोगी। रैनि फिरै घर घर होइ जोगी ॥
राव रंक जावत सव जाती। सब कै चाह लेइ दिन राती ॥
पंथी परदेसी जत आवहि । सब कै चाह दूत पहुँचावहिं ॥
एहू बात तहँ पहुँची, सदा छत्र सुख छाँह।
बाम्हन एक बार है, कँकन जराऊ बाँह ॥२॥

[इस अवतरण मे अलाउद्दीन की जागरूकता का वर्णन किया गया है।]

कवि कहता है कि बादशाह सब जानता और समझता था। उसे सब स्वर्ग पाताल दिखाई पड़ता था। अगर ऐसा न हो तो किसका राज्य रहे और किन पर कोई राज्य करे। उस एक अकेले ने ससार का भार सँभाल रखा था इसीलिए सारा संसार स्थित था। उसी का सिंहासन इतना ऊँचा था कि सारा ससार दिखाई पडता था। सारे दिन तो वह राज-काज करता था। रात्रि मे वह जोगी बनकर घर-घर घूमता था। राजा रंक, जितनी भी जातियाँ थी उन सबकी वह दिन-रात खबर रखता था। परदेसी पंथी जितने आते थे उन सबकी खबर दूत पहुँचा देते थे।

यह बात वहाँ पर पहुँची जहाँ सुल्तान विराजमान था। एक ब्राह्मण आया है जिसके हाथ मे जड़ाऊ कगन है (यह बात दूतो ने जाकर सुल्तान से कही)।

टिप्पणी—सरग······सूझा—यहाँ कारणातिशयोक्ति अलंकार है।

काकर······कोई—यहाँ पर काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य है।

जगत······सँभारा—यहाँ पर अल्प अलकार है।

औ······पहुँचा—यहाँ पर स्वत सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यजना है। कवि व्यंजित कर रहा है कि वह महान् सम्राट् सर्वज्ञ था।

सदाछत्र सुख छाँह—यहाँ पर अर्थान्तर सक्रमित वाच्य ध्वनि है। कवि सम्राट् की सर्वज्ञता व्यजित करना चाहता है। छत्र मे उपादान लक्षणा है। छत्र का अर्थ है छत्रधारी सुल्तान।

मया साह मन सुनत भिखारी । परदेसी को ? पूछु हँकारी ॥
हम्ह पुनि जाना है परदेसा । कौन पंथ, गवनव केहि भेसा ? ॥
दिल्ली राज चित मन गाढी । यह जग जैस दूव कै साढी ॥
सैति विलोव कीन्ह वहु फेरा । मथि कै लीन्ह घीउ महि केरा ॥
एहि दहि लेइ का रहै ढ़िलाई । साढ़ी काढ़ु दही जव ताई ॥
एहि दहि लेइ कित होइ होइ गए । कै कै गरव खेइ मिलि गए ॥
रावन लंक जारि सव तापा । रहा न जोवन आव वुढ़ापा ॥
भीख भिखारी दीजिए, का वाम्हन का भाँट ।
अज्ञा भई हँकारहु, धरती धरै लिलाट ॥३॥

[इस अवतरण मे कवि ने सुल्तान द्वारा राघव चेतन के साक्षात्कार का वर्णन किया है ।]

वादशाह के मन मे भिखारी का नाम सुनते ही दया आ गई । उसने कहा कि कौन परदेसी है, उससे वुलाकर पूछो । हमे भी परदेश जाना है, पता नही किस देश मे और किस भेप में जाना पड़ेगा । यह कहते हुए दिल्ली के सुल्तान के मन मे गहरी चिन्ता व्याप गई । और सोचने लगा कि ससार की गति ऐसी है जैसी दूध की साड़ी । इसका सचित करना और विलोना छाछ मथने के समान है । दिल्ली मे कितने हो होकर चले गए है । सव गर्व कर करके मिट्टी मे मिल गए । उनकी इस दिल्ली मे क्या कमी थी जिसके कारण उन्हे ऐसे वुरे दिन देखने पडे । रावण की लका जलाकर सवने तापा । यौवन और तरुण अवस्था सदैव नही रहती हैं ।

भिखारी को भीख देनी चाहिए चाहे वह व्राह्मण हो या भाट । सुल्तान की आज्ञा हुई कि उसे वुलवाओ वह आकर प्रणाम करे ।

टिप्पणी—हम······भेसा—यहाँ पर काकुवैशिष्ट्य व्यंग्य है । कवि ने आध्यात्मिकता की व्यंजना की है । सुल्तान यह व्यजित कर रहा है कि ससार रूपी स्वदेश से सभी जीवों को परदेशरूपी परलोक जाना है । न मालूम क्या सुख-दु ख भोगने पडे और उस परलोक मे क्या भुगतना पडेगा इसका कुछ पता नही है ।

यह······साड़ी—यहाँ पर कवि ने स्वत.सम्भवी उपमा अलंकार से वस्तु व्यंग्य की है । सुल्तान यह व्यजित कर रहा है कि संसार मे मनुष्य का जीवन दूध मे मलाई के समान होता है । यदि दूध की मलाई वढिया होगी तो उससे घी भी उत्तम निकलेगा । इसी प्रकार यदि मनुष्य अपने सासारिक जीवन को उत्तम वनायेगा तो उसका परिणाम भी उसको अच्छा ही मिलेगा ।

सैत······केरा—कवि यह व्यजित कर रहा है कि जो इस जीवन का सदुपयोग करते है और सार-सार को ग्रहण कर लेते है वही वास्तव मे प्रशंसनीय है । और जो इस जीवन का सदुपयोग नही कर पाते उनके लिए जीवन निरर्थक होता है ।

जिस प्रकार दूध का दही बनाकर मक्खन निकाला जाता है, फिर घी निकालते हैं उसी प्रकार जब तक मनुष्य शक्ति-सम्पन्न रहे तभी तक उसको अपने जीवन का सदुपयोग करना चाहिए तभी जीवन की सार्थकता है। यहाँ पर स्वत सम्भवी वस्तु से उपमा अलंकार व्यंग्य है।

एहि······गए—कवि व्यजित कर रहा है कि जो जीवन का सदुपयोग करके या शक्ति प्राप्त करके अभिमान करते हैं वह भी ठीक नही है, उन्हें भी नीचा देखना पड़ता है। यहाँ पर एहि मे अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि और 'दही लही' मे शब्द-शक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है।

रावन······बुढापा—कवि की व्यंजना है कि मनुष्य को अपने वैभव और सम्पत्ति का कभी भी अभिमान नही करना चाहिए। यहाँ दृष्टात अलंकार से वस्तु व्यंग्य है।

राघव चेतन हुत जो निरासा। ततखन बेगि बोलावा पासा॥
सीस नाइ कै दीन्ह असीसा। चमकत नग कंकन कर दीसा॥
अज्ञा भइ पुनि राघव पाहाँ। तू मंगन, कंकन का बाहाँ ?॥
राघव फेरि सीस भुइँ धरा। जुग-जुग राज भानु कै करा॥
पदमिनी सिहलदीप क रानी। रतनसेन चितउरगढ़ आनी॥
कँवल न सरि पूजै तेहि बासा। रूप न पूजै चंद अकासा॥
जहाँ कँवल ससि सूरन पूजा। केहि सरि देउँ, और को दूजा ?॥
सोई रानी संसार-मनि दछिना कंकन दीन्ह।
अछरी-रूप देखाइ कै जीउ झरोखे लीन्ह॥४॥

[इस अवतरण मे कवि ने राघव चेतन और सुल्तान के साक्षात्कार का वर्णन किया है।]

राघव चेतन जो निराश था उसे उसी समय बुलाया गया। राघव चेतन ने सिर नवाकर आशीर्वाद दिया। बादशाह को उसके हाथ मे चमकता हुआ कगन दिखाई पडा। सुल्तान की आज्ञा हुई कि राघव चेतन से पूछा जाए कि उस मगता के पास यह कंगन कहाँ से आया। राघव ने फिर मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और कहा कि सूर्य के प्रकाश के समान तुम्हारा राज्य भी युग-युग तक रहे। सिंहलगढ़ की पदमिनी रानी को रतनसेन चित्तौडगढ ले आया है। उसकी सुगन्धि की ममता कमल नही कर सकता। आकाश का चन्द्र उसकी समता नही कर सकता। जहाँ वह कमलरूपी पदमावती है वहाँ उसकी समता सूर्य और चन्द्र भी नही कर पाते। ऐसा कौन दूसरा है जिससे कि उसकी उपमा दी जाए।

वह रानी संसार मे सर्वश्रेष्ठ है। उसी ने यह कंगन मुझे दक्षिणा मे दिया है और झरोखे से अपना अप्सरा रूप दिखाकर हमारे जी को हर लिया है।

टिप्पणी—कमल……अकासा—यहाँ पर प्रतीप और रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

जहाँ……दूजा—यहाँ अनन्वय अलंकार है।

सुनि कै उतर साहि मन हँसा। जानहु बीजु चमकि परगसा॥
काँच जोग जेहि कंचन पावा। मंगन ताहि सुमेरु चढ़ावा॥
नावँ भिखारि जीभ मुख बाँची। अबहुँ सँभारि बात कहु साँची॥
कहँ अस नारि जगत उपराही। जेहि के सरि सूरुज ससि नाही?॥
जो पदमिनी सो मंदिर भोरे। सातौ दीप जहाँ कर जोरे॥
सात दीप मुंह चुनि चुनि आनी। सो मोरे सोरह सै रानी॥
जौ उन्ह कै देखसि एक दासी। देखि लोन होइ लोन बिलासी॥
चहूँ खंड हौं चक्कवै, जस रवि तपै अकास।
जौ पदमिनि तौ मोरे, अछरी तौ कबिलास॥५॥

[इस अवतरण मे कवि ने राघव चेतन द्वारा किए गए पदमावती के वर्णन पर शाह के प्रत्युत्तर का उल्लेख किया है।]

राघव चेतन के उत्तर को सुनकर बादशाह मन मे हँसा। ऐसा लगा कि मानो बिजली चमकने से प्रकाश हो उठा हो। जो मगता काँच पाने योग्य है और उसे यदि कोई सोना दे देता है तो वह अपने दाता को सुमेरु पर चढा देता है अर्थात् बहुत अधिक प्रशसा करता है। तू भिखारी है इसलिए तेरी जीभ मुँह मे बच गई। अब भी सँभल कर सच्ची बात कह। ससार मे ऐसी स्त्री कहाँ है जिसकी समता सूर्य और चन्द्र नही कर सकते है। जो पद्मिनियाँ है वे सब मेरे महल मे है। सातो द्वीप जहाँ हाथ जोडे खडे रहते है और सातो द्वीपो से मैने चुन चुनकर पद्मिनियाँ लाकर रखी है, वे ही सोलह सौ मेरी रानियाँ है। यदि तू इनकी दासी को भी देख लेगा तो पानी मे नमक के सदृश विलुप्त हो जायेगा।

मैं चारों ओर का वैसे ही चक्रवर्त्ती हूँ जैसे सूर्य आकाश में तपता है। यदि वह पद्मिनी है तो पद्मनियाँ मेरे महल मे है और यदि अप्सरा है तो वह स्वर्ग में होती है।

टिप्पणी—सुमेरु…चढ़ावा—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। कवि यह व्यजित कर रहा है कि वह उस दाता की बहुत अधिक प्रशंसा करता है और प्रतिष्ठा देता है।

देखि……बिरासी—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। सुल्तान यह व्यंजित करना चाहता है कि यदि राघव चेतन उसकी रानियो की दासी को भी देख लेगा तो वह अत्यधिक मुग्ध हो जायेगा।

तुम बड़ राज छत्रपति भारी। अनु बाम्हन मै अहौ भिखारी ॥
चारिउ खड भीख कहँ बाजा। उदय अस्त तुम्ह ऐस न राजा ॥
धरमराज औ सत कलि माँहा। झूठ जौ कहै जीभ केहि पाहाँ? ॥
किछु जो चारि सब किछु उपराही। ते एहि जबूदीपही नाही ॥
पदमिनि अमृत, हँस, सदूरू। सिघलदीप मिलहि पै मूरू ॥
सातौ दीप देखि हौ आवा। तब राघव चेतन कहवावा ॥
अज्ञा होई, न राखौ धोखा। कहौ सबै नारिन्ह गुन दोषा ॥
इहाँ हस्तिनी, सखिनी औ चित्रिनि वहुबास।
कहाँ पदमिनि पदुमसरि, भँवर फिरै जेहि पास? ॥६॥

[इस अवतरण मे कवि ने सुल्तान के प्रति राघव चेतन के प्रत्युत्तर का वर्णन किया है।]

तुम वडे राजा और बड़े भारी छत्रपति सम्राट् हो। मै तो एक भिखारी ब्राह्मण हूँ। मै चारो दिशाओं मे भीख के लिए मारा-मारा फिरता हूँ। उदयाचल से लेकर अस्ताचल तक तुम्हारा जैसा सम्राट् नही है। तुम इस कलियुग मे धर्मराज और सतस्वरूप हो। ऐसी जीभ किसके पास है जो तुमसे झूठ कहे। जो श्रेष्ठ चार वस्तुएँ है वे इस जम्बूद्वीप मे नही हैं। वे मूल रूप से सिहलद्वीप मे ही मिलती है। उनमे एक पद्मिनी है, दूसरे अमृत, तीसरे हस और चौथे शार्दूल है। मै सातो द्वीप देख आया हूँ तभी राघव के साथ चेतन का नाम लगाया गया है। यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो मै बिना किसी भेदभाव के सब प्रकार की स्त्रियो के लक्षण आपसे कहूँ।

इस जम्बूद्वीप मे हस्तिनी, शंखिनी और चित्रिणी की वहुतायत है। पद्मिनी तो किसी पद्म सरोवर मे ही मिलती है जिसके चारो ओर भ्रमर घूमा करते है।

टिप्पणी—कहाँ······पास—यहाँ काकुवैशिष्ट्य व्यग्य है। पद्मिनी की दुर्लभता ही कवि व्यजित रहा है।

धरमराज—अलाउद्दीन ने प्रजा के कल्याण के लिए वहुत से कार्य किए थे। अपने उन्ही कार्यो के लिए वह धर्मराज कहा जाने लगा था।

तब राघवचेतन नाम कहावा—यहाँ पर राघवचेतन मे रूढि वैचित्र्यवक्रता है। यह वक्रता वहाँ होती है जहाँ लोकोत्तर तिरस्कार अथवा लोकोत्तर प्रशसा के कथन करने के अभिप्राय से वाच्य अर्थ के रूढि शब्द से असम्भव अर्थ के अध्यारोप से युक्त अथवा किसी विद्यमान अर्थ के अतिशय के आरोप से युक्त के रूप मे प्रतीति होती है।

स्त्री-भेद वर्णन खण्ड

पहिले कही हस्तिनी नारी। हस्ती कै परकीरति सारी॥
सिर औौर पाँय सुभर, गिउछोटी। उर कै खीनि, लंक कै मोटी॥
कुँभरस्थल कुच, मद उर माही। गवन गयंद, ढाल जनु बाही॥
दिस्टि न आवै आपन पीऊ। पुरुप पराए ऊपर जीऊ॥
भोजन वहुत, वहुत रति चाऊ। अछवाई नहि, थीर बनाऊ॥
मद जस मंद बसाई पसेऊ। औ विसवासि धरै सव केऊ॥
डर औ लाज न एकौ हिये। रहै जो राखे आँकुस दिये॥
गज गनि चलै चहूँ दिसि, चितवै लाए चोख।
कहा हस्तिनी नारि यह, सव हस्तिन्ह वे दोख॥१॥

[इस अवतरण मे कवि ने हस्तिनी जाति की स्त्रियों का वर्णन किया है।]

राघव चेतन कहता है कि—"मैं पहले हस्तिनी जाति की स्त्री का वर्णन करता हूँ। सिर और पेर खूब भरे हुए होते हैं और गर्दन छोटी होती है। उसका वक्ष स्थल क्षीण होता है तथा कमर मोटी होती है। कुच कुँभस्थल के समान होते हैं और हृदय मे मद भरा रहता है। उसकी चाल गयंद के समान होती है और ढाल के सदृश वाँहे होती है। उसे अपना पति अच्छा नही लगता है। उसका मन सदैव पर-पुरुपमय रहता है। वह वहुत भोजन करती है और अत्यधिक रतिप्रिय होती है। उसे सफाई पसन्द नही होती है और बनाव-शृगार भी वहुत कम करती है। पसीने में उसके मद जैसो वदवू आती है और विश्वासघात करके वह सवको ठगती है। उसके हृदय में लज्जा और भय इन दोनो मे से एक भी नही होता है। उसे यदि कोई अंकुश से वश में रखना चाहे तो रख सकता है।

वह चारो ओर चकमक देखती हुई गज गति से चलती है और सवको आँख गड़ाकर देखती है। यह हस्तिनी नारी के लक्षण हैं। इसमे हाथियों के सव दोष होते हैं।

टिप्पणी—हस्तिनी नारी का यह वर्णन संस्कृत के कामशास्त्रीय ग्रन्थों के अनुकरण पर किया गया है।

दूसरि कहौ संखनि नारी । करै बहुत बल, अलप-अहारी ।।
उर अति सुभर, खीन अति लंका । गरव भरी, मन करै न संका।।
बहुत रोष, चाहे पिउ हना । आगे घाल न काहू गना ।।
अपनै अलंकार ओहि भावा । देखि न सकै सिगार परावा ।।
सिघ कै चाल चलै डग ढीली । रोवाँ बहुत जाँघ और फीली ।।
मोटि, माँसु रुचि भोजन तासू । औ मुख आप बिसायँध बासू ।।
दिस्टि तरहुँडी, हेर न आगे । जनु मथवाह रहै सिर लागे ।।
सेज मिलत स्वामी कहँ लावै उर नखबान ।
जेहि गुन सबै सिघ के सो साँखिनी, सुलतान ।।२।।

[इस अवतरण में कवि ने शखिनी नारी के लक्षणो का वर्णन किया है ।]

दूसरा शखिनी जातियो की स्त्रियो के लक्षण कहता हूँ । वे बहुत कम खाती है और बहुत वल दिखाती है । उनका वक्षःस्थल भरा हुआ होता है और कटि क्षीण होती है । घमण्ड से भरी रहती है और मन मे किसी से डरती नही है । वे क्रोध मे भरी रहती है और पति को भी मारना चाहती है । अपने आगे आने पर किसी को कुछ नही समझती है । उन्हे अपने ही अलकार अच्छे लगते है, वे दूसरे का शृगार नही देख सकती है । पैरो को ढीला छोड़कर वे सिह की चाल चलती है । उनकी जाँघ और पिण्डलियो मे बहुत ही रोएँ होते है । मोटे माँस मे उनकी रुचि होती है । उनके मुख पर मछली जैसी दुर्गन्ध आती रहती है । उनकी दृष्टि नीचे रहती है, वे आगे नही देखती है मानो उनके सिर पर झालरदार पट्टी लगी हुई हो ।

शैया पर पहुँचने पर वह पति के उर को नाखूनो से बेध देती है । हे सुल्तान ! शंखिनी जाति की स्त्री मे सब सिहनी के गुण होते है ।

टिप्पणी—मोट······माँस—कसाँबो की भाषा मे यह कलेजी का नाम है अर्थात् शंखिनी जाति की स्त्री को माँस मे कलेजी का माँस सबसे अच्छा लगता है ।

मथवाह—उस झालरदार पट्टी को कहते है जो घोडो के लगी रहती है जिससे वे आगे नही देख पाते है ।

जायसी का उपर्युक्त शखिनी नारी का वर्णन पूर्णरूपेण कामशास्त्रीय ग्रन्थो के अनुरूप है ।

तीसरि कहौ चित्रिनी नारी । महा चतुर रस प्रेम पियारी ।।
रूप सुरूप, सिगार सवाई । अछरी जैसि रहै अछवाई ।।
रोप न जानै, हँसता-मुखी । जेहि असि नारी कंत सो सुखी ।।
अपने पिउ कै जानै पूजा । एक पुरुष तजि आन न दूजा ।।
चँद बदनिरँग कुमुदनी, गोरी । चाल सोहाइ हँस कै जोरी ।।

खीर खाँड रुचि, अलप अहारू । पान फूल तेहि अधिक पियारू ।।
पदमिनि चाहि घाटि दुइ करा । और सबै गुन ओहि निरमरा ।।
चित्रिन जैस कुमुद रँग, सोइ वासना अँग ।
पदमिनि सब चँदन असि, भँवर फिरहि तेहि सँग ।।३।।

[इस अवतरण मे कवि ने चित्रिणी नारियो का वर्णन किया है ।]

अब मैं तीसरी कोटि की चित्रिणी नारी के लक्षण कहता हूँ । वह प्रेम रस मे अत्यन्त चतुर और प्रेम करने वाली होती है । उसका रूप सुन्दर और शृंगार सवाया होता है। वह अप्सरा के सदृश सजी-सजाई रहती है । वह क्रोध नही करती, सदैव हँस-मुख रहती है । जहाँ ऐसी स्त्री होती है वहाँ पुरुष सदा सुखी ही रहता है । वह अपने पति की पूजा करती है और अपने पति को छोडकर दूसरे पुरुष को नही जानती है । वह चन्द्रवदनी होती है और कुमुदिनी के समान उसका रग गौर वर्ण होता है । उसकी चाल हँस की जोडी के समान होती हैं । खीर और खाड का वह रुचिकर थोड़ा भोजन करती है । पान और फूल उसे अधिक प्रिय होते है । वह पद्मिनी से केवल दो कलाओ में कम होती है, बाकी सब गुण पद्मिनी जैसे ही होते हैं ।

चित्रिणी स्त्री रंग मे कुमुदिनी जैसी होती है किन्तु उसके अगो से कुमुदिनी जैसी सुरभि नही आती है । पद्मिनी स्त्रियाँ सब चदन जैसी होती है और गंध से आकृष्ट भौरे (मानव) उसे घेरे रहते है ।

टिप्पणी—पदमिनी……सँग— स्वत.सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंजना है । कवि पद्मिनी नायिका के शरीर से आने वाली सुरभि की अतिशयता व्यजित कर रहा है ।

विशेष—इस अवसर मे चित्रिणी नारी का जो वर्णन किया गया है वह संस्कृत के कामशास्त्रीय ग्रन्थो मे दिए गए वर्णन के सर्वथा अनुकूल है ।

चौथी कहौ पदमिनी नारी । पदुम गंध ससि दैउ सँवारी ।।
पदमिनि जाति, पदुम रँग ओही । पदुम बास, मधुकर सँग होंही ।।
ना सुठि लाँबी, ना सुठि छोटी । ना सुठि पातरि, ना सुठि मोटी।।
सोरह करा रँग ओहि बानो । सो, सुल्तान! पदमिनी जानि ।।
दीरघ चारि, चारि लघु साई । सुभर चारि, चहुँ खीनौ होई ।।
औ ससि वदन देखि सब मोहा । बाल मराल चलत गति सोहा ।।
खीर अहार न कर सुकुवाँरी । पान फूल कै रहै अधारी ।।
सोरह करा सपूरन औ सोरहौ सिगार ।
अब ओहि भाँति कहत हौ जस वरनै संसार ।।४।।

[इस अवतरण मे पद्मिनी नारी के गुणो का वर्णन कवि ने किया है ।]

अब मैं चौथे प्रकार की पद्मिनी जाति की नारियो के लक्षण का वर्णन करता

हूँ। परमात्मा ने उस पद्मगधा को शशि के समान बनाया है। उस पद्मिनी जाति की नारी का रग पद्म के समान होता है। उसमे ऐसी तीव्र कमल की सुरभि आती है कि भ्रमर चारो ओर मंडराया करते है। न वह लम्बी होती है, न छोटी होती है, न वह पतली होती है और न वह अधिक मोटी होती है। उसका रंग सोलह कलाओ से युक्त चन्द्रमा के समान होता है। हे सुल्तान! ऐसी स्त्री को आप पद्मिनी समझिए। उसके शरीर में चार अग दीर्घ होते है, चार लघु होते हैं। चार भरे हुए और चार पतले और चार क्षीण होते है। उसका मुख शशि के समान होता है जिसको देखकर सब मुग्ध हो जाते है। हंस के बच्चे के समान उनकी गति होती है। वह इतनी सुकुमारी होती है कि खीर भी नही खा पाती। वह तो पान-फूल के सहारे ही जीवित रहती है।

उसकी मुखछवि सोलह कलाओ से पूर्ण चन्द्रमा के समान होती है। उसके अग-अंग सोलह श्रृंगारो से सुशोभित रहते है। जैसा कि ससार ने उसके गुणों का वर्णन किया है वैसा ही मैंने कर दिया है।

प्रथम केस दीरघ मन मोहै। औ दीरघ अँगुरी कर सोहै॥
दीरघ नैन तीख तहँ देखा। दीरघ गीउ, कंठ तिनि रेखा॥
पुनि लघु दसन होंहि जनु हीरा। औ लघु कुच उतंग जँभीरी॥
लघु लिलाट दूइज परगासू। औ नाभी लघु, चँदन बासू॥
नासिक खीन खरग कै धारा। खीन लंक जनु केहरि हारा॥
खीन पेट जानहुँ नहि आँता। खीन अधर विद्रुम रँग राता॥
सुभर कपोल, देख मुख सोभा। सुभर नितंब देखि मन लोभा॥
सुभर कलाई अति बनी, सुभर जंघ, गज चाल।
सोरह सिगार बरनि कै, करहि देवता लाल॥५॥

[इस अवतरण मे कवि ने पद्मिनी नारियो के लघु और दीर्घ अंगो के सौन्दर्य का वर्णन किया है।]

पहले तो केश बड़े है जो मन को मोहित करते है। हाथ में बडी-बड़ी अंगुलियाँ शोभायमान हैं। उनके नेत्र दीर्घ है और तीक्षण दृष्टि है। उसकी गर्दन दीर्घ है और कंठ मे तीन रेखाएँ है। छोटे-छोटे दाँत है जो हीरे जैसे दिखाई देते है। छोटे कुच है जो उत्तुंग जँभीरी के समान है। छोटा-सा माथा है जो दुइज की तरह प्रकाशित होता है। छोटी-सी नाभि है जिसमे से चंदन की सुरभि आ रही है। उसकी नाक तलवार की धार के समान पतली होती है। उसका पेट ऐसा पतला होता है कि मानो उसमें आँत न हो। उसके अधर पतले और मूंगे के रंग के सदृश लाल होते हैं। गाल भरे हुए है और मुख की कांति शोभायुक्त है। उसके नितब भरे हुए है जिन्हे देखकर मन मुग्ध हो जाता है।

उसकी कलाई खूब भरी हुई हैं और सुन्दर बनी हुई है। जाँघें भरी हुई होती हैं और गज जैसी चाल होती है। उसके सोलह शृंगारो का वर्णन करने पर देवता भी लालायित हो उठते हैं।

टिप्पणी—इस अवतरण मे कवि ने स्त्री-सौन्दर्य के चार दीर्घ, चार लघु और चार क्षीण तथा चार सुभर अंगो की सुन्दरता का वर्णन किया है। इसको कवि ने सोलह शृंगार कहा है। शृंगारो की यह व्याख्या मौलिक-सी प्रतीत होती है। इससे यह पता चलता है कि जायसी अग प्रत्यगगत सौन्दर्य को ही शृंगार मानते थे। वाह्य शृगारो को वह महत्त्व नही देते थे।

पदमावती रूप-चर्चा खण्ड

वह पदमिनि चित उर जो आनी। काया कुंदन द्वादस बानी।।
कुंदन कनक ताहि नहि बासा। वह सुगंध जस कँबल बिगासा।।
कुंदन कनक कठोर सो अँगा। वह कोमल रँग पुहुप सुरँगा।।
ओहि छुइ पवन बिरिछ जेहि लागा। सो मलयागिरि भएउ सभागा।।
काह न मूठि भरी ओहि देही ?। असि मूरति कोइ दैउ उरेही।।
सबै चितेरे चित्र कै हारे। ओहिक रूप कोइ लिखै न न्यारे।।
क्या कपूर, हाड़ सब मोती। तिन्हतें अधिक दीन्ह विधि जोती।।
सुरुज किरिन जसि निरमल, ते हितें अधिक शरीर।
सौह दिष्टि नहिं जाइ करि, नैनन्ह आवैं तीर।।१।।

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती के सौन्दर्य का चित्रण किया है।]

वह कहता है कि जो पदमावती अब चित्तौड में लाई गई है उसकी काया बारबानी कुन्दन जैसी शोभायुक्त है। कुदन का सोना ऐसा होता है कि उसमें सुगन्ध नही आती किन्तु उसके शरीर मे विकसित कमल जैसी सुगन्ध है। कुन्दन का सोना कठोर होता है किन्तु वह कोमलागी है और उसका रंग फूल के समान सुन्दर है। उसको छू कर पवन जिस वृक्ष का स्पर्श करता है वह भाग्यशाली वृक्ष मलयागिरि चंदन हो जाता है। उसके मुट्ठी-भर शरीर मे न मालूम क्या-क्या है। न मालूम यह मूर्ति किस परमात्मा ने बनायी है। सब चितेरे उसका चित्र बना बनाकर हार गए है कि उसका रूप कोई चित्रित नही कर सका है। उसकी काया कपूर के समान थी और हड्डियां मोती के समान थी। उनसे भी अधिक सुन्दर उसकी कान्ति है।

सूर्य की किरण जैसी निर्मल होती है उससे भी अधिक उसका शरीर निर्मल है। उसके सामने दृष्टि नही ठहरती, आँखों मे पानी आ जाता है।

टिप्पणी—काया कुँदन द्वादस बानी—यहाँ पर कवि प्रौढ़ोक्तिसिद्ध लक्ष्योपमा अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। वर्ण की अतिशय सुन्दरता ही कवि व्यंजित करना चाहता हैकि नायिका का वर्ण बहुत ही सुन्दर है।

कुन्दन······सुरँगा—व्यतिरेक अलंकार है।

ओहि······सभागा—यहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा अलकार से वस्तु व्यंग्य है। कवि ने हेतूत्प्रेक्षा से नायिका के सौन्दर्य की व्यजना की है।

सबै······पारे—यहाँ पर स्वत.सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंजना है। सौन्दर्य की अनिर्वचनीयता ही यहाँ व्यंग्य है।

कया······ज्योति—यहाँ पर उत्प्रेक्षा और व्यतिरेक अलकारो का संकर है।

सूरज······शरीर—यहाँ उपमा और व्यतिरेक अलंकारो का संकर है।

सौंह···· तीर—यहाँ स्वत.सम्भवी वस्तु वर्णन से वस्तु व्यग्य है। काति एवं सौन्दर्य की दिव्यता और अतिशयता ही व्यग्य है।

ससि मुख जबहि कहै किछु बाता। उठत ओठ सूरुज जस राता॥
दसन दसन सौ किरिन जो फूटहिं। सब जग जनहुँ फुलझरी छूटहिं॥
जानहुँ ससि महँ बीजु देखावा। चौंधि परै, किछु कहै न आवा॥
कौंधत अहजस भादौ रैनी। साम रैनि जनु चलै उडैनी॥
जनु बसंत ऋतु कोकिल बोली। सुरस सुनाइ मारि सर डोली॥
ओहि सिर सेस नाग जौ हरा। जाइ सरन बेनी होइ परा॥
जनु अमृत होइ वचन बिगासा। कँवल जो बास बास धनि पासा॥
सबै मनहि हरि जाइ मरि जो देखै तस चार।
पहिले सो दुख बरनि कै, बरनौ ओहिक सिगार॥२॥

[इस अवतरण मे कवि पदमावती के सौन्दर्य का वर्णन कर रहा है।]

वह अपने शशि मुख से जब कुछ बोलती है तो अधरों से ऐसी काति उठती है जैसे कि लाल सूर्य से उठती है। एक-एक दाँत से जो कांति फूटती है तो ऐसा लगता है कि संसार मे मानो फुलझड़ियाँ छूट पडी हो। उसके मुख मे दाँत ऐसे प्रतीत होते है कि मानो चन्द्रमा मे बिजली चमक रही हो। आँखो को वह चकाचौंध कर देती है। मिस्सी के बीच मे वे ऐसे चमकते है जैसे भादो की रात्रि मे बिजली कौंधती है अथवा जैसे काली अँधेरी रात मे जुगनू चमकते है। उसकी बोली ऐसी है कि मानो कोयल बोल रही हो। वह सुन्दर वाणी सुनाकर बाण-सा मारकर चली गई है। उसके सिर के बालो से पराजित होकर शेषनाग ने वेणी बनकर उसकी शरण ली हो। उसके वचन अमृत से परिपूर्ण है और कमल मे जो सुगन्ध पाई जाती है वह उस स्त्री के शरीर मे है।

जो उसके चार-चार अगों के सौन्दर्य को देखता है वह मन भी मुग्ध होकर उसके लिए मरने लगता है। पहले मैं उस दुःख का वर्णन करूँगा जो उसके दर्शन से मुझे अनुभूत हुआ था और फिर उसके शृ गार का वर्णन करूँगा।

टिप्पणी—उठत······राता—यहाँ पर उपमा अलकार से वस्तु व्यग्य है।

दसन······छूटै—यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। दाँतों की तीव्र कांति की व्यंजना कवि कर रहा है।

ओही······परा—यहाँ पर प्रतीप और हेतूत्प्रेक्षा का संकर है।

कित हौं रहा काल कर काढ़ा। जाइ धौरहर तर भा ठाढ़ा॥
कित वह आइ झरोखे झाँकी। नैन कुरगिनि, चितवनि बाँकी॥
बिहँसि ससि तरई जनु परी। की सो रैनि छुटी फुलझरी॥
चमक बीजु जस भादौ रैनी। जगत दिस्टि भरी रही उड़ैनी॥
काम कटाछ दिस्टि विष बसा। नागिनि अलक पलक महँ डसा॥
भौह धनुष, पल काजर बूड़ी। वह भइ धानुक, हौ भा ऊडी॥
मारि चली, मारत हू हँसा। पाछे नाग रहा, हौ डसा॥
काल घालि पाछे रखा, गरुड़ न मंतर कोइ।
मोरे पेट वह पैठा, कासौं पुकारौ रोइ? ॥३॥

[इस अवतरण मे राघव चेतन पदमावती के साक्षात्कार की स्थिति का वर्णन कर रहा है।]

न मालूम मै कैसा काल का मारा उसके धवल गृह के नीचे जा पहुँचा। न मालूम वह कैसे झरोखे मे आकर झाँकी और कुरगिनी जैसी आँखो से कटाक्ष मार दिया। वह चन्द्रवदनी जब हँसी तो मानो तारे ही विखर गए। अथवा वह ऐसी शोभित हुई कि मानो रात्रि मे फुलझडी छूटी हो या जैसे भादो की रात्रि मे बिजली चमकने से ससार के नेत्रो को जुगनुओ की पंक्ति दिखाई पडी हो। काम-कटाक्ष से युक्त उसकी दृष्टि मे विप भरा हुआ है। उसकी लट सर्पिणी की भाँति पलक मारने में डस लेती है। उसकी भौ धनुष के समान है। ठोडी पर काला तिल है। वह धनुष चलाने वाली हुई और मुझे अपने हृदय पर उसका वार लेना पडा। वह बाण मारकर चली तो मै बाण लगते ही प्रसन्न हुआ पर उसके पीछे जो वेणी रूपी नाग था उसने डस ही लिया।

उसने काला नाग पीछे डाल रखा था, उसके विप को उतारने का न कोई मंत्र था न गारुड़ी और न विष वैद्य था। वह काल मेरे पेट मे बैठ गया था। मै किससे रोकर कहूँ।

टिप्पणी—कित······काढ़ा—यहाँ पर काकु शिष्ट्य व्यंग्य है। कवि अपने सौभाग्य और दुर्भाग्य के मिश्रित भाव की व्यंजना कर रहा है।

कित······झाँकी—यहाँ पर भी काकुवैशिष्ट्य व्यग्य है। सौभाग्य और दुर्भाग्य के मिश्रित भावो की व्यंजना की गई है।

विहँसि······परी—यहाँ पर कवि प्रौढोक्तिसिद्ध रूपकातिशयोक्ति अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। यहाँ पर पदमावती का अतिशय सौन्दर्य ही व्यग्य है।

मारि……हँसा—यहाँ विशादन अलकार है।

नागिन……डसा—यहाँ कवि प्रौढोक्तिसिद्ध रूपकातिशयोक्ति अलंकार से वस्तु व्यग्य है। चोटी के प्रभाव की विपाक्तता ही यहाँ व्यंजित की गई है।

मोरे……रोय—डा० अग्रवाल ने इस पक्ति का पाठ निम्न दिया है—

"जहाँ मँजूर पीठि ओइँ दीन्हे कासुं पुकारौं रोई।"

हमे डा० अग्रवाल का पाठ अधिक सुन्दर लगता है क्योकि इसमे काव्यत्व अधिक है। इस स्थिति मे अर्थ होगा कि जहाँ मोर ने भी अपनी पीठ दे दी वहाँ किससे रोकर व्यथा कही जाए। यहाँ पर "जहाँ मँजूर पीठ ओइँ दीन्हे" मे रूपकातिशयोक्ति से हेतूत्प्रेक्षा व्यग्य है।

"कासू पुकारूँ रोप" काकुवैष्ट्यिमूलक व्यंग्य है। राघव चेतन अपनी असमर्थता और निरीहता व्यजित कर रहा है।

बेनी छोरि झार जौ केसा। रैनि होइ, जग दीपक लेसा॥
सिर हुँत बिसहर परे भुइँ बारा। सगरौ देस भएउ अँधियारा॥
सकपकाहि बिष भरे पसारे। लहरि भरे लहकहि अति कारे॥
जानहुँ लोटहि चढे भुअँगा। बेधे बास मलयगिरी अँगा॥
लुरहि मुरहि जनु मानहि केली। नाग चढ़े मालति कै बेली॥
लहरै देइ जनहुँ कालिंदी। फिरि फिरि भँवर होइ चितबँदी॥
चॅवर ढुरत आछै चहुँ पासा। भँवर न उड़हि जो लु बुधै वासा॥
होइ अँधियार बीजु धन लौपै जबहि चीर गहि झाँप।
केस नाग कित देख मैं, सँवरि सँवरि जिय काँप॥४॥

[इस अवतरण में कवि ने नागमती की वेणी और सौन्दर्य का चित्रण किया है।]

जब वह अपनी वेणी खोलकर केश झाड़ती है तो रात्रि हो जाती है और ससार मे दीपक जलने लगते है। बालरूपी विषधर सिर से लेकर पृथ्वी तक फैले हुए है जिससे सारे देश मे अँधकार छा गया है। वे विष भरे हुए फैले हुए सकपका रहे है और वे अत्यन्त काले लहरे भर रहे है। वे ऐसे लग रहे हैं मानो कि ऊपर सर्प चढे हुए लोट रहे है। उसकी गध से वेधे हुए मलयागिरि रूपी शरीर के साथ लिपटे हुए है। वे क्रीडा करते हुए लहराते है और मुडते है। ऐसा मालूम होता है कि मालती लता पर नाग चढे हुए है। वे ऐसे लहराते है मानो कि कालिंदी लहरा रही हो। उन लहरो के बार-बार चक्कर में घूमने से जो भँवर पडते है वे केशो के फन्दे है जिनमे चित्त फँस जाता है। उसके चारो ओर चँवर ढुलाए जाते है किन्तु फिर भी सुगन्ध के लोभी भ्रमर नही भागते है।

जब वह अपनी साड़ी पकड़कर अपने केशों को ढकती है तो ऐसा लगता है कि

मानो क्षण भर के लिए बिजली कौध गई हो। मैंने केश रूपी ये नाग देखे ही क्यों जिनका स्मरण कर करके हृदय काँपता है।

टिप्पणी—रैनि······लेसा—यहाँ पर अतिशयोक्ति अलंकार मे भ्रांतिमान अलंकार व्यंग्य है।

सिर······अँधियारा—यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार है।

माँग जो मानिक सेदुर रेखा। जनु बसंत राता जग देखा ॥
कै पत्रावलि पाटी पारी। औ रचि चित्र विचित्र संवारी ॥
भए उरेह पुहुप सब नामा। जनु बग बिखरि रहे घन सामा ॥
जमुना माँझ सुरसती मंगा। दुहुँ दिसि रही तरंगिनी गगा ॥
सेदुर रेख सो ऊपर राती। बीरबहूटिन्ह कै जसि पाँती ॥
बलि देवता भए देखि सेंदूरू। पूजै माँग भोर उठि सूरू ॥
भोर साँझ रवि होइ जो राता। ओहि रेखा राता होई गाता ॥
बेनी कारी पुहुप लेइ निकसी जमुना आइ।
पूज इद्र आनन्द सौ सेन्दुर सीस चढ़ाई ॥५॥

[इस अवतरण मे कवि ने नायिका की माँग का वर्णन किया है।]

नायिका की माँग में जो माणिक्य और सिंदूर रेखा है वह ऐसी शोभायमान हो मानो कि लाल-लाल बसन्त ऋतु ससार मे छा गई हो। पत्रावलि बनाकर दोनो ओर बालो की पट्टियाँ पारी हुई थी। वे बालो की पट्टियाँ बड़े चमत्कारपूर्ण और विचित्र ढंग से सजाई गई थी। सब प्रकार के फूलो को उन केशों में सजाया गया था। ऐसा लगता था मानो कि काले बादलो में श्वेत बगुलो की पंक्ति फैली हुई हो। वह माँग यमुना मे फैली हुई सरस्वती नदी के समान शोभायमान थी। दोनो ओर श्वेत पुष्पो की माला गगा की छवि दे रही थी। माँग के ऊपर जो सिंदूर की रेखा थी वह ऐसी मालूम होती थी मानो कि वीरबहूटियो की पंक्ति चल रही हो। माँग के सिंदूर को देखकर देवता न्योछावर हो जाते थे। सूर्य सबेरे उठकर उस माँग की पूजा करता था। प्रातः और सायकाल जो सूर्य लाल दिखाई पड़ता है वह उसी माँग के प्रभाव से लाल दिखाई पडता है। काली वेणी जोकि पुष्पो से सुसज्जित थी वह ऐसी शोभायमान हो रही थी मानो कि यमुना बह रही हो और इन्द्र ने आनन्दपूर्वक सिंदूर चढाकर उसकी पूजा की हो।

टिप्पणी—जमुना······गंगा—कवियो की त्रिवेणी की कल्पना बडी प्रिय रही है। जहाँ कही भी उन्हे अवसर मिला है विशेषरूप से केशों आदि के वर्णन के प्रसग में वहाँ इस कल्पना का प्रयोग जीभर किया है। महाकवि पद्माकर ने ताल मे त्रिवेणी की सृष्टि कर दी थी उसके दर्शन भी कीजिए।

"जाहि रे जागति सी जमुना जल
बूड़ै बहै उमगै वह बेणी
त्यो पद्माकर हीरा के हारन
गंग तरंगिनि लौं सुखदेनी।
पायन के रंग सो रगजाल
सो ठॉवहि ठॉव सरस्वती सेनी
पैरे जहां हि जहाँ वह बाल
तहँ-तहँ ताल में होत त्रिवेनी।"

वलि.........सिंदूरू—यहाँ पर कवि प्रौढोक्ति सिद्ध वस्तु मे वस्तु व्यजना है।

पूजै......सूरू—यहाँ पर कवि प्रौढोक्ति सिद्ध वस्तु से हेतूत्प्रेक्षा अलंकार व्यंग्य है।

भोर......गाता—यहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। पदमावती की अलौकिकता व्यजित की गई है।

वेनी......चढ़ाय—इस पक्ति का अर्थ डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने दूसरी तरह लिया है। उन्होने लिखा है—"पुष्पो से सजी हुई वेणी ऐसी लगती थी कि मानो कालिय नाग की नागिनी कमलपुष्प लिए हुए यमुना से बाहर निकली हो और उसने अपने सिर पर सिदूर चढाकर उन कमलो द्वारा आनन्द से पूजा की हो।" यह अर्थ दूरारूढ है। इन्द्र द्वारा नागिनी की पूजा की सार्थकता समझ मे नही आती है। और इन्द्र का राजा अर्थ लेना भी यहॉ पर खीचातानी ही है।

दुइज लिलाट अधिक मनियारा। संकर देखि माथ तहँ धारा॥
यह निति दुइज जगत सब दीसा। जगत जोहरै देइ असीसा॥
ससि जो होइ नहि सरवरि छाजै। होइ सो अमावस छपि मन लाजै॥
तिलक सँवारि जा चुन्नी रची। दुइज माँझ जानहुँ कचपची॥
ससि पर करवत सारा राहू। नखतन्ह भरा दीन्ह बड़दाहू॥
पारस-जोति ललाटहि ओती। दिस्टि जो करै होइ तेहि जोती॥
सिरी जो रतन माँग बैठारा। जानहु गगन टूट निसि तारा॥
ससि औ सूर जो निरमल तेहि लिलाट के ओप।
निसि दिन दौरि न पूजहि पुनि-पुनि होहि अलोप॥६॥

[इस अवतरण मे कवि ने नायिका के ललाट की शोभा का वर्णन किया है।]

पदमावती के ललाट की शोभा दुइज के चाँद से भी अधिक है। शंकर ने उस रूप से पराभूत होकर अपना मस्तक पदमावती के प्रति नवा दिया। उसका मस्तक

ऐसे दुइजकालीन चन्द्रमा के समान है जो संसार मे सबको दिखाई पड़ता है। सारा संसार उसको प्रणाम करता है और वह संसार को आशीर्वाद देती है। चन्द्रमा उसकी बराबरी नही कर पाता है इसीलिए वह लज्जित होकर अमावस्या मे परिणत हो जाता है। तिलक लगाकर चुन्नी बनाई है जिससे ऐसा लगता है कि दुइजकालीन चाँद कचपचिया के साथ शोभायमान है। पदमावती के शशिरूपी ललाट पर माँग ऐसी मालूम होती है मानो कि राहू ने कर-पत्र रखा हो। नक्षत्रो से युक्त चन्द्रमा को सता रखा है। उसके ललाट मे पारस पत्थर जैसी विलक्षण ज्योति है कि जो उसकी ओर देखता है वह भी ज्योतिर्मय हो उठता है। माँग पर जो रत्न की श्री शोभायमान है वह ऐसी लगती है मानो कि अन्धेरी रात मे तारा टूट रहा हो।

चन्द्रमा और सूर्य उसी की ज्योति से ज्योतिर्मान है। वे रात-दिन चलते है फिर भी उसकी समता नही कर पाते है और अन्त में दु.खी होकर छिप जाते है।

टिप्पणी—संकर······धरा—यहाँ पर स्वत.सम्भवी वस्तु से वस्तुव्यंजना है। कवि ने पदमावती की अलौकिकता व्यंजित की है।

एही······दीसा—यहाँ पर व्यतिरेक अलंकार है।

शशि······लाजै—यहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा अलंकार से वस्तु व्यजना है। पदमावती की अलौकिकता ही यहाँ व्यंग्य है।

ससि····· बढदाहू—यहाँ उत्प्रेक्षा और रूपकातिशयोक्ति का संकर है।

पारस······ज्योति—यहाँ पर स्वत.संभवी वस्तु से वस्तुव्यंजना है।

शशि······अलोप—यहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा अलकार से वस्तु व्यग्य है। पदमावती की अलौकिकता ही व्यग्य है।

विशेष—इस अवतरण मे कवि ने रहस्यवाद की सृष्टि की है।

भौहैं साम धनुक जनु चढा। बेझ करै मानुस कह गदा।।
चन्द की मूठि धनुक वह ताना। काजर पनच बरुनि बिषवाना।।
जा सहुँ हेर जाइ सो मारा। गिरिवर टरहि भौह जो टारा।।
सेतुबंध जेइ धनुष विडारा। उहौ धनुष भौहन सो हारा।।
हारा धनुष जो वेधा राहू। और धनुब कोइ गनै न काहू।।
कित सो धनुष मै भौहन्ह देखा। लाग बान तिन्ह आऊन न देखा।।
तिनि बानन झाँझर भा हीआ। जो अस मारा कैसे जीया।।
सूत-सूत तन बेधा रोंव रोव सब देह।
नस-नस मंहते सालहि हाड़-हाड़ भए बेह।।७।।

[इस अवतरण मे कवि ने नायिका की भौहो की शोभा का वर्णन किया है।]

नायिका की भौहे ऐसी वक्राकार है मानो चढा हुआ धनुष हो। ऐसा मनुष्य न मालूम कहाँ रचा गया है जिसको वह अपनी भौहो का शिकार बना सके। मुखरूपी चन्द्रमा की मुट्ठी मे वह धनुष तना हुआ है। काजल उसकी प्रत्यंचा और

बरौनियाँ विपाक्त वाण है। जिसकी तरफ वह दृष्टिविक्षेपण करती है उसे प्राणों से हाथ धोने पडते हैं। जब वे भौहे हिलती है, पर्वत टूटने लगते है। जिस धनुष ने सेतुवन्ध का विध्वसन किया था वह धनुष भी उसकी भौहों के धनुष से पराभूत हो गया। जिस धनुप ने रोहू मछली का भेदन किया था वह भी इस धनुष से पराजित हो गया। अन्य धनुषो की तो बात ही क्या है। उस धनुष को मैने क्यो देखा जो उसके कटाक्षरूपी वाणो का लक्ष्य वना। उन कटाक्षरूपी वाणों से हृदय जर्जर हो गया। जिसे इस प्रकार मारा गया हो वह कैसे जीवित रह सकता है।

शरीर का प्रत्येक रोम कूप उन वाणो से बिंधा हुआ है जो रोये बनकर शरीर भरकर प्रकट हुए है। वे नस-नस को कष्ट देते है।

टिप्पणी—बेभ्र करै····· गढा—यहाँ काकुवैशिष्ट्य व्यंग्य है। कवि यह व्यजित करना चाहता है कि नायिका के योग्य वर कठिनाई से प्राप्त होगा।

चंद की मूठि ···· ताना—यहाँ पर कवि प्रौढोक्ति सिद्ध रूपकातिशयोक्ति अलंकार से वस्तुव्यजना है। कवि नायिका के सौन्दर्यातिशय्य एव भौहो की विलक्षणता व्यंजित करना चाहता है।

काजर पनच······वाना—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। भौंहो की लोकोत्तरता ही व्यंग्य है।

जा सहु······मारा—यहाँ पर कवि प्रौढोक्ति सिद्ध चपलातिशयोक्ति अलंकार से वस्तु व्यंजना है। भौहो की अनिर्वचनीय मोहन शक्ति ही यहाँ व्यग्य है।

गिरिवर····· टारा—यहाँ पर चौथी विभावना अलकार से वस्तुव्यंजना है। भौहो की अनिर्वचनीय मोहक शक्ति एव लोकोत्तरता ही व्यंग्य है।

सेतुबन्ध······हारा—रामजी ने लंका से लौटते समय सेतुबन्ध रामेश्वर को अपने वाण से मारकर भग कर दिया था। यहाँ पर स्वत सम्भवी वस्तु वर्णन से वस्तु-व्यंजना है। यहाँ पर लोकोत्तरता ही व्यग्य है।

हारा······काहू—यहाँ पर अर्जुन के गाँडीव का सकेत है। यहाँ पर स्वतः सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यजना है। धनुष की लोकोत्तरता ही व्यंग्य है।

जो अस ·····मारा—यहाँ पर 'अस' मे अर्थान्तिर सक्रमित वाच्य ध्वनि है। आधिक्य ही यहाँ व्यग्य है।

सूत-सूत····· देह—यहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा अलंकार है।

नस-नस······बेह—यहाँ पर कवि प्रौढोक्तिसिद्ध असगति अलंकार से वस्तु व्यंजना है। यहाँ पर पदमावती की लोकोत्तरता ही व्यग्य है।

नैन चित्र एहि रूप चितेरा। कवल पत्र पर मधुकर फेरा॥
समुद तरग उठहि जनु राते। डोलहि औ घूमहि रस माते॥
सरद चंद मँह खंजन जोरी। फिरि-फिरि लरै बहोरि-बहोरी॥
चपल विलोल डोल उन्ह लागे। थिरि न रहै चंचल वैरागे॥

निरखि अघाहि न हत्या हुते । फिरि-फिरि स्रवनन लागहि मते ।।
अग सेत, मुख सामसो ओही । तिरछे चलहि सूध नहि होही ।।
सुर, नर, गन्ध्रव लाल कराहीं । उलथे चलहि सरग कहं जाहीं ।।
असवै नयन चक्र दुई भँवर समुद उलथाहि ।
जनु जिउ घालि हिडोलहि लेइ आवहि, लेइ जाहि ।।८।।

[इस अवतरण मे कवि ने नायिका के सौन्दर्य का वर्णन किया है ।]

नेत्र इतने विचित्र है मानो रूपरूपी चित्रकार ने उसकी रचना की हो । वे ऐसे लग रहे थे मानो कँवल पत्र पर भ्रमर मंडरा रहे हों । वे अनुराग से इतने तरलित है मानो समुद्र मे लहरे उठ रही हो । वे ऐसे उछृंखल हो रहे है मानो मदिरा-पान कर रखी हो । वे ऐसे चपल है कि लगता है मानो शरद की चाँदनी मे दो खंजन पक्षी क्रीड़ा कर रहे हो । वे वार-वार मुड-मुड़ कर लड़ते है । उन दोनो की चपलता देखकर ऐसा लगता है कि मानो वे चंचल झूले मे झूल रहे हो । वे रागी व्यक्ति की भाँति क्षणभर भी स्थिर नही रहते । वे नेत्र दृष्टि विक्षेपण मात्र से तृप्त नही होते । वे तव तक तृप्त नही होते जव तक अपने कटाक्षों से प्रेमी की हत्या नही कर देते है । वे वार-वार कान तक फैल जाते है । मालूम होता है उनसे कुछ सलाह करना चाहते है । इसीलिए उनका अंग श्वेत है किन्तु मुख श्याम है । वे तिरछे चलते है सीधे नही होते । देवता, मनुष्य, ऋषि और गन्धर्वो को अपनी सुन्दरता पर आसक्त किए हैं । वे उछल कर स्वर्ग तक उड़ जाना चाहते है ।

वे दोनो नयन दो चक्रो के समान हैं । वे भँवर के समान समुद्र अर्थात् गम्भीर से-गम्भीर हृदय को उद्वेलित करते है । वे प्राणो को मानो हिंडोले ले जाकर वाहर ले जाते या ले आते है ।

टिप्पणी—नैन चित्र······चितेरा—डा० अग्रवाल ने इसका पाठान्तर इस प्रकार दिया है—

नैन चतुर वे रूप चितेरे ।

इसका अर्थ डा० अग्रवाल ने इस प्रकार दिया है—"अवश्य ही रूप के किसी चतुर चित्रकार ने उन नैनो को वनाया है ।" मेरी समझ मे यहाँ पर चित्र का अर्थ है विचित्र अथवा अनिर्वचनीय सुन्दरता का कारण उनका अनिर्वचनीय रूप जैसे चित्रकार द्वारा विनिर्मित होना है । यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है । नेत्रो का अनिर्वचनीय सौंदर्य ही यहाँ व्यग्य है ।

कँवल······फेरा—यहाँ पर कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध उत्प्रेक्षा अलकार से वस्तु व्यंग्य है । उसके नेत्र कमल के पत्ते के समान दीर्घ और सजल है । उनमे भ्रमर के समान चपल काली पुतलियाँ डोलायमान है ।

सरद चन्द मंह······जोरी—यहाँ पर सात्विक मौग्ध्य भाव मे कामजनित चापल्य की व्यंजना की गई है ।

फिरि-फिरि लरहि वहोरि......वहोरी—यहाँ स्वतःसम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंजना है। कवि ने यहाँ पर नायिका के सात्विक मौग्ध्यभाव की व्यंजना की है। नायिका के नेत्र लज्जा और संकोच के कारण कही दूसरी ओर नही जाते। वे आपस मे एक-दूसरे से लड़ रहे हैं।

चपल......लागे—यहाँ पर प्रौढ़ोक्ति सिद्ध गम्योत्प्रेक्षा अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। नेत्रो की चपलता ही यहाँ व्यंग्य है।

वैरागे—वैरागी नेत्र। डा० अग्रवाल ने वैरागे का अर्थ वैरागी या विरक्त लिया है। वैरागे में चपलता का होना विरोधात्मक है। वास्तव मे चपलता तो रागी व्यक्ति मे ही होती है।

निरखि......हूँतें—यहाँ पर व्यतिरेक अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। वास्तव में, नेत्रों को देखकर ही अघा जाना चाहिए किन्तु वे हत्या करके अघाते हैं। अतः यहाँ हत्यारूप अकारण से तृप्तिरूप कार्य का होना कहा गया है। अतः तीसरी विभावना हुई। इससे कवि ने नेत्रो की पुरुषो को अत्यधिक कामासक्त करने की क्षमता व्यंजित की है।

फिर-फिर......मते—यहाँ पर कवि प्रौढोक्ति सिद्ध हेतूत्प्रेक्षा अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। पूर्णयौवनागम पर नेत्र इतने लम्बे हो जाते हैं कि कान से बातें करते है। विद्यापति ने लिखा है—

> सैसव जोवन दोऊ मिलि गेल।
> स्रवनक पथ दोउ लोचन लेल॥
> वचन की चातुरि लहु-लहु हास।
> धरनिए चाँद कएल परकास॥

अतः कवि ने यहाँ पर नायिका के पूर्णयौवनागम की व्यंजना की है।

अग सेत......ओही—यहाँ पर स्वतःसम्भवी वस्तु से वस्तुव्यंजना है। कवि ने यह व्यंजित किया है कि नायिका देखने मे मुग्धा है किन्तु काम से परिपूर्ण है।

सुर......करहीं—सुर-नर ग्रन्धव मे अर्थान्तिर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। कवि सम्पूर्ण चराचर की व्यंजना करना चाहता है। लाल कराही का अर्थ है—लालायित रहते है। यहाँ पर क्रियागत वैचित्र्य है।

उलथे चलहि सरग कहँ......जांही—यहाँ पर प्रसादन अलंकार है। सामान्यतया उलथे चलने वालों को पथभ्रष्ट होना पड़ता है किन्तु यहाँ वे स्वर्ग जाते हैं। इसलिए प्रसादन अलंकार है।

> नासिक खड़ग हरा धनि कीरू। जोग सिगार जिता औ वीरू॥
> ससि मुंह सौह खड़ग देइ रामा। रावन सौ चाहै संग्रामा॥
> दुहु समुद्र मँह जनु विच नीरू। सेत वन्ध वाँधा रघवीरू॥
> तिल के पुहुप अस नासिक तासू। औ सुगन्ध दीन्ही विधि वासू॥

हीर फूल पहिरे उजियारा। जनहु सरद ससि सोहिल तारा॥
सोहिल चाहि फूल वह ऊँचा। धावहि नखत न जाइ पहूँच॥
न जानौ कैस फूल वह गढ़ा। विगसि फूल सब चाहहि चढ़ा॥
अस वह फूल सुवासित, भएउ नासिका बंध।
जेत फूल ओहि हिरकहि, तिन्ह कह होय सुगन्ध॥५॥

[इस अवतरण मे कवि ने नायिका की नासिका के सौन्दर्य का वर्णन किया है।]

उस बाला ने नासिकारूपी खड्ग से तोते को पराजित किया है। उसकी सहायता से उसने योग, शृंगार और वीर तीनो को जीत लिया है। शशिमुख मे सामने जो नासिकारूपी खड्ग है उसके द्वारा मानो वह रमणी अपने रमण अर्थात् प्रियतम से संग्राम करती है। दोनो नेत्रो के बीच मे नासिका ऐसी प्रतीत होती है मानो दो समुद्रो के मध्य में रामजी ने सेतुबध बाँधा हो। उसकी नासिका तिल के फूल के समान है। परमात्मा ने उसमे सुगन्ध भर दी है। वह नाक मे हीरे का फूल पहने हुए है। वह फूल ऐसा शोभायमान हो रहा है कि चन्द्रमा के पास सोहिल (अगस्त्य) नक्षत्र शोभायमान हो। वह फूल सोहिल नक्षत्र से भी अधिक सुन्दर है। नक्षत्र दौड़ते हैं किन्तु वहाँ तक वे नही पहुँच पाते है। न मालूम वह फूल कितना सुन्दर गढा गया है। संसार के सब फूल उसी पर न्योछावर होना चाहते है।

वह फूल नासिका के समीप होने के कारण इतना अधिक सुगन्धित हो गया है कि जितने भी फूल उसके समीप आते हैं उन सब मे सुगन्धि हो जाती है।

टिप्पणी—नासिका······कीरू—वाच्यार्थ है नासिकारूपी खड्ग से नायिका ने तोते को जीत लिया है। यहाँ पर कवि प्रौढ़ोक्तिसिद्ध रूपक अलंकार से प्रतीप अलंकार व्यग्य है।

जोग सिंगार······बीरू—यहाँ पर रूपक अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। कवि की व्यंजना है कि पदमावती परमात्मा का प्रतीक होने से शान्तरस का संचार करती है, खड़ग के समान तीक्ष्ण होने से वीर की द्योतिका है और नायिका की नाक होने से शृंगार की सचारिका है।

ससि······संग्राम—यहाँ पर रामा और रावन शब्दो मे श्लेष अलंकार है। श्लिष्ट अर्थ है कि "शशिमुखी सीता को प्राप्त करने के लिए राम ने रावण से खड़ग लेकर युद्ध करने का निश्चय किया है।" नायक को उसके अधरो का पान करने के लिए बडा संघर्ष और तपस्या करनी होगी।

दुहु समुद्र······रघुबीरू—यहाँ पर कवि प्रौढोक्तिसिद्ध उत्प्रेक्षा अलकार से वस्तु ध्वनि है। कवि ने नायिका के विराट् रूप की व्यजना कर नायिका की लोकोत्तरता ध्वनित की है।

सोहिल······पहुँचा—यहाँ पर कवि प्रौढोक्तिसिद्ध व्यतिरेक अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। कवि ने नायिका की अलौकिकता एवं विराटरूपता व्यजित की है।

न जनौ······गढ़ा—यहाँ पर 'कैस' में काकुवैशिष्ट्य व्यग्य है। कवि ने नायिका की लोकोत्तरता एव रूपातिशयता व्यजित की है।

विगसि...चढ़ा—यहाँ पर कवि ने स्वत.सम्भवी वस्तु से वस्तुव्यंजना की है। नायिका की अलौकिकता एव विराट्रूपता ही व्यंग्य है।

अस······सुगन्ध—यहाँ स्वत:सम्भवी वस्तु से वस्तुव्यंजना की गई है। नायिका की अलौकिकता ही व्यग्य है।

अधर सुरंग पान अस खीने। राते रंग, अमिय रस भीने ॥
आछहिं भिजे तँबोल सों राते। जनु गुलाल दीसहि विहसाते ॥
मानिक अधर, दसन जनु हीरा। बैन रसाल खाँड मुख बीरा ॥
काढे अधर डाभ जिमि चोरा। रुहिर चुवै जो खाडे बीरा ॥
ढारै रसहि रसहि रस-गीली। रकत भरी औ सुरंग रंगीली ॥
जनु परभात राति रवि रेखा। विकसे वदन कवल जनु देखा ॥
अलक भुअंगिनि अधरहि राखा। गहै जो नागिनि सोरस चाखा ॥
अधर-अधर रस प्रेम कर, अलक भुअंगिनि वीच।
तब अमृत रस पावै जब नागिनि गहि खींच ॥१०॥

[इस अवतरण मे कवि ने अधरो के माधुर्य का वर्णन किया है।]

सुन्दर रग वाले अधर पान के समान पतले है। वे लाल रंग के है और अमृत से सराबोर। ताम्बूल से रजित वे अरुण ऐसे मालूम हो रहे थे मानो गुलाव के फूल खिले है। अधर माणिक्य ऐसे लाल है और दाँत हीरे जैसे। उसके वचन इतने मधुर है मानो उसमे खाँड मिली हो। उनके अधर इतने पतले हैं मानो कुश से चिर गए हों। वे इतने कोमल हैं कि जब वीडा चवाती है तो खून चूने लगता है। वे ऐसे अरुण है मानो रात्रि मे बाल सूर्य की किरणो का मुख कमल खिल उठा हो। लटरूपी नागिनी अधरो की रखवाली करती है। जो उस नागिनी को ग्रहण करेगा वही उस रस का पान कर सकता है।

अधरो मे प्रेम का रस भरा है। वे ही उसका आधार है। प्रियतमा के अधरों के बीच अलकरूपी नागिनी है। प्रियतम को प्रियतमा के अधरो का रस तभी मिल सकता है जब वह अलकरूपी नागिनी को पकड कर खीचने मे समर्थ होगा।

टिप्पणी—मानिक······अधर—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। अधरों की अत्यधिक लालिमा ही व्यग्य है।

दसन जनु······हीरा—यहाँ पर कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध उत्प्रेक्षा अलकार से वस्तु ध्वनि है। दशनो का हीरे जैसा श्वेतिमाधिक्य ही व्यंग्य है।

काढ़े······चीरा—यहाँ पर स्वत.सम्भवी उत्प्रेक्षा अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। अधरों का पतलापन तथा अत्यधिक अरुणिमा ही व्यंग्य है।

रुहिर चुवै······बीरा—यहाँ पर कारणातिशयोक्ति अलकार से वस्तुव्यंग्य है। अधरो की अतिशय कोमलता ही व्यंग्य है।

जनु······रेखा—यहाँ स्वत.सम्भवी उत्प्रेक्षा अलकार से वस्तु व्यंग्य है। यहाँ अधरो की अरुणिम प्रकाशरूपता ही व्यग्य है।

गहै······चाखा—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

दसन साम पानन्ह रंग पाके। बिकसे कँवल माँह अलि ताके॥
ऐसि चमक मुख भीतर होई। जनु दारिऊ और साम मकोई॥
चमकहि चौक बिहँस जो नारी। बीजु चमक जस निधि अधियारी॥
सेत साम अस चमकत दीठी। नीलम हीरक पाँति बईठी॥
केइ सो गढ़ अस दसन अमोला। मारै बीजु बिहस जो बोला॥
रतन भीजि रस रंग भए सामा। ओही छाज पदारथ नामा॥
कित वै दसन देख रस भीने। नेइ गए जोति नैन भै हीने॥
दसन जोति होइ नैन मग हिरदय साँझ पईठ।
परंगट जग अधियार जनु गुपुत ओहि मै दीठि॥११॥

[इस अवतरण में कवि ने नायिका के दशनों एवं हँसी की सुषमा का वर्णन किया है।]

पान अधिक खाने से नायिका के अधर पक्के लाल रंग के हो गए है जो श्यामता की सीमा तक पहुँच गए है। विहसने से पान के पक्के लाल रग के काले हुए दशनमुख ऐसे प्रतीत होते हैं मानो कमल पर भौरे मँडरा रहे हो। मुख के भीतर ऐसी चमक होती है मानो दाडिम के दानो के साथ काली मकोय मिली हो। जब नायिका विहँसती है तो उसके चौके (सामने के चार) दाँत चमकते है। वे ऐसे लगते है मानो अँधेरी रात्रि मे विजली चमकती हो। श्वेत और श्याम रग दसनो के बीच चमकता हुआ ऐसा प्रतीत होता है मानो कि नीलम और हीरे की पक्तियाँ जड़ी गई हो। न मालूम किसने ऐसे अमूल्य दाँत गढे है कि जब वह हँसती है तो ऐसे लगता है मानो विजली चमक उठी हो। उसके रस के रंग मे रंगकर रतनसेन श्याम रंग का हो गया। इसीलिए उसका पदार्थ नाम सार्थक हो गया। मैने वे रस भरे दाँत देखे ही क्यो? उनके दर्शनमात्र से ज्योति चली गई और नेत्र दृष्टिहीन हो गए।

दशनो की ज्योति नेत्रमार्ग से हृदय मे प्रविष्ट हो गई। इसीलिए प्रत्यक्ष संसार अन्धकारपूर्ण लगने लगा और अन्तर्जगत् मे उसी के दर्शन होने लगे।

टिप्पणी—**बिगसे······ताके**—यहाँ पर गम्योत्प्रेक्षा अलंकार है।

चमकहि······अँधियारी—यहाँ पर उपमा अलकार है।

सेत साम······पइठी।

ओहि छाज पदारथ······माना—यहाँ पर पदारथ शब्द मे पर्यायवक्रता है और शब्दशक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है।

परगट······दीठ—यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलंकार से वस्तु व्यंजना है। नायिका की अलौकिकता और अत्यधिक मोहकता व्यजित की गई है।

रसना सुनहु जो कह रस बाता। कोकिल बैन सुनत मन राता॥
अमृत कोप जीभ जनु लाई। पान फूल अस बात सोहाई॥
चातक बैन सुनत होइ सौती। सुनै सो परै प्रेम मधुमाती।
बिरवा सूख पाव जस नीरू। सुनत बैन तस पलुहु सरीरू॥
बोल सेवाति बूँद जनु परही। स्रवन सीप-मुख मोती जनु मरही॥
धनि वै बैन जो प्रान अधारू। भूखे स्रवनहि देहि अहारू॥
उन बैनन्ह कै काहि न आसा। मोहहि मिरिग बीन विस्वासा॥
कंठ सारदा मोहै जीभ सुरसती काह।
इन्द्र-इन्द्र रवि देवता सबै जगत मुख चाह॥१२॥

[इस अवतरण मे कवि ने नायिका की रसनागत मधुरिमा का वर्णन किया है।]

अब रसना के वैशिष्ट्य को सुनिए। वह रसमयी वाणी बोलती है। उसकी कोकिल जैसी मधुरवाणी सुनकर मन प्रेमासक्त हो जाता है। उसकी जिह्वा ऐसी मधुर और जीवनदायिनी वाणी की स्रोतस्विनी है मानो वह अमृत का कोपल है। उसकी बातो मे पान फूल जैसी मधुरिमा है। चातक जैसी मधुर वाणी सुनकर शान्ति का अनुभव होता है। उसको जो सुनता है वह प्रेमबूँद से विह्वल हो जाता है। जिस प्रकार सूखा हुआ वृक्ष जल पाते ही पल्लवित हो उठता है उसी प्रकार उसकी वाणी सुनकर शरीर भी आनन्दविभोर हो उठता है। उसके वचन स्वाति बूँद के समान हैं जो कर्णरूपी सीप में मोती के समान सुन्दर एव मूल्यवान है। वे वचन धन्य है जो प्राणो का आधार बन कर भूखे श्रवणो को भोजन देते है। उन वचनो को सुनने की लालसा किस व्यक्ति मे नही है। बेचारे मृग उसकी वाणी को बीन की रागिनि समझ मोहित हो जाते है।

उसकी कण्ठध्वनि पर शारदा मोहित है। फिर उसकी जिह्वा को सरस्वती की उपमा कैसे दी जाय। इन्द्र, चन्द्र और सूर्य सब उसकी मधुरवाणी को सुनने के लिए उसका मुख जोहा करते है।

टिप्पणी—अमृत······लाई—यहाँ कवि प्रौढोक्तिसिद्ध उत्प्रेक्षा अलकार से वस्तु ध्वनि है। वाणी का अतिशय माधुर्य ही व्यंग्य है।

सुनै······माती—यहाँ कारणातिशयोक्ति अलकार से वस्तु ध्वनि है। वाणी की अतिशय प्रेमोत्पादन शक्ति व्यग्य है।

बिरवा—···सरीरू—यहाँ स्वत.सम्भवी उपमा अलकार से वस्तु व्यंग्य है। वचनो मे महती जीवनदायिनी शक्ति ही व्यग्य है।

बोल······भरहीं—यहाँ उत्प्रेक्षा और उपमा का सकर है।

भूखै······अहारू—यहाँ पर स्वत सभवी वस्तु वर्णन से वस्तु व्यंग्य है। वचनों की अतिशय तृप्तिकारिणी शक्ति ही व्यग्य है।

उन्ह बैनन···आसा—यहाँ काकुवैशिष्ट्य व्यग्य है। कवि यह व्यंजित करना चाहता है कि नायिका की वाणी इतनी अधिक मधुर है कि सभी चराचर उस पर मुग्ध रहते है।

मोहहि······बीन बिस्वासा—यहाँ पर भ्रान्तिमान अलकार से वस्तु व्यंजना है। वचनो की अतिशय मधुरिमा ही व्यंग्य है।

कंठ·· ···काह—यहाँ पर स्वत सम्भवी वस्तु वर्णन से प्रतीप अलकार व्यंग्य है।

इन्द्र······चाह—यहाँ पर स्वत.सम्भवी वस्तु वर्णन से वस्तुवर्णन है। नायिका की ईश्वररूपता ही व्यंग्य है।

स्रवन सुनहु जो कुन्दन सीपी। पहिरे कुण्डल सिहल दीपी॥
चाँद सुरज दुहु दिसि चमकाही। नखतन्ह भरे निरखि नही जाही॥
खिन खिन करहि बीजु अस काँपा। अवर मेघ मँह रहहि न झाँपा॥
सूक सनीचर दुहु दिसि मते। होहि निनार न स्रवनन हुते॥
काँपत रहै बोल जो बैना। स्रवनन जौ लागहिं फिर नैना॥
जस जस बात सखिन्ह सो सुना। दूहु दिसि करहि शीश वे धुना॥
खूट दुवो अस दमकहि खूँटी। जनहु परै कचपचिया टूटी॥
वेद पुरान ग्रन्थ जत श्रवन सुनत सिखि लीन्ह।
नाद विनोद राग रस बेधक श्रवन ओहि विधि दीन्ह॥१३॥

[इस अवतरण मे कवि ने नायिका के श्रवणो की तथा उनमे पहने जाने वाले आभूषणों की सुन्दरता का वर्णन किया है।]

उसके श्रवण कुन्दन की सीपी के समान शोभायमान है। उनमे वह सिंहलद्वीपी कुण्डल पहने हुए है। कुण्डल दोनो ओर चाँद और सूरज से शोभित है। उनमे जड़े हुए रत्न नक्षत्रो के समान प्रतीत होते है। जब वे हिलते है तो बिजली-सी कौंध जाती है। मेघ जैसा नीला वस्त्र उन्हे छिपाने मे असमर्थ है। एक कुण्डल मे पीला हीरा जड़ा है और दूसरे मे नीलम लगा हुआ है। हीरा और नीलम दोनो शुक्र और शनि जैसे प्रतीत होते है। कानो से लगे हुए ऐसा प्रतीत होता है मानो मत्रणा कर रहे हो और

कानो से अलग नही होना चाहते हैं। जब वह बोलती है तो वे काँपते रहते है कि कही नेत्र फिर कानो के समीप न आ जाएँ। जैसे-जैसे वह सखियो से बात करती है तो वे दोनो ओर सिर धुनने लगते है। दोनो ओर खूंट नाम के आभूषण नग जडे होने के कारण ऐसे प्रतीत होते हैं कि मानो कचपचिया तारे टूट कर आ गए हों।

वेद, पुराणादि जितने भी ग्रन्थ है उन सबका ज्ञान उसने कानों से सीख कर प्राप्त कर लिया है। मधुर रागो एव रागिनियो के रस के पान की क्षमता भी ईश्वर ने उसके कानो को दी है।

टिप्पणी—स्रवन······सीपी—यहाँ पर कवि ने कानों की उपमा कुन्दन सोने की सीपी से दी है। यह उपमा वाचक धर्म लुप्ता है।

कुण्डल······सिहलदीपी—कुण्डल एक कानो का आभूषण होता है। देश भेद से यह अनेक प्रकार का होता है। एक भेद सिंहलद्वीप के आधार पर किया गया है। इस कोटि के कुण्डलो की रूपाकृति नाथपथियो के कुण्डल से मिलती-जुलती है। हठयोगी साधको ने अपने कुण्डलो मे सूर्य-चन्द्र रखने की चर्चा की है। एक नाथपथी गीत मे स्पष्ट लिखा है—

'चाँद सूरज राखे छेदइ कानेर कुण्डल'

—(देखिए गोपीचन्देर ज्ञान)

एक दूसरे गीत मे यही बात कही गई है—

यम राजा हय यार निजेर चाकर ।
चन्द सुर दुइ जन कुण्डल कानेर ॥

ये दोनो गीत डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने अपने पदमावत मे उद्धृत किए है। दूसरी व्यजना यह भी है कि जब वह बोलती है तो उसकी वाणी की मधुरता सुन कर वे डरने लगते हैं कि कही उन्हे श्रवण से अलग न होना पड़े जो उसके स्वर्ग सुख से वचित हो जायँ।

चाँद······जाही—चाँद और सूर्य का एक साथ उदय होना यह असम्भव घटना घटित हो गई है अत. यहाँ असम्भव अलंकार है। सूर्य के उदय होते नक्षत्रो का चमकना यहाँ पर विभावना अलंकार है। अतः दोनो का संकर माना जायेगा।

खिन खिन······काँपा—यहाँ वस्तु प्रति वस्तु निर्दिष्ट उपमा अलंकार है।

अवर······झाँपा—यहाँ पर वाचक धर्म लुप्ता उपमा है। इस स्थिति मे अर्थ होगा—उन पर मेघ जैसा वस्त्र ढका है। इसका रूपकपरक अर्थ भी ले सकते है। उस स्थिति मे अर्थ होगा 'वे वस्त्ररूपी मेघ मे छिपे नही रहते'। किन्तु प्रथम अर्थ ही उपयुक्त प्रतीत होता है।

सूक सनीचर······मते—यह पक्ति जायसी के सूक्ष्म ज्योतिष ज्ञान की सूचिका है। शनि श्रवण नक्षत्र मे (मकर राशि मे) १३ महीने रहता है। इस बीच से शुक्र कई बार श्रवण नक्षत्र मे आता है। उस समय दोनो मिल जाते है। दोनो ही मित्र ग्रह

है। अतः जायसी ने उनके मंत्रणा करने की उत्प्रेक्षा की है। शनि का रंग श्याम होता है, शुक्र का रग पीला होता है। कुण्डलो मे नीलम और पुखराज जडे हुए थे। कवि ने उनको शनि और शुक्र का प्रतीक माना है। उनकी परस्पर मिलकर मत्रणा करने की उत्प्रेक्षा की गई है। ध्यान रहे हीरो के लिए सूर्य चन्द्रमा के उपमान पहले ही प्रयुक्त किए जा चुके है। हीरे कई रंग के होते है। सबसे उत्कृष्ट कोटि का हीरा श्वेत वर्ण का होता है और उससे गिरता हुआ कुछ पिंगल वर्ण का होता है। दोनो कुण्डलो मे सम्भवतः भिन्न-भिन्न वर्ण के हीरे जड़े थे। यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार से वस्तु व्यंजना है।

होहि······हुते—यहाँ श्रवनन मे शब्द शक्ति उद्‌भव वस्तु ध्वनि है। साथ ही रूपकातिशयोक्ति से उपमा व्यग्य है। जिस प्रकार श्रवण नक्षत्र से शुक्र और शनि नक्षत्र नही हटना चाहते उसी प्रकार नायिका के श्रवणो से नीलम और पुखराज नही हटना चाहते।

काँपत रहै बोल जो वैना—यहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। जब पदमावती बोलती है शुक्र और शनि डरने लगते है कि कही दोनो श्रवण से हटने की आज्ञा न दे दे। यहाँ पर पदमावती की विराट्‌रूपता व्यग्य है। यहाँ पर एक दूसरी व्यजना यह भी है कि कही फिर से विवाह होने की स्थिति घटित न हो जाय। वे कम्पायमान इसलिए भी है कि पहली बार विवाह होने पर गन्धर्वसेन और रतनसेन का इतना विवाद हुआ था अबकी न मालूम क्या होगा। इस अवस्था मे स्वतःसम्भवी वस्तु से वस्तु व्यग्य है।

यहाँ पर कवि ने एक साथ इतनी व्यंजनाएँ की है कि उनका नाम निर्देश करना कठिन हो गया है। इतना अधिक ध्वनिगत सौन्दर्य बहुत कम कवियों मे प्राप्त होता है। जायसी के इसी वैशिष्ट्य ने उन्हे हिन्दी मे इतना प्रतिष्ठित स्थान दिया है।

स्रवनन······नैना—यहाँ पर स्वत सम्भवी वस्तु से वस्तु ध्वनि है। कवि यह व्यंजित करना चाहता है कि यदि नायिका ने फिर से कटाक्ष करना प्रारम्भ किया और नेत्रो का विस्तार हुआ तो फिर न मालूम उसके रूप का शिकार कौन बने।

शैशव जब यौवन से मिलता है तो नायिका मुग्धा होती है। उस समय नेत्रों का विस्तार होने लगता। विद्यापति ने लिखा है—

सैसव जोवन दोऊँ मिल भेल।
स्रवनक पथ दोहु लोचन लेल॥

मुग्धा नायिका रूप का भण्डार होती है, उस पर सारा ससार आसक्त होकर उसे प्राप्त करना चाहता है। अतः नेत्र इसलिए भी डरते है कि कही नायिका फिर से नवयौवन और मुग्धत्व भाव को न प्राप्त हो जाय जो उसके पुनर्विवाह की स्थिति बन जाय और शुक्र शनि मित्रो को श्रवण से हटना पड़े क्योकि ज्योतिष के अनुसार जब तक श्रवण नक्षत्र मे शुक्र और शनि रहते हैं तब तक नायिका का विवाह नही हो सकता। एक दूसरी व्यंजना है कि योग की दृष्टि से सूर्य और चन्द्र की

तादात्म्य रूप समाधि की अवस्था है, यदि नायिका के विवाह की स्थिति आ गई जैसा कि ज्योतिष की स्थिति से प्रकट है नायिका सूर्य और चन्द्र की मेलन प्रक्रिया से विरत हो भौतिक भोग-विलास मे लग जायगी जिससे उसका पतन होगा ।

जस जस''''''धुना—यहाँ पर स्वत.सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यजना है। स्वतः-सम्भवी वस्तु है 'ज्यो-ज्यो वह सखियो से उसके यौवनादि की चर्चा सुनती है त्यों-त्यो वे सिर धुनते है।' इस वस्तु रूप तथ्य से दूसरे वस्तु रूप तथ्य की व्यंजना है कि ज्यो-ज्यों उन्हे पदमावती के परिणय की सम्भावना बढती जाती है त्यो-त्यो उनका वह दु ख बढता जाता है कि अब नायिका योग साधना को छोड़कर सम्भोग साधना करेगी। यह तभी सम्भव होगा जब शुक्र और शनि श्रवण नक्षत्र में नही रहेगे अतः उन मित्रो को परस्पर बिछुडने का दु:ख है इसलिए सिर धुन रहे है। यहाँ हेतूत्प्रेक्षा भी व्यग्य हुई। अत. स्वत सम्भवी वस्तु से अलंकार भी व्यग्य है ।

इस पक्ति से जायसी के ज्योतिष ज्ञान का पता चलता है। ज्योतिष के अनुसार जब तक शुक्र और शनि श्रवण नक्षत्र मे रहते है तब विवाह का योग नही पड सकता। यौवनागम आने पर नायिका के विवाह की सम्भावना बढती है।

खूँट''''''खूँटी—इसका अर्थ है दोनो ओर खूटी नामक आभूषण ऐसे शोभायमान है मानो''''''इत्यादि यहाँ पर खूँट का अर्थ 'ओर या तरफ' है।

डा० अग्रवाल ने इसका पाठान्तर इस प्रकार दिया है—

खूट दुहूँ धुव तरई खूँटी ।
जानहुँ परहि कचपची टूटी ।।

उन्होने इसका अर्थ किया है कि दोनो कानो का खूट नामक आभूषण मानो दो ध्रुव है, उनसे लटकती हुई खूँटी तरई के समान है। टिप्पणी मे खूट का अर्थ कान का गोल गहना दिया है। खूँटी का अर्थ खूँट से छोटा आभूषण किया है। मुझे आचार्य शुक्ल का पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है क्योकि खूट का शब्द आज भी 'कोनो' के अर्थ मे प्रयुक्त होता है।

जनहु कचपचिया टूटी—यहाँ पर उक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है।

वेद''''''लीन्ह—यहाँ पर चपलातिशयोक्ति अलंकार है।

कँवल कपोल ओहि अस छाजै । और न काहु देउ अस साजै ।।
पहुप पंक रस अमिय सँवारे । सुरँग नारँग रतनारे ।।
पुनि कपोल बाएँ तिल परा । सो तिल विरह चिनग कै करा ।।
जो तिल देख जाइ जरि सोई । बाएँ दिष्टि काहू जिनि होई ।।
जानहुँ भँवर पदुम पर टूटा । जीउ दीन्ह औ दिए न छूटा ।।
देखत तिल नैनन गा गाडी । और न सूझै सो तिल छाँडी ।।
तेहि पर अलक मनि-जरी डोला । छुवै सो नागिनि सुरँग कपोला ।।

रच्छा करै मयूर वह, नाँघि न हिय परलोट।
गहि रे जग की छुइ सकै दुइ पहार के ओट ॥१४॥

[प्रस्तुत अवतरण मे कवि ने नायिका के कपोलो के सौन्दर्य का वर्णन किया है ।]

उसके कँवल के समान कपोल ऐसे अधिक शोभायमान है जैसे भगवान् किसी दूसरे को सुशोभित नही करता । वे पुष्पो के पराग और अमृत के रस से निर्मित है । वे सुन्दर गेद और नारंगी के समान गोल और अरुण है । उसके बाएँ कपोल पर तिल बना हुआ है । वह तिल तो वास्तव मे विरहाग्नि की चिनगी का कण है । जो उस तिल को देखता है वह जल जाता है । ईश्वर न करे कि किसी के वाम पक्ष की ओर जाय । वह तिल नायिका के कपोल पर ऐसा शोभायमान है जैसा कि कँवल पर भौरा शोभायमान होता है । वह उसी प्रकार कपोल पर गड कर रह गया है जैसे भौरा प्राण तो दे देता है किन्तु कँवल को नही छोडता है । जिसकी दृष्टि उस कपोल पर पड़ी, वही गड़कर रह गई । फिर उस दृष्टि को उस तिल को छोड़ कर कुछ नही दिखाई पड़ता । कपोल पर झूलती हुई तिल के मन को जलाने वाली अलक डोलायमान है । वह अलक रूपी नागिनी सुन्दर कपोलो का स्पर्श कर रही है ।

मयूर रूपी ग्रीवा बीच मे आकर उस नागिनी से उसकी रक्षा करती है, नही तो वह नायिका के हृदय पर लोटने लगती । संसार में भला ऐसा कौन है जो उस नागिनी के हृदय को छू सके । इतने पर भी कुच रूपी पहाड़ आड़ किए हुए है जिससे वह (हृदय) पूर्ण सुरक्षित है ।

टिप्पणी—कँवल कपोल······साजै—यहाँ पर कँवल कपोल मे लुप्त वाचक धर्मा उपमा है । सम्पूर्ण पंक्ति मे अनन्वय अलंकार व्यंग्य है । अत. स्वतःसम्भवी वस्तु से अलकार व्यंग्य है ।

पुहुप···सँवारे—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। कपोल पुष्प के पंक और अमृत से निर्मित हो नही सकते फिर भी कवि ने उनकी कोमलता, सुरभिमयता, सरसता, मधुरता और रजकता आदि की व्यजना के लिए उपर्युक्त बात कही है ।

सुरंग गेद नारँग रतनारे—यहाँ पर वाचक लुप्ता उपमा है ।

सो तिल······करा—यहाँ पर अपह्नुति अलंकार व्यंग्य है ।

जो तिल देखि जाइ जरि सोई—यहाँ पर चौथी विभावना अलंकार है । तिल देखना रूप कारण से जलने रूप कार्य का होना बताया गया है ।

बाएँ दृष्टि काहु जनि होई—यहाँ पर बाएँ में शब्द शक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है । कवि की व्यंजना है कि वाम मार्गी साधना सर्वथा अग्राह्य है ।

जानहु भँवर पदुम पर टूटा—यहाँ पर स्वत. सम्बन्धी अलंकार से वस्तु ध्वनि है । यहाँ पर कवि ने नायिका के तिल की अतिशय स्थिरता व्यंजित की है ।

देखत······छाडी—यहाँ स्वतःसम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंजना है। तिल की अतिशय सुन्दरता ही व्यंग्य है।

मनजरी—यहाँ परिकर अलंकार है क्योकि मनजरी साभिप्राय विशेषण है। यहाँ पर स्वतःसम्भवी अलकार से वस्तु व्यंग्य है। अलको की अतिशय कामोद्दीपनता ही व्यंग्य है।

सो······नागिनि—यहाँ पर सो मे संवृतिवक्रता है और नागिनी मे रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

रच्छा करे मयूर वह—यहाँ पर मयूर मे रूपकातिशयोक्ति है।

रच्छा······लोट—पूरे वाक्य मे हेतूत्प्रेक्षा अलकार है।

दुइ पहार की ओट—रूपकातिशयोक्ति अलकार है।

गीउ मयूर केरि जस ठाढ़ी। कुन्दे फेरि कुन्देरे काढ़ी॥
धनि वह गीउ का वरनौ करा। वाक तुरँग जनहु गहिपरा॥
घिरिन परेवा गीउ उठावा। चहै वोल तम चूर सुनावा॥
गीउ सुराही कै अस भई। अमिय पियाला कारन नई॥
पुनि तिहि ठाँव परी तिनि रेखा। तेइ सोइ ठाँव होइ जो देखा॥
सुरुज किरिन हुँत गिउ निरमली। देखे वेगि जाति हिय चली॥
कचन तार सोह गिउ भरा। साजि कँवल तेहि ऊपर धरा॥
नागिनि चढी कँवल पर, चढ़ि कै वैठ कमँठ।
कर पसार जो काल कँह, सो लागै ओहि कँठ॥१५॥

[इस अवतरण मे कवि ने नायिका की ग्रीवा के सौन्दर्य का वर्णन किया है।]

नायिका की ग्रीवा ऐसी सुडौल और तनी हुई है मानो मोर ने अपनी गर्दन तान रखी हो अथवा किसी खरादी ने अपनी खराद पर चढाकर वह ग्रीवा गढी हो। वह ग्रीवा धन्य है, उसकी शोभा का क्या वर्णन करूँ। वह ऐसी तनी हुई है जैसे वांक तुरग की ग्रीवा रास खीचने पर तन जाती है। उसकी ग्रीवा ऐसी तनी हुई है जैसी घिरिन अर्थात् गिरहवाज कवूतर अपनी गर्दन तानता है या मुर्गा वोलते समय अपनी गर्दन खडी कर लेता है। वह ग्रीवा सुराही जैसी है जो अधर रूपी प्यालों से अमृतपान कराने के लिए ही झुकती है अथवा जो पतिरूप प्याले मे अमृत भरने के लिए ही झुकती है। उस ग्रीवा मे तीन रेखाओ के चिन्ह वने है। उन्हें जो देखता है वह देखता ही रह जाता है। वह ग्रीवा सूर्य की किरण से भी अधिक निर्मल है। वह दर्शन मात्र से हृदय मे समा जाती है। गर्दन कँचन तार के समान शोभायमान है। उस पर मुख ऐसा शोभायमान है मानो कँचन तार पर कँवल सजाकर रखा गया हो।

वेणी रूपी नागिन मुख कमल पर चढी है, वह चढ़ कर पीठ रूपी कछुए पर

बैठ गई है। जो उस काल रूपी वेणी को पकडेगा उसी के वह गले लगेगी।

नीउ······जस ठाडी—यहाँ पर बिम्व प्रतिविम्वोपमा है।

कुँदै······काढी—यहां अनुक्तविपया प्रतीयमाना उत्प्रेक्षा है।

धनि······करा—यहाँ पर काकुवैशिष्ट्य व्यग्य है। ग्रीवा की अनिर्वचनीयता ही यहाँ व्यंग्य है।

वाँक······परा—यहाँ पर वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है।

धिरिन······उठावा—यहाँ पर अनुक्तविषया प्रतीयमाना उत्प्रेक्षा है।

चहै······सुनावा—यहाँ पर भी अनुक्तविषया प्रतीयमाना उत्प्रेक्षा है।

गीउ······नई—यहाँ रूपक उपमा और उत्प्रेक्षा की संसृष्टि है।

तेइ······देखा—यहाँ पर विपादन अलंकार व्यंग्य है। तिल को लोग देखते हैं रूप लोभ से किन्तु परिणाम विपादनात्मक होता है। दृष्टि वही फँसकर रह जाती है, इसीलिए विपादन अलकार। इस विपादन अलकार से यहाँ वस्तु व्यग्य है। कवि ने यहाँ पर तिल की अतिशय मोहकता व्यजित की है।

सुरुज······चली—यहाँ पर प्रतीप अलंकार है।

सुरुज······चली—व्यतिरेक है।

कँचन तार······धरा—यहाँ पर वाचक धर्मा लुप्तोपमा अलकार है।

साजि कँवल······धरा—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलकार है।

नागिनि······कँठ—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलकार से वस्तु व्यंग्य है। कवि की व्यजना है कि नायिका को प्राप्त करने का अधिकारी कोई अलौकिक शौर्य सम्पन्न एकनिष्ठ प्रेमी महापुरुष ही हो सकता है जिसे मृत्यु से कोई भय न लगता हो।

कनक दंड भुज वनी कलाई। डाँडी कँवल फेरि जनु लाई॥
चंदन खाँभहि भुजा सँवारी। जानहु मेलि कँवल पौनारी॥
तेहि डाडी सँग कँवल हथोरी। एक कँवल के दूनौ जोरी॥
सहजहि जानौ मेहदी रची। मुकुताहल लीन्हे जनु घुँघची॥
कर पल्लव जो हथोरिन साथा। वै सब रकत भरे तेहि हाथा॥
देखत हिया काढि जनु लेई। हिया काढि के जानि न देई॥
कनक अँगूठी और नग जरी। वह हत्यारिन नखतन्ह भरी॥
जैसी भुजा कलाई तेहि विधि जाय न भाखि।
कँकन हाथ होई जहँ, तह दरपन का साखि॥१६॥

[इस अवतरण मे कवि ने नायिका के हाथो के सौन्दर्य का वर्णन किया है।]

नायिका की भुजाएँ स्वर्णदण्ड जैसी है। उन भुजाओ मे कलाइयाँ ऐसी शोभायमान है मानो कँवल की डडी उलट कर लगाई गई हो। धड मे जुड़ी हुई भुजाएँ ऐसी शोभायमान है मानो चंदन के खम्भे मे कँवल की नाल लगा दी गई

हो। उस डंडी के साथ हथेली रूपी कँवल भी लगा है। दो हथेलियाँ एक कमल के दो भाग जैसी जान पडती है। उनकी स्वाभाविक लाली ऐसी है मानो मेहदी रची हो। वह जब हाथ मे मोती लेती है तो वे घुँघची प्रतीत होते है। हथेलियो से युक्त कर पल्लव अर्थात् उँगलियो से युक्त हाथ वे सब रक्तरंजित दिखाई पड़ते हैं। इन हाथों से (वह) देखने मात्र से हृदय निकाल लेती है। हृदय निकाल कर फिर लौटाती नही है। उसके हाथ मे सोने की नग जडी हुई अँगूठियाँ है। जिनके कारण वह नग रूपी नक्षत्रों से युक्त हत्यारिन-सी लगती है।

भुजा और कलाई कितनी अधिक सुन्दर है इसका वर्णन नही किया जा सकता। जिसके हाथ मे कंगन हो उसे फिर शीशे की साक्षी की आवश्यकता नही होती।

टिप्पणी—कनक दण्ड······लाई—यहाँ पर उक्तविपया वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है।

चँदन······पौनारी—यहाँ पर भी उक्त विपया वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है।

सहजहि······रची—यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलकार से वस्तु व्यंग्य है। कवि नायिका के यौवन की अभोग्यता व्यंजित करना चाहता है।

मुकुताहल······धुँधुची—यहाँ पर उत्प्रेक्षा और तद्‌गुण अलंकार का संकर है।

देखत······लेई—यहाँ पर उत्प्रेक्षा और विभावना का सकर है।

वह······भरी—कवि ने यहाँ पर काव्यलिंग अलंकार से वस्तु व्यंग्य की योजना की है। हृदय निकालने के कारण ही नायिका को कवि ने हत्यारिन कहा है। अतः काव्यलिग अलकार है। कवि ने काव्यलिंग अलकार से नायिका के हाथों के रूप की अतिशय मोहकता रूप वस्तु व्यजित की है।

वह······भरी—यहाँ पर विरोधाभास है। हत्यारिन को सब प्रकार के आभूपणो से विहीन होना चाहिए किन्तु वह नग रूप नक्षत्रों से युक्त आभूपण पहने है।

कँगन······साखि—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। कवि ने व्यंजना की है कि भुजा और कलाइयाँ अतिशय सुन्दर है।

हिया थार कुच कनक कचोरा। जानहुँ दुवौ सिरी फल जोरा॥
एक पाट वे दूनौ राजा। साम छत्र दूनहु सिर छाजा॥
जानहुँ दोउ लट्टू एक साथा। जग भा लट्टू चढै नहि हाथा॥
पातर पेट आहि जनु पूरी। पान अधार फूल अस फूरी॥
रोमावलि ऊपर लटु घूमा। जानहु दोउ साम और रूमा॥
अलक भुअंगिनि तिहि पर लोटा। हिय धर एक खेल दुई गोरा॥
वान पगार उठे कुच दोउ। नाँधि सदन उन पाव न कोऊ॥

कैसेहु नवहि न नाए जोवन गरव उठान ।
जो पहले कर लावै सो पाछे रति मान ॥१७॥

[यहाँ पर कवि ने नायिका के कुचो का वर्णन किया है।]

नायिका का हृदय थाल के समान, दोनो कुच उसमे रखे हुए दो सोने के कटोरे के समान प्रतीत होते है। अथवा वे दोनो श्रीफल (बेल) युगल हो (या यों कह सकते है कि) एक ही सिंहासन पर दो राजा बैठे हो और दोनो के सिर पर श्याम क्षत्र शोभायमान है। अथवा ऐसा प्रतीत होता था मानो एक साथ लट्टू रखे हो। संसार उस पर लट्टू है किन्तु वह किसी के हाथ नही आती। पेट पूड़ी के समान पतला है। वह पान के आधार पर जीवित रहती है। वह फूल के समान प्रफुल्लित रहती है। रोमावली के ऊपर झूमती हुई लट के दोनो ओर वे दोनो कुच ऐसे शोभायमान है मानो कि श्याम और रोम देशो का जोडा हो। अलक रूपी नागिनी हृदय पर लोटती हुई ऐसी लगती है कि मानो अलक रूपी एक दीवाल ने एक हृदयरूपी घर को दो कुच रूपी टुकड़ो मे विभाजित कर दिया हो। भुजा रूपी परकोटे मे दोनो कुच दो वाणों के समान उठे हुए है। उन वाणो को कोई लाँघ नही सकता।

वे कुच यौवन के अभिमान से उठे हुए है कि किसी प्रकार भी झुकाए नही झुकते हैं। जो पहले इनका मर्दन करेगा वाद मे उसी को रति सुख प्राप्त होगा।

टिप्पणी—हिया थार—यहाँ पर वाचक धर्म लुप्ता उपमा है।

कुच कनक कचोरा—यहाँ पर वाचक धर्म लुप्ता उपमा है।

साजे जनहु सिरीफल जोरा—यहाँ पर अनुक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा है।

एक पाट······राजा—यहाँ पर भी अनुक्त विषया वस्तूत्प्रेक्षा अलकार, श्याम छत्र मे रूपकातिशयोक्ति है।

जानो······हाथा—यहाँ पर लट्टू मे यमक है।

रोमावलि······रूमा—यहाँ पर साम और रोम देशों के उपमान क्लिष्ट कल्पनामूलक है। साम देश सीरिया के लिए प्रयुक्त होता है। रूमा से डा० अग्रवाल ने कुस्तुन्तुनिया का मुल्क अर्थ लिया है। उन्होने यह भी लिखा है उनकी सीमाएँ एक दूसरे से मिली हुई है।

रोमावली के सौन्दर्य का वर्णन कवियो ने अनेक प्रकार से किया है। स्वयं जायसी ने लिखा है—

साम भुवंगिनि रोमावली नाभिहिं निकस कँवल कह चली।
आइ दुवौ नारंग विच भई देखि मयूर ठमक रह गई ॥

—नखशिख वर्णन खण्ड से

इसी भाव को विद्यापति ने और भी सुन्दर ढग से लिखा है—

नाभि विवर सई रोम लतावलि भुजग निसास पियासा।
नासा खग पति देख भरम भई कुच कन्दर गिरिवासा ॥

यहाँ भी कवि ने दोनो कुचों के बीच उत्पन्न होने वाली रोमावली के सौन्दर्य का वर्णन किया है। नायिका के कुच रूपी लट्टू उसके वक्षःस्थल पर शोभायमान हैं। उस पर कवि ने साम और रूम देशों की उत्प्रेक्षाएँ की हैं।

अलक······गोटा—यह पंक्ति कुछ क्लिष्ट कल्पनामूलक है। उस नायिका के हृदय के मध्य में उसकी वेणी लटक गई है उस पर कवि उत्प्रेक्षा कर रहा है। इस उत्प्रेक्षा का रूप स्पष्ट नही है। मोटा-सा भाव यह प्रतीत होता है कि एक खाने या कोठे में दो गोटियां रखी हुई हैं किन्तु यह अर्थ स्वीकार करने पर अलक रूपी नागिन के पडे होने वाली बात का औचित्य नहीं प्रतीत होता है। इसलिए हमने अर्थौचित्य को ध्यान मे रखते हुए यह अर्थ किया है कि अलक नागिन ने एक ही घर के दो भाग कर दिए है जिनमे दो कुच रूपी व्यक्ति रहते हैं किन्तु अर्थ यह भी सन्तोपप्रद नहीं है। इस औचित्य की रक्षा के लिए हमें डा० अग्रवाल का पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। वह है—

अलक भुअंगिनि तेहि पर लोटा, हेंगुर एक खेल दुई गोटा।

अर्थात् अलक रूपी नागिन हृदय पर लोटती हुई ऐसी लगती है मानो चौगान के खेल में एक डंडे से दो गेंद खेले जा रहे हैं।

डा० अग्रवाल के मतानुसार इस पंक्ति में चौगान के खेल की कल्पना है जिसमें कई घुडसवार खिलाड़ी मैदान मे गेंद डालकर मुड़ी हुई छड़ी से खेलते हैं। हेंगुर का अर्थ हृदय रूपी डडा ज्ञात होता है। कला भवन की प्रति में डींगुर पाठ है। डंडे के अर्थ मे अवधी का यह चालू शब्द है। उन्होंने फिर आगे लिखा है, "इससे ज्ञात होता है कि हेंगुर शब्द १६वी-१७वीं सदी में प्रयुक्त होता था और उसके दो अर्थ थे चौगान या चौगान का डंडा"। मेरी समझ में हेंगुर का अर्थ चौगान खेलने का डंडा लेना ही उपयुक्त है। अलक रूपी नागिन ही डंडे के समान है।

बान······कोउ—कवि ने दो कुचों की चारदीवारी पर लगे हुए वाण या वाण सदृश सीकचों के रूप में उत्प्रेक्षा की। यहाँ कवि प्रौढ़ोक्ति निबद्ध अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। कवि यह व्यंजित करना चाहता है कि यदि कोई उन कुचों को प्राप्त कर सकेगा वही उस नायिका से भोग कर सकेगा। यह बात दोहे की अन्तिम पंक्ति में कह भी दी है।

डा० अग्रवाल ने इस पंक्ति में पाठान्तर दिया है—

बांह पगार उठे कुच दोऊ। नाग सरन्ह उन नाव न कोऊ।

अर्थात् भुजा रूपी परकोटे में दो कुच दो बुर्जी के समान उठे हैं। हाथी भी उनकी शरण लेते है। उन्हें कोई नवा नहीं सकता।

हमारी समझ मे इसका पाठ इस प्रकार रहा होगा—

'बान पराग उठे कुच दोऊ, नाग सरन उन्ह पाव न कोऊ।'

उस दशा में अर्थ होगा दोनों कुच चहारदीवारी के बुर्ज या बाण से प्रतीत होते हैं।

उन कूच रूपी बुर्जो की शरण हाथी भी लेते है, हाथी के गण्डस्थल बुर्ज के समान होते हैं किन्तु वे कुच उन गजो के गण्डस्थल से भी कठोर और अपराजेय है अतः हाथी उनके आगे पराजित हो जाते हैं। व्यंजना है कि कुच हाथियों के गण्डस्थल से भी अधिक कठोर हैं। हाथियो पर अंकुश काम भी करता है यह सर्वथा निरकुश है।

कैसेहु······मान—यहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा अलंकार है।

जो पहले······रतिमान—इस पक्ति से स्पष्ट प्रकट है कि जायसी कामशास्त्र के पण्डित थे। कामोद्दीपन के लिए कुच मर्दन आवश्यक होता है। कुच मर्दन से ही स्त्रियो मे काम जगता है। काम जगने पर ही वे रतिक्रिया के लिए पुरुष को स्वीकार करती हैं।

भृंग लंक जनु माँझन लागा। दुई खण्ड मलिन माँझ जनु तागा॥
जब फिरि चली देख मैं पाछे। अछरी इन्द्र लोक जनु काछे॥
जबहि चली मन भा पछिताऊ। अबहू दिस्टि लागि ओहि ठाऊँ॥
अछरी लाज छपी गति ओही। भई अलोप, न परगट होंही॥
हँस लजाइ मान सर खेले। हस्ती लाज धूर सिर मेले॥
जगन वहुत तिय देखी महुँ। उदय अस्त अस नारि न कहूँ॥
महि मंडल तो ऐसि न कोई। ब्रह्म मण्डल जो होइ तो होई॥
बरनेउ नारि, जहाँ लगि दृष्टि झरोखे आइ।
और जो अही अदिष्ट धनि, सो किछु बरन न जाइ॥१८॥

[यहाँ पर कवि ने नायिका की कटि के सौन्दर्य के साथ उलट कर जाती हुई अलौकिक रूप की झाँकी प्रस्तुत की है।]

भृङ्गी की कमर के समान उसकी क्षीण कटि ऐसी है मानो मध्य का भाग उसमें है ही नही या वह कटि कमलिनी के दो खण्डो को बीच मे जोड़ने वाला तन्तु है। जब वह उलटकर वापस चली तो पीछे वह ऐसी सुन्दरी लगी मानो इन्द्र लोक की अप्सरा है। जव चली तो मेरे मन मे पश्चात्ताप हुआ, अब भी दृष्टि उसकी उसी छवि मे अटकी हुई है। उसकी गति से अप्सराएँ लज्जित हो गईं। वे ऐसी छिपी कि फिर प्रत्यक्ष ही नही हुईं। उसकी गति से लज्जित होकर मानसरोवर के पास चली गईं। हाथी उसकी गति से लज्जित होकर अपने सिर पर धूल डालता है। संसार मे मैंने बहुत-सी स्त्रियाँ देखी है किन्तु आदि से अन्त तक मैने ऐसी रूपवती स्त्री नही देखी। पृथ्वी पर तो कोई एसी सुन्दरी है नही, यदि ब्रह्मलोक मे कोई हो तो हो।

मैंने उस नारी के रूप के उस अंश का वर्णन किया है जितना झरोखे से दिखाई देता है। जो भाग दिखाई नही पड़ा उसका वर्णन नही किया है।

टिप्पणी—भृंगलंक······लागा—यहाँ पर भृंगलंक मे धर्म उपमान वाचक लुप्ता उपमा है। यहाँ पर लंक का उपमान भृंग की लंक हो सकती है न कि

केवल भृंग की अतः उपमान समान धर्म एवं उपमावाचक धर्म दोनो का लोप होने मे धर्म उपमान वाचक लुप्ता उपमा मानी जाएगी।

जनु माँझ न लगा मे कवि ने प्रौढ़ोक्ति निवद्ध उत्प्रेक्षा अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। कवि की अतिशय क्षीणता ही व्यंग्य है।

दुई खण्ड नलिन माँझ जनु तागा—यहाँ पर उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकारो का संकर है। इन अलकारो मे वस्तु व्यग्य है। कटि की अतिशय क्षीणता ही व्यंग्य है। इस प्रकार शास्त्रीय दृष्टि से यहाँ कवि प्रौढोक्ति निवद्ध अलकार से वस्तु व्यंग्य है।

अछरी······काछे—यहां पर वस्तूत्प्रेक्षा अलकार है। मुद्रा चित्रण का यह पक्ति सुन्दर उदाहरण है।

जबहि······पछिताऊ—यहाँ पर पछिताऊ शब्द उद्विग्नता एवं व्याकुलता के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है जिससे वैचित्र्य आ गया है अतः क्रिया वैचित्र्य वक्रता है।

अछरी······होही—यहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा अलंकार है।

हँस······मेले—इन सब मे हेतूत्प्रेक्षा अलंकार है।

उदय अस्त—ये दोनो शब्द आदि और अन्त के पर्याय बनकर आए हैं। यहाँ पर उपचार वक्रता है। उदय और अस्त सूर्य और चाँद जैसे दिव्य पदार्थों का धर्म है किन्तु उसका आरोप जीवन पर करके उपचार वक्रता को जन्म दिया गया है।

उदय अस्त मे अर्थान्तिर सक्रमित वाच्य ध्वनि भी है। इसका व्यंग्यार्थ है नायिका के सौन्दर्य की अलौकिकता। उपादान लक्षणा से पहले तो उदय अस्त का अर्थ है सम्पूर्ण जीवन।

वरनेऊ······जाई—यहाँ पर स्वतःसम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंजना है। कवि ने यह व्यजित किया है कि नायिका के रूप के भौतिक पक्ष की थोड़ी-सी झाँकी दिखाई गई है। उसके रूप की जो अलौकिकता है वह सर्वथा अनिर्वचनीय है।

का धनि कहौ जैसि सुकुमारा। फूस के छुए होय वेकरारा॥
पंखुरी काढहि फूलन सेंती। सोई डासहि सौर सुपेती॥
फूल समूचै रहै जो पावा। व्याकुल होय नींद नही आवा॥
सहै न खीर खाँड औ घीऊ। पान-अधर रहै तन जीऊ॥
नस पानन्ह के काढहि हेरी। अधर न गडै फाँस होई केरी॥
मकरि क तार तेहि कर चीरू। सो पहिरै छिरि जाय सरीरू॥
पलंग पावक आछै पाटा। नेत विछाव चलै जो वाटा॥
घालि नैन ओहिराखिअ, फल नहि कीजिय ओट।
पेमक लुबुधा पाव ओहि, काह सो वड़ का छोट॥१५॥

[इस अवतरण मे कवि ने नायिका की सौकुमार्यता का अतिशय वर्णन किया है।]

वह नायिका कितनी सुकुमार है इसका वर्णन कैसे करूँ। वह पुष्प के स्पर्श-मात्र से भी व्याकुल हो जाती है। फूलो की पखुड़ी निकालकर उसकी शय्या पर चादर बनाई जाती है। यदि कोई पुष्प पूरा रह जाता है वह उससे ऐसी व्याकुल हो जाती है कि नीद नही आती। दूध, चीनी और घी का भोजन भी उसे सह्य नही है। उसके शरीर मे प्राण पान के सहारे ही वने रहते है। किन्तु पान खिलाने से पहले उनकी नसे निकाल दी जाती है कि कही उनकी फॉस मुँह मे गड न जाय। उसका वस्त्र मकरी के तारो जैसा महीन होता है किन्तु उसके पहिनने से भी शरीर छिल जाता है। उसके पैर या तो पलग पर रहते हैं या पाद पीठ पर रहते है। जव वह मार्ग मे चलती है तो नेत नामक रेशमी वस्त्र बिछा दिया जाता है।

वह जैसे नेत्रो मे रखने योग्य है। उसे पलभर भी आँखो की ओट नही किया जा सकता है। उसको वही प्राप्त कर सकेगा जो प्रेम का साधक है चाहे वह छोटा हो या वड़ा।

टिप्पणी—काधनि······सुकुमारा—यहाँ पर 'का' मे काकुवैशिष्ट्य व्यंग्य है। कवि यह व्यंजित करना चाहता है कि नायिका अत्यधिक सुकुमार है। 'ऐस' में अर्थान्तर सक्रमित वाच्य ध्वनि है।

फूस······बेकरारा—यहाँ पर भी अतिशयोक्ति अलकार से वस्तु व्यंग्य है। सौकुमार्य की अतिशयता ही यहाँ व्यंग्य है।

फूल······आवा—यहाँ पर भी कवि प्रौढोक्तिसिद्ध वस्तु से वस्तु व्यग्य है।

सहै······जीऊ—यहाँ पर स्वत.सम्भवी वस्तु से अतिशयोक्ति अलकार व्यंग्य है।

मकर······सरीरू—यहाँ असम्वन्धातिशयोक्ति अलकार से वस्तु व्यंग्य है। वस्त्र और शरीर मे सम्वन्ध है किन्तु कवि ने उसमे असम्वन्ध बता दिया है जिससे अतिशय सौकुमार्य की व्यजना हो गई है।

पलंग······बारा—यहाँ पर स्वत.सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंग्य है। नायिका का अतिशय सौकुमार्य ही यहाँ वस्तुरूप व्यग्य है।

घालि नै······ओट—यहाँ स्वत.सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यग्य है। कवि की व्यजना है कि ऐसी सुकुमार सुन्दरी की वड़ी ही सुरक्षा करनी चाहिए ताकि किसी अनधिकारी के हाथ न पड़ जाय।

प्रेम ······छोट—यहाँ पर जायसी ने प्रेममूलक साम्यवाद की व्यंजना की है।

जौ राघव धनि बरनि सुनाई। सुना साह गई मुरछा आई॥
जनु मूरति वह परगट भई। दरस देखाई माहि छपि गई॥
जो मन्दिर पदमिनि लेखी। सुना जो कँवल कुमुद अस देखी॥
होय मालति धनि चित्त पईठी। और पुहुप कोउ आव न दीठी॥
मन होइ भँवर भएउ वैरागा। कँवल छाँड़ चित और न लागा॥

चाँद के रँग सुरुज जस राता । और नखत सो पूछ न वाता ॥
तब कह अलाउदी जग सूरू । लेउँ नारि चितउर कै चूरू ॥
जो वह पदमिनि मानसर अलि न मलिन होइ जात ।
चितउर महँ जो पदमिनि फेरि उहै कहु बात ॥२०॥

[इस अवतरण मे राघवचेतन द्वारा वर्णित पदमावती के अलौकिक रूप का जो प्रभाव अलाउद्दीन पर पडा है उसका वर्णन किया है ।]

राघवचेतन ने उस सुन्दरी के रूप का जो वर्णन किया उसे सुनकर वादशाह को मूर्च्छा आ गई । ऐसा लगा कि उसके सामने एक मूर्ति-सी प्रकट हुई और दर्शन दिखाकर छिप गई । अपने राजमदिर मे जो पद्मिनी नारियाँ है वे उसके सामने कुमुदिनी के समान है । पदमावती मालती का पुष्प वनकर उसके हृदय मे वैठ गई है जिससे कि कोई पुष्प उसकी दृष्टि मे नही आता । मन भौंरा वनकर सवसे विरक्त हो उसकी खोज मे घूमता है । कँवल को छोडकर चित्त और कही नही लगता था सूर्य जैसे चन्द्रमा की शोभा मे अनुरक्त हो गया था । दूसरी तारिकाओ की तो वात ही पूछना छोड़ दिया था । ससार मे मेरा अलावल अलाउद्दीन नाम तभी सार्थक होगा जव मैं चित्तौड़गढ को चूर-चूर कर उस रमणी को प्राप्त कर लूँगा ।

वह कँवल यदि मानसरोवर मे भी हो तो भी भौंरा वहाँ जाते हुए मलिन नही होता । हे राघव ! चित्तौड़ की जो पद्मिनी है उसी की चर्चा कर ।

टिप्पणी—राघौ जो धनि······आई—यहाँ पर असगति अलकार से वस्तु व्यग्य है । रूप की अलौकिकता अनिर्वचनीय और दिव्यता व्यग्य है ।

जनु······गई—यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलंकार से वस्तु व्यंग्य है । यहाँ पर रूप की दिव्यता ही व्यंग्य है ।

जो······कँवल—डा० अग्रवाल ने जो के स्थान पर सो पाठ दिया है । सो मे संवृतिवक्रता है और कँवल मे रूढ़ि वैचित्र्यवक्रता है । यहाँ पर सो अर्थान्तर सक्रमित वाच्य ध्वनि है । कवि ने रूप की अनिर्वचनीयता और अलौकिकता व्यजित की है । कँवल शब्द शक्ति उद्भव वस्तुध्वनि है । कँवल से पदमावती का अर्थ भी व्यंग्य है । कँवल और कुमुद मे रूपकातिशयोक्ति अलकार है । इस प्रकार वक्रोक्तिमूलक अलकारमूलक और ध्वनिमूलक तीनो सौंदर्य एक साथ संक्रमित है ।

मन होइ······भँवर—यहाँ पर लक्ष्योपमा अलंकार से मन का भँवर होना कहा गया है किन्तु अमूर्त मन मूर्त भँवर नही हो सकता । अतः लक्ष्यार्थ लेना पड़ा । लक्ष्यार्थ से मन और भँवर का समान धर्म आसक्तिभाव लक्षित किया गया है । अत. लक्षणा द्वारा सादृश्य लक्षित किए जाने के कारण यहाँ लक्ष्योपमा अलंकार है ।

कँवल······लागा—यहाँ पर रूढ़िवैचित्र्यवक्रता है । ध्वनि की दृष्टि से यहाँ शब्दशक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है ।

चाँद''''''बाला—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति और उपमा का संकर है। दोनो के संकर से कवि ने वस्तुध्वनि व्यजित की है। वह अन्य रानीरूपी तारिकाओ की ओर नही देखता। यह रूपकातिशयोक्तिजन्य अर्थ है। पदमावती के रूप की अतिशयता ही यहाँ व्यंग्य है।

अलाउद्दीन जग''''''सूरू—यहाँ पर रूढ़ि वैचित्र्यवक्रता है।

ए जगसूर कहो तुम पाहाँ। और पाँच नग चितउर माहा॥
एक हंसि है पेखि अमोला। मोती चुनै पदारथ बोला॥
दूसर नग जो अमृत बसा। सो विस हरै नाग कर डसा॥
तीसर पाहन परस परवाना। लोह छुए होय कँचन-बाना॥
चौथ अहै सादूर अहेरी। जोबन हस्ति धरै सब घेरी॥
पाँचव नग सो तहाँ लागना। राज पंखि पेखा गरजना॥
हरिन रोझ कोइ भागि न बाँचा। देखत उडै सचान हुइ नाचा॥
नग अमोल अस पाँचौ भेट समुद अहि दीन।
इस कन्दर जो न पावा सो सायर धँसि लीन्ह॥२१॥

[इस अवतरण मे पाँच नगो का वर्णन किया गया। ये पाँच नग चित्तौड़गढ़ मे थे। राघव चेतन बादशाह को उनका आकर्षण दिखा रहा है।]

हे विश्वविजयी योद्धा ! मैं तुमसे कहता हूँ कि चित्तौड़ मे और भी पाँच रत्न हैं। एक हँस है जो अनमोल पक्षी है। वह मोती चुनता है। उसकी वाली पदार्थरूप है। दूसरा नग है जिसमे अमृत है जिससे नाग के डसे हुए का विष दूर हो जाता है। तीसरा पारस पत्थर है। लोहा उसका स्पर्श पाते ही सोने मे परिणत हो जाता है। चौथा एक शिकारी शार्दूल है जो वन मे हाथियो को घेर कर पकड़ लेता है। पाँचवाँ नग वहाँ वह एक शिकारी पक्षी है। हिरन और नील गाय कोई उससे बचकर नही भाग सकता। वह बाज की तरह उड़कर झपटता है।

ये पाँचों नग अमूल्य है। ये समुद्र ने उसे दिए थे। उसने समुद्र में धंसकर जिन रत्नो को प्राप्त किया उन्हे सिकन्दर प्राप्त नही कर सका।

टिप्पणी—जगसूर—यहाँ पर सूर शब्द से शब्दश्लेषोपमा अलकार है। अर्थ है, 'ऐ सूर्य के समान दिग्विजयी योद्धा'। जिस प्रकार सूर्य ससार के अन्धकाररूपी शत्रु को पराजित कर अपनी दिग्विजय करता है वैसे ही आपने अपने शौर्य से शत्रुओं को परास्त कर दिग्विजय की है।

कवि ने एक व्यंजना भी की है, वह है कि आप तो दिग्विजयी योद्धा है। आपके लिए चित्तौरगढ़ को जीतना कोई कठिन नही है।

इस प्रकार यहाँ कवि प्रौढ़ोक्तिसिद्ध शब्दश्लेषोपमा अलंकार से वस्तु व्यंग्य है।

मोती चुनै····· बोला—यहाँ पर विभावना अलंकार है। यहाँ पर लक्षण-लक्षणा से पदार्थ का अर्थ मूल्यवान या महत्त्वपूर्ण लिया है। अत: यहाँ अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से पक्षी की वाणी की उपयोगिता एवं अलौकिकता व्यंजित की गई है।

पाँचव···गरजना—डा० अग्रवाल ने इसका पाठान्तर इस प्रकार दिया है—

'पाचौ है सोनहा लागना।'

सोनहा का अर्थ उन्होंने एक शिकारी जाति का विशाल पक्षी बताया है।

पान दीन्ह राघौ पहिरावा। दस गज हस्ति घोर सो पावा॥
औ दूसर कंगन कै जोरी। रतन लागि तेहि तीस करोरी॥
लाख दिनार देवाई जैवा। दारिद हरा समुद कै सेवा॥
हौ जेहि दिवस पद्मनी पावौ। तोहि राघौ चितउर वैसावौ॥
पहिले कै पाँचो नग मूठी। सो नग लेऊ जो कनक अंगूठी॥
सरजा सेर पुरुख वरियारू। ताजन नाग सिंह असवारू॥
दीन्ह पत्र लिखि वेग चलावा। चितउर गढ़ राजा पहँ आवा॥
पत्र दीन्ह लै राजहि किरिपा लिखी अनेग।
सिंहल की जो पदमिनी सो चाहौ यहि वेग॥२२॥

[इस अवतरण मे कवि ने राघव की बादशाह ने जो प्रतिष्ठा की उसका विस्तार से वर्णन किया है।]

राघव को बादशाह ने पान और पहिरावा दिया। दस हाथी और सौ घोड़े भी उसे मिले। दूसरा कगन जो पहले वाले कंगन के जोड़ का था और जिसमें ३२ करोड़ के रत्न लगे थे वे भी मिले। बादशाह ने जँवा में एक लाख दीनारे दी। मानो समुद्र की सेवा करने से राघव का दारिद्र्य दूर हो गया हो। बादशाह ने यह भी कहा कि जिस दिन मैं पदमावती को पाऊँगा उस दिन मै तुझे चित्तौड़ के सिंहासन पर बिठा दूँगा। पहले उन पाँचो नगो को मुट्ठी मे करके फिर उस नग को प्राप्त करूँगा जो हाथ की सेवा के लिए है। सरजा बलवान पुरुष सिंह है, साँप का चाबुक लिए सिंह पर सवार रहता है। शाह ने उसे पत्र लिख कर दिया और शीघ्र भेजा। वह चित्तौरगढ़ में राजा के पास आया।

उसने वह पत्र ले जाकर राजा को दिया। उसमे अनेक प्रकार की कृपा लिख कर दी थी। सिंहल की जो पद्मिनी तुम्हारे पास है मेरे पास भेज दो।

टिप्पणी—पान······दीन्हा—यहाँ पर पान का अर्थ प्रतिष्ठा है। यहाँ पर पान मे पर्यायवक्रता है।

जँवा—प्रीतिभोज के निमित्त दिया गया रुपया।

समुद······कै सेवा—यहाँ पर व्यंग्योपमा है। कवि की व्यंजना है कि समुद्र के समान महान् सम्पत्तिशाली या वैभवशाली बादशाह की सेवा।

सो नग······अँगूठी—यहाँ पर सो मे अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। कवि की व्यंजना है 'परम सुन्दरी एव अलौकिक'। कवि की व्यजना है कि मैं बाद मे स्वर्णसुन्दरी पदमावती का भोगरूपी नग प्राप्त करूँगा। यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार से वस्तु व्यग्य है।

लिखी जो करा······अनेक—जो बड़ी चतुराई से लिया गया था। डा० अग्रवाल ने पाठान्तर 'किरपा अनेक' दिया है। यहाँ किरपा शब्द 'स्नेहभाव' का

बादशाह चढ़ाई खण्ड

सुनि अस लिखा उठा जरि राजा। जानौ दैउ तड़पि घन गाजा ॥
का मोंहि सिह दिखावसि आई। कहौ तो सारदूल धीर खाई ॥
भलेहि साह पुहुमीपति भारी। मांगत कोउ पुरुष कै नारी ॥
जो सो चक्कवै ताकह राजू। मदिर एक कहँ आपन साजू ॥
अछरी जहाँ इन्द्र पर आवै। और न सुनै न देखै पावै ॥
कंस राज जीता जो गोपी। कान्ह न दीन्ह काहु कहँ गोपी ॥
को मोंहिते अस सूर अपारा। चढै सरग खसि पडै पतारा ॥
का तोंहि जीव मरावौं सकत आन के दोस।
जो नहि बुझै समुद्र जल सो बुझाइ कित ओस ॥१॥

[शाह के पत्र की जो प्रतिक्रिया राजा मे दिखाई पड़ी उसी का चित्रण कवि ने प्रस्तुत अवतरण मे किया है।]

पत्र में जो लिखा हुआ था उसको सुनकर राजा रतनसेन क्रोध से जल उठा। वह इस प्रकार गरज उठा मानो बादल ने तड़प कर गर्जन किया हो। तू मुझे अपना सिंह क्या दिखलाता है। अभी कहूँ तो मेरा शार्दूल उसे पकड कर खा जाय। माना वह शाह बहुत बड़ी पृथ्वी का स्वामी है किन्तु कोई किसी की स्त्री नही माँगता। यदि वह चक्रवर्ती है तो अपने ही राज्य का है। अपने-अपने घर मे सभी वैभवसम्पन्न और स्वतन्त्र हैं। जहाँ अप्सरा होगी वह इन्द्र को ही प्राप्त होगी। उसके विषय मे किसी दूसरे को न देखने का ही अधिकार होता है और न कुछ सुनने का ही है। कृष्ण ने आश्रित राजा होते हुए भी अपनी गोपी कंस को नही दी उलटे जव उसने ऐसी आकाँक्षा की तो उन्होने उसके राज्य को जीत लिया।

मुझसे वड़ा योद्धा कौन है। मैं स्वर्ग को जीत सकता हूँ। मेरी शक्ति से पाताल खस पड़ेगा।

अन्य के वल पर किए अपराध से तेरे प्राणो का हरण नही करना चाहता। जो प्यास समुद्र जल से नही वुझती वह ओस-कण से क्या बुझेगी।

टिप्पणी—अस—यहाँ पर सवृतिवक्रता है। कवि का अभिप्राय पदमावती को शाह के पास भेजने वाली बात से है।

देव—यह बादल का वाचक है। यह अर्थरूढ़ा लक्षणाजन्य है।

कंसक राज······गोपी—यहाँ पर जायसी ने कल्पना की है कि कस ने राजा नन्द से भेट मे गोपिकाएँ माँगी थी किन्तु कृष्ण ने गोपिकाएँ नही दी उलटे कंस को जीत लिया। यहाँ पर स्वत.सम्भवी वस्तु से वस्तुव्यंजना है। राजा यह व्यंजित करना चाहता है कि वह पदमावती को प्रदान नही करेगा उलटे शाह से युद्ध कर उसको पराजित करेगा।

को······अपारा—यहाँ पर अस मे अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। कवि की व्यजना है राजा से अधिक शक्तिशाली कोई नही है। 'को' काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य है। इसका अर्थ है कोई भी नही।

चढ़ै······पतारा—यहाँ स्वत:सम्भवी वस्तु से वस्तुव्यंजना है। राजा का शौर्यातिशय ही यहाँ व्यंग्य है।

जो नहि······ओस—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। व्यंजना है कि जो क्रोध शाह का वध करने पर भी शान्त नही हो सकता भला दूत को मार कर वह शान्त कैसे हो सकता है।

राजा! अस न होउ रित राता। सुनु होऊ जूड़ न जरि कहु बाता॥
मैं हौं यहाँ मरै कह आवा। बादसाह अस जानि पठावा॥
जो तोहि भार न औरहि लेना। पूछहि कालि उतर है देना॥
बादशाह कहँ ऐस न बोलू। चढ़ै तो परै जगत महँ डोलू॥
सूरहि चढ़त न लागहि बारा। तपै आगि जेहि सरग पतारा॥
परबत उडहि सूर कै फूंके। यह गढ़ छार होय एक भूँके॥
धसै सुमेरु समुदगा पाटा। पहुमी डोला सेस फन फाटा॥
तासौ कौन लड़ाई बैठहु चितउर खास
ऊपर तेहु चँदेरी, का पदमिनि एक दासि॥२॥

[शाह का दूत राजा से शान्त होने की प्रार्थना कर रहा है।]

हे राजन्! क्रोध से इतना अधिक लाल नही हुआ जाता। आपको शाह का सन्देश सुनकर प्रसन्न होना चाहिए, जलकर बाते नही बोलना चाहिए। मै यहाँ मरने के लिए ही आया हूँ। बादशाह ने भी यही समझकर मुझे आपके पास भेजा है। जो तुम्हारा बोझ है वह और किसी के लेने का नही है। कल बादशाह पूछेगा तो उसको उत्तर देना होगा। बादशाह के लिए ऐसा मत बोल। यदि वह आक्रमण करेगा तो संसार मे हलचल मच जाएगी। सूर्य के सदृश योद्धा को चढते देर नही लगती। उसके अग्निरूपी शौर्य से आकाश पाताल जलने लगेगे। सूर की फूँक से पर्वत उड़ जाते है। यह गढ़ एक लपट मे जलकर खाक हो जाएगा। उसके शौर्य के आगे सुमेर धँस जाता

है। समुद्र पर जाता है और धरती बराबर हो जाती है। उससे युद्ध भी क्या है। खास चित्तौड मे राज्य करिए। ऊपर से चंदेरी का किला भेट में लो। एक पद्मिनी जैसी दासी क्या वस्तु है।

टिप्पणी—जो तोहि भार''''''लेना—यहां पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। कवि यह व्यजित करना चाहता है कि पदमावती को देने न देने का निर्णय राजा को तो स्वयं करना है। उसके विषय में मन्त्रणा नही करनी है अतः उसे तुरन्त निश्चय कर लेना चाहिए।

ऐस—यहाँ सवृतिवक्रता है। कवि का अभिप्राय है कि राजा को शाह के लिए कठोर वाणी नही बोलनी चाहिए क्योकि वह परम शक्तिशाली है। अगर क्रुद्ध हो गया तो बड़ा अनर्थ हो जाएगा।

जो पै धरनि जाय घर केरी। का चितउर का राज चदेरी॥
जिउ न लेइ घर कारन कोई। जो घर देइ जो जोगी होई॥
हौ रन थमउर नाह हमीरू। कलपि माथ जेइ दीन्ह सरीरू॥
हौं सो रतनसेन सकबन्धी। राहु बेधि जीता सैरन्धी॥
हनुवँत सरिस भार जेइ काँधा। राघव सरिस समुद जो बाधा॥
विक्रम सरिस कीन्ह जेइ साका। सिंहल दीप लीन्ह जौ ताका॥
जौ अस लिखा भएउँ नहि ओछा। जियत सिंह कै गह को मोछा॥
दरब लेइ तौ मानौ सेव करौ गहि पाऊँ।
चाहै जौ सो पद्मनी सिंहल दीपहि जाऊ॥३॥

[बादशाह के दूत सरजा से राजा कहता है कि यदि उसे धन-संपत्ति लेनी है तो मैं दे सकता हूँ। किन्तु पद्मिनी को अपने जीवित रहते हाथ नही लगाने दूँगा।]

यदि घर की गृहिणी ही देनी पड़ी तो फिर चित्तौड और चंदेरी किस काम की। आश्रित होने का अर्थ यह नही है कोई किसी के पत्नीरूप प्राण ले ले। अपना घर और घरवाली वही छोड़ेगा जो जोगी होना चाहेगा। मै रणथम्भीर के राजा हमीर के समान हूँ जिसने अपना सिर कट जाने पर ही अपने शरीर पर शत्रुओं का कब्जा होने दिया था। मै महान् रतनसेन हूँ। जिस प्रकार अर्जुन ने राहू मछली का वेधन कर द्रौपदी प्राप्त की थी उसी प्रकार मैं अलाउद्दीन को मारकर पद्मिनी की रक्षा करूँगा। मैं हनुमान के सदृश हूँ। जिस प्रकार हनुमान जी ने अपने कन्धे पर पर्वत उठाया था उसी प्रकार अलाउद्दीन के आक्रमण का बोझ उठाऊँगा। मैं राम के समान हूँ। जिस प्रकार राम ने समुद्र बाँधा था उसी प्रकार मैं अलाउद्दीन की समुद्र के समान विशाल सेना को बाँधूँगा। मैं विक्रमादित्य के समान हूँ। जिस प्रकार उन्होने दिग्विजय करके सम्वत् चलाया था उसी प्रकार मैं अलाउद्दीन को परास्त करके सम्वत् चलाऊँगा।

बादशाह के पद्मिनी माँगने से मैं क्षुद्र नही हुआ हूँ। किन्तु जीवित सिंह की मूँछे कोई नही उखाड़ सकता है।

यदि वह धन लेना स्वीकार करे तो मैं मान सकता हूँ। मैं उसके पैर पकड़ सेवा करूँगा। यदि उसे पद्मिनी चाहिए तो सिंहलद्वीप जाना पड़ेगा।

टिप्पणी—का चितउर का चंदेरी—यहाँ पर काकुवैशिष्ट्य व्यंग्य है। जीवन की निरर्थकता ही यहाँ व्यंग्य है। राजा की व्यजना है कि जब पदमावती ही नहीं होगी तो चित्तौड और चंदेरी एक जैसे शून्य और निस्सार होंगे।

जिऊ······कोई—वाच्यार्थ है आश्रित होने के कारण कोई किसी के प्राण अर्थात् पत्नी नही ले लेता है। वैसे यह पंक्ति बहुत स्पष्ट उपयुक्त नही हैं। डा० अग्रवाल ने इसका पाठान्तर निम्न प्रकार से दिया है—

'जिअै लेइ घर कारन कोई।'

इसका अर्थ उन्होंने दिया है। घर के कारण ही कोई जीवित रहता है।

शुक्ल जी का पाठ स्वीकार करने पर घर का उपादान लक्षणा से अर्थ होगा घर मे रहने वाला अर्थात् आश्रित व्यक्ति। यह पर्यायवक्रता का उदाहरण है।

सो घर····· देई—यहाँ पर 'सो' अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। घर का अर्थ उपादान लक्षणा से घरवाली है। कवि की व्यंजना है कि कोई नपुंसक ही अपनी पत्नी दूसरे को दे सकता है जिसमे उसकी रक्षा करने की क्षमता नही है और इसलिए वैरागी हो गया है।

हौं······हमीरु—यहाँ पर लक्षण-लक्षणा से कवि ने अत्यधिक वीर होने की बात व्यजित की है। अलंकार की दृष्टि से यह लक्ष्योपमा है।

हमीर रणथम्भौर का महान् शौर्यशाली राजा था। उसने अपने जीते-जी अपने को शत्रुओ के आश्रित नही किया।

सो—कवि का अभिप्राय है अर्जुन के समान। संवृतिवक्रता है।

सकबँधी—यहाँ पर पदगत अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। प्राचीन काल मे यह परम्परा थी कि जो राजा परम पराक्रमी होता था वह आस-पास के राजाओ को परास्त कर अपने नाम पर सम्वत् चला देता था। अतः सकबन्धी का अर्थ रूढ़ा लक्षणा से हो गया परमशौर्य प्रदर्शन या परम शौर्यशाली। यहाँ विशेषण वक्रता है।

राहु······सैरन्ध्री—यहाँ पर अर्जुन की कथा का संदर्भ है। अर्जुन ने कड़ाही में छाया देखकर नाचती हुई रोहू मछली की आँख का भेदन कर समस्त स्वयवर की सभा मे द्रौपदी को जीता था। कवि की व्यंजना है इसी प्रकार मैं भी अलाउद्दीन को पराजित कर अपनी पदमावती को जीत कर उसकी रक्षा करूँगा। यहाँ पर लक्ष्योपमा अलंकार से वस्तु व्यग्य है।

हनुवँत सरिस······बाँधा—यहाँ पर उपमा अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। कवि की व्यजना है जिस प्रकार हनुमानजी के कधो पर सीता का सन्देश लाकर उनको जीत कर रावण के चंगुल से रक्षित करना था उसी प्रकार मेरे ऊपर पदमावती की रक्षा का भार है। अलाउद्दीन जैसे रावण के भय से मुक्त कर पदमावती की रक्षा करना हमारा सकल्प है।

राघव······बाँधा—यहाँ पर लक्ष्योपमा अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। व्यंजना है कि जिस प्रकार राम ने सीता को जीतने के लिए समुद्र मे सेतु बाँधा था उसी प्रकार मैं पदमावती को जीतने के लिए अलाउद्दीन की समुद्र के समान विशाल सेना को बाँधूंगा।

जियत······मोछा—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। कवि की व्यंजना है राजा के जीते-जी पदमावती कोई नही प्राप्त कर सकता है।

बोलुन न राजा आप जनाई। लीन्ह देवगिरि और छिताई॥
सातों दीप राज सिर नाँवहि। औ संग चली पद्मनी आवहि॥
जेहि के सेब करै संसारा। सिंहल दीप लेत कित वारा॥
जिनि जानस यह गढ़ तोही पाँही। ताकर सबै तोर किछु नाही॥
जेहि दिन आय गढी कहँ छेकहि। सरवस लेइ हाथ को टेकै॥
सीस न छाडै खेह के लागे। सो सिर छार होइ पुनि आगे॥
सेवा करूं जो जियन तोहि भाई। नाहि तो फेरि माँख होई जाई॥
जा कर जीवन दीन्ह तेहि आगमन सीस जो हारू।
ते करनी सब जानहि काह पुरुष का नारि॥४॥

[इस अवतरण मे शाह का दूत सरजा राजा को शाह की शक्ति का परिचय करा कर उससे उसकी शरण मे जाकर उसे पदमावती सौपने की सलाह दे रहा है।]

हे राजा! तू अपनी प्रशंसा न कर। सम्राट् ने छिताई को प्राप्त करने के लिए देवगिरि को जीत लिया है। सातों द्वीपों के राजा उसे आकर सिर नवाते है। तू यह मत समझ कि यह गढ़ तेरा है। उसका सर्वस्व है उसका कुछ नही है। जिस दिन आकर वह गढी को छेकेगा उस समय वह सर्वस्व ले लेगा। उसका हाथ कोई नही पकड़ सकता। धूल लग जाने से सिर न कटवा अर्थात् छोटी-सी बात के लिए प्राण न दे। वही सिर एक दिन मिट्टी मे मिल जाएगा। अगर तुम जीवित रहना चाहते हो तो तुम शाह की सेवा करो नही तो मक्खी बन जाओगे।

जिससे तुझे जीवन प्राप्त हुआ उसे आगे बढकर प्रणाम कर। वह सबकी करनी जानता है। चाहे वह पुरुष हो अथवा स्त्री।

टिप्पणी—लीन्ह······छिताई—डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने इसका पाठान्तर इस प्रकार दिया है—

'लीन्ह उदैगिरि लीन्ह छिताई।'

हमारी समझ मे शुक्ल जी वाला पाठ अधिक उपयुक्त है क्योकि उदैगिरि का एक अप्रसिद्ध किला था और छिताई का उससे कोई सम्वन्ध नही था। छिताई सम्भवतः गुजरात के राजा कर्ण देव की पुत्री देवल देवी का प्यार का नाम था। ऐतिहासिक तथ्य है कि गुजरात के राजा कर्ण की पुत्री देवल देवी जिसका घरेलू नाम छिताई थी परम सुन्दरी थी, उसके अतुलनीय रूप की चर्चा जव अलाउद्दीन के कानो तक पहुँची तो उसने राजा कर्ण से उसे मँगवा भेजा। छिताई की सगाई देवगिरि के राजा रामदेव के पुत्र शकर देव से हो चुकी थी। राजा कर्ण ने अलाउद्दीन को छिताई सौपने से इन्कार कर दिया। अलाउद्दीन ने गुजरात के राजा कर्ण पर आक्रमण कर उसे मार डाला और उसकी रानी कमला को अपने हरम में डाल दिया। बाद में उसे पता चला कि राजा कर्ण ने छिताई को देवगिरि भेज दिया था तो उसने देवगिरि पर आक्रमण कर उसे नष्ट कर छिताई को ले लिया।

सीस······आगे—इसका पाठान्तर डा० अग्रवाल ने निम्न प्रकार से दिया है—

सीस न झारू खेह के लागे।
सिर पुनि छार होई पुनि लागे॥

मुझे डा० अग्रवाल का पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। उसका अर्थ होगा धूल के लग जाने से सिर मत झाडने की चेष्टा करो। आगे चलकर एक दिन वह सिर धूल मे मिल जाएगा।

नाहिजाई—इस पंक्ति का पाठान्तर डा० अग्रवाल ने इस प्रकार दिया है—

'नाँहि तो फेरि भाँग होइ जाबी।'

इस पाठ की अपेक्षा शुक्ल जी का पाठ अधिक उपयुक्त है। शुक्ल के अनुसार माख का अर्थ है अप्रसन्नता। दूत कहता है कि राजा को शाह की सेवा करनी चाहिए नहीं तो वादशाह अप्रसन्न हो जाएगा।

मेरी समझ मे माख हो जाने का अर्थ अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से है अलाउद्दीन वड़ी सरलता से तुम्हे मार डालेगा।

तुरुक! जाइ कहु मरै न धाई। होइहि इसकन्दर कै नाई॥
सुनु अमृत कदली बन धावा। हाथ न चढ़ा रहा पछितावा॥
सातौ दीप पतंग होइ परा। अगिनि पहार पाँव देइ जरा॥
धरती लोह सरग भा ताँबा। जीउ दीन्ह पहुँचत कर लावा॥

यह चितउर गढ़ सोइ पहारू। सूर उठै तव होय अँगारू॥
जो पै इसकन्दर सरि कीन्हा। समुद लेहु धँसि जस वै लीन्ही॥
जो छरि आनै जाइ छिताई। तेहि छर औ डर होइ मिताई॥
महू समुझि अस अगमन सजि राखा गढ़ साजु।
कालिह होइ जेहि आवन सो चलि आवै आजु॥५॥

[इस अवतरण मे राजा रतनसेन ने शाह के प्रति जो संदेश भेजा था उसका वर्णन ओजपूर्ण शब्दो मे किया गया है।]

हे तुरुक ! तू जाकर अपने स्वामी से कह देना कि मरने के लिए व्यर्थ न दौडे नही तो उसकी भी सिकन्दर जैसी गति होगी। जिस प्रकार वह अमृत के लोभ मे दौड़कर कदलीवन मे गया किन्तु वहाँ उसके हाथ अमृत के स्थान पर केवल पश्चात्ताप ही लगा। उस द्वीप मे अग्नि का पहाड़ था वह उसमे जाकर पतिंगा वन कर गिर पड़ा। उस अग्नि के पहाड के सदृश उस कदलीवन मे जाकर जल गया। उस द्वीप की धरती लोहा है स्वर्ग लपटो से तांवे के समान हो गया है; वहाँ के अमृत लाभ करने के लोभ मे प्राण दे दिये। वह चित्तौरगढ वैसा ही अग्नि का पहाड है। जव कोई सूर आक्रमण करता है तव वह अगार रूप हो जाता है। यदि वह सिकन्दर की वरावरी करना चाहता है तो उसी प्रकार समुद्र मे धँसे। यदि तुम देवगिरि जाकर छल कर छिताई को ले आए तो इस आधार पर वह अपनी अहंमन्यता नही वघार सकता है।

मैंने भी भविष्य को सोच कर गढ मे युद्ध के सव साज सजा लिए है। जिसे कल आना हो वह आज ही आ जाए।

टिप्पणी—होइहि······नाई—वाच्यार्थ है कि सिकन्दर की सी हालत हो जाएगी। व्यंग्यार्थ है कि जिस प्रकार सिकन्दर विनाश को प्राप्त हुआ उसी प्रकार अलाउद्दीन भी विनाश को प्राप्त होगा। यहाँ पर उपमा अलंकार व्यंग्य है।

सिकन्दर के सम्वन्ध मे कहते है वह अमर वनने की कामना से अमृत की खोज मे था। किसी ने उससे कहा कि अमृत जलमात नामक लोक मे मिलेगा। वह उसे वहाँ ले गया। वहाँ अंधकार ही अंधकार था। वहाँ से वह लौटने लगा तो अग्नि के पहाड़ के लावे मे भस्म होकर मर गया। यह कथा यूनानी दंत कथाओं से उपलब्ध है। जायसी ने उसी को अपने ढग पर प्रस्तुत किया है।

जो छरि आने जाइ······छिताई—यहाँ पर सम्भवत. देवलदेवी की ऐतिहासिक कथा को जायसी ने अपने ढंग पर प्रस्तुत किया है। इतिहास के अनुसार (छिताई) देवलदेवी गुजरात के महाराजा कर्ण की परमसुन्दरी कन्या थी। अलाउद्दीन ने जव उसके रूप-गुण की प्रशसा सुनी तो उसने राजा से छिताई को अपने रनिवास मे भेजने के लिए लिख भेजा। राजा ने उसके प्रस्ताव को ठुकरा दिया और छिताई को देवगिरि भेजने की व्यवस्था कर दी क्योकि उसका विवाह देवगिरि के राजा रामदेव

पुत्र शंकर देव से निश्चित हो चुका था। अलाउद्दीन ने गुजरात पर आक्रमण करके राजा को जीत लिया और उसकी रानी कमला देवी को अपने हरम मे डलवा लिया। उधर जब उसे पता चला कि छिताई को देवगिरि भेज दिया गया तो उसने देवगिरि पर भी आक्रमण कर दिया और छल-बल से छिताई का अपहरण कर लिया और उसका विवाह अपने पुत्र ख्वाजा खिज्र से कर लिया।

सरजा पलटि साह पहँ आवा। देव न मानै बहुत मनावा।।
आगि जो जरै आगि पै सूझा। जरत रहै, न बुझाए बूझा।।
ऐसे माथ न नावै देवा। चढै सुलेमा मानै सेवा।।
सुनि के अस राता सुलतानू। जैसे तपै जेठ कर भानू।।
सहसौ करा रोष अस भरा। जेहि दिसि देखै तेहि दिसि जरा।।
हिन्दू देव काह वर खाँचा। सरगहु अब न सूर सो बाँचा।।
एहि जग आगि जो भरि मुख लीन्हा। सो संग आगि दूहूँ जग कीन्हा।।
रन थँभउर जस जरि बूझा चितउर परै सो आगि।
फेरि बुझाए न बुझै एक दिवस जो लागि।।६।।

[सरजा ने शाह से राजा के विषय मे जो कुछ कहा उसका वर्णन किया गया है।]

सरजा ने आकर कहा वह हिन्दू राजा नही मानता, मैंने उसे बहुत समझाया। जो क्रोध से जलता है वह क्रोध से शान्त हो सकता है। अन्यथा वह क्रोध से जलता रहता है, समझाने से नही मानता। हिन्दू राजा इस प्रकार सिर नही झुकाएगा। जब सुलेमान आक्रमण करेगा तब उस पर विजय प्राप्त होगी और वह सेवा करेगा। यह बात सुन सुलतान ऐसा क्रोध से जल उठा जैसे जेठ का सूर्य जल उठता है। वह ऐसा क्रोध से भर गया मानो सहस्रो किरणों से सूर्य जल उठा हो। वह जिधर देखता है वह दिशा ही उसके क्रोध से जलने लगती है। हिन्दू राजा किस बल पर तना हुआ है। स्वर्ग मे भी वह मेरे क्रोध की अग्नि से नही बच सकेगा। जिसने अपने मुँह मे आग भर ली उसका साथ आग दोनों ही लोकों में नही छोड़ती। जिस तरह से रणथंभौर जिस अग्नि मे जल कर भस्म हो गया वही आग चित्तौड मे पड़ना चाहती है। यदि एक दिन जब वह आग लग जायेगी तो बुझाए नही बुझेगी।

टिप्पणी—आगि जो······सूझा—यहाँ पर अर्थान्तर सक्रमित वाच्य ध्वनि है। कवि की व्यंजना है कि जब क्रोधाग्नि भडकती हैं तो मनुष्य सघर्ष करने के लिए उतावला हो उठता है। तब वह परिणाम पर विचार नही करता।

ऐसे······सेवा—कवि की व्यंजना है कि हिन्दू राजा रतनसेन सरलता से अलाउद्दीन को मस्तक नही झुकाएगा किन्तु यदि अलाउद्दीन यहूदियो के बादशाह सुलेमान के समान उस पर आक्रमण करके उसी तरह परास्त कर देगा जिस प्रकार

सुलेमान ने देवो और परियो को परास्त कर दिया था तव वह देवो और परियों के समान उन्हे सिर नवायेगा और सेवा करेगा। यहाँ 'देवा' में रूढि वैचित्र्य वक्रता है।

चढ़ै······सेवा—में स्वतःसम्भवी वस्तु से उपमा अलंकार व्यंग्य है।

लिखा पत्र चारिहु दिसि धाए। जावत उमरा वेगि वुलाए॥
दुन्द धाव भा इन्द्र सकाना। डोला मेरु सेस अकुलाना॥
धरती डोल कमठ खर भरा। मथन अरंभ समुद महँ परा॥
साह वजाय चढ़ा जग जाना। तीस कोस भा पहिल पयाना॥
चितउर सौंह बारिगह तानी। जहँ लगि सुना कूच सुलतानी॥
उठ सरवान गगन लगि छाए। जानहु राते मेघ देखाए॥
जो जहँ तहँ सूता अस जागा। आइ जोहार कटक सव लागा॥
हस्ति घोड़ और दर पुरुष जावत वेसरा ऊँट।
जहँ-तहँ लीन पलानै, कटक सहह अस छूट॥७॥

[वादशाह ने चित्तौडगढ पर आक्रमण करने की जो तैयारी की इस अवतरण मे उसी का वर्णन किया गया है।]

अलाउद्दीन के लिखे हुए पत्र को लेकर दून चारो ओर दौड गए। जितने अमीर उमरा थे उनको शीघ्र वुलाया गया। जव दुर्दुभी वजी तो इन्द्र घवरा गया। सुमेरु डोलायमान हो गया, शेषनाग व्याकुल हो उठे, धरती डोलने लगी, कच्छप खलवलाने लगा और समुद्र मथा जाने लगा। शाह ने जान लिया शाह डका वजाकर युद्ध के लिए चढा है। पहला पड़ाव तीस कोस का हुआ। जहाँ तक सुलतान की कूच का समाचार पहुँचा वहाँ तक यह वात फैल गई कि शाह का दरवारी शामियाना चित्तौडगढ के सामने ताना जायेगा। सरवान के तम्वू आकाश तक तान दिए गए। ऐसा मालूम हुआ कि लाल मेघ छा गए हो। जो जहाँ था वह सोते से जग गया। सारी सेना एकत्रित होकर जुहारने लगी।

हाथी, घोड़े, पैदल, सामान और जितने भी खच्चर और ऊँट थे वे अनेक स्थानो पर कस दिए गए और वे सरह मृग की तरह सेना मे मिलने के लिए चल दिए।

टिप्पणी—दुंद······परा—यहाँ सर्वत्र संवन्धातिशयोक्ति अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। अलाउद्दीन का अद्वितीय युद्ध-वैभव ही यहाँ व्यंग्य है।

वारिगह—यह एक प्रकार का तम्वू होता था जिसमे दरवार लगता था। यह इतना विशाल होता कि दस हजार आदमी एक साथ इसमे वैठ सकते थे।

सरवान—यह भी एक प्रकार का तम्वू होता था। इसका रंग लाल होता था। यह उमराव अमीर के लिए ही होता था। दूसरे लोगो के लिए सफेद रंग का विहित था लाल रग का नही।

परिगह—यह संस्कृत परिग्रह का अपभ्रंश रूप है। इसका अर्थ रनिवास, राजकीय वैभव इत्यादि होता है। इसका अर्थ सेना की सुरक्षित टुकड़ी भी है।

चले पंथ बेसर सुलतानी । तीख तुरंग वाक कनकानी ।।
कोर, कुमइत, लील सुपेते । खिग कुरंग बोज दुर केते ।।
अबलक अरबी लखी सिराजी । चौधर चाल समंद भल ताजी ।।
किरमिज नकरा जरदे भले । रूप करान बोलसर चले ।।
पंच कल्यान, संजाव कखाने । महि सायर सब चुनि चुनि आने ।।
मुशकी और हिरमिजी इराकी । तुरकी कहे भोथार बुलाकी ।।
विखरि चले जो पाँतिहि पाँती । वरन बरन औ भातिहि-भातिहि ।।
सिर और पूछ उठाए चहुँ दिसि सौस ओनाहि ।
रोष भरे जस वाउर पवन तुरास उडाहि ।।८।।

[इस अवतरण मे कवि ने घोड़ो की अनेक जातियो की परिगणना की है ।]

सुलतानी बेसर तथा तेज तथा वाके कोकंण देश के घोड़ो और खच्चरो ने प्रयाण किया। सेना मे काले कुम्भैत, लीले सनेबी, खङ्ग, कुरंग, वोर और दुर तथा केवी जाति के घोड़े थे। उनमे अबलक अरवी, लाखी, शीराज के घोडे भी सम्मिलित थे। चौधर चाल और समंद रंग के अनेक ताजी घोडे उस सेना में थे। किरमिज से आने वाले नुकरा और जरदा रंग के घोडे भद्र जाति के थे। उनके साथ रूप करान और बोलसर जाति के घोड़े भी थे। कुछ उनमे पच कल्यान और सेजाव थे जो पृथ्वी के अनेक भागो से तथा समुद्र पार से चुन-चुनकर लाए गए थे। मुश्की, हुरमुजी और ईराक देश के घोड़े थे। भोथार या सलोतरी लोगो के अनुसार वहाँ तुरकी घोडो मे बुलाकी सर्वश्रेष्ठ थे। ये सब जाति के घोड़े अलग-अलग कतारो मे अनेक प्रकार से चल रहे थे।

वे सिर और पूंछ उठाए हुए चारो दिशाओ मे साँस छोड़ रहे थे और उन्मत्त की तरह क्रोध से भरे हुए पवन के समान उड-से रहे थे।

टिप्पणी—बेसर—डा० अग्रवाल ने इसके स्थान पर पैगह पाठ दिया है। डा० माताप्रसाद जी ने परिगह पाठ दिया है। पायगह का अर्थ फारसी में अश्वशाला किया जाता है। विस्तृत टिप्पणी के लिए डा० अग्रवाल का पदमावत देखिए, पृष्ठ ५१७।

इस अवतरण में जायसी ने अश्वो की अनेक जातियो का वर्णन किया है। इस सबके परिचय के लिए डा० अग्रवाल का पदमावत देखिए, पृष्ठ ५१९।

विशेष—उपर्युक्त अवतरण मे घोड़ो की जातियो का जो विस्तृत वर्णन जायसी ने प्रस्तुत किया है वह यह सूचित करता है कि जायसी अश्व शास्त्र के पण्डित थे। यह अवतरण जायसी की बहुज्ञता का सूचक है।

लोहसार हस्ती पहिराए । मेघ साम जनु गरजत आए।
मेघहि चाहि अधिक वे कारे। भएऊ असूझ देखि अँधियारे।।
जसि भादौं निस आवै दीठी। सरग जाइ हिरकी तिन पीठी।।
सवा लाख हस्ती जब चाला। परवत सहित सबै जग हाला।।
चले गयंद माति मद आवहि। भागहि हस्ती गन्ध जो पावहि।।
ऊपर जाय गगन सिर धँसा। और धरती तर कहँ धसमसा।।
भा भुइचाल चलत जग जानी। जहँ पग धरहि उठै तहँ पानी।।
चल हस्ति जग काँपा चाँपा सरे पतार।
कर्मठ जो धरती लेइ रहा, बैठि गएउ गजभार।।६।।

[यहाँ पर कवि ने सेना के हाथियो का वर्णन किया है।]

हाथी लोहे की झूलो से सुसज्जित थे। वे ऐसे लग रहे थे मानो मेघ के समूह गरजते हुए आ रहे हो। वे मेघ से भी अधिक काले थे। उनसे असूझ अंधकार फैल रहा था। ऐसा लगता था मानो भादों की रात फैल रही हो। उनकी पीठ आकाश का स्पर्श करती थी। जब सवा लाख हाथी चले तो पर्वत सहित सारा ससार डोलायमान हो गया। हाथी मद से मस्त हुए चल रहे थे। उन मदमस्त हाथियो की गन्ध पाकर हाथी भागने लगते है। उनसे बचने के लिए आकाश जो ऊपर उठा तो सब ओर से खिसक गया। पृथ्वी अपने स्थान से नीचे धँस गई। हाथियो के चलने से सारे ससार में भूचाल आ गया। वे जहाँ चरण रखते थे वही पानी निकल पड़ता था।

हाथियो के चलने से संसार कम्पायमान हो उठा। पाताल मे शेषनाग दबने लगा। कच्छप जो पृथ्वी को उठाए हुए था वह हाथियो के भार से बैठ गया।

टिप्पणी—सरग जाइ······पीठी—यहाँ पर सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार है।

जह······पानी—यहाँ पर विभावना और अतिशयोक्ति का संकर है।

इस अवतरण में सर्वत्र अतिशयोक्ति अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। कवि ने सेना के वैभव की ही सर्वत्र व्यंजना की है।

चले जो उमरा मीर वखाने। का बरनौ जस उनकर बाने।।
खुरासान औ चला हरेऊ। गौर बंगाला रहा न कोऊ।।
रहा न रूम शाम सुलतानू। कासमीर ठट्टा मुलतानू।।
जावत बड़ बड़ तुरुक कै जाती। माडौ वाले औ गुजराती।।
पटना, उड़िया के सब चले। लेइ गज हस्ति जहाँ लगि भले।।
कँवरू कामता और पिडवाए। देवगिरि लेइ उदैयगिरी आए।।
चला परवती लेइ कुमाऊँ। खसिया मगर जहाँ लगि नाऊँ।।

उदय अस्त लहि देस जो को जानै तिन्ह नाँव ।
सातौ दीप नवौ खण्ड जुरे आइ एक ठाँव ॥१०॥

[यहाँ भिन्न-भिन्न प्रदेशो के यवनो के एकत्रित होने की बात कही गई है ।]

जो-जो प्रसिद्ध उमरा और मीर थे, वे सब चल दिए । उनकी वेश-भूषा का क्या वर्णन करूँ । खुरासान और हेरात के लोग चले, गौड़ और बगाल मे भी कोई नहीं रह गया । रूम और साम का सुलतान भी आया । काश्मीर, ठट्टा और मुलतान के लोग भी चल दिए । जितनी बड़ी-बड़ी मुसलमानो की सल्तनतें थी वे सब आईं । माड़ी वाले और गुजराती यवन नवाब भी आए । पटना और उड़ीसा के सब नवाब हाथी और घोड़ा लेकर चल दिए । कामरूप कामता और पण्डुआ के सब लोग आ गए । देवगिरि को साथ लेकर उदयगिरि के अमीर भी आए । पहाड़ी प्रदेश से कुमाऊँ के लोग खसिया और मगर जातियाँ सबको साथ लेकर आए ।

आदि से अन्त तक जितने देश है उनके नाम भी किसी को नही मालूम है । सातो द्वीप और नवो खण्ड एक साथ एकत्रित हो गए ।

टिप्पणी—हरेऊ—हेरात का प्रदेश ।

खुरासान—उत्तर पूर्वी फारस का एक प्रान्त ।

रूम साम—तुर्की और अरब के उत्तर सीरिया के राज्य मध्यकाल मे रूम और साम के नाम से प्रसिद्ध थे ।

विशेष—इसमे जायसी ने अपने समय की भौगोलिक स्थिति का विस्तार से वर्णन किया है । इन नामो के भौगोलिक परिचय के लिए डा० अग्रवाल का 'पदमावत' देखिए । साहित्यिक दृष्टि से इनका कोई महत्त्व नही है ।

धनि सुलतान जेहिक संसारा । उहै कटक अस जोरे पारा ॥
सबै तुरुक सिर ताज बखाने । तबल बाज औ बाँधे बाने ॥
लाखन मार बहादुर जंगी । जेबुर, कमानैं तीर खदगी ॥
जीभा खोल राग सो मढे । लेजिम घालि एराकिन्ह चढ़े ॥
चमकहि पाखर सार सँवारी । दरपन चाहि अधिक उजियारी ॥
बरन बरन औ पाँतहि पाँति । चली सो सेना भाँतिहि भाँती ॥
बेहर बेहर सबके बोली । विधि वह खानि कहाँ दहु खोली ॥
सात सात जोजन कर एक दिन होय पयान ।
अगिलिहि जहाँ पयान होइ पछिलहि तहाँ मिलान ॥११॥

[इस अवतरण मे भी बादशाह के द्वारा की जाने वाली तैयारी का वर्णन है ।]

वह सुलतान धन्य है जिसका यह सब ससार है । वही ऐसी विशाल सेना एकत्रित करने मे समर्थ है । जिन यवनो का वर्णन ऊपर किया गया है वे सब तबल लिए हुए थे और युद्ध का बाना सजाए थे । उसकी सेना में ऐसे बहादुर योद्धा थे

कि लाखो को अकेले मारने में समर्थ थे। उनके पास यंत्र से खीचकर चलाई जाने वाली बडी-बडी कमानें और खदगी तीर थे। वे जिरह-बख्तर, टोप और टाँगों का कवच पहने हुए ऊपर से नीचे तक मढे जान पडते थे। गले मे लेजिम डाले वे ईराकी घोडे पर सवार थे। उनके घोडो की पाखरे चमक रही थीं और हथिनी पर सवारी लोहे की झूलें दर्पण से भी अधिक चमकीली थी। अनेक रगो की और अनेक पंक्तियों मे भाँति-भाँति की वह सेना चली। सबकी बोली अलग-अलग थी। भगवान् ने वह खान जाने कहाँ से खोल दी थी।

सात-सात योजन का एक-एक कूच होता था। सेना का अगला भाग जहाँ से कूच करता था पिछला भाग अन्त मे वही आकर मिलता था।

टिप्पणी—तबल—एक प्रकार का फरसा।

जंत्र कमानै—लोहे के बड़े धनुष जो हाथ के स्थान पर चर्खी से खींच कर चलाए जाते थे।

तीर खदंगी—खदग या चनार के बने हुए तीर। चनार एक वृक्ष होता है]

जीभ—सम्भवत· जिरह बख्तर के लिए प्रयुक्त किया गया।

पखरैं—घोडे का कवच।

जोजन—चार कोस का एक योजन होता है।

डोले गढ़ गढपति सब काँपे। जीउ न पेट हाथ हिय चाँपे॥
काँपा रन थँभउर डरि डोला। नरवर गएउ झुराइ न बोला॥
जूनागढ़ औ चपानेरी। काँपा मांडौ लेत चँदेरी॥
गढ़ गवालियर परी मथानी। औ खंधार मठा होइ पानी॥
कालिजर महँ परा भगाना। भाजि अजै गिर रहा न थाना॥
काँपाँ बाँधौ नर औ प्रानी। डर रोहितास विजेगिरि भानी॥
काँप उदैगिरि देवगिरी डरा। तब सो छिताई अबकेहि धरा॥
जावँत गढ़ गढ़पति सब काँपे औ डोले जस पात।
का कहँ बोलि सौहँ भा पातसहि कर छात॥१२॥

[इस अवतरण मे अलाउद्दीन की सेना के प्रस्थान से जो आसपास के रजवाड़ों मे आतक फैला उसका कवि ने विस्तार से बडा ओजपूर्ण वर्णन किया है।]

अलाउद्दीन की सेना के प्रस्थान करते ही गढ हिल उठे और गढ़पति काँप गए। उनके पेट मे प्राण नही रहे और उन्होने धड़कते हुए हृदय दबा लिए। रण-थभौर काँप गया और भयभीत हो गया। नरवरगढ सूख गया और कुछ बोलने का साहस न कर सका। जूनागढ और चंपानेर काँप गए। चँदेरी लेते ही मांडवगढ भी डर गया। ग्वालियरगढ ऐसा हो गया जैसे उसे किसी ने मथ डाला हो। खधार दुर्ग की वैसी दशा हो गई जैसे मट्ठे का पानी हो गया हो। कालिंजर मे भगदड़ मच

गई। अजयगढ ऐसा भागा कि उसको स्थान नही मिला। बाँधवगढ़ के समस्त मनुष्य और प्राणी मात्र भयभीत हो गए। रोहतासगढ़ और बीजागढ़ भी भयभीत हो गए। उदयगिरि और देवगिरि भी बहुत डर गए। तब तो छिताई को ले गया था अब किसको ले जायेगा।

जितने गढ़ और गढ़पति थे सब काँप गए और पत्ते के सदृश हिलने लगे। बादशाह का छत्र किसको चुनौती देकर सामने हुआ है।

टिप्पणी—डोलेगढ़—यहाँ पर उपादान लक्षणा से अर्थ हुआ कि गढ के रहने वाले भयभीत हो गए।

जीउ न पेट—अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से अर्थ है भयभीत होना। यहाँ पर भय की अतिशयता ही व्यंग्य है।

हाथ हिय चाँपे—में अर्थान्तिर सक्रमित वाच्य ध्वनि है। कवि का अभिप्राय है कि हृदय, पेट, शरीर, हाथ, पैर आदि सब भय के कारण संकुचित हो गए। यहाँ पर भी भय की अतिशयता ही व्यग्य है और उपादान लक्षणा से अर्थ लिया गया है।

छिताई—यह देवगिरि के राजा की लडकी का नाम है। अलाउद्दीन छल करके उस लड़की को उठा कर ले गया था। यह कथा 'छिताई वार्ता' नामक एक अवधि काव्य मे मिलती है।

का कहँ बोलि सौहँ भा पात साहि कर छात—यहाँ पर काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यग्य से लिया गया है कि बादशाह का छत्र किसी की चुनौती पाकर कभी उसे सामने नही होने देता। (सौह भा) में अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है जिसकी व्यजना है कि सामने आने से पहले ही परास्त कर देते थे।

पात साहि कर छात—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। छात का अर्थ है राजा का प्रताप या उसकी सैन्य शक्ति।

चितउर गढ़ औ कुँभलनेरै। साजे दूनी जैस सुमेरै॥
दूतन्ह आइ कहा जहँ राजा। चढ़ा तुरुक आवै दर साजा॥
सुनि राजै दौराई पाती। हिन्दू नाँव जहाँ लगि जाती॥
चितहर हिन्दुन्ह कर अस्थानू। सतुरु हठि कीन्ह पयानू॥
आवा समुँद रहै नहि बाँधा। मै होइ मेड़ भारु सिर काँधा॥
पुरवहु आइ तुम्हार बड़ाई। नाहि त सत गौ छाँडि पराई॥
जौ लगि मेड़ रहै सुख साखा। टूटे बार जांइ नहिं राखा॥
सती जो जिय महँ सतु करै मरत न छाड़ै साथ।
जह बीरा तह चून है पान सुपारी काथ॥१३॥

[इस अवतरण मे राजा रतनसेन पर अलाउद्दीन के आक्रमण के आरम्भ का वर्णन किया गया है।]

कवि लिखता है कि चित्तौड़गढ और कुम्भलनेरगढ ऐसे सजाये गये है जैसे सुमेरु सजाये गये हो। दूतो ने आकर राजा को सूचना दी, महाराज! यवन ने सेना लेकर आक्रमण कर दिया है। राजा ने यह सूचना पाकर सभी हिन्दू राजाओ के यहाँ पत्र लेकर दूत दौड़ा दिये, इसने इनको लिखा, 'चित्तौड़ हिन्दुओ का मुख्य स्थान है यवन शत्रु ने इस पर आक्रमण कर दिया हे। वह समुद्र के समान विशाल सेना लेकर आ रहा है जिससे इसको रोका नही जा सकता। मैने इसे मेड़ बनकर रोकने का भार अपने ऊपर लिया है। यदि तुम अपनी सेना लेकर मेरी सहायतार्थ आओगे तो मैं तुम्हारा बडप्पन मानूंगा अथवा तुम सत्य और गऊ की मर्यादा की आस्था को त्याग कर भाग जाओ। जब तक मेड रहती है तभी तक सुख-समृद्धि रहती है और जब मेड़ नही रहती तो द्वार की रक्षा नही रह पाती। सती जो अपने मन मे सत धारण करती है वह मरने पर भी साथ नही छोड़ती। जहाँ बीडा है वहाँ पान सुपारी और कत्थे चूने का साथ भी आवश्यक है'।

टिप्पणी—कुम्भलनेर—निजामुद्दीन ने अपने तबकाते अकबरी में इस गढ का वर्णन किया है। यह गढ़ उदयपुर से ३४ मील उत्तर-पश्चिम में था। देवपाल का वध करके सम्भवत' रतनसेन ने इसको भी अपने चित्तौड़गढ़ में मिला लिया था।

आवा समुन्द रहै नहिं बाँधा—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार से कवि ने अलाउद्दीन की सेना की विशालता व्यजित की है। अत. यहाँ पर स्वतःसम्भवी अलकार से वस्तु व्यंग्य है।

नाहि त सत गौ छाँडि पराई—कवि की व्यजना है कि यदि तुम हमारी सहायता नही करोगे तो ऐसा समझा जायेगा कि पृथ्वी से वाणी की सत्यता उठ गई है। यह अर्थ गऊ शब्द से शब्द शक्ति उद्‌भव अनुरणन ध्वनि से प्राप्त होता है।

जहाँ बीरा······काथ—कवि की व्यजना है कि जब चूना रूपी तीक्ष्ण और सत्यनिष्ठ राजा लोग और कत्थे रूपी प्रेमी राजा लोग और सुपारी रूपी कठोर शक्ति वाले राजा लोग मिलकर पान रूप मेरी सहायता करेंगे तभी विजय रूपी रग की प्राप्ति होगी। यहाँ पर कवि प्रौढ़ोक्तिसिद्ध रूपकातिशयोक्ति अलंकार से वस्तु व्यग्य है। एक दूसरी व्यंजना है कि जहाँ आश्रयदाता राजा होता है वही आश्रित राजा भी रहते है। उस अवस्था मे यहाँ सारूप्य निवन्धना अप्रस्तुत प्रशंसा अलकार माना जायगा।

करत जो राम साँहि के सेवा। तिन्ह कहँ पुनि अरु आइ परेवा॥
सब होइ एकहि मते सिधारै। पातसाहि कहँ आइ जोहारै॥
चितउर है हिन्दुन्ह कै माता। गाढ़ परै तजि जाइ न नाता॥
रतनसेनि है जौहर साजा। हिंदुइ माँह अहै बड़ राजा॥
हिन्दुन्ह केर पनिग कर लेखा। पौरे परहि आगि जहँ देखा॥

किरिया करसि तकरसि समीरा। नाहि तलमहि देहि हँसि वीरा ॥
हम पुनि जाइ मरहि ओहि ठाऊँ। मेटि न जाइ लाज कर नाऊँ ॥
दीन्ह साहि हँसि वीरा आवहि तीन दिन वीच।
तिन्ह सीतल को राखै जिन्हैं आगि महँ मीच ॥१४॥

[इस अवतरण मे कवि ने सुलतान के प्रति अन्य राजाओ के द्वारा की गई प्रार्थना का वर्णन किया है।]

जो राजा लोग शाह के आश्रित थे और इसकी सेवा करते थे इनके पास भी चित्तौड़ से भेजा हुआ सदेशवाहक पहुँचा। इन सबने एकमत होकर सुलतान से जाकर प्रार्थना की कि हे बादशाह! चित्तौड़ हिन्दुओं की माता है इस पर जब विपत्ति आती है तो हम इससे विरक्त होकर सम्बन्ध नही तोड़ पाते। रतनसेन ने जौहर की तैयारी की है। वह हिन्दुओ में सबसे प्रतिष्ठित राजा है। हिन्दुओ का स्वभाव पतिङ्गो जैसा होता है। जहाँ आग देखते हैं दौड़ कर इसमें जा गिरते है। आप यदि कृपा करेंगे तो वायु उत्पन्न होगी जो जौहर रूपी दीपक को जलने नही देगी और हम पतिगे होकर इसमे भस्म नही होगे और यदि आप यह कृपा नहीं कर सकते तो आप हमे बीड़ा दीजिये अर्थात् आज्ञा दीजिये ताकि हम भी जाकर चित्तौड की रक्षा मे अपने प्राण दें। हमे अपने नाम की मर्यादा है इसे हम छोड़ नही सकते।

शाह ने हँसकर उन्हे बीड़ा दिया और कहा कि तीन दिन के अन्दर वे वहाँ पहुँच जाये। जिन्हे आग मे मरना ही है उन्हे कौन रोक कर शीतल कर सकता है।

टिप्पणी—हिन्दुन केरि······देखा—यहाँ पर कवि यह व्यजित करना चाहता है कि वे राजा लोग जौहर की आग मे सहर्ष कूदना चाहते है। हिन्दू राजाओ की त्याग भावना, वीर भावना और बलिदान भावना ही यहाँ पर व्यग्य है तथा स्वतः-सम्भवी वस्तु से ही वस्तु व्यंग्य है।

देहि हँसी वीरा—वाच्यार्थ है कि हँस कर विदा दीजिये, व्यंग्यार्थ है कि हमे जाने की आज्ञा दीजिये। यह अर्थ अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से प्राप्त हुआ है।

विशेष—इस अवतरण मे कवि ने हिन्दू स्वभाव का वड़ा मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है। हिन्दुओ की वलिदानप्रिय प्रकृति, अपने धर्म और जाति और प्राण के लिए मर मिटने की भावना का वड़ा मनोवैज्ञानिक उल्लेख किया गया है। कवि मुसलमान है लेकिन फिर भी इसने हिन्दू जाति के उदात्त और सहज गुणो का वड़ा निष्पक्ष और मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है।

रतनसेनि चितउर महँ साजा। आइ वजाइ पठ सब राजा ॥
तोवर वैस पवाँर जो आए। औ गहिलौत आई सिर नाए ॥
खत्री औ पचँ बान वघेले। अगरवार चौहान चँदेले ॥

गहरवार परिहार सो कुरी । मिलन हँस ठकुराई जुरी ॥
आगे ठाढ़ बजावहिं हाड़ी । पाछे धजा मरन कै काढ़ी ॥
बाजहिं सीग संख औ तूरा । चंदन घेवरें भरें सेंदूरा ॥
सँचि सग्राम बाँधि सत साका । तजि कै जीवन मरन सब ताका ॥
गगँन धरति जेइँ टेका का तेहि गरूअ पहार ।
जब लगि जीव कया महँ परै सो अँगवै मार ॥१५॥

[इस अवतरण मे कवि ने रतनसेन के आमन्त्रण पर आये हुए विविध क्षत्री राजाओ का वर्णन किया हे ।]

रतनसेन ने चित्तौड़ मे युद्ध का सारा साज सजा लिया । युद्ध के बाजे बजाकर वहीं पर सब राजा लोग एकत्रित होने लगे । तोमर, वैंस, पवार, गहलोत, खत्री, पंचवान, बघेले, अगरवाल, चौहान इन सबने आकर राजा को प्रणाम किया । गाहरवार और प्रतीहार भी इन छत्तीस राजवशो मे थे । मिलन हँस नामक क्षत्रियों के साथ सब ठकुरायत वहा एकत्रित हो गई । हाडी लोग सामने खड़े हुए बाजे बजाकर इनमे युद्ध की प्रेरणा उत्पन्न कर रहे थे । अपने पीछे उन्होंने मरण के साज सजाकर रखे थे । सीग, संख और तूर नामक बाजे बज रहे थे । क्षत्री लोग शरीर पर चदन और माथे पर सिंदूर का टीका लगाये हुए थे । संग्राम की सज्जा सजा कर वे जीवन को सार्थक करने के लिए जीवन की आशा छोड कर आमरण युद्ध के लिए दृढ-प्रतिज्ञ हो गये ।

जिसने आकाश और पृथ्वी का भार सँभाल रखा हो उसके लिए पहाड का भार क्या महत्त्व रखता है । जब तक शरीर में प्राण रहते है तब तक वीर पुरुष जो भी भार पडता है सहन करते है ।

तोमर—यह आजकल तोमर के नाम से प्रसिद्ध दिल्ली का तोमर राजवंश है । कहते है कि अनंगपाल तोमर ने ही दिल्ली बसाई थी। चारण लोग तोमरो की गणना छत्तीस क्षत्री वशो मे करते है। किन्तु वर्ण रत्नाकर सूची मे इनका उल्लेख नही है ।

बैरस—यह भी क्षत्रियो की एक जाति है। वर्ण रत्नाकर में भी इनका नाम दिया हुआ है ।

पँवार—यह भी एक क्षत्रिय जाति है । इनका प्रमुख स्थान मालवा माना जाता है ।

गहलौत—यह सूर्यवंशी क्षत्रिय राजवश है ।

चौहान—यह भी एक प्रसिद्ध राजवश है। इस वंश में ही पृथ्वीराज चौहान हुए थे जिन्होने मोहम्मद गोरी को कई बार पराजित किया था ।

अगरवाल—जायसी ने इसे एक क्षत्रिय राजवश बताया है लेकिन अन्य प्राचीन ग्रन्थो में इसका कही पर भी उल्लेख नही है ।

चन्देले—चन्देले वश के क्षत्री झाँसी मे बहुत है। यह भी एक प्रसिद्ध राज-वश है।

मिलन हँस—यह भी एक क्षत्री जाति है। किन्तु इस जाति के चिह्न अब नही मिलते है।

पंचवान—यह भी क्षत्रियो की एक जाति है किन्तु अब इस जाति के क्षत्री भी नही मिलते है।

हाड़ी—इसका कही-कही पाठभेद ढ़ाढ़ी है। यह कोई नीच जाति है। मेरा अनुमान है कि बाजा बजाने का काम करने वालो के लिए यह प्रयुक्त हुआ है।

वाजा वजाने वाले चाँडाल लोगो को हाड़ी कहते है। आजकल बहुत से भंगी अपने को हाड़ी कहते है और बाजा बजाने का काम करते है।

गँगन''''''पहार—यहाँ पर काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य से अर्थ हुआ कि जिसने आकाश और पृथ्वी को सँभाल रखा है, उसके लिए पहाड़ बिलकुल भारी नही होता। इस गुणीभूत व्यग्यार्थ से एक दूसरी व्यंजना ली गई है, वह यह है कि जिस राजा ने आकाश और पृथ्वी मे अपने शौर्य की मर्यादा स्थापित कर रखी है उसके लिए सुलतान से जूझना कोई बड़ी बात नही है। इस प्रकार यहाँ पर व्यग्य सम्भवा आर्थी व्यंजना है।

विशेष—इस अवतरण से प्रकट है कि जायसी को क्षत्रिय राजवशो की बहुत बड़ी जानकारी थी, इससे उनकी बहुज्ञता एवं व्युत्पत्ति शक्ति का पता चलता है।

गढ़ तस सजा जो चाहै कोई। बरिस बीस लहि खाँग न होई॥
बाँके चाहि बाँक सुठि कीन्हा। सौ अब कोट चित्र कै लीन्हा॥
खंड खंड चौखँड़ी सवाँरी। धरी बिखम गोलन्ह की नारी॥
ठाँवहि ठाँव लीन्ह गढ़ बाँटी। बीच न रहा जो सँचरै चाँटी॥
बैठे धानुक कँगुरहि कँगुरा। पुहुमिन आँटी अँगुरहि अँगुरा॥
औ बाँधे गढ़ि गढ़ि मँतवारे। फाटै छाति होहिं जिवधारे॥
बिच बिच बुर्ज बने चहुँ फेरी। बाजे तबल ढोल औ भेरी॥
भा गढ़ गरजि सुमेरु जेंउ सरग छुवै पै चाह।
समुंद न लेखे लावै गाँग सहस मुख काह? ॥१६॥

[इस अवतरण मे कवि ने चित्तौड़गढ़ में युद्ध की जो तैयारी की जा रही थी उसका वर्णन किया है।]

चित्तौड़गढ़ में इस प्रकार युद्ध की सामग्री का संचय किया गया कि यदि बीस वर्ष भी युद्ध हो तो वह कम न पड़े। गढ़ को अधिक से अधिक दृढ़ वनाया गया। इसका जो परकोटा था उस पर भी बुर्जादि बनाकर दृढ कर लिया गया। परकोटे के एक-एक भाग में चौखंडे बुर्ज बनाये गये। इनके ऊपर भयंकर तोपें रखी गईं। गढ़ मे सब

ओर की भूमि राजाओ ने आपस में बाँट ली और रक्षा करने लगे । इतना स्थान भी अरक्षित न रहा जो चीटी भी निकल सके । वहाँ इतनी बड़ी भीड थी कि अँगुल-अँगुल भर जमीन भी बाँट मे नही आई । वहाँ पर पत्थरो को गढ-रढ कर और एक साथ बाँध कर मतवाले बनायें गए थे । नीचे लुढकाने पर जब बीच से वे फट जाते थे तो ऐसा लगता था कि वह जीवधारी हो । चारो दीवारो मे परकोटे के बीच मे बुर्ज बने हुए थे । तबल, ढोल और भेरी नामक बाजे बज रहे थे ।

बाजो की भयंकर ध्वनियो से गुँजित गढ ऐसा लग रहा था मानो मेघ गर्जन से युक्त सुमेरु उठकर आकाश का स्पर्श करना चाहता है । वहाँ जल की इतनी प्रचुरता थी कि उसकी समता समुद्र भी नही कर सकता था । ऐसा लगता था कि मानो सैकडो गगा बह रही हो ।

टिप्पणी—गढ़ तस......सँचा—डाक्टर अग्रवाल ने तबकाते अकबरी का सदर्भ देते हुए लिखा है—चित्तौड का गढ पहाडी के ऊपर था जो लगभग एक कोस ऊँची थी । वह किसी दूसरी पहाडी से जुडी हुई न थी । पहाड़ के ऊपर किले की लम्बाई तीन कोस और चौड़ाई आधा कोस थी ।

मतवार—उन बड़े-बड़े पत्थरो को कहते है जो शत्रुओं को मारने के लिए गढ पर से धकेल दिए जाते है । डाक्टर अग्रवाल के अनुसार उस समय की चित्तौड मे मतवारे चलाने की शैली अपनी अलग थी । उन्होने लिखा है—

'फाटै छाति होइ जिवधारै'

इस पक्ति मे पारिभाषिक शब्दो द्वारा उस समय के मतवारे बनने की प्रक्रिया पर प्रकाश डाला गया है । उनका कहना है कि उस समय पत्थरो के गोले गोलीगढ़ कर बारूद के साथ उन्हे अन्दर भरा जाता था और ऊपर से सन, जूट, रुई आदि लपेट कर बडे-बड़े गोले बनाए जाते थे । नीचे फेकने पर जब वे फटते थे तब उनमे से बारूद के कारण पत्थर के गोले-गोलियाँ चारो ओर छिटककर मार करती थी । इसी ढंग से मतवारे फटने पर ऐसी मार करते थे जैसे कोई सजीव व्यक्ति मार कर रहा हो इसी-लिए उन्हे सजीव कहा गया है ।

बादशाह हठि कीन्ह पयाना । इन्द्र भंडार डोल भय माना ॥
नबे लाख असवार सो चढ़ा । जो देखिआ सो लोहें मढा ॥
चढ़हि पहारन्ह मै गढ़ लागू । बनखँड खोह न देखहि आगू ॥
बीस सहस घुम्मरहिं निसाना । गल गाजहि बिहरै असमाना ॥
बैरख ढाल गगन गा छाई । चला कटक धरती न समाई ॥
सहस पाँति गज हस्ति चलावा । खसत अकास धसँत भुइँ आवा ॥
बिरिख उपारि पेडि सौ लेहीं । मस्तक झारि डारि भईं देही ॥

कोउ काहू न सँभारै होत आव तस चाँप ।
धरति आपु कहँ काँपै सरग आपु कह काँप ।।१७।।

[इस अवतरण मे कवि ने रतनसेन के विरुद्ध सुलतान के द्वारा किए गए आक्रमण का वर्णन किया है ।]

बादशाह ने रतनसेन के विरुद्ध सेना को आक्रमण के लिए कूच किया । उसके प्रस्थान से इन्द्र और शेषनाग विचलित होकर डोलायमान हो गए । नव्वे लाख सवारो को लेकर उसने आक्रमण किया । प्रत्येक सवार लोहे के जिरह बख्तर पहने होने के कारण लोहे से मढ़ा हुआ प्रतीत होता था । वे सवार गढ़ को जीतने की कामना से प्रेरित हो पहाड़ो पर चढ जाते थे । वनखण्ड और कोह आदि कुछ नही देखते थे । बीस हजार धौसे घोर शब्द कर रहे थे । वे ऐसे गरज रहे थे कि आसमान फटा जाता था । पताको और ढालों से आसमान आच्छन्न हो गया था । ऐसी सेना चली कि पृथ्वी पर न समा सकी । सहस्रो पक्तियो से हाथी और घोड़े चल रहे थे जिनसे आकाश खसा जा रहा था और पृथ्वी धँसी जा रही थी । वे हाथी तने के साथ वृक्षो को उखाड लेते थे और ढालो को मस्तक पर झाड कर रख लेते थे । सेना का दबाव इतना बढता जा रहा था कि किसी को एक-दूसरे का सँभार न रहा । पृथ्वी अपने को काँप रही थी और आकाश अपने को ।

टिप्पणी—बादशाह····· माना—इस पक्ति मे निर्णीयमाना संबधातिशयोक्ति है ।

लोहे······मढ़ा—यहाँ पर अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है । उपादान लक्षणा से लोहे का अर्थ लोहे का जिरह-बख्तर लिया गया है । यहाँ पर सेना की भयकरता ही व्यंग्य है ।

गल गार्जाहि बिहरै······असमाना—यहाँ पर निर्णीयमाना सम्बन्धातिशयोक्ति से अर्थ है, वे गज गरजते है तो आसमान फटता है ।

खसत आकाश धँसत भुई······आवा—वाच्यार्थ है कि आकाश खसकने लगा और पृथ्वी धसकने लगी । इसी स्वतःसम्भवी अतिशयोक्ति अलकार से वस्तु व्यग्य है । कवि सेना के रव की भयकरता व्यंजित कर रहा है ।

बैरक—झंडे को या पताका को कहते है ।

पैड़ि—पेड़ के तने को कहते है ।

चली कमानै जिन्ह मुख गोला । आवहिं चली धरति सब डोला ।।
लागे चक्र वज्र के गढ़े । चमकहिं रथ सब सोने मढ़े ।।
तिन्ह पर बिखम कमानै धरीं । गाजहि अस्ट धातु की भरी ।।
सौ-सौ मन पीअहि वै दारू । हेरहिं जहाँ सो टूट पहारू ।।

माँती रहहिं रथन्ह पर परी। सतुरून्ह महँ सो होहिं उठि खरी॥
लागहिं जौ संसार न डोलहिं। होई भौकंप जीभ जौ खोलहिं॥
सहस-सहस हस्तिन्ह कै पाती। खींचहिं रथ डोलहिं नहिं माँती॥
नदी नगर सब पानी जहाँ धरहिं कै पाउ।
ऊँच खाल बन बेहड़ होत बराबर आउ॥१८॥

[इस अवतरण मे कवि ने तोपों का वर्णन किया है।]

सेना के साथ तोपे चली जिनके मुँह मे गोले रखे थे। जब वे चलती थी तो पृथ्वी कम्पायमान होती थी। फौलाद के बने हुए पहिये उनकी गाड़ियो मे लगे हुए थे। वे गाड़ियाँ सोने के पत्थर से मढी हुई चमक रही थी। उन गाडियो पर वे भयंकर तोपें रखी हुई थी। वे अष्ट धातु की भरत से ढाली गई थी। अतएव चलते समय उनसे छहराता हुआ शब्द निकल रहा था। वे सौ-सौ मन बारूद पी जाती थी। जिसकी ओर वे ताकती या मुँह करती थी वे पहाड भी टूट जाते थे। ऐसा लगता था कि बारूदरूपी दारू के पीने से वे मतवाली हो गई थी। जिसके कारण वे रथ पर पडी हुई थी परन्तु शत्रु के सामने वे उठ खडी होती थी। वे इतनी भारी थी यदि सारा संसार भी मिलकर उनको खीचना चाहे तो नही खीच सकता था। जब वे जीव खोलती थी तब पृथ्वी कम्पायमान हो जाती थी। हजारो हाथी मिलकर उनकी गाडी को खीचते थे। फिर भी वे मतवाली तोपे हिलती नही थी और मतवाली होकर वे रथों पर बेसुध पडी हुई थी। जहाँ वे पैर रखती थी वहाँ पाताल का पानी फूट निकलता था। नदी और नगर मे सर्वत्र जल-ही-जल हो जाता था। ऊँचे पहाड़, ऊँची-नीची भूमि और वन तथा टीले वगैरह सब पिसकर बराबर हो जाते थे।

टिप्पणी—इस अवतरण मे कवि ने तोपो का मानवीकरण किया है और उनका नारी रूप मे वर्णन किया है। कमाने शब्द तोपों के लिए प्रयुक्त हुआ है।

अष्ट····· धातु—आठ धातुओ के नाम है: सोना, चाँदी, ताँबा, पीतल, काँसा, जस्ता और लोहा। तोपे इन्ही धातुओं के मिश्रण से बनाई जाती थीं।

जीभ—यह सम्भवत. पारिभाषिक शब्द है और तोपो मे लगी हुई पच्चर के लिए प्रयुक्त होता है।

दारू—दारू शब्द श्लिष्ट है। एक ओर इसका अर्थ बारूद लिया गया है और स्त्री पक्ष मे इसका अर्थ मदिरा है।

हेरहिं जहाँ सो टूट······पहारू—यहाँ पर मानवीकरण और चपलातिशयोक्ति का सकर है।

होई भौकंभ जीभ जौ खोलहिं—इस पंक्ति मे भी मानवीकरण और चपलातिशयोक्ति का सकर है। जीभ सभवत. तोपों की पच्चरो के लिए पारिभाषिक शब्द भी बन गया था।

सहस-सहस हस्तिन कै पाती—इस पंक्ति से प्रकट है कि उस जमाने मे बहुत बड़ी-बड़ी तोपे भी होती थी। डा० अग्रवाल ने लिखा है कि मिर्जा हैदर लिखित इतिहास के अनुसार हुमायूँ के पास कुछ तोपे ऐसी थी जिन्हें १२० बैल मिलकर खीचते थे। उन्होने यह भी लिखा है कि बहादुरशाह के वक्त मे १७१९ मे आगरे के युद्ध मे ऐसी भी तोपे थी जिन्हें पॉच या छ: हाथी, ६०० से लेकर १७०० तक बैल खींचते थे। इसी प्रकार और भी बहुत से प्रमाण मिलते है कि यवन काल मे बहुत बड़ी तथा भारी-भारी तोपे ढाली जाती थी।

बेहड़—उस भूमि को कहते है जो उजाड़ और ऊँची-नीची होती है।

कहौ सिंगार सो जैसी नारी। दारू पिअहि सहज मतँवारी।।
उठै आगि जो छाँड़हि स्वाँसा। तेहि डर कोउ रहै नहीं पासा।।
सेंदुर आगि सीस उपराही। पहिया तरिवन झमकत जाहीं।।
कुच गोला दुइ हिरदै लाए। अचंल धुजा रहहिं छिटकाए।।
रसना गूँठि रहहि मुख खोले। लंका जरी सो उन्ह के बोले।।
अलकैं सॉकरि दुवौ एक ठाऊँ। सुतरूसाल गड़ भंजन नाऊँ।।
तिलक पलीता तुपक तन दुहुँदिसि वज्र के बान।
जहँ हेरहिं तेहि मारहि, चुर कुस करहि निदान।।१९।।

[इस अवतरण मे कवि ने तोपों का वर्णन नारियो के रूपक से किया है। इस वर्णन मे रूपक और श्लेष अलंकारो का सौदर्य द्रष्टव्य है। इसके अर्थ द्विविध है, एक स्त्री पक्ष मे लगता है और दूसरा तोप पक्ष मे। (तोपपक्ष मे अर्थ)।]

'तोप पक्ष में अवतरण का अर्थ'

वे तोपे जिस प्रकार की है उनका उसी रूप में वर्णन कर रहा हूँ। वे मतवाले गोले खाने वाली तोपे बारूद से भरी जाती थी। जब उनमे पलीते से आग लगाई जाती है तब भयानक धुआँ उठकर एक भारी नाद होता है, उस भय से उनके पास कोई नही आता। उनके मस्तक पर पलीते की आग जलती है जो सिंदूर की तरह लाल लाख दिखाई पडती है। उनकी गाड़ी के पहिए ताड के पत्ते की तरह बने हुए है और खूब प्रकाश करते हुए चलते हैं। बत्ती लगे दो गोले नल-नालो के भीतर रखे जाते हैं। उनके ऊपर ध्वजा का वस्त्र फहराता है। उनमें जीभ लगी हुई है परन्तु जीभ से कुछ बोल नही पाती हैं। उनके बोल से, जब वे बोलती हैं, तब लका तक मे अग्नि लग जाती है। वे छल्लेदार जंजीरो के सहारे हाथियो के गले मे लगी हुई है। परन्तु वे खीचते हुए डरते है कि कही प्राण न निकल जाएँ। शत्रुशाल और गणभजन नामक दोनो तोपे वीर और शृंगार दोनो रसो को लिए हुए हैं।

इन तोपो के ऊपर तिलक के समान आग का पलीता जलता हुआ दिखाई

देता है और दोनो ओर लोहे का गोला छोडती है। दाहिनी ओर भी और बाई ओर भी मार करती है। वे जिधर देखती है अर्थात् क्रियाशील होती है वही भगदड मच जाती है। जब वे जल उठती है तब वे किसी के वश की नही रहती है।

टिप्पणी—सिगार—यह शब्द तोपो की साज-सज्जा के लिए प्रयुक्त हुआ है।

नारी—यह नली का हिन्दी रूपान्तर है और इसका अर्थ तोप होता है।

बारूद—यह बारूद के लिए प्रयुक्त होता है। संस्कृत मे बारूद के लिए अंगारचूर्ण शब्द का प्रयोग होता है।

मतवारी—मतवाले उन पत्थरों को कहते थे जो शत्रुओ को मारने के लिए किले पर से गिराए जाते थे। प्राय: छोटे-छोटे पत्थरो को बारूद मे मिलाकर किसी सन वगैरह मे लपेट कर तोपो में रखकर चलाया जाता था। ऐसे गोलो को मतवारी कहते थे।

स्वासाँ—अग्नि-प्रधान धुएँ के लिए कहा गया है।

तरिवन—ताड के गोल पत्ते को कहते है।

कुचगोला—तोप मे दो छेद होते है जिनमे बत्ती लगाई तथा जलाई जाती है। इन्ही को कवि ने कुचगोला कहा है।

अंचल—यह वस्त्र के लिए प्रयुक्त हुआ है।

रसना या''''''जीभ—तोपो के मुँह मे लगाई जाने वाली डाट या पच्चर को जीभ या रचना कहते थे।

तिलक—तोपे के ऊपर एक सुराख होता था, उसमें पलीता लगाया जाता था, उसी को कवि ने तिलक कहा है।

बान—बान तोपो के गोलो को कहते थे।

हँसहि—इस शब्द का लक्ष्यार्थ है चिगारी छोड़ना।

प्रस्तुत प्रवतरण का स्त्री पक्ष में अर्थ—कवि ने तोपों का वर्णन नारी के रूपक से किया है। वह लिखता हे अब मै उन नारियों के श्रृंगार का वर्णन करता हूँ। एक तो वे सहज ही यौवनमद से भरी हुई है। दूसरे, ऊपर से मदिरापान करती है। जब वे उत्तेजित या कुपित होती है तब उसासे छोड़ने लगती है। उस समय डर के कारण उनके पास कोई नही पहुँचता है। उनके सिर पर माँग के सिंदूर की अग्नि दिखाई पडती है, जिसको देखकर कोई पास नही आता। उनके हृदय पर दो गोलाकार कुच है। ध्वजा अचल जैसी फैली हुई लगती है। जिह्वा से वे गूँगी है परन्तु बोलने के लिए मुँह खोले रहती है और जब बोलती है तो उनके मुख की ज्वाला से लका तक जल जाती है। इन हस्तिनियो की ग्रीवा पर जंजीररूपी अलके फैली हुई है। उन अलको को खीचते हुए मनुष्य डरते है कि कहीं ये प्राण न ले लें। वीर और श्रृंगार दोनो का उनमे एक साथ निवास है। शत्रुओं को सालने और गढ़ों को भंजन करने के लिए वे प्रसिद्ध है।

उनके मस्तक पर जो पलीता है वह ही मानो तिलक या टीकारूपी आभूषण है। वे शरीर से अत्यन्त चपल है। वे दायी-वायी दोनो वज्र के समान कठोर तथा कटाक्ष वाण करती हैं। वे जिधर देखती है उधर ही भगदड़ मच जाती है। जव वे हँसती है तो वडो-वड़ो का मान ढीला कर देती है।

नारी—स्त्री।

शृंगार—रूप की शोभा।

दारू पियहि सहज मतवारी—यहाँ पर दारू का अर्थ मदिरा है। इस पंक्ति से प्रकट है कि कवि ने यहाँ पर यौवनोन्माद से उन्मत्त किसी व्यभिचारिणी नायिका का चित्र खीचा है।

उठै आगि जौ छाँडहि ....स्वाँसा—यहाँ पर विभावना और अतिशयोक्ति का सकर है।

सेदुर आगि सीस उपराही—यहाँ पर रूपक अलकार है।

लंका जलि सो उनके बोले—यहाँ पर लंका का अर्थ है लंका के समान महान् किले। यह अर्थ उपादान लक्षणा से लिया गया है। अर्थान्तर सक्रमित वाच्य ध्वनि से यहाँ नारीरूपी तोपो की भयकरता व्यजित की गई है और पूरी पंक्ति मे विभावना और अतिशयोक्ति का सकर है।

विशेष—इस अवतरण मे तोपो का नारी के रूपक से वर्णन किया गया है। इसलिए सम्पूर्ण मे रूपक अलकार है। उस्मान ने अपनी चित्रावली मे तोपो का वर्णन स्त्री के रूपक से ही किया है। ऐसे स्थलो पर रूपक का श्लेष से संकर माना जाएगा।

जेहि-जेहि पंथ चली वै आवहि। आवै जरत आगि तसि लावहि॥
जरहि सो परबत लागि अकासा। वन खंड ढंख परास को पासा॥
गैंड गयंद जरे, भए कारे। ओ बन मिरिग रोझ झँवकारे॥
कोकिल नाग काग औ भँवरा। औरु जो जरहि तिन्हैं को सँवरा॥
जरा समुँद्र पानि मा खारा। जमुना स्याम भई तेहिं झारा॥
धुआ जामि अंतरिख मै मेघा। गगन स्यामु मैं धुआँ जो ठेधा॥
सूरुज जरा चाँद औ राहु। भरती जरी लंक भा दाहूँ॥
धरती सरग असूझ भा तबहुँ न अगि बुझाई।
अहुठौ वज्र दंगवै मारा चहै जुझाइ॥२०॥

[इस अवतरण मे भी तोपो के रूपक का विस्तार किया गया है।]

वे जिस पथ से निकलती है वह उनकी आग ज्वाला से जलता जाता है। गगनचुम्वी पर्वत भी उनकी अग्नि से भस्म हो जाते थे। वनखण्ड, ढाक और पलाश की तो वात ही क्या थी। गैंडे, हाथी उनकी आग मे जलकर काले हो गए थे। वन

के हिरन और नीलगाय उस लपट से झुलसे हुए दिखाई पड़ते थे। कोयल, कौए, नाग और भौंरे उसी से काले हो गए और जितने पदार्थ उनकी ज्वाला से जल रहे हैं उनकी गणना कौन कर सकता है। उनकी अग्नि से समुद्र का पानी जल गया जिसके परिणामस्वरूप वह खारा है। उसी की ज्वाला से जमुना जी काली हो गई है। उनी का धुँआ जमकर आकाश मे मेघ वन गए है। गगन भी उनी की ज्वाला से काला हो गया है क्योकि वह उनके धुएं की मार को सहन नही कर सका। सूरज, चन्द्रमा, राहू सव उससे जल गए। पृथ्वी और यहाँ तक कि लका भी उसी की ज्वाला से जली है।

पृथ्वी से आकाश तक सव उसी अखण्ड अग्नि से दग्धमान है किन्तु वह आग अव भी नही वुझी है। ऐसा लगता है कि साढे तीन व्रजो को मार कर जूझना चाहता है।

वन खण्ड ढंख परास को पासा—यहाँ पर काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य है। पक्ति का अर्थ है कि वनखण्ड ढाक पलास इनकी वात क्या कहे सव तो उसी ज्वाला मे जल रहे हैं।

गैंड गयँद जरे भए कारे औ वन मिरिग रोझ''''''झौकारे—गैंड गैंडे को कहा है। गैंड का अर्थ हाथी है। रोझ नीलगाय को कहते है। सम्पूर्ण पक्ति मे हेतू-त्प्रेक्षा अलकार है।

कोकिल काग नाग औ भँवरा—यहाँ पर भी हेतूत्प्रेक्षा अलंकार है।

सूरज जरा ''''''भा डाहू—यहाँ पर सम्वन्धातिशयोक्ति अलंकार से दिव्यता व्यंग्य है। अतएव यहाँ पर कवि प्रौढ़ोक्तिसिद्ध अलकार से वस्तु व्यंग्य है।

अहुठौ''''''जुझाये—इस पंक्ति मे कवि ने रतनसेन से होने वाले भावी युद्ध की व्यजना की है। वाच्यार्थ है साढे तीन वज्रो के समान यह तोप परम वीर रतनसेन को युद्ध मे भस्म करना चाहती है। इसीलिए यहाँ पर स्वत.सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यग्य है। साढे तीन वज्रो के सम्वन्ध मे डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा है—'कौषीतकी व्राह्मण के अनुसार वज्र के तीन रूप थे जल, सरस्वती और पचदश ऋचाये। इन्ही वज्ररूपो से देवो ने असुरो को इन लोको से भगा दिया। शतपथ व्राह्मण (१।२।४।१) मे इसी का एक लोक-प्रचलित रूप दिया है—'इन्द्र ने वृत्र पर वज्र चलाया, उसके चार टुकडे हो गए। एक तिहाई से तलवार, (स्फ्य), एक तिहाई से यूप और एक तिहाई से रथ वन गया। वज्र चलाने से जो एक चिप्पी गिरी वही वाण हुआ। इसी से साढ़े तीन वज्रो की अनुश्रुति चली। इस वैदिक कथा का पौराणिक रूप भी है। मत्स्य पुराण के अनुसार विश्वकर्मा ने सूर्य को खराद पर चढ़ाया। उसके तेज की जो छीलन उतरी उससे विष्णु का चक्र, शिव का त्रिशूल और इन्द्र का वज्र वना। इसी मे कही इतना और है कि ससार में जितना कुछ विनाशकारी तत्त्व है वह वचे हुए चूरे से वन गया।

दंगवै=दुर्गपति, गढ़पति। सव अच्छी प्रतियों मे दगवै मूल पाठ था। उसे ही फारसी लिपि मे 'दिन कोई' पढ़ लिया गया। (५२६।८ मे भी ऐसा ही है।) कला

भवन की कैथी प्रति और माताप्रसाद जी की कई प्रतियो मे दंगवै पाठ है। मनेर और गोपालचन्द्र जी की प्रति से भी दगवै पाठ का समर्थन होता है। दगवै विशेषण रतन-सेन के लिए है। (६२६।६) (हौं होइ भीव आजु रन गाजा। पाछे घालि दंगावै राजा) मे 'दंगावै राजा' उपाधि स्पष्टत.रतनसेन के लिए कवि ने प्रयुक्त की है। ३६१।२ मे भी 'दगावै' पद चित्तौड के गढपति के लिए ही आया है।

आवैं डोलत सरग सतारा। कॉपै धरति न अंगवै भारा।।
टूटहि परवत मेरू पहारा। होइ होइ चूर उडहि होइ छारा।।
सत खँड धरति भई खट खडा। उपर अस्ट भए वह्मंडा।।
इन्द्र आइ तेहि खंड होइ छावा। औ सब कटक घोर दौरावा।।
जेहि पँथ चला एरापति हाथी। अबहुँ सो डागर गगन महँ हाथी।।
औ जहँ जागि रही वह धूरी। अबहुँ वसी सो हरिचन्द पूरी।।
गगँन छपान खेह तसि छाई। सुरुज छपा रैनि होइ आई।।
इसिकन्दर केदली वनवे अस होइगा अँधियार।
हाथ पसार न सूझै बरैं लागु—मसियार।।२१।।

[इस अवतरण मे अल्लाउद्दीन की सेना के प्रयाण की जो प्रतिक्रिया संसार पर दिखाई दी उसका वर्णन किया है।]

सेना के प्रयाण से स्वर्ग और पाताल डोलायमान हो गए। पृथ्वी भी कॉपने लगी क्योकि उससे उतना भार वहन नही हो रहा था। पर्वत पहाड़ और मेरु उस सेना के प्रयाण से चकना-चूर होकर उडने लगे। सात खण्डों वाली पृथ्वी छः खण्डो वाली रह गई। अर्थात् एक खण्ड धूल बनकर आकाश मे उड़ गया जिससे आकाश में आठ खण्ड हो गए। इन्द्र ने आकर इसी आठवे खण्ड मे अपनी छावनी डाल दी। और वही पर सव सेना टिका दी और सव घोड़े दौडाने लगा। जिस मार्ग से ऐरावत हाथी चला था वह मार्ग आकाश मे अब भी विद्यमान है। और आकाश मे जहाँ पर वह धूल जम गई थी अव भी वहाँ पर हरीशचन्द्र नगरी वसी हुई है। ऐसी धूल उठी कि आकाश छिप गया और सूरज छिप गया जिससे कि रात्रि हो गई और अँधेरा छा गया।

जैसे सिकन्दर के कदली वन जाने पर अन्धकार हुआ था वैसा ही अन्धकार संसार मे हो गया। हाथ पसारने पर भी नही सूझता था जिसके परिणामस्वरूप मसाल जलने लगी।

टिप्पणी—आवैं''''''भारा—यहाँ पर सम्वन्धातिशयोक्ति अलकार है।

टूटहि''''''छारा—यहाँ पर भी सम्वन्धातिशयोक्ति अलंकार है।

सत खण्ड''''''वरमंडा—यहाँ पर अतिशयोक्ति अलकार है।

इन्द्र''''''दोरावा—प्राय: ऐसा होता है कि धूल उड़ने पर आकाश मे दृष्टि

भ्रम के कारण यह प्रतीत होने लगता है कि हाथी-घोड़े चल रहे है। मनुष्य आदि घूम रहे है इत्यादि। इसी को लोक मे इन्द्र की छावनी डालना कहते हैं।

टिप्पणी—इन्द्र······आयी—यहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा अलंकार व्यंग्य है।

हरिचन्द्र······पूरी—यह कवि की अपनी कल्पना है। उसकी धारणा है कि हरिश्चन्द सशरीर स्वर्ग को चले गए और वही पर उन्होने अपनी नगरी बसाई थी। इस हरिश्चन्द पुरी की धारणा की अभिव्यक्ति उसमान की चित्रावली में भी मिलती है।

गगन······आई—यहाँ पर अतिशयोक्ति और हेतूत्प्रेक्षा का संकर है।

इसकंदर······अधियार—सिकन्दर के सम्बन्ध मे कथा है कि जब वह अमृत की खोज मे निकला तो उसकी मित्रता ख्वाजा खिज्र से हो गई। ख्वाजा उसे एक अंधकार लोक मे ले गये। ऐसा लगता है कि यहाँ पर कवि ने उसी कथा के आधार पर अपनी कल्पना भिडाई है। यह कोई ऐतिहासिक घटना नहीं मालूम होती।

दिनहि राति अस परी अचाका। भा रवि अस्त चन्द रथ हाँका॥
दिन के पंखि चरन उठि भागे। निसि के निसरि चरै सब लागै॥
मँदिलन्ह दीप जगत परगसे। पथिक चलत बसेरैं बसे॥
कँवल सँकेता कुमुदिनी फूली। चकई बिछुरि अचक मन भूली॥
तैस चलावा कटक अपूरी। अगिलहि पानी पछिलहि धूरी॥
महि उजरी सायर सब सूखा। बनखण्ड रहा न एकौ सखा॥
गिरि पहार पकै मे माँटी। हस्ति हेरान तहाँ को चाँटी॥
जिन्ह-जिन्ह के घर खेह हेराने हेरत फिरहि ते खेह।
अब तौ दिस्टि तबहि पै आवहि उपजहिं नए उरेह॥२२॥

[इस अवतरण मे कवि ने सुल्तान की सेना के प्रयाण की प्रतिक्रिया का ही विस्तार किया है।]

सुलतान की सेना के प्रयाण से दिन में ही इतना अन्धकार हो गया मानो रात्रि हो गई हो। सूर्य अस्त हो गया और चन्द्रमा ने अपना रथ रात्रि तक पहुँचने के लिए हाँक दिया। दिन के पक्षी जो चर रहे थे उड़ कर अपनी नीडो मे भाग गये। चारे के पक्षी सब निकल कर चरने लगे। प्रफुल्लित कमल संकुचित हो गया और कमलिनी खिल गई। रात्रि के भ्रम से चकवा बिछुड गया और चकवी विक्षुब्ध हो गई। सेना इस प्रकार इतनी विशाल चल रही थी कि जहाँ आगे वालों को जल मिलता था वहाँ पर पीछे चलने वालो को चलते-चलते धूल मिलती थी। पृथ्वी उजड़ गई और समुद्र सूख गया। वन खण्ड एक वृक्ष भी नही रह गया। पर्वत और पहाड सब धूल हो गए और पिस गए। उस भीड़ मे हाथी चीटी के समान खो जाते थे। जिन-जिन के घर उस धूल मे खो जाते थे वे संसार त्यागकर धूल फाँकते दर-दर फिरते थे और धूल

ढूंढते फिरते। अव तो वे तभी पृथ्वी पर आ सकते थे जव उनके नए रूप उत्पन्न होते।

टिप्पणी—दिनहि······हाँका—यहाँ पर अतिशयोक्ति अलंकार है और इस अलकार से सुलतान की सेना की भयकरता और विशालता व्यंग्य है।

मन्दिर······भूली—यहाँ पर भ्रान्तिमान अलंकार है।

चला······धूलि—यहाँ पर स्वतःसम्भवी वस्तु वर्णन से सुलतान की सेना की विशालता रूप वस्तु व्यंग्य है।

मही······चाँटी—यहाँ पर अतिशयोक्ति अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। व्यंजना है कि सुलतान की सेना अत्यधिक भयकर विशाल और सघन थी।

जिन······खेह—वाच्यार्थ है कि उस धूल मे जिनके घर खो गए थे वे धूल ढूंढते फिर रहे थे। लक्ष्यार्थ है कि जिनके घर वाले उस सेना की धूल मे मृत्यु को प्राप्त हो गए थे, उनके घर वाले दु खी और विरक्त होकर उन्हे ढूंढने मे लगे हुए थे। अव तो वे तभी दृष्टिपथ पर आ सकेंगे जव उनका जन्म फिर से होगा। यहाँ पर घर से उपादान लक्षणा है। इस लक्षणा से घर का अर्थ लिया गया है घर के स्वामी।

खेह ·····हिराने—इसका लक्ष्यार्थ है कि मृत्यु को प्राप्त हो गए। यह अर्थ अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से लिया गया है।

हेरत फिरहि ते खेह—इसका लक्ष्यार्थ है कि वे लोग संसार के वैभव से पराङ्-मुख होकर ससार को मिट्टी के समान समझकर विरक्त हो जाते है। यह अर्थ अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से प्राप्त हुआ है।

ऐहि विधि होत पयान सो आवा। आइ साहि चितउर नियरावा॥
राजा राउ देखि सव चढ़ा। आउ कटक सवलोहै मढ़ा॥
चहुँ दिसि दिस्टी परी गज जूहा। साम घटा मेघन्ह अस रूहा॥
अरध-उरध कह सूझ न आना। सरग लोक घुम्मरहि निसाना॥
वैरख ढाल गगन मै छाहाँ। रैंनि होत आवै दिन माहाँ॥
चढ़ि धौराहर देखहि रानी। धनि तुइँ असि जाकर सुलतानी॥
कै धनि रतनसेनि तूँ राजा। जकहँ वोलि कटक अस साजा॥
अधकूप भा आवै उड़त आव तसि छार।
ताल तलाव अपूरि गढ धूरि भरी जेवनार॥२३॥

[इस अवतरण मे चित्तौड़ के रतनसेन और अन्य सामन्तो के हृदय मे जो सुलतान की सेना देखकर प्रतिक्रिया हुई उसका वर्णन किया गया है।]

इस प्रकार सुलतान की सेना प्रयाण करती हुई चित्तौड के समीप आ पहुँची। चित्तौड़ के राजा रावो ने गढ पर चढ कर उस सेना को देखा। वह सारी सेना लोहे से

मढी हुई थी। चारों ओर हाथियो का समूह-ही-समूह दिखाई पड़ता था। ऐसा लगता था मानो काले वादलो ने आक्रान्त कर लिया हो। स्वर्गलोक तक कुछ और दिखाई ही नही पड़ता था। केवल लोहे की तलवारें ही चमक रही थी। रानियाँ धौराहर पर चढ कर उस सेना को देख रही थी और सोच रही थी कि हे सुलतान तू धन्य है जिसकी इतनी विशाल सेना है और कह रही थी कि हे राजा रतनसेन तू भी धन्य है जिसके लिए सुलतान ने इतनी विशाल और भयानक सेना सजाई है। पताकाओ और ढालो की परछाईं ऐसी छाई हुई थी कि दिन में ही रात हो गई थी। ऐसी धूल उड़ रही थी कि ससार मे अन्धकूप होता जा रहा था। धूल तालावो, ताल और पोखरो यहाँ तक कि भोजन की सामग्री में भी भर गई थी।

लोहे''''''मढ़ा—यहाँ पर लोहे का अर्थ उपादान लक्षणा से लोहे के वने हुए अस्त्र-शस्त्र लिया गया है।

सरग लोक घुम्मरहिं निसाना—यहाँ पर सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार है। इससे शत्रुओ की भयकरता और विशालता व्यजित की गई है।

सुलतानी—यहाँ पर मुलतानी मे उपादान लक्षणा है। वैसे इसे हम भाववाचक सज्ञा के रूप मे भी ले सकते है।

राजै कहा करहु जो करना। भएउ असूझ, सूझ अव मरना॥
जहँ लगि राज-साज सव होऊ। ततखन भएउ सँजोउ-सँजोउ॥
वाजे तवल अकूत जुझाऊ। चढ़े कोपि सव राजा राऊ॥
करहि तुगवार पवन सौं रीसा। कँध ऊँच असवार न दीसा॥
का वरनौ अस ऊँच तुखारा। दुइ पौरी पहुँचै असवारा॥
वाधैं मोरछाँह सिर सारहि। भाँजहि पूंछ चँवर जनु ढारहिं॥
सजे सनाहा, पहुँची टोपा। लोहसार पहिरे सव ओपा॥
तैंमे चँवर वनाए औ छाले गलझंप।
वधे सेत गजगाह तहँ जो देखै सो कंप॥२४॥

[इस अवतरण मे कवि ने राजा रतनसेन के हृदय मे सुलतान की सेना देखकर उत्पन्न होने वाली प्रतिक्रिया का वर्णन किया है।]

राजा ने कहा कि जो कुछ करना चाहिए वह करो। अव मुझे कुछ नहीं दिखाई पड़ता। केवल मृत्यु ही दिखाई पड़ती है। जहाँ तक हमारा राज्य है उसमे कह दो कि वह युद्ध के लिए तैयार हो जाए। राजा की यह आज्ञा सुनकर सव युद्ध के लिए तैयार हो गए और साज सजाने लगे। युद्ध के लिए अगणित वाजे वजने लगे। सव राजा-राव क्रुद्ध होकर आक्रमण के लिए तैयार हो गए। तुखारी घोडे पवन से भी ईर्ष्या कर रहे थे। उनके कन्धे इतने ऊँचे थे कि उन पर वैठे हुए सवार सामने से दिखाई नही पड़ते थे। वे घोड़े इतने ऊँचे थे कि सवार लोग सीढी की दो पहरियो

पर चढ़ कर उन पर सवार हो पाते थे। सिर पर बाँधे हुए मुर्छल से भडक करके घोडे अपना सिर इधर-उधर घुमा रहे थे। पूँछ इधर-उधर डुलाते ऐसे लगते थे कि मानो चमर डोला रहे हो। सवार लोग, सैनिक लोग वख्तर और पहुँची पहने हुए थे। वे लोहे के वने हुए टोप पहने हुए थे और क्रुद्ध हो रहे थे। उनके मस्तक चँवर से सुशोभित थे। उनकी पीठ पर गल जभ पडी हुई थी। उनके गले मे सफेद गजगाह वँधे हुए थे। जो उन्हे देखता था वह काँप उठता था।

टिप्पणी—सनाह—इसका अर्थ जिरह वख्तर है।

पहुँची—यह हाथो को ढकने का लोहे का एक आवरण होता है।

टोपा—लोहे के वने हुए सिर के आवरण को टोपा कहते है।

मोरछाह—इसी को अव मुर्छल कहते है।

गजगाह—घोडे के पीठ मे वाँधने वाली एक झूल।

विशेष—इस अवतरण मे कवि ने अश्वो और उनकी साज-सज्जा का वड़ा संश्लिष्ट वर्णन किया है। इससे पता चलता है कि उनकी अस्त्र-शस्त्र की जानकारी वहुत अच्छी थी। इस अवतरण के दोहे मे पाठान्तर भी है। डा० अग्रवाल ने 'तैसे चमर वनाए' के स्थान पर 'टैग्रा चमर वनाए' लिखा है। टैग्रा एक प्रकार का हाथी का आभूषण होता है। जायसी के समय मे यह आभूषण सम्भवतः घोड़ो को भी पहनाया जाता था।

राज-तुरंगम वरनौ काहा ?। आने छोरि इन्द्ररथ-वाहा ॥
ऐस तुरंगम परहि न दीठी। धनि असवार रहहि तिन्ह पीठी॥
जाति वालका समुद थहाए। सेत पूँछ जनु चँवर वनाए॥
वरन-वरन पाखर अति लोने। जानहुँ चित्र सँवारे सोने॥
मानिक जड़े सीस औ काँधे। चवँर लाग चौरासी वाँधे॥
लागे रतन पदारथ हीरा। वाहन दीन्ह, दीन्ह तिन्ह वीरा॥
चढ़हिं कुँवर मन करहि उछाहू। आगे घाल गनहि नहि काहू॥
सेंदुर सीस चढ़ाए। चन्दन खेवरे देह।
सो तन्ह कहा लुकाइय। अंत होइ जो खेह॥२५॥

[इस अवतरण मे कवि ने राजा के घोड़े का वर्णन किया है।]

राजा के घोडे का क्या वर्णन किया जाय। ऐसा लगता था कि इन्द्र के रथ का घोड़ा ले आया गया हो। ऐसा घोडा दृष्टिपथ पर ही नही पडता। वे सवार धन्य है जो ऐसे घोड़े पर चलते है। वह घोड़ा उस जाति का वच्चा था जिसने समुद्र की थाह ली थी। उनकी सफेद पूँछ चँवर के समान शोभायमान थी। भाँति-भाँति के कवचों से सुशोभित वे वहुत सुन्दर लगते थे। ऐसा लगता था मानो वे सव सोने के वनाए गए हो। उनके सिर पर और कन्धों पर माणिक के जड़े हुए आभूषण थे। गले

में छोटी-छोटी चौरियाँ लगा कर घुँघरूदार कण्ठा लगाया गया था। रत्न और उत्तम हीरे लगी हुई पोशाके देकर राजकुमारो को वे घोडे सौपे जा रहे थे और उन्हे युद्ध का निमन्त्रण दिया जा रहा था। राजकुमार उन पर चढते थे और मन में उत्साहित होते थे और उन्हे आगे बढाकर वे अपने सामने किसी को कुछ गिनते नही थे।

वे सिर पर सिंदूर लगाए हुए थे और शरीर चन्दन की खोर से रजित था। उस शरीर को छिपाने से क्या लाभ जो अन्त मे मिट्टी ही होना है।

टिप्पणी—जाति बालका समुद्र थहाए—कवि यह व्यजित करना चाहता है कि वे घोड़े उच्चैश्रवा की जाति के थे।

सेत पूँछ जनु चँवर''''''बनाए—डाक्टर अग्रवाल ने इसका पाठान्तर दिया है—

'माथे छूँछि गगन सिर लाए'

यह पाठ हमे अधिक उपयुक्त लगता है। इसमे अर्थ-सौन्दर्य अधिक है।

सार सँवारि लिखे सब सोने—शुक्लजी की निम्नलिखित पक्ति का पाठान्तर है—

'जानहु चित्र सँवारे सोने।'

डा० अग्रवाल का पाठ हमे अधिक उपयुक्त लगता है।

बाहन दीन्ह; दीन्ह तिन''''''बीरा—इसका पाठान्तर है—

'पहिरन देहिं देहिं तिन्ह बीरा।'

लुकाइय—डाक्टर अग्रवाल ने इसका पाठान्तर 'लगाइय' दिया है। उस अवस्था मे पक्ति का अर्थ होगा कि उस देह मे कुछ भी क्या लगाना जिसमे अन्त को मिट्टी भरनी है।

परवरे—अश्व के कवच को कहते है। यह कवच फौलाद का बना होता था।

गज मैमँत बिखरे रजबारा। दीसहि जनहुँ मेघ अतिकारा॥
सेत गयंद, पीत औ राते। हरे साम घूमहि मदमाते॥
जमकहि दरपन लोहे सारी। जनु परबत पर परी अँबारी॥
सिरी मेलि पहिराई सूँडै। देखत कटक पाँय तर रूँदै॥
सोना मेलि कै दँत सँवारे। गिरिवर टरहिं सो उन्ह के टारे॥
परबत उलटि भूमि महँ मारहिं। परै जो भीर पग अस झारहि॥
अस गयंद साजे सिघली। मोटी कुरुम-पोठि कलमली॥
उपर कनक मँजूसा लाग चँवर औ ढार।
भलपति बैठे भाल लेइ औ बैठे धनुकार॥२५॥

[इस अवतरण मे कवि ने हाथियो का वर्णन किया है।]

राजद्वार पर मतवाले हाथी विश्रृखल रूप से खडे हुए थे। वे मेघ के समान काले दिखाई पड़ रहे थे। सफेद, पीले, हरे और काले सब प्रकार के रगो के मतवाले हाथी झूम रहे थे। उनकी लोहे की झूलें शीशे की तरह चमक रही थी और वे ऐसी शोभायमान हो रही थी जैसे पहाड पर अम्वारी पडी हुई हो। श्री नामक सामने की झूल को मस्तक पर डाल कर उसका निचला भाग दाँतो मे फँसा दिया गया। पैर मे डाले हुए कडे उन्हें अच्छे नही लग रहे थे। अतएव वे उन्हे पैरों तले रौंद देना चाहते थे। उनके दाँत सोने से मढ कर अच्छी प्रकार खूब सजाए गए थे। उनके धक्के से पहाड भी फट जाते थे। वे पर्वतो को उलट कर पृथ्वी से मिला सकते थे। अगर उनके सामने भीड़ आ जाए तो उसको वे तीर की तरह झपट कर भगा देते थे। ऐसे सिघली हाथी राजद्वार पर फिर रहे थे। जब वे चलते थे तो कछुवे की पीठ, जिस पर पृथ्वी टिकी हुई है, डोलायमान हो जाती थी। उसके ऊपर सोने की अम्वारी रखी हुई थी। उनकी पीठ पर भल्लैत भाला लिए हुए बैठे थे और धनुर्धारी धनुप धारण किए हुए बैठे थे।

टिप्पणी—सेत····· माते—इस पक्ति मे कवि ने कई रंग के हाथियो का होना व्यंजित किया है। आजकल सफेद, लाल और हरे हाथी नही दिखाई पडते। साठ-सत्तर वर्ष पहले तक हाथी पीले और लाल रंग के देखने को मिल जाते थे किन्तु अब नही मिलते है।

सारी—यह एक प्रकार की लोहे की झूल होती थी।

सिरी—यह पाखर का ही एक भाग था। लोहे के छल्ले या जजीरो से बँधता था। यह लोहे की कवच की तरह छल्ले से बँधता था, एक मस्तक पर डालने के लिए दूसरा सूँड को ढकने के लिए होता था। पाखर हाथी के कवच को कहते है।

विशेष—इस अवतरण से प्रकट होता है कि जायसी को हाथियो और उनसे सम्बन्धित वस्तुओ का अच्छा ज्ञान था।

असु-दल गज-दल दूनौ साजे। औ घन तबल जुझाऊ बाजे॥
माथे मुकुट, छत्र सिर साजा। चढ़ा बजाइ इन्द्र अस राजा॥
आगे रथ सेना सब ठाढी। पाछे धुजा मरन कै काढी॥
चढ़ा बजाह चढा जस इंदू। देवलोक गोहने भए हिन्दू॥
जानहुँ चाँद नखत लेइ चढ़ा। सूर कै कटक रैनि-मसि मढ़ा॥
जौ लगि सूर जाइ देखरावा। निकसि चाँद घर बाहर आवा॥
गगन नखत जस गने न जाही। निकसि आए तस धरती माँही॥
देखि अनी राजा कै जग होइ गएउ असूझ।
दहुँ कस होवै चाहै चाँद-सूर के जूझ॥२६॥

[इस अवतरण मे कवि ने रतनसेन की सेना की साज-सज्जा का वर्णन किया है ।]

राजा की सेना मे अश्वदल और गजदल दोनो सजाए गए। साथ-ही-साथ जुझाऊ तबले भी बजाए गए । राजा मस्तक पर मुकुट लगा कर और सिर पर छत्र सजा कर बाजे-गाजे के साथ इन्द्र के सदृश युद्ध के लिए तैयार हुआ । आगे सब रथ की सेना खडी हुई थी । पीछे पताकाएँ सजाई गई थी जो योद्धाओ को आमरण युद्ध करने की प्रेरणा देती थी। रतनसेन ऐसे बाजा बजा कर रणभूमि के लिए चला मानो इन्द्र ने आक्रमण किया हो और इन्द्र युद्ध के लिए चला हो। उसके साथ हिन्दू राजा इस प्रकार चले जैसे इन्द्र के साथ देवता चलते है अथवा ऐसा लगता था कि मानो चन्द्रमा ने नक्षत्रो के साथ चढाई की हो । अथवा ऐसा मालूम हुआ कि सूर्य की सेना को रात्रि के अन्धकार ने छा लिया हो। जब तक सूर्योदय ही हो तब तक चन्द्रमा ने बाहर जाकर अपना प्रकाश दिखा दिया । जैसे आकाश में नक्षत्रों की गणना नही की जा सकती वैसे ही रतनसेन की गणनातीत सेना बाहर निकल आई। वह गगन मे समा नही रही थी ।

राजा की सेना देखकर ससार मे अन्धकार छा गया। जब चाँद और सूर्य का युद्ध होगा मालूम नही तब क्या होगा ।

टिप्पणी—सूर कै कटक रैनिमसि गढ़ा—यहाँ पर व्याजस्तुति अलकार से कवि ने अलाउद्दीन की प्रभुता व्यजित की है । यह व्यजना वस्तुरूप है । कवि ने रतन-सेन और उसकी सेना को 'रैनि-मसि' की उपमा दी है जो सर्वथा पक्षपातपूर्ण है। यहाँ पर सूर शब्द मे शब्द शक्ति उद्भव अनुरणन ध्वनि है ।

यहुँकस····· जूझ—यहाँ पर कवि ने भयानक युद्ध की सभावना व्यजित की है । यह व्यजना काकुवैशिष्ट्यमूलक है ।

राजा बादशाह युद्ध खण्ड

इहाँ राज अस सेन बनाई। उहाँ साह कै भई अवाई ।।
अगिले दौरे आगे आए । पछिले पाछ कोस दस छाये ।।
साह आइ चितउर गढ वाजा । हस्ती सहस बीस सँग साजा ।।
ओनइ आए दूनौ दल साजै । हिन्दू तुरक दुवौ रन गाजे ।।
दुवौ समुद दधि उदधि अपारा । दूनौ मेरु खिखिद पहारा ।।
कोपि जुझार दुवौ दिसि मेले । औ हस्ती हस्ती सदुँ पेले ।।
आँकुस चमकि बीज अस बाजहिं। गरजहि हस्ति मेघ जनु गाजहिं।।

धरती सरग एक भा, जूहहि ऊपर जह ।
कोई टरै न टारे, दूनौ वज्र समूह ।।१।।

[इस अवतरण मे राजा का बादशाह से जो भयानक युद्ध हुआ था, उसके श्रीगणेश का वर्णन किया गया है ।]

यहाँ पर राजा ने इस प्रकार अपनी सेना की तैयारी की ही थी कि सुलतान भी अपनी फौज ले करके आ गया। सेना की अगली टुकडी दौडती हुई आगे पहुँच गयी और पिछली टुकडी दस कोस पीछे रह गयी । सुलतान ने आकर चित्तौडगढ पर आक्रमण किया । उसके साथ मे तीस हजार हाथी थे । दोनो दल सुसज्जित होकर घिर आये । हिन्दू और तुर्क दोनो ही दधि और उदधि समुद्रो के समान अपार सेना से युक्त थे । दोनो सुमेरु और किष्किन्धा के सदृश थे। दोनो ओर के योद्धा लोग एक-दूसरे पर दवाव डालने लगे और हाथी हाथियो को धक्का देने लगे। अकुश विजली की तरह चमक कर आघात करते थे और हाथी मेघ की तरह गरजते थे। पृथ्वी और स्वर्ग मिलकर एक हो गये। एक झुण्ड दूसरे झुण्ड पर आक्रमण करने लगा। दोनो टालने से नही टलते थे। दोनो वज्र-समूह के समान लगते थे।

टिप्पणी—दूवौ······अपारा—यहाँ पर अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। राजा और सुलतान की अतुलनीय शक्ति की व्यजना करने के लिए कवि ने यह प्रयोग किया है।

दूनौ······पहारा—यहाँ पर भी अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से उपमा अलंकार व्यग्य है।

हस्ती सहुँ हस्ती हठि गार्जाह । जनु परवत परवत सौ वार्जाह ॥
गरू मयंद न टारै टरहि । टूटहि दाँत, माथ गिरि परहीं ॥
परवत आइ जो परहि तराही । दरमँह चाँपि खेह मिलि जाँहि ॥
कोइ हस्ती असवारहि लेहीं । सूँड समेटि पाँय तर देहीं ॥
कोइ असवार सिंघ होइ मारहि । हनि कै मस्तक सूँड उपारहि ॥
गरव गयंदन्ह गगन पसीजा । रुहिर चुवै धरती सव भीजा ॥
कोइ मैमंत सँभारहि नाहीं । तव जानहि जव गुद सिर जाहीं ॥
गरन रुहिर जस वरसै धरती वहै मिलाइ ।
सिर धर टूटि विलाहि, तस पानी अँक विलाइ ॥२॥

[इस अवतरण मे कवि ने हाथियो के पारस्परिक युद्ध का वर्णन किया है ।]

हाथियो से हाथी भिडते थे और गरजते थे । ऐसा मालूम होता था जैसे पर्वत पर्वत से टकरा रहे हो । वे वड़े-वडे हाथी किसी प्रकार हटाये से भी नही हटते थे । उनके दाँत टूट जाते थे और माथे गिर पड़ते थे । यदि पहाड भी उनके मार्ग मे आ जाता तो वह भी उन गजराजो के नीचे दव कर धूल हो जाता था । कोई हाथी सवार को अपनी सूँड मे लपेटकर पैर के नीचे कुचल देता था और कोई सवार सिंह बनकर हाथियो को मारते थे, उनके मस्तक को चीर कर सूँड को उखाड़ लेते थे । जिन हाथियो के मद से आकाश तक पसीज जाता था, आज उन्ही के खून से पृथ्वी भीग गई है । कुछ मतवाले हाथियों को तो कोई सँभाल नही पाता था । जव उनके माँस का गूदा निकाला जाता था तव उन्हे मालूम पड़ता था । आकाश से वृष्टि की भाँति रक्त की धाराएँ वह रही थी । इसमे भीगकर पृथ्वी वह जा रही थी । जैसे पानी की वाढ मे कीचड़ वह जाती है उसी प्रकार सिर और धड टुकडे-टुकडे होकर वह जाते थे ।

टिप्पणी—इस अवतरण मे वीर एव वीभत्स का वड़ा भयानक परिपाक दिखाई पडता है ।

आठौ वज्र जूझ जस सुना । तेहि ते अधिक भएउ चौगुना ॥
वाजहि खडग उठै दर आगी । भुइँ जरि चहै सरग कहँ लागी ॥
चमकहि बीजु होइ उजियारा । जेहि सिर परै होइ दुइ फारा ॥
मेघ जो हस्ति हस्ति सहुँ गाजहि । बीजु खड़ग खड़ग सौ वाजहि ॥
वरसहि सेल वान होइ काँदो । जस वरसै सावन औ भादो ॥
झपटहि कोपि परहि तरवारी । औ गोला ओला जस भारी ॥
जझे वीर कहौ कहँ ताई । लेइ अछरी कैलास सिधाई ॥

स्वामी काज जो जूझे, सोइ गए मुख रात।
जो भागे सत छाँड़ि कै, मसि मुख चढ़ी परात ।।३।।

[इस अवतरण मे भी युद्ध की भयकरता का चित्र खीचा गया है।]

आठ वज्रो का जैसा भयानक युद्ध सुना जाता है इससे चौगुना भयानक युद्ध यह हुआ था। जब तलवारे आपस मे लडती थी तो आग पैदा हो जाती थी। उस आग से पृथ्वी जलने लगती थी और वह स्वर्ग तक पहुँचना चाहती थी। तलवारो की बिजली-सी चमकती थी जिससे प्रकाश हो जाता था। जिसके सिर पर वे पडती थी उसके दो टुकडे हो जाते थे। मेघ के समान काले हाथी एक दूसरे के सामने गरजते थे और बिजली के समान तलवारे आपस मे टकराती थी। सेल और बान कीचड बन कर बरस रहे थे जैसे सावन और भादो मे जल वर्षा होती है। सवार लोग क्रुद्ध होकर झपटते थे और एक दूसरे पर वार करते थे। भारी ओले जैसे गोले बरस रहे थे, भयकर युद्ध हो रहा था। इस प्रकार वीर जूझ रहे थे कि उसका वर्णन नही किया जा सकता। इन वीरो को अप्सराएँ लेकर कैलाश जा रही थी। अपने स्वामी के लिए जो युद्ध मे काम आये थे उनका मुख लाल था और जो सत का त्याग करके भोग रहे थे उनके मुख मे ढेरो कालिमा पुत गई थी।

टिप्पणी—आठौ······सुना—इसका पाठान्तर डाक्टर अग्रवाल ने इस प्रकार दिया 'अहुठौ बज्र जूझि जस सुना'। हमारी समझ मे आठौ की जगह अहुठौ पाठ ठीक है। डाक्टर अग्रवाल ने अहुठौ वज्र की व्याख्या ५०८ अवतरण मे दी है। शतपथ ब्राह्मण की एक कथा उद्‌धृत करते हुए उन्होने लिखा है, 'इन्द्र ने वृत्र पर वज्र चलाया। उसके चार टुकड़े हो गये। एक तिहाई से तलवार (स्फ्य), एक तिहाई से यूप और एक तिहाई से रथ बन गया। वज्र चलाने से जो एक चिप्पी गिरी वही बाण हुआ, इस प्रकार साढे तीन वज्र बने।

टिप्पणी—सेल—यह एक प्रकार का हथियार है। इसका सिरा और डण्डा साँगी से कुछ छोटा होता था। यह एक प्रकार का हथियार था जिससे आघात किया जाता था और अब यह हथियार नही पाया जाता है।

भा संग्राम न भा अस काऊ। लोहे दुहँ दिसि भए अगाऊ।।
सीस कंध कटि कटि भुइँ परे। रुहिर सलिल होइ सायर भरे।।
अनँद बधाव करहि मस खावा। अब भख जनम जनम कहँ पावा।।
चौसठ जोगिनी खप्पर पूरा। बिग जंबुक घर बाजहि तूरा।।
गिद्ध चील सब माँड़ो छावहि। काग कुलोल करहि औ गावहि।।
आजु साह हठि अनी बियाही। पाई भुगुति जैसि चित चाही।।
जेइँ जस माँसू भखा परावा। तस तेहि कर तेइ औरन्ह खावा।।

काहू साथ न तन गा, सकति मुए सब पोखि।
ओछ पूर तेहि जानब, जो थिर आवत जोखि ॥४॥

[इस अवतरण मे भी युद्ध की भयकरता का ही वर्णन किया गया है।]

वहाँ ऐसा संग्राम हुआ जैसा कभी नही हुआ था। दोनों ओर लोहे के शस्त्रास्त्रो का प्रयोग आगे बढ बढकर किया जा रहा था। सिर और कन्धे कट-कट कर पृथ्वी पर गिर रहे थे। खून के जल से समुद्र भर गये थे। माँस खाने वाले भूत-प्रेत, जीव आदि आनन्द बधावा करने लगे और वे यह सोचने लगे कि हमें जन्म-जन्म के लिए भोजन मिल गया है। चौसठ जोगिनियों ने अपने खप्पर भर लिये। सियार और भेडियो के घर बाजा बजने लगा। गिद्ध और चील सब व्याह के मंडप छाने लगे। कौए किलोल करते हुए गाने लगे। आज सुलतान स्वयं सेना का सचालन कर रहा है। इसीलिए जिसकी जैसी इच्छा थी उसे वैसा ही माँस भोजन को मिला। जिसने जिस प्रकार दूसरो का माँस खाया था उसी प्रकार दूसरों ने उसके माँस को खाया। किसी के साथ यह शरीर नही गया। सभी इसका अपनी शक्ति-भर पोषण करके मर जाते है। यह सफल और असफल जब समझा जायेगा, जब तौल मे स्थिरता आयेगी।

टिप्पणी—लोहे······अगाऊँ—लोहे का अर्थ उपादान लक्षणा से लोहे के बने अस्त्र-शस्त्र है।

चौंसठ जोगिनी—ये जोगिनियाँ विकराल भूत माताएँ होती है, इन्हे रण-पिशाचिनी भी कहते है। इनकी सख्या चौसठ बताई जाती है।

बिग जम्बुक—बिग वृक का अपभ्रष्ट रूप है। जम्बुक सियार को कहते है।

हठि आनि बियाही—अर्थात् हठपूर्वक सेना का स्वामित्व ग्रहण किया था। यहाँ पर बियाही क्रिया मे क्रियागत वक्रता है। साधारणतया सेना का संचालन सेनापति करते है। किन्तु विशेष गाढे अवसरो पर बादशाह स्वयं सेना का सचालन करने लगता था।

ओछि······जोख—कवि की व्यंजना है कि यह शरीर भोजनादि के पोषण से नही भरता है और खाली रहता है। यह तो अच्छे और बुरे कर्मो से ही रिक्त होता और भरता है। इन कर्मो का निर्णय आखरित के दिन होता है। कुरान मे इस बात का सकेत अनेक बार किया है। कुछ उद्धरण इस प्रकार है। कुरान मे लिखा है—

> The Day when men shall be like scattered moths.
> And the mountains as carded wool.
> Then as to him whose balance is heavy, he will be
> in a life well-pleasing.

प्रस्तुत पक्ति कुरान की उपर्युक्त पक्तियो का अनुवाद-सा है।

चाँद न टरै सूर सौ कोपा । दूसर छत्र सौह कै रोपा ॥
सुना साह अस भएउ समूहा । देते सब हस्तिन्ह के जूहा ॥
आजु चाँद तोर करौ निपातू । रहै न जग महँ छूसर छातू ॥
सहस करा होइ किरिन पसारा । छेकाँ चाँद जहाँ लगि तारा ॥
दर लोहा दरपन भा आवा । घट घट जानहु भानु देखावा ॥
अस क्रोधित कुठार लेइ धाए । अगिनि पहार जरत जनु आए ॥
खड़ग वीजु सब तुरुक उठाए । ओडन चाँद काल कर पाए ॥
जगमग आनि देखि कै धाइ दिस्टि तेहि लागि ।
छुए होइ जो लोहा माँझ आव तेहि आगि ॥५॥

[इस अवतरण मे कवि ने सुलतान और राजा रतनसेन के युद्ध का चाँद और सूर्य के प्रतीको से वर्णन किया है ।]

चाँद के समान रतनसेन सूर्य के समान सुलतान के प्रति क्रुद्ध हो गया । उसने सुलतान के सामने अपना दूसरा छत्र आरोपित कर दिया । बादशाह ने सुना कि राजा की सेना इतनी अधिक एकत्रित हुई कि उससे लोहा लेना सरल नही है तो उसने हाथियो के समूह उसके सामने चढा दिये और बोला, हे चांद के समान रतनसेन ! आज मैं तेरा वध करूँगा । संसार मे दूसरा छत्र नही रह सकता । फिर उसने अपनी सहस्र किरणो का तेज फैलाया और उसने चाँद और तारो को, चाँद रूपी रतनसेन और तारे रूपी उसके सैनिको को आक्रान्त कर दिया । लोहे से ढकी हुई सेना दर्पण के समान हो गयी थी और घट-घट मे सूर्य रूपी सुलतान प्रतिविम्बित-सा दिखाई पड़ता था । वे क्रोधित होकर ऐसे कुठार ले लेकर दौड़े मानो जलती हुई अग्नि का पहाड़ आ रहा हो । सब तुर्क लोग बिजली-सी चमकती हुई तलवारे लिये हुए थे । जब यह बिजली गिरेगी तो चन्द्रमा रूपी रतनसेन पदमावती रूपी कमल की रक्षा नही कर पायेगा । राजा की जगमगाती सेना पर सुलतानी सेना की दृष्टि उसमे जाकर भिड़ गयी । दोनो के सघर्ष से अग्नि प्रज्वलित हो उठी । लोहा सूर्य के सामने होने से तप जाता है और छूने पर वह भी गरम लगता है । कवि की व्यजना है कि बादशाह के सामने आने पर राजा भी क्रोध से जल उठा ।

टिप्पणी—चाँद······कोपा—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार से कवि ने यह व्यजित किया है कि सुलतान से जो कि रतनसेन से कही अधिक वलवान था, रतनसेन ने लोहा लिया ।

छुये······आगि—यहाँ पर उपमा अलकार व्यग्य है । यह उपमा अलंकार दृष्टान्त से व्यग्य हुआ है । अतएव यहाँ पर कवि प्रौढ़ोक्तिसिद्ध अलंकार से अलकार व्यंग्य है ।

जगमग······लागि—डाक्टर अग्रवाल मे इसका पाठान्तर है, 'चकमक पुनि

देखि कै धाइ'। यह पाठ हमे अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। इस पाठ को स्वीकार करने पर अर्थ किया गया, 'राजा की सेना चकमक के समान थी। उसे देखते ही फौलाद के समान' शाही सेना की दृष्टि उसकी दृष्टि से भिडी।

विशेष—इस अवतरण मे कवि ने ऐश्वर्याधिक्य की व्यंजना सर्वत्र की है।

सूरुज देखि चाँद मन लाजा। बिगसा कँवल, कुमुद भा राजा॥
भलेहि चाँद बड़ होइ निसि पाइ। दिन दिन अर सहुँ कौन बड़ाई॥
अहे जो नखत चद सँग तपे। सूर के दिस्टि गगन महँ छपे॥
कै चिता राजा मन बूझा। जो होइ सरग न धरती जूझा॥
गढ़पति उतरि लड़ै नहि धाये। हाथ परै गढ़ हाथ पराये॥
गढपति इन्द्र गगन गढ गाजा। दिवस न निसर रैनि कर राजा॥
चँद रैनि रह नखतन्ह माँझा। सुरूज के सौहँ न होइ, चहै साझा॥
देखा चँद भोर भा सुरूज के बड़ भाग।
चाँद फिरा भा गढ़पति सूर गगन गढ़ लाग॥६॥

[इस अवतरण मे कवि ने राजा रतनसेन के युद्ध की नैराश्य भाव की व्यंजना की है।]

चाँद रूपी रतनसेन सूर्य रूपी सुलतान को देखकर लज्जित हुआ। जो राजा कमल के समान विकसित था वह कुमुद के समान संकुचित हो गया। रात्रि में चाँद चाहे कितना बड़प्पन पा ले किन्तु दिन मे सूर्य के आगे उसका कोई बड़प्पन नही रहता। नक्षत्र रूपी रतनसेन के सामन्त चाहे चाँद रूपी रतनसेन के सामने कितने ही प्रकाशित क्यो न रहे हों किन्तु सूर्य रूपी सुलतान के देखने मात्र से वे शौर्यहीन हो गये। राजा ने मन में चिन्ता करके विचार किया, जिसके स्वर्ग होता है वह धरती मे युद्ध नही करता। गढपति उतर करके जमीन पर नही दौडता है, नही तो गढ दूसरे के हाथ में पड़ सकता है। गढपति इन्द्र के समान होता है और वह गगन पर चढ़ करके गरजता है। रात्रि का राजा दिन मे नही निकलता है। चन्द्रमा रात्रि मे नक्षत्रों के बीच मे रहता है, उस वक्त उसके सामने सूर्य नही रहता है। चन्द्रमा रूपी रतनसेन ने जब यह देखा कि सवेरा होना चाहता है और सूर्य का भाग उदय होना चाहता है तो वह गढ में लौट आया और सूर्य रूपी सुलतान उस आकाश के समान गढ के तोड़ने मे लग गया।

टिप्पणी—सूरज······लाजा—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलकार है।

बिगसा······राजा—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। कमल का अर्थ है प्रफुल्लित और कुमुद का अर्थ है संकुचित। यह अर्थ लक्षण लक्षणा से लिया गया है।

भलै······पाई—यहाँ पर भी रूपकातिशयोक्ति है। चाँद राजा का उपमान है और निशि साधारण-सी सेना का प्रतीक है।

अहे······तपे—यहाँ पर चाँद राजा का उपमान है और नक्षत्र उसके सामन्तों का इसलिए यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

गढ़पति······राजा—यहाँ पर रूपक और दृष्टान्त अलंकारों का संकर है।

देखा······भाग—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार है। चाँद रूपी राजा का उपमान है। भोर भा का अर्थ है सुलतान की विजय होना चाहती है। यह अर्थ लक्षण लक्षणा से लिया गया है। यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। यहाँ पर विजय की प्रकाश रूपता ही व्यंग्य है।

चाँद······गढ़पति—यहाँ पर भी चाँद में रूपकातिशयोक्ति और साध्यावसाना गौणी लक्षणा है।

सूर······लाग—यहाँ पर सूर मे रूपकातिशयोक्ति और गगन गढ़ मे रूपक अलंकार हैं।

कटक असूझ अलाउदि साही। आवत कोइ न सँभारै ताही।।
उदधि समुद जस लहरै देखी। नयन देख, मुख जाइ न लेखी।।
केते तजा चितउर कै घाटी। केते बजावत मिलि गए माटी।।
केतेन्ह नितहि देइ नव साजा। कबहुँ न साज घटै तस राजा।।
लाख जाहि आवहि दुइ लाखा। फरै भरै उपनै नव साखा।।
जो आवै गढ़ लागै सोइ। थिर होइ रहै न पावै कोई।।
उमरा मीर रहे जहँ ताईं। सबहि बाँटि अलगै पाई।।
लाग कटक चारिहु दिसि, गढ़हि परा अगिदाहु।
सुरुज गहन भा चाहै, चाँदहि भा जस राहु।।७।।

[इस अवतरण मे कवि ने अलाउद्दीन की सेना की विशालता व्यंजित की है।]

अलाउद्दीन की शाही सेना बड़ी विशाल थी। आते समय उसका कोई सामना नही कर सकता था। जिस प्रकार उदधि समुद्र मे भयानक लहरे होती है जो नेत्रों को तो दिखाई देती है परन्तु मुख उनका वर्णन नही कर पाता है। न मालूम कितनों ने तो चित्तौड़ की घाटी त्याग दी और न मालूम कितनो ने उनका सामना करने की चेष्टा की परन्तु वे मिट्टी मे मिल गये। कितनो को वह नित नया साज़ देता था। कभी उसका साज-सामान घटता नही था; वह ऐसा सम्राट् था। यदि एक लाख सैनिक कम हो जाते तो दो लाख उनका स्थान ले लेते थे। उनकी ऐसी स्थिति थी जैसे एक लता फलती है, फूल झड़ जाते है और फिर नये फल आते है। जो आता वही गढ़ के घेरने मे लग जाता था, कोई शान्त नही बैठता था। जितने उमरा और वीर थे सबको अलग-अलग भाग लड़ाई के लिए सौंप दिया गया था।

चारो ओर से सुलतान की सेना ने गढ़ को घेर लिया। चारों ओर से गढ़ अग्नि की ज्वालाओं में फँस गया। सुलतान रतनसेन रूपी सूरज के लिए ग्रहण रूप बनना चाहता था और राजा सुलतान रूपी सूर्य के लिए राहु बनकर ग्रहण कर लेना चाहता था।

टिप्पणी—उदधि समुद्र—जायसी ने उदधि को ज्वाला का समुद्र व्यंजित किया है। यह उनकी अपनी धारणा है। यह सम्भवतः इन पर इस्लामी प्रभाव है।

सूरज……राहु—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति और उपमा अलंकार का संकर है।

अथवा दिवस, सूर भा बासा। परी रैनि, ससि उवा अकासा ॥
चाँद छत्र देइ बैठा आई। चहुँ दिसि नखत दीन्ह छिटकाई ॥
नखत अकासहि चढ़ै दिपाहीं। टुटि टुटि लूक परहिं, न बुझाई ॥
परहिं सिला जस परै बजागी। पाहन पाहन सौं उठ आगी ॥
गोला परहिं, कोल्हु ढरकाहीं। चूर करत चारिउ दिसि जाहीं ॥
ओनई घटा बरस झरि लाई। ओला टपकहिं, परहिं बिछाई ॥
तुरुक न मुख फेरहिं गढ़ लागे। एक मरै, दूसर होइ आगे ॥
परहिं बाना राजा के, सकै को सनमुख काढ़ि ?
ओनई सेन साह कै रही भोर लगि ठाढ़ि ॥८॥

[इस अवतरण मे कवि ने रतनसेन द्वारा किये गए रात्रि का वर्णन उपसंहार रूप में किया है।]

दिन अस्त हुआ और सुलतान की सेना विश्राम करने लगी। रात्रि हुई और आकाश में चन्द्रमा उदित हुआ। चन्द्रमा रूपी राजा छत्र के नीचे आकर बैठा। चारो ओर से नक्षत्र रूपी सामन्तों ने उसे घेर लिया। नक्षत्र रूपी सामन्त गढ़ के कोट पर जड़े हुए शोभायमान हो रहे थे। कोट के ऊपर से जलती हुई मसालें फेंकी जा रही थीं। चट्टानें ऐसी गिर रही थी जैसे वज्राग्नि गिर रही हो। पत्थर से पत्थर लड़कर अग्नि पैदा कर देते थे। गोले बरस रहे थे और ऊपर से कोल्हू बरस रहे थे। वे चारों ओर जिस पर गिरते थे वे उसको चूर-चूर कर देते थे। अंगारों की घटा बरस रही थी। ओलो जैसी वृष्टि होने पर भी वे अँगारे बुझते नहीं थे। इतनी होते हुए भी तुर्क लोग गढ़ पर हमला करने से मुंह न मोड़ते थे। एक के मर जाने पर दूसरा सामने आ जाता था। राजा के गोलों की वर्षा हो रही थी। बादशाह की सेना को रात भर जब तक कि प्रातःकाल नही हुआ खड़े-खड़े ही काटनी पड़ी।

टिप्पणी—परी रैनि, शशि हुआ अकासा—यहाँ पर स्वतःसिद्ध वस्तु से उपमा-अलंकार व्यंग्य है। अर्थ है जिस प्रकार रात्रि होने पर आकाश में चन्द्रमा उदय हो जाता है उसी प्रकार रात्रि होने पर गढ़ के ऊपर रतनसेन आकर बैठ गया। यहाँ

पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार भी है। शशि राजा का उपमान है और आकाश गढ़ का उपमान है।

चाँद छत्र दैइ बैठा आई—यहाँ पर भी चाँद में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है। इस अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। राजा उस रात्रि को स्वयं सेना का संचालन कर रहा था।

कोल्हू—पहले पत्थर के कोल्हू बनाये जाते थे। वे बहुत भार होते थे। युद्ध के समय वे कोल्हू शत्रु पर फेंकने के काम में लाये जाते थे।

उनई अँगार विस्टी—माता प्रसाद जी ने इसका पाठ किया है, 'अवनि अँगार दिस्टी'। मिट्टी के तेल के गोलो को अँगार कहते थे। युद्ध में उन्हें फेंकने का रिवाज था।

बान—तोप से फेके जाने वाले गोले बान कहलाते थे।

विशेष—डाक्टर अग्रवाल ने ठीक ही लिखा है कि प्रस्तुत वर्णन तथ्य पर आश्रित है। उनका कहना है कि तवकाते नासिरी मे इस प्रकार के उल्लेख सुलतान और युद्ध के प्रसंग मे आये है।

भएउ विहानु, भानु पुनि चढ़ा। सहसहु करा दिवस बिधि गढा॥
भा धावा गढ़ कीन्ह गरेरा। कोपा कटक लगा चहुँ फेरा॥
वान कटोर एक मुख छूटहिं। बाजहिं जहाँ फोंक लहिं फूटहिं॥
नखत गगन जस देखहिं घने। तस गढ़ कोटन्ह बानन्ह हने॥
बान बेधि साही कै राखा। गढ़ भा गरुड़ फुलावा पाँखा॥
ओहि रँग केरि कठिन है वाता। तौ पै कहै होइ मुख राता॥
पीठि न देहिं घाव के लागे। पैग पैग भुइँ चाँपहिं आगे॥
चारि पहर दिन जूझ भा, गढ़ न टूट तस बाँक।
गरुअ होत पै आवै दिन, दिन नाकहि नाक॥६॥

[इस अवतरण में कवि ने सूर्योदय होने पर गढ़ पर किये सुलतान के आक्रमण का वर्णन किया है।]

प्रातः होते ही सूर्य रूपी बादशाह ने आक्रमण किया। इसने सहस्रों किरणरूपी तेज से विजय रूपी दिवस को जन्म दिया। करोड़ो बान एक ओर छूटते थे, पंखो तक गढ जाते थे। आकाश मे जिस प्रकार अनेक नक्षत्र दिखाई पडते है; वैसे ही अगणित वाणों के लगने से गढ के कोट नष्ट हो रहे थे। वाणो से वेध करके गढ़ को शाही पशु के समान वना दिया था अथवा वह पंख फुलाये हुए गरुड़ के समान दीखता था। उस रण का वर्णन करना बहुत कठिन है। उसका वर्णन वही कर सकता है जो सत्यनिष्ठ है। तुर्क लोग घाव के लगने पर भी पीछे नही हटते थे और क़दम-कदम पृथ्वी दवाते चले जाते थे।

चार पहर तक भयंकर युद्ध हुआ किन्तु गढ इतना दृढ था कि वह टूटा नहीं था। एक-एक नाके पर विजय प्राप्त करने पर गढ और अधिक कठिन और दृढ मालूम होता था।

टिप्पणी—भएऊ······चाहा—यहाँ पर स्वत.सिद्ध वस्तु से उपमा अलकार की व्यजना है। ध्वनि है कि प्रात:काल होने पर बादशाह ने फिर आक्रमण किया।

छेंका कोट जोर अस कीन्हा। घुसि कै सरग सुरँग तिन्ह दीन्हा॥
गरगज बाँधि कमानै धरी। वज्र आगि मुख दारू भरी॥
हबसी, रूमी और फिरंगी। वड़-वड़ गुनी और तिन्ह सँगी॥
जिन्ह के गोट कोट पर जाहीं। जेहि ताकहि चूकहि तेहि नाही॥
अस्ट धातु के गोला छूटहि। गिरहि पहार चून होइ फूटहि॥
एक वार सब छूटहि गोला। गरजै गगन, धरनि सब डोला॥
फूटहि कोट फूट जनु सीला। ओदरहि बुरुज जाहि सब पीसा॥
लका-रावट जस भई, दाह परी गढ़ सोइ।
रावन लिखा जरै कहँ, कहहु अजर किमि होइ॥१०॥

[इस अवतरण मे गढ भेदन प्रक्रिया का वर्णन किया गया है।]

बादशाह ने कोट को बलपूर्वक घेर लिया और गढ़ में सुरँग लगाकर उसे उडाने का प्रयास किया। फिर किले के सामने गरगज बाँध कर उन पर तोपें लगाई गई। उनमे बारूद भरी थी और वे वज्राग्नि उगलती थी। हब्शी, रूमी और फिरगी जो तोप के काम मे बहुत चतुर होते हैं, उनके साथ थे। उनके गोले कोट पर जाकर गिरते थे और जिस लक्ष्य पर वे चलाये जाते थे वही पर वे अचूक रूप से पहुँचते थे। अष्ट धातु के गोले छूट रहे थे, उनमें पहाड तक चूर-चूर होकर गिर जाते थे। एक बार सब गोले छूटते थे जिनसे आकाश मे गर्जना छा जाती थी और पृथ्वी डोलायमान हो जाती थी। कोट इस प्रकार टूट कर गिरते थे जिस प्रकार शीशे टूट कर गिरते है। वुर्ज गिरते थे और सबको चकनाचूर कर देते थे।

जिस अग्नि से रावण की लंका जलकर लाल हो गयी थी वह अग्नि गढ में लग गयी। रावण के भाग्य में जलना-मरना लिखा था तो अजर-अमर उसे कौन करता।

टिप्पणी—जोर अस कीन्हा—इस पाठान्तर मे डाक्टर अग्रवाल ने 'जौरा अस कीन्हा' दिया है और इसका अर्थ दिया है, गढ तोड़ने के लिए शाह ने दो उपाय किए—एक सुरग लगाकर तोड़ना और दूसरे गरगज बाँधकर तोपो से कोट तोड़ना।

घुसी······दीन्हा—इसका पाठान्तर डाक्टर अग्रवाल ने दिया है 'खसिया मगर सुरँग तेइँ दीन्हा' इसका अर्थ उन्होने दिया है, खसिया और मगर जाति के लोगो को गढ़ मे सुरंग लगाकर उड़ाने का काम सौपा। खसिया गढ़वाल की एक लड़ाकू जाति है और मगर नेपाल की एक लड़ाकू जाति है।

गरगज—यह एक ऊँचा बुर्ज होता है जो किले के बाहर बनाया जाता है उस पर तोपे चढा कर किले पर गोला-बारी करते थे।

हब्शी—ये एबीसीनिया के रहने वाले होते थे।

रूमी—डा० अग्रवाल के अनुसार ये तुर्की के निवासी थे।

फिरंगी—जायसी ने यह शब्द शुक्ल जी के अनुसार पुर्तगालियों के लिए प्रयुक्त किया है।

ओपरहिं—इसका अर्थ नष्ट-भ्रष्ट होना है।

रावण······होहिं—यहाँ पर कवि की व्यजना है कि तुर्कों के हाथो हिन्दू राजाओ की पराजय निश्चित थी अतएव वे सुरक्षित कैसे बच सकते थे।

राज गीर लागे गढ़ थवई। फूटै जहाँ सँवारहिं सबई॥
बाँके पर सुठि बाँक करेही। रातिहि कोट चित्र कै लेहीं॥
गाजहिं गगन चढ़ा जस मेघा। बरिसहिं बज्र, सीस को ठेघा॥
सौ सौ मन के बरिसहिं गोला। बरिसहिं तुपक तीर जस ओला॥
जानहुँ परहि सरग हुत गाजा। फाटै धरति आइ जहँ बाजा॥
गरगज चूर चूर होई परही। हस्ति घोर मानुष संघरहीं॥
सबै कहा अब पर तै आई। धरती सरग जूझ जनु लाई॥
आठौ बज्र जुरे सब एक डुगबै लागि।
जगत जरै चारिउ दिसि, कैसेहु बुझै न आगि॥११॥

[इस अवतरण मे शाह द्वारा गढ़ पर आक्रमण और इस पर होने वाले युद्ध का ही वर्णन किया गया है।]

राजा की ओर से गढ़ मे मरम्मत के लिए थवई लगे हुए थे। जहाँ पर वह टूटता-फूटता था वे उसे तुरन्त सँभाल देते थे। एक तो वह वैसे ही काफी दृढ़ था, दूसरे और दृढ बना दिया जाता था। रात-रात मे ही कोट को फिर विचित्र बना लेते थे। जैसे आकाश मे बादल चढ कर गरजते है वैसे ही उस गढ मे गर्जन का स्वर होता था और वहाँ से वज्र बरसाये जाते थे। उन्हे कोई रोक नही पाता था। तोपे ऐसे गोले बरसा रही थी जैसे ओले बरस रहे हों। ऐसा लगता था कि स्वर्ग से गाज गिर रही हो, जहाँ टकराती थी वही पृथ्वी फट जाती थी। गरगज या मोर्चो के बुर्ज चकना-चूर होकर पृथ्वी पर गिर रहे थे। वे हाथी, घोड़ा और मनुष्य का संहार कर रहे थे। सबने कहा कि अब प्रलय आ गई है। ऐसा लगता है कि अब पृथ्वी और आकाश मे युद्ध छिड़ गया है।

साढ़े तीन वज्र उसके सामने इकट्ठे हुए थे और उनका सामना एक वीर कर रहा था। चारो दिशाओ मे संसार जल रहा था। वह आग किसी प्रकार भी नही बुझ रही थी।

टिप्पणी—गरगज—यह एक प्रकार का ऊँचा कृत्रिम वुर्ज होता था, यह प्राय: किले के वाहर वनाया जाता था। इसी पर तोपे ले जाकर गोलावारी की जाती थी।

आठौ......लागि—इसका पाठान्तर है 'अहुठौ वज्र जुरे सन्मुख होइ एक दगवै लागि'। अहुठ का अर्थ है साढे तीन। पीछे वता आये है कि प्राचीन काल मे साढ़े तीन वज्र माने जाते थे। अहुठ से उन्ही का सकेत किया गया है।

दगवै—दगवै का अर्थ है गढ़पति। जायसी ने यह शब्द कई वार प्रयोग किया है।

तबहूँ राजा हिये न हारा। राव पौरि पर रचा अखारा॥
सोह साह कै बैठक, जहाँ। समुहें नाच करावै तहाँ॥
जंत्र पखाउज औ जत बाजा। सुर मादर रवाब भल साजा॥
बीना बेनु कमाइच गहे। बाजे अमृत तहँ गहगहे॥
चंग उपंग नाद सुर तूरा। महुअर वसि बाज भर पूरा॥
हुडुक बाज, डफ बाज जँभीरा। औ बाजहि वहु झाँझ मँजीरा॥
तंत वितंत सुभर घनतारा। बाजहिं सबक होइ झनकारा॥
जग-सिंगार मनमोहन पातुर नाचहिं पाँच।
वादसाह गढ़ छेका, राजा भूला नाच॥१२॥

[इस अवतरण मे कवि ने राजा की निर्भीकता का वर्णन किया है।]

सुलतान के द्वारा इतनी विशाल सेना लेकर आक्रमण किये जाने पर भी तथा इतना भयकर युद्ध होने पर भी राजा हृदय मे लेश मात्र भी उदासीन नहीं था। उसने राज द्वार पर जिसके सामने सुलतान ठहरा हुआ था अपना अखाड़ा सजाया। उसके सामने ही उसने वहाँ अपना नाच आदि कराया। पखावज, जन्त्र, सुरमण्डल, रवाव, वीणा, पिनाक, कुमाईच और अमृत आदि बाजे खूब वजाये गये। चंग, उपंग, नागसुर और तुरही आदि सब वज रहे थे और वंशी मे सुन्दर स्वर भरा जा रहा था। हुड़क वजाने के साथ डफ की गहरी ध्वनि थी। इसी के साथ झाँझ, मंजीरे वज रहे थे। तार और विना तार के वाजे और खड़ताल खूब झंकार करते हुए वजाये जा रहे थे। जिस शृगार से मन मोहित हो जाता था उसी शृंगार को किये हुए पाँच नर्तकियाँ नाच रही थी। उधर शाह ने गढ छेंक रखा था और इधर राजा नाच मे भूला हुआ था।

टिप्पणी—अखाड़ा—उस नृत्य, संगीत, वाद्यादि के आयोजनो को कहते थे जिसमे अनेक रंगरलियो और आमोद-प्रमोद का विधान रहता था। इस प्रकार के अखाडो का आयोजन युद्ध मे वहुत प्राचीन काल से होता आया है। तुलसीदास ने रामायण मे रावण की लका मे इसी प्रकार के अखाड़े की वर्णना की है। हम्मीर

काव्य मे भी इस प्रकार के अखाड़े का वर्णन आया है। चित्रावली मे भी इस प्रकार के अखाड़े का उल्लेख है।

जन्त्र—सब प्रकार के बाजे यन्त्र या जन्त्र कहलाते हैं।

पखावज—इस बाजे का उल्लेख कही प्राचीन ग्रन्थों में नहीं मिलता। इसका कारण यह है कि इसका प्रचार लोकगीतो के साथ ही होता था। इसलिए शास्त्रीय संगीत के प्रसग मे इसका उल्लेख नहीं मिलता।

आँउज—यह शब्द सम्भवतः आतोद्यय का विकृत रूप है। नाट्यशास्त्र मे आतोद्यय सम्भवतः बाजे का वाचक है। कुछ लोग इसे एक विशेष प्रकार का बाजा मानते हैं किन्तु निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता है।

सुरमण्डल—यह प्राचीन काल में एक प्रकार की वीणा के लिए प्रयुक्त होता था। इसी को सम्भवतः मत्तकोकिला भी कहते थे। यह इक्कीस तारों की वीणा होती थी।

रबाब—यह एक प्रकार की सारगी की कोटि का बाजा था। इस पर भारी कोटि के राग गाये जाते थे।

चंग—यह एक प्रकार की बड़ी खंजरी होती है।

उपंग—यह तुरही की कोटि का बाजा होता है।

नागसुरी—यह फूंक कर बजाये जाने वाला एक बाजा है।

महुबरी—यह सीग या लकड़ी का बना हुआ बाजा होता है जो अट्ठाइस अंगुल लम्बा होता है। इसके पतले सिरे पर ताँबे की बारीक नली होती है, कुछ लोग इसे सपेरे की बीन का पर्याय भी मानते हैं।

हुरुक—यह चमड़े से दोनो ओर मढ़ा रहता है और ढोल की तरह बजाया जाता है।

डफ—आजकल इसी के छोटे रूप को डफली कहते है।

तन्त्र वितन्त्—तार और बेतार के बने हुए बाजे।

बीजा नगर केर सब गुनी। करहि अलाप जैस नहिं सुनी॥
छवौ राग गाए सँग तारा। सगरी कटक सुनै झनकारा॥
प्रथम राग भैरव तिन्ह कीन्हा। दूसर मालकोस पुनि लीन्हा॥
पुनि हिंडोल राग मल गाये। मेघ मलार मेघ बरिसाये॥
पाँचवँ सिरि राग भल किया। छठवाँ दीपक बरि उठ दिया॥
ऊपर भये सो पातुर नाचहिं। तर भए तुरुक कमाने खाचहि॥
गइ माथे होइ उमरा झुमरा। तर भए देख मीर औ उमरा॥
सुनि सुनि सीस धुनहिं सब, कर मलि मलि पछिताहिं।
कब हम माथ चढ़हिं उहि नैनन्ह के दुख जाहिं॥१३॥

[इस अवतरण में कवि ने राजा के अखाड़े में अलापी जाने वाली राग-रागिनियो का परिगणन किया है।]

बीजा नगर के जो कलावंत थे वे विविध प्रकार की अलापे अलाप रहे थे, ऐसी अलापे जैसी किसी ने सुनी नही थी। ताल के साथ छः राग अलापे जा रहे थे। सारी सेना उस संगीत को सुन रही थी। पहले उन्होने भैरो राग अलापा। फिर मालकोस नामक राग गाया गया, फिर हिण्डोल राग गाया गया। मेघ-मलार राग के गाते ही बादल बरसने लगे। पाँचवाँ श्रीराग गाया जो बहुत ही सुन्दर था, छठा दीपक राग गाया। जिसके गाते ही दीपक जल उठे। ऊपर नर्तकियाँ नृत्य कर रही थी और नीचे तुर्क लोग कमाने खीच रहे थे। गढ के ऊपर तो झूमर नाच हो रहा था और गढ के नीचे मीर और उमरा एकत्रित थे।

सब लोग सुन-सुन कर सिर धुन रहे थे और हाथ मल-मल कर पछता रहे थे और सोच रहे थे कि हम इस गढ़ पर कब विजयी हों और कब हमारे नेत्रों के दुःख दूर हो जाएँ।

टिप्पणी—बीजानगर—विजयनगर को पहले लोग बीजानगर के नाम से पुकारते थे। विजयनगर के राजाओ की संरक्षकता में भारतीय संगीत की बड़ी उन्नति हुई थी। उसकी अपनी विशेषताएँ और मौलिकताएँ थी। आज भी वह कर्नाटक संगीत के नाम मे प्रसिद्ध है। यहाँ पर जायसी ने छ रागों के नाम इस प्रकार गिनाये हैं—भैरव राग, मालकोस राग, दीपक राग, हिंडोल राग, मेघ मलार, राग श्रीराग और दीपक राग।

कव हम माथ चढि उहि—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से अर्थ है कि हम गढ़ पर विजय कब प्राप्त करेगे। यह अर्थ लक्षण लक्षणामूलक है। इसका पाठान्तर दिया है, डाक्टर अग्रवाल ने 'कव हम हाथि चढहि यह पातरि' यह पाठ उतना साहित्यिक नही है जितना कि पहला।

प्रक्षिप्त

छवौ राग गावहि पातुरनी। औ पुनि छत्तीसौ रागिनी॥
औ कल्यान कान्हरा होई। राग बिहाग केदारा सोई॥
परभाती होइ उठै बँगाला। आसावरी राग गुनमाला॥
धनासिरी औ सूहा कीन्हा। भएउ बिलावत, मारू लीन्हा॥
राम कली, नट, गौरी गाई। धुनि खम्माच सो राग सुनाई॥
साम गूजरी पुनि भल भाई। सारँग औ बिभास मुँह आई॥
पुरबी, सिंधी, देस, बरारी। टोड़ी गोड़ सौ भई निरारी॥
सबै राग औ रागिनी, सुरै अलापहिं ऊँच।
तहाँ तीर कहँ पहँचै, दिस्टि जहाँ न पहुँच॥१४॥

[इस अवतरण मे कवि ने छत्तीस रागिनियो का परिगणन किया है ।]

नर्तकियाँ छः राग तथा छत्तीसो रागिनी गा रही है। कल्यान, काहनरा, विहाग, केदारा, परभाती, आसावरी, गुन माला, धनासिरी, सूहा, बिलावल, मारू, रामकली, नट, गौरी, खम्माच, गूजरी, सारग, विभास, पूरबी, सिन्धी, देशी, बरारी, टोरी, गौण्ड आदि रागिनियाँ सुर के साथ अलापी जा रही थी। जहाँ दृष्टि नही पहुँच रही थी वहाँ तीर कैसे फेके जाएँ इस चिन्ता मे तुर्क लोग परेशान थे।

टिप्पणी—इस अवतरण में कवि ने जितनी भी राग-रागिनियों का ज्ञान उसे था उन सबके नाम गिनाये है। यह अवतरण जायसी की परिगणनात्मक प्रकृति का अच्छा परिचायक है।

जहँवा सौंह साह कै दीठी। पातुरि फिरत, दीन्ह तहँ पीठी ॥
देखत साह सिघासन गूँजा। कब लगि मिरिग चाँद तोहि भूजा ॥
छाँडहि बान जाहि उपराहीं। का तै गरब करसि इतराही ?॥
बोलत बान लाख भए ऊँचे। कोइ कोट कोइ पौरि पहुँचे ॥
जहाँगीर कनहज कर राजा। ओहिक बान पातुरि के लागा ॥
बाजा बान, जाँघ तस नाचा। जिउ गा सरगट परा भुइँ साचा ॥
उड़सा नाच, नचनियाँ मारा। रह से तुरुक बजाइ कै तारा ॥
जो गढ़ साजै लाख दस, कोटि उठावै कोट।
बादसाह जब चाहै छपै न कौनिउ कोट ॥१५॥

[इस अवतरण मे कवि ने राजा के अखाड़े मे होने वाले नृत्य संगीत आदि की जो प्रतिक्रिया सुलतान के हृदय मे हुई उसका वर्णन किया है ।]

जिधर सुलतान की दृष्टि थी नर्तकी उधर पीठ किये फिरती थी। यह देखकर सुलतान अपने सिहासन पर गरज उठा। चाँद मृग का उपभोग कब तक करेगा। उसने आज्ञा दी कि ऐसे बाण चलाओ जो ऊपर जाएँ ताकि अभिमानी का सिर नीचा हो जाए और उसको मालूम हो जाए वह इतना गर्व करके क्यो इतरा रहा था। यह आज्ञा देते ही लाखो बाण ऊपर चल दिये थे। कोई कोटी पर, कोई पोरी पर पहुँच गये। जहाँगीर जो कि कन्नौज का राजा था उसका बाण नर्तकी की जाँघ में लगा। बाण लगते ही वह ऐसी नाची कि उसके प्राण स्वर्ग चले गए और उसका ढाँचा पृथ्वी पर गिर गया। नर्तकी के मरने से नृत्य उखड़ गया और तुर्क लोग बहुत प्रसन्न हुए। जो गढ़ दस लाख मनुष्यो से युक्त हो और करोड़ो मनुष्यों ने जिसका परकोटा बनाया हो, उसे भी यदि बादशाह नष्ट करना चाहे तो कोई उसकी रक्षा नही कर सकता है।

टिप्पणी—कब लगि······भूजा—यहाँ पर कवि की व्यंजना है कि राजा अब बहुत दिनों तक नृत्य-गीत आदि में लीन नही रह सकता। उसका नाश शीघ्र ही होने

वाला है। यहाँ पर काकुवैशिष्ट्य व्यंग्य है और रूपकातिशयोक्ति अलंकार है। रूपकातिशयोक्ति से वस्तु व्यंग्य है। इस प्रकार यहाँ पर दो ध्वनियो का संकर मालूम होता है।

राजै पौरि अकास चढाई । परा बाँध चहुँ फेर लगाई ॥
सेतुबँध जस राघव बाँधा । परा फेर, भुइँ भार न काँधा ॥
हनुवँत होइ सब लाग गोहारू । चहुँ दिसि ढोइ ढोइ कीन्ह पहारू ॥
सेत फटिक अस लागै गढ़ा । बाँध उठाइ चहूँ गढ़ मढ़ा ॥
खँड खँड ऊपर होइ पटाऊ । चित्र अनेक, अनेक कटाऊ ॥
सीढ़ी होति जाहिं बहु भाँति । जहाँ चढ़ै हस्तिन कै पाँती ॥
भ गरगज कस कहत न आवा । जनहुँ उठाइ गगन लेइ आवा ॥
राहु लाग जस चाँदहि, तस गढ़ लागा बाँध ।
सरब आगि अस बरि रहा, ठाँव जाइ को काँध ॥१६॥

[इस अवतरण में सुलतान के द्वारा गढ़ तक बाँधे गये बाँध की चर्चा की गई है।]

राजा ने गढ की पौरी आकाश तक ऊँची बना रखी थी। सुलतान ने उसके विरोध मे बाँध बाँधना शुरू किया। जिस प्रकार रामचन्द्र ने सेतु बन्ध बाँधा था वैसे ही हाथो-हाथ सामान ढोने का प्रबन्ध किया गया, कुछ भी बोझ पृथ्वी पर नही दिया जाता था। हनुमान की तरह सबने एक-दूसरे से चिल्लाकर पत्थर लाने की बात कह दी और चारो ओर से पहाड़ ढोये जाने लगे। सफेद पत्थरो को गढ करके बाँध उठाकर चारो ओर से गढ को मढ़ दिया। एक-एक खंड पर बराबर पटाव होने लगा, उसमे अनेक चित्र और अनेक कटाव बने थे। विविध प्रकार से सीढियाँ गढी गईं जिन पर हाथियो के समूह चढ जाते थे। उस बाँध मे ऐसा गरगज तैयार हो गया कि उसका वर्णन नही किया जा सकता। ऐसा लगता था कि उसे उठाकर आकाश तक ले जाया जायेगा।

जिस प्रकार राहु ने चन्द्रमा को ग्रहण किया था इसी प्रकार इस बाँध ने गढ को ग्रहण कर लिया। चारो ओर वह आग की तरह जलता हुआ दिखाई पड़ रहा था। उस जगह तक जाने का भार अपने ऊपर कौन ले।

टिप्पणी—पौरि अकास चढ़ाहि—व्यंजना है कि गढ़ बहुत ऊँचा था जिसके कारण सुलतान गढ़ को तोड़ नही पा रहा था। यहाँ पर स्वतःसम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंजना है।

राहु······काँध—यहाँ पर उपमा अलंकार है और उपमा अलकार से कवि ने बाँध की भयंकरता व्यंजित की है। अत. यहाँ पर कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अलंकार से वस्तु व्यजना है।

राज सभा सब मतै बईठी । देखि न जाइ, मूँदि गइ दीठी ॥
उठा बाँध, चहुँ दिसि गढ़ बाँधा । कीजै बेगि भार जस काँधा ॥
उपजै आगि आगि जस बोई । अब मत कोइ आन नहि होई ॥
भा तेवहार जौ चाँचरि जोरी । खेलि फाग अब लाइय होरी ॥
समदि फाग मेलिय सिर धूरी । कीन्ह जो साका चाहिय पूरी ॥
चँदन अगर मलयगिरि काढ़ा । घर-घर कीन्ह सरा रचि ठाढ़ा ॥
जौहर कहँ साजा रनिवासू । जिन्ह सत हिये कहाँ तिन्ह आँसू ॥
पुरुषन्ह खड़ग सँभारे चँदन खेवरे देह ।
मेहरिन्ह सेंदुर मेला, चहहि भई जरि खेह ॥१७॥

[इस अवतरण में राजा रतनसेन की अपने मन्त्रियों से मन्त्रणा का वर्णन किया गया है ।]

रतनसेन ने राजसभा की ओर उसमें मन्त्रियों से मन्त्रणा करते हुए कहा, हमे कुछ दिखाई नही पड़ता है । हमारी दृष्टि बन्द हो गई है । चारों ओर से बाँध बाँधकर गढ़ को बाँध लिया है । जो भार हमने ग्रहण किया है उसको निभाना चाहिए । जैसी आग हमने बोई थी उससे वैसी ही आग उत्पन्न होगी । अब कोई दूसरा निश्चय नही किया जा सकता । वह त्यौहार हो चुका जिसमे चाँचर जोड़ी । अब होली मे आग लगाकर फाग खेलो, अब यदि आन पूरी करना चाहते हो तो सिर पर धूल चढ़ा कर फाग खेलो । यह निश्चय हो जाने पर मलयगिरि का चन्दन इकट्ठा किया गया । घर-घर मे चिता तैयार कर ली गई । रनिवास ने जौहर सजाया, जिनके हृदय मे सत होता है उन्हें मृत्यु से डर नही लगता । पुरुषो ने तलवार सँभाल ली और शरीर पर चन्दन मल लिया और औरतो ने सिन्दूर लगाया क्योकि वे जलकर भस्म होना चाहती थी ।

टिप्पणी—भा त्यौहार······होरी—यहाँ पर व्यंजना है कि हमने जो सुलतान से युद्ध मोल लिया था इसमे विजय-प्राप्ति का अवसर व्यतीत हो चुका । अब बलिदान का अवसर आया है । यहाँ पर वाक्यगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है ।

जिन्हि······आँसू—कहाँ पर काकुवैशिष्ट्य व्यंग्य है । कवि की व्यंजना है कि जो लोग सत्यनिष्ठ होते है उन्हें मृत्यु से भय नही लगता, वे सहर्ष आत्म-बलिदान करने के लिए प्रस्तुत रहते है ।

पुरुषन्ह······देह—कवि की व्यंजना है कि पुरुषों ने तो जीवन की आशा त्याग कर आत्म-बलिदान के लिए पूरी तैयारी कर ली और आमरण युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गये ।

मेहरिन्ह······मेला—इसकी व्यंजना है कि स्त्रियाँ अपने सतीत्व की रक्षा के

लिए आत्म-बलिदान के लिए कटिबद्ध हो गयीं। यहाँ पर स्वतःसम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंग्य है।

आठ बरिस गढ छेका रहा। धनि सुलतान कि राजा महा ॥
आइ साह अँबराव जो लाए। फरे झरे पै गढ़ नहिं पाए ॥
जो तोरौ तो जौहर होई। पदमिनि हाथ चढ़ै नहिं सोई ॥
एहि बिधि ढील दीन्ह तब ताँईं। दिल्ली तें अरदासैं आईं ॥
पछिहँ हरेव दीन्हि जो पीठी। सो अब चढ़ा सौंह कै दीठी ॥
जिन्ह भुइँ माथ, गगन तेइ लागा। थाने उठे, आव सब भागा ॥
जहाँ साह चितउर गढ़ छावा। इहाँ देस अब होइ परावा ॥
जिन्ह जिन्ह पंथ न तृन परत बाढ़े बेर बबूर।
निसि अँधियारी जाइ तब बेगि उठै जो सूर ॥१८॥

[इस अवतरण मे कवि ने उस समय की दीर्घता का निर्देश किया है जिसमे सुलतान गढ़ को घेरे हुए पड़ा रहा।]

सुलतान आठ वर्ष तक गढ़ को घेरे पड़ा रहा। पता नही कि यह सुलतान का बड़प्पन था या राजा का। राजा ने आक्रमण के समय जो आम के पेड़ लगाये थे वे इतने बड़े हो गये कि उनमे फल आकर झड़ भी गये किन्तु सुलतान को गढ नही मिला। वह सोचता था कि गढ को तोड़ते ही जौहर हो जायेगा और पद्मिनी फिर नही मिलेगी। इसलिए उसने तब तक आक्रमण मे ढील डाल रखी जब तक कि दिल्ली से प्रार्थना-पत्र नही आ गया कि पश्चिम मे जिस हिरात ने पहले पीठ दिखा दी थी वह अब सामने आँख दिखाकर चढ आया है। जिनका मस्तिष्क धरती मे रहता था अब आकाश मे उठने लगा है। थाने उठ गये है और सब भागते चले आ रहे हैं। इधर शाह चित्तौडगढ घेरे पडा था और उधर सारा देश पराया हुआ जा रहा था। जिस-जिस मार्ग मे घास नही उगती थी वहाँ अब बबूल आदि के पेड़ उगाये गये है। रात्रि का अन्धकार तब दूर होगा जब सूर्य शीघ्रता से उदय होगा।

टिप्पणी—धनि······महा—कवि की व्यंजना है कि सुलतान बड़ा साहसी और जिद्दी था कि आठ वर्ष तक गढ पर घेरा डाले पड़ा रहा और राजा बड़ा शक्तिशाली और वीर था जिसके गढ को आठ वर्ष मे भी बादशाह तोड़ न सका। यहाँ पर काकुवैशिष्ट्य व्यंग्य है।

आई······पाएँ—यहाँ पर स्वतःसम्भवी वस्तु से कवि ने यह व्यंजना की है कि सुलतान बड़े दीर्घकाल तक गढ़ को घेरे पडा रहा और गढ़ को तोड़ न सका।

जिन्ह······लागा—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से कवि ने यह व्यंजित किया है कि जो बहुत नीच थे और सुलतान से डरते थे वे निर्भय होकर स्वतन्त्र सत्ता को स्थापित करने मे लगे है।

जेहि जेहि······बबूर—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। कवि की व्यंजना है कि जहाँ पर मार्ग में नाममात्र की बाधाएँ नहीं थी, वहाँ पर बड़े-बड़े शत्रु घेरा डाले पड़े हैं। यह अर्थ लक्षण लक्षणा जन्य है।

निश······सूर——कवि की व्यंजना है कि निराशा का अन्धकार तब दूर होगा जबकि वह उनके प्रति दमन की नीति अपनायेगा। यहाँ पर भी अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से यह अर्थ लिया गया है। कुछ लोग यहाँ पर स्वतःसम्भवी वस्तु से उपमा अलंकार व्यंग्य मानने के पक्ष मे हैं।

विशेष—इस अवतरण मे कवि ने व्यंजनात्मक पद्धति का प्रयोग किया है।

शब्दार्थ—अर्ज दास्त=विनती या प्रार्थना।

हरेव=हिरात।

डाक्टर अग्रवाल के अनुसार, उत्तर-पश्चिम में उस समय तीन सूबे थे—(१) गजनी, (२) हिन्दुकुश के पश्चिम मे हिरात, (३) खुरासान। अलाउद्दीन ने गजनी तक विजय प्राप्त की थी अतः जायसी का यह लिखना यथार्थ है कि हिरात के शासकों ने अलाउद्दीन के साम्राज्य को धीरे-धीरे दबोचने का प्रयत्न किया था।

राजा बादशाह मेल खण्ड

सुना साह अरदासैं पढ़ी। चिन्ता आन आनि चित चढ़ी ॥
तौ अगमन मन चीतै कोई। जौ आपन चीता किछु होई ॥
मन झूठा, जिउ हाथ पराए। चिन्ता एक हिये दुई ठाएँ ॥
गढ़ सौ अरूझि जाइ तब छूटै। होइ मेराव, कि सो गढ़ टूटै ॥
पाहन कर रिपु पाहन हीरा। बेधौं रतन पान देइ बीरा ॥
सुरजा सेती कहा यह मेउ। पलटि जाहु अब मानहु सेऊ ॥
कछु तोहि सौ पदमिनि नहि लेऊँ। चूरा कीन्ह छाँड़ि गढ़ देऊँ ॥
आपन देस खाहु सब औ चंदेरी लेहु।
समुद जो समदन कीन्ह तोहिं तेपाँचौ नग देहु ॥१॥

[इस अवतरण मे दिल्ली की सूचना पर सुलतान को विक्षिप्त दिखलाया गया है।]

दिल्ली की विज्ञप्ति पढी गई और बादशाह ने उसको सुना। उसके सुनते ही उसे चित्तौडगढ़ की चिन्ता के स्थान पर दूसरी चिन्ता ने घेर लिया। यदि अपना सोचा हुआ ही मनुष्य कर सके, तो वह भविष्य की चिन्ता करे, अन्यथा व्यर्थ है। वह मन झूठा है, जो दूसरे के अधीन है। वह दो स्थानों में रहकर एक की बात सोच पाता है। सुलतान सोचने लगा कि गढ़ से उलझ कर तभी छूटा जा सकता है जबकि या तो मेल हो या गढ़ टूट जाए। पत्थर का वैरी हीरे की भाँति पत्थर ही होता है। मैं भी इस रतनसेन को सम्मानित करके पकड़ूँगा। सुलतान ने सरजा से यह भेद किया, जिस युक्ति से राजा पलट जाए, और अब भी सेवा मान ले वह युक्ति करनी चाहिए। उससे यह कह दूँ कि मै पद्मिनी नही लूँगा। यद्यपि गढ़ को चूरा कर दिया है, उसको भी छोड दूंगा। अपने देश का निश्चल उपभोग करने के अतिरिक्त मैं तुम्हें चन्देरी भी दे दूँगा, किन्तु इसके बदले मे तुम मुझे वे पाँचो रत्न दे दो, जो समुद्र ने तुम्हे विदा के समय दिए थे।

टिप्पणी—तौ……होई—कवि की व्यंजना है कि मनुष्य सोचता कुछ है और होता कुछ और है अतएव मनुष्य की चिन्ता करना व्यर्थ है। यह स्वतःसम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंग्य है।

पाहन······हीरा—कवि की व्यंजना है कि बलवान शत्रु को बलवती युक्ति से मारना चाहिए। यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है।

बेधो······बीरा—रतन मे शब्द शक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है। और 'पान देइ' मे पद गत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। लक्ष्यार्थ है 'सम्मान देकर'। सम्पूर्ण पंक्ति का व्यंग्यार्थ है कि रतनसेन को सम्मान देकर परास्त करना चाहिए।

सुरजा पलटि सिंघ चढ़ि गाजा। अज्ञा जाइ कही जहँ राजा।।
अबहूँ हिये समुझु रे, राजा। बादसाह सौ जूझ न छाजा।।
जेहि कै देहरी पृथिवी सेई। चहै तौ मारै औ जिउ लेई।।
पिंजर माँह ओहि कीन्ह परेवा। गढ़पति सोइ बाँच कै सेवा।।
जौ लगि जीभ अहै मुख तोरे। सँवरि उघेलु बिनय कर जोरे।।
पुनि जौ जीभ पकरि जिउ लेई। को खोलै, को बोलै देई? ।।
आगैं जस हमीर मैमता। जौ तस करसि तोर भा अंता।।
देखु! कालिह गढ़ टूटै, राज ओही कर होइ।
करु सेवा सिर नाइकै, घर न घालु बुधि खोई।।२।।

[इस अवतरण में कवि ने सरजा द्वारा सुलतान का संदेश राजा तक पहुँचाने की बात कही है।]

सरजा शाह के यहाँ से लौट कर अपने सिंह पर चढ कर गरजा और जहाँ राजा रतनसेन था वहाँ जाकर शाह का सन्देश कहा। हे राजा! अब भी मन मे समझ ले, सुलतान से युद्ध करना शोभा नही देता। जिसके द्वार पर तुमने पृथ्वी की सेवा की वह अगर चाहे तो मार करके प्राण ले सकता है, वह तुम्हें मारे या जीवनदान दे। उसने तुझे पिंजरे का पक्षी बना दिया है। ऐसा गढपति वही बच पाता है जो सेवा करता है। जब तक तुम्हारे मुख मे जीभ है तब तक हाथ जोड़ कर विनय करते हुए गढ का द्वार खोल दो, बाद को जब वह जीभ पकड़ कर प्राण ले लेगा तो फिर कौन द्वार खोलेगा और कौन बोलेगा। और यदि तू अभिमानी हमीर की तरह करना चाहता है तो वैसा कर ले किन्तु तेरा अन्त हो जाएगा।

समझ ले कल गढ टूटेगा और राज्य उसी बादशाह का होगा। सिर झुका कर सेवा कर, बुद्धि खोकर के अपना घर बर्बाद न कर।

टिप्पणी—पिंजर······परेवा—कवि का व्यंग्यार्थ है कि सुलतान ने तुम्हारे गढ को चारों तरफ से घेर करके पिंजड़े के समान कर दिया। तुम उसमें निस्सहाय पक्षी के समान बन्द हो। यहाँ पर स्वतःसम्भवी वस्तु से उपमा अलंकार व्यंग्य है।

तस—मे अर्थान्तर तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। व्यंग्यार्थ है जैसा कि हमीर ने अभिमानपूर्वक सुलतान से युद्ध किया था। वह रणथम्भौर के राजा थे। उन्होने सन्धि

करके झुकने की अपेक्षा अलाउद्दीन से लोहा लेकर वीर गति को प्राप्त होना अधिक उपयुक्त समझा था।

सरजा ! जौ हमीर अस ताका। ओर निवाहि बाँधि गा साका॥
हौ सक-बँधी ओहि अस नाही। हौं सो भोज विक्रम उपराही॥
बरिस साठ लगि साँठि न खाँगा। पानि पहार चुवै विनु माँगा॥
तेहि ऊपर जो पै गढ टूटा। सत सकबन्दी केर न छूटा॥
सोरह लाख कुवर है मोरे। परहि पतँग जस दीप-अँजोरे॥
जेहि दिन चाँचरि चाहौ जोरी। समदौ फागु लाइ कै होरी॥
जौ निसि बीच, डरै नहि कोई। देखु तौ काल्हि काह दहुँ होई॥
अबही जौहर साजि कै कीन्ह चहौं उजियारा।
होरी खेलौं रन कठिन, कोइ समेटै छार॥३॥

[इस अवतरण में सरजा के प्रत्युत्तर मे कहे गए राजा के वचनो को निवद्ध किया गया है।]

राजा ने सरजा से कहा, हे सरजा ! जैसा हमीर का मन था वैसे उसने अन्त तक अपनी आन का निवाह किया। मैं उसके समान केवल आन वाला ही नहीं हूँ, मैं तो भोज और विक्रम से भी अधिक बुद्धिमान और वीर हूँ। मेरे गढ मे साठ वर्ष तक अन्न की कमी न होगी। मेरे यहाँ विना माँगे ही पहाड़ से पानी झरता है और इतने पर भी यदि गढ टूट भी जाएगा तो भी मेरे जैसी आन वाले मनुष्य की मर्यादा नही टूट सकती। मेरे सोलह लाख जवान है। वे इस प्रकार युद्ध में मरने के लिए तैयार है जिस प्रकार दीपक मे पतिगा मरने के लिए तैयार रहता है। जिस दिन चाहूँगा उस दिन उन्मत्त रूप से होली जला कर फाग खेलूँगा। अभी रात्रि बीच मे हैं, मैं डरता नही, मालूम नही, देखो कल क्या होगा। अभी मैं जौहर सजा करके प्रकाश करना चाहता हूँ और युद्ध मे भयंकर होली खेलना चाहता हूँ। बाद मे भस्म चाहे कोई बटोर ले।

टिप्पणी—हौं······उपराही—राजा व्यंजित करना चाहता है कि वह भोज और विक्रम के समान वैभव सम्पन्न सम्राट् है जिसकी वीरता की कीर्ति कौमुदी कण-कण मे व्याप्त है। यहाँ पर कवि निवद्ध पात्र प्रौढ़ोक्ति सिद्ध स्वतःसम्भवी वस्तु से उपमा अलंकार व्यंग्य है। सौ मे पदगत अर्थान्तिर संक्रमित वाच्य ध्वनि है।

जौ····· होई—राजा की व्यंजना है कि रात में मैं बडा भयंकर आक्रमण करूँगा। देखो कही सुलतान को ही मुँह की न खानी पड़े। कवि निवद्ध पात्र स्वत. सम्भवी वस्तु से वस्तु ध्वनि है। इस पक्ति का पाठान्तर इस प्रकार है—

'जो दंइ गिरिहनि राखत जीउ'

उस अवस्था मे अर्थ होगा जो अपनी पत्नी देकर अपने प्राणों की रक्षा करता हो वह बड़ा नपुंसक होता है।

अनु राजा सो जरै निम्राना। बादसाह कै सेव न माना ॥
बहुतन्ह अस गढ़ कीन्ह सजवाना। अन्त भई लंका जस रवना ॥
जेहि दिन वह छेंकै गढ घाटी। होइ अन्न ओही दिन माटी ॥
तू जानसि जल जुवै पहारू। सो रोवै मन सँवरि सँघारू ॥
सूतहि सूत सँवरि गढ रोवा। कस होइहि जो होइहि ढोवा ॥
सँवरि पहार सो ढारै आँसू। पै तोहि सूझ न आपन नासू ॥
आजु काल्हि चाहै गढ टूटा। अबहुँ मानु जौ चाहसि छूटा ॥
हैं जो पाँच नग तो पहँ लेइ पाँचो कह भेंट।
मकु सो एक गुन मानै, सब ऐगुन धरि मेट ॥४॥

[इस अवतरण मे राजा के प्रति सरजा का प्रत्युत्तर प्रस्तुत किया गया है।]

सरजा ने राजा से कहा हे राजा! जो सुलतान की सेवा नही करेगा उसे अन्त मे भस्म ही होना पडेगा। बहुतो ने इस प्रकार अपने गढ को सजाया था किन्तु अन्त मे उनकी दशा रावण की लंका की भाँति हुई। जिस दिन वह गढ की घाटी घेर लेगा उसी दिन अन्न सब मिट्टी हो जाएगा। तू समझता है कि पहाड से पानी चूता है किन्तु वास्तव मे वह भावी सहार की कल्पना कर रोता है। यदि अभी से पहाड के एक-एक सोते से गढ इतना रो रहा है तो जब धावा होगा तो फिर क्या हाल होगा। हे राजा, पहाड जिस विनाश की कल्पना करके रोता है, तुझे अपना यह विनाश नही दिखाई देता। आजकल मे गढ टूटना ही चाहता है। यदि मुक्त होना चाहता है तो अब भी मान जा। तेरे पास जो पाँच रत्न है उनको भेंट रूप मे लेकर बादशाह को समर्पित कर दे, शायद वह तुम्हारे इस एक गुण से ही प्रसन्न होकर तुम्हारे सारे अवगुणो को भूल जाएँ।

टिप्पणी—अन्त······रबना—यहाँ पर उपमा अलकार से वस्तु व्यंग्य है। विनाश की अतिशयता व्यजित करना ही कवि का लक्ष्य है।

अनु सरजा को मेटै पारा। बादसाह बड़ अहै तुम्हारा ॥
ऐगुन मेटि सकै पुनि सोई। औ जो कीन्ह चहै सो होई ॥
नग पाँचौ देइ देउँ भँडारा। इसकँदर सौ बाँचै दारा ॥
जौ यह वचन न माथे मोरे। सेवा करौ ठाढ कर जोरे ॥
पै बिनु सपथ न अस मन माना। सपथ बोल वाचा परवाँना ॥
खंभ जो गरूआ लीन्ह जग भारू। तोहिर बोल नहि टरै पहारू ॥
नाव जो माँझ भार हुँत गीवा। सरजै कहै मँद वह जीवा ॥
सरजै सपथ कीन्ह घल बैनहि मीठै मीठ।
राजा कर मन माना, माना तुरत बसीठ ॥५॥

[इस अवतरण में राजा का प्रत्युत्तर सरजा के प्रति प्रस्तुत किया गया है ।]

राजा ने कहा—ठीक है सरजा । इस बात को कौन मेट सकता है कि तुम्हारा बादशाह बहुत बडा है । यह भी मैं जानता हूँ कि वह अवगुण भी मिटा सकता है, और जो करना चाहता है वही कर भी सकता है । उसे मैं पाँचों नग और अपने भण्डार की सामग्री भी दे सकता हूँ यदि इसी प्रकार सिकन्दर से दारा की मुक्ति हो जाए (अर्थात् वह मुझसे वैर शोधन न करे और मेरी रानी न मांगे, अगर यह बात है तो उसकी बात मुझे मान्य है ।) मैं खड़े-खड़े हाथ जोड़कर उसकी सेवा कर सकता हूँ किन्तु बिना शपथ के मैं उसकी बात नही मान सकता क्योंकि शपथ के साथ कही हुई बात ही प्रमाण होती है । सरजा ने कहा, जो स्तम्भ के समान संसार के भार का वहन करते है उनका बोल नही टलता । चाहे पहाड़ टल जाए उनका पहाड रूपी बोल नही टलता है । सरजा ने कहा कि बीच भँवर मे व्यापारी को धोखा देना नीच व्यक्तियो का काम है ।

सरजा ने मीठे-मीठे शब्दो मे शपथ खा ली । राजा ने उसकी बातो का विश्वास मान लिया और उसने तुरन्त दूध भेजना स्वीकार कर लिया ।

टिप्पणी—इसकन्दर……दारा—दारा अखामनी वंश का अन्तिम राजा था । सिकन्दर ने उसे परास्त किया था । इसकन्दर और दारा मे शब्दशक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि भी है । सिकन्दर सानी अलाउद्दीन की एक उपाधि थी और दारा की व्यंजना स्त्री भी है । व्यजना है कि यदि सुलतान हमारी रानी की माँग त्याग दे तो मैं उससे सन्धि करने के लिए प्रस्तुत हूँ ।

हँस कनक पीजर-हुँत आना । औ अमृत नग परस-परवाना ॥
औ सोनहार सोन के डाँडी । सारदूल रूपे के काँडी ॥
सो बसीठ सरजा लेइ आवा । बादसाह कहँ आनि मेरावा ॥
ए जगसूर-भूमि-उजियारे । बिनती करहि काग मसि-कारे ॥
बड़ परताप तोर जग तपा । नवौ खण्ड तोहि को नहीं छपा ॥
कोह छोह दूनौ तोहि पाहाँ । मारसि धूप, जियावसि छाहाँ ॥
जौ मन सूर चाँद सौं रूसा । गहन गरासा, परा मँजूसा ॥
भोर होइ जौ लागै उठहि रोर कै काग ।
मसि छूटै सब रैनि कै, कागहि केर अभाग ॥६॥

[इस अवतरण में राजा द्वारा सरजा को पाँचों नग भेट करने की बात वर्णित की गई है ।]

राजा ने सरजा को सोने के पिंजड़े के साथ हँस, अमृत, पारस पत्थर का नग तथा सोने के डाड़ी पर बैठा सुनहरा पक्षी एवं चाँदी के कटघरे मे बन्द शार्दूल लाकर

सौंप दिए। वह सरजा नाम का दूत ये रत्न बादशाह के पास ले आया और बोला, हे ससार के सूर्य एवं पृथ्वी को प्रकाशित करने वाले! कालिमा से काले कौए आप से विनती करते है कि आपका प्रताप महान् है और वह ससार मे तप रहा है। पृथ्वी के नवो खण्ड मे तुझसे कुछ छिपा नही है। तुझ मे क्रोध और दया दोनों ही हैं। तुम अपनी क्रोधरूपी धूल से मार देते हो और दया से जीवित कर देते हो और छाया से जीवित कर देते हो। यदि सूर्य के समान तुम चाँद के समान रतनसेन से रूठ गये तो उसे ग्रहण ने ग्रस लिया और मंजूषा ने कैद कर लिया। आपके प्रताप सूर्य से जब प्रातः होने लगती है तब कौए काँव-काँव करने लगते है। रात्रि की कालिमा छूट जाती है। कौए का ही यह अभाग्य है।

टिप्पणी—अजग······उजियारे—जग सूर में रूपक है और इस रूपक मे बादशाह का महान् प्रताप व्यंजित किया गया है। अतएव यहाँ पर कवि निवद्ध पात्र प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। भूमि उजियारे में अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। लक्षण-लक्षणा से अर्थ है कि संसार को अपने प्रताप से अपने अधीन रखने वाले। यहाँ पर बादशाह के प्रताप की अतिशयता ही व्यंग्य है।

काग······मसिकारे—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार से हिन्दुओं के प्रति घृणा भाव की व्यंजना की गई है। कवि ने राजा रतनसेन की क्षुद्रता ही प्रधान रूप से व्यंजित की है। अतएव यहाँ पर कवि निवद्ध पात्र प्रौढोक्ति सिद्ध अलकार से वस्तु व्यंग्य है।

मारसिधूप—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। सुलतान के क्रोध की तीक्ष्णता व्यंग्य है।

जियावसि······छाहाँ—वाच्यार्थ है कि तेरी छाँह प्राणियों को जीवन दान देती है। छाँह का अर्थ यहां पर लक्षण-लक्षणा से कृपा लिया गया है। यहाँ पर पदगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है।

जो······मंजूषा—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलकार है। इस अलंकार से शाह के प्रताप की अतिशयता ही व्यंग्य है। यहाँ पर भी कवि निवद्ध पात्र प्रौढोक्ति सिद्ध अलकार से वस्तु व्यंग्य है।

भोर······काग—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार है और उस अलंकार से सुलतान के प्रताप की अतिशयता ही व्यंग्य है।

मसि···...अभाग—कवि की व्यजना है कि शाह के प्रताप सूर्य के प्रभाव से समस्त प्रजा की आत्मा प्रकाशित हो उठती है, वे प्रसन्नता की उज्ज्वलता से प्रकाशित हो उठते हैं। किन्तु विरोधी शत्रु अपने द्वेष भाव की कालिमा नही त्याग पाते हैं। यह उनका वडा दुर्भाग्य है। रैनि यहाँ पर दु.खी प्रजा का उपमान है और काग द्वेष भावना युक्त शत्रु का प्रतीक है। यहाँ पर भी रूपकातिशयोक्ति अलंकार से वस्तु व्यंग्य है।

करि विनती अज्ञा अस पाई। "कागहु कै मसि आपुहि लाई॥
"पहिलेहि धनुप नवै जव लागै। काग न टिकै, देखि सर भागै॥
"अवहूँ तेसर सौहैं होहीं। देखैं धनुक चलहि फिर त्योंही॥
"तिन्ह कागन्ह कै कौन वसीठी। जो मुख फेरि चलहि देइ पीठी॥
"जो सर सौह होहि संग्रामा। कित वग होहि सेत वै सामा॥
"करै न आपन ऊजर केसा। फिरि-फिरि कहै परार सँदेसा॥
"काग नाग ए दूनौ वाँके। अपने चलत साम वै आँके॥"
कैसेहु जाइ न मेटा भएउ साम तिन्ह अंग।
सहस वार जौ धोवा तवहुँ न गा वह रंग॥७॥

[इस अवतरण मे शाह ने अपने शत्रुओ और विरोधियो पर व्यंग्य किया है।]

शाह ने सरजा से कहा, कौओ ने स्वयं अपने आप ही कालिमा पोती है। आरम्भ में जब धनुप चढाया गया तो उसके सामने वाण देख करके कौए टिक नही पाए। अब भी वे उस वाण के सामने नही आते है। धनुप देखकर फिर वैसे ही पीठ दिखा कर भाग जाते है। उन कौओ का सन्देशा ही क्या दिया जा सकता है। वे तो पीठ फेर कर ही चले जाते है। यदि वाण के सामने सग्राम करते तो वे श्वेत वगुले काले कैसे हो सकते थे। वे अपने को उज्ज्वल नही करना चाहते। वार-वार दूसरो का सन्देश कहता है। कौए और नाग ये दोनो ही वडे तीक्ष्ण होते है। कालिमा प्रकट करना उनका स्वभाव है।

उनका शरीर काला हो चुका है। वह कालिमा किसी प्रकार नही मेटी जा सकती। यदि सौ वार धोया जाए तो भी उनका काला रंग नही छूट सकता।

टिप्पणी—कागौ······लाई—वाच्यार्थ है कि कौओ के भी कालिमा आपने ही लगाई है। व्यजना है कि शत्रु राजाओ मे भी द्वेष भाव की कालिमा उन्होने अपने आप अपने मन मे रखी है। अतएव इसमे वादशाह का कोई दोष नही है। यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार से वस्तु व्यंग्य है।

पहिलेहि······भागै—व्यंजना है कि रतनसेन और उनके साथी कायर नही हैं। कायर धनुप वाण देखकर ही पीठ दे देता है। वे अव भी वाण के सामने हो सकते हैं। यहाँ पर कवि निवद्ध पात्र की स्वतःसम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंग्य है।

तिन······पीठि—कवि की व्यंजना है कि कायर शत्रुओ की वसीठी का कोई विश्वास नही होता। किन्तु जो वीर है उनका वड़ा विश्वास होता है। वे जो कह देते है वे वही कर देते हैं। यहाँ पर लक्ष्योपमा से वस्तु व्यंग्य है।

जो······सामा—कवि की व्यंजना है कि जो क्षत्री वीर लडाई मे तीर के सामने आते है वे श्वेत वगुले काले कैसे कहे जा सकते है। अर्थात् जो वीरतापूर्वक

सदैव ही युद्ध करने के लिए तैयार रहते है उन्हे कायर न कह कर वीर ही कहना चाहिए। यहाँ काकुवैशिष्ट्य व्यंग्य है।

कर······सन्देशा—कौए का स्वभाव होता है कि वह अपने शरीर को उज्ज्वल नही बनाता, वह बार-बार सन्देशा लिए इधर-उधर फिरता है। कवि की व्यंजना है कि शत्रु अपने हृदय को शुद्ध नही करता। वह सन्देशों के दाँव-पेच चलाया करता है।

काग······आँके—कवि की व्यजना है कि शत्रु कौए और नाग की तरह तीक्ष्ण होता है। वह समय पाकर छल किए बिना नही रह सकता। यहाँ लक्ष्योपमा से वस्तु व्यग्य है।

कैसा······रंग—कवि की व्यजना है कि शत्रु के मन को कितना भी पवित्र किया जाए, परन्तु उसके मन का द्वेषभाव नही निकलता।

"अब सेवा जो आइ जोहारे। अबहूँ देखु सेत की कारे॥
"कहौ जाइ जौ साँच न डरना। जहवाँ सरन नाहि तहँ मरना॥
"काल्हि आव गढ़ ऊपर भानू। जोरे धनुक, सौह होइ बानू"॥
पान बसीठ मया करि पावा। लीन्ह पान, राजा पहँ आवा॥
जस हम भेंट कीन्ह गा कोहू। सेवा माँझ प्रीति औ छोहू॥
काल्हि साह गढ़ देखै आवा। सेवा करहु जैस मन भावा॥
गुन सौ चले जो बोहित बोझा। जहँवाँ धनुक बान तहँ सोझा॥
भा आयुस अस राज घर, बेगि दै करहु रसोइ।
ऐस सुरस रस मेरवहु जेहि सौ प्रीति-रस होइ॥८॥

[इस अवतरण मे सरजा की उक्ति सुलतान के प्रति है।]

सरजा कहता है कि अब उन्होंने मेल कर लिया है, तू अब भी देख सकता है कि वह दिल के साफ है, या कपटी है। मै उनसे जा करके कहता हूँ कि अब तुम्हे डर नही है। जब शत्रु राजा दूसरे राजा की शरण ले लेता है तब उसे भय नही रहता। मै उनसे कहूँगा कि कल गढ पर सूर्य के समान तेजस्वी सुलतान आएँगे। अगर उनसे गढ़ मे आने पर कोई दुष्टता की तो बाण सामने होगा। इस प्रकार दूत ने सुलतान से कृपा और प्रतिष्ठा प्राप्त की और सन्देश लेकर राजा के पास पहुँचा, और बोला—हमने जैसे ही जाकर भेट की शाह का क्रोध चला गया। सेवा से ही प्रेम और कृपा प्राप्त होती है। कल बादशाह गढ देखने आएँगे। जैसी इच्छा हो वैसी सेवा कर लो। जिस जहाज मे बोझा भरा हुआ होता है वह रस्सी से चलता है। व्यंजना है कि जिस राजा का प्रभुत्व और दायित्व अधिक होता है और शक्ति कम होती है उसे दूसरे का आश्रय लेना पड़ता है। जहाँ धनुष होता है वहाँ सीधा ही बाण लगाया

जाता है। व्यजना है कि यदि राजा ने किसी प्रकार का कपट किया तो फिर उसे वाण का शिकार वनाया जाएगा।

यह सुनकर राजा ने राजगृह मे आज्ञा दी कि शीघ्र ही रसोई तैयार की जाए और ऐसे सरस व्यजन वनाए जाएँ जिससे प्रेम रस हो।

टिप्पणी—जोरे धनुक······वानु—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। धनुक का अर्थ हे कुटिल और वानु का अर्थ है कठोर या घातक। कवि की व्यजना है कि यदि राजा ने कुटिलता की तो शाह को कठोर वनकर फिर युद्ध करना पड़ेगा।

बादशाह भोज खण्ड

छागर मेढ़ा बड़ औ छोटे। धरि-धरि आने जहँ लगि मोटे ॥
हरिन, रोझ, लगना बन बसे। चीतर गोइन, झाँख औ ससे ॥
तीतर, बटई, लवा न बाँचे। सारस, कूज, पुछार जो नाचे ॥
धरे परेवा पंडुक हेरी। खेहा, गुडरू और बगेरी ॥
हारिल, चरग, चाह बँदि। बन-कुक्कुट, जल-कुक्कुट धरे ॥
चकई चकवा और पिछारे। नकटा, लेदी, सोन सलारे ॥
मोट बड़े सो टोइ-टोइ धरे। ऊबर-दूबर खुरुक न, चरे ॥
कंठ परी जब छूरी रकत दुरा होइ आँसु।
कित आपन तन पोखा भखा परावा माँसु ?॥१॥

[इस अवतरण मे कवि ने अपने समय के अच्छे-से-अच्छे पशुओ के माँस के बने हुए भोजन की लिस्ट दी है।]

छोटे-वड़े छागर और मेड़े जो काफी मोटे थे पकड कर लाए गए। हिरन, रोझ, लगना, चीतल, गोन, झाँक, खरगोश ये सब पशु पकड़ कर लाए गए। पक्षियो मे तीतर, वटेर, लवा, सारस, कुँज यहाँ तक कि मोर और पुछार भी नही छोड़े गए। कबूतर, पण्डुक खेरा, गुडरू और ऊसर, बगेरी नामक पक्षी खोज कर लाए गए। हारिल और चरग भी लाए गए। वन मुर्गी और जल मुर्गी भी पकड़ी गई और लाई गई। चकवा और चकवी और पिद्दे नकटा, लेदी, सोन और सलारे नामक पक्षी लाए गए। जो भी मोटे और वड़े पशु-पक्षी थे उन्हे वीन-बीन करके तथा खोज-खोज कर लाया गया। जो कमजोर तथा दुवले-पतले थे उन्हे कोई चिन्ता न थी। वे चर रहे थे। जव उनके कण्ठ पर छुरी पड़ी तो रक्त आँसू बन कर ढुलक गया। अपना शरीर जान करके पोषण किया था, परन्तु वह दूसरो के लिए माँस बन गया।

टिप्पणी—रोझ=नील गाय। **लगना**=एक प्रकार का मृग।

चीतर=आजकल इसे चीतक कहते है। यह एक प्रकार का मृग है।

झाँक=एक प्रकार का वड़ा वन मृग होता है।

खेहा=एक प्रकार की वटेर की कोटि की एक चिड़िया होती है।

गुडरू=एक प्रकार का पक्षी होता है।

बगेरी—इसे संस्कृत में भारद्वाज कहते है।

चरग—यह बाज की कोटि की एक चिड़िया होती है।

धरे माछ पढ़िना औ राहू। धीमर मारत करै न छोहू॥
सिधरी, सौरि, धरी जल गाढें। टँगर टोइ-टोइ सब काढ़ै॥
सीगी भाकुर बिनि सब धरी। पथरी बहुत बाँव बनगरी॥
मारे चरख औ चाल्ह पियासी। जल तजि कहाँ जाहि जलवासी॥
मन होइ मीन चरा सुख चारा। परा जाल को दुख निरूवारा?॥
माँटी खाय मच्छ नहि बाँचे। बाँचहि काह भोग-सुख राँचे॥
मारै कहँ सब अस कै पाले। को उबार तेहि सरवर छाले?॥
एहि दुख काँटहि सारि कै रकत न राखा देह।
पंथ भुलाइ आइ जल बाझे झूठे जगत सनेह॥२॥

[इस अवतरण मे कवि ने भोजन के काम आने वाली विविध प्रकार की मछलियो की लिस्ट परिगणित की है।]

शाह के भोजन के लिए पढिन और रोहू मछलियाँ पकडी गई। धीमर इन मछलियो को मारते हुए तनिक भी दया नही करते। सँदा और सिलध नामक मछलियाँ जो जल मे भरी हुई थी उन्हे पकडा गया। टँगर को खोज-खोज कर पकडा गया। सीगी और माकुल यह सब बीन कर पकड़ी गई। पथरी बनगरी बाम ये सब पकडी गई। चरक और चाँद मछलियो को भी मारा गया। जलवासी बेचारे जल छोड कर कहाँ जाएँ। मनुष्य का मन भी सुखपूर्वक मछली की तरह चरा करता है। वह जाल मे फँसा है, उसका दु:ख कौन दूर कर सकता है। जब मिट्टी खाने वाली मछलियाँ नही बची तो सुख भोग मे रमे हुए मनुष्य को कौन बचा सकता है। मारने के लिए ही उन सबको खूब अच्छी तरह से पाला गया था। जो चतुर है वे अपने शरीर मे रक्त नही रखते, और जो मूर्ख है वे सन्मार्ग को भूल कर वासना के जल मे फँस कर माया जाल मे फँसते है।

टिप्पणी—जल''''''जलवासी—कवि ने यहाँ पर अपनी सहृदयता का परिचय दिया है। बडी विडम्बना है कि जीव इस ससाररूपी जल को त्याग कर कहाँ जाए। कवि की व्यजना है कि दुःख मनुष्य के लिए अवश्यम्भावी है। यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलकार से वस्तु व्यग्य है। बौद्धो के दु:खवाद का प्रभाव है।

बाचहि''''''राँचे—कवि की व्यजना है कि भोग का परिणाम दु:खद होता है। यहाँ पर काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यग्य है।

ऐहि—इसमे अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। उपादान लक्षणा से इसका अर्थ लिया गया है 'इस सासारिक'। पूरी पंक्ति की व्यंजना है कि जो बुद्धिमान है

वे अपने शरीर को साधना करके सुखा देते हैं और जो मूर्ख है वे उसके पोषण मे लगे रहते है।

देखत गोहूँ कर हिय फाटा। आने तहाँ होब जहँ आटा॥
तब पीसे जब पहिले धोये। कपरछनि माँडे, भलपोए॥
चढ़ी कराही, पार्काह पूरी। मुख महँ परत होहि सो चूरी॥
जानहुँ तपत सेत औ उजरी। नैनू चाहि अधिक वै कोंवरी॥
मुख मेलन खन जाहि बिलाई। सहस सवाद पो पाव जो खाई॥
लुचुई पोइ-पोइ घिउ-मेई। पाछे छानि खाँड-रस मेई॥
पूरि सोहारी कर घिउ चूआ। छुअत बिलाइ, डरन्ह को छूआ॥
कही न जाहि मिठाई कहत मीठ सुठि बात।
खात अघात न कोई, हियरा जात सेराल॥३॥

[इस अवतरण मे कवि ने गेहूँ के खाद्य-पदार्थों का वर्णन किया है।]

जब गेहूँ पीसने के लिए चक्की पर लाया गया तो उसे देखकर गेहूँ का हृदय फट गया और सोचने लगा कि मैं वहाँ पर लाया गया हूँ, जहाँ पर कि पिस कर आटा हो जाना पडेगा। पहले गेहूँ को धोया गया और फिर उसको पीसा गया। कपड़े से छान कर फिर अच्छी तरह से मैदा बनाई गई और फिर उसे अच्छी तरह से पोंया गया। फिर कढाई को चढाया गया और उसमे पूडियाँ पकाई गई। वे पूड़ियाँ ऐसी थी जो मुँह मे पडकर चूर-चूर हो जाती थी। पकने पर वे गरम-गरम सफेद और उजली दिखाई पडती थी और वे मक्खन से भी अधिक मुलायम थी। वे मुख में डालते ही घुल जाती थी और खाने वाले को बड़ा स्वाद आता था। लुचुई करके घी मे डुबो दी गई, बाद को इच्छानुसार खाँड से खाई गई। पूरी और सुहारी ऐसी बनी हुई थी कि घी चू रहा था। छूते ही टूट जाती थी। इस डर से उन्हे कोई छूता नहीं था। मिठाइयो का तो वर्णन ही नही किया जा सकता था। उनकी बात करते ही मुँह मे पानी आ जाता था। उनकी जो मिठास आती थी उन्हे खाते हुए मन को शीतलता मिलती थी।

टिप्पणी—देखत······आटा—इस पंक्ति मे समासोक्ति अलकार है। कवि ने प्रस्तुत गेहूँ का वर्णन करते हुए अप्रस्तुत अध्यात्म की व्यजना की है।

चढ़े जो चाउर वरनि न जाही। बरन-बरन सब सुगँध बसाही॥
राम भौग औ काजर रानी। झिनवा, सदवा, दाउदखानी॥
वासमती, कजरी रतनारी। मधुकर, ढेला झीनासारी॥
छिउकाँदौ औ कवर बिलासू। राम बास आवै अति वासू॥

लौंग चूर लाची अति बाँके। सोन खरीका कपुरा पाके॥
कोरहन, बड़हन, जड़हन मिला। औ संसार तिलक खँडविला॥
धनिया देवल और अजाना। कहँ लगि बरनौं जावत धाना॥
सोंधे सहस बरन, अस सुगँध बसना छूटि।
मधुकर पुहुप जो बन रहे आइ परे सब टूटि॥४॥

[इस अवतरण मे कवि ने विविध प्रकार के चावलो की जातियो का वर्णन किया है।]

जो चावल पकने के लिए रखे गए थे वे अनेक वर्णो के थे। उनसे विविध प्रकार की सुगधियाँ निकल रही थी। उनमे विशेष रूप से राज भोग. काजर रानी, झिनवा, सदवा, दाउद, खानी, बासमती, कजरी रतनारी, मधुकर ढेला, झीना सारी, चिउकादे, कुँवर विलास, राम बाँस आदि से बड़ी सुगन्ध आ रही थी। लौंग, चूर लाची, सोन खरी, कपुरा, कोरहन, बडहन, जडहन, संसार तिलक, खण्ड विला, धनिया, देवल और अजाना और बहुत से जाति के चावलो के अतिरिक्त बहुत से ऐसे थे जिनकी जानकारी भी नही थी। जितने धान थे उन सबका कहाँ तक वर्णन किया जाए। सहस्रो जाति के वे चावल बड़े सोधे और सुगन्धित थे। भौरे जो फूलो के बन मे रहते थे वे सब आकर चावलों पर टूट पडे।

टिप्पणी—राय······भोग—यह एक प्रकार का बहुत छोटा सुगन्वित धान होता है।

काजर रानी—यह धान मिथिला मे अधिक बोया जाता है। मुजफ्फरपुर जिले में इसी को कुमौद कहते है।

रोदा—यह भी एक अच्छी कोटि का चावल होता है। यह अब भी बस्ती जिले मे पैदा किया जाता है। गोरखपुर मे बोया जाता है।

कपूर कान्त—इसमे कपूर जैसी खुशबू आती है।

लेजुँरि—मिथिला मे लाजी नामक जो धान होता है वह सम्भवत. यही है।

मधुकर—डा० अग्रवाल के अनुसार अब भी चम्पारन जिले मे पैदा होता है। यह एक अच्छी प्रकार का चावल होता है।

घृतकौदौ—यह भी एक अच्छी प्रकार का चावल होता है। इसमे बिना घी डाले हुए ही खुशबू आती है।

सगुनी—यह मिथिला मे पाये जाने वाला एक महीन चावल है। इसी प्रकार बेगनि पढनी, गढहन, जड़हन, बढहन आदि भी सब चावलो की किस्मे है। कुल मिलाकर जायसी ने सत्ताईस किस्मो के चावलो का वर्णन किया है।

निरमल माँसु अनूप बघारा। तेहि के अब बरनौं परकारा॥
कटुवा, बटवा मिला सुबासू। सीझा अनबन भाँति गरासू॥

बहुतै सोंधे घिउ महँ तरे। कस्तूरी केसर सौं भरे॥
सेधा लोन परा सब हाँडी। काटी कंदमूर कै आँडी॥
सोआ सोंफ उतारे घना। तिन्ह ते अधिक आव बसना॥
पानि उतारहि, ताकहि ताका। घीउ परेह माहि सब पाका॥
औ लीन्हें माँसुन्ह के खण्डा। लागे चुरै सो बड़-बड़ हंडा॥
छागर बहुत समूची धरी सरागन्ह भूँजि।
जो अस जेंवन जेवै उठै सिघ अस गूँजी॥५॥

[इस अवतरण में कवि ने माँस के विविध व्यंजनों की प्रक्रियाओ का वर्णन किया है।]

अच्छा माँस लेकर उसको वघारा गया। अब उनके प्रकारों का वर्णन करता हूँ। उसके टुकड़े-टुकड़े काट कर कीमा और सिलबट्टे पर पीस कर वटवाँ मांस तैयार किया गया। उसमे सुगन्ध के लिए कई प्रकार के पदार्थ मिलाए गए। विविध प्रकार से सेक कर उसके ग्रास वनाए गए। वे घी मे वहुत सोधे ढंग से तले गए और ऊपर से कस्तूरी और केसर डाली गई। सब हांडियों में सेधा नमक डाला गया। कन्द मूल की गाँठे भी काट कर डाली गई। सोया सौफ और धनिया वारीक करके उसमे खूब डाला गया तथा छिडका गया जिससे उसमे खूब खुशबू आ जाए। बड़े-बड़े बर्तनो में पानी डालकर माँस पकाया गया फिर घी मे उसे इस प्रकार पकाया गया कि घी ऊपर दिखाई पड़ रहा था। फिर माँस के बड़े-बड़े टुकड़े करके बड़े-बड़े हण्डो मे पकाया गया। अनेक समूचे छागर सरागो पर रखकर भूने गए। जो ऐसे भोजन करता है वह शक्तिसम्पन्न होकर सिंह के समान गरजता है।

टिप्पणी—बघारना—डाक्टर अग्रवाल ने यहाँ पर पखारा पाठ दिया है। हमारी समझ में यह पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है क्योकि पहले धोकर ही काट कर वनाएँगे या बँट कर वनाएँगे।

सेधा लोन—माँस को अच्छी प्रकार से पकाने के लिए सेधा नमक डाला जाता है।

ताकहि ताका—इसका अर्थ है तवा देखते ही। डा० अग्रवाल ने इसका अर्थ दिया है, 'टाकहि टाका' और टाँके का अर्थ उन्होने एक बड़ा वर्तन लिया है।

भूँजि समोसा घिउ महँ काढ़े। लौंग मरिच जिन्ह भीतर ठाढ़े॥
और माँसु जो अनबन बाँटा। भए फर फूल, आम औ भाँटा॥
नारँग, दारिउँ, तुरँज, जँभीरा। औ हिंदवाना बालम खीरा॥
कटहर बड़हर तेउ सँवारे। नरियर, दाख, खजूर, छोहारे॥
औ जावत जो खजहजा होहीं। जो जेहि बरन सवाद सो ओहीं॥

सिरका भेइ काढ़ि जनु आने । कँवल जो कीन्ह रहे बिगसाने ॥
कीन्ह मसेवरा, सीझि रसोई । जो किछु सँवै माँसु सौ होई ॥
बारी आइ पुकारेसि लीन्ह सबै करि छूँछ ।
सब रस लीन्ह रसोई, को अब मोकहे पूछ ? ॥६॥

[इस अवतरण मे कवि ने माँस से बने हुए खाद्य-पदार्थो की चर्चा की है ।]

माँस के समोसे भून करके घी मे तले गए और उनके अन्दर लौग और मिर्च डाली गई और जो बराबर करके माँस पीसा गया था उनसे फल-फूल, आम और बैगन भरे गए । नारगी, अनार, तुरुन्ज, जंभीर, तरबूज, बालम, खीरा, कटहल, बड़हल, नारियल, अगूर, खजूर, छुआरे इन सब फलो के अन्दर पिसा हुआ माँस भरा गया । जो जैसे फल मे भरा गया था वह वैसा ही स्वाद देता था । वे सब फल सिरके मे भिगो कर रखे गए थे । और परोसने के वक्त वे वहाँ से निकाल कर लाए गए थे । उन्हे पदमावती ने तैयार कराया था । इसीलिए वे ताजे थे इस प्रकार माँस की सब चीजे बना करके उस रसोई मे बनाई गई थी । इसीलिए वह रसोई धन्य थी । वहाँ जो कुछ था वह सब माँस का ही था । बन माली व्यर्थ ही सब फल लिए हुए आकर पुकार रहा था । उन सबके स्वाद तो रसोई मे ही पा लिए गए थे । अतएव बारी का प्रयास व्यर्थ था ।

टिप्पणी—समोसा—डा० अग्रवाल ने लिखा है अबुल फजल ने आईने अकबरी मे अकबर की रसोई का वर्णन करते हुए लिखा कि समोसा एक खास प्रकार का खाद्य था । उसको तैयार करने के लिए दस सेर माँस, चार सेर मैदा, दो सेर घी, एक सेर प्याज, पाव भर अदरक, आधा सेर नमक, एक छटाक काली मिर्च, आधी छटाँक धनिया, इलाइची, जीरा, लोग आदि से बीस प्रकार के समोसे बनते थे ।

भय फल फूल—इस सम्बन्ध मे डाक्टर अग्रवाल ने मासोल्लास का आश्रय लेते हुए लिखा है कि विविध प्रकार के फल अन्दर से खोरव ले करके मांस से भर दिये जाते थे । वे ताजे फल जैसा स्वाद देते थे । उसके आगे लोग ताजे फलो को नही पूछते थे । इसलिए माली बेचारा अपने फलो को खाली लिए फिरा करता था ।

मसोरा—कबाब के लिए मसौरा कहते थे ।

बारी······छूँछ—ऊपर लिखा जा चुका है कि भरे हुए फल ताजे फलो से अच्छे होते थे ।

काटे माछ मेलि दधि धोए । औ परवारि बहु बार निचोए ॥
करुए तेल कीन्ह बसवारू । मेथी कर तब दीन्ह बघारू ॥
जुगुति जुगुति सब माछ बधारे । आम चीरि तिन्ह माँझ उतारे ॥
औ परेह तिन्ह चुटपुट राखा । सो रस सुरस पाव जो चाखा ॥

भाँति-भाँति सब खाँडर तरे। अड़ा तरि-तरि बेहर धरे ॥
घीउ टाँक मह सोंध सेरावा। लौंग मरिच तेहि ऊपर नावा ॥
कुहुँकुहुँ परा कपूर बसावा। नख तें बघारि कीन्ह अरदावा ॥
घिरित परेह रहा तस हाथ पहुँच लागे बूड़।
बिरिध खाइ नव जौबन सौं तिरिया सौं ऊड़ ॥७॥

[इस अवतरण मे कवि ने मछली बनाने की विविध विधियों का वर्णन किया है।]

मछलियो को काट-काट कर दही से धोया गया। चार बार धोने के बाद वस्त्र मे बाँध उनका पानी कई बार निचोड़ा गया, फिर उन्हे सरसों के तेल मे छौका गया और फिर मेथी का बगाहर दिया गया। तरह-तरह से अनेक प्रकार की मछलियो को बगाहर दिया और आम चीरकर उनके बीच में डाले गए, फिर उन्हें मिर्च-मसाला आदि छिडक कर चटपटा बनाया गया। जो उन्हे चखेगा वही उनके रस को समझेगा। तरह-तरह से उन मछलियो के टुकडे तले गये। अंडे तल-तल कर अलग रखे गए। टाँक मे घी था जिसमे सोध शिराया गया था तथा उसमे लौंग, मिर्च आदि मसाला ऊपर छिडका गया था, उसमे केसर और कपूर डाली गयी, फिर नख से बघार कर कुचला गया। उनमे इतना घी पड़ा था कि हाथ और पहुँचा तक भीग जाता था। वृद्ध यदि उन्हे खाता तो वह युवा हो जाता।

टिप्पणी—दधि धोए—मछली को दही से धोते है जिससे उसकी दुर्गन्ध निकल जाती है।

वसि वारू—मसाले से छौकना।

परेह—ऊपर तैरना।

उड़—विवाह करना।

भाँति-भाँति सीझी तरकारी। कइउ भाँति कोहँ उन्ह कै फारी ॥
बने आनि लौआ परबती। रयता कीन्ह काटि रती-रती ॥
चूक लाइ कै रींधे भाँटा। असई कहँ भल अरहन बाटा ॥
तोरई, चिचिड़ा, डेड़सी तरी। जीर धुँगार झार सब भरी ॥
परवर कुँदरु भूँजे ठाढ़े। बहुतै घिउ महँ चुरमुर काढे ॥
करूई काढ़ि करैला काटे। आदी मेलि तर कै खाटे ॥
रींधे ठाढ़ सेब के फारा। छौकि साग अनि सोंध उतारा ॥
सीझी सब तरकारी, भा जेंबन सब ऊँच।
दहुँ का रुचै साह कहँ, केहि पर दिस्टि पहूँच ॥८॥

[इस अवतरण में कवि ने विविध प्रकार की सब्जियाँ तैयार करने की प्रक्रिया का वर्णन किया है ।]

अनेक प्रकार की सब्जियाँ बनाई गईं। कई प्रकार से काशीफल के टुकड़े बनाये गये। पहाड़ी लौकी मँगाई गई। उसको रत्ती-रत्ती काट करके रायता बनाया गया और चूक की खटाई डाल करके बैंगन बनाये गये। अरवी में डालने के लिए अरिहन पीसा गया। तोरई, चिचिड़ा तथा टिण्डा तले गए और जीरे से बुँगार कर कलकला कर रखे गए। परमल, कुँदरू, ये समूचे भूने और बहुत-से घी में पकाकर निकाले गये। करेलों का कड़वापन निकाल करके अदरक और खटाई डाल करके उनको तला गया। खड़ी सेम की फाँकें पकाई गईं, फिर साग छौंक करके सोंधा करके उतारा गया। इस प्रकार बहुत-सी सब्जियाँ बनाई गईं। भोजन बहुत अच्छा था, न मालूम भोजन के समय शाह को क्या अच्छा लगे और किस पर उसकी रुचि जाये।

टिप्पणी—लौआ परबती—इसे पहाड़ी लौकी के लिए कहा गया है। यह गोल आकार की लौकी है।

अरिहन—उस बेसन या आटे या चावल के आटे को कहते हैं जो साग-सब्जी में स्वाद बढ़ाने के लिए मसाले में मिला कर डाला जाता है।

घिउ करांह भरि, बेगर धरा। भाँति-भाँति के पाकहिं बरा ॥
एकत आदी मरिच सौं पीठा। दूसर दूध खाँड सो मीठा ॥
भई मुगौछी मरिचैं परी। कीन्ह मुँगौरा औ बहु बरी ॥
भई मेथौरी, सिरका परा। सोंठि नाइ कै सरसा धरा ॥
माठा महि महियाउर नावा। भीज बरा नैनू जनु खावा ॥
खड़ै कीन्ह आमचुर परा। लौंग लायची सौं खँडवरा ॥
कढ़ी सँवारी और फुलौरी। औ खँड़वानी लाइ बरौरी ॥
रिकवँच कीन्हि नाइ कै हींग, मरिच औ आद।
एक खँड़ जौ खाइ तौ पावै सहस सवाद ॥६॥

[इस अवतरण में भी कवि ने कई प्रकार के व्यंजनों का वर्णन किया है।]

कड़ाहियों में अलग से घी डाला गया जिनमें तरह-तरह के बड़े उतारे जा रहे थे। एक पिट्ठी के साथ मिर्च और अदरक मिलाकर बनाये जा रहे थे। दूसरे खाँड और दूध के पदार्थ बना करके पकाये जा रहे थे तथा उनको माँगा जा रहा था। मिर्च डालकर मूँग का पथ्याहार बनाया गया। मूँग के मुगौड़े और मीठी बड़ियाँ बनीं। वे खाने में मक्खन की तरह कोमल और बढ़िया थीं। मिथौरी बड़ियाँ बनाई गईं, जिनमें सिरका डाला गया और सोंठ डाल करके खरसा तैयार किया गया। मीठे मट्ठे में चावल पकाये गए। भीगे हुए बड़े खाने में ऐसे मुलायम थे जैसे मक्खन हो। खाँड की

चासनी बना कर उसमे ग्रामचूर डाला गया और लौग एवं इलायची के साथ मिला कर रखा गया। कड़ी और डुभकोरी बनाई गई। खाँड के पानी या पने मे बरौरी बनाई गई।

पत्ते लाकर रिकमच छौका गया और उसमें हीग, मिर्च और अदरक डाला गया। एक-एक टुकड़ा चखने से सहस्रो स्वाद मिलते थे।

टिप्पणी—मुगौंछी—मूँग का बना हुआ कोई नमकीन व्यंजन।

मिथौरी—मेथी मिली हुई बड़ियाँ।

खरसा—सौठ खक्कर मिलाकर बनाई वई आटे की गुझियाँ जो पाँग ली जाती है।

महियाउर—मट्ठे मे पकाये गए मीठे चावल।

रिकमच—अरवी के पत्तो को महीन काट कर उड़द की पीठी मे मिलाकर तल लेते है और फिर उनकी सूखी या रसेदार सब्जी बनाते है।

तहरी पाकि, लौंग औ गरी। परी चिरौजीं और खरखरी॥
घिउ महँ भूँजि पकाये पेठा। औ अमृत गुरंब भरे मेटा॥
चुँबक लोहँड़ा औटा खोवा। भा हलुवा घिउ गरत निचोवा॥
खिखरन सोंध छनाई गाढी। जामी दूध दही कै साढ़ी॥
दूध दही के मुरँडा बाँधे। और सँधाने अनबन साधे॥
भई जो मिठाई कही न जाई। मुख मेलत खन जाइ बिलाई॥
मोती चूर, छाल औ ठोरी। माठ, पिराकैं और बुँदौरी॥
फेनी पापर भूँजे, भा अनेक परकार।
भइ जाउरि पछियाउरी, सीझी सब जेवनार ॥१०॥

[इस अवतरण मे कवि ने और कुछ व्यंजनों की चर्चा की है।]

लौंग और गरी डाल करके लहरी पकाई गई। उसमे ऊपर से चिरौजी और छुआरे डाले गये। घी मे भूनकर पेठे का पाँग बनाया गया। चासनी में डालकर बनाये गये गुलम्बे मे अमृत जैसा स्वाद मिला। चुम्वक लोहे की कढाई मे खोया औटाया गया। हलवा ऐसा वनाया गया कि उसमे से घी निचुड रहा था। सुगन्धित द्रव्य डाल कर गाढ़ी सिखरन छानी गई थी। मोटी मलाई वाले दूध से दही जमाई गई, फिर दही के मुरण्डे वाँधे गए और वहुत प्रकार के अचार और मसाले मिलाये गए। जो मिठाइयाँ बनाई गयी उनका वर्णन नही किया जा सकता। मुख मे डालते ही वे घुल जाती है। मोती चूर के लड्डू, छाँक और ठोरी, पिराके अर्थात् गुझियाँ, बूँदी, फेनी और पापड़ भूने गये और अनेक प्रकार के व्यंजन बनाये गए। जाउरि और पछियाउरि बनाई गई। इस प्रकार सब जेवनार की सामग्री बनाई गई।

टिप्पणी—गुरंब—आम के टुकड़े या अमचूर को चासनी में डालकर बनाये जाते है।

मुरंड—सम्भवतः पनीर को कहते है।

छाल—जायसी ने छाँछ को सम्भवतः छाल ही लिया है।

आउरि पछियाउरि—मीठे पेय पदार्थ को कहते है। भोजन के बाद इसका प्रयोग किया जाता था।

जत परकार रसोइ बखानी। तत सब भई पानि सौ सानी॥
पानि मूल, परिख जो कोई। पानि बिना सवाद न होइ॥
अमृत-पान यह अमृत आना। पानी सौं घट रहै पराना॥
पानी दूध औ पानी घीऊ। पानि घटै, घट रहै न जीऊ॥
पानी माँझ समानी जोती। पानिहि उपजै मानिक मोती॥
पानिहि सौं सब निरमल कला। पानी छुए होइ निरमला॥
सो पानी मन गरब न करई। सीस नाइ खाले पग धरई॥
मुहमद नीर गँभीर जो भरे सो मिले समुँद।
भरे ते भारी होइ रहे, छूँछे बाजहि दुँद॥११॥

[इस अवतरण मे भी कवि ने खाद्य पदार्थो का ही वर्णन किया है।]

जितने प्रकार की रसोई का वर्णन किया गया है वह सब पानी से ही तैयार की गई है। यदि कोई परीक्षा करके देखे तो उन सबका मूल पानी है और बिना पानी के किसी मे स्वाद नही आता। पानी ही अमृत है। कोई दूसरा पदार्थ अमृत नही होता। पानी से ही शरीर मे प्राण बने रहते है। पानी ही दूध है। पानी ही घी है। पानी या कान्ति या ओज के नष्ट हो जाने से शरीर मे प्राण नही रहते। पानी मे ही जीव की ज्योति रहती है। पानी से ही माणिक और मोती उत्पन्न होते है। पानी ही सबमे निर्मलता लाता है। जो पानी छूता है वह निर्मल हो जाता है। पानीदार वही माना जाता है जो मन मे गर्व नही करता है और सिर झुका करके नीचे मे पैर रखता है। मोहम्मद कवि कहते है जो गहरा जल है वह झुककर समुद्र मे मिल जाता है। जो भरे है वे भारी रहते है और जो खाली है वे नगाडे की तरह बजते है।

टिप्पणी—पानी······पराना—यहाँ पर पानी का अर्थ उपादान लक्षणा से पंच तत्त्व का संघात लिया गया है।

पानी······जीव—यहाँ पर पानी का अर्थ ओज या तेज है।

पानी······ज्योति—यहाँ पर भी पानी का अर्थ उपादान लक्षणा से पंच तत्त्व का संघात रूप शरीर लिया गया है।

सो पानी······करई—यहाँ पर पानी का अर्थ प्रतिष्ठा लिया गया है।

शीश······धरई—यहाँ पर व्यंजना है कि प्रतिष्ठा उनको प्राप्त होती है जो सब प्रकार जीवन मे अभिमानरहित होकर विनयसम्पन्न बने रहते है। यह अर्थ लक्षण लक्षणा जन्य है। यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है।

मोहम्मद······दुन्द—यहाँ पर कवि की व्यंजना है कि जो पुरुष गभीर होते हैं उन्हे गौरव मिलता है। जो सद् विचारो से परिपूर्ण होते है वे कभी डीग नही मारते। इसके विपरीत जिनके पास कुछ नही है वे सदा बढ़-बढ़ कर बातें मारते है। यहाँ पर लक्ष्योपमा से वस्तु व्यंग्य है।

चित्तौड़गढ़ वर्णन खण्ड

जेवाँ साह जो भएउ बिहाना । गढ़ देखै गवना सुलताना ।।
कँवल-सहाय सूर सँग लीन्हा । राघव चेतन आगे कीन्हा ।।
ततखन आइ बिवाँन पहूँचा । मन ते अधिक गगन तें ऊँचा ।।
उघरी पँवरि, चला सुलतानू । जानहु चला गगन कहँ भानू ।।
पँवरी सात, सात खँड वाँके । सातौ खँड गाढ़ दुइ नाके ।।
आजु पँवरि-मुख भा निरमरा । जौ सुलतान आइ पग धरा ।।
जनहुँ उरेह काटि सब काढी । चित्रक मूरति बिनवहि ठाढ़ी ।।
लाखन बैठ पँवरिया जिन्ह तें नवहि करोरि ।
तिन्ह सब पँवरि उघारे, ठाढ़ भए कर जोरि ।।१।।

[इस अवतरण मे शाह का गढ प्रवेश वर्णित है ।]

रसोई तैयार होते-होते सवेरा हो गया । उधर सुलतान प्रात:काल गढ देखने के लिए आया । बादशाह रूपी सूर्य ने कमलरूपी सरजा नामक वीर को साथ ले लिया । राघव चेतन को उसने आगे कर लिया । उसका विमान उसी क्षण आ पहुँचा । उसकी गति मन से भी अधिक और ऊँचाई आकाश से भी अधिक थी । द्वार गढ के खुल गए और सुलतान ने प्रवेश किया । ऐसा मालूम हुआ कि सूर्य आकाश मे जा रहा है । गढ मे सात पौरियाँ थी और सातो में सुन्दर सात खण्ड के महल बने हुए थे । सातो को पहाड़ मे से काटकर गढ़ा गया था । उन पर जो चित्र और मूर्तियाँ बनी हुई थी वे सजीव थी । ऐसी लगती थी कि मानो खडी हुई स्वागत कर रही हो । वे मूर्तियाँ काटकर उरेही (उभारी) गई थी । आज सुलतान के आगमन से पौरीयो का मुख निर्मल हो गया है ।

एक-एक पौरी पर लाख-लाख द्वार रक्षक बैठे हुए थे । उनको करोड़ों व्यक्ति झुककर प्रणाम करते थे । उन्होने सब पौरियाँ खोल दी और हाथ जोड़ कर खड़े हो गए ।

टिप्पणी—कँवल सहाय सूर सँग लीन्हा—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार है । सूर मे शब्द शक्ति उद्भव अनुरणन ध्वनि है । सुलतान का वीर भाव भी व्यग्य है । कँवल मे पर्यायवक्रता है क्योकि वह सरजा का वाचक है । कवल भी सरजा

होता है। सहाय का अर्थ है सहजात।

मन सो अधिक गगन से ऊँचा—यहाँ पर प्रतीप और निर्णीयमाना सम्वन्धातिशयोक्ति का सकर है।

जान उरेह काट सब काढ़ी—उस समय की स्थापत्य कला के स्वरूप के सम्बन्ध मे यह पक्ति अच्छी जानकारी प्रस्तुत करती है। उस समय पत्थर काट कर मूर्ति उभारने की प्रथा थी।

पँवरिया=द्वार रक्षक।

सातौ पँवरी कनक केवारा। सातौ पर बाजहिं घरियारा॥
सात रँग तिन्ह सातौ पँवरी। तब तिन्ह चढै फिरै नव भँवरी॥
खँड खँड साज पलँग औ पीढ़ी। जानहुँ इंद्रलोक कै सीढ़ी॥
चँदन बिरिछ सोह तहँ छाहाँ। अमृत कुँड भरे तेहि माँहा॥
फरे खजहजा दारिऊँ दाखा। जो ओहि पंथ जाइ सो चाखा॥
कनक छत्र सिघासन साजा। पैठत पँवरि मिला लेइ राजा॥
बादशाह चढ़ि चितउर देखा। सब संसार पाँव तर लेखा॥
देखा साह गगन गढ़, इन्द्रलोक कर साज।
कहिय राज फुर ताकर सरग करै अस राज॥२॥

[इस अवतरण मे सातों पौरियों का रहस्यात्मक वर्णन किया गया है।]

सातो पौरियों में सोने के किवाड़ लगे हुए थे और सातों पर घड़ियाल भी बजा करते थे। सातो पौरियो के सात प्रकार के रंग थे। उन सातो पौरियों मे क्रमशः वही प्रवेश कर सकता था जिसने सत से भॉवरे डाल रखी हो अथवा जो कोई सौ गरेरी सीढ़ियो को पार कर सकता था वही इन सात पौरियो पर चढ सकता था। एक-एक खंड मे जहाँ पौरियाँ समाप्त होती थी वहाँ पलंग की तरह चौड़ी चबूतरी बनी हुई थी। वे सीढ़ियाँ इतनी ऊँची थी कि जिन्हें देखकर ऐसा लगता था कि मानो इन्द्रलोक की सीढ़ियाँ हो। वहाँ चन्दन के वृक्षो की सुहावनी छाया थी और भीतर अमृत के कुण्ड भी भरे हुए थे। वहाँ पर अनेक मेवे, अनार और अंगूर के फल फल रहे थे। जो उस मार्ग से जाते थे वे ही उन फलो का रसास्वादन कर सकते थे। सोने का छत्र और सिंहासन सजाकर राजा रतनसेन ने पौरी में बैठते ही शाह का स्वागत किया। शाह ने गढ़ पर चढ़कर जब चित्तौड़गढ़ को देखा तो सारा ससार पॉव के नीचे दिखाई पड़ा।

शाह ने जब गढ़ को देखा तो उसके साज-शृंगार को देखकर उसके मुँह से निकल पड़ा, राज्य तो वास्तव मे उसी का कहलाता है जो स्वर्ग पर राज्य करे।

टिप्पणी—सात पौरी—महलो में सम्भवतः सात द्वार हुआ करते थे और प्रत्येक द्वार पर एक राज घंट वजा करता था।

मुझे लगता है, इस अवतरण मे कवि ने सात पौरियों के मिस से सात चक्रों का रहस्यात्मक वर्णन किया है। यह वर्णन अत्यधिक वैभवपूर्ण और रहस्यमय है।

इस अवतरण मे प्रथम उदात्त अलंकार है। यह अलंकार वहाँ पर होता है जहाँ अतिशय समृद्धि का वर्णन किया जाता है। इसीलिए यहाँ पर यह अलंकार है।

कहिअ राजफुर ताकर सरग करै जो राजु—यहाँ पर 'राज' शब्द मे अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है।

'राज' का अर्थ उपादान लक्षणा से है सुख-समृद्धि और वैभवपूर्ण राज्य। वैभव की अतिशयता ही यहाँ व्यग्य है।

'सरग' मे पदगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। सरग का अर्थ लक्षण लक्षणा से विशाल साम्राज्य लिया गया है। साम्राज्य की विशालता ही यहाँ व्यंग्य है।

चढ़ि गढ़ उपर संगति देखी। इन्द्रसभा सो जानि विसेखी॥
ताल तलावा सरवर भरे। औ अँवराव चहूँ दिसि फरे॥
कुआँ वावरी भाँतिहि भाँती। मठ मँडप साजे चहुँ पाँती॥
रमा रँक घर घर सुख चाऊ। कनक-मँदिर नग कीन्ह जड़ाऊ॥
निसि दिन वाजहि मादर तूरा। रहस कूद सव भरे सेंदूरा॥
रतन पदारथ नग जो वखाने। धूरन्ह माँह देख छहराने॥
मँदिर मँदिर फुलवारी वारी। वार वार वहु चित्र सँवारी॥
पाँसासारि कुँवर सब खेलहिं, गीतन्ह स्रवन ओनाहि।
चैन चाव तस देखा जनु गढ़ छेंका नाहिं॥३॥

[इस अवतरण मे कवि ने गढ़ पर से शाह के द्वारा देखी गई वस्ती का संश्लिष्ट वर्णन किया है।]

गढ पर चढकर शाह ने ऊपर से वस्ती देखी, वह इन्द्रपुरी-सी दिखाई पड रही थी। वहाँ ताल-तालाव और सरोवर भरे हुए थे। चारो ओर वगीचे फले हुए थे। भाँति-भाँति की वावड़ियाँ थी और विविध कुएँ थे। चारो ओर मठ और मंडप वने हुए थे। राजा और रंक सवके घर मे सुख और प्रसन्नता छाई रहती थी। सोने के मकान वने हुए थे और उनमे नग जड़े हुए थे। भवनो में रात-दिन नौवत वजती थी। आनन्द और उल्लास मे मग्न सारी जनता रक्तवर्ण अर्थात् स्वस्थ थी। हीरे, जवाहरात और रत्न कोठरियो मे विखरे पड़े रहते थे। प्रत्येक भवन मे फुलवाड़ियाँ और फल के वृक्ष जमे हुए थे।

हर एक द्वार के सामने चित्रकारी बनी हुई थी। सब राजकुमार गोठ और पाँसों से खेलते थे। उनके कान संगीत की ओर लगे रहते थे।

शाह ने वहाँ ऐसी सुख और शान्ति देखी मानो गढ़ घेरा ही न गया हो।

टिप्पणी—ओहि—यहाँ सवृति वक्रता है।

सब लोग सेंदुर—यहाँ पर पदगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। इसका अर्थ है कि वहाँ के लोग पूर्ण स्वस्थ और सुखी थे। सुख और स्वास्थ्य की अतिशयता ही यहाँ व्यंग्य है। यहाँ पर कवि ने तत्कालीन रजवाड़ो में जो सुख का साम्राज्य रहता था उसका बडा सुन्दर वर्णन किया है।

शब्दार्थ—बसगति=बस्ती।

गढ मंडप—'गढ मंडप' मढ मंडप से बड़ा होता है। मठ के अन्तर्गत मंडप होता है और विद्यार्थियो और साधुओ के रहने का स्थान होता है। मंडप केवल उस स्थान को कहते है जिसमे देवता की प्रतिमा रहती है।

मदिर तूरा—प्राचीनकाल मे राजमहल में नौबत बजने की परम्परा भी थी। यह नौबत सूर्योदय से चार घडी पहले और दिन छिपने से चार घडी पहले बजती थी। हर एक राजा ने इसके बजने का समय अलग-अलग कर रखा था।

खोरिन—छोटी-छोटी कुठरियो को कहते थे।

चित्तरसारी—भवनो के आगे वाटिका मे चित्तरसारी बनाई जाती थी।

देखत साहि कीन्ह तहँ फेरा। जहाँ मँदिल पदुमावति केरा॥
आस पास सरवर चहुँ पासाँ। माँझ मँदिल जनु लाग अकासाँ॥
कनक सँवारि नगन्हि सब जरा। गँगन चाँद जनु नखतन्ह भरा॥
सरवर चहुँ दिसि पुरइनि फूली। देखा बारि रहा मन भूली॥
कुँवर लाख दुइ बार अगोरे। दुहुँ दिसि पँवरि ठाढ़ कर जोरे॥
सारदूल दुहुँ दिसि गढ़ि काढ़े। गल गाजहिं जानहुँ रिसि बाढ़े॥
जाँवत कहिअै चित्र कटाऊ। तावँत पँवरिन्ह लाग जराऊ॥
साहि मँदिल अस देखा जनु कविलास अनूप।
जाकर अस धौराहर सो रानी केहि रूप॥४॥

[इस अवतरण में शाह के द्वारा देखे गए पदमावती के महल का सुन्दर वर्णन किया गया है।]

महल का निरीक्षण करते-करते शाह वहाँ पहुँचा जहाँ पदमावती का महल था। उसके आसपास चारो ओर सरोवर था। बीच मे महल था। वह मानो आकाश छू रहा था। सोने से सँवारा गया वह महल रत्नों से जड़ित था। वह ऐसा सुन्दर प्रतीत हो रहा था जैसे आकाश मे चन्द्रमा नक्षत्रों से आक्रान्त होकर शोभायमान होता है। सरोवर मे चारो ओर कमल की बेल फूली थी। जल देखकर शाह का

मन मुग्ध हो गया। दो लाख कुँवर द्वार की रक्षा करते थे। वे पौरी के दोनो ओर हाथ जोडे खड़े हुए थे। दोनो ओर दो शार्दूल गढ़ कर बनाए गए थे। वे मानो अत्यन्त क्रोध की मुद्रा में गरज रहे थे। जितने भी प्रकार के कटाऊ चित्र कहे जा सकते है वे सब महल की पौरियो में रत्न के जड़ाव से बनाए गए थे।

शाह ने मन्दिर ऐसा देखा मानो अनुपम कैलास हो। जिसका धवलगृह इतना सुन्दर है, उस रानी का सौन्दर्य कैसा होगा ?

टिप्पणी—मांझ मदिल जनु लास अकासा—यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार से वस्तु व्यंजना है। महल की विशालता ही यहाँ व्यंग्य है।

तीसरी पंक्ति मे वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है।

बारि—यहाँ बारि शब्द मे शब्द शक्ति उद्‌भव वस्तु ध्वनि है। यहाँ बारि से बगीचे का अर्थ है। साथ ही यहाँ पर कुमारियो की व्यंजना भी है।

कविलास—यहाँ पर कैलास स्वर्ग के अर्थ में प्रयुक्त हुआ। यह अर्थ वाक्य वैशिष्ट्यमूलक व्यंजना से लिया गया है।

अस—यहाँ पर पदगत अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। अस का अर्थ है इतनी अधिक सुन्दर। यहाँ पर सुन्दरता की अतिशयता ही व्यंग्य है।

सो रानी केहि रूप—यहाँ पर 'सो' में पदगत अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि इसका अर्थ है 'उस महासुन्दर महल मे निवास करने वाली'। यहाँ पर भी रूप की अतिशयता ही व्यंग्य है।

केहि रूप—मे काकुवैशिष्ट्यमूलक व्यंग्य है। रूप की अतिशयता ही यहाँ पर भी व्यंग्य है।

शब्दार्थ—मंदिल=महल।

पुरइनि=कमल के पत्ते।

बारि=जल, वाच्यार्थ है बाला=व्यंग्य है।

सारदूर=शार्दूल, केसरी।

अगोरना=रक्षा करना।

चित्र बराउ=नक्काशीदार चित्र।

कविलास=यहाँ स्वर्ग के अर्थ मे आया है।

धौराहर=धवलगृह या विलासगृह।

पाठ भेद—शुक्ल जी में भी लगभग यही पाठ पाया जाता है। केवल मंदिल के स्थान पर शुक्ल जी ने मंदिर शब्द का प्रयोग किया है।

नाँघत पँवरि गए खँड साता। सोनै पुहुमि बिछावन राता॥
आँगन साहि ठाढ़ भा आई। मँदिल छाँह अति सीतलि पाई॥
चहूँ पास फुलवारी बारी। माँझ सिघासन धरा सँवारी॥
जनु बसँत फूला सब सोने। हँसहि फूल बिगसहि फर लोने॥

जहाँ सो ठाँउ दिस्टि महँ आवा। दरपन भा दरसन देखरावा ।।
तहाँ पाट राखा सुलतानी। बैठ साहि मन जहाँ सो रानी ।।
कँवल सहाइ सूर सौ हँसा। सूर क मन सो चाँद पहँ बसा ।।
सो पै जान पेम रस हिरदैं पेम अँकूर।
चंद जो वसै चकोर चित नैनन्ह आव न सूर ।।५।।

[इस अवतरण मे सतखण्डे का कविकल्पित वर्णन किया गया है ।]

वे पौरियों को पार करते हुए मडल के सातवे खण्ड मे पहुँचे। वहाँ की पृथ्वी सोने की थी। लाल वर्ण का विछावन पड़ा था। वादशाह आँगन मे आकर खड़ा हो गया। महल मे उसे अत्यन्त शीतल छाया मिली। चारो ओर फुलवाडी, वाटिकाएँ शोभायमान थी। बीच में सजा हुआ सिहासन रखा था। उस सजावट की शोभा ऐसी थी मानो सुनहले रूप मे वसन्त फूल रहा हो। उसमें फूल खिल रहे थे और फल लग रहे थे। वहाँ से उस पदमावती का स्थान दीख रहा था। दर्पण मे होकर उसकी छवि सक्रमित हो रही थी। वहाँ सुलतान का सिहासन रखा था। शाह उस पर वैठ गया। किन्तु शाह का मन वहाँ लगा हुआ था, जहाँ रानी थी। सरजा जोकि शाह का सहायक था, यह सव देख मुस्कराया किन्तु सूर का मन वहाँ लगा था जहाँ चाँद-सी पदमावती थी। प्रेम के आनन्द को वही जानता है जिसके हृदय में प्रेम का अकुर है। जिस चकोर के मन मे चन्द्रमा बसा है उसके नेत्रो मे सूर्य नही समाता।

टिप्पणी—इस अवतरण मे उदात्त अलंकार है।

हँसहि फूल—यहाँ हँसहि मे पदगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। हँसने का अर्थ खिलना है। फूलो का शोभाधिक्य ही यहाँ व्यंग्य है।

फर लोने—लोने शब्द यहाँ मधुर के अर्थ में प्रयुक्त हुआ। यह अर्थ भी पदगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि मूलक ही है।

सो (ठाँव)—यहाँ पर एक आध्यात्मिक व्यंजना भी है। इसीलिए सो में संवृति वक्रता है।

कँवल सहाय सूर सो हँसा—यहाँ कँवल सरजा के लिए और सूर वादशाह के लिए उपमान रूप मे प्रयुक्त है। अत. यहाँ रूपकातिशयोक्ति है।

सूर के मन सो चाँद महँ वसा—यहाँ पर सूर और चाँद मे रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

हृदय प्रेम अंकुर—वाच्यार्थ है हृदय मे जिसके प्रेम का अकुर है। व्यंग्यार्थ है जिसके हृदय मे पवित्र प्रेम सहज भाव से परिव्याप्त है। यहाँ पर कवि प्रौढ़ोक्ति मात्र सिद्ध वस्तु से रूपक अलंकार व्यग्य है।

चन्द जो वसै चकोर चित नैनन्ह आव न सूर—यहाँ पर दृष्टान्त अलकार है।

शब्दार्थ—पुहुमि=पृथ्वी।

पाट=आसन।

कँवल=सरजा का पर्यायवाची है।

पाठ भेद—शुक्ल जी ने 'कँवल सहाय सूर सौ हँसा' के स्थान पर कँवल सुभाय सूर सो हँसा' पाठ दिया है। उस अवस्था मे अर्थ होगा कंवल रूपी राजा रतनसेन सहज भाव से सूर रूपी शाह से हँस कर बोला।

दोहा में भी पाठ भेद है। शुक्ल जी में है—

सौ पै जानै नयन रस

उस अवस्था में अर्थ होगा कि नेत्रो के आदान-प्रदान का आनन्द वही जानता है जिसके हृदय मे प्रेम का अकुर है।

रानी धौराहर उपराहीं। गरवन्ह दिस्टि न करहि तराही ॥
सखीं सहेली साथ वईठी। तपै सूर ससि आव न डीठी ॥
राजा सेव करै कर जोरें। आजु साहि घर आवा मोरें ॥
नट नाटक पतुरिनि औ वाजा। आनि अखार सवै तहँ साजा ॥
पेम के लुवुध वहिर औ कँधा। नाच कोउ जानहुँ सव धँधा ॥
जानहुँ काठ नचावै कोई। जो जियँ नाच न परगट कोई ॥
परगट कह राजा सौ वाता। गुपुत पेम पदुमावति राता ॥
गीत नाद जस धन्धा छिकै विरह के आँच।
मन की डोरि लागि तेहि ठाँईं जहाँ सो गहि गुन खाँच ॥६॥

[शाह के स्वागत मे राजा ने सब प्रकार के मनोरंजन के साधनों का आयोजन किया किन्तु पदमावती के रूप का लोभी शाह का मन किसी से न वहल सका। इस अवतरण मे इसी प्रसग की अवतारणा की गई है।]

रानी पदमावती धवलगृह के ऊपरी भाग में थी। वह गर्व से नीचे दृष्टि नहीं करती थी। वह सखियो, सहेलियों के साथ वैठी थी। नीचे सूर तप रहा था कि चाँद दृष्टि पथ मे नही आ रहा है। राजा हाथ जोडे हुए सेवा कर रहा है, उसे वडी प्रसन्नता है कि उसके घर मे वादशाह आया है। राजा ने नट, नाटक और नर्तकियों आदि की व्यवस्था कर शाह के मनोरजन का पूरा प्रवन्ध किया। प्रेम का भूखा व्यक्ति वहरा और अन्धा हो जाता है। नाच, तमाशा सव उसे वखेडा लगता था। जो उसके मन मे नाचती थी, वह प्रकट न होती थी। वह दिखाने के लिए राजा से वात कर रहा था किन्तु शाह को सारे क्रिया-कलाप ऐसे लग रहे थे मानो वह कठ-पुतली हो और उसे नचाने वाला कोई और है। जो प्रतिमा उसके मन मे नाचती थी, वह प्रकट न थी। वह प्रत्यक्ष रूप से तो राजा से वातें कर रहा था किन्तु भीतर पदमावती के प्रेम में अनुरक्त था।

गीत नाद आदि सव वखेड़े थे क्योंकि विरह की आग धधक रही थी (वह

उसको उद्दीप्त भर कर रहे थे)। उसके मन की डोर उसी स्थान पर लगी हुई थी जहाँ वह पदमावती रस्सी पकड़ कर खीच रही थी।

टिप्पणी—तपै सूर ससि अव न दीठी—यहाँ पर सूर और ससि में रूपकातिशयोक्ति है। यहाँ पर शशि सूर साधना की ओर भी सकेत है। जिस प्रकार गढ में सूर्य रूपी शाह नीचे और शशि रूपी पदमावती ऊपर वर्णित है उसी प्रकार पिण्ड में सूर्य नीचे मूलाधार मे है और चन्द्र तत्त्व सहस्रार में रहता है। साधक का सूर तत्त्व तपता रहता है कि किस प्रकार चन्द्र मे लीन हो जाय। यहाँ हठयौगिक अर्थ है। यहाँ पर सूर और चन्द्र शब्दो से व्यग्य है। यहाँ पर शब्द शक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है।

प्रेमक लुबुध बहिर औ अन्धा—यहाँ पर आध्यात्मिक प्रेम वाच्यार्थ है। प्रेम का लोभी अन्धा और बहरा होता है। यह अर्थ सर्वथा व्याज्य है। यहाँ पर आध्यात्मिक प्रेमी की अनन्यता एवं वैराग्य भावना व्यंग्य है। लक्षण लक्षणा से अर्थ लिया जायगा कि आध्यात्मिक प्रेम के साधक वाह्य संसार से सर्वथा उदासीन और तटस्थ हो जाते है। यहाँ वाक्यगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है।

प्रेम के लुबुध······खाय—इन पंक्तियो में प्रेम योगी की ब्रह्मनिष्ठता व्यंग्य है। इसमे गीता के निम्न श्लोक का प्रभाव है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्दे शेतिष्ठति अर्जुन,
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।

शब्दार्थ—धौराहर=धवल गृह।

यह रनिवास का वह स्थल था जहाँ पर रानी रहती थी और जहाँ राजा आकर रानी से मिलता था।

पातुरि=नर्तकी।

काठ=यहाँ पर उपादान लक्षणा से अर्थ लिया जायेगा। काठ की बनी हुई कठपुतली।

कोड=क्रीड़ा।

धन्धा=व्यर्थ का झमेला।

अखाड़ा=रग भूमि।

धिकै=प्रज्वलित होता है।

गुन=रस्सी।

पाठ भेद—दोहे मे 'धिकै' के स्थान पर शुक्ल जी में 'दहक' पाठ है। अर्थ में कोई अन्तर नही पड़ता।

गोरा बादिल राजा पाहाँ। राउत दुवौ दुवौ जनु बाहाँ॥
आइ स्रवन राज के लागे। मूँसि न जाहि पुरुख जौ जागे॥
बाचा परखि तुरुक हम बूझा। परगट मेरू गुपुत छल सूझा॥
तुम्ह न करहु तुरुकन्ह सौं मेरू। छर पै करहि अंत के फेरू॥

बैरी कठिन कुटिल जस काँटा। ओहि मकोइ रहि चूरिहि आँटा ॥
सत्रुरु कोटि जौं आइ अगोटी। मीठे खाँड जेंवाइअ रोटी ॥
हम तेहि ओछ क पावा घातू। मूल गए सँग रहै न पातू ॥
यह सो कृस्न बलि राज जस कीन्ह चाह छर बाँध।
हम विचार अस आवै मेर न दीजिय काँध ॥७॥

[गोरा बादल नामक सामन्तों ने राजा को शाह की ओर सजग होने का आग्रह किया किन्तु राजा ने उनकी सलाह ठुकरा दी। इस अवतरण मे यही बात वर्णित है।]

गोरा और बादल राजा के समीप थे। दोनों रावत मानो उसकी दो भुजाएँ थी। वे दोनो राजा के कान मे लग गए और कहने लगे, जो व्यक्ति पहले ही सजग हो जाते है वे धोखा नही खाते। हमने वाणी से परीक्षा लेकर तुरुक को पहचान लिया। प्रकट रूप से मेल की बात कहता है किन्तु गुप्त रूप से वह युद्ध करना चाहता है। आप तुर्कों से मेल मत करिए। वे अन्त के दाव मे अवश्य छल करते है। शत्रु काँटे के समान कठिन और कुटिल होता है। उसका सामना कटीला मकोय ही कर सकता है जो दाव पाकर उसको चूर-चूर कर दे। अपने शत्रु को अपनी पहुँच मे पाकर उसको मीठी रोटी खिलाना कहाँ तक उचित है। आज हमारे हाथ मे उस दुष्ट का छत्र आ गया है। मूल के नष्ट होने पर पत्ते स्वयं नष्ट हो जाते हैं। बलि के द्वार पर विष्णु की भाँति यह भी छल करना चाहता है। हम समझते है कि मेल का स्वागत नही करना चाहिए।

टिप्पणी—मूसिन जाहि पुरुष जो जागे—व्यजना है जो व्यक्ति पहले से सजग हो जाते है वे धोखा नही खाते। यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है।

बैरी कठिन कुटिल जस काँटा—यहाँ उपमा अलंकार है।

ओहि मकोइ रहि चूरहि आँटा—व्यजना है कि शत्रु से वही पार पा सकता है जो उससे अधिक कुटिल और कठोर है। यह अर्थ स्वत.सिद्ध वस्तु से वस्तु व्यजना मूलक है।

मीठे खाँड जेवाइअ रोटी ?—यहाँ पर वाक्यगत अर्थान्तर संक्रमित वाच्य-ध्वनि और काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य है। अभीष्ट अर्थ है कि शत्रु को अपनी पकड़ मे पाकर उसे मीठी रोटी खिलाकर उसका स्वागत नही करना चाहिए।

हम सो······पातू—व्यजना है कि उस दुष्ट ने हम लोगो को छल कर ही साम्राज्य स्थापित किया है। अतः हमे अब उसे ऐसा अवसर नही देना चाहिए कि वह हमारा राज्य भी छीन ले। इसके विपरीत हमारा कर्त्तव्य है कि हम इस अवसर को हाथ से निकलने न दे बल्कि उसे पकड़ कर नष्ट कर दे। जब मूल ही नही होगा तो फिर पत्ते रूपी और सरदारो की क्या बात है। वे तो स्वयं ही नष्ट हो जाएँगे।

शब्दार्थ—राउत=सामन्त, यह संस्कृत राजपुत्र का अपभ्रष्ट रूप है।

छल सूझा=छल की बात सूझती है।

गोटी=कन्धन, पहुँच।

ओछ=नीच।

छातू=छत्र।

पाठ भेद—छठी पंक्ति के पूर्वार्द्ध का पाठ शुक्ल जी मे निम्न प्रकार है—

हम तेहि ओछ के पावा छातू—मुझे यह पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

५वी पंक्ति के उत्तरार्द्ध का पाठ है—'सो मकोय रह राखै आँटा' इसका अर्थ होगा कि उसे हम मकोय की भाँति दाँव मे रख सकते है। (शुक्लजी)

सुनि राजा हियँ बात न भाई। जहाँ मेरू तहँ अस नहि भाई।।
मदहि भल जो करै भलु सोई। अँतहु भला भले कर होई।।
सतुरु जौ बिख दै चाहै मारा। दीजै लोन जानु बिख सारा।।
बिख दीन्हे बिखधर होइ खाई। लोन देखि होइ लोन बिलाई।।
मारें खरग खरग कर लेई। मारै लोन नाइ सिर देई।।
कौरव बिख जौ पँडवन्ह दीन्हा। अँतहुँ दाँउ पँडवन्ह लीन्हा।।
जो छर करै ओहि छर बजा। जैसें सिंघ मँजूसा साजा।।
राजैं लोनु सुनावा लाग दुहूँ जस लोन।
आए कोंहाइ मँदिल कहँ सिंघ छान औगौन।।८।।

[प्रस्तुत अवतरण मे कवि ने निष्कपट राजा द्वारा गोरा वादल की सलाह का ठुकराया जाना वर्णित किया है।]

राजा को गोरा वादल की यह वात अच्छी न लगी। उसने उनसे कहा कि जहाँ मेल होता है वहाँ कपट नही होता। भला तो वही व्यक्ति होता है जो भेद या दुष्ट के साथ भी भलाई करता है। अन्त मे मेल का ही भला होता है। यदि शत्रु विष देकर मारना चाहे तो अपनी ओर से उसे नमक ही देना चाहिए। उससे उसका विष दूर हो जायेगा। विष देने से शत्रु विषधर वनकर खाने आता है। किन्तु सत्कार का परिणाम होता है कि वह स्वय नमक की भाँति गल कर नष्ट हो जाता है। यदि उसके विरुद्ध खड्ग ली जायेगी तो वह भी खड्ग लेकर खड़ा हो जाता है। कौरवो ने पाण्डवो को जो विष दिया था उसी के फलस्वरूप पाण्डव अन्त तक कौरवो से प्रतिकार करते रहे। जो छल करता है उसे उलटे छल मिलता है जैसे शेर फिर पिंजड़े मे वन्द हो गया था।

राजा की नमक की वात उन दोनो के जले पर नमक-सी लगी। वे क्रुद्ध हो कर अपने घर लौट आए जैसे शेर औगोन फँसाने के गड्ढे मे गिर गया हो।

टिप्पणी—दीजै लोन जनु बिख मारा—यहाँ पर व्यंजना है दुष्ट शत्रु को आदर-सत्कार करके वश मे किया जा सकता है। उसकी सेवा-शुश्रूषा से उसकी दुष्टता और कठोरता कम हो सकती है। लोन शब्द मे पदगत अर्थान्तर सक्रमित वाच्य ध्वनि है। इसका अर्थ लोना मीठा भोजन अथवा अन्य सेवा सत्कारादि है। इस विख मारा मे पदगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। कटुता, कठोरता, दुष्टता व्यंग्य है। सम्पूर्ण वाक्य मे स्वतः सिद्ध वस्तु वर्णन मे अलंकार व्यंग्य है। विषपायी को नमक पानी आदि में डालकर देते है। अतः वस्तु स्वत' सिद्ध है। उससे उपमा अलंकार व्यंग्य है। अर्थ है जिस प्रकार विपपायी को लवण देकर उसके विप को दूर किया जाता है उसी प्रकार मीठा, नमकीन खिलाकर शत्रु की दुष्टता कम की जा सकती है।

विष दीन्हें विषधर होइ खाई—यहाँ पर लक्षण लक्षणा से यह व्यंजित किया गया है कि दुष्टता करने से शत्रु भी दुष्टता करता है।

लोन देख होइ लोन विलाई—प्रथम लोन का अर्थ उपादान लक्षणा से नमकीन मीठा आदि अर्थात् आदर-सत्कारादि है। होई लोन मे पदगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। लक्षण लक्षणाजन्य अर्थ पिघल जाता है। पूरी पंक्ति मे व्यंजना है कि यदि शत्रु का आदर सत्कारादि किया जाये तो उसकी कटुता नमक की भाँति पिघल कर वह जाती है। यहाँ लक्ष्योपमा से वस्तु व्यंग्य है।

मारै लोन नाइ सिर देई—यहाँ पर विभावना अलंकार है। नमक मारने से सिर का झुक जाना, अनुपयुक्त कारण से कार्य का होना कहा गया है। अत. यहाँ चौथी विभावना है। विभावना से वस्तु व्यंजना है कि शत्रु को यदि पैसे या सत्कार की मार दी जाय तो वह विनम्र हो जाता है। उसकी कटुता दूर हो जाती है। अतः यहाँ कवि प्रोढ़ोवितसिद्ध अलकार से वस्तु व्यंजना है। साथ ही लोन शब्द मे अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। इस प्रकार ध्वनियो का सकर है।

जैसे सिंह साजा—यहाँ एक लोक कथा सन्दर्भित है। एक वार एक सिह जगल मे एक कटघरे मे वन्द खडा था। उधर से एक ब्राह्मण देवता निकले। सिंह ने उनसे प्रार्थना की कि वह उन्हे मुक्त कर दे। ब्राह्मण सिंह की बातो मे आ गया। उसने सिंह को मुक्त कर दिया। वह उसे खाने को दौड़ा। वे दोनों न्याय के लिए एक गीदड़ के पास पहुँचे। गीदड़ वड़ा चतुर था। उसने सिह से कहा कि मुझे दिखा दीजिए कि आप किस प्रकार पिजड़े मे खड़े थे और ब्राह्मण ने आपको कैसे मुक्त किया था। सिंह तुरन्त पिंजडे मे घुस गया। ब्राह्मण ने उसका कुण्डा वन्द कर दिया। इस प्रकार गीदड की चतुरता से सिंह से ब्राह्मण की जान वची। इस पक्ति मे उदाहरण अलंकार है।

राजै लोन सुनावा लाग दुहुँन जस लोन—यहाँ पर प्रथम लोन मे पदगत अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। अर्थ है आदर-सत्कार इत्यादि। दूसरे लोन का अर्थ लवण है।

शब्दार्थ—मेरू=मेल।
सतुरु=शत्रु।
छर=छल।
मंजूसा=पिंजड़ा।
कोंहाइ=क्रुद्ध होकर।
औगोन=हाथी, शेर आदि के फँसाने का गड्ढा जिसके ऊपर घास-फूस आदि रहता है।

पाठ भेद—शुक्ल जी ने दोहे की दूसरी पंक्ति के उत्तरार्द्ध का पाठ निम्न प्रकार से दिया है—

सिंघ छान अब गोन

इस पाठ को स्वीकार करने पर अर्थ होगा। सिंह अब रस्सी (गोन) से बँधना चाहता है।

राजा कै सोरह सै दासी। तिन्ह महँ चुनि काढ़ी चौरासी॥
बरन-बरन सारी पहिराई। निकसि मँदिर तें सेवा आई॥
जनु निसरीं सब बीरबहूटी। रायमुनि पींजर-हुँत छूटी॥
सबै परथमै जोबन सोहैं। नयन बान औ सारँग भौंहैं॥
मारहि धनुक फेरि सर ओही। पनिघट घाट धनुक जिति मोही॥
काम-कटाछ हनहिं चित हरनी। एक-एक तें आगरि बरनी॥
जानहुँ इन्द्रलोक तें काढ़ी। पाँतिहि पाँति भई सब ठाढ़ी॥
साह पूछ राघव पहँ, ए सब अछरी आहिं।
तुइ जो पदमिनि बरनी, कहु सो कौन इन माहि॥९॥

[इस अवतरण में कवि ने राजा द्वारा शाह की सेवा में नियोजित १६ सहस्र दासियों की चर्चा की है]

राजा की सोलह सौ दासियाँ थी, उनमें उसने ८४ को छाँटकर निकाल लिया। वर्ण-वर्ण की साडी पहनकर वे सेवार्थ घरों से निकल पड़ी। ऐसा लगा मानो बीर-बहूटी निकल पड़ी हों अथवा पिंजडे से लाल मुनियाँ निकल पडी हो। सब यौवन के पहले चरण मे थी। उनके नेत्रों के कटाक्ष बाण के समान और भौहे धनुष के समान थी। वे धनुषरूपी भौहे चलाकर नयन वाण मारती है। पनघट, घाट, जगल जहाँ कहीं जाती थी वे धनुष घुमाकर उन बाणो को मारती थी। वे मनमोहिनी काम के कटाक्ष से मन को हरने वाली थी। उनमे एक-से-एक सुन्दर थी। ऐसा मालूम हो रहा था मानो इन्द्रलोक से उतर कर अप्सराएँ पक्ति बाँधकर खड़ी हो गयी हो।

शाह ने तीखे कटाक्ष से राघव से पूछा—तुमने जिस पद्मिनी का वर्णन किया है बताओ इनमे से वह कौन है।

टिप्पणी—चौरासी—कवि की व्यंजना है कि सुलतान के चौरासी काम आसनों के लिए चौरासी चुनी हुई स्त्रियां सेवा में प्रस्तुत थी ताकि उसका मन पद्मावती से विरत हो जाए। यहाँ अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है।

जनु बिसरी······छूटी—यहाँ वस्तूत्प्रेक्षा है।

दीरघ आउ, भूमिपति भारी। इन महँ नाहि पदमिनि नारी॥
यह फुलवारी सो ओहि कै दासी। कहँ केतकी भँवर जहँ बासी॥
वह तो पदारथ, यह सब मोती। कहँ ओहि दीप पतंग जेहि जोती॥
ए सब तरई सेव कराही। कहँ वह ससि देखत छपि जाहीं॥
जौ लगि सूर क दिस्टि अकासू। तौ लगि ससि न करै परगासू॥
सुनि कै साह दिस्टि तर नावा। हम पाहुन, यह मन्दिर परावा॥
पाहुन ऊपर हेरै नाही। हना राहु अर्जुन परछाहीं॥
तपै बीज जस धरती, सूख बिरह के घाम।
कब सुदिस्टि सो बरिसै, तन तरिवर होइ जाम॥१०॥

[इस अवतरण मे कवि ने राघव चेतन द्वारा शाह को प्रत्युत्तर दिलवाया है।]

हे पृथ्वीनाथ! आपकी बड़ी आयु हो। इसमें कोई पदमिनी स्त्री नही है। यह फुलवाड़ी तो उसकी दासी है। वह भँवर के संग रहने वाली केतकी के समान पदमावती इनमे कहाँ है। यदि वह हीरा है तो ये सब मोती है। वह दीपक रूपिणी पदमावती इनमें कहाँ जो प्रेमीरूपी पतिंगों को अपनी रूप-ज्योति से मोहित कर लेती है। ये सब तारिकारूपी सखियाँ सेवाभर करती है। वह शशिरूपिणी पदमावती इनमे कहाँ, ये तो तारिकाएँ है। जब तक सूर्य की दृष्टि आकाश मे होती है तब चन्द्रमा अपना प्रकाश नही करता। सुनते ही शाह ने अपनी दृष्टि झुका ली और कहा हम अतिथि है और यह दूसरो का मन्दिर है। अतिथि ऊपर नही देखता है। अर्जुन ने राहू मछली का वेधन परछाई देखकर किया था।

जैसे बीज धरती मे तपता है वैसे ही वह विरह की छाँव से सूख रहा था। मन मे आशा लगी थी कि वह कृपा-दृष्टि रूपी वृष्टि कब करेगी जिससे शरीर हरा-भरा हो जाएगा।

टिप्पणी—यह फुलवारी सो ओहिकर दासी—यहाँ पर फुलवारी में रूपकातिशयोक्ति है।

कहँ केतकी भंवर जहँ बासी—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति और विभावना अलंकार का सकर है। इसमे काकुवैशिष्ट्य व्यंग्य भी है। अत. यहाँ पर ध्वनि ससृष्टि है।

कहं वह दीप पतंग जेहि जोति—यहाँ पर काकुवैशिष्ट्य व्यंग्य है, साथ ही

रूपकातिशयोक्ति अलंकार है। व्यंजना है कि उस पदमावती का रूपातिशय अनिर्वचनीय है।

तपै……जाम—उपमा रूपक अलकारो के संकर से कवि ने शाह की विरहाधिक्यजनित अभिलाषा की व्यजना की है। इस प्रकार कवि प्रौढ़ोक्तिसिद्ध अलकारो से वस्तु व्यग्य है।

सेव कर दासी चहुँ पासा। अछरी मनहु इन्द्र कविलासा ॥
कोउ परात कोउ लोटा लाई। साह सभा सब हाथ धोवाई ॥
कोई आगे पनवार बिछावहि। कोई जेवन लेइ-लेइ आवहि ॥
माँडे कोइ जाहि धरी जूरी। कोइ भात परोसहि पूरी ॥
कोई लेइ-लेइ आवहि थारा। कोइ परसहि छप्पन परकारा ॥
पहिरि जो चीर परोसै आवहिं। दूसरी और बरन देखरावहि ॥
बरन-बरन पहिर हर फेरा। आव झुड जस अछरिन्ह केरा ॥
पुँनि सँधान बहु आनहिं, परसहि बूँकहि बूक।
करहि सँवार गोसाईं, जहाँ परै किछु चूक ॥११॥

[इस अवतरण में दासियो द्वारा सुलतान की सेवा का वर्णन किया गया है।]

चारो दासियाँ सेवा करती है, वे ऐसी सुन्दर है मानो स्वर्ग की अप्सरा हो। कोई परात और कोई लोटा लाई और सुलतान तथा सभा के अन्य लोगो के हाथ धुलाए। कोई तो आगे पत्तल डाल रही है। कुछ जेवने का सामान ला रही है। कुछ पत्तलो पर भाडे के ढेर रख रही थी। कुछ भात परोस रही थी और कुछ थाल लेकर चली आ रही है। कुछ छप्पन प्रकार के भोजन परोस रही है। जो वस्त्र पहनकर परोसने आती है दूसरी बार उसे बदलकर आती है। हर फेरे मे दूसरे-दूसरे रंगों के वस्त्र पहनकर झुण्डो मे आती थी। ऐसा लगता था कि अप्सराओ के झुण्ड आ गए है।

फिर अनेक प्रकार से अचार लाती थी और एक-एक करके चगुलो से परोस रही थी। जहाँ पर भी कुछ अव्यवस्था होती वहाँ राजा स्वयं सम्भाल देते थे।

टिप्पणी—पनवार—पत्तल, माडि—एक प्रकार की चपाती को कहते हैं।

छप्पन परकारा—छप्पन प्रकार के अन्तर्गत कौन-कौन पदार्थ आते है। इसका पता लगाना कठिन है।

बूकहि बूक—थोडा-थोडा।

करे संवारे गोसांई—राजकीय शिष्टाचार के अनुसार जब कोई आश्रित राजा किसी सम्राट् को निमन्त्रण देता है तो वे स्वय उसके भोजन की देख-रेख करते है।

सन्धान—चटनी, अचार आदि।

जानहु नखत करहिं सब सेवा। बिनि ससि सूरहि भाव न जेंवा॥
बहु परकार फिरहिं हर फेरे। हेरा बहुत न पावा हेरे॥
परी असूझ सबै तरकारी। लोनी बिना लोन सब खारी॥
मच्छ छुवै आवहिं गड़ि काटा। जहाँ कँवल तहँ हाथ न आँटा॥
मन लागेउ तेहि कँवल के दंडी। भावै नाही एक कनऊँडी॥
सो जेंवन नहि जाकर भूखा। तेहि बिन लाग जनहु सब सूखा॥
अनभावत चाखै बैरागा। पंचामृत जानहुँ बिष लागा॥
बैठि सिघासन गूँजै, सिंघ चरै नहि घास।
जौ लगि मिरिग न पावै भोजन, करै उपास॥१२॥

[इस अवतरण मे जेवनार का ही वर्णन है।]

दासियो से सेवित सुलतान ऐसा लग रहा था मानो तारिकाओ से घिरा हुआ सूर्य हो किन्तु सूर्यरूपी सुलतान को बिना चाँद के जेवना अच्छा नही लग रहा था। अनेक प्रकार के व्यंजन हर फेरे मे फिर रहे थे किन्तु जिसमें सुलतान की रुचि थी वह उसे ढूंढे नही मिल रहा था। (व्यंजना है कि जिस पदमावती की खोज में सुलतान था वह उसे ढूंढे नही मिल रही थी।) अनेक प्रकार की तरकारियाँ थी जिनका कोई हिसाब न था किन्तु उस सुन्दरी के बिना सुलतान के लिए सब फीका था। जब वह मछली खाने के लिए हाथ उठाता और काँटे हाथ पड़ते थे। जहाँ कमल था वहाँ उसका हाथ ही नही जाता है। दासियाँ उसे पसन्द नही थी। (व्यजना है जहाँ पदमावती थी वहाँ वह पहुँच ही नही पाता था।) वह भोजन जिसकी इच्छा थी उसे नही मिला उसके बिना सब व्यजन सूखे थे। (व्यंजना है उस पदमावती व्यजन की उसे कामना है, उसके बिना शेष व्यजन नीरस थे)। अनचाही वस्तु को अनमने भाव से चख रहा था। उसे पचामृत विप लग रहा था।

वह सिहासन पर बैठा गुन्ना रहा था। सिह घास नही खाता। जब तक वह मृग नही पाता तब तक वह भोजन करते हुए भी उपवास करता है।

टिप्पणी—बिन ससि सूरहि······उपवासा—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति और विनोक्ति का सकर है।

हेरा बहुत······हेरे—उसने ढूढने की बहुत चेष्टा की किन्तु ढूंढने से भी नही मिला। यहाँ पर प्रकरणवैशिष्ट्यमूलक आर्थी व्यंजना है।

लोनी—बिना······खारी—यहाँ पर लोनी शब्द का व्यंग्यार्थ सुन्दरी पदमावती है। लोन का अर्थ नमकीन पदार्थ है। यहाँ अर्थान्तर सक्रमित वाच्य ध्वनि से सौन्दर्याधिक्य व्यग्य है।

जहाँ कँवल तहँ······आटा—यहाँ पर कँवल से व्यजना पदमावती की है। जहाँ पदमावती है उसका हाथ वहाँ नही पहुँचता। यहाँ पर बोधव्यवैशिष्ट्यमूलक आर्थी व्यजना है।

बैठि सिघासन......उपवास—यहाँ पर दृष्टान्त अलंकार से कवि ने यह व्यंजित किया है कि सुलतान की दासियों से तृप्ति नही हो सकती थी। उसकी तृप्ति तो पदमावती की प्राप्ति से ही सम्भव है। जब उसे वह नही मिलती तब तक उसकी तृप्ति भी अतृप्ति है अतः स्वतःसिद्ध अलंकार से वस्तु व्यग्य है।

पानि लिए दासी चहुँ ओरा। अमृत मानहुँ भरे कचोरा॥
पानी दहिं कपूर क बासा। सो नहि पियै दरसकर प्यासा॥
दरसन-पानि देइ तौ जीओं। बिनु रसना नयनहिं सौं पीओं॥
पपिहा बूंद-सेवातिहि अघा। कौन काज जौ बरिसै मघा?॥
पुनि लोटा कोपर लेइ आंई। कै निरास अब हाथ धोवांई॥
हाथ जो धोवै बिरह करोरा। सँवरि-सँवरि हाथ मरोरा॥
बिधि मिलाव जासौं मन लागा। जोरहि तूरि प्रेम कर तागा॥
हाथ धोइ जब बैठा, लीन्ह ऊबि कै सांस।
सँवरा सोइ गोसाईं देइ निरासहि आस॥१३॥

[इस अवतरण मे भी जेवनार का ही चित्र प्रस्तुत किया गया है।]

पानी लिए हुए दासी चारों ओर घूम रही थी। ऐसा लगता था मानो कटोरे मे अमृत भरे हुई थीं। पानी में कपूर की सुरभि आ रही है किन्तु जो दर्शन का प्यासा है वह उसे नही पाता, यदि दर्शनरूपी जल दे तो मै जीवित रहूँगा। उसका पान मैं जिह्वा से नहीं नयनो से करूँगा। पपीहा सेवाती के ही जल से तृप्त होता है। मघा की अपार वर्षा उसके लिए निस्सार होती है। फिर वे दासियाँ लोटा और कोपर ले आईं। उसे निराश करके अब वे हाथ धुलाने लगी। वह जैसे-जैसे हाथ धो रहा था मन मे पदमावती का स्मरण करके वह हाथ मल रहा था। वह मन मे भगवान् से याचना करता है "हे देव! उससे मिला जिससे मन लगा है। प्रेम का धागा जोडकर अब मत तोड़।"

हाथ धोकर जब बैठा तो उसने ऊब कर सांस ली और फिर उसने भगवान् का स्मरण किया जो निराश की आशा पूर्ण करता है।

टिप्पणी—बिन रसना नैनन सों पीयौं—इस पंक्ति मे पाँचवीं विभावना है।

कौन काज जो बरसै मघा—यहाँ काववाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य है। कवि का अभिप्राय है स्वाति के लिए मघा की घनघोर वर्षा भी निस्सार होती है।

भै जेवनार फिरा खँडवानी। फिरा अरगजा कुँकुहँ पानी॥
नग अमोल सौं थारा भरे। राजै सेवा आनि कै धरे॥
बिनती किन्ह घाली निपँ पागा। ऐ जग सूर सीउ मोहि लागा॥
औगुन भरा काँप यह जीउ। जहाँ भान रह तहाँ न सीऊ॥

चारिहुँ खण्ड भान अस तपा। जेहि की दिस्टि रैनि मसि छपा॥
कँवल भान देखे पै हँसा। औ भानहि चाहै परगसा॥
औ भानहिं असि निरमरि कला। दरस जो पाव सोइ निरमला॥
रतन स्यामि तहँ रैनि-मसि, ऐ रबि? तिमिर सँघार।
करु सुदिस्टि औ किरिपा दिवस देहि उजियार॥२८॥

[इस अवतरण में कवि ने ज्योनार के पश्चात् सुलतान के प्रति की गई अनुनय-विनय का चित्रण किया है।]

ज्योनार के समाप्त होने पर शर्बत घुमाया गया। पुनश्च केसर और अरगजा से युक्त सुगन्धित जल छिडका गया। राजा ने सौ थालो मे अमूल्य रत्न भर कर सुलतान को भेट रूप मे दिए। राजा ने बादशाह के गले में अपनी पगड़ी डालकर प्रार्थना की कि हे जगत् के सूर्य! मुझे शीत लगता है। (व्यंजना है कि मै तुम्हारी शरण आना चाहता हूँ)। अवगुणो से भरा हुआ यह मेरा मन आपके सामने कंपायमान है। जहाँ सूर्य होता है वहाँ शीत नहीं रह जाता (अर्थात् आप जैसे प्रभु के सामने मेरे जैसे सेवक के दोष तिरोहित हो रहे है।) चारों खण्डों मे आपका प्रताप सूर्य इस प्रकार तप रहा है कि वहाँ उसके सामने रात्रि की कालिमा मिट गई है। कमलरूपी मै आप जैसे सूर्य के दर्शन से प्रफुल्लित हो उठा हूँ और यही कामना है कि आपका प्रताप सूर्य प्रकाशित रहे। सूर्य का ऐसा निर्मल प्रकाश होता है कि जो उसके दर्शन करता है वह भी निर्मल हो जाता है। व्यजना है कि आपके प्रताप सूर्य की छत्रछाया में जो कोई भी आएगा वही प्रतापी हो जाएगा।

रतनसेनरूपी यह रत्न रात्रिरूपी दुर्बलता के अन्धकार से क्षीणकान्त है। अतः सूर्य के सदृश सुलतान तू अपने प्रताप के प्रकाश से मेरी दुर्बलता रूपी अन्धकार का निराकरण कर। तू सुदृष्टि और कृपा कर मुझे दिन के प्रकाश के सदृश अपने प्रताप से प्रतापयुक्त बनाकर प्रकाशित कर दे।

टिप्पणी—खँडवानी—खाँड का पानी या शर्बत।

अरगजा—एक प्रकार का सुगंधित मिश्रण।

घालि गिउँ पागा—किसी की गर्दन मे अपनी पगड़ी डालकर अपनी अधीनता का परिचय दिया जाता है।

ऐ जगसूर सीउ मोहि लागा—यहाँ पर 'जग सूर' मे साध्यवसाना गौणी लक्षणा है। 'सीउ मोहि लागा' मे अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। व्यग्यार्थ है कि मुझे आप जैसी प्रतापी की संरक्षकता की आवश्यकता है।

पाँचवी पंक्ति मे भानु में साध्यवसाना लक्षण है। 'रैनि मसिछपा' मे भी अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। यहाँ पर रतनसेन ने अपनी दुर्बलता, असमर्थता और निरीहता प्रकट की है।

कमल भानु देखे पै हँसा—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति और साध्यवसाना गौणी लक्षणा के प्रयोग से कवि ने व्यंजित किया है कि कमलरूपी रतनसेन का अस्तित्व सूर्य रूपी सुलतान के आश्रय पर ही अवलम्बित है। यह व्यंग्यार्थ अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि रूप है।

दोहे मे रतन श्याम मे शब्द शक्ति उद्भव अलंकार ध्वनि है। यहाँ पर रत्न को श्याम रूप कहकर विरोधाभास ध्वनित किया है।

अपरवि—मे रूपकातिशयोक्ति और 'रतन श्याम तहँ रैन मसि' मे हेतूत्प्रेक्षा है।

'दिवस देहि उजियार'—यहाँ पर लक्षण-लक्षणा का प्रयोग किया गया है। अभीष्टार्थ है कि मुझे आश्रय देकर कृतार्थ कीजिए।

सुनि बिनती बिहँसा सुलतानू। सहसहुँ करा दिपै जस भानू ॥
अनु राजा तूं साँच जड़ावा। मैं सुदिस्टि सो सीउ छड़ावा ॥
भान की सेवा जाकर जीऊ। तेहि मसि कहाँ-कहाँ तेहि सीऊ ॥
खाहु देस आपन करु सेवा। औरु देउँ माँडौ तोहि देवा ॥
लीक पखान पुरुख कर बोला। ध्रुव सुमेरु ऊपर नहि डोला ॥
फेरि पसाउ दीन्ह नग सूरू। लाभ देखाइ लीन्ह चहमूरू ॥
हँसि-हँसि बोलै टेकै काँधा। प्रीति भुलाइ चहै छरि बाँधा ॥
माया वोलि बहुत कै पान साहि हँसि दीन्ह।
पहिलें रतन हाथ कै चहै पदारथ लीन्ह ॥२९॥

[इस अवतरण मे शाह ने राजा के स्वागत-सत्कार के प्रति सद्भाव प्रकट किया है।]

राजा की विनती सुनकर सुलतान हँसा। वह इस प्रकार शोभायमान हुआ जैसा कि सहस्रो किरणों से सूर्य प्रोद्भासित हो उठता है। हे राजन्! तुम निश्चय ही शीत से संतप्त थे। किन्तु मेरी सुदृष्टि ने तुम्हारा शीत छुड़ा दिया है। सूर्य की सेवा मे जिसका मन लगता है उसके लिए कहाँ अँधेरा और कहाँ शीत है। तू अपने देश का उपभोग कर और मेरी सेवा कर। मैं तुझे चित्तौड़ के अतिरिक्त माँडवगढ भी दे दूँगा। पुरुष के वचन पत्थर की लकीर होती है। ध्रुव और सुमेरु उस पुरुष के वचनो पर न्यौच्छावर रहते है। अर्थात् ध्रुव और सुमेरु की निश्चलता और अडिगता से भी अधिक पुरुष के वचन दृढ होते हैं। ऊपर से तो सूर्य ने रतनसेन को अधिक प्रेम प्रदान किया किन्तु वास्तव मे उसने लाभ दिखाकर मूल भी हरने का प्रयत्न किया है। वह हँस-हँसकर राजा से बातें कर रहा था और उसके कन्धे पर हाथ रखे हुए था। वह प्रेम का भुलावा देकर उसे छल से पकड़ लेना चाहता था।

सुलतान ने बहुत स्नेह दिखाकर हँसकर राजा को पान दिया। वह पहले रतन-

सेन को वन्दी वनाना चाहता था और वाद में पदमावती को लेना चाहता था।

टिप्पणी—प्रथम पंक्ति मे उपमा अलंकार है। दूसरी तंक्ति मे 'भान' शब्द मे रूपकातिशयोक्ति अलंकार है और साध्यवसाना गौणी लक्षणा है।

तेहि मसि कहाँ-कहाँ तेहि सीउ—यहाँ पर काकुवैशिष्ट्य व्यंग्य है। यहाँ पर मसि और सीउ मे पदगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। 'मसि' का अर्थ है कलंक, विपत्ति, दुःख आदि। 'सीउ' का अर्थ है कष्ट। यहाँ पर अलाउद्दीन ने अपने महान् प्रभुत्व की व्यजना की है। 'लीक पखान पुरुखकर बोला' यहाँ पर काव्यगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। पुरुष वचनों की अडिगता, निश्चलता ही यहाँ व्यग्य है।

ध्रुव सुमेरु तेहि उपरै डोला—यहाँ पर प्रतीप अलंकार व्यंग्य है।

नगसुरू—यहाँ पर साध्यवसाना गौणी लक्षणा से नग का अर्थ रतनसेन और सूर का अर्थ शाह लिया गया है।

पहले रतन हाथ कै—यहाँ पर 'रतन' मे पर्यायवक्रता है। यहाँ शब्द शक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि भी है।

चहै पदारथ लीन्ह—पदारथ से यहाँ पर पदमावती की ओर संकेत किया गया है। यहाँ पर भी पर्यायवक्रता है।

माया मोह विवस भा राजा। साह खेल सँतरज कर साजा॥
राजा! है जौ लहि सिर घामू। हम तुम्ह घरिक करहिं विसरामू॥
दरपन साहि पैंत तह लावा। देखौं जबहिं झरोखें आवा॥
खेलहि दुवौ साहि औ राजा। साहि क रुख दरपन रह साजा॥
पेम क लुबुध पयादें पाऊँ। चलै सौह चलै कर ठाऊँ॥
घोडा दै फरजी बँदि लावा। जेहि मोहरा रुख चहै सो पावा॥
राजा फील देइ सह माँगा। सह दै साहि फरजी दिग खाँगा॥
फीलहि फील ढुकाता भए दुवै चौ दन्त।
राजा चहै बारूद भा साहि चहै सह मन्त॥३०॥

[इस अवतरण मे कवि ने राजा और सुलतान की मनोवृत्तियों का वर्णन शतरंज के खेल के रूपक से किया है।]

सूर्य के सदृश प्रतापी सुलतान की कृपा पाकर राजा गद्गद हुआ। सुलतान ने राजा के साथ शतरज का खेल सजाया और बोला—हे राजन्! जव तक सिर पर धूप है आओ तव तक हम दोनो विश्राम कर ले। शाह ने दर्पण अपने पाँयते रख लिया। उसकी इच्छा थी कि जव पदमावती झरोखे मे झाँकने आएगी तब दर्पण मे उसकी प्रतिछाया के दर्शन हो जायेंगे। सुलतान और राजा दोनों शतरंज खेलने लगे। सुलतान का रुख दर्पण की ओर लगा हुआ था। प्रेम का लोभी प्रत्यक्ष तो प्यादे की

भाँति सीधा मार्ग ग्रहण करते हुए प्रतीत होता है किन्तु उसकी दृष्टि दाये-बाये लगी रहती है। बादशाह चाहता था कि वह अपने घोड़े को राजा के घोड़े के समीप और समकक्ष लाकर उसे फर्जी रूप मे बन्दी कर ले। और फिर जिसके चेहरे रूपी मोहर की उसे कामना थी उस पदमावती को प्राप्त कर ले। राजा ने सुलतान को हाथी देकर उसकी रक्षा करनी चाही किन्तु सुलतान ने शह तो दी किन्तु उसका मन फर्जी रूपी पदमावती की ओर ही लगा हुआ था।

राजा ने अपने हाथी को शाह के हाथी के सामने किया जिससे दोनों हाथी चौदंत अर्थात् आमने-सामने हो गए। राजा चाहता था कि शाह से मित्रता करके ऊपरी लाभ प्राप्त करे और सुलतान चाहता था कि उसकी इच्छा पूर्ण हो और उसे पदमावती मिल जाए।

टिप्पणी—(१) सूर—यहाँ पर शब्द शक्ति उद्‌भव वस्तु ध्वनि है। सूर से शौर्याधिक्य व्यंग्य है।

(२) **दरपन साहि पैंत तस लावा**—राजा ने शाह को ऐसे बिठाया था कि उसके पीछे शीशा हो। उस शीशे के सामने और सुलतान के सामने राजा स्वयं बैठा। राजा की इच्छा थी कि पदमावती का प्रतिबिंब सुलतान केवल कनखियो से ही देख पाए और वह स्वयं उसे पूरी तौर से देखे। सुलतान इस बात को ताड गया और उसने शीशा अपने पैंताने रख लिया ताकि पदमावती के प्रतिबिंब को आँख भर कर देख सके।

(३) छठी पंक्ति से कवि ने शतरंज के खेल के व्याज से राजा और सुलतान की पारस्परिक मनोवृत्तियो का निदर्शन किया है। छठी पक्ति में कवि ने यह व्यजित किया है कि सुलतान राजा को घोड़ा रूपी झूठी कृपा दिखाकर धोखा देकर फरजी अर्थात् नारी को बन्दी बनाना चाहता था। यहाँ पर अर्थ शक्ति उद्‌भव स्वत सभवी वस्तु से वस्तु ध्वनि व्यंजित की गई है। सातवीं पंक्ति में भी यही ध्वनि है। अभीष्टार्थ है कि राजा ने हाथी रूपी वैभव देकर पदमावती रूपी फरजी को बचाना चाहा। शाह ने शह तो दी किन्तु रानीरूपी फरजी में मन लगा था।

(४) दोहे मे भी अर्थ शक्ति उद्‌भव स्वत:सम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंग्य ही व्यंजित किया गया है। व्यंजना यह है कि राजा सुलतान को अपने ऐश्वर्य और वैभव से पराभूत करने की चेष्टा कर रहा था और सुलतान छलपूर्वक राजा को बन्दी बनाकर पदमावती को लेना चाहता था।

(५) **फरजी**—शतरंज मे फरजी नाम का एक मोहरा होता है जिसे रानी भी कहते है।

बुरुद—दिखावटी लाभ।

विशेष—डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने इस अवतरण का एक शतरंजपरक अर्थ भी दिया है। यहाँ पर उसे अविकल उद्‌धृत कर देना अनुपयुक्त न होगा।

शतरज परक अर्थ—इस दोहे मे कवि को शतरंज का अर्थ भी अभिप्रेत है।

घोरा दै फरजी बँदि लावा—शाह ने घोडा देकर राजा के फरजी को वन्द कर लिया, यानि शाह ने अपना घोडा मरवा कर राजा के फरजी का मार्ग उस जगह पर (घर पर) जाने से वन्द कर दिया जहाँ पर राजा का फरजी आकर शाह के वादशाह की शहमात करता था। (यहाँ पर शाह ने घोडा चलाया और राजा ने शाह का घोड़ा मार लिया।)

जेहि मोहरा रुख चहै सो पावा—शाह ने रुख से वह मोहरा पा लिया जिसे वह चाहता था। यह मोहरा शाह को मात करता था, इससे मारना आवश्यक था। (नक्शे मे शाह का हाथी राजा के घोड़े को मारता है जिसके द्वारा राजा एक चाल मे शाह की शह मात करता है।]

राजा फील देइ सह माँगा—राजा ने फील (ऊँट) चल कर शह दी। 'सह दै सहि फरजी दिग खाँगा' शाह ने अपना वादशाह फरजी के पास खगते हुए (डट कर या अडा कर रखते हुए) राजा को शह दी (नक्शे मे शाह का वादशाह फरजी के सामने से डटकर वगल मे आ गया; यानी फरजी का हाथ नही छोडा; उसके पास खेगा रहा और उठन्त शह दी) नक्शे मे शाह का वादशाह फरजी के सामने से हट कर वगल मे आ गया, यानी फरजी का साथ नही छोड़ा, उसके पास खगा रहा और उठन्त शह दी।

फीलहि······चौदंत—राजा ने शाह की शह वचने के लिए अपने फील (ऊँट) को ढुका दिया, यानि अर्दव ने डाल दिया। इस पर शाह ने अपने फील को उस पर डाल दिया और दोनो चौदंत यानी आमने-सामने वरावरी से आ गए।

राजा······मंत—अव स्थिति यह हुई कि राजा शह की वुर्द वाजी करना चाहता था और शाह राजा को शह मात करना चाहता था।

रुख—इसे कुछ लोग रथ और कुछ लोग हाथी कहते है।

पायदे—यह वह गोटी होती है जो सामने के घर से चाल चलती है।

फरजी—इसे कुछ लोग रानी और कुछ लोग वजीर भी कहते है।

फील—इसे कुछ लोग ऊँट या हाथी भी कहते है।

खाँगा—अटक जाना।

वुरुद—शतरंज के खेल मे वह स्थिति होती है जिससे किसी पक्ष की सव मोहरे मारी जाती है।

नोट—इसके लिए डाक्टर अग्रवाल का पदमावत देखिए।

सूर देखि ओइ तरंई दासी। जहँ ससि तहाँ जाइ परगासी॥
सुना जो हम ढीली सुलतानू। देखा आजु तपै जस भानू॥
ऊँच छत्र ताकर जग माँहाँ। जग जो छाँह सव ओहि की छाँहाँ॥
वैठि सिहासन गरवन्ह गूंजा। एक छत्र चारिहुँ खँड भूँजा॥

सौहँ न निरखि जाइ ओहि पाहीं। सबै नखँहि कै दिस्टि तराहीं ॥
मनि माँथें ओहि रूप न दूजा। सब रुपवंत करहि ओहि पूजा ॥
हम अस कसा कसौटी आरसि। तहूँ देखु कंचन कस पारस ॥
पातसाहि ढीला कर कत चितउर महँ आव।
देखि लेहि पदुमावति हिदै न रहै पछिताव ॥३१॥

[इस अवतरण मे दासियो ने पदमावती से सुलतान के प्रताप और गौरव का वर्णन किया है।]

सुलतान रूपी सूर्य को देखकर नक्षत्ररूपी दासियाँ शशिरूपी पदमावती के समीप जाकर प्रकाशित हुईं। उन्होने पदमावती से कहा कि हमने दिल्ली के सुलतान के विषय मे जैसा सुना था वैसा ही पाया है। वह सूर्य की भाँति तपता है। संसार में उसी का छत्र सबसे ऊँचा है। जगत् मे जितनी छाँह है वह सब उसी के छत्र की छाया है। वह सिंहासन पर बैठकर गर्व से गूँजता है। वह एक छत्रपति होकर चारो दिशाओ का उपभोक्ता है। उसके समीप पहुँचकर ऊपर दृष्टि नही उठती है। सब दृष्टि नीची करके ही प्रणाम करते है। उसके माथे पर मणि चमकती है। उसके समान कोई दूसरा रूपवान नही है। सब रूपवान उसकी पूजा करते है। हम जैसी दासियाँ तो कसौटी पर काँच ही कसती रही है। अर्थात् हम लोग तो साधारण मनुष्यो को ही परखती रही है। तू पारस रूपिणी है। सोने के सदृश इस सुलतान की परीक्षा कर ले। दिल्ली का सुलतान चित्तौड़ मे क्यो आएगा, इसीलिए हे पदमावती रानी! तू उसे देख ले ताकि फिर पछतावा न रहे।

टिप्पणी—सूर······परगसी—पहली पंक्ति मे रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

जग जो छाँह सब ओहि छाँहाँ—यहाँ पर निर्णीयमाना संबधातिशयोक्ति अलंकार है। संसार की छाया और उसकी छत्रछाया में सम्बन्ध न होते हुए भी संबंध दिखाया गया है।

एक छत्र चारिहुँ खँड भूँजा—यहाँ पर द्वितीय विभावना अलंकार है। कारण के अपूर्ण होने पर भी कार्य की पूर्णता दिखाई गई है।

मनि माथे—मणि से अभिप्राय यहाँ पर सौभाग्य मणि से है। इसलिए साध्य-वसाना गौणी लक्षणा हुई।

ओहि रूप न दूजा—यहाँ पर असम अलंकार है।

सब रूपवंत करहिं ओहि पूजा—यहाँ पर अर्थशक्ति उद्भव स्वतःसम्भवी वस्तु से अलंकार ध्वनि है। व्यतिरेक अलंकार व्यग्य है। व्यंग्यार्थ है कि उसका रूप इतना दिव्य था कि दूसरे रूपवान पदार्थ उसके आगे क्षीण पड़ जाते थे।

हम अस कसा कसौटी आरसि—यहाँ पर पदगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। यहाँ पर 'आरसि' या काँच का व्यग्यार्थ सामान्य पुरुष है। 'अस' मे संवृति वक्रता भी है।

तहूँ देखु कंचन कस पारस—यहाँ पर 'तहूँ पारस' मे सारोपा गौणी लक्षणा है और पूरे वाक्य मे पदगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। व्यंग्यार्थ है कि सुलतान की परीक्षा लेकर उसकी वास्तविकता की पहचान।

बिगसि जो कुमुद कहँ ससि ठाँऊँ। बिगसा कँवल सुनत रवि नाऊँ॥
भै निसि ससि धौराहर चढ़ी। सोरह करा जैसि विधि गढ़ी॥
बिहँसि झरोखे आइ सरेखी। निरखि साहि दरपन महँ देखी॥
होतहि दरस परस भा लोना। धरती सरग भएउ सब सोना॥
रुख माँगत रुख तासौं भएउ। भा सह माँत खेल मिटि गएऊ॥
राजा भेदु न जानै झाँपा। भै बिख नारि पवन बिनु काँपा॥
राघौ कहा कि लाग सुपारी। लै पौढावहु सेज सँवारी॥
रैनि बिहानी भोर भा उठा सूर तब जागि।
जौ देखै ससि नाही रही करा चित लागि॥३२॥

[पदमावती ने सोलह शृंगार करके झरोखे में आकर दर्पण पर अपनी झाँकी सुलतान को दिखाई। उसे देखकर सुलतान रूपमुग्ध हो सज्ञाहीन हो गया। प्रस्तुत अवतरण मे इसी प्रसंग का वर्णन किया गया है।]

कुमुदिनी रूपी सखियो ने जब प्रसन्न होकर शशि रूपी पदमावती के समक्ष यह वृत्तान्त कहा तो सूर्य का नाम सुनकर कमल विकसित हो गया। रात्रि हो जाने पर अर्थात् शशि उदय हो जाने पर शशिरूपी पदमावती धवलगृह के ऊपर चढ़ी। उस समय वह ऐसी शोभायमान थी मानो विधाता ने सोलह कलारूपी शृंगारों से सुशोभित किया हो। वह चतुर रमणी बिहँसकर झरोखे में आई। तभी बादशाह ने दर्पण पर दृष्टि डालकर उसे देख लिया। दर्शन होते ही मधुर स्पर्श की अनुभूति हुई और पृथ्वी और स्वर्ग सब स्वर्णमय हो उठे। वह शतरंज का रुख माँग रहा था उसी समय उसका रुख पदमावती की ओर हो गया। उसका दर्शन पाते ही बादशाह मात हो गया अर्थात् उन्मत्त हो गया। उसके उन्मत्त होते ही खेल समाप्त हो गया। राजा इस रहस्य को न समझ पाया। स्त्री विषरूप हो गई। वह शाह की अवस्था देखकर ऐसा काँप गया मानो पवन के बिना ही पत्ता काँप गया हो अथवा शाह को वह स्त्री विषरूप हो गई जिसे बचा सकने के कारण सुलतान पवन से नही काम से काँप रहा था अथवा शाह को विषकन्या का विप चढ गया था जिसके कारण उसके शरीर में वात रोग के बिना ही कँप-कँपी आ रही थी। अथवा नौसिखिया योगी की विषयुक्त नाड़ी की साधना गड़बड़ हो गई थी जिससे कि प्राण शुद्धि के बिना ही उसका शरीर कपायमान था।

रात्रि व्यतीत हुई, प्रातःकाल हुआ। सूर रूपी शाह जग गया। जब उसने देखा

तो शशिरूपी पदमावती नही थी। केवल उसकी कला अर्थात् छवि उसके मन मे बसी थी।

टिप्पणी—(१) प्रथम पंक्ति में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

(२) **भय निसि**—में अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। व्यंग्यार्थ है कि उसके अन्तस्तल मे अज्ञान की कालिमा छा गई। परिणामस्वरूप सती होते हुए भी उसको पर पुरुष को देखने की इच्छा जाग्रत हुई।

(३) **ससि धौराहर चढ़ी**—यहाँ पर साध्यवसाना गौणी लक्षणा है। लक्ष्यार्थ है कि शशि के समान सुन्दर पदमावती धवलगृह पर चढ़ी।

(४) **सोरह करा जैसि बिधि गढ़ी**—यहाँ पर वस्तूत्प्रेक्षा अलकार है।

(५) **झरोखे आय सरेखी**—इसमे वर्णविन्यास वक्रता है। पूरी पंक्ति मे ही वर्णविन्यास वक्रता है।

(६) **होतहि दरस परस भा लोना**—'परस भा लोना' का वाच्यार्थ है नमकीन स्पर्श हुआ। इसका लक्ष्यार्थ है मधुर स्पर्श। सौन्दर्यातिशय्य की व्यंजना करना यहाँ पर कवि का लक्ष्य है। इसलिए यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। इस पंक्ति का दूसरे प्रकार से भी अर्थ कर सकते है, 'परस' को 'दरस' के साथ भी ले सकते है। इस ढंग से अर्थ करने पर 'परस' का अर्थ 'पारस' लिया जाएगा। वाच्यार्थ होगा कि पारसरूपी पदमावती के दर्शन करते ही वह शाह लोना हो गया। इस अवस्था मे भी 'लोना' पद मे भी पदगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। 'लोना' का अर्थ सुन्दर लिया जाएगा। यहाँ पर कवि का प्रयोजन पदमावती के सौदर्यातिशय्य की व्यंजना करना है। पदमावती परम सुन्दरी थी। उसकी सुन्दरता मे दूसरो को सुन्दर करने की दिव्य शक्ति भी थी। यही व्यंग्यार्थ है।

धरती सरग भएउ सब लोना—यहाँ पर सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार है। 'लोना' मे पदगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। लक्ष्यार्थ सुन्दर है। रूपातिशय्य की व्यंजना ही प्रयोजन है।

सोना—इस पद मे पदगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। सोने का अर्थ यहाँ पर सुन्दर है। पदमावती का दिव्य सौदर्य ही यहाँ व्यंग्य है।

रुख माँगत रुख तासौं भयउ—यहाँ पर एक रुख का अर्थ शतरंज के खेल का रुख है और दूसरे का अर्थ रुझान है। अतः यमक अलंकार है।

भा सह माँत खेल मिटि गयउ—यहाँ पर मात शब्द से शब्दशक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है। पदमावती के रूप का विमुग्धकारी प्रभाव व्यंग्य है। शाह पदमावती के रूप के प्रभाव से उन्मत्त हो गया।

राजा भेदु न जानै झाँपा—यहाँ पर अमूर्त्त पर मूर्त्तता का आरोप करने के कारण उपचारवक्रता है। भेद अमूर्त्त तत्त्व है और झाँपा या ढका कोई मूर्त्त वस्तु जाती है। यहाँ पर प्रयोजनवती लक्षण-लक्षणा मूलक अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। 'झाँपा' का लक्ष्यार्थ यहाँ पर 'गूढ़' लिया गया है। जो उसके रूढ़ार्थ से भिन्न है। यहाँ

पर 'झाँपना' क्रिया से कवि ने पदमावती के हृदय की विकृत दुर्बलता की व्यंजना की है। सती होते हुए भी उसके हृदय मे पर पुरुप की देखने की इच्छा का जाग्रत होना उसकी वहुत वड़ी दुर्वलता थी। यह दुर्वलता ही यहाँ व्यंग्य है।

भै विखनारि पवनु बिनु काँपा—यहाँ पर कवि प्रौढोक्तिसिद्ध अलंकार ध्वनि से वस्तु ध्वनि है। नारि का विपरूप होना इसमें विरोधाभास है। 'पवन विनु काँपा' मे विभावना है। अभीष्ट अर्थ है कि वह स्त्री अपने पति के लिए विपरूप हो गई और उसका पति विना कारण के ही कपायमान हो उठा। यहाँ पर रतनसेन के हृदय की उद्विग्नता और भय तथा पदमावती के हृदय की दुर्वलता वस्तु रूप व्यंग्य है। इस पंक्ति का अर्थ शाह के पक्ष मे भी किया जा सकता है। उस अवस्था में अभीष्टार्थ होगा कि पदमावती शाह के लिए विपरूप हो गई। अर्थात् उसके दर्शन से शाह को विप चढ गया और वह विना वात रोग के ही कंपायमान होने लगा। इस अवस्था मे भै विप नारि अश मे वस्तु ध्वनि से अलंकार ध्वनि निकलती है। शाह के दर्शन मात्र से विप चढ जाना कहकर कवि ने चपलातिशयोक्ति की व्यंजना की है।

पवन विनु काँपा—मे कवि प्रौढोक्ति सिद्ध अलंकार से अलंकार ध्वनि हैं। विभावना अलंकार है, इस विभावना अलंकार से हेतूत्प्रेक्षा व्यंग्य है। कवि ने काँपने का कारण पदमावती का प्राप्त न होना कल्पित किया है। इस अवस्था मे पंक्ति का अर्थ होगा कि वह स्त्री वादशाह के लिए विपरूप हो गई जिसे न पाने के कारण वह काँप रहा था।

राघो कहा कि लाग सुपारी—यहाँ पर भी अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है।

लाग सुपारी—का अर्थ टोना पड जाता है। पहले स्त्रियाँ मत्र की सुपारी मार कर पुरुपो पर टोना किया करती थी। यहाँ पर राघो यही कहना चाहता है कि सुलतान पर किसी ने टोना किया है जिससे वह वेहोश हो गया है। यहाँ पर पदमावती के रूप के मोहक प्रभाव की व्यंजना करना कवि का लक्ष्य है। राघव चेतन यह व्यंजित करना चाहता है कि शाह पर पदमावती के रूप का जादू पड़ गया है।

सुपारी लगना—एक मुहावरा भी है, जिसका अर्थ गले मे सुपारी अटकना है। यहाँ पर हम मुहावरे का प्रयोग न मानकर इस प्रयोग के व्यंग्यार्थ को ही महत्त्व देते है।

रैन विहानीं भोर भा—यहाँ पर स्वतःसम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंग्य है। वाच्यार्थ है रात्रि व्यतीत हुई और प्रातः हुआ। व्यंग्यार्थ है कि उसके हृदय का मोह दूर हुआ और उसने फिर से सज्ञा प्राप्त की।

उठा सूर तव जाग—यहाँ पर अलंकार ध्वनि से वस्तु ध्वनि है। रूपकातिशयोक्ति अलकार के सहारे कवि ने सुलतान के पुनःप्रवुद्ध हो जाने की वस्तु रूप व्यजना की है। यहाँ पर उपचारवक्रता भी है। सूर्य पर पुरुप का आरोप किया गया है।

रही करा चित्त लागि—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। करा या कला चित्त मे लग नही सकती। अतः वाच्यार्थ का तिरस्कार किया गया है। कवि यह कहना चाहता है कि पदमावती की रूप माधुरी उसके मन मे समाई हुई थी। पदमावती के रूप माधुरी के व्यापक प्रभाव की व्यजना ही कवि का लक्ष्य है।

प्रस्तुत अवतरण मे पदमावती का चरित्र गिरा दिया गया है। पदमावती एक भारतीय सती नारी है। सती नारी के हृदय मे पर-पुरुष के गौरव को सुनकर हर्षोन्मेष होना मर्यादा के विरुद्ध है। कवि ने प्रथम पक्ति मे सखियो द्वारा अलाउद्दीन के गुणगान किए जाने पर उसके हृदय मे हर्ष के स्पष्ट उन्मेष की व्यजना की है। आध्यात्मिक दृष्टि से भी इस प्रकार के चित्रण की कोई औचित्यपूर्ण व्याख्या नही की जा सकती। अपनी अन्योक्ति मे कवि ने पदमावती को सद्‌बुद्धि माना है और अलाउद्दीन को माया कहा है। माया के लिए सद्‌बुद्धि का व्याकुल होना, या उससे प्रभावित होना सर्वथा अनुचित है।

भोजन पेम सो जान जो जेवा। भँवर न तजै बास रस केवा॥
दरस देखाइ जाइ ससि छपी। उठा भान जस जोगी तपी॥
राघौ चेतन साहि पहँ गएऊ। सुरज देखि कँवल बिस भएऊ॥
छत्रपती मन कहाँ पहूँचा। छत्र तुम्हार गँगन पर ऊँचा॥
पाट तुम्हार देवतन्ह पीठी। सरग पतार रैनि दिन डीठी॥
छोह त पलुहै उकठा रूखा। कोह त महि सायर सब सूखा॥
सकल जगत तुम्ह नावै माँथा। सब की जियनि तुम्हारे हाथा॥
दिन न नैन तुम्ह लावहु रैनि बिहावहु जागि।
अब निचित अस सोए काहे बेलँब असि लागि॥३३॥

[प्रस्तुत अवतरण में कवि ने सुलतान के पदमावती के रूप पर मुग्ध हो जाने के वाद की स्थिति का चित्रण किया है। वह सारी रात मुग्धावस्था मे पड़ा रहा। प्रात. होने पर उसकी संज्ञा पुनः लौटी। किन्तु अब भी वह भाव-विभोर है। उसकी इस भाव-विभोरता की अवस्था को ही लक्षित करके कवि ने लिखा है।]

प्रेम के भोजन के आनन्द को वही जानता है जिसने उसे खाया है। भ्रमर कमल की सुरभि और उसके रस का एक वार आस्वादन करके फिर कभी नही त्यागता। शशिरूपी पदमावती अपना दर्शन दिखाकर छिप गई। उधर सूर्य रूपी सुलतान इस प्रकार जगा मानो समाधि से जोगी जगा हो। राघव चेतन ने जाकर सुलतान से पूछा कि आश्चर्य है कि कमल को देखकर सूर्य को विष चढ गया है। अर्थात् कमल को देखकर सूर्य मुग्ध हो गया है। हे छत्रपति! तुम्हारा मन कहाँ चला गया है। तुम्हारा छत्र तो आकाश से भी ऊँचा है। तुम्हारा सिंहासन देवताओ की पीठ पर है। स्वर्ग और पाताल दोनो ही तुम्हारी दृष्टि मे दिन-रात रहते है।

तुम्हारी कृपा कटाक्षों से ठूंठ भी पल्लवित हो सकता है। तुम्हारे क्रोध से पृथ्वी, समुद्र सब सूख सकते है। सारा ससार तुम्हारी अधीनता स्वीकार करता है। सबका जीवन तुम्हारे हाथ मे है।

तुम दिन मे पलक नही मारते थे और रात जाग कर व्यतीत कर देते थे किन्तु आज आप ऐसे निश्चिन्त होकर सो गए कि उठने का नाम ही न लिया। इतना विलम्ब किस कारण से हुआ।

टिप्पणी—(१) भोजन प्रेम सो जान जो जेवा—भोजन प्रेम मे उल्टा समास है। इसका सीधा रूप होता है प्रेम भोजन। जायसी मे हमे इस प्रकार के समास बहुत से मिलते है। इनका प्रयोग उन्होने किन्ही गूढ अर्थो की व्यंजना के लिए या किसी अर्थ पर विशेष बल देने के लिए किया है। यहाँ पर कवि ने प्रेम के उपभोगत्व पर बल देने के लिए ही विपरीत समास का प्रयोग किया है। प्रेम से बढ़कर उपभोग्य पदार्थ नही हो सकता। यहाँ पर उपचारवक्रता है। भोजन मूर्त्त पदार्थ है और प्रेम अमूर्त्त पदार्थ है। यहाँ पर अर्थान्तिर सक्रमित वाच्य ध्वनि है। भोजन से कवि का तात्पर्य प्रेम के माधुर्य से है। इस माधुर्य को वही जानता है जिसने उसका आस्वादन किया है। प्रेम की मधुरता ही भोजन पद से व्यंग्य है।

पूरी पंक्ति मे तुल्ययोगिता अलंकार व्यंग्य है।

दरस दिखाय जाय ससि छपी—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलकार से सौंदर्यातिशय्य रूप वस्तु व्यग्य है। अत. यह कवि प्रौढोक्तिसिद्ध अलंकार से वस्तु ध्वनि अलंकार है।

सूरज देख कँवल बिख भयऊ—यहाँ पर कवि प्रौढोक्तिसिद्ध अलंकार से वस्तु ध्वनि है। कवि ने रूपकातिशयोक्ति के प्रयोग से अलाउद्दीन की महत्ता और पदमावती की क्षुद्रता तथा अलाउद्दीन की पदमावती के लिए प्रेमासक्ति की व्यंजना की है। राघव चेतन अलाउद्दीन के प्रति यह व्यंजित करना चाहता है कि उसके जैसे महान् सम्राट् के प्रति पदमावती जैसी रानी की आसक्ति स्वयमेव होनी चाहिए थी। फिर यह उल्टी बात कैसे हुई कि सम्राट् की आसक्ति पदमावती के प्रति हो गई। यहाँ पर पदगत अर्थान्तिर सक्रमित वाच्य ध्वनि भी है। 'बिख भयऊ' क्रिया अलाउद्दीन की व्याकुलता की व्यंजक है।

छत्र पतिमन कहाँ पहूँचा—यहाँ पर 'कहाँ' पद मे काकुध्वनि है। राघव चेतन पदमावती की क्षुद्रता और सम्राट् की महत्ता व्यजित करना चाहता है। व्यंग्यार्थ है कि आप जैसे महान् सम्राट् को पदमावती जैसी साधारण रानी के प्रति आसक्ति नही होनी चाहिए थी। यहाँ पर व्याजस्तुति अलंकार भी व्यंग्य है।

छत्र तुम्हार गँगन पर ऊँचा—यहाँ पर सम्बन्धातिशयोक्ति अलकार है। इस अलंकार से सुलतान के महान् गौरवरूप वस्तु की व्यंजना की गई है इसलिए यहाँ पर कवि-निबद्ध-पात्र की प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अलंकार से वस्तु ध्वनि भी प्रस्तुत की है।

पाट तुम्हार देवतन्ह पीठी—यहाँ पर अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। 'देवतन्ह पीठी' से कवि का अभिप्राय चराचर मात्र से है। व्यंग्यार्थ है कि चराचर मात्र आपके शासन और प्रताप की अधीनता स्वीकार करता है।

सरग पतार रैनि दिन दीठी—यहाँ पर कवि निवद्ध पात्र की प्रौढोक्तिसिद्ध अलंकार से वस्तु ध्वनि है। यहाँ पर सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार है। इस अलंकार से कवि ने अलाउद्दीन के शासन की अत्यधिक व्यापकता और उसके अखण्ड प्रभुत्व की व्यंजना की है। यहाँ पर 'सरग पतार' में अर्थान्तिर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। 'सरग पातार' मे कवि ने संपूर्ण सृष्टि का उपादान किया है। अलाउद्दीन के प्रभुत्व की असीम व्यापकता ही यहाँ व्यंग्य है।

छोहत पलुहै उकठा रूखा—यहाँ पर प्रतीयमाना हेतूत्प्रेक्षा से सुलतान के महान् प्रताप की व्यंजना की गई है। इसलिए यहाँ कवि निवद्ध-पात्र की प्रौढोक्तिसिद्ध अलंकार से वस्तु व्यंग्य है।

कोह त महि सायर सब सूखा—यहाँ पर भी प्रतीयमाना हेतूत्प्रेक्षा है और उससे शाह के अत्यधिक व्यापक प्रभाव रूप वस्तु की व्यजना की गई है। अतएव यहाँ पर भी कवि निवद्ध-पात्र की प्रौढोक्तिसिद्ध अलंकार से वस्तु व्यंग्य है।

सबकौं जियनि तुम्हारे हाथा—यहाँ पर अर्थान्तिर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। 'जियनि' का अर्थ जीना-मरना आदि से सम्पूर्ण अस्तित्व व्यग्य है। यहाँ पर भी सुलतान की अनन्त प्रभुता ही व्यंग्य है।

देखि एक कौतुक हौ रहा। अहा अँतरपट पै नही अहा॥
सरवर एक देख मैं सोई। अहा पानि पै पानि न होई॥
सरग आइ धरती महँ छावा। अहा धरति पै धरति न आवा॥
तेहि महँ है पुनि मँडप ऊँचा। करन्हि अहा पै कर न पहुँचा॥
तेहि मँदिल मूरति मैं देखी। बिनु तन बिनु जिय जियै विसेखी॥
चाँद सँपूरन जन होई तपी। पारस रूप दरस पै छपी॥
अब जहँ चित्र विसै जिउ तहाँ। भान अमावस पावै कहाँ॥
बिगसा कँवल सरग निसि जनहुँ लौकि गा बीजु।
यहौ राहु भा भानहि राधौ मनहिं पत्तीजु ॥३४॥

[इस अवतरण में सुलतान ने परमात्मा के आंशिक साक्षात्कार से उद्भूत रहस्यानुभूति की आस्था का बड़ा मार्मिक चित्रण किया है।

दार्शनिकता, रहस्यात्मकता और अभिव्यक्तिगत चमत्कार इन तीनों दृष्टियो से यह अवतरण बड़ा महत्त्वपूर्ण है।]

साधारण अर्थ—सुलतान कहता है मैं एक आश्चर्यपूर्ण दृश्य देख रहा था। हमारी दृष्टि और दृश्य के बीच मे पर्दा था भी और नही भी था। उस दृश्य मे मैंने

एक सरोवर देखा। उसमे पानी था किन्तु उसका पान नहीं किया जा सकता था। आकाश पृथ्वी पर छा गया। वह पृथ्वी पर था किन्तु फिर भी वह पृथ्वी पर नही था। उस आकाश मे एक ऊँचा मण्डप दिखाई पडा। वह हाथ की सीमाओ के अन्दर होते हुए भी हाथ से ग्रहण नही किया जा सकता था। उस मन्दिर मे एक मूर्ति दिखाई पड रही थी जिसके शरीर और प्राण न होते हुए भी वह विशेप रूप से सजी हुई थी। वह मूर्ति जैसे पूर्ण चन्द्र के समान प्रकाशमान थी किन्तु वह रूप की पारस मूर्ति दर्शन देकर छिप गई। अब जहाँ पर वह आश्चर्य रूप मूर्ति है वही मेरे प्राण वसते है। सूर्य अमावस्या मे पूर्णिमा के चाँद मे कैसे मिल सकता है। रात के समय मैंने आकाश मे विकसित कमल देखा। ऐसा लगा मानो विजली कौंध गई हो। वस यही मुझ सूर्य के लिए राहू हो गया। हे राघव ! मेरी इस वात पर विश्वास कर ले। यह लेश-मात्र भी असत्य नही है।

व्यंग्यार्थ—इस अवतरण मे कवि ने साधक द्वारा की गई रहस्यानुभूति की अवस्था की मनोरम व्यंजना की है। यह रहस्यानुभूति प्रेम और हठयोग उभय मूलक है।

भावात्मक रहस्यवाद की दृष्टि से पूरे अवतरण की व्यंजना—मैं एक अद्भुत रहस्य देख रहा हूँ। वह रहस्य दृश्यमान था। अत. उसका वर्णन करेंगे। किन्तु उसकी पूर्ण उपलब्धि नही हुई थी। अतएव उसे पूर्णरूपेण अनावृत भी नही कर सकते। अथवा मुझे उस रूपराशि की झलक मिली किन्तु माया के आवरण के कारण पूर्ण स्पप्ट नही हो रही थी। वह रूप इतना सजल और सजीव था कि वह सरोवर के सदृश दीख रहा था। रूप का वह सरोवर अलौकिक दिव्य और अनिर्वचनीय था। उसकी विशेपता यह थी कि वह रूप रस युक्त था किन्तु उस रूप का उपभोग नही किया जा सकता था। रूप की वह प्रतिमा स्वर्गिक थी। उसकी झलक को देखकर ऐसा अनुभव होने लगा कि स्वर्ग ही पृथ्वी पर उतर आया हो। वह रूप की झलक पृथ्वी पर मुझे दृश्यमान थी किन्तु उसको आत्मसात् नहीं कर पा रहा था। उस दिव्य रूप की विशेपता यह थी कि वह एक मडप में था अर्थात् उसके चारो ओर छवि मण्डल था। वह छवि मण्डल ऐसा अलौकिक था कि हाथो की सीमाओ मे होते हुए इन भौतिक हाथो से पकड़ा नही जा सकता था। वह रूप की प्रतिमा उसी दिव्य छवि मण्डल मे प्रतिष्ठित थी। उसकी विशेपता यह थी कि वह मूर्त होते हुए भी शरीर और प्राण विहीन थी। वह मूर्ति सम्पूर्ण चन्द्र के समान जाज्वल्यमान थी। वह पारस रूपिणी छवि प्रतिमा जिसमे कुरूप को भी रूपवान बनाने की शक्ति थी, दर्शन देकर या झलक दिखाकर छिप गई। अव तो मेरा मन वहाँ लगा हुआ है, जहाँ वह दिव्य और अलौकिक रूप राशि है। अज्ञानावस्था मे सूर्य के विरह ज्वाला के सदृश जलता हुआ मैं उस पूर्ण चाँद को कहाँ प्राप्त करूँ।

स्वर्गिक रूप शशि अज्ञानावस्था रूपी रात्रि मे मेरे हृदय मे कवच के समान मिली हुई है। उसकी वह एक झलक ऐसी थी जैसे क्षण-भर को विजली कौंध गई हो।

यह अर्थ भावमूलक रहस्यवाद के अनुकूल है। भावात्मक रहस्यवादी का उपास्य दिव्य सौन्दर्य रूप होता है। इस सौन्दर्यवाद के प्रमुख प्रवर्तक सूफी संत इब्ने सिना थे। जामी भी सौन्दर्यवादी ही थे।

रहस्यवाद में रहस्यानुभूति की कई अवस्थाएँ बताई गई है। जैसे जागरण की अवस्था, आंशिक अनुभूति की अवस्था, काली रात की अवस्था और मिलन की अवस्था प्रमुख है। प्रस्तुत अवतरण मे आंशिक अनुभूति और काली रात्रि की अवस्थाओ की व्यंजना की है।

हठयौगिक अर्थ—यहाँ पर सूफी साधना सम्बन्धी रहस्य की व्यंजना तो है। भारतीय उपनिषदों का प्रभाव भी है।

इस आत्मा के रूप का वर्णन भी उपनिषदों मे बड़े रहस्यात्मक ढंग से किया है—

'न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य,
न चक्षुषा पश्यति कश्चनैव।'

अर्थात् इस आत्मा का रूप दृष्टि में नही ठहरता। इसे नेत्र से कोई भी नही देख सकता।

यथादर्शे तथात्मनि—जिस प्रकार दर्पण मे उसी प्रकार निर्मल बुद्धि में आत्मा के दर्शन होते हैं। (कठ २।३।५)

पारूस रूप दरस दै छपी—कठोपनिषद् मे आत्मा की इसी विशेषता की व्यजना की गई है।

तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्,
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।

ब्रह्म रूप के वर्णन में विरोधात्मक शैली का प्रयोग सर्वत्र किया गया है। ईशावस्योपनिषद् मे लिखा है—

'तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके'। —ईशोप-५

अर्थात् वह आत्मरूप चलता है, चलता नही है।

इस प्रकार की शैली का प्रयोग वास्तव में दिव्यता और अलौकिकता व्यंजित करने के लिए किया गया है। जायसी ने भी उपर्युक्त अवतरण मे इस प्रकार की विरोधात्मक शैली का प्रयोग उस रूप शशि की दिव्यता और अलौकिकता व्यजित करने के लिए किया है।

हठयौगिक रहस्यवाद की व्यंजना—मैंने एक अद्भुत रहस्य देखा है। वह रहस्य ऐसा विचित्र था कि उसे हम न तो आवृत कह सकते थे न अनावृत ही। मैंने सहस्रार रूपी सरोवर देखा। वह पाणि मे था अर्थात् हमारी पहुंच मे था किन्तु उसमें जल न था। स्वर्ग आकर पृथ्वी मे छा गया था अर्थात् स्वर्गिक ज्योति रूपी ब्रह्म पृथ्वी तत्त्व से बने इस शरीर मे प्रकाशमान था किन्तु फिर भी यह भौतिक न थी। (धरति न आवा) उस सहस्रार मे ब्रह्म रन्ध्र रूपी एक मण्डप है। वह कर मे होते

हुए अर्थात् दृश्यमान होते हुए भी हाथो द्वारा नही छुआ जा सकता था। उस ब्रह्मरन्ध्र रूपी मण्डप मे ज्योति स्वरूपी मूर्ति थी। उस मूर्ति की विशेषता थी कि उसके शरीर और प्राण न थे किन्तु फिर भी जीवित थी। (यह मूर्ति ज्योतिस्वरूपी ब्रह्म रूप थी) वह मूर्ति ऐसी ज्योतिरूप थी जैसे सम्पूर्ण चाँद हो। वह पारस रूप थी अर्थात् उसी से सब प्रकाशित थे। इस प्रकार का ज्योतिस्वरूपी ब्रह्म जहाँ है, वहीं मन लगा हुआ है। किन्तु इसकी अवस्था (साधना की अपूर्णता की स्थिति) मे सूर्य का चाँद से मिलना नही हो सकता है। जायसी के सम्पूर्ण पदमावत मे सूर्य चन्द्र साधना की प्रतिष्ठा की गई है। रात्रि मे अर्थात् साधना की इस अपूर्णता की स्थिति मे ही उस ज्योतिरूपी परमात्मा के जो स्वर्गिक कमल-सा प्रतीत हो रहा था, की झलक ऐसी लगी जैसे बिजली चमक गई हो। यह आंशिक झलक भी सूर्य के लिए शत्रु रूप हो गई।

साहित्यिक टिप्पणी—अहा अँतरपट पै नहीं आहा—यहाँ पर विरोधाभास अलंकार है। इस अलंकार से कवि ने उस दृश्य की अलौकिकता, दिव्यता और रहस्यात्मकता व्यजित की है। यहाँ पर कवि निबद्ध-पात्र के प्रौढ़ोक्तिसिद्ध अलकार मे वस्तु व्यंग्य है। इस प्रकार के वर्णन उपनिषदों, गीता आदि में भरे पड़े हैं।

सोई—यहाँ पर संवृति वक्रता है। व्यंजना है 'बड़ा विचित्र', 'अहा पानि पै पानि न होई'। यहाँ पर विरोधाभास अलंकार है। उस विरोधाभास से दृश्य की दिव्यता, अलौकिकता व्यग्य है। यहाँ भी कवि निबद्ध-पात्र के प्रौढोक्तिसिद्ध अलकार से वस्तु व्यग्य है।

सरग आइ धरती महँ धावा—यहाँ पर अल्प अलकार है। इस पक्ति का अर्थ है कि स्वर्गीय मूर्ति इस पृथ्वी पर दिखलाई पड़ी। यहाँ एक यौगिक अर्थ व्यंग्य है। 'सरग' से अभिप्राय सहस्रार से है और धरती से मूलाधार अर्थ अभिप्रेत है। योग साधना मे साधक के शरीर मे मूलाधार पर सहस्रार की कल्पना की कवि ने साहित्यिक चमत्कार के साथ अभिव्यक्त करने की चेष्टा की है।

अहा धरति पै धरति न आवा—यहाँ पर विरोधाभास अलंकार है। इस अलंकार द्वारा कवि ने यह व्यंजित करने की चेष्टा की है कि यह दिव्य मूर्ति या ज्योतिस्वरूपी आत्म तत्त्व मूलाधार मे होते हुए भी इस भौतिक पृथ्वी पर नहीं आ सकता है। यहाँ पर विरोधाभास अलंकार से वस्तु ध्वनि है।

मंडप ऊँचा—इससे ब्रह्मरन्ध्र का संकेत किया गया है। 'करहि अहा पै कर न पहुँचा' यहाँ पर विरोधाभास अलंकार है। इसके सहारे कवि ने ब्रह्मरन्ध्रस्थ ज्योति-स्वरूप परमात्मा की दिव्यता, अगम्यता और अलौकिकता व्यंजित की है। यह व्यजना वस्तुरूप है। अतः यहाँ पर कवि निबद्ध-पात्र की प्रौढोक्तिसिद्ध अलंकार से वस्तु ध्वनि है।

बिनु तन बिनु जिय जियै बिसेखी—यहाँ पर विभावना अलंकार है। विभावना

से कवि ने उस मूर्ति की अलौकिकता, दिव्यता और अनिर्वचनीयता व्यंजित की है। यहाँ पर भी उपर्युक्त ध्वनि है।

चाँद संपूरन होई तपी—यहाँ पर वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है।

भानु अमावस पावै कहाँ—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। 'भानु' का अर्थ यहाँ सुलतान और अमावस्या से कवि का अभिप्राय निराशा की स्थिति से है। सुलतान यह व्यंजित कर रहा है कि जब तक राजा रतनसेन वंदी नही बनता तब तक पदमावती रूपी पूर्णिमा मुझ सूर्य को प्राप्त नही हो सकती।

बिगसा कँवल सरग निसि—यहाँ पर हठयौगिक अर्थ व्यग्य है। कवि यह व्यंजित करना चाहता है कि ब्रह्मज्योति सहस्रार मे उदित हुई। यह अनुभूति साधक को उस समय हुई जबकि उसे उसकी प्राप्ति की कोई आशा नही थी। उस ज्योति के दर्शन ऐसे अनुभूत हुए मानो विजली चमक गई हो। यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। रात्रि मे स्वर्ग मे कमल का खिलना अर्थ बाधित हो जाने पर निराशावस्था मे सहस्रारस्थ ब्रह्मज्योति के दर्शन होना व्यंग्य है।

यहौ राहु भा भानहिं—यहाँ पर राहु का अर्थ है शत्रु और भानु पद सुलतान ने अपने लिए प्रयुक्त किया है। पदमावती की प्राप्ति मे जो कठिनाइयाँ संभाव्य है, कवि ने उनकी व्यंजना की है। अतएव यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। सुलतान यह व्यंजित करना चाहता है कि उसकी एक दिव्य झलक ही मेरे सांसारिक जीवन के लिए शत्रु रूप हो गई।

यह अद्भुत रस का वड़ा सुन्दर उदाहरण है। अद्भुत रस होने से 'असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि का उदाहरण है'।

रहा अंतर पट पै नहि अहा—वेदान्त मे जीव को अविद्योपाधिक और ईश्वर को मायोपाधिक कहा गया है। यहाँ साधक को ब्रह्म के दर्शन हो रहे है अर्थात् उसका मायोपाधिरूप आवरण निरावृत हो गया है किन्तु जीवत्व की उपाधि या अविद्या का पर्दा दूर नही हुआ। अतः कवि ने लिखा है कि उस ब्रह्म-साक्षात्कार की स्थिति मे पर्दा था और नही भी था।

शब्दार्थ—कौतुक अथवा कौकुत—दोनों रूपों मे प्रथम रूप सही है। दूसरा रूप व्यंजन विपर्यय से बना है। जैसे लखनउ या नखलऊ हो जाता है=अद्भुत रहस्य या आश्चर्य।

अन्तर पट=परदा।

सरवर=सरोवर या तालाव।

पानि=पाणि या हाथ।

पाठ भेद—सातवी पंक्ति का पाठ शुक्ल जी में इस प्रकार है—

अब जहँ चतुर दसी जिउ तहाँ,
भानु अमावस पावा कहाँ।

अर्थ है कि प्राण वहाँ है जहाँ चौदहवी के चाँद के समान निष्कलंक एवं परम-रूपवती पदमावती है। सूर्य अमावस्या मे नही मिल सकता क्योकि चतुर्दशी मे ही उसे ग्रहण लग गया है। व्यंजना है कि शाह का मन पदमावती मे ही उलझकर रह गया है। निराशा की अमावस्या तक पहुँचने का कोई प्रश्न ही नही है।

अति बिचित्र देखेउँ सो ठाढ़ी। चित कै चित्र लीन्ह जिय काढ़ी।
सँघ की लँक कुँभस्थल जोरू। अँकुल नाग महावत मोरू॥
तेहि ऊपर भा कँवल बिगासू। फिरि अलि लीन्ह पहुप रस बासू॥
दुहुँ खँजन बिच बैठेउ सुवा। दुइज क चाँद धनुक लै उवा॥
मिरिग देखाइ गवन फिरि किया। ससि भा नाग सुरुज भा दिया॥
सुठि ऊँचे देखत्त औचका। दिस्टि पहुँचि कर पहुँचि न सका॥
भुजा बिहूनि दिस्टि कत भई। गहि न सकी देखत बह गई॥
राघौ आधौ होत जौ कत आछत जियँ साध।
ओहि बिनु आघ बाघ बर सकैत लै अपराध॥२१॥

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती के विचित्र सौन्दर्य का बडा साहित्यिक चित्रण किया है।]

सुलतान राघव चेतन से कहता है—मैने उसे खड़े हुए देखा। उसका रूप बड़ा विचित्र था। वह अपना चित्र तो हमारे हृदय मे छोड़ गई और हमारा हृदय निकाल ले गई। उसकी कटि सिंह की है। उस पर हाथी के कुम्भस्थलों का जोड़ा रखा है। ऊपर मोर रूपी महावत नाग का अंकुश लिए है। उसके ऊपर कमल खिला हुआ है। भौंरे घूम-घूम कर उस कमल पुष्प की सुरभि और रस ले रहे है। दो खञ्जनों के बीच तोता बैठा है। दूज का चाँद धनुष लेकर उदित हुआ। मृग के दर्शन कराकर वह चली गई। चन्द्रमा नाग बन गया और सूर्य दीपक हो गया। अत्यधिक ऊँचे पर स्थित होने के कारण उस प्रतिमा को उचक कर देखना पडा। उस तक केवल दृष्टि पहुँची हाथ नही पहुँचा। न जाने क्यों दृष्टि भुजा से विहीन हुई। देखते-देखते वह चली गई। दृष्टि उसे पकड़ न सकी।

सुलतान ने राघव चेतन से कहा है राघव, यदि मैं तृप्त होता तो मन मे उसे पाने की कामना ही क्यो जगती। उसके बिना यदि मुझे बाघ सूंघ ले तो अच्छा है। यदि तुझ मे शक्ति हो तो मुझे बाघ के सामने ले जाकर डाल दे।

टिप्पणी—चित कै चित्र लीन्ह जिय काढ़ी—यहाँ पर परिवृत्ति अलंकार है। यहाँ पर शाह की अत्यधिक मुग्धता और पदमावती के लिए तीव्रतम आसक्ति तथा पदमावती के रूप की दिव्य मोहकता व्यंग्य है। इस प्रकार यहाँ पर कवि निवद्ध-पात्र की प्रौढोक्तिसिद्ध अलंकार से वस्तु व्यंग्य है।

सिंघ की लंक कुम्भस्थल जोरू—यहाँ पर विषम अलंकार है। अनमेल सम्वन्ध वर्णन मे यह अलंकार होता है। यहाँ पर सिंह की लंक और कुम्भस्थल जोरू का अनमेल सम्वन्ध है। कवि ने विषम अलंकार व्यजित किया है। उस रमणी की कटि सिंह की कटि के समान है और युगल कुच दो हाथियो के कुम्भस्थलो के समान उभरे हुए है। अत. यहाँ पर भी अलकार से वस्तु ध्वनि ही है।

अंकुश नाग महावत मोरू—इन पंक्तियो मे अद्भुत रस व्यंग्य है। कवि ने अद्भुत रस ध्वनि से वस्तु ध्वनि भी प्रस्तुत की है।

कवि ने व्यंजित किया है कि उसकी वेणी जो नाग व नागकाली है वह नाग न होकर अकुश रूप है। यहाँ पर अपह्नुति अलंकार व्यंग्य है। इसी प्रकार कवि ने गर्दन को मोर रूप कहा है। यहॉ तक रूपकातिशयोक्ति है किन्तु महावत कह कर अपह्नुति अलंकार व्यंग्य हो गया है। इस प्रकार यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति से अपह्नुति व्यंग्य होने से कवि प्रौढ़ोक्ति निबद्ध-पात्र की प्रौढ़ोक्तिसिद्ध अलंकार से अलकार ध्वनि हुई।

तेहि पर मा कँवल बिगासू—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार मात्र है। मुख का वर्णन है।

फिरि अलि लीन्ह पुहुप रस बासू—यहाँ पर कवि का चित्र है कि मुख पर अलकें रूपी भौरे मंडराते रहते है। यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलकार है।

दुई खंजन बिच बैठेउ सूआ—यहाँ पर भी रूपकातिशयोक्ति है। खंजन नेत्रों का और सूआ नाक का उपमान हैं।

दुइज का चाँद धनुक लै ऊआ—यहाँ पर कवि की व्यंजना है कि उसका मस्तक दुइज के चाँद के समान है और उसकी भौहें धनुष के समान सुन्दर हैं। यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है।

मिरिग दिखाइ—रूपकातिशयोक्ति मात्र है।

ससि भा नाग सुरुज भा दीया—कवि यह व्यंजित करना चाहता है कि पदमावती रूपी शशि के सामने वह उसी प्रकार क्षीण ज्योति हो गया है जिस प्रकार नाग के आगे दिया ज्योतिहीन हो जाता है। यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार से उपमा व्यंग्य है। अतः कवि निबद्ध-पात्र की प्रौढ़ोक्तिसिद्ध अलंकार से अलंकार ध्वनि है। यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से भी कवि का प्रयोजन पदमावती के दिव्य रूप की तुलना मे अलाउद्दीन के भौतिक प्रताप की क्षुद्रता व्यंजित करना है। अतः लक्षण लक्षणा के सहारे उसने अपने अभिप्राय को व्यंजित किया है। प्रयोजनवती लक्षण लक्षणा के सहारे अर्थ विधान होने के कारण ही अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है।

दृष्टि पहुँच कर पहुँच न सका—यहाँ कवि यह व्यंजित करना चाहता है

कि वह दिव्य प्रतिमा दर्शन तो दे रही थी किन्तु उसका भौतिक उपभोग नही हो सकता। यहाँ पर निवद्ध-पात्र की प्रौढ़ोक्तिसिद्ध वस्तु से वस्तु व्यंग्य है। प्रतिमा की दिव्यता एव सगुण निर्गुण रूपता ही व्यंग्य है।

भुजा विहीन दिष्टि कत भई—यहाँ पर काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य है। कवि का अभिप्राय है कि दृष्टि के हाथ होने चाहिए थे। दूसरा व्यंग्य है कि कदाचित् मैं उसका शरीरिक उपभोग तो कर लेता। अतः यहाँ व्यंग्य सम्भवा आर्थी व्यजना है।

राघौ सुनत सीस भुइँ धरा। जुग-जुग राज भान कै करा॥
ओहि करा औ रूप विसेखी। निस्चै तुम्ह पदुमावति देखी॥
केहरि लँक कुँभस्थल हिया। गीवँ मँजूर अलक रवि दिया॥
कँवल बदन औ बास समीरू। खँजन नैन नासिका कीरू॥
भौह धनुक ससि दुइज लिलाटू। सब रानिन्ह ऊपर वह पाटू॥
सोई मिरिग देखाइ जो गएऊ। वेनी नाग दिया चित भएऊ॥
दरपन महँ देखी परिछांही। सो मूरति जेहि तन जिय नाही॥
सवहि सिगार बनी धनि अब सोई मत कीज।
अलक जो लगुने अधर के सो गहि कै रस लीज॥२२॥

[इस अवतरण मे अलाउद्दीन के द्वारा देखे गए दिव्य रूप के सम्बन्ध मे राघव चेतन कहता है कि हे महाराज ! जो रूप शशि आपने देखी है वही पदमावती है।

अलाउद्दीन के मुख से विचित्र रूप से शशि का वर्णन सुनकर राघव चेतन ने शाह को प्रणाम किया और बोला—सूर्य के प्रकाश के सदृश युग-युग तक तुम्हारा राज्य रहे। आपने जिस विचित्र रूप शशि का वर्णन किया है वह उसी की कला और उसी का रूप है। निश्चय ही तुमने पदमावती देखी है। तुमने जो सिंह की कटि देखी वह उसी की कटि है। कुंभस्थल उसके उभरे हुए कुच हैं। मयूर उसकी ग्रीवा है। अलकें वह नाग है जिसने सूर्य के प्रकाश को पराभूत कर दिया है। कमल उसका मुख है। उसकी श्वास-प्रश्वास की सुरभि ही उसके मुख की सुरभि है। जिन्हें खञ्जन कहा है, वे उसके नेत्र है। शुक नासिका है। धनुष उसकी भौहे है और द्वितीया का चन्द्रमा उसका ललाट है। जो हिरन देखा वह उसके कटाक्षो का भोलापन है। उसके पीछे फिरने से जो नाग दिखाई पड़ा वही उसकी वेणी है। उस नाग से जो तेज दीपक हीन हो गया, वही तुम्हारा चित्र था। तुमने दर्पण मे जो परछाही देखी उसकी वह मूर्ति प्रतिबिम्ब मात्र थी जिसमे न शरीर था न प्राण था।

वस्तुत. वह बाला समस्त श्रृंगारो से सजी हुई है। अब ऐसा उपाय करिये जिससे अधर के समीप रहने वाली अलको को पकड़ कर आप अधर रस पान कर सकें।

टिप्पणी—तीसरी पंक्ति से ७वी पंक्ति तक भ्रान्तापह्नुति अलंकार है।

अलक जो लगुने अधर के सो गहि के रस लजि—यहाँ पर स्वतःसम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंग्य है। वाच्यार्थ है कि उन अलकों को जो अधरो के लगुआ है, उन्हे पकड़ कर उसके अधरों का रस-पान करो। व्यंग्यार्थ है कि हे शाह! तुम्हे उसके अधर रस-पान करने वाले राजा को पहले वन्दी वनाना पड़ेगा।

रतनसेन बन्धन खण्ड

मत भा माँगा बेगि बेवानू । चला सूर सँवरा अस्थानू ।।
चलन पँथ राखा जो पाऊँ । कहाँ रहन थिर कहाँ वटाऊ ।।
पँथिक कहाँ कहाँ सुस्ताई । पँथ चलें पै पँथ सिराई ।।
घर कीजै बर जहाँ न आँटा । लीजै फूल टारि कै काँटा ।।
बहुत मया सुनि राजा फूला । चला साथ पहुँचावै भूला ।।
साहि हेतु राजा सौ वाँधा । बातन्ह लाइ लान्ह गहि काँधा ।।
घिउ मधु सानि दीन्ह रस सोई । जो मुख मीठ पेट विख होई ।।
अमिअ बचन औ माया को न मुएउ रस भीजि ।
सतुरु मरै जौ अँब्रित कत ताकहँ विख दीजि ।।१।।

[इस अवतरण मे कवि ने शाह की उस चाल का वर्णन किया है जो उसने पदमावती को प्राप्त करने के लिए चली थी ।]

मत निश्चित हो गया । शाह ने तुरन्त ही विमान मँगाया । उस सूर्य के समान शाह ने अपने स्थान का स्मरण किया और विमान पर चढकर चल दिया है । जिसने प्रस्थान के लिए मार्ग मे अपना चरण रख दिया फिर उसका एक स्थान पर रहना कैसे सम्भव हो सकता है । कहाँ पथिक और कहाँ विश्राम ? जहाँ बल से काम न चले वहाँ छल से काम लेना चाहिए । काँटो को दूर कर फूल ले लेना चाहिए । शाह की अत्यधिक कृपा भाव जानकर राजा मन मे फूल गया । वह धोखे मे आकर शाह को पहुँचाने चल दिया । बादशाह ने राजा से अत्यधिक प्रेम-भाव प्रदर्शित किया और बातो में लगाकर उसका कंधा पकड लिया । घी और मधु मिलाकर उसने राजा को वह मधु दिया जो मुँह मे मीठा था किन्तु पेट मे जाकर विष हो गया है । अमृत के समान मधुर वचनो मे फँस कर और रस मे डूब कर कौन नही मरा । यदि शत्रु अमृत से ही मर जाय तो फिर उसे विष क्यो दिया जाय ।

टिप्पणी—**कहाँ रहन थिर कहाँ बटाऊ**—यहाँ पर काकुवैशिष्ट्य व्यग्य है । व्यंग्यार्थ है रहना नही होता है । इसी प्रकार 'थिर कहाँ बटाऊ' मे भी काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग है । व्यग्यार्थ है कि पथिक कही स्थिर होकर नही बैठता है ।

पथिक कहाँ कहाँ सुस्ताई—यहाँ पर काकुवैशिष्ट्य व्यग्य है । व्यग्यार्थ है कि

पथिक का स्वभाव अबाध गति से चलना होता है और सुस्ताने वाला विश्राम चाहता है। दोनो के स्वभाव मे बड़ा अन्तर है।

लीजै फल टाल कर कांटा—यहाँ पर पदगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। कवि का अभिप्राय है कि मनुष्य को चाहिए कि कठिन साधन को छोडकर सरल साधन का अनुगमन करे।

साहि हेतु राजा सों बाँधा—यहाँ पर हेतु का बाँधा जाना औचित्यपूर्ण नही है। अत: लक्षण लक्षणा से अर्थ लिया कि प्रेम प्रदर्शित किया।

घिउ मधुसान दीन्ह रस सोई इत्यादि—यहाँ पर अर्थान्तिर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। घिउ अर्थात् घी के सदृश स्नेहपूर्ण वाते और मधु के सदृश मधुर व्यवहार से उसने राजा को ऐसा मुग्ध कर दिया कि प्रत्यक्ष रूप से उसे-ऐसा प्रतीत-हुआ कि वह वहुत ही भला आदमी है किन्तु वह हृदय से वडा दुष्ट आदमी था। यहाँ पर कवि ने शाह की कुटिलता और व्यवहार कुशलता व्यजित करने की चेष्टा की। यह प्रयोजन रूप ध्वनि ही यहाँ व्यग्य है।

को न मुए—यहाँ काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य है। विपरीत लक्षणा से यहाँ विधिपरक अर्थ लिया गया है कि सभी मनुष्य मर जाते हैं।

को न मुएउ रस भीजि—यहाँ पर तृतीय विभावना अलंकार है। इस अलंकार से वस्तु रूप व्यग्य है कि मीठी-मीठी बातो मे फँसकर सभी प्रबचित होते हैं।

एहि जग बहुत नदी जल जूड़ा। कौन पार भा को नहि बूड़ा॥
को न अँध भा आँखि न देखा। को न भएउ डिठियार सरेखा॥
राजा कहँ बियाधि भै माया। तजि कविलास परे भुइँ पाया॥
जेहि कारन गढ़ कीन्ह अँगूठी। कत छाँडै जौ आवै मूँठी॥
सतुरुहि कोऊ पाव जो बाँधी। छाँडि आयु कहँ करै बियाधि॥
चारा मेलि धरा जस माँछू। जल हुँति निकसि सकति मुव काँछू॥
मँत्रन्ह नाग पेटारें मूँदा। बाँधा मिरिग पैगु नहि खूँदा॥
राजा धरा आनि कै औ पहिरावा लोह॥
ऐस लौह सो पहिरै जो चीत सामि कहँ दोह॥२॥

[इस अवतरण मे कवि ने राजा रतनसेन के प्रवंचित हो जाने पर ससार की गति पर दार्शनिक की भाँति अपने विचार प्रकट किए है।]

इस संसार रूपी (समुद्र) मे वहुत-सी नदियो का जल एकत्रित हुआ है। इस भवसागर के पार कौन गया है। ऐसा कौन है जो इसमे डूबा नही है। ऐसा कौन है जिसने आँखे होते हुए भी नही देखा और अधे हो गए। दृष्टि वाला कौन है जो चतुर नही है। शाह का कृपाभाव राजा के लिए शत्रु रूप हो गया। वह स्वर्ग के सदृश ऊँचे महल को छोड़कर पृथ्वी पर उतर आया जिसके कारण राजा ने गढ़ को

घेरकर बन्दी कर लिया था। वही जव मुट्ठी मे आ जाय तो फिर कैसे छोड़ सकता था। जब कोई शत्रु को पकड ले और फिर उसे छोड़ दे तो वह अपने लिए विपत्ति बुला लेगा। सुलतान ने चारा डालकर राजा को मछली की तरह पकड़ लिया। जल के बाहर आ जाने पर कछुए को उसकी शक्ति छोड़ देती है। मंत्रो से शाह ने नाग को पिटारी मे बन्द कर लिया। उसने उसे इस प्रकार जहाँ का तहाँ बाँध लिया कि वह उसी प्रकार हिल नही सका जिस प्रकार नाद से हिरन बँध जाता है और पग भर हिल नही पाता।

राजा को पकड़ लिया और हथकड़ियाँ और वेड़ियाँ डाल दी। वही ऐसा लोहा पहनता है जो अपने स्वामी के विरुद्ध द्रोह करता है।

टिप्पणी—एहि जग बहुत नदी जल जूड़ा—यहाँ पर एहि शब्द मे संवृति वक्रता है। सम्पूर्ण वाक्य मे कवि प्रौढोक्तिसिद्ध वस्तु से रूपक अलंकार व्यंग्य है। वाच्यार्थ है इस संसार मे वहुत-सी नदियो का जल जुड़ा है। व्यंग्यार्थ है कि यह संसार रूपी समुद्र अनेक विपत्तियो और विपदा रूपी नदियो का संगम है।

कौन पार भा को नहि बूड़ा—यहाँ काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य है। व्यंग्यार्थ है कि अनेक विपत्ति के संगम रूप इस भवसागर से किसी का भी उद्धार नही होता। सब डूब जाते है।

को न अन्ध भा—यहाँ पर व्यंग्य है। अर्थ है सभी अन्वे हो गए।

को न भएउ डिठियार—यहाँ पर काकुवैशिष्ट्य व्यग्य है। अर्थ है वे सभी लोग जिन्हे भगवान् ने दृष्टि दान दिया है चतुर होते है।

तजि कविलास परे भुइँ पाया—यहाँ पदगत अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। कविलास यहाँ कैलास के सदृश उच्चातिउच्च महल का वाचक है। यहाँ पर महल की विशालता और राजा की नासमझी व्यंग्य है।

गढ़ कीन्ह अँगूठी—कीन्ह अगूठी का अर्थ है अंगूठी के सदृश गोलाकार ढंग से घेर लिया। अंगूठी के अर्थ का सर्वथा त्याग न होने के कारण ही यहाँ अर्थान्तर सक्रमित वाच्य ध्वनि है। घेरे की अगम्यता यहाँ व्यंग्य है।

जौ आवै मूठी—मुट्ठी मे आने का अर्थ है वस मे आ जाना। यहाँ पर पदगत अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है।

छठी पक्ति मे पूर्वार्द्ध मे उपमा अलंकार है। उत्तरार्द्ध मे काकुवैशिष्ट्य व्यंग्य है, वाच्यार्थ है क्या जल के बाहर निकल कर कछुआ जीवित रह सकता है। गुणीभूत व्यग्य है कि जल के बाहर निकल कर कछुआ जीवित नही रहता है। व्यग्यार्थ है कि बन्दी बन जाने पर और चित्तौड के बाहर हो जाने पर राजा सर्वथा शक्तिहीन हो गया।

मंत्रन्ह नाग पेटारे मूंदा—यहाँ पर अर्थान्तर सक्रमित वाच्य ध्वनि है। नाग का अर्थ भयानक शक्तिशाली और पेटारे का अर्थ कारागार किया गया है।

इसीलिए यहाँ अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। यहाँ पर राजा की भयानक शक्ति और कारागार की कठोरता ही व्यंग्य है।

बाँधा मिरिग पैगु नहि खूदा—यहाँ पर अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। यहाँ मिरिग के अर्थ का संक्रमण मृत जैसे स्वतन्त्र स्वेच्छाचारी और पैगु नहि खूंदा के अर्थ को संक्रमण कर वह स्वयं हिल भी नही सकता था, इस अर्थ मे किया गया है। पूरा वाक्य व्यग्यार्थ है। जो राजा पहले सर्वथा स्वतन्त्र और स्वेच्छाचारी था वह शाह के बन्धन मे पड़कर इतना अधिक परतन्त्र हो गया कि स्वेच्छा से हिल भी नही सकता था।

औ पहिरावा लोह—यहाँ लोह में अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। लोह का अर्थ हथकड़ी, बेड़ी, लोहे की तौक अदि सबसे है। यहाँ पर राजा की परवशता, असहायता और यातना की अतिरेकता व्यंग्य है।

ऐस लोह—ऐस में संवृतिवक्रता और अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। यहाँ पर व्यग्यार्थ है कि राजा को ऐसी भयानक कष्टप्रद कथकड़ियाँ और बेड़ियाँ पहनाई गईं कि जिनके बोझ से दबकर दूसरा मर ही जाता है।

पायन्ह गाढ़ी बेरी परी। साँकरि गींव हाथ हथकरीं॥
औ धरि बाँधि मँजूसा मेला। अस सतुरुहु जनि होइ दुहेला॥
सुनि चितउर महँ परा भगाना। देस देस चारिहुँ खँड जाना॥
आज नराएन फिर जग खूँदा। आजु सिंघ मँजूसा मूँदा॥
आजु खसे रावन दस मथा। आजु कान्ह कारी फन नाथा॥
आजु परान कंससेनि ढीला। आजु मीन सँखासुर लीला॥
आजु परे पँडौ बँदि माहाँ। आजु दुसासन उपरी बाहाँ॥
आजु धरा बलि राजा मेला बाँधि पतार।
आजु सूर दिन अँथवा भा चितउर अँधियार॥३॥

[इस अवतरण में कवि ने राजा रतनसेन के बन्दी हो जाने पर उत्पन्न हुए अपने विचारों की प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति की है।]

वह कहता है कि राजा के पैरों में मजबूत बेड़ियाँ डाल दी गईं। उसके हाथों मे हथकड़ियाँ और गले मे जंजीर पहना दी गई। उसको पकड़ कर, बाँधकर कारागार मे डाल दिया गया। परमात्मा शत्रु को भी इतना कष्ट न दे। यह समाचार सुनकर चित्तौड मे भगदड़ मच गई और देश-देश चारो खण्डो मे बात फैल गई। ऐसा लगने लगा मानो नारायण (परशुराम) नेफिर से संसार को खूंद डाला हो। आज ऐसा लगता था कि सिंह को पिटारी मे बन्द कर दिया है अथवा मानो रावण के दसो माथ गिर गए हो, अथवा आज कृष्ण ने कालीनाग का फन नाथ लिया हो, अथवा कंस ने

अपने प्राण छोड़ दिए हों, अथवा आज मत्स्य ने संखासुर को निगल लिया हो। आज पांडव बन्धन मे पड गए हैं। आज दुःशासन की भुजा उखाड़ी गई है।

आज राजा बलि पकड़कर पाताल में डाल दिया गया है। चित्तौड में अंधेरा हो गया है।

पायन गाढ़ी बेड़ी पड़ीं—यहाँ पर पदगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। गाढ़ी कोई तरल वस्तु होती है ठोस वस्तु नही। बेड़ी को गाढ़ी कह कर कवि ने उनकी दृढ़ता और कर्कशता व्यंजित की है।

मँजूसा मेला—यहाँ पर मंजूसा कारागार के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। यह अर्थ पदगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से लिया गया है। कवि कारागार की सकीर्णता और कठोरता व्यजित करना चाहता है।

आज नराएन फिर जग खूँदा—यहाँ पर वाक्यगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। कवि यहाँ पर शाह के गौरव और प्रताप की व्यंजना करना चाहता है। इसलिए इस पौराणिक अन्तर्कथा का आश्रय लिया है।

आज सिंह मँजूसा मूँदा—यहाँ पर भी वाक्यगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। यहाँ पर कवि का प्रयोजन रतनसेन की वीरता और कारागार की संकीर्णता व्यंजित करना है। इसी प्रयोजन से उसने राजा के लिए 'सिंह' और कारागार के लिए 'मँजूसा' के उपमानो का प्रयोग किया है। यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

आजु खसे रावन दस माथा—यहाँ पर अर्थान्तिर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। दस माथो से यहाँ अभिप्राय राजा के समस्त लक्षणो और सद्‌गुणो से है।

आजु कान्ह कालीफन नाथा—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। शाह की दिव्य शक्ति और प्रताप तथा राजा की भयकरता व्यंग्य है।

आजु परान कंससेनि ढीला—यहाँ पर कवि ने राजा के लिए कंससेन का प्रयोग किया है। जिस प्रकार कंस अपने समय का वडा शक्तिशाली राजा था किन्तु कृष्ण के आगे उसकी न चली और उसे प्राण छोड़ने पडे। उसी प्रकार राजा को परम शक्तिशाली होते हुए भी सुलतान के आगे अपने प्राण छोड़ने पडे थे। यहाँ पर स्वत.सिद्ध वस्तु से उपमा अलंकार व्यंग्य है।

आजु परे पंडो बँदि माहाँ—यहाँ पर पंडो मे अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। राजा की अपराजेयता और वीरता व्यंग्य है।

आजु सूर दिन अँथवा चितउर अँधियार—"आजु सूर दिन अँथवा" मे विशेपोक्ति अलंकार है। अखंड कारण रूप दिन के रहते हुए भी कार्य रूप सूर्य का अस्त हो जाना कहा गया है। पूरी पक्ति में असंगत अलंकार प्रतीत होता है।

देव सुलेमाँ की बँदि परा। जहँ लगि देव सबहि सत हरा।
साहि लीन्ह गहि कीन्ह पयाना। जो जहँ सत्रु सो तहाँ विलाना॥
खुरासान औ डरा हरेऊ। काँपा बिदर धरा अस देऊ॥
बाँवो, देवगिरि धौलागिरी। काँपी सिस्टि, दोहाई फिरी॥
उवा सूर भै सामुँह करा। पाला फूल पानि होइ ढरा॥
डंडवै डाँड दीन्ह जहँ ताँइ। आइ सो दंडवत कीन्ह सवाँई॥
दुंदि डाँडि सब सरगहि गई। पुहुमि जो डोल सो अस्थिर भई॥
पातसाहि ढीली महँ आइ वैठ सुख पाठ।
जिन्ह जिन्ह सीस उठाए धरती धरे लिलाट॥४॥

[इस अवतरण में सुलतान के अद्वितीय प्रभाव और प्रताप की व्यंजना की गई है।]

राजा के सुलतान के द्वारा वन्दी वना लिए जाने पर सभी हिन्दू राजा साहसहीन हो गए। सुलतान राजा को बाँधकर चल दिया। जो शत्रु जहाँ था वह वहीं छिप गया। खुरासान और हेरात डर गए। वीदर काँप गया कि शाह ने इतना बड़ा हिन्दू राजा पकड़ लिया। हमारी क्या शक्ति है। विंध्याचल, उदयाचल और हिमाचल तक के राजा काँप उठे। सृष्टि कम्पायमान हो उठी और सर्वत्र राजा की दुहाई फिर गई। सूर्य उदित हो उठा और उसके प्रताप की किरणें सामने आ गईं। तुषाररूप सूर्य का शत्रु पानी होकर वह गया। उस दंडपति ने जिन-जिन राजाओ पर दंड लगाया उन सबने आकर प्रणाम किया। उसकी दुदुंभी सबको दडित करके स्वर्ग चली गई। पृथ्वी जो कंपायमान थी वह स्थिर हो गई।

वादशाह दिल्ली पहुँचकर सुखपूर्वक सिंहासन पर वैठा। जिन-जिन विरोधियो ने सिर उठाया था उन सबने सिर टेककर प्रणाम किया।

टिप्पणी—देव सुलेमाँ की बँदि परा—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। 'सुलेमा' का अर्थ यहाँ सुलतान है। सुलतान के अत्यधिक गौरव, प्रताप और ख्याति की व्यंजना के लिए कवि ने पौराणिक नाम का प्रयोग किया है। उसी प्रकार 'देव' हिन्दू राजा का वाचक है।

खुरासान औ डरा हरेऊ—यहाँ पर खुरासान और हरेऊ में उपादान लक्षणा है। 'खुरासान' से तात्पर्य खुरासान के राजा और प्रजा से है। इसी प्रकार 'हरेऊ' का लक्ष्यार्थ है 'हेरात' के राजा और प्रजा से।

काँपा बिदर—यहाँ पर भी 'विदर' मे उपादान लक्षणा है। लक्ष्यार्थ है विदर के निवासी, राजा और प्रजा।

दुंदि डाँडि सब सरगहि गई—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है।

अर्थ है कि इसके प्रताप का यश पृथ्वी पर सबको पराभूत करके आकाश तक फैल गया है। प्रतापजन्य यश की महान् व्यापकता ही वहाँ व्यंग्य है।

पुहुमि जो डोल अस्थिर भई—यहाँ पर व्यंजना है कि युद्ध की स्थिति शान्त हुई और सर्वत्र शान्ति स्थापित हो गई। यह अर्थ भी स्वत सिद्ध वस्तु से वस्तु व्यंग्य रूप है।

जिन्ह जिन्ह सीस उठाए धरती धरे लिलाट—यहाँ पर अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। 'सीस उठाने' का अर्थ विरोध करना है और ललाट धरने का अर्थ अधीनता स्वीकार करना है।

हवसी वंदिवान जिपवधा। तेहि सौपा राजा अगिदधा॥
पानि पवन कहँ आस करेई। सो जिय वधिक साँस नहिं देई॥
माँगत पानि आगि लै धावा। मुँगदी एक आइ सिर लावा॥
पानि पवन तै पिया सौ पिया। अव को आनि देइ पापिया॥
तव चितउर जिय अहा न तोरै। पातसाहि है सिर पर मोरें॥
जवहिं हँकारहि है उठि चलना। सो कत करौ होई कर मलना॥
करौ सो मीत गाढ़ि वंदी जहाँ। पानि पवन पहुँचावैं तहाँ॥
जल अँजुलि महँ सोवा, समुँद न सँवरा जागि।
अव धरि काढ़ा मच्छ जेनुँ पानी माँगत आगि॥५॥

[इस अवतरण में कवि ने उन कष्टो का वर्णन किया है जो अलाउद्दीन के वन्दीखाने में राजा रतनसेन को दिए गए थे।]

वंदियो को कष्ट देने के लिए एक हव्शी जल्लाद नियुक्त था। राजा अग्नि-दग्ध करने के लिए उस जल्लाद को सौप दिया गया। जव राजा पीने के लिए पानी माँगता था तो वह जल्लाद उसे जलाने के लिए आग लेकर दौडता था। वह राजा के सिर पर मुगदर भी मारता था और कहता था कि 'तूने हवा और पानी जो पी लिया सो पी लिया। अव हे पापी! यहाँ तुझे हवा और पानी कौन देगा। जव तू चित्तौडगढ में था तो तूने यह नही सोचा कि मेरे सिर पर सुलतान भी है। जव वह वुलायेगा तव मुझे जाना पड़ेगा। मैं ऐसा क्यों करूँ जो वाद में हाथ मलकर पछताना पड़े। तूने यह नही सोचा कि मैं उससे मित्रता करके चलूँ जो वंदीखाने मे भी हवा और पानी पहुँचा सकता है। तू अँजुलि-भर पानी में ही सोता रहा, होश मे आकर समुद्र का स्मरण नही किया। अव मछली की भाँति उसने तुझे जल से वाहर निकाल दिया है। अव पानी के स्थान पर आग मिलेगी।'

टिप्पणी—पानि पवन त पिया सो पीया—यहाँ पर 'पानी पवन' में उपादान लक्षणा है। इसका लक्ष्यार्थ है सांसारिक समस्त सुखोपभोग।

तब चितउर······पहुँचावै तहाँ—इसमे समासोक्ति अलंकार है। इन पक्तियो में आध्यात्मिक अर्थ की व्यंजना की गई है। तब तूने अपने मन में यह न सोचा कि मेरे सिर पर ससार का स्वामी है। उसकी आज्ञा पाते ही यह संसार छोड़ना पड़ेगा और अपने अच्छे-बुरे कर्मो का भोग भोगना होगा। अत. ऐसा क्यो न किया जाए जिससे उस स्वामी के सामने लज्जित न होना पड़े। तुम्हे तो उस स्वामी को अवश्य स्मरण करना चाहिए क्योकि गर्भ रूपी कारागार मे पोषण करने की शक्ति उसी मे है। इस अप्रस्तुत अर्थ की व्यंजना करने के कारण यहाँ समासोक्ति अलंकार है।

दोहे मे 'जल अंजुलि महँ सोवा, समुँद न सँवरा जाग', मे अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। 'अंजुलि भर जल' का लक्ष्यार्थ है अपना संकुचित स्वार्थ और 'समुद' का अर्थ है वह महान् परमात्मा जो परमार्थ स्वरूप है। यहाँ पर जीव की क्षुद्रता और परमात्मा की महत्ता व्यंग्य है। क्षुद्र जीव अपने संकुचित स्वार्थों मे सोया रहता है, उस परमार्थ रूप परमात्मा को स्मरण नही करता।

दोहे की दूसरी पंक्ति मे उपमा अलकार के सहारे कवि ने रूपक अलंकार की व्यंजना की है। अर्थ है कि परमात्मा जीव रूपी मछली को सहसा उसके संकुचित स्वार्थपूर्ण संसार से हटा लेता है। उस समय उसे भौतिक सुखो के स्थान पर अपने बुरे कर्मों के फलो का दुष्परिणाम भोगना पडता है। अतः यहाँ पर कवि प्रौढ़ोक्तिसिद्ध अलंकार से अलंकार ध्वनि है।

सम्पूर्ण अवतरण मे प्रस्तुत अर्थ के सहारे एक अप्रस्तुत अर्थ की व्यंजना की गई है। अतएव सम्पूर्ण अवतरण मे ही समासोक्ति अलंकार मानना चाहिए।

पुनि चलि दुइ जन पूँछै आए। ओहि सुठि दगध आइ देखराए॥
तूँ मरपुरी न कबहुँ देखी। हाड़ जो बिथुरें देखि न लेखी॥
जाने नहिं कि होब अस महूँ। खोजें खोज न पाउब कहूँ॥
अब हम उतर देहि रे देवा। कवने गरब न माने सेवा॥
तोहि अस केत गाड़ि खनि मूँदे। बहुरि न निकसि बार कै खूँदे॥
जो जस हँसै सो तैसै रोवा। खेलि हाँसि एहि भुइँ पै सोवा॥
तस अपने मुहँ काढ़ै धुवाँ। चाहसि परा नरक के कुवाँ॥
जरसि मरसि अब बाँधा तैस लाग तोहि दोख।
अबहूँ मागु पदुमिनी जौं चाहसि भा मोख॥६॥

[इस अवतरण में भी कवि ने बंदीखाने की यातनाओ का ही वर्णन किया है।]

इसके बाद पूछताछ के लिए दो आदमी और आए। उन्होने राजा को अत्यधिक दग्ध करने का भय दिखाया और राजा से पूछा, "क्या तूने मृतकपुरी नही देखी, वहाँ जो हड्डियाँ पड़ी हुई है उन्हे देखकर तुझे समझ नहीं आई। क्या तू यह नही जानता कि मेरी भी यही गति होगी। खोजने पर भी हमारा चिह्न कहीं नही पायेगा।

अरे राजन् ! मैं तुझसे पूछता हूँ कि किस अभिमान से तुमने सुलतान की सेवा नही की। उसने तुम्हारे जैसे सैकडो को गड्ढे खोदकर दफना दिया। फिर वे लौट कर अपने द्वार पर नही पहुँचे। जो जगत् में जितना हँसता है उसे उतना ही रोना पड़ता है। हँस-खेल लेने के बाद उसे इसी भूमि पर सो जाना पड़ता है। तव तू वहुत वढ़-वढ़ कर वातें वनाया करता था क्योंकि नर्क के कुएँ मे पड़ना चाहता था।

"अब जो तू कैद मे पड़कर मर रहा है। यह उन्ही पापो का परिणाम है। अब भी तू यदि मोक्ष चाहता है तो पदमिनी को त्यागना स्वीकार कर ले।"

टिप्पणी—इस अवतरण में भी आध्यात्मिक अर्थ की व्यजना की गई है। सम्पूर्ण अवतरण में यहाँ समासोक्ति अलंकार है।

जाने नहिं कि होव अस महू—यहाँ पर काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य है। 'अस' में संवृति वक्रता है।

खेलि हाँसि एहि भुँई पै सोवा—यहाँ भी 'एहि' में संवृति वक्रता है। कवि ने उस पृथ्वी की ओर संकेत किया है जिसमे सहस्रों मनुष्य दफनाए हुए हैं।

तस अपने मुंह काढ़ै धुवाँ—यहाँ पर 'तस' में संवृति वक्रता है 'अपने मुंह काढ़ै धुवाँ' यहां पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। गर्व और अभिमान का भाव व्यंग्य है। मुहावरे का लक्ष्यार्थ है वढ़-वढ़कर वातें वनाना।

पूँछेन्हि वहुत न वोला राजा। लीन्हेसि जीउ मीचु कर साजा॥
खनिगड़ ओवरी ओवरी महँ लै राखा। निति उठि दगध होहिं नौ लाखा॥
ठाँउ सो साँकर औ अँधियारा। दोसरि करवट लेइ न पारा॥
वीछी साँप आनि तहँ मेले। वाँका आनि धुवावहिं हेले॥
दहकहिं सँहसी टहि नारी। राति देवस दुख गंजन भारी॥
जो दुख कठिन न सहा पहारू। सो अँगवा मानुस सिर भारू॥
जो सिर परै आइ सो सहैं। कछु न वसाइ काह सो कहै॥
दुख जोरे दुख भूंजे दुख खोवै सव लाज।
गाजहि चाहि गरुव दुख दुखी जान जेहि बाज॥७॥

[इस अवतरण में भी कारागार में राजा को दी गई यातनाओं का वर्णन है।]

उनके वार-वार पूछने पर भी राजा ने कोई उत्तर नही दिया। उसने चुप्पी साध ली और मृत्यु के लिए मन को तैयार कर लिया। गड्ढा खोदकर गाढने वाली कोठरी मे उसे ले जाकर रखा गया। प्रतिदिन उसके शरीर को नौ स्थानों पर दाग दिया जाता था जिसके निशान वन जाते थे। कोठरी में जगह वहुत कम थी। उसमें घना अँधकार भी था। उसमें वह दूसरी करवट भी नहीं लेट सकता था। साँप और विच्छु उस कोठरी मे लाकर डाल दिए गए थे। जल्लाद लोग आकर वाँका (एक

हथियार) से डराते थे। जब गर्म संड़ासियो से दागा जाता था तो नाड़ियाँ फट जाती थी। रात-दिन घोर यातनाएँ और अपमान भुगतना पड़ता था। कहते है जिस दुःख को जड पहाड भी नही सह सकता उसको चेतन मनुष्य को सहना पड़ा। मनुष्य के ऊपर जो कुछ विपत्ति पड़ती है वह उसे सहन करता ही है। किसी से कहने से कुछ नही बनता है।

दुःख मनुष्य को जला देता है और उसको निर्लज्ज बना देता है। दु.ख वज्र से भी अधिक कठोर और कटु होता है। वह दुखिया ही दु:ख की कठोरता को समझता है जिस पर दु ख पड़ता है।

टिप्पणी—नौ लाखा—यहाँ पर 'लाख' का अर्थ चिह्न लिया जा सकता है। 'नौ लाख' को हम उपलक्षणात्मक भी ले सकते है। जिसका सीधा-सादा अर्थ दाद लिया जायेगा।

बाँका आनि छुवावहिं हेले—यहाँ अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। यहाँ पर 'छुवावहिं' का अर्थ स्पर्श करा के डरवाना है। बाँका चुभाना, डरवाना आदि भी है। यातना की भयकरता यहाँ पर व्यंग्य है।

दुख जारै दुख भूंजै दुख खोवै सब लाज—यहाँ पर सम्पूर्ण वाक्य में अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। यहाँ यातना की अत्यधिक कठोरता और रतनसेन की दुर्दशा ही व्यंग्य है। यहाँ पर उपचार वक्रता भी है। दुःख अमूर्त्त हो और मूर्त्तता का आरोप किया गया है।

पदमावती नागमती विलाप खण्ड

पदुमावति बिनु कंत दुहेली । विनु जल कँवल सूखि जसि वेली ॥
गाढ़ि प्रीति प्रिय मो सों लाए । ढीली जाइ निचित होई छाए ॥
कोइ न वहुरा निवहुर देसू । केहि पूछौं को कहै संदेसू ॥
जो गौने सो तहाँ कर होई । जो आवै कछु जान न सोई ॥
अगम पंथ पिय तहाँ सिधावा । जो रे जाइ सो वहुरि न आवा ॥
कुँआ ढार जल जैस विछोवा । डोल भरें नैनन्ह तस रोवा ॥
लेजुरि भई नाँह विनु तोही । कुवाँ परी घरी काढ़हु मोही ॥
नैन डोल भरि ढारैं हिए न आगि वुझाइ ।
घरी घरी जिउ वहुरैं घरी घरी जिउ जाइ ॥१॥

[इस अवतरण मे पदमावती के विरह का वर्णन किया गया है ।]

पदमावती पति के विना ऐसी दु:खित हुई जैसे कि कमल की वेल जल के अभाव मे सूखकर मुर्झा जाती है । पति की मुझ पर अत्यधिक प्रीति थी किन्तु दिल्ली जाकर वे विल्कुल निश्चित हो गए हैं । वह ऐसा दुष्ट देश है कि जहाँ से आकर कोई लौटता नही है । किससे पूछने जाऊँ ? कौन संदेश कह सकता है । जो जाता है वही का हो जाता है, लौटकर नही आता । यदि लौटकर आता भी है तो वहाँ की कोई खबर नही देता है । हमारा पति ऐसे अगम मार्ग पर पहुँच गया है जहाँ से कोई लौटता नही है । जिस प्रकार कुएँ पर कोई धार या मोट जल ढारता है उसी प्रकार डोल की तरह जल से आप्लावित नेत्रों से वह रो रही है । वह कहती है कि हे प्रिय ! मैं तुम्हारे विरह मे रस्सी की तरह क्षीण तन वाली हो गई हूँ । मैं कुएँ में पड़ी हुई हूँ, मुझे पकडकर निकालो । कवि कहता है कि वह पदमावती नेत्र रूपी डोल भर-भर कर डाल रही थी किन्तु हृदय की आग नही वुझ रही थी । क्षण-भर मे प्राण लौटते थे और फिर चले जाते थे ।

टिप्पणी—प्रथम पक्ति में विनोक्ति अलंकार है । दूसरी से पाँचवी पंक्ति तक आध्यात्मिक अर्थ की व्यंजना है इसलिए यहाँ पर समासोक्ति अलंकार भी है ।

निवहुर देसू—जहाँ से कोई लौटता नही है । यहाँ पर 'निवहुर' का अर्थ दुष्ट देश लिया गया है ।

छठी पंक्ति मे उपमा अलंकार है । सातवी पंक्ति के प्रथम भाग में अति-

शयोक्ति अलंकार है और इस अलंकार से नायिका के अत्यधिक क्षीण होने की व्यंजना की गई है। इसलिए यहाँ पर कविप्रौढोक्तिसिद्ध अलंकार से वस्तु ध्वनि है।

कुआँ परी धरि काढ़हु मोही—यहाँ पर अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। 'कुँवापरी' का अभिप्राय है कि आपत्ति के कुएँ मे पडी हूँ।

नैन डोल भरि ढ़ारै हिए न आगि बुझाई—यहाँ पर विशेषोक्ति अलंकार है। अत्यन्त तीव्र विरह वेदना व्यंग्य है, अतएव यहाँ भी कवि प्रौढ़ोक्तिसिद्ध अलंकार से वस्तु ध्वनि है।

घरी घरी जिउ बहुरै घरी-घरी जिउ जाइ—यहां पर अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि हैं। जी वहुरने का अर्थ है वेचैन होना और 'जीउने' का अर्थ है जी शान्त होना।

विशेष—इस अवतरण मे विरह का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया गया है। यहाँ पर उद्वेग, प्रलाप, आदि विरह अवस्थाओं की व्यंजना की गई है। 'अश्रु' सात्विक की भी मार्मिक योजना द्रष्टव्य है।

नीर गँभीर कहाँ हो पिया। तुम बिनु फाट सरोवर हिया॥
गएहु हेराइ बिरह के हाथा। चलत सरोवर लीन्ह न साथा॥
चरन जो पछि केलि कै नीरा। नीर छटे कोउ आव न तीरा॥
कँवल सूख पंखुरी बिहरानी। कन कन होइ मिलि छार उड़ानी॥
बरह रेहि कँचन तनु लावा। चून चून कै खेह मिलावा॥
कनक जो कन कन होइ बिहराई। पिय पै छार समेंटे आई॥
बिरह पवन यह छार सरीरू। छारहु आनि मिला बहु नीरू॥
अबहुँ मया कै आइ जियावहु विघुरी छार समेंटि।
नव अवतार होइ नइ काया दरस तुम्हारे भेटि॥२॥

[इस अवतरण मे पदमावती के विरह का मार्मिक चित्रण किया गया है।]

यह जीवन विपत्ति के गम्भीर जल मे डूब रहा है। हे प्रियतम! तुम कहाँ चले गए। तुम्हारे विरह मे यह चित्तौड़ रूपी सरोवर का हृदय फटा जा रहा है। विरह ने तुम्हे न जाने कहाँ खो दिया है। चित्तौड़ रूपी सरोवर त्यागते समय साथ क्यो नही ले गए। जो पक्षी इस चित्तौड़ रूपी सरोवर में क्रीड़ा करके खेलते थे, अव तुम्हारे चले जाने पर पास तक नही फुदकते। कमल मुरझा गया। उसकी पंखुड़ियाँ मुरझा गईं। कण-कण होकर वे धूल मे मिल गई। यदि सोना कण-कण होकर धूल मे मिल जाय तव भी हे प्रियतम तुम उस धूल को ही समेटने आ जाना। विरह पवन है शरीर क्षार है। हे प्रियतम तुम इस जलसिक्त राख को छानकर उसमे मे सोना निकाल लो।

अब भी तरस खाकर आ जाओ और विथुरी हुई राख को समेट कर मुझे जीवित करो।

टिप्पणी—नीर गँभीर कहाँ हो पिया—इस पंक्ति का अर्थ दो प्रकार से किया जा सकता है। एक अर्थ है, हे प्रियतम मै गहरे जल में हूँ। तुम कहाँ हो। व्यंग्यार्थ है कि मै बडी विपत्ति मे हूँ, तुम आकर मेरा उद्धार करो। विपत्ति की कठोरता व्यग्य वस्तु है। यहाँ अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। तुम्हे मेरी रक्षा करने के लिए आना चाहिए। यह अर्थ काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य रूप है।

तुम बिन फाट सरोवर हिया—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। सरोवर का हृदय तो फट नही सकता। अतः वाच्यार्थ का सर्वथा त्याग करना पड़ा है। यहाँ अर्थ है कि तुम्हारे विना चित्तौड़ रूपी सरोवर का हृदय फट गया है। हृदय फट जाने मुहावरे का लक्ष्यार्थ है 'वेदना से विह्वल है'। यहाँ पर वेदना की असह्यता व्यग्य है। यह अर्थ अर्थान्तर सक्रमित वाच्य ध्वनि से प्राप्त है। चित्तौडगढ की निरालम्बता यहाँ पर व्यंग्य है। इसका अर्थ केवल रूप के सहारे भी कर सकते है। अर्थात् तुम्हारे बिना मेरा हृदय रूपी सरोवर फटा जा रहा है। किन्तु यह अर्थ ग्राह्य नही है।

गएहु हेराय विरह के हाथ—वाच्यार्थ हुआ कि विरह के हाथों खो गया। यह वाच्यार्थ अभीष्ट नही है। अतः यहाँ लक्ष्यार्थ ग्रहण करना पड़ा। यहाँ विरह अगम्यता और विरह की घोर निराशा व्यंग्य है। कवि यह व्यंजित करना चाहता है कि विरह रूपी शत्रु ने हमारे प्रियतम को कहाँ खो दिया है जिसकी प्राप्ति की आशा ही नही दीखती। अतः यहाँ अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है।

चलत सरोवर लीन्ह न साथा—यहाँ पर भी सरोवर का साथ ले चलना संगत अर्थ नही है। अतः अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य-ध्वनि से सरोवर का अर्थ चित्तौड़ हुआ। यहाँ सरोवर से कवि ने चित्तौड़ के हर्षोल्लास की विपुलता व्यजित की है। कवि यह व्यंजित करना चाहता है कि तुम सरोवर के सदृश हर्षोल्लसित चित्तौड़ को साथ ही क्यों न लेते गए। तुम्हारे वियोग मे आजकल उसके निवासी हम सब बुरी तरह बिलख रहे हैं।

चरत जो......तीरा—यहाँ पर अन्योक्ति अलंकार है। प्रस्तुत वर्णन पदमावती का विरह है। कवि ने सरोवर के रूपक से उसकी अतिरेकता व्यजित की है। प्रस्तुत पक्ति मे कवि ने चित्तौड़ रूपी सरोवर के निवासी पक्षियों की विरह दशा की व्यंजना की है। तुम्हारी उपस्थिति में चित्तौड़ रूपी सरोवर मे जो पक्षी रूपी तुम्हारे प्रेमी आनन्द विभोर थे, वे उसका नीर घट जाने पर अर्थात् तुम्हारे विरह मे अब वे उसका सामीप्य भी पसन्द नहीं करते। उस सरोवर का कँवल रूप मै सूख गई हूँ। आशा और आह्लाद रूपी पखुडियाँ धूल-धूल होकर उड़ गई है अर्थात् मैं अत्यधिक निराश, खिन्न और दुःखी हूँ।

इस अवतरण मे रूपक, रूपकातिशयोक्ति और अन्योक्ति की संसृष्टि है। ये अलंकार कवि प्रौढोक्तिसिद्ध है। इनसे कवि ने अत्यधिक उद्वेग, चिन्ता, निराशा, खिन्नता और विरह विह्वलता रूप वस्तु की व्यंजना की है। अतः यहाँ पर कवि प्रौढ़ोक्तिसिद्ध अलंकारो से वस्तु ध्वनि है।

विरह रेत······नीरू—यहाँ पर कवि ने विरह का मानवीकरण कर उपचार वक्रता का आश्रय लिया है। वाच्यार्थ है विरह ने मेरे कञ्चन रूपी शरीर को वेदना रूपी रेती से धीरे-धीरे रेता है। जिसका परिणाम यह हुआ है कि कण-कण होकर शरीर धूल हुआ जा रहा है। कदाचित् प्रियतम आकर उस धूल को समेट ले।

यहाँ पर कवि नायिका की विरहकालीन अभिलाषा, विरहमूलक वेदना की तीव्रता, विरह मे उसका अत्यधिक क्षीणता आदि तथ्यों की व्यजना करना चाहता है।

यहाँ पर विप्रलम्भ शृंगार रस व्यंग्य होने से असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि है। रूपक अलंकार से रस व्यंग्य होने से कवि प्रौढ़ोक्तिसिद्ध अलंकार से रस व्यंग्य है।

विरह पवन······नीरू—वाच्यार्थ विरह पवन के सदृश है और शरीर छार है। छार भी वह जलसिक्त हो गई है। व्यंग्यार्थ है कि मेरा सुन्दर शरीर विरह में जलकर खाक हो गया है। उस खाक को ही कदाचित् प्रियतम आकर आलिंगन कर ले ताकि मेरी कामना पूर्ण हो जाय। यदि प्रियतम ने इस खाक को शीघ्रातिशीघ्र आकर न समेटा तो फिर मेरी खाक भी तडपते हुए ही नष्ट हो जायेगी, क्योंकि पवन उसे उड़ा देना चाहता है और जल उसे वहा लेना चाहता है। इन पक्तियो मे नायिका की आने की प्रार्थना व्यंग्य है।

यहाँ पर विप्रलम्भ शृंगार रूप असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य से प्रियतम के शीघ्राति-शीघ्र आने की प्रार्थना रूप वस्तु व्यंग्य है।

अबहुँ मया कै······भेटि—यहाँ पर दर्शन और नए अवतार एवं नई काया के उत्पन्न होने मे परस्पर कोई सम्वन्ध नही है फिर भी कवि ने सम्वन्ध स्थापित किया। अतः यहाँ सम्वन्धातियोक्ति अलंकार है।

शब्दार्थ—चरत=खेलते थे।

केलि कै=क्रीड़ा करके।

छार=धूल।

मया कै=तरस खाकर।

वियुरी—फैली हुई।

गएहेराय=खो गए।

केलि=क्रीड़ा करके।

चून-चून=कण-कण होकर।

नैन सीप मोती भरि आँसू। टुटि टुटि परहिं करहिं तन नाँसू।
पदिक पदारथ पदुमिनी नारी। पिय बिनु भै कौड़ी वरबारी ।।
संग लै गएउ रतन सब जोती। कँचन कण काँच के पोती ।।
बूड़ति हौ दुख उदधि गँभीरा। तुम्ह बिनु, कंत! लाव को तीरा ।।
हिएँ बिरह होइ चढ़ा पहारू। चल जोबन सहि सकै न भारू ।।
जल महँ अगिनी सो जान बिछुना। पाहन जरै, होइ जरि चूना ।।
कवने जतन, कंत! तुम्ह पावौ। आजु आगि हौ जरत बुझावौं ।।
कवन खंड हौ हेरौं कहाँ बँधे हौ नाँह।
हेरे कतहुँ न पावों बसहु तु हिरदय माँह ।।३।।

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती द्वारा उसकी विरह व्यथा की कथा कहलाई है।]

पदमावती अपनी विरह वेदना की अभिव्यक्ति करती हुई कहती है—नेत्र रूपी सीप आँसू रूपी मोतियो से भरे है। वे टूट-टूट कर गिरते है और शरीर का नाश हुआ जा रहा है। वह पदमिनी नारी अमूल्य रत्न के सदृश थी किन्तु बिना पति के वह सर्वथा निर्मूल्य हो गई। रतन उसकी सब कान्ति अपने साथ ले गया। सोने जैसी काया काँच के पोत के सदृश कान्तिहीन हो गई। मैं दुःख के गम्भीर समुद्र में डूबती जाती हूँ। प्रिय तुम्हारे बिना मुझे कौन पार लगायेगा। विरह पहाड़ बन कर छाती पर बैठा है। जल के समान यौवन उसका बोझा नही सह पाता। यौवन के जल में लगी हुई आग को वही जानता है जो विरही है, उसकी ज्वाला से पत्थर भी जल जाते हैं। हे प्रियतम! यदि किसी भी यंत्र से मैं तुम्हे पा सकती तो मैं इस जलती आग को बुझा देती। हे प्रियतम, किस भूमि को खोजूँ, तुमसे कहाँ भेट होगी। तुम्हें खोजने पर कही नही पाती, किन्तु तुम रहते हृदय मे ही हो।

टिप्पणी—नैन······आँसू—यहाँ रूपक अलकार है।

टूटि-टूटि परहि तन नासू—यहाँ पर असंगति अलंकार प्रतीयमान है। टूट-टूट कर गिरते तो आँसू है किन्तु नष्ट शरीर होता है।

पिय बिन······बारी—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। कवि यहाँ पर विरह में जीवन की निरर्थकता व्यंजित करना चाहता है। इसी प्रयोजन से कौड़ी होना मुहावरे का प्रयोग किया है। इसका अर्थ है निरर्थक और निष्फल होना।

संग लै गएऊ रतन सब ज्योति—यहाँ पर रतन में शब्द शक्ति उद्भव अनुरणन वस्तु ध्वनि है। यहाँ पर प्रियतम के प्रति नायिका के वचन है। यहाँ पहले तो वाच्यार्थ बोध होता है कि वह रतन की सब ज्योति ले गया। व्यंग्यार्थ हुआ रतनसेन रूपी प्रियतम के विरह मे सर्वथा निष्प्रभ हो गई हूँ। यहाँ विरहजनित वैवर्ण्य नामक

सात्विक की व्यंजना अभीष्ट है।

कञ्चन कया काँच भा पोती—यहाँ पर वाक्यगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। सम्पूर्ण वाक्य का लक्ष्यार्थ है कि सोने जैसी मनोरम काया पोत के मोतियों की तरह निष्प्रभ और निर्मूल्य हो गई। यहाँ पर भी विरहजनित शरीर की क्षीणता और निष्प्रभता व्यंजित की गई है।

हियँ विरह होइ चढ़ा पहारू—यहाँ पर वाच्यार्थ है विरह हृदय पर पहाड़ होकर चढ़ बैठा है। कवि नायिका की विरहजनित कातरता, असहायता और निरालम्बता व्यंजित करना चाहता है। चढकर बैठना चेतन धर्म है। विरह अचेतन है। अत. मुख्यार्थ का वाध है। लक्षण लक्षणा से अर्थ लिया जायगा कि विरह ने हृदय को बुरी तरह से बोझिल या खिन्न वना रखा है। अतः यहाँ अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है।

जल मह अगिनी सो जान विछना—यहाँ पर रूपक अलकार व्यंग्य है।

पाहन जरै होय जरि चूना—पत्थर को भस्म करना विरहाग्नि से सम्भव नहीं है। अतः अकारण से कार्य का होना कहा गया है। इसीलिए विभावना अलकार है।

आजु आगि हौ जरत बुझावौ—यहाँ पर अपह्नुति अलंकार व्यंग्य है। नायिका के कहने का अभिप्राय है कि आज मैं विरह से नही आग से जल रही हूँ। विरह-जनित ज्वाला की तीव्रता ही व्यंग्य है। यहाँ स्वतःसम्भवी वस्तु से अलंकार व्यंग्य है।

हरै कतहु न पावहु वसहु सो हिरदै माँह—यहाँ पर विरोधाभास अलंकार है। यहाँ पर प्रियतम की रहस्यात्मकता व्यंग्य है। अतः यहाँ पर कवि प्रौढ़ोक्तिसिद्ध अलंकार से वस्तु व्यग्य है।

नोट—आचार्य शुक्ल ने इस खण्ड मे तीन अवतरण और दिए है। किन्तु प्रायः विद्वानो ने उन्हें प्रक्षिप्त माना है। अतः यहाँ उन्हे छोड़ दिया गया है।

देवपाल दूती खण्ड

कुंभलनेर राए देवपालू । राजा केर सत्रु हिय सालू ॥
वह पै सुना कि राजा बांधा । पाछिल बैर संवरि छर साधा ॥
सत्रु साल तब नेवैर सोई । जो घर आव सत्रु कै जोई ॥
दूती एक विरिध ओहि ठाऊँ । बांभनि जाति कुमोदिनी नाऊँ ॥
ओहि हँकारि कै बीरा दीन्हा । तोरे बर मैं बर जिय कीन्हा ॥
तूं कुमुदिनी कँवल के नियरे । सरग जो चांद बसै तुव हियरे ॥
चितउर महँ जो पदुमिनि रानी । कर बर छर सो देहि मोहि आनी ॥
रूप जगत मन मोहिनी औ पदुमावति नाऊँ ।
कोटि दरब तोहि देहुँ आनि करसि एक ठाऊँ ॥१॥

[इस अवतरण में कुम्भलनेर के राजा देवपाल द्वारा भेजी गई दूती का प्रसंग छेड़ा गया है ।]

कुम्भलनेर का राजा देवपाल राजा रतनसेन का हृदय सालने वाला शत्रु था । उसने जब यह सुना कि राजा बांध लिया गया तो उसने पिछला बैर स्मरण कर उससे छल करने का निश्चय किया । शत्रु की खटक तभी नष्ट होती है जब शत्रु की स्त्री घर पर आ जाती है । उसके यहां एक वृद्ध दूती थी । यह जाति की ब्राह्मणी थी और कुमुदिनी उसका नाम था । उसे बुलाकर सम्मानित किया और कहा कि तेरे बल को ही मैंने अपना बल समझा है । हे कुमुदिनी ! कँवल के समीप आकाश में जो चांद है वह तुम्हारे हृदय के पास है । चित्तौड मे जो पदमिनी जाति की रानी है अपने छल-बल से मेरे पास भगा ला ।

वह रूप-जगत् की मन मोहने वाली मणि है । पदमावती उसका नाम है । यदि तू उसे लाकर मिला देगी तो मैं तुझे करोडो रुपए दूंगा ।

टिप्पणी—बीरा दीन्हा—लक्षणा से इसका अर्थ है—उसका सम्मान किया ।

तू कुमुदिनी कँवल के नियरे—यहां पर कवि की व्यंजना है कि तू भी स्त्री है पदमावती भी स्त्री है अतः स्त्री की पहुंच स्त्री तक बड़ी सरलता से हो जाती है । फिर स्त्री, स्त्री की दुर्बलता को भी अच्छी तरह से समझती है । अतः स्त्री ही स्त्री को फँसा सकती है । यहां पर कुमुदिनी और कंवल मे शब्द शक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है ।

सरग सौं चाँद बसै तुम हियरे—यहाँ पर सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार है। कवि की व्यंजना है कि तुझमे आकाश के चाँद को भी पृथ्वी पर पकड़ लाने की शक्ति है। अतः पदमावती को तू ही मेरे पास ला सकती है। अतः यहाँ पर कवि प्रौढोक्ति मात्र सिद्ध अलकार से वस्तु ध्वनि है।

कुमुदिनी कहा देखु, हौ सो हौं। मानुस काह, देवता मोहौं॥
जस काँवरु चमारी लोना। को न छर पाढ़त कै टोना॥
बिसहर नाँचहि पाढ़त मारें। औ धरि मूँदहि घालि पेटारे॥
बिरिख चलै पाढ़त कै बोला। नदी उलटि वह परबत डोला॥
पढ़त हरै पंडित मति गहरे। औरु को अँध, गूँग औ वहिरे॥
पाढ़त ऐस देवतन्ह लागा। मानुस का पाढ़त सो भागा॥
चढि अकास कै काढ़त बानी। कहाँ जाइ पदमावति रानी॥
दूती बहुत पैंज कै बोली पाढ़त बोल।
जाकर सत्त सुमेरु है लागै जगत न डोल॥२॥

[यह अवतरण कुमुदिनी नामक दूती की गर्वोक्ति से अनुप्राणित है।]

कुमुदिनी कहती है देखो मैं ऐसी दूती हूँ, जिसकी समता संसार में कोई नहीं कर सकता है। मैं मनुष्य क्या देवता तक को मोहित कर सकती हूँ। जैसे कामरूप देश की लोना चमारी अपने तंत्र, मंत्र और टोने से किसी को भी छल लेती थी उसी प्रकार मै भी ऐसी हूँ कि कोई भी मेरे इन्द्रजाल से नही बच सकता। मेरे मंत्र पढकर मारने पर विषधर सर्प भी नाचने लगता है और जब वह पूर्ण मुग्ध हो जाता है तब उसको पिटारे में डालकर बन्द कर देते है। मेरे मत्र पढने से वृक्ष चलने लगता है। नदी उल्टी वहने लगती है और पर्वत डोलायमान हो जाता है। पडित की प्रखर बुद्धि को अपने मंत्र के बल से मैं विमूढ़ित कर देती हूँ। अधे, गूँगे, वहरे तथा अन्य व्यक्तियो की तो बात ही क्या है। मेरा पढ़ा हुआ मंत्र देवताओं को भी विमूढित कर देता है। मनुष्य उससे वचकर कहाँ भाग सकता है। मेरी स्पष्ट वाणी मे मंत्र पढने से पदमावती वेचारी कहाँ जाएगी।

दूती ने अपने मंत्रो की शक्ति का वहुत बढ़-बढ़ कर वर्णन किया किन्तु जिसका सत सुमेरु की भाँति निश्चल है उसे सम्पूर्ण संसार मिलकर भी नही डिगा सकता।

टिप्पणी—देखु मैं सो हौं—यहाँ पर सो मे सवृति वक्रता है।

बिसहर नाचहि पाढ़त मारे—कवि यह व्यजित करना चाहता है कि विषधर सर्पो के समान वड़े-वड़े शक्तिशाली, भयानक और कठोर व्यक्ति भी मेरे जादू के प्रभाव से मेरे आज्ञाकारी वन जाते है। यहाँ पर पदगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है।

पैंज कै बोली—प्रतिज्ञा करके बोलना वाच्यार्थ है। लक्ष्यार्थ है वहुत बलपूर्वक बढ-बढ़ कर बाते करना।

जाकर सत्त सुमेरु है—इस स्थल पर अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। अर्थ है जिसका सतीत्व सुमेरु की दृढता से युक्त है। यहाँ पर सतीत्व का गौरव व्यंग्य है।

लागँ जगत न डोल—यहाँ पर विशेषोक्ति अलंकार है।

को न छर पाढ़त कै टोना—यहाँ पर काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य है।

कहाँ जाए पदुमावती रानी—यहाँ पर काकुवैशिष्ट्य व्यंग्य है। यहाँ पर कवि का व्यंग्य है कि पद्मावती तो भोली-भाली रानी है जिसे दुनिया का छल प्रपञ्च नहीं आता, उसका तो हमारे प्रपञ्च में फंसना सरल और स्वाभाविक है।

लोना चमारिन—मध्य युग में कामरूप देश की लोना नाम की एक चमारी, जादू, टोना आदि मे बहुत निपुण थी। अपनी इस कला के लिए वह दूर-दूर तक प्रसिद्ध हो गई थी। बाद में धीरे-धीरे वह बहुत-सी लोक-कथाओ की नायिका हो गई।

शब्दार्थ—पाढत=मत्र पढकर जादू करना।

औसि=अवश्य।

पैंज कै बोलि=प्रतिज्ञा करके बोली।

पाठ भेद—कोई महत्त्वपूर्ण पाठ भेद नही।

दूती बहुत पकवन साँधे। मोंतिलाडू कीन्ह खरौरा बाँधे॥
माँठ पेराकैं, फेनी औ पापर। पहिरे बूझ दूती कै कापर॥
लै पूरी भरि डाल अछूनी। चितउर चली पैंज कै दूती॥
बिरिध बएस जौ बाँधे पाऊ। कहाँ सो जोबन कित बेबसाऊ॥
तन बुढ़ाइ मन बूढ़ न होई। बल न रहा लालच जिय सोई॥
कहाँ सो रूप देखि जग राता। कहाँ सो गरब हस्ति जस माँता॥
कहाँ सो तीख नैन तन ठाढ़ा। सबै मारि जोबन पन काढ़ा॥
मुहमद बिरिध जो नै चलै काह चलै भुइँ टोइ।
जोबन रतन हेरान है मकु धरती महँ होइ॥३॥

[यहाँ पर पदमावती को फँसाने के लिए दूती के प्रस्थान के प्रसंग की अवतारणा की गई है।]

दूती ने शीघ्र ही पकवान बनवाए। मोती चूर के लड्डू बांधे गए और खिरौरा बनाए गए। माठे, पिरकियो, फेनी और पापडे आदि के भार दूती ने नौकरो के सिर पर रखवा दिए। पूरियो की अछूती टोकरियाँ भरवा कर दूती प्रतिज्ञा कर चित्तौड़ की ओर चल दी। जो वृद्धावस्था होने पर भी किसी काम के लिए पैर आगे बढाता है तो उसका बडा साहस है, क्योकि वृद्धावस्था मे न तो शक्ति रहती है और न परिश्रम करने की क्षमता ही रहती है। शरीर बूढा हो जाता है। किन्तु मन बूढा नही होता। शक्ति क्षीण हो जाती है किन्तु मन में लालच वैसा ही रहता है। बुढापे

में वह रूप कहाँ रह जाता है, जिसकी प्रशंसा युवावस्था में सारा संसार करता है। वृद्धावस्था में उन्मत्त हस्ती जैसा गर्व भी नही रहता। बुढापे मे वह तीक्ष्ण कटाक्ष और वह देह भी नही रह जाती। सब को मार कर यौवन भी मर जाता है।

कवि कहते है वृद्धावस्था में मनुष्य झुक कर चलने लगता है। सम्भवतः वह यौवन रूपी खोए हुए रत्न को ढूंढ़ता रहता है। कदाचित् पृथ्वी मे कहीं पडा हो।

टिप्पणी—(१) कहाँ सो जोवन कत विवसाउ—यहाँ पर काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य है। अर्थ है वृद्धावस्था में वह यौवन नहीं रहता और न व्यवसाय ही रहता है। सो में संवृति वक्रता है। इसमें कवि ने रूप की रमणीयता और मधुरता संवृत की है।

(२) **सोई**—इसमे संवृति वक्रता है। इसका अर्थ है यौवन जैसी तृष्णा वैसी ही रहती है।

(३) **सो (रूप)**—यहाँ पर संवृति वक्रता है।

(४) दोहे में हेतूत्प्रेक्षा अलंकार है।

शब्दार्थ—जोहन=नजर लगाना।

मोहन=तांत्रिक कर्म—आकर्षण, स्तम्भन, वशीकरण, मोहन, मारण आदि कई प्रकार के बताए गए हैं। मोहन में मन्त्रो द्वारा संसार को मोहित करने का विधान है।

ओं मोक्षां मों मोहय मोहय। ओं नमो भगवती पाद पंकज परागेभ्यः॥

इस मन्त्र को पढकर संसार को मोहित किया जा सकता है।

बरोठा—द्वार कोष्ठ।

कोठा=राज भवन।

छीपाँ=सीपी। प्राचीनकाल में चम्मचें नही थी। अतः बच्चो को सीपी से दूध पिलाया जाता था। उसी को छीपी या छीपा कहते थे।

आइ कमोदिनि चितउर चढ़ी। जोहन मोहन पाढ़त पढ़ी॥
पूँछि लीन्ह रनिवाँस बरोठा। पैठी पँवरी भीतर कोठा॥
जहँ पदमावति ससि उजियारी। लै दूती पकवान उतारी॥
बहाँ पसारि धाइ कै भेंटी। चीन्हा नहि राजा कै बेटी॥
हौ बाम्हनि जेहि कुमुदिनि नाऊँ। हम तुम्ह उपने एकहि ठाँऊ॥
नाउँ पिता कर दूवे बेनी। सोइ पुरोहित गँधरब सेनी॥
तुम्ह बारी तब सिघल दीपाँ। लीन्हें दूध पिआइऊँ छीपाँ॥
ठाउँ कीन्ह मैं दोसर कुँभलनेरिहि आइ।
सुनि तुम्ह कहँ चितउर महँ कहि कि भेंटौं जाइ॥४॥

[इस अवतरण मे दूती का चित्तौड़गढ़ आगमन वर्णित है।]

कुमुदिनी आकर चित्तौड़ में रुकी। पुनश्च: उसने जोहन-मोहन आदि मन्त्रों को (बड़े कष्ट से) जो उसने सीख रखे थे पढा। उसने नगर मे रनिवास का मुख्य द्वार पूछ लिया। तत्पश्चात् द्वार मे प्रवेश करके वहाँ पहुँची जिस स्थल पर प्रकोष्ठ था। उसी दूती ने अपने सब पकवान उस स्थान पर उतारे जहाँ चन्द्रमा जैसी रूपवती पदमावती थी। वहाँ पसार कर दौडकर वह रानी से भेंटी मिली और बोली हे राजा की बेटी! क्या मुझे नही पहचानती, मैं ब्राह्मणी हूँ। मेरा नाम कुमुदिनी है। हम तुम दोनो एक ही स्थान मे जन्मी थी। मेरे पिता का नाम बेनी दुबे था। वह सदैव राजा गन्धर्वसेन के पुरोहित रहे। तब मैं सिंहल दीप मे गोद मे लेकर सीपी से दूध पिलाया करती थी।

मैंने अपना दूसरा स्थान कुम्भलनेर मे बनाया। चित्तौड़ में तुम्हारा शुभागमन हुआ है। यह सुनकर मैंने सोचा तुम से भेंट कर लें।

टिप्पणी—जोहन-मोहन—जोहन दृष्टि से टोना करने वाले मन्त्र और मोहन कारक मन्त्र पढे।

बरौठा=ड्योढी या मुख्य द्वार।

कोठा=मुख्य प्रकोष्ठ।

छीपा=बडी सीपी। सीपी से बच्चों को दूध पिलाने की प्रथा पुरानी है। जब चम्मचें नही चली थी तब सीपी से ही बच्चो को दूध पिलाया जाता था॥

सुनि निम्चै नैहर कै कोई। गरें लागि पदमावति रोई॥
नैन गँगन रवि बिनु अँधियारे! ससि मुख आँसु टूट जनु तारे॥
जग अँधियार गहन धनि परा। कब लगि ससि नखतन्ह निसि भरा॥
माइ बाप कत जनमी बारी। गीउ तूरी कित जनम न मारी॥
कित बियाहि दुख दीन्ह दुहेला। चितउर पेथ कंत बँदि मेला॥
अब एह जियन चाहि भल मरना। भइउ पहार जनम दुख भरना॥
निसरि न जाए निलज यह जीऊ। देखौं मंदिर सून बिनु पीऊ॥
कुहुँकि जो रोई ससि नखत नैनन्ह रात चकोर।
अबहुँ बोलहिं तेहिं कुहुँकि कोकिल चातिक मोर॥५॥

[इस अवतरण मे कवि ने रानी पदमावती और दूती की भेंट का वर्णन किया है।]

इस बात पर विश्वास करके कि वह पिता के घर से आई है, पदमावती गले लगकर रोई। उसके नेत्र रूपी आकाश मे रतनसेन रूपी सूर्य के बिना अँधेरा था। चन्द्रमा रूपी मुख से आँसू तारो की भाँति टूट रहे थे। राजा के वियोग मे उस के लिए संसार अंधकारपूर्ण था क्योकि दिन मे ही ग्रहण लग गया था। शशि रूपी पदमावती सूर्य रूपी रतनसेन के अभाव मे अश्रु रूपी नक्षत्रो से निराशा रूपी रात्रि को

कब तक भरती रहेगी। माता-पिता ने बालापन में जन्म ही क्यों दिया। हे भगवान्! तूने भी मुझे जन्मते ही क्यों न मार डाला। विवाह करा कर ऐसा कठोर दुःख दिया कि प्रियतम को चित्तौड़ से भेजकर बन्दीखाने मे डलवा दिया। यदि इसी प्रकार वियोग मे मरना लिखा है तो यह जीवन व्यर्थ है। जन्मभर दुःख उठाना पहाड़ रूप हो गया है। यह निर्लज्ज जीव निकलता भी तो नही है। मुझे प्रियतम के बन्दी हो जाने पर राज-मन्दिर सूना दिखाई पड़ रहा है।

शशि रूपी पदमावती चकोर जैसे लाल-लाल नेत्रो से नक्षत्र रूपी आँसू बरसाती हुई कुहुक कर रोई। आज भी उसी की कुहुक के बोल कोयल, चातक और मोर पुकारते है।

टिप्पणी—नैन·········तारे—इसमे रूपक, रूपकातिशयोक्ति, विनोक्ति, उत्प्रेक्षा आदि कई अलंकारो की ससृष्टि है।

जग अँधियार गहन दिन पड़ा—इस पक्ति का वाच्यार्थ है दिन अर्थात् सूर्य को ग्रहण लग गया। अतः सारा ससार अन्धकारपूर्ण है। यहाँ पर कवि नायिका का निराशाधिक्य और रतनसेन की विपदा की व्यंजना करना चाहता है। इसी प्रयोजन से कवि ने संसार को अंधकारपूर्ण कहा और दिन के ग्रहण करने की बात कही। कवि की व्यजना है कि रतनसेन के बन्दी हो जाने से नायिका का जीवन नैराश्य से आक्रान्त हो गया है। यहाँ पर कवि प्रौढ़ोक्तिसिद्ध हेतु अलंकार से वस्तु व्यंजना है।

कब लगि ससि नखतन्ह निसि भरा—इसका वाच्यार्थ है कि पदमावती रूपी शशि अश्रु रूपी नक्षत्रो से निराशा रूपी रात्रि को भरती रहेगी। यहाँ पर काकु-वैशिष्ट्य व्यंग्य है। कवि यह व्यंजित करना चाहता है कि पदमावती अपनी प्रियतम मिलन रूपी निराशा के आँसुओं को सहन नहीं कर सकेगी और दशम अवस्था अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हो जाएगी।

एह जीवन—यहाँ पर अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। कवि नायिका के विरही जीवन के उत्कट नैराश्य की व्यजना कर रहा है।

भएउ पहाड़ जनम दुख भरमा—जन्मभर दुःख सहन करना पहाड रूप हो गया अर्थात् बड़ी कठिनता और दारुणता के कारण असह्य हो गया है। यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है।

कुहुक······चकोर—दोहे की प्रथम पंक्ति मे रूपक, रूपकातिशयोक्ति अलंकारो से वस्तु व्यंजना है। अर्थ है कि रोते-रोते पदमावती की आँखे लाल हो गई थी और अश्रु धारा बह रही थी। वेदनाधिक्य यहाँ व्यंग्य है। यहाँ कवि प्रौढोक्ति सिद्ध अलंकारो से वस्तु व्यंजना है।

दोहे की द्वितीय पंक्ति मे हेतूत्प्रेक्षा अलंकार है।

कुमुदिनि कंठ लगि सुठि रोई। पुनि रूप-डार मुख धोई॥
तूं ससि रूप जगत उजियारी। मुख न झाँपु निसि होई अँधियारी॥
सुनि चकोर काकिल दुख दुखी। घुंघची भई नैन कर मुखी॥
केतौ धाइ मरै कोइ बाटा। सोइ पाव जो लिखा लिलाटा॥
जो पै लिखा आन नहि होई। कित धावै, कित रोवै कोई॥
कित कोउ हींछ करै औ पूजा। जो विधि लिखा होइ न दूजा॥
जेतिक कमोदिनि बैन करेई। तस पदमावति स्रवन न देई॥
सेंदुर चीर मैल तस सूखि रहे सब फूल।
जेहि सिगार पिउ तजिगा जनम न पहिरै भूल॥६॥

[इस अवतरण में कवि ने दूती के मुख से पदमावती के सौन्दर्य की प्रशंसा कराई है।]

कुमुदिनी पदमावती के गले से चिपट कर खूब रोई। फिर उसने सोने की झारी मे जल लेकर मुँह धोया (और बोली) तू चाँद जैसी है। तेरे ही रूप से जगत् मे उजाला छाया हुआ है। तू मुख न ढक नही तो अन्धेरी रात छा जाएगी। तेरा क्रन्दन सुनकर चकोर और कोकिल भी तेरे दु:ख से दु:खी है। घुंघची का मुख भी उसके विरही नेत्रो की ज्वाला से काला पड़ गया है। चाहे कोई कितना ही प्रयत्न करके मर जाय किन्तु उसको मिलता उतना ही है जितना कि भाग्य मे लिखा है। जो कुछ लिखा है, वह अन्यथा नही होता। फिर भाग्य से अधिक पाने के लिए प्रयत्न करना या रोना व्यर्थ है। चाहे कितनी मनौती की जाए, चाहे जितनी किसी देवता की पूजा की जाए किन्तु होता वही है जो भाग्य मे लिखा है। कुमुदिनी जितनी बाते बनाती जाती थी पदमावती उनकी उतनी ही उपेक्षा करती जाती थी।

उसकी लाल साडी मैली हो गई थी। शृंगार के सब फूल सूख गए थे। प्रियतम जिस शृंगार को छोड़कर चला गया हो वह फिर धारण नही किया जा सकता।

टिप्पणी—तू ससि रूप जगत उजियारी—यहाँ पर गौणी सारोपा लक्षणा है। यहाँ कवि का लक्ष्य पदमावती के दिव्य रूप की व्यंजना करना है। यहाँ पर रूपक अलकार है।

मुख न झापु निसि होय अधियारी—यहाँ पर कवि निवद्धपात्र प्रौढ़ोक्ति सिद्ध वस्तु से अलकार व्यंजना है। व्यंजना है कि तेरा मुख चाँद के समान है। अगर तू उसे ढक लेगी तो अन्धेरी रात हो जाएगी अर्थात् तेरा मुख भी रात्रि मे प्रकाश का हेतु है। इस दृष्टि से यहाँ हेतूत्प्रेक्षा अलकार है। मैं उपमा और हेतूत्प्रेक्षा दोनो को व्यंग्य मानता हूँ। यहाँ एक तीसरा अलंकार सम्वन्धातिशयोक्ति भी व्यंग्य है। मुख

और रात्रि मे कोई सम्बन्ध नही है। फिर भी कवि ने दोनों का सम्बन्ध स्थापित किया। इसलिए यहाँ सम्बन्धातिशयोक्ति अलकार है।

घुंघची भई नैन कर मुखी—यहाँ पर सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा है। घुंघची का एक भाग सहज रूप से ही काला होता है किन्तु कवि ने पदमावती के विरह की ज्वाला से काले हुए नेत्रो से उसके काले होने की सम्भावना की है।

केतो धाय········**दूजा**—यहाँ पर इस्लामी भाग्यवाद का पूरा-पूरा प्रभाव है। इस्लाम के अनुसार प्रत्येक मनुष्य के भाग्य का निर्णय पहले ही हो जाता है। उससे अधिक कुछ नही प्राप्त होता।

तब पकवान उघारे दूती। पदमावति नहि छुवै अछूती॥
मोहि अपने पिय केर खँभारू। पान फूल कस होई अहारू॥
मोकहँ फूल भए जस काँटे। बाँटि देहु जेहि चाहहु बाँटे॥
रतन छुवा जिन्ह हाथन्ह सेंती। औरु न छुऔं सो हाथ सँकेती॥
ओहि के रंग भा हाथ मँजीठी। मुकुता लेऊँ तौ घुंघची डीठी॥
नैन करमुखे राती काया। मोति होहि घुंघुची जेहि छाया॥
अस कर ओछ नैन हत्यारे। देखत गा पिउ गहे न पारे॥
का तोरि छुऔं पकवान गुर करुवा घिउ रूख।
जेहि मिलि होत सवाद रस लै सो गएउ सब भूख॥७॥

[दूती रानी पदमावती के सामने पकवान खोल कर रखती है और उसे खाने का आग्रह करती है किन्तु पदमावती उपेक्षा भाव से उन्हें अस्वीकार कर देती है।]

दूती ने पकवान उघाड़ कर पदमावती के सामने रखे। पदमावती ने पति से विमुक्त होने के कारण उन्हें छुआ भी नही और बोली—मुझे अपने पति का दुःख है। पान फल का आहार कैसे हो, मुझे तो फल काँटे के सदृश है। ये पकवान जिसको चाहो बाँट दो। जिन हाथो से मैंने अपने पति का स्पर्श किया उन हाथों से मैं और कुछ नही छू सकती। उस रतन के छूने से मेरे हाथ मजीठ की भाँति लाल हो गये। मुक्ता हाथ में लेने से वे घुंघची जैसे दिखाई पड़ते है। उस रत्न के स्पर्श से मेरे शरीर का रंग पक्का लाल है। किन्तु नेत्र विरह की ज्वाला में काले हो गए है। इन्ही दोनों के प्रभाव से मेरे हाथो मे आकर मोती भी घुंघची हो जाते है। ये नीच नयन ऐसे हत्यारे हैं कि उनके देखते हुए प्रियतम चला गया किन्तु वे उसे पकड़ न सके।

अत. मैं पकवान मे क्या हाथ लगाऊँ। उनकी मधुरता कड़वी है और घी स्नेह हीन है। जिसके साथ मिलकर सब रसो में स्वाद आता था वह प्रियतम सारी भूख ले गया।

टिप्पणी—रतन छुवे जिन्ह·····**हाथ संकेती**—यहाँ पर 'रतन' शब्द में पर्याय वक्रता है।

यहाँ रतन मे पर्याय ध्वनि भी है। यह शब्द शक्ति उद्भव अनुरणन ध्वनि का उदाहरण है। यहाँ रतन शब्द के स्थान पर यदि दूसरा पर्यायवाची शब्द रखा जाए तो वह व्यग्यार्थ नही निकलेगा जो यहाँ अभीष्ट है। यहाँ पर वाच्यार्थ है जिन हाथो से मैंने रतन छुए थे उन हाथो से मैं और कोई वस्तु नही छू सकती। व्यंग्यार्थ है कि जिन हाथो से मैंने अपने प्रियतम रतनसेन का प्रणयालिगन किया था उनसे मैं पकवान जैसी क्षुद्र वस्तुओ और व्यक्तियो की छाया भी नही छू सकती।

मुकुता लेउँ तो धुंघची दीठी—यहाँ पर तद्गुण अलंकार है।

नैन कर मुखे''''''छाया—यहाँ पर तद्गुण अलकार है।

कुमुदिनी रही कँवल के पासा। बैरी सूर चाँद की आसा॥
दिन कुँभिलानि रही भै चूरू। रैनि बिगसि बातन्ह कर भोरू॥
कत तूँ बारि रहसि कुँभिलानी। सूखि बेलि जस पाव न पानी॥
अबही कँवल करी तूँ बारी। कोंवलि बएस उठत पौनारी॥
वेनी तोरि मैलि औ रूखी। सरवर माँझ रहसि कत सूखी॥
पानि वेलि बिधि कया जमाई। सीचत रहै तबहि पलुहाई॥
करु सिगार सुख फुल तँबोरा। बैठु सिंघासन झूलु हिंडोरा॥
हार चीर तन पहिरहि सिर कर करहि सँभार।
भोग मानि ले दिन दस जोबन कै पैसार॥८॥

[इस अवतरण में कवि ने कुमुदिनी नामक दूती के दौत्य कर्म जनित चतुरता का वर्णन किया है।]

वह कुमुदिनी रूप दूती कमल के समान सुन्दर पदमावती के पास ठहर गई। चाँद की आशा करने वाली उस कुमुदिनी के लिए सूरज के प्रकाश से प्रकाशित दिन शत्रु रूप था अर्थात् रात्रि मे प्रसन्न रहने वाली वह दूतिका अथवा चन्द्रमुखी पदमावती को बहका कर ले जाने वाली वह दूती दिन मे चोर की तरह सकुचित और कुम्हलाई हुई रहती थी और रात्रि मे प्रसन्न हो होकर बाते करते हुए सवेरा कर देती थी। वह पदमावती से कहती थी "हे बाले तू जलविहीन लता के सदृश क्यो कुम्हलाई रहती है, अभी तो तू कमल की कली के सदृश अर्धमुकुलित है। तेरी अवस्था सुकुमार है और तू पद्मनाल के समान सुन्दर और सरस है। तू यौवनरूपी सरोवर मे रहते हुए भी क्यो म्लान रहती है। म्लान और खिन्न तो तेरी वैरिन को होना चाहिए। तुझे म्लान और खिन्न होने की कोई आवश्यकता नही है। परमात्मा ने तेरा शरीर पान की लता के सदृश सुकुमार बनाया है। जिस प्रकार पान की लता तब तक पल्लवित होती रहती है जब तक वह जल से सिंचित होती रहती है, तू शृंगार कर और पान-फूल का सुखोपभोग कर। तू गर्व से सिंहासन पर बैठ और सुख से हिडोले मे झूल।"

तू शरीर को आभूषण वस्त्रादि से अलंकृत कर, अपने मस्तक को अलकृत कर। तू जब तक यौवन का प्रवेश हो रहा है तब तक सुखपूर्वक जी भरकर भोगो का आनन्द ले ले।

टिप्पणी—कुमुदिनी रही कँवल के पासा। बैरी सूर चाँद की आसा— इस पंक्ति मे पदगत शब्दशक्ति मूलक संलक्ष्यक्रम वस्तु ध्वनि है। इस पंक्ति का वाच्यार्थ हुआ कि चाँद की कामना करने वाली और सूर्य को शत्रु रूप समझने वाली कुमुदिनी कमल के पास निवास करने लगी। व्यग्यार्थ हुआ कि रात में प्रसन्न रहने वाली और दिन मे म्लान रहने वाली कुमुदिनी रूप वह दूतिका पदमावती के पास ठहर गई। यह वस्तु ध्वनि यहाँ पर व्यग्य है। इस पंक्ति मे कुमुदिनी पर श्लेष है और कँवल पर रूपकातिशयोक्ति है।

बैरी-सूरज और चाँद में शुद्धा लक्षणा है। कार्यकारण भाव सम्बन्ध से यहाँ पर सूरज का अर्थ दिन लिया जाएगा और चाँद का अर्थ रात्रि।

तीसरी पंक्ति के उत्तरार्द्ध मे उपमा अलंकार है।

चौथी पंक्ति में सारोपा गौणी लक्षणा का प्रयोग किया गया है जिससे उक्ति में एक विशेष चमत्कार आ गया है।

पाँचवी पंक्ति के उत्तरार्द्ध में 'सरवर' शब्द मे साध्यवसाना गौणी लक्षणा है।

बिहँसि जो कुमुदिनि जोबन कहा। कँवल न बिगसा, संपुट गया॥
कुमुदिनि कहु जोबन तेहि पाहाँ। जो आछहि पिय की सुख छाहाँ॥
जाकर छतिबनु बाहर छावा। सो उजार घर को रे बसावा॥
अहा जो राजा रैंनि अँजोरा। केहि क सिघासन केहि क हिडोरा॥
को पालक पौढै को माढ़ी। सोवनिहार परा बँदि गाढ़ी॥
जेहि दिन गा घर भा अँधियारा। सब सिगार लै साथ सिधारा॥
कया बेलि तब जानौ जामी। सीचनिहार आव घर स्वामी॥
तब लगि रहौ भूरि असि जब लहि आव सो कंत।
एहै फूल यह सेंदुर नव होइ उठै बसंत॥९॥

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती द्वारा कुमुदिनी नामक दूतिका के वचनों का प्रत्युत्तर प्रस्तुत कराया है।]

कुमुदिनी नामक दूती ने हँस-हँस कर यौवन के सुखो की चर्चा की। उस चर्चा को सुनकर पदमावती का हृदय-कमल जो थोड़ा बहुत प्रसन्न था वह भी उदास पड़ गया। वह उस दूती से बोली—हे कुमुदिनी, यौवन के सुखों की चर्चा उससे करनी चाहिए जिसे अपने पति की छत्रछाया और संयोग प्राप्त हो। जिसके घर के

बाहर छतिवन का वृक्ष छाया हो ऐसे उजाड़ घर को कौन बसा सकता है। जो हमारे जीवन की रात्रि का प्रकाश रूप राजा था वही आज नही है। उसके विरह मे किसका सिंहासन और किसका हिंडोला है। कौन महल मे पलंग पर सोवे? जो सोने वाला था वह घोर वन्दीगृह मे पड़ा हुआ है। वह जबसे गया है तब से घर मे अन्धेरा छा गया और शृंगार भी साथ ही ले गया है। यह शरीर रूपी लतिका तभी पल्लवित हुई समझूँगी जब इसका सींचने वाला घर पर आ जाएगा।

मैं तब तक इसी प्रकार मुरझाई हुई रहूँगी जब तक मेरा पति घर पर नहीं आ जाएगा। उसके आते ही यही फूल और यही सिन्दूर वसन्त की भाँति नूतन हो उठेगा।

टिप्पणी—कंवल जो विगसा संपुट गहा—शुक्ल जी मे इसका पाठान्तर है: 'कँवल न विगसा संपुट रहा'। हमें शुक्ल जी का पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है क्योंकि उसमे अर्थौचित्य अधिक है। उस अवस्था मे अर्थ होगा कि दूती के वचनों से पदमावती का हृदय-कमल जो मुरझाया हुआ था विकसित न हो सका।

जोवन कहा—जोवन मे उपादान लक्षणा है। इसका अर्थ है यौवन के सुखों आदि का वर्णन किया है। सुखो का उपादान किए जाने के कारण ही यहाँ पर उपादान लक्षणा है।

कँवल जो विगसा—यहाँ पर साध्यवसाना गौणी लक्षणा है।

जाकर छतिवन बाहर छावा—शुक्ल जी ने इसका पाठान्तर दिया है 'जाकर छत्र सो बाहर छावा'। हमे शुक्ल जी का पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। उस अवस्था मे अर्थ होगा जिस स्त्री का छत्र के सदृश रक्षक एवं सुखद पति बाहर पड़ा है इत्यादि। छतिवन एक प्रकार का वृक्ष होता है जिसमें बहुत तीव्र गन्ध होती है। इसका लगाना शुभ नही माना जाता है। इस अर्थ को स्वीकार करने पर अर्थ उक्ति में विशेष चमत्कार और औचित्य नही दिखाई पड़ता।

अहा जो राजा रैनि अंजोरा—का वाच्यार्थ है कि राजा रात्रि का प्रकाशरूप था। यह वाच्यार्थ यहाँ पर बाधित है अतः लक्ष्यार्थ है कि राजा हमारे निराशापूर्ण जीवन का प्रकाश रूप है अर्थात् सुखों का प्रदान करने वाला है। यहाँ पर राजा का गौरव और रानी का पातिव्रत व्यंग्य है। उक्ति में अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है।

केहिक सिंघासन इत्यादि—यहाँ पर काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य है।

को पालक सोवै इत्यादि—यहाँ पर भी काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य है।

माढ़ी—अवधी मे यह शब्द मण्डप के अर्थ मे प्रयुक्त होता है। यहाँ पर यह महल के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।

जनि तूं, बारि करसि अस जीऊ। जौ लहि जोबन तौ लहि पीऊ॥
पुरुख सिघ आपन केहि केरा। एक खाइ दोसरेह मुँह हेरा॥
जोबन जल दिन-दिन जस घटा। भँवर छपाइ हँस परगटा॥
सुभर सरोवर जौ लहि नीरा। बहु आदर पंछी बहु तीरा॥
नीर घटें पुनि पूँछ न कोई। बेरसि जो लीज हाथ रह सोई॥
जव लगि कालिदि बिरासि। पुनि सुरसरि होइ समुंद परासी॥
जोबन भँवर फूल तन तोरा। विरिध पहुँचि जस हाथ मरोरा॥
कृस्न जो जोबन कारनँ गोपतिन्ह के साथ।
छरिकै जाइहि बान पै धनुक रहै तोरे हाथ॥१०॥

[इस अवतरण मे कवि ने दूतिका द्वारा पदमावती को वहकाने के प्रयत्न का वर्णन किया है।]

दूती पदमावती से कहती है—हे वाले ! तू अपना मन इस प्रकार खिन्न न कर। स्त्री को तव तक पति का सुख मिल सकता है जव तक उसके पास यौवन रहता है। वाघ के सदृश कठोर पुरुष किस स्त्री का अपना होता है। वह एक स्त्री का उपभोग करता है और दूसरी पर दृष्टि रखता है। जीवनरूपी सरोवर मे ज्यो-ज्यो यौवनरूपी जल घटता जाता है उसी प्रकार भँवर के सदृश काले केश हंस के सदृश श्वेत होने लगते है। जव तक जीवनरूपी सरोवर नीररूपी यौवन से परिपूर्ण रहता है तब तक ही पक्षीरूपी पथिक आ-आकर वैठते है और जव नीररूपी यौवन क्षीण होने लगता है तव कोई वात नही पूछता है। जो विलास कर लिया जाता है वही सुख मिल पाता है। जव तक स्त्री कालिन्दी के सदृश श्यामा रहती है तभी तक वह विलासिनी रह सकती है। वृद्धावस्था के आते ही उसके वाल सफेद हो जाएँगे और वह काल रूपी समुद्र से जा मिलेगी। तेरा शरीर फूल के सदृश है और यौवन भँवर के सदृश। वुढापा जब इस शरीररूपी फूल को भ्रष्ट कर देगा तो वह रसहीन होकर मुर्भा कर गिर पडेगा।

यह यौवन शरीर में तृष्णा बनाए रहता है, शरीर के साथ बडा निर्मम है। वह शरीर के प्रति किसी प्रकार का दयाभाव नही दिखलाता। वह छल करके वाण के सदृश दृढ़ता और शक्ति ले जाएगा और धनुष के सदृश झुकी हुई काया मात्र छोड जाएगा।

टिप्पणी—प्ररुख सिंघ इत्यादि—शुक्ल जी ने पंक्ति का पाठान्तर इस प्रकार दिया है—'पुरुष सग आपन केहि केरा।' किन्तु यह पाठ उपयुक्त नही है।

भँवर छपाइ हंस परगटा—यहाँ पर गौणी, साध्यवसाना, लक्षणमूला, गूढा, धर्मगता, प्रयोजनवती लक्षणा और पदगत अर्थान्तर सक्रमित अविवक्षित वाच्य ध्वनि है। यहाँ पर वाच्यार्थ है कि भँवर छिप गया और हंस प्रकट हो गया। जोवन रूपी सरोवर के प्रसंग में यह वाच्यार्थ ग्राह्य नही प्रतीत होता। इसलिए लक्षणमूला लक्षणा से भँवर का अर्थ केशो की श्यामलता और हस का अर्थ बालों की सफेदी लिया

गया है। यौवनकालीन केशो की श्यामलता और वृद्धावस्थाकालीन केशों की श्वेतिमा की अतिशयता ही व्यग्य है।

जोबन जल इत्यादि—सम्पूर्ण पक्ति मे रूपक अलंकार है।

जब लगि कालिंदिरी इत्यादि—इस पक्ति मे कालिन्दी और सुरसरि मे पदगत अर्थान्तिर सक्रमित अविवक्षित वाच्य ध्वनि है। यहाँ पर भी केशों की कालिमा की अतिशयता तथा वृद्धावस्था मे होने वाली केशो की श्वेनिमा की अतिशयता ही व्यंग्य है। गौणी साध्यवसाना, लक्षणमूला, गूढ़ा, धर्मगता, प्रयोजनवती लक्षणा है। इससे उक्ति मे चमत्कार आ गया है।

जोबन भँवर इत्यादि—इस पक्ति मे अत्यन्त तिरस्कृत (अविवक्षित वाच्य) ध्वनि है। जोबन पर भँवर का और तन पर फूल का आरोप किया गया है। यहाँ शोषण की अतिशयता और शरीर की रसपूर्णता व्यग्य है। यहाँ पर गौणी, सारोपा, लक्षणमूला, गूढा, धर्मगता, प्रयोजनवती लक्षणा है।

बिरिध पोछ जस हाथ मरोरा—इसमे शुद्धा, साध्यवसाना, उपादानमूला पदगता रूढि लक्षणा है। वृद्धावस्था अचेतन होने के कारण हाथ मरोरने की क्रिया में असमर्थ है इसलिए यह मुख्यार्थ का बाध हुआ। इस प्रकार के प्रयोगो का प्रचलन समाज मे बरावर है इसलिए रूढ़ि लक्षणा हुई। यहाँ पर वृद्धावस्था के विकासो का उपादान किया गया है।

कित पावसि पुनि जोबन राता। मैमँत, चढ़ा साम सिर छाता॥
जोवन बिना बिरिध होई नाउँ। बिनु जोबन थाकसि सब ठाऊँ॥
जोवन हेरत मिलै न हेरा। तेहि बन जाइहि करिहि न फेरा॥
हैं जो केस नग भँवर जो बसा। पुनि बग होहि जगत सब हँसा॥
सँबर सेव न चित करु सुवा। पुनि पछितासि अंत होइ भुवा॥
रूप तोर जग ऊपर लोना। यह जोबन पाहुन जग होना॥
भोग बेरास केरि यह बेरा। मानि लेहि पुनि को केहि केरा॥
उठत कोंप तरिवर जस तस जोवन तोहि रात।
तौ लगि रंग लेहु रचि पुनि सो पियर ओइ पात॥११॥

[इस अवतरण में पदमावती को यौवन का महत्त्व समझाते हुए इस बात पर बल दिया है कि उसे अपने यौवन का पूर्ण उपभोग करना चाहिए]

जीवन यौवन रूपी उन्मत्त हाथी पर चढकर आता है और उसके सिर पर श्याम क्षत्र छाया रहता है। यौवन के चले जाने पर वृद्ध का नाम मिलता है। बिना यौवन के सदैव थकी सी रहोगी अथवा सब स्थानो पर हेयता के भाव का अनुभव करती रहोगी। यौवन चले जाने पर फिर खोजने से भी नही प्राप्त होता है। वह उस

वन मे चला जायेगा जहाँ से लौटकर नही आता है। जिन नागरूपी केशों में भौंरा वसता है वे वगुले रूप हो जाते है और सारा संसार उन पर हँसता है। मन ! तोते के सदृश सैंवल की सेवा करने का विचार मत कर, नही तो अंत में जब उस पर भुए लगेंगे तब तो पश्चात्ताप करना होगा। तू संसार मे सबसे अधिक सुन्दर है। यह यौवन अतिथि के सदृश है जिसका जाना अवश्यम्भावी है। यह भोग विलास का समय है, मेरी बात मानले, फिर कौन किसका होता है।

जिस प्रकार वृक्ष मे कोपलें निकलती है उसी प्रकार तेरा रागपूर्ण यौवन उठ रहा है। जब तक यौवन का राग है विलास कर ले। उसके बाद वह पीले पत्ते के सदृश हो जायेगा।

टिप्पणी—मै मँत चढ़ा—इसका अर्थ दो प्रकार से किया जा सकता है—एक वाच्यार्थ है कि अरुण यौवन उन्माद रूपी उन्मत्त हाथी पर चढकर आता है। दूसरा वाच्यार्थ है कि यौवन कुच रूपी मैमंत हाथी पर चढ़कर आता है। यहाँ पर चेष्टा वैशिष्ट् यव्यंग्य है। यौवन की निरंकुशता और मदोन्मत्तता ही ध्वनित की गई है।

श्याम सिर छाता—वाच्यार्थ है कि उसके सिर श्याम छत्र रहता है। इसका लक्ष्यार्थ है कि यौवन विकार और वासना-युक्त होता है। यहाँ पर यौवन का वासना-धिक्य व्यंग्य है। यहाँ पर वाक्यगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है।

हाँहि जो केस नग भँवर जो बसा—इसका वाच्यार्थ है जिन नाग रूपी केशों में भ्रमर वसता है और व्यंग्यार्थ है कि यौवन में केश नाग के समान विषाक्त बनाने वाले और भ्रमर के समान काले होते हैं। केशों की विशालता और कालिमा ही यहाँ पर व्यग्य है।

पुनि बग होहिं—वाच्यार्थ है कि वे बाल फिर बगुला हो जाते है। यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से बालो की श्वेतिमा व्यंग्य है।

सेबर सेई न चित करु सुवाना—यहाँ पर स्वत.सम्भवी वस्तु से अलंकार व्यंजना है। वाच्यार्थ है कि तोते के सदृश सेवल की सेवा मन में मत धारण कर। व्यंग्यार्थ है कि रतनसेन के लिए जो बन्दी वन चुका है उसे अपने जीवन को तपस्या-मय बनाए रखना वैसा ही निरर्थक है जैसा कि तोते का सेवर की आस लगाए रखना निरर्थक होता है। यहाँ पर उपमा अलंकार व्यंग्य है।

पुनि सो पियर ओइ पात—वाच्यार्थ है कि अन्त मे वह पीला पत्ता हो जाता है। यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से कवि ने जीवन की नीरसता और दुर्बलता व्यंजित की है।

कुमुदिनि बैन सुनत हिय जरी। पदुमिनी उरहि आग जस परी॥
रँग ताकर हौं जारौ काँचा। आपन तजि जो पराएहि राँचा॥
दोसर करै जाइ दुइ बाटा। राजा दुइ न होहि एक पाटा॥
जेहि जउ प्रीत दिढ़ होई। सुख सोहाग सौ निबहा सोई॥

जोबन जाउ, जाउ, सो भँवरा। प्रिय की प्रीति सो जाइ न सँवरा॥
एहि जग जौं पिय करिहि न फेरा। ओहि जग मिलिहि सो दिन दिन हेरा॥
जोबन मोर रतन जहँ पीऊ। वलि सौंपौं यह जोबन जीऊ॥
भरथरि बिछुरि पिंगला आहि करत जिय दीन्ह।
हौं बिसारि जौ जियत हौं इहै दोष हम कीन्ह॥१२॥

[इस अवतरण मे कवि ने दूती के प्रवंचनापूर्ण वचनो के प्रत्युत्तर मे पदमावती से भर्त्सना कराई है।]

कुमुदिनी ने जलाने वाले वचन सुनाए। पदमावती के हृदय में वे अंगारे की भाँति लगे। वह कहने लगी, मैं उसके रचे हुए शृंगार को जलाने योग्य समझती हूँ। जो दूसरे को अपना बनाती है। वे दो मार्गो पर चलती हैं। एक सिंहासन पर दो राजा नही बैठ सकते। जिसके हृदय मे प्रियतम के प्रेम की सच्ची प्रवृत्ति जग उठती है तब समझना चाहिए कि जीवन सुख और सौभाग्य से व्यतीत होगा। मैं उस यौवन को धिक्कारती हूँ जिसमे प्रियतम के प्रेम की स्मृति व्यथित नही करती। यदि इस ससार मे प्रियतम नही मिलेंगे तो फिर उस ससार मे तो प्रतिदिन मिलन होगा ही। मेरा यौवन वही है जहाँ मेरा रतन रूप प्रियतम है। मैं प्रियतम पर न्योछावर होकर अपना यौवन और जीवन उन्हे समर्पित कर चुकी हूँ।

भर्तृहरि राजा के वियोग मे रानी पिंगला ने आहे भरते हुए प्राण त्याग दिए थे। मैं प्रियतम के वियोग मे अभी तक जीवित हूँ यही मेरा सबसे बड़ा अपराध है।

टिप्पणी—बैन सुनाए जरे—'जरे' पद मे अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। जरे का अर्थ यहाँ पर कटु है। वचनो की कठोरता ही यहाँ पर व्यंग्य है।

रँग ताकर हौं जारौं रचा—यहाँ पर रंग का अर्थ है रूप-रंग, साज-सज्जा-शृंगार आदि। यह अर्थ उपादान लक्षणा से लिया गया है। बनाव-शृंगार की अतिरेकता व्यंग्य होने के कारण यहाँ पर अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है।

दोसर करै जाइ दुइ बादा—व्यंजना है कि जो स्त्रियाँ व्यभिचार करती हैं वे कही की भी नही रहती। उन्हे न इस लोक मे सुख-शान्ति मिलती है और न उस लोक मे। यहाँ पर स्वत.सिद्ध वस्तु से वस्तु व्यंजना है।

राजा दुइ न होंहि एक पाटा—व्यंग्यार्थ है कि एक स्त्री के हृदय के दो आराध्य नही हो सकते। यह अर्थ वाक्यगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनिजन्य है।

जेहि जियँ पेम प्रीति दिन होई—वाक्य का अन्वय होगा कि जिस दिन हृदय मे प्रेम के प्रति प्रीति जाग्रत होती है उसी दिन समझना चाहिए कि जीवन सुख और सौभाग्यमय है। कवि यह व्यंजित करना चाहता है कि जब बाह्य आकर्षण पवित्र प्रेम की तीव्रानुरक्ति मे परिणत हो जाता है तभी समझना चाहिए कि सच्चा सुख सौभाग्य का दिन आया है।

जाउ सो भँवरा—यहाँ पर 'सो' शब्द में सवृति वक्रता और अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। 'भंवरा' पद मे पदगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। इसका अर्थ है काले केश। यौवन की पूर्णता और परिपक्वता ही यहाँ व्यंग्य है।

जोवन मोर रतन जहँ पीउ—यहाँ पर रतन शब्द मे शब्दशक्ति उद्भव अनुरणन ध्वनि है। यहाँ पर पर्याय ध्वनि और पर्यायवक्रता नामक विशेषताएँ है।

विसरि—शब्द वियोग के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।

भर्तृहरि और पिंगला—भर्तृहरि एक प्रसिद्ध योगी राजा थे। किसी योगी के उपदेश से उन्होने राज-पाट त्याग कर वैराग्य ग्रहण कर लिया था। उनकी रानी पिंगला ने उनके वैरागी हो जाने पर अपने प्राण रोते-रोते त्याग दिए थे।

पदुमावति ! सो कवनि रसोई। जेहि परकार न दोसर होई ॥
रस दोसर जेहि जीभ बईठा। सो पै जान रस खाटा मीठा ॥
भँवर बास बहु फूलन्ह लेई। फूल बास बहु भँवरन्ह देई ॥
तै रस परस न दोसर पावा। तिन्ह जाना जिन्ह लीन्ह परावा॥
एक चुल्लू रस भरै न हिया। जौ लहि नहिं भरि दोसर पिया ॥
तोर जोबन जस समुँद हिलोरा। देखि-देखि जिउ बूड़ै मोरा ॥
रंग और नहि पाइय वैसे। जरे मरे विनु पाउव कैसे ॥
देखि धनुक तोर नैना मोहि लागहिं विख बान।
बिहँसि कँवल जौ मानै भँवर मिलावौ आनि ॥१३॥

[पदमावती के पातिव्रत प्रधान वचनो को सुनकर दूती फिर उसे वहकाने का प्रयास करती है। इस अवतरण मे दूती के प्रवंचनापूर्ण शब्द ही संजोए गए हैं।]

दूती पदमामती को सम्वोधित करते हुए कहती है, हे रानी ! वह रसोई किस काम की जिसमे दूसरे प्रकार का भोजन न हो। जिसने दूसरा रस चखा है वही खट्टे और मीठे स्वाद को वता सकता है। भौरे अनेक फूलों की सुरभि लेते है और फूल अनेक भौरो को सुरभि देता है। तूने दूसरे रस की अनुभूति नही की है। दूसरे रस का आनन्द वही समझते है जिन्होने उसका रसास्वादन किया है। एक चुल्लू रस से हृदय (सागर) नही भरता है इसलिए दूसरे चुल्लू के जल का भी जी-भरकर पान करना चाहिए। तेरा यौवन समुद्र के सदृश हिलोरे ले रहा है। उसे देखकर मेरा मन डूवा जा रहा है। खाली वैठे रहने से दिन का भी अन्त नही मिलता। फिर तू जीवन का कैसे अन्त पायेगी। तेरे धनुप जैसे नेत्रो को देखने से ही मेरे विपवाण लगते है। हे कमल ! यदि हँसकर तू स्वीकार करे तो भौरे को लाकर तुझसे मिला दूँ।

टिप्पणी—पहली पक्ति मे यहाँ पर कवि यह व्यंजित करना चाहता है कि वह जीवन ही क्या है जिसमे दूसरे रस का आस्वादन नही किया जा सकता। अधिक

स्पष्ट शब्दो मे कवि का व्यंग्य है कि जीवन की सार्थकता परोपभोग में ही है। यहाँ पर वाक्यगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है।

दूसरी पक्ति मे भी व्यग्यार्थ है कि जीवन की सार्थकता उसी ने अनुभव की है जिसने परोपभोग किया है। यहाँ पर वाक्यगत अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है।

तीसरी पक्ति मे भी अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। जीवन मे परोपभोग की प्रवृत्ति की आवश्यकता व्यग्य है। कवि यह व्यजित करना चाहता है कि सहृदय व्यक्ति वही है जो विविध प्रकार से परोपभोग मे प्रवृत्त रहता है। यह बात केवल पुरुष के लिए ही नही स्त्री के लिए भी लागू होती है।

एक चूल्लू रस भरै न हिया—यहाँ पर 'एक चुल्लू' शब्द उपलक्षणात्मक है। इसका अर्थ है एक व्यक्तिकृत भोग। यह अर्थ अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से प्राप्त हुआ है।

छठी पक्ति मे असंगत अलंकार व्यंग्य है। यौवन रूपी समुद्र तो पदमावती का है और मन डूब रहा है दूती का। कार्य कारण की इस असगतता के कारण ही असंगत अलकार है।

सातवी पंक्ति का व्यग्यार्थ है कि खाली बैठे अकेले दिन काटना कठिन है तो फिर अकेले जीवन कैसे काटा जा सकता है। दूती यह व्यजित करना चाहती है कि रतनसेन सदा के लिए चला गया है, उसके छूटने की कोई आशा नही है इसलिए उसके लिए बैठा रहना व्यर्थ है क्योकि अकेले दिन भी नहीं कटता फिर जीवन की क्या बात है। अतएव दूसरे पुरुष को स्वीकार कर जीवन सफल करो।

देखि धनुक तोर नैना मोहि लागहिं बिखबान—यहाँ पर कवि प्रौढ़ोक्तिसिद्ध रूपक अलकार से चपलातिशयोक्ति अलंकार व्यंग्य है।

विहँसि कँवल जौं मानै भँवर मिलावौं आनि—यहाँ पर कँवल और भँवर शब्दो मे कवि प्रौढोक्तिसिद्ध वस्तु से वस्तु व्यजना है। व्यग्यार्थ है कि यदि पदमावती पर-पुरुषोपभोग की बात स्वीकार कर ले तो किसी रसिक प्रेमी को लाकर तुझसे मिला दूँ।

कुमुदिनि ! तूँ बैरिनि नहि धाई। मुँह मसि बोलि चढ़ावसि आई॥
निरमल जगत नीर कर नामा। जौं मसि परै सोउ होई स्यामा॥
जहँवाँ धरम पाप तहँ दीसा। कनक सोहाग माँझ जस सीसा॥
जो मसि परी भई ससि कारी। सो मसि लाइ देसि मोहि गारी॥
कापर महँ न छूट मसि अंकू। सो मोहि लाए ऐस कलंकू॥
स्यामि भँवर मोर सूरज करा। औरु जो भँवर स्याम मसि भरा॥
कँवल भँवर रवि देखै आँखी। चन्दन बास न बैठे माँखी॥

स्यामि समुँद मोर निरमल रतनसेनि जग सेनि।
दोसर सरि जौ कहावै तस बिलाइ जस फेनि ॥१४॥

[इस अवतरण मे कवि ने कुमुदिनि नामक दूती के 'विहसि कँवल जौ मानै भँवर मिलावौ आनि' वचनो पर पदमावती के रोष और प्रतिकारपूर्ण प्रत्युत्तर का प्रस्तुतीकरण किया है।]

पदमावती दूती से कहती है—हे कुमुदिनी! तू धाय नही, मेरी बैरिन है। तू अपने वचनों से मेरे मुख पर स्याही पोतने आई है। ससार में जल बड़ा निर्मल माना जाता है, उसमे भी स्याही की बूद पड़ जाती है तो वह काला पड जाता है। जहाँ धर्म है वहाँ यदि कोई पाप आ जाता है तो प्रत्यक्ष दीख जाता है, जैसे सोने मे सुहागा मिलाने से जस्त या शीशे का भाग अलग हो जाता है। श्यामता पड़ने से सुन्दर चाँद भी कलंकित पडने लगता है, वही श्यामता लगाकर मुझे भी कलंकित करना चाहती है। कपड़े पर पडा हुआ स्याही का दाग नही छूटता है, तू मेरे ऐसा ही दाग लगाने आई है। मेरा पति रूपी भँवर सूर्य की किरण के समान जाज्वल्यमान है और जितने भँवर है वे सब स्याही से काले है अर्थात् पाप रूप है। कँवल के समान मैं रवि के समान अपने पति को पाकर ही प्रफुल्लित हो सकती हूँ। जहाँ चन्दन की सुगन्ध होती है वहाँ मक्खी नही बैठती अर्थात् चन्दन के समान सुरभि वाली मुझ पदमावती के पास पाप नही आ सकता है।

मेरा पति समुद्र के समान गम्भीर और निर्मल है। रतनसेन ससार मे बाज पक्षी की तरह है। यदि कोई दूसरा उसकी बराबरी करना चाहेगा तो वह उसी प्रकार नष्ट हो जायेगा जिस प्रकार फेन नष्ट हो जाता है।

टिप्पणी—कुमुदिनि तूँ बैरिनि नहिं धाई—यहाँ पर अपह्नुति अलकार है।

मुँह मसि बोलि चढावै आई—यहाँ पर चतुर्थ विभावना अलंकार है। साथ-ही-साथ अत्यन्त तिरस्कृत वाक्यगत वाच्य ध्वनि है। यहाँ पर वचनो द्वारा मुँह पर कालिमा पोतने का वाच्यार्थ सर्वथा बाधित है। लक्ष्यार्थ है कि अपने वचनो से तू कलकित न कर। प्रयोजन रूप व्यग्य है। हमारी स्वच्छ कीर्ति और पातिव्रत धर्म की हत्या की कामना न कर। इस प्रकार वाक्य का अर्थ अत्यन्त तिरस्कृत हो जाता है। प्रथम दो पंक्तियो मे दृष्टान्त अलकार है।

तीसरी पक्ति मे उपमा अलंकार है।

चौथी पक्ति में हेतूत्प्रेक्षा और सम्बन्धातिशयोक्ति सकर मालूम पडता है।

सो मसि—'सो' मे सवृति वक्रता है।

छठी पक्ति मे रूपकातिशयोक्ति अलंकार है। यहाँ पर गौणी साध्यवसाना प्रयोजनवती लक्षणा है। इस पक्ति मे वाक्यगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि भी है। लक्ष्यार्थ है कि अपने पति की तेजस्विता और दूसरे पुरुषो की कलकरूपता। व्यग्यार्थ है कि हमारा धीर ललित पति मुझ कमल के लिए प्रफुल्लित करने वाला है और दूसरे

कलंकित करने वाले हैं।

सातवी पक्ति के पूर्वार्द्ध मे रूपकातिशयोक्ति अलंकार है। सम्पूर्ण पंक्ति मे अर्थान्तरन्यास व्यंग्य है।

दोहे मे पदगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। यहाँ पर पति रूपी श्याम को समुद्र कहा गया है जो नही हो सकता। अतः लक्षण लक्षणा से अर्थ लिया गया कि मेरा निष्कलंक पति महान् पराक्रमी है। प्रयोजन रूप व्यग्य है कि कोई भी अन्य पुरुष उसकी पत्नी को नही पा सकता है।

पदुमिनि ! विनु मसि वोलु न वैना। सो मसि चित्र दुहूँ तोर नैना ॥
मसि सिंगार काजर सव वोला। मसि क बुँद तिल सोह कपोला ॥
लोना सोइ जहाँ मसि रेखा। मसि पुतरिन्ह निरमल जग देखा ॥
जो मसि घालि नैन दुहुँ लीन्ही। सो मसि वेहर जाइ न कीन्ही ॥
मसि मुद्रा दुहुँ कुच उपराही। मसि भँवरा जस कँवल वसाहीं ॥
मसि केसन्हि मसि भौहँ उरेही। मसि विनु दसन सोभ नहिं देही ॥
सो कस सेत जहाँ मसि नाही। सो कस पिंड न जेहि परिछाही ॥
असं देवपाल राउ मसि छत्र धरा सिर फेरि।
चितउर राज विसरि गा गइउँ जो कुंभलनेरि ॥१५॥

[इस अवतरण मे दूती पदमावती को देवपाल की ओर आकृष्ट करती हुई दिखाई गई है। इससे पूर्व के अवतरण मे कुमुदिनी नामक दूती के प्रवञ्चनापूर्ण वचनों के प्रत्युत्तर मे पदमावती ने कहा है, 'मुँह मसि वोलि चढावै आई' अर्थात् तू अपने वचनों से मेरे मुँह पर स्याही पोतने आई है। प्रस्तुत अवतरण मे कवि ने दूती के मुख से पदमावती के वचनो का प्रतिकार कराया है।]

दूती कहती है, हे पदमावती ! तू स्याही की वात मत कर। उसी श्यामता के कारण ही तेरे दोनो नेत्र सुन्दर है। स्याही रूप काजल शृंगार माना गया है। श्यामता का विन्दुरूप तिल मुख की शोभा होता है। पुरुष भी वही आकर्षक होता है जिसकी मसि रेखा स्पष्ट हो चलती है। पुतलियो मे भी वही श्यामता दोनो नेत्रों मे है, उसको अपने से अलग कैसे किया जा सकता है। तुम्हारे दोनो स्तनो पर भी श्याम मोहर लगी हुई है, वह श्यामता ऐसे शोभायमान होती है जैसे कमलो पर भौरे वैठे हो। केशो मे भी श्यामता और भौहो मे श्यामता उरेही हुई है। श्यामता के विना दाँत भी अच्छे नही लगते। वह श्वेतिमा ही क्या जिसमे श्यामता न हो। वह पिंड ही कैसा जिसकी परछाई न पडती हो।

राजा देवपाल मे भी ऐसी ही शोभावर्धक श्यामता है। उसके मस्तक पर छत्र लगा हुआ है अर्थात् वह एक स्वतन्त्र राजा है। मै उसके राज कुम्भलनेर मे जाकर इतना मुग्ध हो गई कि चित्तौड़ की सुध ही भूल गई।

टिप्पणी—बोलु—यहाँ पर पद शब्द श्लिष्ट है। बोल का एक अर्थ है बात और दूसरा अर्थ है एक विशेष प्रकार का गोंद जो काजल मे मिलाया जाता है। यहाँ पर प्रथम अर्थ ही प्रधान है। यहाँ पर पदगत शब्दशक्ति से सलक्ष्यक्रम वस्तु ध्वनि है।

मसि सिंगार—सोलह शृगारो मे काजल की भी गणना की गई है इसलिए कवि ने काजल को शृंगार रूप कहा है।

मसि रेखा—यौवनारम्भ मे पुरुषो के मुख पर मूँछों की जो श्यामता दिखाई देने लगती है उसे मसि रेखा कहते है।

मसि पुतरिन्ह निरमल जग देखा—यहाँ पर पचम विभावना अलकार है। विरुद्ध कारण द्वारा कार्य का होना बताया गया है।

मसि भँवरा जसि कँवल बसाहीं—यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलंकार है।

अस—यहाँ पर संवृति वक्रता है।

सुनि देवपाल जो कुभलनेरी। कँवल जो नैन भँवर धनि फेरी॥
मोरे पिय क सतुरु देवपालू। सो कत पूज सिघ सरि भालू॥
दोख भरा तन चेतनि कैसा। तेहि क सदेस सुनावहि बेसा॥
सोन नदी अस मोर पिप गरुवा। पाहन होइ परै जौ हरुवा॥
जेहि ऊपर अस गरुवा पीऊ। सो कस डोल डोलाएँ जीऊ॥
फेरत नैन चेरि सौ छूटी। भै कूटनि कुटनी तसि कूटी॥
कान नाक काटे, मसि लाई। वहु रिसि काढि दुबार नँघाई॥
मुहमद गरुए जो विधि गढ़े का कोई तिन्ह फूँक।
जिनके भार जगत थिर उड़हि न पवन के झूँक॥१६॥

[इस अवतरण मे कुटिनी दूती के रहस्योद्घाटन हो जाने पर सखियो द्वारा उसकी पिटाई का बड़ा सुन्दर चित्र खीचा है।]

कुभलनेरी देवपाल का नाम सुनते ही पदमावती के कमलरूपी नेत्रों की भ्रमर के सदृश चपल और काली पुतलियाँ क्रोध से तिरछी हो गई। वह बोली, देवपाल मेरे पति का शत्रु है, वह भालू सिह की समता कैसे कर सकता है। उसका शरीर भी उसी प्रकार दोपों से भरा है जैसा कि राघव चेतन का भरा हुआ था। हे वेश्या, तू मुझसे उसका सन्देश क्यो सुनाती है। मेरा पति सोने की नदी के सदृश मूल्यवान और गम्भीर है। उसमे जो हल्की चीज पडती है वह पत्थर हो जाती है। जिसके ऊपर इतना महान् पत्ति है उसका जी डुलाने से भी कैसे डोल सकता है। पदमावती ने ज्योही आँखे तिरछी की त्योही उसके रुख को जानकर दासियाँ दौड पड़ी और उन्होने उसे वैसे ही कूट डाला जैसे कोई सिल को कूटता है। उन्होने उसके

कान-नाक काटकर मुह पर स्याही पोत दी और क्रोध से उसे राजद्वार के बाहर निकाल दिया।

मोहम्मद कवि कहते है जिन्हें परमात्मा ने गौरवयुक्त बनाया है उन्हें कोई फूंक से नही उड़ा सकता। जिन पर्वतों के भार से संसार टिका हुआ है वे हवा के झोके से नही उड़ा करते।

टिप्पणी—कँवल जो नैन भँवर धनि फेरी—इसमें उपमा और रूपकातिशयोक्ति अलंकार है। 'कँवल जो नैन' में उपमा है और 'भँवर धनि फेरी' मे रूपकातिशयोक्ति है।

सोन नदी—सम्भवतः यहाँ पर फारसी काव्य में उल्लिखित जरफशां नदी की ओर संकेत है। यह नदी आमू नदी के उत्तर और सिर दरिया के दक्खिन प्रदेश मे बहती है। इसके सम्बन्ध मे कवि प्रसिद्धि रही है कि इसके बालू मे और तलहटी मे सोना रहता था इसलिए उसे सोने की नदी भी कहते थे।

संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों मे शैलोदा नदी का एक नाम आया है। इसके सम्बन्ध मे यह संकेत मिलता है कि इसके बालू के कणों मे सोने के कण रहते थे और इसके जल मे जो चीज पड़ जाती थी वह पत्थर बन जाती थी।

चौथी पंक्ति मे प्रयोजनवती लक्षणा के आश्रय से यह व्यंजित करने की कोशिश की है कि रतनसेन जितना अधिक गौरवशाली है कुंभलनेरी देवपाल उतना ही अधिक तुच्छ है।

बादशाह दूती खण्ड

रानी धरमसार पुनि साजा। बंदि मोख जेहिं पावैं राजा ।।
जाँवत परदेसी चलि आवहि। अन्न दान औ पानी पावहि ।।
जोगी जती आव जेत कथी। पूँछै पियहि जान कोइ पथी ।।
देत जो दान बाँह भइ ऊँची। जाहि साहि पहँ बात पहूँची ।।
पातर एक हुती जोगि सुवाँगी। साहि अखारें हुति ओहि माँगी ।।
जोगिनि भेस बियोगिनी कीन्हा। सिगी सबद मूल तँतु लीन्हा ।।
पदमिनि कहँ पठई कै जोगिनि। बेगि आनु कै बिरह बियोगिनि ।।
चतुर कला मन मोहनि परकाया परवेस।
आइ चढ़ी चितउर गढ़ होइ जोगिनि के भेस ।।१।।

[इस अवतरण में कवि ने विरहिणी रानी की धर्मपरापणता और बादशाह द्वारा भेजी गई दूती के दूत कर्म का वर्णन किया है।]

राजा कारागार से मुक्त हो जाए इस कामना से रानी पदमावती ने धर्मशाला की आयोजना की। जितने परदेसी आते थे वहाँ उन्हे दूध और अन्न दिया जाता था और उसमे जितने भी जोगी-जती और कंथी आते थे उनसे वह पूछती थी क्या पथिक मेरे प्रियतम को जानता है? दान देती-देती रानी की दानशीलता की बडी ख्याति हो गई। यह ख्याति बादशाह के कानो तक पहुँची। उनके यहाँ एक ऐसी वेश्या थी जो जोगिन का वेप धारण करने में बडी निपुण थी। बादशाह ने रगशाला से उसे बुलवाया और (सारा कार्य समझा दिया) उस वेश्या ने एक वियोगिनी जोगिन का रूप धारण कर लिया। उसने सिंगी नाद, मूलाधार साधना और किंगरी धारण कर रखी थी। इस प्रकार उस वेश्या को जोगिनी वेष मे पदमावती के पास भेजा और उसे आज्ञा दी कि विरहिणी पदमावती को किसी प्रकार बहका कर ले आए।

वह वेश्या जो मन मोहने की कला मे निपुण थी दूसरो के शरीर मे प्रवेश की कला में भी निपुण थी। जोगिनी चित्तौड़गढ़ मे आकर प्रविष्ट हुई।

टिप्पणी—धर्मसार—सदाव्रत आश्रम।

जोगी—नाथ पंथी साधु। यह वैष्णव साधु की एक कोटि है। ये लोग कौपीन, कंथा और दण्डमात धारण करते थे।

बाँह भई ऊँची—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। व्यंग्यार्थ है कि दानशीलता मे उसकी कीर्ति सर्वत्र फैल गई।

परकाया परवेश—मध्य युग मे योगी लोग परकाय प्रवेश विद्या मे बडे ही निपुण हुआ करते थे। इससे सम्बन्धित बहुत-सी दन्त कथाएँ प्रचलित है। शंकराचार्य के सम्बन्ध मे कहते है कि वे मण्डनमिश्र की पत्नी के कामशास्त्रीय प्रश्नो के उत्तर देने के लिए अपना शरीर त्यागकर एक मृत राजा के शरीर मे प्रविष्ट हुए थे और उसकी रानियो मे रहकर उन्होने कामशास्त्र का अध्ययन किया था। यहाँ पर परकाया प्रवेश अपने साधारण अर्थ मे प्रविष्ट हुआ है। इसका सामान्य अर्थ है दूसरे के मन मे बैठने मे निपुण अर्थात् मनोविज्ञानवेत्ता होना।

पातर—यह संस्कृत पात्र से बना है और यह नर्तकी या वेश्या के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।

मूल तन्तु—डा० अग्रवाल ने इसका अर्थ शिव लिया है किन्तु मेरी समझ में मूल तन्तु तन्तु से बनी हुई किंगरी के लिए प्रयोग होता है।

अखारे—रगशाला।

माँगत राजबार चलि आई। भीतर चेरिन्ह बात जनाई॥
जोगिनि एक बार है कोई। माँगै जैस बियोगिनि होई॥
अबहि नवल जोबन तप लीन्हे। फारि पटोरा कंथा कीन्हे॥
बिरह भभूति जटा बैरागी। छाला काँध जाप कँठ लागी॥
मुंद्रा स्रवन डँड न थिर जीऊ। तन तिरसूल अधारी पीऊ॥
छात न छाँह धूप जस मरई। पाय न पाँवरि भूँभुरि जरई॥
सिगी सबद धँधारी करा। जरै सो ठाँउ पाँउ जहँ धरा॥
　　किंगिरी गहें बियोग बजावै बरहि बार सुनाव।
　　नैन चक्र चारिहुँ दिसि हेरै दहुँ दरसन कब पाव॥२॥

[इस अवतरण में चित्तौड़गढ के राजमहल मे देवपाल की दूती के आगमन की चर्चा की गई है।]

वह दूती भिक्षा माँगती हुई राजद्वार तक आ पहुँची, दासियो ने उसके आगमन का समाचार पदमावती को दिया। उन्होने कहा हे महारानी! द्वार पर जोगिनी आई है और ऐसे भिक्षा माँग रही है जैसे वियोगिनी हो। नव-यौवन की अवस्था मे भी उसने तपस्या धारण कर ली है। उसने अपना मूल्यवान विवाहकालीन रेशमी वस्त्र फाड़कर जोगियो का कंथा बना लिया है। विरह मे उसने मभूत धारण कर रखी है। उसने वैरागियो की सी जटाएँ धारण कर रखी हैं। उसके कन्धे पर मृगछाला है। अनवरत जप ही उसके कठ की माला है। कानो मे मुद्राएँ पहने हुए है। उसका चंचल मन ही दण्ड है। अपने तन को उसने त्रिशूल और प्रियतम के ध्यान को अधारी बनाया

है। उसके पास छाता नही है। वह धूप मे ही कष्ट उठाती रहती है। उसके पैर भूभल मे जलते रहते है किन्तु वह खड़ाऊँ नही पहनती है। वह सिंगीनाद पूरती रहती है और हाथ मे धंधारी (गोरख धन्धा) धारण किए हुए है, उसकी विरह ज्वाला से वह स्थान भी जल उठता है जहाँ वह चरण रखती है।

वह हाथ मे किंगरी लिए हुए है, विरह का राग अलाप रही है और बार-बार उसी को सुनाती है। वह नेत्रो की पुतलियो को चारो ओर घुमा-घुमा कर देखती है न जाने कब उसे अपने प्रियतम के दर्शन हो जाएँ।

टिप्पणी—मुद्रा—नाथपथी योगी कान में हिरण के सीग, मिट्टी अथवा किसी धातु के कुण्डल को धारण करते है, इसे वे मुद्रा कहते है।

पटोरा—यह एक प्रकार का रंगीन रेशमी वस्त्र होता था, लहंगे आदि इसी के बनाए जाते थे।

डंड न थिर जीउ—योग ग्रंथो में योगी के तीन प्रकार के दण्डो का उल्लेख मिलता है। काय दण्ड, वायु दण्ड, और मनोदण्ड। यहाँ पर मनोदण्ड के धारण करने की बात कही गई है। मन चंचल होता है, जो उसे धारण करता है वही सच्चा योगी होता है।

तन त्रिसूल—योगी का शरीर त्रिशूलाकार होता है, इसी साम्य के आधार पर शरीर को त्रिशूल कहा गया है।

अधारी—काठ के डण्डे में एक पीठा लगा रहता है। योगी लोग इसे सभी स्थानों पर लिए फिरते है और जहाँ आवश्यकता होती है वहाँ रख कर बैठ जाते है। इसी को अधारी कहते है।

सिंगी सबद—नाथपंथियो में सीग के बने हुए बाजे पर नाथ पूरने की प्रथा रही है। इसी को सिंगी सबद या सिंगी नाथ कहते है।

धँधारी—यह एक प्रकार का चक्र है। गोरखपथी इसे अपने पास रखते थे। यह लकड़ी या लोहे की शलाकाओ से विविध प्रकार से घुमाकर बनाया जाता था। उसके बीच में छेद रहते थे। उसके बीच मे कौड़ी या डोरा डाला जाता था फिर मन्त्र पढ़ कर निकालते थे। जो उसकी क्रिया को नही जानता था वह उसे नही निकाल पाता था, इसी को कुछ लोग गोरखधन्धा भी कहते है।

जरै सो ठाउँ पाँउ जहँ धारा—यहाँ पर अक्रमातिशयोक्ति अलंकार है। यहाँ पर कवि प्रौढ़ोक्ति-मात्र सिद्ध वस्तु से वस्तु ध्वनि है। स्थान के जलने रूप वस्तु से विरह की अतिशयता रूप वस्तु व्यंग्य है।

किंगिरी—किंगिरी एक प्रकार का बाजा है जिसे भर्तृहरि के अनुयायी लिए रहते है और उस पर आध्यात्मिक विरह और वैराग्य के गीत गाया करते है।

विरह बजावे—यहाँ पर उपादान लक्षणा से अर्थ है कि वह विरह के गीत बजाती है।

सुनि पदमावति मँदिर बोलाई । पूँछी कवन देस सो आई ।।
तरुनि बैस तुम्ह छाज न जोगू । केहि कारन अस कीन्ह वियोगू ।।
कहेसि विरह दुख जान न कोई । विरहिन जान विरह जेहि होई ।।
कंत हमार गएउ परदेसा । तेहि कारन हम जोगिनि भेसा ।।
काकर जिउ जोबन औ देहा । जौ पिउ गएउ भएउ सब खेहा ।।
फारि पटोर कीन्ह मैं कंथा । जहं पिउ मिलै लेहु सो पंथा ।।
फिरा करौं चहुँ चक्र प्रकारा । जटा परी को सीस सँभारा ।।
हिरदै भीतर पिउ बसै मिलै न पूँछौ काहि ।
सून जगत सब लागै पिय बिनु किछौ न आहि ।।३।।

[पदमावती ने दूती को बुलाकर सारा हाल-चाल पूछा । इस अवतरण में दूती द्वारा दिए गए पदमावती के प्रश्नो के प्रत्युत्तर है ।]

उसकी रूपरेखा सुनकर रानी ने दूती को अपने पास बुला लिया और उससे पूछा 'तू किस देश से आई है । तू अभी युवती है, तुझे योग शोभा नही देता । किस कारण ऐसी वियोग दशा बनाई है ।' वह बोली—विरह का दुःख कोई नही जानता । वह विरही ही जानता है जो विरह दु ख भोग रहा है । मेरे पति परदेस गए हुए हैं । इसीलिए हमने जोगिनी का भेप बनाया है । यह यौवन और शरीर किसका होता है ? जब प्रियतम चले जाते है तो सब मिट्टी हो जाता है । पटोर को फाड़ कर मैंने कन्था बनाया है । जिधर प्रियतम के मिलने की आशा होती है उधर ही दौड़ जाती हूँ । चारो दिशाओ में मैं पुकारती फिरती हूँ । बालो की जटाएँ बन गई हैं सिर को कौन सम्भाले ।

हृदय के अन्दर प्रियतम बसते है किन्तु उससे भेट नही होती । उससे मिलने का उपाय किससे पूछूँ । सब संसार शून्य लगता है, प्रिय के बिना सब कुछ निरर्थक और सारहीन है ।

टिप्पणी—काकर जिउ जोवन औ देहा—प्रियतम वियोग में विरही को अपना जीवन निरर्थक और सारहीन प्रतीत होता है । यहाँ पर काकु ध्वनि है । प्रिय वियोग मे जीवन की पूर्ण निस्सारता यहाँ व्यंग्य है ।

भएउ सब खेहा—वाच्यार्थ है कि सब कुछ मिट्टी हो गया । अत्यत तिरस्कृत वाच्य ध्वनि रूप अर्थ हुआ सब कुछ निस्सार हो गया ।

हृदय भीतर''''''आहि—यहाँ हृदयस्थ रहस्यपूर्ण ब्रह्म का वर्णन किया गया है । एक रहस्यवादी की प्रियतम सम्बन्धी भावना की रहस्यपूर्ण अभिव्यक्ति की गई है । सूफियो का परमात्मा सगुण होते हुए भी हृदयस्थ होता है । सूफी रहस्यवादी के उपास्य के स्वरूप के सम्बन्ध मे अण्डर हिल ने लिखा है कि रहस्यवादी का परमात्मा प्यार

करने योग्य है, प्राप्त करने योग्य है, सजीव और व्यक्तिगत होता है। उपर्युक्त पंक्ति मे रहस्यवादी प्रियतम की सभी विशेपताएँ व्यक्त की गई है।

स्रवन छेदि मुंद्रा मै मेले। सवद ओनाऊँ कहाँ दहुँ खेले ।।
तेहि वियोग सिंगी नित पूरौ। बार-बार होइ किगरी झूरौ ।।
को मोहिं लै पिउ के डँड लावै। परम अधारी बात जनावै ।।
पाँवरि टूटि चलत गा छाला। मन न भरै तन जोवन वाला ।।
गइँउ पयाग मिला नहिं पीऊ। करवत लीन्ह दीन्ह बलि जीऊ ।।
जाइ बनारसि जारिउँ कया। पारिऊँ पिउँ निवँहुरे गया ।।
जगन्नाथ जगरन कै आई। पुनि दुवारिका जाइ अन्हाई ।।
जाइ केदार दाग तन कीन्हेउ तहँ न मिला तिन्ह आँक।
ढूँढ़ि अजोध्या आइउँ सरग दुवारी झाँकि ।।४।।

[इस अवतरण मे कवि ने जोगिनी के वेष मे वियोगिनी दूतिका की प्रपंच भरी उक्तियाँ सकलित की है।]

वह दूतिका कहती है—'कानो को छिदवाकर मैंने मुद्रा पहन ली है। मैं प्रियतम के शब्द को सुनने के लिए कान किए रहती हूँ, पता नही वह कहाँ पर रम रहा है। उसके वियोग मे मैं नित्य सिंगी नाद पूरती हूँ। द्वार-द्वार पर जाकर किंगरी बजाती हुई मुरझाई रहती हूँ। ऐसा गुरु कौन है जो मुझे ले जाकर प्रिय के मार्ग मे लगा देगा और उसका सन्देशरूपी अधारी हमारे हाथ मे दे देगा। चलते-चलते टाँगे टूट गई और पैरो मे छाले पड़ गए किन्तु बाला के यौवन परिपूर्ण शरीर में मन किसी प्रकार नही मरा। वह कहती है मैं प्रयाग भी हो आई। किन्तु प्रियतम से भेंट नहीं हुई। काशी मे जाकर मैंने करपत्र साधना भी की और जीवन की बलि भी दी। वाराणसी में तपस्या करके मैंने शरीर भी दग्ध किया, फिर गया जाकर पिडो की पारणा की और स्नान किया। हर प्रकार से प्रियतम की खोज की। जगन्नाथ मे जाकर के प्रियतम की खोज मे जागरण भी किया फिर द्वारिका मे जाकर के स्नान किया और उस प्रियतम की खोज की किन्तु वह नही मिला।

आगे वह फिर कहती है—मैने केदारनाथ जी मे जाकर के शरीर दग्ध कराया किन्तु वहाँ पर भी उस प्रियतम का कोई चिन्ह न मिला। मैंने अयोध्या में जाकर सरग द्वारी नामक स्थान तक जाकर उसकी खोज की किन्तु वह नही मिल सका।

टिप्पणी—मुद्रा—नाथ पंथियो की गोरखनाथी शाखा के साधुओ मे यह प्रथा है कि वे लोग कान फड़वाकर मुद्रा धारण करते है। यह मुद्रा प्राय: हाथी के दाँत की होती है। कुछ साधु विभिन्न धातुओं की मुद्रा भी धारण करते हैं। अधिक धनी साधु सोने तक की धातु की मुद्रा धारण करते है। मुद्राधारी भी दो प्रकार के होते हैं—एक

दर्शनधारी और दूसरे कुण्डलधारी। दर्शनधारी साधु दर्शनी कहलाते है और ये कुण्डलधारियो से ऊँचे समझे जाते है। कान फड़वाकर कुण्डलधारण करने वाले कुण्डल-धारी कनफडा भी कहे जाते है। कान फड़वाने की प्रथा को किसी महात्मा ने जन्म दिया। इस सम्बन्ध मे विविध किम्वदन्तियाँ है। एक किम्वदन्ती के अनुसार इस प्रथा का श्रीगणेश मत्स्येन्द्रनाथ जी ने किया था। कुछ दूसरे लोगो का कहना है कि इस प्रथा के प्रवर्तक जालन्धरनाथ जी थे। कुछ दूसरे लोगों के मतानुसार इस प्रथा के जन्मदाता गोरखनाथ जी थे। इनका कहना है कि गोरखनाथ जी ने सबसे पहले अपने भक्त भरथरी के कान फड़वाए थे और मुद्रा धारण की थी। यह मुद्रा मिट्टी की थी। बाद मे धातु या हिरण के सीग की मुद्रा धारण करने की प्रथा चल पड़ी। इस प्रकार नाथपंथियो में मुद्रा की बडी प्रतिष्ठा है।

सबद……ओनाउँ—नाथपंथी साधुओ मे जिस प्रकार मुद्रा का महत्त्व है उसी प्रकार नाद का महत्त्व है। नाद को ही शब्द कहते हैं। ये लोग हठयोगी होते है और हर समय अनहद नाद सुनने के लिए कान उठाए रहते है।

सिंगी पूरौ—नाथपन्थियो में सींग का बाजा धारण करने की प्रथा भी है। इसी को सिगीनाद कहते है। इस सीग के बाजे को बजाकर वे अपने पंथ का सन्देश सुनाते है। इसे वे सिगी पूरना कहते है।

बारबार—इसका अर्थ है द्वार-द्वार।

किंगरी झूरौं—झूरना का अर्थ मुरझाना भी होता है और स्मरण करना भी होता है। किगरी एक बाजा होता है जो नाथपंथी लोग धारण करते थे। किंगरी बजा-बजाकर ईश्वर का स्मरण करना या मुरझाना सहज कार्य था।

दण्ड—इसका अर्थ होता है गली या मोहल्ला। रामचन्द्र शुक्ल की पुस्तक में दण्ड के स्थान पर कण्ठ पाठ है जो अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

इस अवतरण मे कवि ने तीर्थों की अनुपयोगिता का वर्णन किया है। कवि ने यह व्यजित करने की चेष्टा की है कि कोई भी साधक तीर्थयात्रा करके अपने पर-मात्मा से भेंट नही कर सकता।

अधारी—अधारी नाथपंथियो में एक प्रकार की छडी होती है जिसका उन्हें बडा सहारा रहता है। यहाँ पर यह शब्द श्लिष्ट सा है जिसका एक अर्थ है सहारा देने वाला और दूसरा अर्थ है अधारी नाम डंडा है।

आँक—चिन्ह।

सरग दुआरी—यह अयोध्या मे एक विशेष गुप्त स्थान है जिसके दर्शन से विशेष पुण्य की प्राप्ति मानी जाती है।

बन-बन सब हेरेउँ बनखंडा। जल-जल नदी अठारह गंढ़ा॥
चौसठि तिर्थ कीन्ह सब ठाउँ। लेत फिरौ ओहि पिय कर नाऊँ॥

ढीली सब हेरेउँ तुरकानू । औ सुलतान केर बँदिवानू ।।
रतनसेनि देखेउँ बँदि माहाँ । जरै धूप खिन पाव न छाँहा ।।
का सो भोग जेहि अन्त न केऊ । एहि दुख लिहें भई सुखदेऊ ।।
सब राजा बाँधे औ दागे । जोगिनि जानि राजा पाँ लागे ।।
दिल्ली नाउँ न जानहिं ढीली । सुठि बँदि गाढ़ न निकसै कीली ।।
देखि दगध दुख ताकर अबहूँ कया न जीउ ।
सो धनि जियत किमि आछै जेहिक असै बँदि पीऊ ? ।।५।।

[इस अवतरण मे वियोगिनी जोगिनी अपने प्रियतम की खोज की कथा का विस्तार कर रही है और इसी व्याज से वह राजा रतनसेन के बन्दी स्वरूप की दयनीय अवस्था का वर्णन करती है ।

वह कहती है मैंने प्रत्येक वन के प्रत्येक भाग को अच्छी तरह से ढूढ़ा । प्रत्येक नदी-नाले और उनकी सभी सहायक नदियो को अच्छी तरह से खोजा । इस प्रकार चौसठों तीर्थ खोज डाले परन्तु प्रियतम नही मिला और मैं उसका नाम रटती हुई घूम रही हूँ । सम्पूर्ण तुर्कों के निवासस्थानों को ढूंढ डाला । सुलतान के बन्दीखाने को भी देखा । उसी बन्दीखाने मे मैंने रतनसेन को भी बन्दी रूप मे देखा । वह बेचारा धूप में ही झुलसा करता है । उसे क्षणभर भी छाँह नही मिलती । वह भोग भी किस काम का जिसमें प्रियतम साथ न हो । इसी दुःख से पराभूत होकर मैं सुखदेव के समान अनिकेत बैरागिनी हो गई हूँ । राजा रतनसेन को वहाँ पर सबने दग्ध करके बाँध रखा था । मैंने राजा को पहचान कर प्रणाम किया । यद्यपि दिल्ली का नाम ढीली है किन्तु वहाँ पर ढीलापन किसी बात मे नहीं दीखा । वहाँ का बन्दीखाना बड़ा मजबूत है । उसकी अरगला कभी नही निकलती ।

उसके दग्ध किए जाने के दुःख को देखकर आज भी हमारे शरीर मे प्राण नही है अर्थात् आज भी मै दु.ख से कातर हूँ । वह स्त्री न मालूम कैसे आज भी जीवित है जिसका प्रियतम इस प्रकार कठोर बन्दीगृह में पडा हुआ है ।

टिप्पणी—अठारड गंडा—परम्परा के अनुसार समुद्र मे अठारह गंडा नदियाँ मिलती हैं । गंडा का अर्थ पूर्वी भाषा मे होता है चार । अठारह को चार से गुणा कर देने से बहत्तर संख्या आ जाती है । यह संख्या नदियो की मानी जाती थी । विद्वानो की धारणा थी कि प्रमुख नदियाँ बहत्तर है । सम्भवत. इसी आधार पर योगशास्त्र में मानव शरीर में बहत्तर और उन्हीं का विस्तार करके बहत्तर हजार नाडियो की कल्पना की गई है। यह सख्या केवल औपचारिक ही मानी जाएगी जिसका सामान्य अर्थ 'अनेक' लिया आएगा ।

चौसठ तीर्थ—हिन्दुओं की धारणा है कि प्रमुख तीर्थ चौसठ हैं । यह संख्या भी औपचारिक ही है । इसका सामान्य अर्थ सभी तीर्थ लिया जाएगा ।

चौथी पंक्ति के वाद शुक्ल जी के पाठ मे हमारे पाठ की छठी पंक्ति आई है और हमारे पाठ की छठी पंक्ति शुक्ल जी के पाठ की पाँचवी पंक्ति है।

पांचवी पंक्ति का उत्तरार्द्ध का पाठ शुक्ल जी मे निम्न प्रकार से है—'यह दुख लेइ सो गएउ सुखदेऊ' पूरी पंक्ति का अर्थ थोड़ा-सा विवादग्रस्त है। हमारी समझ में उसका सीधा-सादा अर्थ है—वह भोग किस काम का जिसका कोई शुभ परिणाम न हो। भोग की निस्सारता को ही समझ कर सुखदेव जी ने भोग का परित्याग कर दु.ख अपनाया था और वैराग्य करके कही भी दो घडी नही ठहरते थे। यह अर्थ शुक्ल जी के पाठ का है।

सुखदेव जी के सम्वन्ध में कहते हैं कि वे दो घड़ी से ज्यादा कही नही ठहरते थे। जोगिनी के इस कथन की व्यंजना है कि मैं भी सुखदेव जी के समान सुख की नि:सारता समझ कर दो घड़ी कही नही ठहरती हूँ।

अबहूँ कया न जीऊ—यहाँ पर लक्षण-लक्षणा से कवि ने अपने अभिप्राय को प्रकट किया है। कवि का अभिप्राय है कि मैं अब भी दु:ख से कातर हूँ।

पदुमावति जौ सुना वँदि पीऊ। परा अगिनि महँ जानहुँ घीऊ॥
दौरि पाँय जोगिनि के परी। उठी आगि जोगिनि पुनि जरी॥
पायँ देइ दुइ नैनन्ह लावौ। लै चलु तहाँ कंत जहँ पावौ॥
जिन्ह नैनन्ह देखा तै पीऊ। सो मोहि देखाउ देउँ वलि जीऊ॥
सत औ धरम देउँ सब तोही। पिय की वात कही जेंइ मोही॥
तूं मोरि गुरु तोरि हौ चेली। भूली फिरत पंथ जेउँ मेली॥
डंड एक माया करु मोरे। जोगिनि होउँ, चलौं संग तोरे॥
सखिन्ह कहा, पदमावति रानी करहु न परगट भेस।
जोगी सोइ गुपुत मन जोगवै लै गुरु कर उपदेस॥६॥

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती की उस पीड़ा की व्यंजना की है जो उसे दूती के द्वारा या जोगिनी के द्वारा वन्दीगृह मे पड़े हुए अपने प्रियतम के दु खो को सुनकर अनुभूत हुई थी।]

जव पदमावती ने अपने प्रियतम को वन्दीगृह मे सुना तो उसकी पीड़ा उसी प्रकार पुनर्जीवित हो उठी जिस प्रकार अग्नि मे घी डालने से ज्वाला पुनर्जीवित हो उठती है। वह दु.ख से विह्वल होकर जोगिनी के पैरो पर गिर पडी। उसकी विरह-पीड़ा से उद्भूत अग्नि से वह जोगिनी भी जलने लगी। रानी जोगिनी से कहती है तू मुझे अपने चरण दे, मैं इन्हे अपने नयनो ले लगा लूंगी, इन्ही के सहारे तू मुझे वहाँ ले चल जहाँ मैं अपने प्रियतम के दर्शन कर सकूं। जिस प्रकार तूने अपने नेत्रों से मेरे प्रियतम को देखा है उसी प्रकार मुझे भी तू इन नेत्रो से मेरा प्रियतम दिखा दे। मैं तुझे अपना सत्य और धर्म सव कछ सौपने को तैयार हूँ क्योकि तूने मुझसे मेरे प्रियतम

का सन्देश कहा है। तू मेरी गुरु है और मैं तेरी चेली हूँ। मैं भटक रही थी कि तूने मुझे मेरे प्रियतम का मार्ग दिखला दिया। एक घड़ी तू ठहर जा, मै भी जोगिनी बनकर तेरे साथ चलूँगी।

सखियो ने पदमावती से कहा कि हे रानी तुम प्रत्यक्ष रूप से जोगिनी का वेष धारण मत करो। सच्चा जोगी वही होता है जो गुरु का उपदेश लेकर मन मे ही योग साधना करता है।

टिप्पणी—पहली पंक्ति में वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है।

दूसरी पंक्ति में अतिशयोक्ति अलंकार है।

इस अवतरण में कवि ने धर्म साधनाओ मे बाह्य वेष विधान की निन्दा और आन्तरिक या मन साधना की प्रशसा की है; ऐसा करके उन्होने अपने आध्यात्मिक दृष्टिकोण को प्रकट कर दिया है। वे धर्मसाधनाओं में बाह्याडम्बरों के विरोधी थे।

यहाँ पर रहस्य भावना की व्यंजना भी हुई है। पदमावती साधिका है, वह प्रियतम के रहस्य दर्शन करना चाहती है।

भीख लेहु, जोगिनि! फिरि माँगू। कंत न पाइय किए सवाँगू॥
यह बड़ जोग बियोग जो सहना। जेहुँ पीउ राखै तेहुँ रहना॥
घर ही महँ रहु भई उदासा। अँजुरी खप्पर, सिगी साँसा॥
रहै प्रेम मन अरुझा गटा। बिरह धँधारि, अलंक सिर जटा॥
नैंन चक्र हेरै पिउ-पंथा। कया जो कापर सोई कंथा॥
छाला भूमि, गगन सिर छाता। रंग करत रह हिरदय राता॥
मन माला फेरै तँत ओही। पाँचौ भूत भसम तन होहीं॥
कुँडल सोइ सुनु पिउ-कथा, पँवरि पाँव पर रेहु।
दंडक गोरा वादलहि जाइ अधारी लेहु॥७॥

[इस अवतरण में सखियाँ पदमावती को समझाते हुए कहती है-हे सखी! योगिनी का वेष बनाने से पहले तुम गोरा बादल से मिल आओ।]

सखियाँ समझाती है—हे पदमावती जोगिनी बनकर भीख फिर माँग लेना। भेष बनाने से किसी को पति नही मिलता। वियोग का सहारा ही सबसे बड़ा योग है। जिस प्रकार पति रखे उसी प्रकार रहना चाहिए। घर मे ही वैरागी बन कर रहना चाहिए। अँजुली ही खप्पर एवं सांस ही सिंगी है। जिसमे मन उलझा हुआ है वह गटरशाला है। विरह की धंधारी है, सिर की अलके ही जटा है। ये नेत्र ही चक्ररूप है जिन्हे घुमा-घुमा कर वह प्रियतम की प्रतीक्षा करती है। शरीर पर जो कपड़े है वह कन्था है। भूमि ही मृगछाला है, आकाश ही छत्र है। उसका अनुराग रंजित रंग ही उसका गेरुआ वस्त्र है। उसी का ध्यान करना ही मन की माला फेरना है।

प्रियतम के वचनो का सुनना ही कानो के कुण्डल है, पाँव पर जो रेहु या धूल है वही खड़ाऊँ हैं। क्षणभर गोरा वादल के पास जाकर अधारी (आश्वासन) ग्रहण करो।

टिप्पणी—इस अवतरण मे कवि ने योगी के परम्परागत भेप के स्थान पर आध्यात्मिक भेष पर वल दिया है। इस अवतरण मे कवि ने एक वियोगिनी के जीवन-दर्शन की व्याख्या की है। उसने यह प्रदर्शित करने की चेष्टा की है कि पति वियोग मे स्त्री को भेष से योगिनी नही अपने जीवन-आदर्शो मे वैरागिनी योगिनी बनना चाहिए। वियोगिनी होते हुए भी उसे घर नही त्यागना चाहिए। घर में रहकर ही प्रियतय मिलन के त्याग और तपस्या करनी चाहिए। उसे अपने लिए घर मे रह-कर केवल प्राणरक्षार्थ अंजलि मे भोजन और जल ले कर खाना चाहिए। खप्पर धारण करने की कोई आवश्यकता नही। वियोगिनी का जो ऊर्ध्व श्वास होता है वही उसकी वास्तविक सिंगी है। योगी का मन साधनाओं मे उलझा रहता है किंतु वियो-गिनी का मन अपने प्रियतम के प्रेम मे ही उलझा रहना चाहिए। उलझी हुई अलकें ही वियोगिनी योगिनी की जटाये है। विरहिणी के नेत्र ही योगी के चक्र होते हैं। उसके अपने कपड़े ही योगी के कन्था होते है। भूमि ही उसकी मृगछाला है। आकाश ही उसका वास्तविक छत्र होता है। इस प्रकार वियोगिनी को सहज भाव से अपने ही घर मे रहकर त्याग और तपस्यामय योग धारण करना चाहिए। योगी भेप के निम्न-लिखित तत्त्व यहाँ वर्णित हैं—

१. खप्पर।
२. सिंगी।
३. गटरमाला।
४. घंघारी।
५. जटा।
६. सिंहछाला।
७. छत्र।
८. चक्र।
९. माला।
१०. भस्म।
११. कुण्डल।
१२. खड़ाऊँ।
१३. अधारी।

पदमावती गोरा-बादल संवाद खण्ड

सखिन बुझाई दगध अपारा। गइ गोरा बादल के बारा॥
चरन कँवल भुइँ जनम न धरे। जात तहाँ लागि छाला परे॥
निसरि आए छत्री सुनि दोऊ। तस काँपे जस काँप न कोऊ॥
केस छोरि चरनन्ह-रज झारा। कहाँ पाँव पदमावति धारा॥
राखा आनि पाट सोनावानी। बिरह-बियोगिनी बैठी रानी॥
दोउ ठाढ़ होइ चँवर डोलावहिं। माथे छात, रजायसु पावहिं॥
उलटि बहा गंगा कर पानी। सेवक-बार आइ जो रानी॥
का अस कस्ट कीन्ह तुम्ह, जो तुम्ह करत न छाज।
अज्ञा होइ बेगि सो, जीउ तुम्हारे काज॥१॥

[इस अवतरण मे पदमावती का गोरा बादल के घर जाना तथा उसके द्वारा पदमावती का स्वागत-सत्कार किया जाना वर्णित है।]

सखियों ने उसकी विरहाग्नि को अपने आश्वासनो से शान्त किया। जिन चरण कमलों को उसने पृथ्वी पर कभी नही रखा था, उनमे वही तक जाते-जाते छाले पड़ गए। वे दोनो क्षत्रिय पदमावती के आगमन का समाचार सुन ऐसे काँप गए जैसे कोई नहीं काँपते। उन्होने अपने बाल खोलकर पदमावती के चरणों की रज झाड़ी और बोले, रानी पदमावती ने यहाँ आने की कृपा कैसे की। फिर उन्होंने सोने का पाट लाकर रखा। किन्तु विरह-वियोग के कारण रानी उस पर नही बैठी। चँवर डुलाने वाले चंवर डुलाते है और पूछते है कि आज्ञा हो तो मस्तक पर छत्र लगा दिया जाए। गंगा का पानी उल्टा बहा है अर्थात् रानी उल्टे सेवक सरदार के घर आई है। आपने इतना कष्ट क्यों किया, यह आपको शोभा नही देता। आप आज्ञा दीजिए ताकि शीघ्र उसका पालन किया जाए। ये प्राण तो आपके कार्य के लिए है।

टिप्पणी—तस काँपे जस काँपे न कोऊ—यहाँ पर स्वतःसम्भवी वस्तु से वस्तु व्यंग्य है। व्यग्यार्थ है कि वे बहुत अधिक काँपे।

कहा पाऊ......धारे—यहाँ काकुवैशिष्ट्य व्यंग्य है। व्यंजना हैं हमारे जैसे क्षुद्र व्यक्तियों के यहाँ आप जैसी महारानी कैसे पधारी हैं।

उलटि बहा गंगा कर पानी—यहाँ पर अर्थान्तर सक्रमित वाच्य ध्वनि है। व्यजना है कि रानी उलटे सेवक के घर आई है।

कही रोइ पदमावती बाता। नैनन्ह करत दीख जग राता॥
उलथ समुद जस मानिक-भरे। रोइसि रुहिर-आँसु तस ढरे॥
रतन के रंग नैन पै वारों। रती रती कै लोहू ढारौ॥
भँवरा ऊपर कँवल भवावौं। लेइ चहु तहाँ सूर जहँ पावौं॥
हिय कै हरदि, बदन कै लोहू। जिउ बलि देउँ सो सँवरि बिछोहू॥
परहि आँसु जस सावन-नीरू। हरियरि भूमि, कुसुमी चीरू॥
चढ़ी भुअंगिनि लट-लट केसा। भइ रोवति जोगिन के भेसा॥
बीर बहूटी भइ चली, तबहुँ रहहिं नहिं आँसु।
नैनहिं पथ न सूझै, लागेउ भादौ मासु॥२॥

[इस अवतरण मे गोरा-बादल से रानी पदमावती का आत्म-निवेदन वर्णित है।]

रानी ने रो-रो कर गोरा-बादल से सारे समाचार कहे। रोने से जो उसके नेत्र लाल हो गए थे उनकी लालिमा से ससार लाल दिखाई पड़ता था। उसके रोने से रक्त के आँसू ऐसे गिर रहे थे मानो समुद्र अपने अन्दर के माणिक्यों को उलीच रहा हो। सम्भवतः वह कह रही थी कि रतन के लाल रंग मेरे इन नेत्रो की लालिमा पर जिनसे शरीर का रत्ती-रत्ती रक्त ढल रहा है, न्यौछावर है। रतनसेन रूपी भ्रमर पर नेत्ररूपी कमल निछावर है। मै कहूँगी कि इन कमलो को वहा ले चलो जहाँ सूररूपी प्रियतम है। हृदय को पीला और शरीर को रक्तरजित बनाकर उस प्रियतम के वियोग को स्मरण कर उस पर निछावर कर दूँगी। आँसू इस प्रकार बहते है जैसे सावन का जल मूसलाधार रूप में बहता है। जल से भूमि हरी होती है। यहाँ आँसुओ से शरीर का वस्त्र कुसुम्भी हो रहा था। केशो की लटें भुजगिनी की तरह सिर पर लटक रही थी। रोते-रोते उसका भेष योगिनी का हो गया था।

रक्त के आँसू पृथ्वी पर बीर-बहूटी की तरह बह चले थे किन्तु आँसू फिर भी नही रुक रहे थे। नेत्रो से मार्ग नही दिखाई देता था। भादौ मास की वृष्टि की भाँति आँसुओ की झड़ी लगी हुई थी।

टिप्पणी—नैनन······राता—यहाँ सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार है।

उलथि······ढरे—यहाँ उपमा अलंकार से वस्तु व्यंग्य है। व्यथा की अतिशयता ही व्यग्य है।

रतन के रंग······ढारौ—यहाँ प्रतीप अलंकार है।

भंवरा ऊपर······उड़ावौ—इस पक्ति का पाठान्तर डा० अग्रवाल ने इस प्रकार दिया है—

'कवलन्ह ऊपर भंवर उड़ावौ ।'

पहला पाठ अधिक उपयुक्त और सुन्दर है । उसमे विरोधाभास और रूपकातिशयोक्ति दो अलकारो का सकर है ।

दूसरे मे केवल रूपकातिशयोक्ति है ।

हिय कै हरद—व्यंजना है कि हृदय की चिन्ता से पीला कर। यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है ।

तुम गोरा बादल खँभ दोऊ। जस रन पारथ और न कोऊ ।।
दुख बरखा अब रहै न राखा । मूल पतार, सरग भइ साखा ।।
छाया रही सकल महि पूरी। बिरह-बेलि भई बाढ़ि खजूरी ।।
तेहि दुख लेत बिरिछ बन बाढ़े । सीस उघारे रोवहिं ठाढ़े ।।
पुहुमि पूरी, सायर दुख पाटा । कौड़ी केर बेहरि हिय फाटा ।।
बेहरा हिये खजूर क बिया। बेहर नाहिं मोर पाहन-हिया ।।
पिय जेहि बँदि जोगिनी होइ धावौ। हौ बँदि लेउँ, पियहि मुकरावौ ।।
सूरुज गहन-गरासा, कँवल न बैठे पाट ।
महूँ पंथ तेहि गवनव, कंत गए जेहि बाट ।।३।।

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती के मुख से गोरा-बादल की प्रशंसा कराई है ।]

वह कहती है—हे गोरा-बादल ! तुम दोनो इस राज्य के स्तम्भ हो । युद्ध में अर्जुन के समान तुम्हारी समता करने वाला कोई नही है । दु:ख का वृक्ष ऐसा बढ़ गया है कि रोके नही रुकता है । उसकी जड़ पाताल मे और शाखाएँ आकाश में पहुँच गई है । उसकी छाया सारी पृथ्वी पर फैल गई है । विरह की वेल खजूर जैसी ऊँची हो गई है । उसी दु:ख से जगत् में न मालूम कितने वृक्ष बढ गये और सिर उघाड़े हुए रोते दिखाई पड़ते है । उस दु.ख ने धरती को आप्लावित करके समुद्र को भी उद्वेलित कर दिया । समुद्र मे रहने वाली कौड़ी का हृदय उसी दु.ख से विदीर्ण होकर फट गया है । खजूर के बीज का हृदय भी फट गया है किन्तु मेरा पाषाण हृदय फिर भी नही फटता । मेरे पति जिस बन्दीखाने मे है वहाँ मैं भी जोगिनी बन कर भाग जाना चाहती हूँ । मैं बन्दिनी बन जाऊँगी और पति को मुक्त करा दूँगी । जब राहु सूर्य को ग्रहण कर लेता तो कमल पाट पर नही बैठ सकता । मै भी उसी मार्ग को ग्रहण करूँगी जिस मार्ग से मेरे पति गए है । उसी मार्ग से मै भी जाऊँगी ।

टिप्पणी—तुम……दोउ—यहाँ पर कवि ने गोरा और बादल को स्तंभ कहा है। लक्षण लक्षणा से स्तभ का अर्थ हुआ राज्य के महान् रक्षक। यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। गोरा और बादल की अपूर्व वीरता ही व्यग्य है।

जस……कोऊ—डाक्टर अग्रवाल ने इसका पाठान्तर इस प्रकार दिया है 'जस भारथ तुम्ह औरु न कोऊ'। इसका अर्थ है कि युद्ध मे जैसे तुम हो ऐसा कोई और नही है।

दुख……खजूरी—यहाँ पर वृक्ष के रूपक से दुःख की व्यापकता व्यंजित की गई है। यहाँ पर बौद्ध प्रभाव है। बौद्ध मत मे दुःखवाद पर विशेष प्रकाश डाला गया है। दु.खवाद का वर्णन भगवान् बुद्ध ने इस प्रकार किया है : 'हे भिक्षुगण दुःख प्रथम आर्य सत्य है, जन्म भी दु·ख रूप है। वृद्धावस्था भी दु.ख है, मरण भी दुःख है, शोक-परिवेदना, दौर्मनस्य, उदासीनता, उपायास, आयास यह सब दुःख है। अप्रिय वस्तु के साथ समागम दुःख है। प्रिय के साथ वियोग भी दु.ख है। अभीष्ट वस्तु का न मिलना भी दु·ख है। सक्षेप मे कह सकते है राग के द्वारा उत्पन्न पाँचो स्कन्ध रूप, वेदना, संज्ञा, सस्कार तथा विज्ञान भी दुःख है'—बौद्ध दर्शन मीसांसा, पृष्ठ ६४।

टिप्पणी—तेहि…… ठाढ़े—यहाँ पर मानवीकरण और हेतूत्प्रेक्षा अलंकार का सकर है।

पुहिम……पाटा—यहाँ पर भी दुःख की विराट्ता व्यजित की गई है।

कौड़ी……पाटा—यहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा अलंकार से विरह की व्यापकता व्यजित की गई है। अतएव यहाँ पर कवि प्रौढोक्तिसिद्ध अलंकार से वस्तु व्यंग्य है।

सूरुज……पाट—यहाँ पर सूरज और कमल में रूपकातिशयोक्ति है। यह रूपकातिशयोक्ति शब्द शक्ति उद्भव है। इस रूपकातिशयोक्ति से पदमावती के दिव्य पातिव्रत की व्यजना की गई है। अतएव यहाँ पर कवि निबद्ध पात्र प्रौढोक्तिसिद्ध अलकार से वस्तु व्यग्य है।

गोरा बादल दोउ पसीजे। रोवत रुहिर बूड़ि तन भीजे॥
हम राजा सौं इहै कोहाँने। तुम न मिलौ, धरि है तुरकाने॥
जो मति सुनि गर कोहाँई। सो निआन हम्ह माथे आई॥
जौ-लगि जिउ, नहिं भागहिं दोउ। स्वामि जियत कित जोगिनी होऊ॥
उए अगस्त हस्ति जब गाजा। नीर घटे घर आइहि राजा॥
बरषा गए, अगस्त जौ दीठिहि। परिहि पलानि तुरगंम पीठिहि॥
बेधौ राहु, छोड़ावहुँ सुरू। रहै न दुख कर मूल अँकुरू॥
सोइ सूर, तुम ससहर, आनि मिलावौं सोई।
तस दुख महँ सुख उपजै, रैनि माँह दिन होई॥४॥

[इस अवतरण मे कवि ने गोरा और बादल की स्वामिभक्ति की व्यंजना की है।]

गोरा-बादल रानी की परिवेदना सुनकर द्रवित हो गये। वे सहानुभूति से रोने लगे और रुधिर के आँसुओ से सिर से लेकर पैर तक सिक्त हो गये और रानी से बोले, हमने राजा से इसीलिए क्रोध किया था कि वे तुर्क से मेल न करें बल्कि उसको वही पकड़ लें। राजा के जिस विचार को सुनकर हम कुपित हो कर चले आये थे, अन्त में वह हमारे मत्थे ही पड़ा। हम लोग जब तक जीवित रहेगे तब तक स्वामि-द्रोह नही कर सकते। हे रानी ! स्वामी के जीते जी तुम जोगिनी कैसे बन सकती हो। जब अगस्त्य नक्षत्र उदय होगा तब हस्ति नक्षत्र के घन गरजेंगे, वर्षा समाप्त होने पर राजा घर आ जायेंगे, तब मै राहु का बेधन करके सूर्य को छुड़ा लूगा और फिर दुःख की न जड़ रह जाएगी और न अंकुर।

वह सूर्य है. तुम शरद की पूर्ण शशि हो। हम लोग उसे लाकर तुम्हारा मिलन करा देंगे। इस प्रकार दु.ख मे सुख की उत्पत्ति होगी और अन्धकार में प्रकाश छा जायेगा।

टिप्पणी—रोवत······भीजे—यहाँ पर कवि प्रौढ़ोक्तिसिद्ध वस्तु से वस्तु व्यंग्य है। कवि ने गोरा-बादल की स्वामिभक्ति जनित अतिशय सहानुभूति की व्यंजना की है।

सोइ······सोइ—यहाँ पर कवि ने राजा रतनसेन को सूर्य और पदमावती को शशि रूप कहा है और दोनो को मिलाने की बात कही है। यहाँ पर लक्ष्योपमा के सहारे कवि ने राजा और रानी का संयोगौचित्य व्यंजित किया है। अतः यहाँ कवि प्रौढ़ोक्तिसिद्ध अलंकार से वस्तु व्यग्य है।

तस······होइ—यहाँ पर स्वतःसम्भवी वस्तु से ही उपमा अलकार व्यंग्य है। रैनि और दिन में अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। लक्षण लक्षणा से इनके अर्थ लिए गये है संयोग और वियोग। कवि यह व्यंजित करना चाहता है कि वियोग में संयोग उसी प्रकार होगा जिस प्रकार रात्रि में दिन का उदय होता है।

लीन्ह पान बादल औ गोरा। "केहि लेइ देउँ उपम तुम्ह जोरा ?॥
तुम सावंत, न सरवरि कोऊ। तुम्ह हनुवंत अँगद सम दोऊ॥
तुम अरजुन और भीम भुवारा। तुम बल रन-दल मंडन हारा॥
तुम टारन मारन्ह जग जाने। तुम सुपुरुष जस करन बखाने॥
तुम बलवीर जैस जगदेऊ। तुम संकर औ मालकदेऊ॥
तुम अस मोरे बादल गोरा। काकर मुख हेरौं बंदि छोरा ?॥
जस हनुवँत राघव बँदि छोरी। तस तुम छोरि मेराबहु जोरी॥
जैसे जरत लखाधर, साहस कीन्हा भीउँ॥
जरत खंभ तस काढ़हु, कै पुरुषारथ जीउ॥५॥

[इस अवतरण मे गोरा-वादल के साँत्वना देने पर पदमावती ने जो वचन कहे थे उनकी अभिव्यक्ति की गई है ।]

गोरा-वादल ने रतनसेन को छुडाने की प्रतिज्ञा की, उस पर पदमावती ने कहा कि मैं तुम्हारी उपमा किससे दू । तुम दोनो ऐसे सामत हो जिनकी कोई समता नही है । तुम दोनों ही हनुमान और अगद के सदृश हो, तुम अर्जुन और भीम नामक राजाओ के समान हो । तुम वल से रण में उपस्थित सेना की शोभा वढ़ाने वाले हो । तुम मार टालने मे जगद्विख्यात हो । तुम कर्ण जैसे वीर महापुरुष हो । तुम वीरता मे जगदेऊ के समान हो । तुम शिवाजी और मालकदेव के समान वीर हो । हे वादल और गोरा जव तुम्हारे जैसे वीर हमारे अपने सामन्त है तो हम किसका मुँह देखें । जिस प्रकार हनुमान जी ने राम को वन्वन से छुड़ाया था उसी प्रकार तुम मेरे पति को वन्धन से छुड़ाकर मुझसे मिला दो ।

जिस प्रकार से जलते हुए लाक्षा-गृह मे घुस करके भीम ने कुन्ती के पाँच पुत्रों की रक्षा करने की चेष्टा की थी उसी प्रकार तुम भी उसकी रक्षा करने की चेष्टा करो ।

टिप्पणी—लीन्ह······पान—इसका अर्थ लक्षण लक्षणा से प्रतिज्ञा करना लिया गया है ।

तुम······भुआरा—अर्जुन और भीम अपनी वीरता के लिए आज भी प्रसिद्ध हैं । यहाँ पर हमारी समझ मे कवि का सन्दर्भ पाण्डव भीम और अर्जुन से है किन्तु डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल ने भीम से गुजरात के राजा मोतो भीम और अर्जुन से अर्जुन वर्मा का तात्पर्य लिया है । हमारी समझ मे ये दोनो ही राजा इतने प्रसिद्ध नही थे कि उत्तरपूर्वी भारत के रहने वाले जायसी उनका अनुकीर्तन करते ।

तुम······जगदेऊ—इस पंक्ति का पाठान्तर डाक्टर अग्रवाल ने इस प्रकार दिया है, 'तुम वलवीर जाज जगदेउ' हमे डाक्टर अग्रवाल का पाठ अत्यन्त उपयुक्त लगता है । जाज रणथम्भोर के हमीर का अत्यन्त विश्वासपात्र वीर था । जयचन्द सूरी ने हम्मीर महाकाव्य में इसे जाजदेऊ कहा है । जगदेऊ धार के परमार राजा उदयादित्य की वडी रानी के पुत्र थे । कहते है कि अपनी विमाता के आदेश से उसके पुत्र रणधवल के लिए सपत्नीक धारा नगरी को छोड़कर चले गए थे और वे सिद्ध-राज जयसिंह के यहाँ सामन्त वनकर रहे थे ।

जस······छोरि—यहाँ पर महिरावण के चंगुल मे फँसे हुए राम को हनुमान के द्वारा मुक्त किये जाने की कथा का सन्दर्भ है ।

जैसैं······भीम—यहाँ पर महाभारत मे आई हुई लाक्षागृह की कथा का ही सन्दर्भ है ।

राम लखन तुम दैत सँघारा । तुमही घर वल-भद्र भुवारा ॥
तुमही द्रोन और गंगेऊ । तुम्ह लेखौ जैसे सहदेऊ ॥

तुमहि युधिष्ठिर औ दुरजोधन। तुमहिं नील नल दोऊ सबोधन।।
परसुराम राघव तुम जोधा। तुम्ह परितिज्ञा ते हिय बोधा।।
तुमहि शत्रुहन भरत कुमारा। तुमहि कृस्न चानूर संघारा।।
तुम परदुम्न और अनिरुध दोऊ। तुम अभिमन्यु बोल सब कोऊ।।
तुम्ह सरि पूज न विक्रम साके। तुम हमीर हरिचँद सत आँके।।
जस अति संकट पंडवन्ह भएउ भीवँ बँदि छोर।
तस परबस पिउ काढ़हु, राखि लेहु भ्रम मोर" ।।६।।

[इस अवतरण में भी कवि ने पदमावती के द्वारा गोरा और बादल की प्रशंसा करायी है।]

वह कहती है कि हे गोरा-बादल ! तुम्ही ने राम और लक्ष्मण बनकर दैत्यों का संहार किया था। तुम ही कृष्ण और बलदाऊ बने थे। तुम ही द्रोण और भीष्म बने थे। मैं तुम्हें इस प्रकार समझती हूँ जैसे कि सहदेवता होते है। तुम ही युधिष्ठिर और दुर्योधन थे। तुम ही नल और नील थे। तुम ही परशुराम और रामचन्द्र थे। तुमने प्रतिज्ञा करके हमारे हृदय को सांत्वना दी है। तुम ही शत्रुघ्न और भरत हो। तुम ही कृष्ण हो जिसने चारूण को मारा था। तुम प्रद्युम्न और अनिरुद्ध हो। तुम अभिमन्यु हो। तुम्हारी समता सम्वत् चलाने वाला विक्रमादित्य भी नही कर सकता। तुम हमीर और हरिश्चन्द्र के समान सत्यनिष्ठ हो।

जिस प्रकार जब पांडवों को बड़ा दु.ख पड़ा था तो भीम ने उनकी रक्षा की थी तो उसी प्रकार तुम हमारे पति को जो बन्धन में पड़ने के कारण परवश हो गया है उसकी रक्षा करके हमारे भ्रम को दूर करो।

गोरा बादल बीरा लीन्हा। जस हनुवँत अँगद वर कीन्हा।।
सजहु सिघासन, तानहु छातू। तुम्ह माथे जुग जुग अहिवातू।।
कँवल-चरन भुइँ धरि दुख पावहु। चढ़ि सिघासन मँदिर सिधावहु।।
सुनतहि सूर कँवल हिय जागा। केसरि बरन फूल हिय लागा।।
जनु निसि महँ दीन्ह देखाई। भा उदोत, मसि गइ बिलाई।।
चढ़ी सिघासन झमकति चली। जानहुँ चाँद दुइज निरमली।।
औ सँग सखी कुमोद तराई। ढारत चँवर मँदिर लेइ आई।।
देखि दुइज सिघासन संकर धरा लिलाट।
कँवल चरत पदमावती लेई बैठारी पाट।।७।।

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती को गोरा-बादल द्वारा दिये गए आश्वासन का वर्णन किया है।]

गोरा बादल ने रतनसेन की मुक्ति का भार ग्रहण कर लिया। जिस प्रकार अगद और हनुमान ने सीता की खोज और उनकी प्राप्ति कराने का भार ग्रहण कर लिया था। वे दोनों पदमावती से बोले, हे रानी ! आप सिंहासन पर बैठिए और छत्र धारण करिए और जुग-जुग छत्र धारण करिए, तुम्हारे मस्तक पर जुग-जुग तक सौभाग्य लिखा है। आप अपने कमल-चरण पृथ्वी पर रखकर दु.खी न हों। सिंहासन पर चढकर अपने महल मे जाएँ। सूर रूपी रतनसेन की बात सुनकर पदमावती रूपी कमल के हृदय मे विकास हो गया और उसमे केसर वर्ण का पराग-प्रणय भर गया। ऐसा मालूम हुआ कि उन दोनो वीरो ने रात्रि मे ही दिन दिखा दिया अर्थात् निराशा और विरह की अवस्था मे ही आशापूर्ण मिलन का आभास दे दिया जिससे कि नैराश्य की कालिमा नष्ट हो गई। वह सिहासन पर चढकर प्रसन्नता से चमकती हुई चली। वह ऐसी शोभायमान हो रही थी मानो दूज का चाँद हो। साथ में कुमुदिनी और तारो के सदृश सखियाँ चँवर डुलाती हुईं महल तक ले आईं। पदमावती रूपी दूज को देखकर शकर ने अपने ललाट का सिंहासन सँभार दिया। सखियों ने पदमावती के चरण-कमलो को धोकर सिंहासन पर बैठाया।

टिप्पणी—बीणा लीन्हा—इसका लक्षण लक्षणा से अर्थ है रक्षा का भार ग्रहण किया।

सुनतहि······जागा—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार से कवि ने रतनसेन की भावी मुक्ति की प्रतिज्ञा सुनकर उद्भूत होने वाले पदमावती के हृदय मे आह्लाद की व्यंजना की है।

केसर······लागा—कवि की व्यंजना है कि पदमावती का हृदय-कमल रतनसेन के प्रति प्रेम-पराग से परिपूर्ण हो गया।

देखि······लिलाट—यहाँ पर भ्रान्तिमान अलंकार से कवि ने रहस्य भावना की व्यंजना की है अतः कवि प्रौढ़ोक्तिसिद्ध अलंकार से वस्तु व्यंग्य है।

गोरा-बादल युद्ध-यात्रा खण्ड

बादल केरि जसोवै माया । आइ गहेसि बादल कर पाया ।।
बादल राय ! मोर तुइ बारा । का जानसि कस होइ जुझारा ।।
बादसाह पुहुमी पति राजा । सनमुख होइ न हमीरहि छाजा ।।
छत्तिस लाख तुरय पर साजहि । बीस सहस हस्ती रन गाजहि ।।
जबहिं आइ चढ़ै दल ठटा । दीखत जैसि गगन घन-घटा ।।
चमकहिं खड़ग जो बीजु समाना । घुमरहि गल गाजहिं नसाना ।।
बरिसहि सेत बान घन घोरा । धीरज धीर न बाँधिहि तोरा ।।
जहाँ दलपति दलि भरहि, तहाँ तोर का काज ? ।
आजु गवन तोर आवै, बैठि मानु सुख राज ।।१।।

[इस अवतरण मे बादल की माँ के वात्सल्य भाव की मार्मिक अभिव्यक्ति की गई है । जब वह सुनती है कि बादल राजा को मुक्त कराने के लिए सुलतान से लोहा लेगा तो वह इस प्रकार उससे कहती है ।]

हे बादल ! तू अभी बालक है । तुझे पता नही है कि युद्ध कैसे होता है । यह कह कर माता ने बादल के पैर पकड लिए और बोली, बादशाह अलाउद्दीन बडा सम्राट् है, उसका सामना करके हमीर की भी कुशल नही रही । उसकी सेना मे छत्तीस लाख घोड़े और बीस लाख हाथी गरजते है । जब उनका समूह आकर जुड़ेगा तो ऐसा मालूम होगा कि मानो आकाश मे काले बादल छा गये हो । सेना मे जब तलवारें चमकेंगी तो वे बिजली सी मालूम होगी । जब हाथी गरजेंगे तो ऐसा मालूम होगा कि नगाड़े बज रहे हों । सेल और बाणो की वृष्टि होगी । उस युद्ध मे तेरा धैर्य स्थिर नही रह सकेगा ।

जहाँ दलपति लोग दलों का संहार करेंगे वहाँ पर तुम्हारा क्या काम है । आज तेरा गौना आने वाला है, तू सुखपूर्वक घर पर ही राजभोग कर ।

टिप्पणी—सन्मुख साजा—हमीर रणथम्भौर के राजा थे और अपने समय के महान् योद्धा थे । अलाउद्दीन से लड़ते हुए वह १३०१ मे परास्त हुए थे । उसी का सन्दर्भ कवि ने यहाँ पर दिया है ।

विशेष—यहाँ पर कवि ने माता के मनोविज्ञान का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है । माता ने बादल के पैर किसी श्रद्धा से नही पकड़े बल्कि वह उसको द्रवित करना

चाहती थी कि माता पर उसको तरस आ जाए और वह युद्ध में न जाए।

मातु ! न जानसि बालक आदी। हौ बादला सिघ रनबादी॥
सुनि गज-जूह अधिक जिउ तापा। सिघक जाति रहै किमि छपा॥
तौ लगि गाज, न गाज सिघेला। सौह साह सौ जुरौ अकेला॥
को मोहि सौह होइ मैमंता। फारौ सूँड उखारौं दंता॥
जुरौ स्वामि-सँकरे जस ढारा। पेलौ जस दुरजोधन भारा॥
अंगद कोपि पाँव जस राखा। टेकौं कटक छतीसौ लाखा॥
हनुवँत सरिस जंघ बर जोरौ। दहौ समुद्र, स्वामि-बँदि छोरौ॥
सो तुम, मातुजसो वै ! मोहिं न जानहु बार।
जहँ राजा बलि बाँधा छोरौ पैठि पतार॥२॥

[इस अवतरण मे माता के प्रति बादल के बचनों का उपसंहार कराया गया है।]

बादल माता से कहता है, हे माता ! तू मुझे निरा बालक मत जान। मैं रण-क्षेत्र में गरजने वाला बादल हूँ। हाथियों के समूह की बात सुनकर सिंह और अधिक कुपित होता है, सिह की जाति छुपी नही रहती है। हाथी तब तक गरजता है जब तक शेर का बच्चा नही गरजता। मैं तो बादशाह का सामना करने के लिए अकेला ही पर्याप्त हूँ। कौन मतवाला हाथी मेरे सामने टिक सकता है। मै उसकी सूंड फाड दूंगा और दाँत उखाड दूंगा। मैं स्वामी की विपत्ति मे ढाल बनकर भिडूंगा। मैं सुलतान को उसी प्रकार से मारूँगा जिस प्रकार से भीम ने दुर्योधन को मारा था। जिस प्रकार अगद ने क्रुद्ध होकर पाँव रोक दिया था तो उसे कोई हटा नही सका था उसी प्रकार जब मै छत्तीस लाख सेना के आगे पाँव रोक कर खडा हो जाऊँगा तो उसकी सेना आगे नही बढ सकेगी। हनुमान जी के सदृश मै भी अपनी जंघाओं में बल धारण करूँगा और सुलतान की सेनारूपी समुद्र को भस्म कर स्वामी को बन्धनों से मुक्त करूँगा।

इसलिए हे माता यशोदा, तुम मुझे बिल्कुल बालक मत समझो। जहाँ पाताल मे राजा बलि को बाँधा गया था यदि उस पाताल में भी राजा को बाँध कर रखा गया होगा तो मैं वहाँ से उसे छुडा लाऊँगा।

टिप्पणी—सिह······छपा—यहाँ पर काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य है।

जस दुर्योधन मारा—भीम ने दुर्योधन को तालाब मे घेर कर मारा था। बादल की व्यंजना है कि यदि अलाउद्दीन कही भी जाकर छिपेगा तो मैं उसको वही पर मारूँगा।

जहाँ······पतार—कहते है कि राजा बलि को भगवान् ने वामन रूप धारण करके पाताल मे बाँधा था। बादल की व्यजना है कि यदि रतनसेन को पाताल में भी बाँध कर रखा गया होगा तो मै वहाँ से भी उसको लाकर खोज लूँगा और मुक्त करा दूंगा।

बादल गवन जूझ कर साजा। तैसेहि गवन आइ घर बाजा ॥
का बरनौं गवने कर चारु। चन्द्र बदनि रचि कीन्ह सिंगारु ॥
माँग मोति भरि सेंदुर पूरा। बैठ मयूर, बाँक तस जूरा ॥
भौहैं धनुक टकोरि परीखे। काजर नैन, मार सर तीखे ॥
घालि कचपची टीका सजा। तिलक जो देख ठाँव जिउ तजा ॥
मनि-कुंडल डोलै दुइ स्रवना। सींस धुनहिं सुनि-सुनि पिउ गवन ॥
नागिनी अलक, झलक उर हारु। भएउ सिंगार कँत बिनु भारु ॥
गवन जो आवा पॅवरि महँ, पिउ गवनें परदेस।
सखी बुझावहि किमि अनल, बुझै सो केहि उपदेस ॥३॥

[इस अवतरण मे बादल के द्विरागमन मे आई हुई उसकी नववधू का चित्र खीचा गया है।]

जैसे ही बादल ने युद्ध का साज सजाया वैसे ही घर में उसका गौना आया। गौने के साज का क्या वर्णन करूँ। चन्द्रवदनी वधू ने रच-रच कर शृगार किया था। माँग सिन्दूर और मोतियो से भरी गई थी। जूड़ा ऐसा सुन्दर बनाया गया था मानो मयूर बैठा हो। भौहे ऐसी चमक रही थी मानो धनुष को टंकार कर परीक्षा कर रही हो। कचपची नक्षत्रो के सदृश नगो से जड़ा हुआ टीका पहने हुए थी। उसका तिलक ऐसे सुन्दर बना हुआ था कि जो उसे देखता था वह वही प्राण दे देता था। दोनों कानो मे मणियो के कुण्डल डोलायमान थे। ऐसा मालूम होता था कि वे पति के जाने का समाचार पाकर सिर धुन रहे थे। नागिन के सदृश एक अलक हृदय के हार के पास चमक रही थी। उसका ऐसा शृंगार भी भार रूप हो रहा था। उसके घर में जब गौना आया तब पति परदेस चल दिए। सखियाँ उसके हृदय की विरहाग्नि कैसे वुझाएँ। भला किसका उपदेश उस विरहाग्नि को वुझा सकता था।

टिप्पणी—चारु—यहाँ पर इसका अर्थ है रीति या रस्म।

नागिनि······भारु—कवि की व्यंजना है कि अलके उसके हृदय को डसने के लिए नागिन-सी हो गई थी। इसमे भावी वियोग की सूचना व्यजित है।

सखी······उपदेश—यहाँ पर काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यग्य है कि उस विरहाग्नि को कोई सखी बुझा नही सकती थी। वह विरह अग्नि किसी के उपदेश से शान्त नही हो सकती थी। इससे कवि ने विरह की भयंकरता व्यजित की है। अतएव यहाँ पर क़ाक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्यमूलक ध्वनि है।

मानि गवन सो घूँघुट काढ़ी। विनवै आइ बार भइ ठाढ़ी ॥
तीखे हेरि चीर गहि ओढ़ा। कंत न हेर, कीन्ह जिउ पोढ़ा ॥
तब धनि बिहँसि कीन्हि सहुँ दीठी। बादल ओहि दीन्हि फिरि पीठी ॥
मुख फिराइ मन अपने रीसा। चलत न तिरिया कर मुख दीसा ॥

भा मिन-मेष नारि के लेखे। कस पिउ पीठि दीन्हि मोहिं देखे ॥
मकु पिउ दिस्टि समानेउ सालू। हुलसी पीठि कढ़ावौ फालू ॥
कुच तूँबी अब पीठि गड़ोवौं। गहै जो हूकि, गाढ़ रस धोवौं ॥
रहौ लजाए त पिउ चलै, गहौ न कह मोहि ढ़ीठ।
ठाढ़ि तेवानि कि का करौं, दूभर दुऔ बईठ ॥४॥

[इस अवतरण मे वादल की वधू ने वादल से रण मे न जाने की जो प्रार्थना की उसका वर्णन किया गया है।]

गौना समझ करके वादल की वधू घूंघट काढकर विनती करती हुई द्वार पर आकर खडी हुई। उसने एक बार तीक्ष्ण दृष्टि से देख करके तुरन्त घूंघट काढ़ लिया। किन्तु पति ने उसकी ओर नही देखा क्योकि उसने अपना मन बडा कर लिया था। तव वह हँस करके पति के सामने देखने लगी, किन्तु वादल ने घूम करके उसकी ओर पीठ कर ली और क्रुद्ध हो करके सोचने लगा कि चलते समय पत्नी का मुँह नही देखना चाहिए। स्त्री को देखने से मन में दुविधा पडने लगती है। किन्तु पत्नी यह देखकर सोचने लगी कि पति ने मेरी तरफ से मुँह क्यो फेर लिया है। कही ऐसा तो नही है कि पति की दृष्टि मे मेरी तीखी दृष्टि का साल उसके हृदय मे तो नही चुभ गया है। वह साल पीठ की ओर हुलस कर जा निकला है। इससे मैं वह गड़ा हुआ तीर का फल निकलवा दूँ। अतएव मैं अपनी कुचरूपी तूंबी से पीठ मे गड़े हुए साल को निकाल दूँ और जव वह पीड़ा से चौक कर मुझे पकड़े तो मैं उसे रसमग्न कर दूँ।

यदि मैं लजाती रही तो पति चला जाएगा और यदि मै उसे पकडती हूँ तो वह मुझे ढीठ कहेगा। वह चिन्ता मे पड़कर खड़ी रही और सोचने लगी कि दोनो वाते कठिन हैं।

टिप्पणी—इस अवतरण मे कवि ने उस नववधू के मनोविज्ञान का वर्णन किया है जो संयोग होने से पहले ही पति से वियुक्त होने जा रही है।

मान किहें जौ पियहि न पावौं। तजौं मान कर जोरि मनावौं ॥
कर हुँति कंत जाइ जेहि लाजा। घूँघट लाज आव केहि काजा ॥
तव धनि विहँसि कहा गहि फेंटा। नारि जो बिनवै कंत न मेंटा ॥
आजु गवन हौ आई नाहाँ। तुम्ह न कँत गवनहु रन माहाँ ॥
गवन आव धनि मिलन की ताँई। कवन गवन जौ गवनै साँई ॥
धनि न नैन भरि देखा पीऊ। पिय न मिला धनि सौं भरि जीऊ ॥
तहँ सव आस भरा हिय केवा। भँवर न तजै बास रस लेवा ॥

पायन्ह धरै लिलाट धनि बिनति सुनहु हो राय ॥
अलक परी फँदवारि होई कैसेहुँ तजै न पाय ॥५॥

[इस अवतरण में कवि ने बादल की नवोढा पत्नी की जिसे उसका पति मिलने से पहले ही छोड़कर जा रहा है, मनोकामनाओं का बडा मार्मिक चित्रण किया है ।]

वह अपने मन मे सोचती है कि यदि मै लज्जा करती हूँ तो पति चला जाएगा और यदि मैं मिलन के लिए स्वयं उसका हाथ पकडती हूँ तो वह मुझे प्रगल्भ समझेगा। इस अन्तर्द्वन्द्व में अन्त में वह यही निश्चय करती है कि पति को रोकने के लिए लज्जा त्याग देनी चाहिए ।

बादल की पत्नी अपने मन में सोचती है कि लज्जा करने से यदि प्रिय न मिला तो लज्जा व्यर्थ ही जाएगी । इसलिए आज मैने लाज को त्यागकर उससे हाथ जोड़कर प्रार्थना करने का निश्चय किया है। जिस लज्जा के परिणामस्वरूप पति पत्नी को हठपूर्वक छोड़कर चला जाए तो उस लज्जा और घूँघट से क्या लाभ ? यह सोचकर बादल की पत्नी ने मुस्कराकर पति का फेटा पकड़ लिया और कहने लगी हे प्रियतम ! पत्नी जो प्रार्थना करती है पति उसे कभी अस्वीकार नही करता है। हे प्रियतम, आज मैं गौने आई हूँ अतएव तुम रण में मत जाओ। पत्नी गौने इसलिए आती है कि प्रिय से उसका मिलन हो। यदि प्रिय से उसका मिलन न हो तो वह गौना ही किस काम का। जब तक पत्नी प्रियतम को आँख भर कर न देखे और प्रियतम पत्नी से जी भर कर नही मिल लेता तब तक वह गौने का प्रथम मिलन ही क्या हुआ। जहा पर मेरा जैसा परागरूपी कामनाओ से परिपूर्ण हृदय-कमल है वहाँ रसलोभी भ्रमर के सदृश रसिक प्रियतम उसका परित्याग नही कर सकता ।

यह कह कर पत्नी ने प्रियतम के चरणों पर सिर रख दिया और बोली हे राजन् ! मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लो। उसकी अलके प्रियतम के चरणो मे बन्धन बनकर उलझ गई और वह किसी प्रकार भी चरण नही छोड़ती है।

टिप्पणी—लाज किए—के स्थान पर डा० अग्रवाल ने 'मान की है' पाठ दिया है जो अधिक उपयुक्त नही है। प्रथम मिलन से पूर्व नायिका मे लाज और संकोच ही प्रधान होता है मान नही। मान की स्थिति तो परवर्ती मिलनो में आती है।

दूसरी पंक्ति मे 'करि हठ' के स्थान पर डा० अग्रवाल और गुप्त जी ने 'कर हुँति' पाठ दिया है। उस अवस्था में अर्थ होगा कि जिस लज्जा से पति हाथ से निकल जाए वह लज्जा किस काम की।

सातवी पंक्ति में 'जहँ अस आस भरा' के स्थान पर डा० अग्रवाल ने 'तहँ सब व्या भरा' पाठान्तर दिया है। उस अवस्था मे अर्थ होगा जहाँ पर सब आशाओं से भरा हुआ हृदय-कमल है इत्यादि। किन्तु मैं प्रथम पाठ को अधिक उपयुक्त समझता

हूँ। क्योंकि 'अस' के प्रयोग में जो संवृति वक्रता है उससे उक्ति में बड़ी चारुता आ जाती है।

सातवी पक्ति में केवा (कमल) और भ्रमर मे रूपकातिशयोक्ति है और साध्यवसाना गौणी लक्षणा है।

छाड़ु फेंट धनि बादल कहा। पुरुख गवन धनि फेंट न गहा॥
जौं तूँ गवन आइ गजगामी। गवन मोर जहँवाँ मोर स्वामी॥
जब लगि राजा छूटि न आवा। भावै बीर सिंगारू न भावा॥
तिरिया पुहुमि खरग कै चेरी। जीतै खरग होइ तेहि केरी॥
जेहि कर खरग मूठि तेंहि गाढ़ी। जहाँ न खड़्ग न मोंछ न दाढ़ी॥
तब मुख मोंछ जीव पर खेलौ। स्याम काज इन्द्रासन पेलौ॥
पुरुख बोलि कै टरै न पाछू। दसन गयंद गीव नहि काछू॥
तूँ अबला धनि मुगुध बुधि जानै जाननिहार।
जेहि पुरुषहि हिय बीर रस भाव न तहाँ सिंगार॥६॥

[इस अवतरण मे कवि ने बादल की नवोढा पत्नी के अपने पति के प्रति किए गए युद्ध मे जाने के आग्रह का चिन्तात्मक वर्णन किया है। बादल की पत्नी ने बादल की फेंट पकड रखी है और उसे विनम्रभाव से युद्ध मे न जाने की प्रार्थना कर रही है।]

बादल अपनी पत्नी से कहता है, हे बाले ! तू मेरी फेट छोड़ दे। पुरुष के प्रस्थान करने पर (विशेषकर युद्ध के लिए जाने पर) स्त्री को पुरुष की फेंट नही पकडनी चाहिए। हे गजगामिनी, यदि तू गौने आई है तो मैं भी वहाँ गमन कर रहा हूँ जहाँ मेरा स्वामी है, जब तक राजा छूट कर नही आ जाता तब तक मुझे वीररस ही अच्छा लग रहा है, शृंगार रस नही। स्त्री और भूमि खड्ग के अधीन रहती हैं। जो खड्ग का विजेता होता है उसी के वह अधीन हो जाती है। जिसके हाथ मे तलवार होती है उसकी ही मुट्ठी भरी रहती है। जहाँ खड्ग नहीं होती वहाँ मूँछ और दाढी भी नही रहती। जब तक मुख पर मूँछ है तब तक मै प्राणो पर खेल जाऊँगा और अपने स्वामी के हेतु इन्द्रासन को भी धक्का दे दूँगा। पुरुष प्रतिज्ञा करके पीछे नही हटता, उसकी प्रतिज्ञा हाथी के दाँत के समान होती है, कछुए की गर्दन की तरह नही होती। जिस तरह हाथी का दाँत अन्दर नही बैठता बाहर ही दिखता रहता है उसी प्रकार पुरुष प्रतिज्ञा करके उसकी उपेक्षा नही करता।

हे स्त्री तू अबला है। तेरी बुद्धि कुबुद्धि है। तू युद्ध के महत्त्व को नही समझती है। जिसके हृदय मे वीर रस है उसे शृंगार अच्छा नही लगता है।

टिप्पणी—पुहुमि खरग के चेरी—यहाँ पर लोकोक्ति अलकार है।

जेहीं—पाँचवी पंक्ति का पाठभेद शुक्ल जी मे इस प्रकार मिलता है—'जेहि घर खड्ग मोछ तेहि गाढ़ी। जहाँ न खड्ग मोछ नहि दाढी।' मुझे शुक्ल जी का पाठ बहुत उपयुक्त लगता है। इसका सीधा-सादा अर्थ है कि जिसकी तलवार में बल है उसी की मूँछ ऊँची रहती है और जिसके पास तलकार का बल नही है उसके न मूँछ है न दाढ़ी, वह स्त्री तुल्य है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पाठ के अनुसार पंक्ति का अर्थ होगा—जिसके हाथ मे तलवार होती है उसी के पास धन होता है और जहाँ पर आँड नही होता वहाँ मूछ और दाढ़ी नहीं होती। पंक्ति के दोनो भागों मे अर्थ सामंजस्य सुन्दर रूप से नही बैठता है।

सातवी पक्ति में दृष्टांत अलंकार है, दृष्टान्त और अपह्नुति का संकर है।

शुक्ल जी के दोहे मे मुगुध बुद्धि के स्थान पर कुबुध बुद्धि पाठ दिया है। इसी प्रकार उन्होने 'जानय जननी हार' का पाठ दिया है 'जानय छाँह जुभार'। शुक्ल जी का पाठ हमें अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

जौं तुम्ह जूझि चहौ पिय बाजा। किहें सिगार जूझि मैं साजा॥
जोबन आइ सौहं होइ रोवा। बिखरा बिरह काम दल कोपा॥
भएऊ बीर रस सेंदुर माँगा। राता रुहिर खरग जस नाँगा॥
भौहें धनुक नैन सर साँधे। काजर पनच बरुनि बिख बाँधे॥
दै कटाख सो सान सँवारे। औ नख सेल भाल अनियारे॥
अलक फाँस गियें मेलि असूझा। अधर अधर सौ चाहै जूझा॥
कुम्भस्थल दुइ कुच मैमंता। पेलौं सौहँ सँभारहु कंता॥
कोप सँघारहु बिरह दल टूटि होइ दुइ आध।
पहिलें मोहि संग्राम कै करहु जूझ कै साध॥७॥

[इस अवतरण मे बादल की नवोढा पत्नी उसे शृंगार-क्षेत्र में युद्ध की चुनौती देती है।]

बादल की पत्नी अपने पति से कहती है—प्रियतम यदि तुम युद्ध करने के लिए ही उतावले हो तो फिर मुझसे जिसने शृंगार-क्षेत्र मे युद्ध का साज सजाया है, रति-युद्ध करके अपनी शक्ति का प्रदर्शन करो। मेरा यौवन आज तुम्हारे समक्ष युद्ध करने के लिए खड़ा है। विरह का कवच पहन कर काम की सेना क्रुद्ध हुई है। माँग का सिंदूर आज वीर रस का प्रतिरूप बन गया है। माँग का सिंदूर ऐसा लग रहा है जैसे तलवार पर लाल रक्त चमक रहा हो। आज भौहे धनुष बन गई है और नेत्र ऐसे लगते है जैसे सधाने हुए बाण हों। आँखो मे खिची हुई काजल की रेखा प्रत्यंचा के सदृश है। बरौनियाँ विष का काम कर रही है। ऐसा लगता है बरौनियाँ नेत्ररूपी बाण की विष से बुझी हुई अनी है। नायिका के कटाक्षो ने जैसे नेत्ररूपी बाणो पर

शान रख दी हो। नुकीले नख सेल और भाले के सदृश है। अलकों का फँदा ग्रीवा में पड कर ऐसा अटूट हो गया है कि अधरो से अधरों का युद्ध हुए विना वह छूट नही सकता। हे प्रियतम, मेरे दोनो कुच मदमस्त हाथी के कुम्भस्थल के समान है। मैं उन्हें आपकी तरफ ठेल रही हूँ। अपने आपको और उनकी चोट को सम्भालिए।

तुम इस विरह की सेना को क्रुद्ध होकर इस प्रकार नष्ट-भ्रष्ट करो कि वह टूट कर आधी हो जाए। तुम पहले मुझसे रति-युद्ध करो फिर संग्राम मे जाने की बात करना।

टिप्पणी—पखरा विरह—शुक्ल जी में पाठ भेद है—'विखरा विरह'। हमे शुक्ल जी के पाठ की अपेक्षा डा० अग्रवाल और डा० गुप्त का पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

भएऊ वीर रस सेंदूर माँगा—शुक्ल जी ने 'भएहू' के स्थान पर 'वहेउ' दिया है। मुझे शुक्ल जी का पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। उस अवस्था में सम्पूर्ण पक्ति का अर्थ होगा—वीर रस माँग मे सिन्दूर के रूप मे वह उठा जिसके फलस्वरूप वह माँग ऐसी प्रतीत होने लगी जैसे कि रक्तरजित नंगी तलवार हो। इस सम्पूर्ण पक्ति मे फलोत्प्रेक्षा अलंकार है।

वरुनि विष-बाँधे—यहाँ पर कवि ने वरौनियो मे विप से वुझी हुई वाण की अनी की सम्भावना की है।

सम्पूर्ण अवतरण में रूपक अलंकार है।

एको विनति न मानै नाहाँ। आगि परी चित उर धनि माहाँ॥
उठे सो धूम नैन करुआने। जवही आँसु रोइ वेहराने॥
भीजे हार चीर हिय चोली। रही अछूत कंत नहिं खोली॥
भीजी अलक चुई कटि मण्डन। भीजे भँवर कंवल सिर फुन्दन॥
चुइ-चुइ काजर आँचर भीजा। तवहुं न पिय कर रोंव पसीजा॥
छाँड़ि चला हिरदै दै डाहू। निठुर नाँह आपन नहि काहू॥
सवै सिगार भीज भुइँ चुवा। छार मिलाइ कत नहि छुवा॥
रोएँ कंत न बहुरै तेहि रोएं का काज।
कंत धरा मन जूझ रन धनि साजे सव काज॥८॥

[इस अवतरण में कवि ने वादल की नव-विवाहिता पत्नी के उस आग्रह के प्रति जिसमे उसने पति से युद्ध मे जाने की प्रार्थना की है, वादल के उपेक्षा भाव तथा तज्जनित उसकी पत्नी के भावी विरह एवं निराशा भाव की मार्मिक अभिव्यक्ति की है।]

वादल की पत्नी स्वगतोक्ति करती हुई कहती है—प्रियतम किसी प्रकार भी मेरी प्रार्थना को स्वीकार नही कर रहे है और युद्ध से इस अवसर पर उदासीन

होने को प्रस्तुत नही है। पति के द्वारा इस प्रकार अछूती छोड़कर चले जाने की कल्पना से उसकी पत्नी विरहाग्नि से धधक उठी। उस विरहाग्नि की ज्वाला से जो धुआँ उठा उससे उसकी आँखे कडवा गई। उस समय उसके नेत्रों के आँसू रो-रो कर टूक-टूक हो गए। बिखरती हुई अश्रुधारा से हार, ओढनी, वक्षःस्थल और चोली भीग गए। उसकी चोली अभी तक अछूती थी। अभी उसे उसके प्रियतम ने खोला नही था। उसकी अलके आर्द्र हो उठी थी। आँसू उसकी करधनी तक पहुँच गए। उसकी अश्रुधारा से कमलरूपी स्तनो तथा उनका आभूषणरूप फुदने के सदृश भ्रमररूपी अग्र भाग मुख भी भीग गए। नयनो का काजल इस बुरी तरह से बहा कि उसका आँचल भीग गया किन्तु उसके प्रियतम का रोम भी सहानुभूति से द्रवित नही हुआ। वह हमारी प्रार्थना को ठुकरा कर हृदय को विरहाग्नि से दग्ध कर चला गया। निष्ठुर प्रियतम किसी का अपना नही होता। उस नवोढा के सब शृंगार अश्रुओं की बाढ में बह गए। इस प्रकार प्रियतम ने प्रिया के सारे शृंगार मिट्टी मे मिला दिए। उसने उनका स्पर्श तक नही किया।

जिस रुदन से पति न लौट सके पत्नी का वह रुदन व्यर्थ होता है। उस नवोढ़ा के जीवन की बड़ी विडम्बना यह थी कि जब उसने मिलन के लिए शृंगार किया तभी पति ने युद्ध में जाने का सकल्प किया।

टिप्पणी—आगि परी—यहाँ पर रूढ़ा लक्षणा है। आग पड़ने का रूढार्थ है दुःखी हो जाना या झुलस जाना।

उठे सो धूम नैन करुआने—यहाँ पर 'सो' में सवृति वक्रता है। सो से कवि ने कई व्यजनाएँ की है। पहली व्यंजना तो यह है कि वह विरहाग्नि जो मिलन से पहले ही प्रज्वलित हो उठी है। सो का अर्थ महान् भी है। नायिका के हृदय मे वह महती विरहाग्नि प्रज्वलित हो उठी जिससे धुआँ उठने पर नयन करुआ गए। यहाँ पर पूरी पक्ति मे असंगति अलंकार भी व्यंग्य है। धुआँ तो स्त्री के हृदय में उठा और कड़आ-हट नयनों मे अनुभूत हुई। यही असंगतता है।

भीजे भँवर कंवल सिर फुँदन—यहाँ पर भँवर और कँवल में रूप की अति-शयोक्ति है। भँवर स्तनों की काली घुण्डियो और कँवल स्तनो का उपमान है। इस पंक्ति मे कवि ने स्तनो की घुण्डियो को स्तनरूपी कमलो का फुन्दन कहा है। सीधा-सादा अर्थ है कि स्तनरूपी कमल तथा उनके आभूषण रूप भ्रमर के सदृश उनके अग्रभाग भी अश्रुधारा से आप्लावित हो गए।

नोट—यहाँ पर हमने अन्तिम चार पक्तियो का वह पाठ स्वीकार किया है जो शुक्लजी ने फुटनोट मे दिया है।

गोरा बादल युद्ध खण्ड

मँत्ते बैठि बादल औ गोरा। सो मत कीज परै नहि भोरा ।।
पुरुख न करहि नारि मति काँची। जस नौशावा कीन्ह न बाँची ।।
हाथ चढ़ा इसिकंदर बरी। सो कित छोड़ि कै भई बंदेरी ?।।
सुबुधि सो ससा सिंघ कह मारा। कुबुधि सिंघ कुआँ परि हारा ।।
देवन्ह चलि आई असि आँटी। सुजन कँचन दुर्जन भा माँटी ।।
कँचन जुरै भए दस खँडा। फुटि न मिलै माँटी कर भडा ।।
जस तुरकन्ह राजहि घर साजा। तस हम साजि छुड़ावहि राजा ।।
पुरुख तहाँ करै छर जहँ वर कीन्हें न आँट।
जहाँ फूल तहाँ फूल होइ जहाँ काँट तहाँ काँट ।।१।।

[इस अवतरण मे गोरा और वादल नामक सामन्तो के विचार-विनिमय के प्रसग का वर्णन किया गया है। दोनो मिलकर सलाह करते हुए कहते हैं।]

हम लोगो को ऐसी मत्रणा करनी चाहिए जो किसी प्रकार असफल न हो। पुरुष लोग स्त्रियो के सदृश कच्ची मंत्रणाएँ नही करते है जिसके फलस्वरूप उन्हे असफलता प्राप्त हो। नौशाबा नामक स्त्री ने कच्ची मंत्रणा की थी जिसका परिणाम यह हुआ कि वह अपनी रक्षा न कर सकी। बलवान सिकन्दर एक बार उसके हाथ पड़ गया किन्तु उदारता के कारण उस समय उसने उसे छोड़ दिया। बाद मे उसी सिकन्दर ने उसकी शक्ति कम होने जाने पर उसे बन्दी बनाया था। जो सावधान नही रहते वे शक्तिशाली होते हुए भी सफल नही हो पाते। वुद्धि के सदुपयोग से शशक ने सिह को मार दिया और कुवुद्धि से सिंह कुएँ मे पड़ कर मर गया। सत्पुरुषों मे ऐसी परम्परा चली आई है कि वे सज्जन को सोने के सदृश समादरणीय और उत्तम मानते है और दुर्जन को मिट्टी के सदृश नगण्य। सोना दस टुकड़े होकर भी जुड जाता है किन्तु मिट्टी की हाँडी टूटकर नही जुड़ती। इसी प्रकार सत्पुरुष अलग होते हुए भी संगठित हो जाते है किन्तु दुर्जन एक बार विच्छिन्न हो जाने पर फिर संगठित नही होते। जिस प्रकार तुर्को ने राजा के साथ छल किया उसी प्रकार हम भी छल करके राजा को वंधन से मुक्त करेगे।

पुरुप वहाँ पर छल से काम लेते है जहाँ पर वे वल से सफलता प्राप्त करने मे असमर्थ रहते है। फूल के लिए पुरुष फूल रहता है और काँटे के लिए काँटा बन

जाता है। अर्थात् सत्पुरुष के साथ जो सज्जनता का व्यवहार करते हैं वह उनके लिए सज्जन बना रहता है और जो उसके प्रति दुर्जनता का व्यवहार करते हैं वह उनके लिए दुर्जन बन जाता है।

टिप्पणी—शुक्लजी ने चौथी पक्ति का पाठान्तर दिया है। वही हमने स्वीकार किया है।

तीसरी पंक्ति का पाठ शुक्ल जी ने इस प्रकार दिया है—

परा हाथ उस इसकन्दर वैरी।
सो कित छोड़ि के भई बंदेरी।।

अर्थ मे बहुत अन्तर नही है। इस पाठ का अर्थ होगा कि नौशाबा अपनी स्त्री बुद्धि के कारण ही बैरी सिकन्दर को अपने अधीन पाकर भी उसे बन्दी न बना पाई। बाद मे सिकन्दर ने अवसर पाकर उसे बन्दी बना लिया।

इस सम्बन्ध मे एक कथा प्रचलित है।

प्रसिद्ध है कि एक बार सिकन्दर युद्ध मे आहत होकर नौशाबा नामक रानी की जो राज्य छिन जाने के कारण जगल मे रह रही थी, झोंपड़ी में प्राण लेकर आ पडा। नौशाबा के राज्य को वह पहले ही जीत चुका था जिसके परिणामस्वरूप वह साधु बनकर वन मे रहने लगी थी। जब सिकन्दर आहत होकर उसके झोपड़े मे आकर पड़ा था उस समय वह उसे बन्दी बनाकर बड़ी सरलता से अपने राज्य को लौटा सकती थी किन्तु उसने सोचा कि जब सिकन्दर स्वस्थ हो जाएगा तो वह उसके उपकार से अभिभूत होकर उसका राज्य लौटा देगा किन्तु सिकन्दर ने स्वस्थ होकर उसे पहचान कर बन्दी बना लिया। इसी आधार पर जायसी ने लिखा है—

पुरुष न करहिं नारि मति कांची।

सोरह सौ चंडोल सँवारे। कुंवर सँजोइल कै बैसारे।।
पदुमावति कर सजा बेवानू। बैठ लौहार न जानै भानू।।
रचि बैवान तस साजि सँवारा। चहुँ दिसि चँवर करहि सब ढारा।।
साजि सबै चँडोल चलाए। सुरंग ओहार मोति तिन्ह लाए।।
भै सँग गोरा बादल बली। कहत चले पदमावति चली।।
हीरा रतन पदारथ झूलहि। देखि बेवान देवता भूलहिं।।
सोरह सै संग चली सहेली। कँवल न रहा औरु को बेली।।
रानी चली छड़ावै राजहि आपु होइ तेहि ओल।
बतिस सहस सँग तुरिअ खिचावहि सोरह से चँडोल।।२।।

[राजा की मुक्ति के लिए रानी अपने को बन्धक के मे रूप रखने की कामना से चली।]

सोलह सौ चंडोल तैयार किये गए जिनमे राजपूत सरदार शस्त्रो से सुसज्जित कर बैठाले गए। फिर पदमावती का विमान सजाया गया। उसमे लोहार बैठाया गया, उस भानु रूप सुलतान को इसका पता भी न था। विमान इस प्रकार सजाया गया कि मानो पदमावती ही बैठी हो। चारो ओर चँवर डुल रहे थे। सब विमान सजाकर चला दिये गए। उनमे मोती टँके हुए थे। बलशाली गोरा-बादल साथ हो लिए। वे यह घोषणा करते चले कि पदमावती जा रही है। उसके विमान मे हीरे, लाल और श्रेष्ठ रतन लगे है। उस विमान को देखकर देवता मोहित हो रहे थे। इस प्रकार सोलह सौ सखियाँ पदमावती के साथ चली। जब पदमावती ही नही है तो फिर लताओ की क्या बात थी।

रानी अपने को बन्धक के रूप मे रख राजा को मुक्त कराने चली। उसके साथ मे बत्तीस सहस्र घोडे, सोलह सौ चण्डोल थे।

टिप्पणी—न जाने भानू—इसके दो व्यंग्यार्थ हो सकते है। एक तो यह है कि उस रहस्य को सूर्य तक नही जान सका। दूसरा व्यंग्यार्थ है कि भानु रूप सुलतान भी नही जानता था। योजना की रहस्यात्मकता और सुलतान की तेजस्विता व्यंग्यार्थ हैं। यहाँ पर भानु मे पदगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। (पहला व्यग्यार्थ)। दूसरे व्यग्यार्थ मे रूपकातिशयोक्ति अलकार से वस्तु व्यंग्य है।

सुरग—सुन्दर रग का कपडा।

कँवल न रहा और का बेली—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति से वस्तु व्यग्य है। यहाँ पर पदमावती की दिव्य कोमलता और सौन्दर्य व्यंग्य है। व्यंग्यार्थ है कि जब पदमावती ही नही गई तो दूसरी सखियो के जाने का प्रश्न ही नही उठता था। यहाँ पर और काबेली मे काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यग्य है। अर्थ है कि जब पदमावती जा रही थी तो फिर दूसरी सखियो का जो उसके पैर का धोवन भी न थी न जाना स्वाभाविक ही था।

लोभ पाप कै नदी अँकोरा। सत्त न रहै हाथ जस बोरा॥
जहँ अँकोर तहँ नीक न राजू। ठाकुर केर बिनासहिं काजू॥
भाजिउ घिउ रखवारन्ह केरा। दरब लोभ चँडोल न हेरा॥
जाइ साहि आगे सिर नावा। ऐ जग सूर चाँद चलि आवा॥
औ जाँवत सँग नखत तराई। सोरह सै चँडौल सो आँई॥
चितउर जेति राज कै पूँजी। लै सो आई पदुमावति कूँजी॥
बिनति करै कर जोरे खरी। लै सौपौ राजहि एक घरी॥
उहाँ उहाँ के स्वामी दुहूँ जगत मोहि आस।
पहिले दरस देखावहु तौ आवौ कबिलास॥३॥

[पदमावती की ओर से सुलतान से प्रार्थना की गई कि वह अपने पति रतनसेन को कुँजी सौपना चाहती है अतः उसे एक वार पति से मिलने की आज्ञा दी जाए।]

घूस लोभ और पाप की नदी है। जैसे ही उसमे कोई हाथ डालता है उसका सत्य नष्ट हो जाता है। जहाँ घूस चलती है वहाँ नेगियों (अफसरो) का राज हो जाता है और वे स्वामी का काम बिगाड देते है। रक्षको का जी घी की तरह स्निग्ध और तरल हो गया। धन के लालच मे उन्होने चण्डोल न देखे। जाकर सुलतान को प्रणाम किया और कहा संसार के सूर्य, चाँद रूपी पदमावती आ गई है। नक्षत्रो और तारिकाओ की भाँति जो उसकी सहेलियाँ है वे भी सोलह सौ चण्डोलो मे आई है। चित्तौड़ राज्य की जितनी सम्पत्ति है, उस सरकारी खजाने की कुजी भी वह अपने साथ लाई है और हाथ जोड़कर विनती करती है कि राजा से एक क्षण मिलकर कुँजी सौपने की आज्ञा दी जाए।

वह कहती है कि मेरा पति मेरे दोनों संसारो का स्वामी है। अतः पहले उसके दर्शन करा दो तो फिर मै आपके महल मे आऊँगी।

टिप्पणी—है जग सूर चाँद चलि आवा—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलकार है और साध्यवासना गौणी लक्षणा है।

जागत सेग नखत तराई—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

कविलास—यहाँ पर पदगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से महल अर्थ लिया गया। महल की विशालता और गरिमा व्यग्य है।

अग्याँ भई जानु एक घरी। छूँछि जो घरी फेरि बिधि भरी॥
चलि बेवान राजा पहँ आवा। सँग चंडोल जगत गा छावा॥
पदुमावति मिस हुत जो लोहारु। निकसि काटि बँदि कीन्ह जोहारु॥
उठा कोपि जस छूटा राजा। चढ़ा तुरंग सिघ अस गाजा॥
गोरा बादल खाँडा काढ़े। निकसि कुंवर चढ़ि चढ़ि भए ठाढ़े॥
तीख तुरँग गँगन सिर लागा। केंहु जुगुति करि टेकी बागा॥
जौ जिनु ऊपर खरग सँभारा। मरनिहार सो सहसन्हि मारा॥
भई पुकार साहि सौ ससि औ नखत सो नाहि।
छरकै गहन गरासा गहन गरासे जाहि॥४॥

[शाह की आज्ञा हुई कि पदमावती को अपने पति से एक क्षण मिल लेने दिया जाए। वह मिलने गई। लुहार ने राजा की हथकड़ी-वेड़ी काट दी। घमासान युद्ध आरम्भ हो गया। शाह के सिपहसालारो ने यह समाचार सुलतान को पहुँचाया। प्रस्तुत अवतरण मे इतना ही प्रसग वर्णित है।]

अर्थ—सुलतान की आज्ञा हुई कि घड़ी भर पदमावती को रतनसेन से मिलने दिया-जाए। पदमावती की घड़ी रीती थी। परमात्मा ने उसे फिर भर दिया अर्थात्

पदमावती का दुर्भाग्य सौभाग्य मे परिणत हो गया। पदमावती का विमान चलकर राजा के पास आया। साथ मे चण्डोलो से सारा स्थान भर गया। पदमावती के व्याज से जो लोहार बैठा था उसने निकलकर राजा को प्रणाम किया और राजा की हथकड़ी-बेड़ी काट दी। जैसे ही राजा की हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ कट गईं, तभी वह क्रोध से भर गया। घोड़े पर चढकर सिंह की तरह गर्जा। गोरा और वादल ने भी तलवारें निकाल ली। सव सरदार अपनी-अपनी चण्डोलो से निकल कर अपने-अपने घोड़ो पर चढकर तैयार हो गए। तेज घोड़ो का सिर आकाश को छू रहा था। किस उपाय से कौन उनकी वाग को रोक सकता था। जव कोई अपने जीवन का मोह त्याग कर युद्धरत होता है तो वह मरते हुए भी हजारों को मार डालता है।

सुलतान को सूचना दी गई कि चण्डोलो में पदमावती रूपी उसकी सखियाँ रूपी तराइयाँ नही थी जिनको छल करके हमने ग्रहण किया था वे हमको कलंकित करके जा रहे है।

टिप्पणी—तीख तुरंग गगन सिर लागा—यहाँ पर सम्वन्धातिशयोक्ति अलंकार है।

जिउ ऊपर—जीवन के ऊपर यहाँ पर लक्षण लक्षणा से अर्थ जीवन का मोह त्याग कर है।

छर कै''''''गरासे जाहिं—हमने जिन्हें छलपूर्वक ग्रहण मे ग्रसा अथवा वे ग्रहण लगाकर जा रहे है। व्यंग्यार्थ है हमने जिस रतनसेन को छलपूर्वक पकड़कर वन्दी वनाया था वही राहु के समान तेजस्वी राजा सूर्य रूपी सुलतान मे ग्रहण लगा अर्थात् कलंकित करके या तिरस्कृत कर जा रहा है। यहाँ पर सुलतान की नीचता, राजा की तेजस्विता और राजा के द्वारा शाह को मात दिया जाना व्यंग्य है। अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से गहन गरासा का अर्थ वन्दी वनाना और गहन गरासे की से ग्रहण लगाकर जाना, अपमानित करके जाना है।

तव अगमन होइ गोरा मिला। तूँ राजहिं लै चलु वादला॥
पिता मरै जो सँकरे साथा। मीचु न देइ पूत कै माँथा॥
मै अव आयु भरी औ भूंजी। का पछिताव आइ जौ पूजी॥
वहुतन्ह मारि मरौ जौ जूझी। ताकहँ जनि रोवहु मन वूझी॥
कुँवर सहस सँग गोरै लीन्हें। औरु वीर सँग वादल दीन्हें॥
गोरहि समदि वादला गाजा। चला लीन्ह आगें कै राजा॥
गोरा उलटि खेत भा ठाढ़ा। पुरुखन्ह देखि चाउ मन वाढ़ा॥
आउ कटक सुलतानी गँगन छपा मसि माँझ।
परत आप जग कारी होत आव दिन साँझ॥५॥

[इस अवतरण में गोरा वादल से आग्रह करता है कि तू अभी वालक है

इसलिए संसार मे अभी तेरा जीवित रहना आवश्यक है। मैं तेरा पिता हूँ, सब कुछ देख चुका हूँ अतः मुझे अब जीने की आवश्यकता नही है इसलिए तू राजा को लेकर चित्तौडगढ जा। मैं यहाँ यवनो से लोहा लूँगा।]

गोरा बादल को गले लगाकर बोला—हे बादल! तू राजा को लेकर चल। यदि पिता को अपने साथियो का साथ देने के लिए मरना हो तो वह पुत्र को मरने नही देता, स्वयं मर जाता है। मैने पूर्ण आयु प्राप्त करके खूब सुखोपभोग किया है। यदि आयु क्षीण हो जायेगी तो पश्चात्ताप की क्या आवश्यकता है। यदि मैं सहस्रो को मारकर जूझ भी जाऊँ तो मेरे लिए रोने की आवश्यकता नही है। गोरा ने एक सहस्र सरदार अपने साथ लिए और शेष बादल के साथ कर दिए। गोरा को प्रणाम करके बादल गर्जा और राजा को आगे लेकर चल दिया। गोरा घूमकर रण-क्षेत्र मे डट गया। वीरो को देखकर उसके हृदय मे उत्साह जाग्रत हो गया।

सुलतान की सेना चढ़ आई और आकाश अँधकार से ढक गया। संसार मे काली घटा चढती आ रही थी जिससे दिन मे ही साँझ हो गई।

टिप्पणी—मन बूझि—वाच्यार्थ है मन में समझकर किन्तु यह वाच्यार्थ अपर्याप्त है इसलिए उपादान लक्षणा से अर्थ लिया कि हमारी वीरता, शौर्य और कीर्ति को स्मरण करके हमारे जीवन को सार्थक मानकर खिन्न नही होना चाहिए।

समदि—प्रणाम करके।

गँगन छपा मसि माँझ—यहाँ पर अल्प अलंकार है। जब छोटे आधेय की अपेक्षा बडे आधार का भी छोटा वर्णन किया जाता है तब वहाँ अल्प अलकार होता है। यहाँ पर गगन का जोकि बडा आधार है, छोटे रूप मे वर्णन किया गया है।

होइ मैदान परी अब गोई। खेल हार दहुँ काकरि होई॥
जोबन तुरी चढ़ी जो रानी। चली जीति यह खेल सयानी॥
कटि चौगान, गोई कुच साजी। हिय मैदान चली लेइ बाजी॥
हाल सो करै गोइ लेई बाढ़ा। कूरी दुवौ पैज कै काढा॥
भइँ पहार वै दूनौ कूरी। दिस्टि नियर, पहुँचन सुठि दूरी॥
ठाढ़ बान अस जानहु दोऊ। सालै हिये न काढ़ै कोऊ॥
सालहिय हिय, न जाहि सहि ठाढ़े। सालहि भरै चहै अनकाढ़ें॥
मुहमद खेल प्रेम कर गहिर कठिन चौगान।
सीस न दीजै गोइ जिमि, हाल न होइ मैदान॥६॥

[इस अवतरण मे कवि ने श्लेष के सहारे प्रेम चौगान और युद्ध चौगान का बड़ा चित्रात्मक वर्णन किया है।]

युद्ध चौगान परक अर्थ—रानी छिपकर युद्ध-क्षेत्र में युद्ध रूपी चौगान खेलने मे उतरी। मालूम नही था ईश्वर विजय किसे देगा, शत्रु को या रानी को।

वह रानी यौवनपूर्ण घोड़े पर सवार थी। वह युद्ध मे निपुण रानी युद्ध का चौगान जीतकर जा रही थी। उसने हृदय मैदान मे कटि चौगान और कुच रूपी गेंदो को सम्हाल कर छिपा लिया अर्थात् वह वीर वेश बनाकर और घोड़े पर चढ़कर चल दी। युद्ध मे वही योद्धा हलचल मचा देता है जो उछलता हुआ दोनो दलो के बीच से अपना मार्ग निकाल लेता है। वे दोनो दल रूपी गोल पर्वत के समान थे। देखने मे समीप लगते थे किन्तु उनका पाना कठिन होता था। वे दोनो दल रूपी गोल खडे हुए ऐसे लगते थे मानो दो बाण खड़े हुए थे। वे हृदय को सालने वाले थे, कोई उनको हटाने मे समर्थ नही था। वे खडे हुए हृदय को इतना दुःख दे रहे थे कि देखते नही बनता था। वे चलाए हुए दुःख दे रहे थे और मार देते थे।

मोहम्मद कवि कहते है कि युद्ध का चौगान खेलना बडा कठिन है अत प्रेम का चौगान ही खेलना चाहिए क्योकि रणभूमि में तब तक हलचल नही होती जब तक सिर रूपी गेंद उसे समर्पित नही की जाती।

प्रेम चौगान परक अर्थ—हृदयरूपी मैदान में कुच रूपी गेद पड़ी है। पदमावती और शाह दोनो मे पता नही किसे विजय मिलेगी। रानी यौवन के घोड़े पर सवार है। वह विजयिनी होकर चल दी क्योकि कटिरूपी चौगान और कुच रूपी गेंद को हृदय रूपी मैदान मे छिपा लिया है। चौगान मे वही हलचल मचाता है जो गेंद लेकर दोनो दलो के बीच से निकल जाता है। (यहाँ पर रानी का दल और शाह का दल दो दल हैं। रानी और शाह खिलाड़ी है। रानी कटि रूपी चौगान और कुचरूपी गेद छिपाकर दोनो दलो से निकल गई। बस क्या था हलचल मच गई।) वे दोनो साथ मे दोनो गोलो को वास भी स्तनों के रूप लिए थी। स्तन पर्वत के समान अटल थे। देखने में पास थे किन्तु उन्हे कोई पा नही सकता था। वे ऐसे खडे हुए थे जैसे बाण। वे लोगों के हृदय को सालते थे किन्तु उन्हे पकड़ने या निकालने की क्षमता किसी में नही थी। वे दूसरो के हृदय को सालते हैं और खड़े हुए देखते नही बनते। (व्यंजना है कि उन्हें देखकर यह जी करता है कि उन्हे मसल दिया जाय)। वे बिना निकालने के प्रयास के ही ऐसा सालते है कि लोग मर जाते है। (व्यंजना है कि बिना स्पर्श किए हुए ही लोग उन्हे देखकर मर जाते हैं अर्थात् मुग्ध हो जाते हैं।)

टिप्पणी—मैदान—वह भूमि जहाँ चौगान खेला जाता है।

प्रेम चौगान के पक्ष मे—हृदयरूपी मैदान।

युद्ध चौगान के पक्ष मे—युद्ध-क्षेत्र रूपी मैदान।

गोई—फारसी मे गूय शब्द है। इसका अर्थ है गेद।

प्रेम चौगान पक्ष मे—कुचरूपी गेद।

युद्ध चौगान पक्ष मे—सिररूपी गेद।

हार=पराजय।

डा० अग्रवाल ने हार का पाठ हाल दिया है। हाल गोल को कहते थे। उस अवस्था मे अर्थ क्रमशः इस प्रकार है—

(क) प्रेमचौगान परक अर्थ—स्तनरूप दो गोल किसके होंगे अर्थात् पदमावती उन्हें बचा ले जाएगी या शाह उसे जीत लेगा।

(ख) युद्ध चौगान परक अर्थ—युद्ध मे दो दल रूपी गोल मे से सिर काटता हुआ कौन निकलेगा—राजा या शाह।

तुरी=घोड़ा।

(क) प्रेमचौगान परक अर्थ—यौवन तुरंग पर चढकर अर्थात् यौवन से प्रेरित होकर।

(ख) युद्ध चौगान परक अर्थ—यौवन सम्पन्न घोड़े पर सवार होकर।

कटि चौगान गोइ कुच राखी—प्रेमपरक अर्थ होगा कटि रूपी चौगान (वल्ला) और कुचरूपी गेंद जीतकर अपने अधीन कर सजा ली है।

युद्धपरक अर्थ—कटि रूपी चौगान और कुचरूपी गेंद छुपाकर बाँध ली अर्थात् पुरुष वेश बना लिया।

हिय मैदान चली लेई बाजी—प्रेमपरक—हृदय रूपी मैदान में वह कटि की चौगान और कुच रूपी गेद को जीतकर ले गई।

युद्धपरक—वह युद्धरूपी मैदान मे उत्साह के साथ बाजी जीतकर चल दी।

हाल सो करे—वह गोल करता है अथवा वह हलचल मचा देता है।

कूरी दुवौ पैज कै काढा—प्रेमपरक—जो दृढतापूर्वक दोनो स्तनरूपी गोलो को पकड़ लेता है।

युद्धपरक—जो दोनो सेनाओ के बीच से पैदल ही अपना मार्ग निकाल लेता है।

फिरि आग गोरै तब हाँका। खेलौ आजु करौं रन साका॥
हौं खेलौ धौलागिरी गोरा। टरौं न टारा लाग न मोरा॥
सोहिल जैस इंद्र उपराही। मेघ घटा मोहि देखि बिलाही॥
सहसौ सीसु सेस सरि लेखौ। सहसौ नैन इंद्र भा देखौ॥
चारिउ भुजा चतुर्भुज आजू। कंस न रहा औरु को राजू॥
हौ होइ भीवँ आजु रन गाजा। पाछें घालि डुगवै राजा॥
होइ हनिवँत जमकातरि ढाहौं। आजु स्वामि सँकरे निवाहौं॥
होइ नल नील आजु हौ देउँ समुँद महँ मेंड।
कटक साहि कर टेकौ होइ सुमेरु रन वेड॥७॥

[इस अवतरण मे कवि ने गोरा के युद्धोत्साह का बडा ओजपूर्ण वर्णन किया है।]

गोरा ने आगे बढ़कर कहा—आज मैं युद्ध-क्रीड़ा करूँगा और रण को सार्थक

करूँगा। मैं धौलागिरि के सदृश अडिग होकर युद्ध-क्रीडा करूँगा और किसी के हटाने से नहीं हटूँगा। कभी पीछे घोड़े की बाग नहीं मोड़ूँगा। युद्धरूपी मेघों की घटाएँ उस समय मुझे देखकर विलुप्त हो जाएँगी। मैं युद्धरूपी आकाश में अगस्त्य नक्षत्र के सदृश शोभायमान होऊँगा। युद्धक्षेत्र में मैं सहस्र सिर वाले शेषनाग के सदृश दिखाई पड़ूँगा। सहस्रों नेत्रों से इन्द्र के समान सर्वत्र देखूँगा। आज चार भुजा धारण कर चतुर्भुज विष्णु हो जाऊँगा। उन विष्णु के अवतार कंस जैसे राजा की नहीं चली तो फिर अलाउद्दीन जैसे छोटे-छोटे राजा मेरे सामने कैसे खड़े होंगे। दुर्गपति राजा रतनसेन को मैं पीछे भेजकर भीम के समान गर्जन करूँगा। आज मैं अपने स्वामी की विपत्ति काटूँगा। जिस प्रकार हनुमान ने अपने स्वामी की विपत्ति काटने के लिए अहि-रावणपुरी में स्थित राक्षसों का वध किया था उसी प्रकार आज मैं अपने स्वामी की विपत्ति दूर करने के लिए यवनों का संहार करूँगा। आज मैं नल और नील बनकर समुद्र में सेतु बना दूँगा। सुमेरु के समान अडिग होकर रण की अर्गला बनाकर शाह की सेना को रोकूँगा।

टिप्पणी—करौं रन साका—वाच्यार्थ है कि मैं रण को सार्थक करूँगा। तात्पर्यार्थ है कि आज मैं इतने पराक्रम से इतना भयंकर युद्ध करूँगा कि युद्ध का नाम आज सार्थक हो जाएगा।

सोहिल जैस इंद्र उपराहीं—यहाँ पर इन्द्र के स्थान पर गगन होना चाहिए। जब आकाश में अगस्त्य नक्षत्र उदित होता है तो मेघ विलीन हो जाते हैं। इसी प्रकार गोरा कहता है कि उसके युद्धारूढ होने पर शत्रु की सेना रूपी बादल विनष्ट और विलीन हो जाएँगे। तीसरी पंक्ति में पूर्वार्द्ध में उपमा अलंकार है और उत्तरार्द्ध में रूपक।

चारिउ भुजा—गोरा की भुजाएँ दो ही थीं और उन दोनों भुजाओं में तलवार धारण किए हुए था। तलवारों को मिलाकर उसने अपने चार हाथ माने हैं।

और की राजू—यहाँ पर काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य है। कवि का अभिप्राय है कि जब विष्णु के अवतार कृष्ण के आगे कंस जैसा महापराक्रमी राजा नहीं टिका तो फिर मेरे सामने जिसके आज चार हाथ हो रहे हैं, अलाउद्दीन जैसे छोटे-छोटे राजा कैसे टिक सकते हैं। व्यंजना है कि कृष्ण जो विष्णु के अवतार मात्र थे, जिनके केवल दो ही हाथ थे, जब उनके आगे कंस जैसा राजा नहीं टिक सका फिर मैं तो आज खड्ग रूपी दो अतिरिक्त भुजाओं को धारण करके साक्षात् विष्णु रूप हो गया हूँ, फिर अलाउद्दीन जैसे साधारण राजा मेरे सामने कैसे टिक सकते हैं। यह तो प्रश्न ही नहीं उठता है।

हौं होइ भीवँ आज रन गाजा—डा० अग्रवाल का मत है कि भीम से यहाँ पर जायसी का अभिप्राय गुजरात के राजा भीमदेव द्वितीय चालुक्य से है किन्तु मैं इससे सहमत नहीं हूँ। कवि का अभिप्राय पौराणिक भीम से है जो अपने रणकौशल और वीरता के लिए हनुमान जी के सदृश ही प्रख्यात है।

होइ हनिवँत जम कातरि ढाहाँ—यहाँ पर रामायण की एक अंतर-कथा व्यंग्य है। अहिरावण पातालपुरी का राजा था। वह राम और लक्ष्मण को देवी के आगे बलि देने को उठाकर ले गया था। हनुमानजी ने पातालपुरी मे प्रवेश करके और सब राक्षसों का वध करके अपने स्वामी की तथाकथित विपत्ति का निवारण किया था। गोरा कहता है कि आज मै हनुमान के सदृश ही अपने स्वामी के विरोधी यवनो का संहार करूँगा।

इस अवतरण मे उत्साह स्थायी का बड़ा ओजपूर्ण वर्णन किया गया है।

ओनई घटा चहुँ दिसि आई। चमकहि खरग बान झरि लाई॥
डोलै नाहि देव जस आदी। पहुँचे तुरुक बादि कहँ बादी॥
हाथन्ह गहे खरग हिरवानी। चमकहिं सेल बीज की बानी॥
सजे बान जानहुँ ओइ गाजा। बासुकि डरै सीस जनि बाजा॥
नेजा उठा डरा मन इंदू। आइ न बाज जानि कै हिंदू॥
गोरैं साथ लीन्ह सब साथी। जनु मैमंत सुंड बिनु हाथी॥
सब मिलि पहिलि उठौनी कीन्ही। आवत अनी हाँकि सब लीन्ही॥
रुंड मुंड सब टूटहि सिउँ बकतर और कुंडि।
तुरिअ होहि बिनु काँधे हस्ति होहि बिनु सुंडि॥८॥

[इस अवतरण में युद्ध के लिए प्रस्तुत सेनाओ का वर्णन है। साथ ही गोराकृत पराक्रम का भी वीभत्स चित्र खीचा गया है।]

चारो ओर से सेनाएँ इस प्रकार उमडती आ रही-है जैसे बादल उमड़ते आ रहे हों। तलवारे चमक रही थी और बाणों की झड़ी लग रही थी। गोरा युद्ध मे इस प्रकार अडिग था मानो जड़ देव हो। तुरुक लोग उससे युद्ध करने के लिए आ धमके जैसे वादी की टक्कर प्रतिवादी लेता है। वे हाथों मे हिरवानी तलवार धारण किए हुए थे। उनके सेल बिजली की तरह चमक रहे थे। वे ऐसे बाणो से सुसज्जित थे मानो वज्र हो। वासुकि नाग डरने लगते है कि कही हमसे ही आकर न टकराएँ। उनके उठे हुए नेजे देखकर इन्द्र मन मे डरने लगता है कि कही मुझे हिन्दू समझकर मुझसे ही आकर न लडने लगे। गोरा अपने सब साथियों को साथ लेकर युद्ध को चल दिया। उस समय वह ऐसा युद्धोन्मत्त था जैसे बिना सूँड का मतवाला हाथी। सबने मिलकर पहल की अर्थात् स्वयं पहले आक्रमण किया। सुलतान की आती हुई सेना को ललकार दिया।

अनेक रुण्ड जिरह-बख्तर के साथ और मुण्ड लड़ाई के टोप के साथ कटकर गिरने लगे। घोड़े बिना गर्दन के और हाथी बिना सूँड़ के होने लगे।

टिप्पणी—प्रथम पंक्ति मे उपमा और रूपक का संकर है।

देव जस आदी—जैसे आदि युग के महान् अड़ियल दैत्य होते थे।

वादि कहँ वादी—यहाँ पर पदगत अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। वादी का अर्थ शत्रु है। जिस दूसरे वादी का प्रतिद्वन्द्वी है, शत्रु है। कवि दोनों शत्रुओं की समकक्षता व्यंजित करना चाहता है। अतः उसने इस ध्वनि को प्रश्रय दिया है।

सेल—एक प्रकार का वल्लम।

उठौनी—आक्रमण।

कूँडि—लडाई मे पहनने की लोहे की टोपी।

इस अवतरण मे वीररस व्यग्य होने से असंलक्ष्यक्रम व्यग्य ध्वनि है।

शब्दार्थ—**ओनई**=उडना।

देव=दैत्य।

आदि=(१) जड (मेरी दृष्टि में), (२) बिल्कुल पूरा (शुक्ल जी), (३) एकदम (डा० अग्रवाल)।

वादि=शत्रु।

वादी=प्रतिवादी।

वाजा=टकराना।

नेजा=भाला।

वान=वाण या गोले।

इन्दू=इन्द्र।

मैमंत=मतवाला।

स्यों=साथ।

वख्तर=सिपाहियो के पहनने का एक रक्षा करने वाला वस्त्र।

पहिलि उठौनी—पहला धावा।

अनी=सेना।

हाँकि सब लीन्ही—ललकार कर युद्ध करने लगे।

पाठ भेद—दूसरी पंक्ति का उत्तरार्द्ध।

शुक्लजी मे—पहुँचे आइ तुरुक सब वाही। इसमे कोई महत्त्वपूर्ण पाठभेद नही है।

ओनवत आइ सेन सुलतानी। जानहुँ परलय आव तुलानी॥
लोहे सेन सूझ सब कारी। तिल एक कहूँ न सूझ उघारी॥
खड़ग फौलाद तुरुक सब काढें। धरे बीजु अस चमकहि ठाढे॥
पीलवान गज पेले बाँके। जानहुँ काल करहि दुइ फाँके॥
जनु चमकत करहि सब भवाँ। जिउ लेइ चाहहिं सरग अपसवाँ॥
सेल सरप जनु चाहहि डसा। लेहि काढ़ि जिउ मुख विप-वसा॥
तिन्ह सामुँह गोरा रन कोपा। अंगद सरिस पावँ भुइँ रोपा॥

सुपुरुष भागि न जान, भुइँ जौ फिरि फिरि लेइ।
सूर गहे दोऊ कर स्वामी काज जिउ देह ॥६॥

[इस अवतरण मे कवि ने सुलतान की सेना के आक्रमण का वर्णन किया है।]

सुलतान की सेना घेरती हुई चली आ रही थी। ऐसा मालूम होता था जैसे प्रलय आ रही हो। सेना लोहे से काली दिखाई पड़ रही थी। वह कही से भी उघडी हुई नही दिखाई पड़ती थी। सब तुर्क लोग फौलाद की तलवारे लिये हुए थे। ये खड़े हुए तलवार लिये हुए ऐसे चमक रहे थे जैसे बिजलियाँ चमक रही हो। पीलवान लोग बाँके हाथियों को अकुश मारकर आगे बढा रहे थे। ऐसा लग रहा था मानो काल दो टुकड़े कर देना चाहता था। ऐसा लग रहा था कि जैसे यमराज की फौज घूम रही हो और वह जीव ले करके आसमान मे उड़ जाना चाहती हो। साँप रूपी बरछे ऐसे लगते थे कि मानो डस लेना चाहते हो। उनके मुख पर विष लगा हुआ था जिससे कि प्राण खीच लेते थे। उनके सामने गोरा युद्ध मे क्रुद्ध हुआ और उसने अंगद के समान युद्ध मे अपना पैर रोक दिया। वीर पुरुष युद्ध से भागना नही जानता बल्कि बार-बार युद्धक्षेत्र मे जमता है और युद्ध करता है। वीर दोनों हाथों मे तलवार लेकर स्वामी कार्य के लिए अपने प्राण दे देता है।

टिप्पणी—जानहुँ······तुलानी—डाक्टर अग्रवाल मे इसका पाठान्तर इस प्रकार मिलता है—'जानहुं पुरवाई अतिवानी' इस पक्ति का अर्थ है मानो प्रचंड पुरवाई वहती चली आ रही हो।

पीलवान······हाँके—डाक्टर अग्रवाल मे इसका पाठान्तर इस प्रकार दिया है—'कनक वानि गजवेलि सो नाँगी। जाननहुँ काल करहि जिउ माँगी।' इसका अर्थ है गजवेल जो कि लोहे की बनी हुई थी। नंगी तलवारे सोने के ससान चमक रही थी। मानो काल उन तलवारों के रूप मे अपने हाथ पसार कर मनुष्यो के प्राण हरना चाहता था।

विशेष—इस अवतरण मे कवि ने हिन्दू वीर के आदर्श रूप का वर्णन किया है।

भै बगमेल सेल घन घोरा। औ गज पेल अकेल सो गोरा।
सहस कुंवर सहसहुं सत बाँधा। भार पहार जूझि कहं काँधा॥
लागे मरै गोरा के आगें। बाग न मुरै घाव मुख लागें॥
जैस पतंग आगि धंसि लेही। एक मुएं दोसर जिउ देहीं॥
टूटहिं सीस अधर धर मारे। लोटहि कंध कबंध निनारे॥
कोई परहि रूहिर होइ राते। कोई घायल घूमहिं जस माँते॥
कोई खुर खेह गए भरि भोगी। भसम चढाइ परे जनु जोगी॥
घरी एक भा भारथ भा असवारन्ह मेल।
जूझि कुंवर सब बीते गोरा रहा अकेल ॥१०॥

[इस अवतरण मे गोरा के युद्ध का बड़ा मार्मिक वर्णन किया गया है ।]

इधर सवारो ने घोड़ों की वाग मिलाकर आक्रमण किया और हाथियो का रेलम-पेल धावा हुआ । उधर गोरा अकेला था । जिसके साथ एक सहस्र कुँवर थे । वे सत धारण किए हुए हैं । उन्होने सुलतानी सेना से युद्ध का पहाड़ के सदृश भार अपने कन्धे पर धारण किया । वे तुरन्त गोरा के आगे वढ-वढकर वीरगति को प्राप्त होने लगे । मुह पर घाव लगने से भी उनके घोड़ों की वागें नही मुड़ती थी । जिस प्रकार पतिगे आग में धँस कर जान देते है उसी प्रकार वे आगे वढ़ कर एक के वाद दूसरा प्राण देने लगे । उन वीरो के सिर गिरकर कट जाते तो उनके धड़ ही अधर मे युद्ध करते थे । फिर धड़ और सिर अलग-अलग भूमि पर लोटने लगते थे । कोई पागल होकर व्याकुल हो चक्कर काटने लगते थे । कोई घायल सरदार घोड़े की खुर की धूल से धूसरित होकर ऐसे दीख रहे थे मानो भस्म लगाए योगी हों ।

टिप्पणी—वगमेल—वाग मिलाकर एक साथ घोड़ों का धावा । इसका अर्थ गुत्थम-गुत्था युद्ध भी होता है ।

भार पहार जूझि कहँ कांधा—यहाँ पर यवनों के युद्ध की भयंकरता व्यंग्य है । यहाँ रूपक अलंकार से वस्तु व्यंग्य है ।

पूरे अवतरण मे वीररस व्यंग्य है। अत. असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि है ।

शब्दार्थ—वाग मिलाकर=घुड़सवारो को पंक्ति मे चला कर धावा वोलना ।

सेल=वरछा । एक प्रकार के भाले की शस्त्र जाति को कहते है। इस शब्द का प्रयोग जायसी ने पदमावत मे अनेक वार किया है । किन्तु अन्य किसी प्राचीन ग्रन्थ मे यह नाम नही मिलता । अवुलफजल ने सोलाटा नामक हथियार की चर्चा की है । सम्भवत: जायसी ने उसी को सेल कहा है ।

पतंग=पतिगा ।

अधर धर मारे=धड़ अधर से मारकाट मचाता है ।

अधर=पृथ्वी और आकाश के वीच का भाग । यहाँ पर लक्ष्यहीन प्रहार करने के अर्थ में यह शब्द प्रयुक्त हुआ ।

कवन्ध=धड़ ।

निनारे=अलग-अलग ।

रुहिर=रुधिर ।

राते=लाल ।

जस माँते=उन्मत्त की भाँति ।

खुर खेह=घोड़ों के खुरों की धूल ।

भारथ=महाभारत अथवा महायुद्ध ।

पाठ भेद—पाँचवी पक्ति मे—

शुक्ल जी का पाठ—लोटहिं कध कवंध किनारे ।

डा० अग्रवाल का पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है ।

गोरैं देख साथ सब जूझा। आपन काल नियर भा बूझा ॥
कोपि सिघ सामुहँ रन मेला। लाखन्ह सौ नहिं मुरै अकेला ॥
लई हाँकि हस्तिन्ह कै ठटा। जैसें सिघ बिडारै घटा ॥
जेहि सिर देइ कोपि करवारू। सिउँ घोरा टूटै असवारू ॥
टूटहिं कंध कबंध निनारे। माँठ मँजीठि जानु रन डारे ॥
खेलि फागु सेदुर छिरिकावा। चाँचरि खेलि आगि जनु लावा ॥
हस्ती घोर आइ जो ढूका। उठै देइ तिन्ह रुहिर भभूका ॥
भै अग्याँ सुलतानी बेगि करहु एहि हाथ।
रतन जात है आगें लिए पदारथ साथ ॥११॥

[इस अवतरण मे गोरा के शौर्यपूर्ण पराक्रम का वर्णन किया गया है।]

गोरा ने देखा कि उसके सब साथी जूझ गए है और उसकी मृत्यु भी निकट आ गई है अतएव वह सिंह के समान क्रोधित होकर रण मे सामने टूट पड़ा। वह लाखों से अकेला नही मुड़ता था। उसने यवनरूपी हाथियों की सेना पर हुँकार करके इस प्रकार आक्रमण किया और उसे ऐसे नष्ट करने लगा कि जैसे सिंह हाथियो के समूह को विडार डालता है। जिसके सिर पर क्रोधित होकर तलवार का वार करता है वही घोड़े पर से कटकर गिर जाता है। सिर और धड़ कट कर अलग-अलग गिर रहे थे मानो युद्धक्षेत्र में मजीठ के मटके फोड़ दिए गए हो। वह फाग खेलकर सिंदूर छिडक रहा था अथवा चाँचर खेलकर युद्धरूपी अग्नि की ओर दौड रहा था। हाथी या घोड़ा जो कोई उसकी ओर झुकता था उसके शरीर से इस प्रकार रक्त की धारा निकल पड़ती थी जैसे आग की लपट निकल रही हो।

सुलतान की आज्ञा हुई कि इसको तुरन्त पकडो। आगे रतनसेन पदमावती को लिए हुए भागा जा रहा है।

टिप्पणी—लई हाँकि हस्तिन्ह कै ठटा—यहाँ पर 'हस्तिन्ह कै ठटा' मे रूपकातिशयोक्ति मानता हूँ। कवि ने यवन सेना समूह के लिए 'हस्तिन्ह कै ठटा' का प्रयोग किया है।

जैसे सिंह बिडारै घटा—यहाँ पर उदाहरण अलंकार है।

हस्ति घोर आए जो ढूका—'हस्ति घोर' मे उपादान लक्षणा है। हस्ति का अर्थ है हाथी पर चढकर लडने वाला योद्धा और 'घोर' का अर्थ है घोड़े पर सवार योद्धा।

रतन जात है आगे लिए पदारथ साथ—यहाँ पर रतन शब्द में शब्दशक्ति उद्भव वस्तु ध्वनि है। यहाँ पर कवि ने रतनसेन के अत्यधिक महत्त्व की व्यजना की है।

सबै कटक मिलि गोरहि छेकाँ। गूंजत सिंघ जाइ नहिं टेका ॥
जेहि दिसि उठै सोइ जनु खावा। पलटि सिंघ तेहि ठाँव न आवा ॥
तुरुक बोलावहि, बोले बाहाँ। गोरै मीचु धरी जीउ माहाँ ॥
मुए पुनि जूझि जाज, जगदेऊ। जियत न रहा जगत महँ केऊ ॥
जिनि जानहु गोरा सो अकेला। सिंघ के मोंछ हाथ को मेला ? ॥
सिंघ जियत नहिं आयु धरावा। मुए पाछ कोई घिसियावा ॥
करै सिंघ मुख सौंहहि दीठी। जौं लगि जियै देइ नहिं पीठी ॥
रतनसेन जो बाँधा, मसि गोरा के गात।
जौ लगि रुहिर न धोवौं तौ लगि होइ न रात ॥१२॥

[इस अवतरण में कवि ने गोरा के सम्पूर्ण कटक के द्वारा आक्रान्त हो जाने का मार्मिक चित्र चित्रण किया है।]

शाह की सारी कटक ने मिलकर गोरा को घेर लिया। गरजता हुआ सिंह रोका नहीं जा सकता। जिसकी तरफ वह उन्मुख होता है तो ऐसा लगता है कि उसे खा जाएगा। फिर घूमकर उसी स्थान पर नही आता। तुरक उसको ललकारते हैं उसकी बाँहे उत्तर देती हैं। गोरा ने अपना अन्त निश्चित समझ लिया है। वह सोचने लगा कि जाज और जगदेव जैसे योद्धा भी जूझ गए। संसार मे कोई जीवित नही रहता। फिर उसने शत्रु को ललकार कर कहा—गोरा को अकेला मत समझो। सिंह की मूँछों पर कोई हाथ नही लगा सकता। सिंह को जीवितावस्था मे कोई नही पकड सकता। यह बात दूसरी है कि मरने के बाद चाहे कोई घसीट ले। सिंह हठपूर्वक सामने ही आक्रमण करता है। वह जब तक जीवित रहता है पीठ नही देता।

हे शत्रुओ! तुमने रतनसेन को बाँध लिया जिससे गोरा के शरीर मे कालिमा लग गई। उस कालिमा को मैं जब तक रुधिर से नहीं धो लूंगा तब तक निष्कलंक न होऊँगा।

टिप्पणी—जिहि दिसि उठै……खावा—यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलंकार से गोरा की भयानक और अदम्य वीरता व्यंजित की गई है। अतः यहाँ पर कवि प्रौढ़ोक्ति-सिद्ध अलंकार से वस्तु व्यंग्य है।

तुरुक बोलावे……वाहा—'बोले बाँहों' में अर्थान्तिर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। बांहें तो बोल नहीं सकतीं अतः मुख्यार्थ का बाध हुआ। उपादान लक्षणा से अर्थ हुआ उसकी बाँहों की तलवारें बोलती थी अर्थात् बांहो से वह बडी तत्परता से तलवार चलाकर शत्रुओ को उनकी तलवार का उत्तर देता था। यहाँ पर युद्ध की तत्परता और अदम्य वीरता ही व्यंग्य है।

रतनसेन……गात—यहाँ पर असंगत अलंकार है। असंगतता यह है कि बाँधा तो रतनसेन गया किन्तु कालिमा गोरा के लगी।

जो लगि रुहिर······गात—यहाँ पर विभावना अलंकार है। अकारण से कार्य की सिद्धि कही गई है।

होई न राता—यहाँ रात शब्द निष्कलंक के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ। यहाँ विशेषण वक्रता है।

सरजा बीर सिघ चढ़ि गाजा। आइ सौह गोरा के बाजा॥
पहलवान सो बखाना बली। मदद मीर हमजा औ अली॥
मदद अयूब सीस चढ़ि कोपे। राम लखन जिन्ह नानु अलोपे॥
औ ताया सालार सो आए। जिन्ह कौरौ पंडौ बंदि पाए॥
लँधउर धरा देव जस आदी। और को मल बादि कहं बादी॥
पहुँचा आइ सिघ असवारू। जहाँ सिघ गोरा बरियारू॥
मारेसि साँगि पेट महँ धाँसी। काढेसि हुमुकि आँति भुइँ खसी॥
भाँट कहा धनि गोरा तू भोरा रन रानु।
आँति सैंति करि काँधे तुरै देत है पाव॥१३॥

[इस अवतरण में सरजा वीर के द्वारा गोरा के वध का प्रसंग कवि ने बड़े मार्मिक और ओजपूर्ण शब्दो मे किया है।]

वीर सरजा जो सिंह पर चढकर गरजता था वह गोरा से आकर भिड गया। वह बलशाली पहलवान कहा जाता था। मीर हमजा और अली उसकी सहायता कर रहे थे। उसकी सहायता को अयूब भी उसके सिर पर खड़ा था। यह अयूब वह व्यक्ति था जिसने राम-लक्ष्मण के यश को भी फीका कर दिया था अर्थात् उसकी वीरता के आगे राम-लक्ष्मण की वीरता भी फीकी पड़ गई थी। उसी समय ताया सालार नामक योद्धा भी आ गया था। कहते है कौरवो और पाँडवो की वीरता भी उनकी वीरता के आगे फीकी थी। उस सरजा वीर ने लंधौर देव जैसे वीर को पकड़ कर अपने आधीन कर लिया था। फिर और दूसरा मल्ल उसका प्रतिद्वन्द्वी हो सकता था, उसे भी पकड़ लिया। ऐसा वह महान् वीर सिह पर चढकर वहाँ आ पहुँचा जहाँ गोरा वीर था। उसने आते ही साँगी मारी जो पेट मे घुस गई फिर जोर लगा कर उसे खीच लिया जिससे गोरा की आँते धरती पर आ गिरी।

भाट ने कहा, हे गोरा तुझे धन्य है, तू युद्ध मे भोला भीम जैसा है, तू आँतो को समेट कर और कन्धे पर डालकर घोड़े पर पैर रख रहा है।

टिप्पणी—सरजा—यह अल्लाउद्दीन का एक महान् योद्धा था। उसके सम्बन्ध में जायसी ने कहा है—

सरजा सेर पुरुख बरियारू।
ताजन नाग सिंह असवारू॥

अर्थात् सरजा सिंह के समान बलवान पुरुष था। वह साँप का चावुक लिए सिह पर सवार रहता था। इससे अधिक और कुछ ज्ञात नहीं है।

मीर हमजा—यह मोहम्मद साहब के चचा थे। उनका नाम यवन इतिहास मे प्रसिद्ध है।

अली—मुहम्मद साहब के चचा जात भाई और दामाद थे। यह मुसलमानो के चौथे खलीफा थे।

अयूब—यवन इतिहास के यह एक बडे धर्मात्मा पुरुष थे। इन्होने अपनी आस्तिकता और धर्मपरायणता के कारण अनेक कष्ट सहन किए थे। बाद मे उन पर भगवान् ने कृपा की तो उनका जीवन सुखमय हो गया।

ताया सालार—ताया का फारसी मे अर्थ होता है आज्ञाकारी। मेरी समझ मे ताया शब्द ताऊ के अर्थ मे आदरसूचक मात्र है।

जिन्ह कौरो पाँडो बंदि पाए—जिसने कौरवो और पाण्डवो को बन्धन मे डाल दिया था। यहाँ पर कौरव-पाण्डव का अर्थ है कौरवो और पाण्डवों के समान वीरो को बदी बनाया था। यहाँ पर साध्यवसाना गौणी लक्षणा है।

लँधउर देव—लधौरदेव नामक एक हिन्दू राजा थे जिसे मीर हमजा ने जीत कर अपना मित्र बनाया।

कहेसि अन्त अब भा भुइ परना। अन्त सो तन्त खेह सिर भरना॥
कहि कै गरजि सिंघ अस धावा। सरजा सारदूर पहँ आवा॥
सरजै कीन्ह साँघि सौ धाऊ। परा सरग जनु परा निहाऊ॥
बज्र साँगि औ बज्र के डाँडा। उठी आगि सिर बाजत खाँडा॥
जानहुँ बजर बजर सौ बाजा। सब ही कहा परी अब गाजा॥
दोसर खरग कुंडि पर दीन्हा। सरजै धरि ओड़न पर लीन्हा॥
तीसर खरग कंध पर लावा। काँध गुरुज हन घाव न आवा॥
अस गौरै हठि मारा उठि बजर की आगि।
कोइ न नियरें आवै सिंघ सदूरहि लागि॥१४॥

[इस अवतरण मे गोरा और सरजा के युद्ध का बड़ा ओजपूर्ण वर्णन किया गया है।]

गोरा ने अपने मन में सोचा कि अब तो पृथ्वी पर गिरना ही है। यही जीवन का अन्तिम रहस्य है कि शरीर धूल मे मिल जाता है। इतना कहकर वह गरज कर सिह के समान झपटा और सरजा शार्दूल के सामने आया। सरजा ने जिस साँगी से गोरा को घायल किया था गोरा की तलवार उससे टकराई और ऐसी आवाज हुई जैसे लोहे का घन वजा हो। साँगी फौलाद की थी और उसकी खड्ग भी फौलाद की

थी। साँगी से खड्ग के टकराते ही आग निकली और ऐसे मालूम हुआ कि जैसे वज्र से वज्र टकरा गया हो। सबने यही समझा कि अब गाज गिरी है। दूसरा वार उसने सरजा के सिर की कुण्डी पर किया। उस वार को सरजा ने गर्दन पर रोका। गोरा ने तलवार का तीसरा हाथ गर्दन पर मारा। कन्धे पर गुर्ज होने के कारण वह वार भी सफल न हुआ।

इस प्रकार गोरा ने बलपूर्वक कई प्रहार किए। उनसे वज्र की आग उठी। सिंह और शार्दूल के उस पारस्परिक युद्ध के समीप कोई नही आ रहा था।

टिप्पणी—भुई परना—यहाँ पर मरने के अर्थ में है। यह अर्थ अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनिमूलक है। यहाँ पर गोरा की घोर निराशा व्यंग्य है।

सबही कहा परी अब गाजा—गाज पड़ने का अर्थ है 'अनिष्ट का होना' यह अर्थ भी अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि मूलक है। गुर्ज का अर्थ है एक प्रकार की गदा।

तब गरजा कोपा बरिवंडा। जानहुँ सदूर केर भुजदण्डा॥
कोपि गरजि मेलेसि तस बाजा। जनहुँ परी परबत सिर गाजा॥
ठाठर टूट-टूट सिर तासू। सिउँ सुमेरु जनु टूट अकासू॥
धमकि उठा सब सरग पतारू। फिरि गै डीठि भवाँ संसारू॥
भा परलौ सबहूँ अस जाना। काढ़ा खरग सरग नियराना॥
तस मारेसि सिउँ घौरैं काटा। धरती फाटि सेस फन फाटा॥
अति जौ सिंघ बरिअ होइ आई। सारदूर सौ कवनि बढ़ाई?॥
गोरा परा खेत महँ सुर पहुँचावा पान।
बादल लै गा राजहिं लै चितउर नियरान॥१५॥

[इस अवतरण मे गोरा की वीर गति प्राप्ति के मार्मिक प्रसंग का करुण एवं ओजपूर्ण चित्रण किया गया है।]

तब महावीर सरजा ने कोप कर आक्रमण किया। उसके भुजदण्ड ऐसे थे जैसे शेर के हों। उसने क्रोधित होकर गुर्ज चलाई। वह गोरा से ऐसे टकराई जैसे कि पर्वत पर बिजली गिरी हो। गोरा के शरीर का पंजर टूट गया और सिर फूट गया। ऐसा मालूम हुआ जैसे कि सुमेर के साथ आकाश टूट कर गिर पड़ा हो। आकाश और पाताल सब धमक उठे। सब कंपायमान हो उठे। गोरा की दृष्टि फिर गई और उसके लिए संसार फिर गया। सबने ऐसा समझा कि प्रलय हो गई। सरजा ने तलवार निकाली मानो गोरा का स्वर्ग समीप आ गया। उसने ऐसा प्रहार किया कि घोड़े सहित सवार काट दिया। धरती फट गई और शेष का फन विदीर्ण हो गया। सिंह कितना भी बलवान होकर झपटे किन्तु शार्दूल के आगे उसकी क्या प्रशंसा हो

है। गोरा रणक्षेत्र में वीरगति को प्राप्त हुआ। उसकी उस वीरता को देखकर देवताओ ने उसे पान पहुँचाया अर्थात् उसे स्वर्ग मे आमन्त्रित किया।

टिप्पणी=काढ़ा खड्ग सरग नियराना—यहाँ पर असंगत और चपलातिशयोक्ति अलंकार का संकर है। असंगत अलकार इसलिए है कि तलवार निकाली सरजा ने और स्वर्ग के समीप गोरा पहुँचा। चपलातिशयोक्ति इसलिए है कि मारने की क्रिया हो भी नही पाई। केवल तलवार निकाली भर गई कि स्वर्ग समीप आ गया।

शार्दूल सों कवन बड़ाई—यहाँ पर काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य है। अर्थ है कि शार्दूल के सामने सिंह की शक्ति का कोई मूल्य नही होता है। यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति भी है।

छठी पक्ति मे भी अतिशयोक्ति अलंकार है।

गोरा परा खेत महँ—यहाँ पर वाक्यगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से गोरा की मृत्यु की व्यंजना की गई है।

सुर पहुँचावा पान—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने इसका पाठ दिया है 'सिर पहुँचावा बान'। यह पाठ अर्थ की दृष्टि से निरर्थक-सा प्रतीत होता है अतएव हम शुक्ल जी का पाठ ही शुद्ध मानते है। यहाँ पर 'सुर पहुँचाया पान' वाक्य में वाक्यगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। इसका अर्थ है कि देवताओं ने गोरा का स्वर्गलोक मे स्वागत किया। गोरा की अदम्य वीरता और उसके प्रति तीव्र सम्मान भाव की व्यजना करना ही कवि का प्रमुख प्रयोजन है।

बंधन मोक्ष : पदमावती मिलन खण्ड

पदमावति मन रही जो झूरी। सुनत सरोवर हिय गा पूरी ॥
अद्रा महँ हुलास जस होई। सुख सोहाग आदर भा सोई ॥
नलिनि निकदी लीन्ह अकूरू। उठा कँवल उगवा सुनि सूरू ॥
पुरइनि पूरि सँवारे पाता। पुनि विधि आनि धरा सिर छाता ॥
लागे उदै होइ जस भोरा। रैनि गई दिन कीन्ह वहोरा ॥
अस्तु-अस्तु सुनि भा किलकिला। आगे मिलै कटक सब चला ॥
देखि चाँद अस पदमिनि रानी। सखी कमोद सबै बिगसानी ॥
गहन छूट दिनकर कर ससि सौ होइ मेराउ।
मँदिल सिंघासन साजा-बाजा नगर बधाउ ॥१॥

[इस अवतरण मे कवि ने रतनसेन के सुलतान के बन्धन से मुक्त हो जाने पर पदमावती के हृदय में जिस हर्षोल्लास की उद्‌भावना हुई थी उसकी मधुर व्यंजना की है ।]

राजा के वन्धनमुक्त हो जाने के समाचार को सुनते ही पदमावती का हृदय-रूपी सरोवर जो सूखा हुआ पड़ा था, आह्लाद जल से आप्लावित हो उठा। जिस प्रकार वर्षा ऋतु के आरम्भ मे आर्द्रा नक्षत्र के आगमन से पृथ्वी उल्लसित हो उठती है उसी प्रकार पदमावती राजा रतनसेन के बन्धन-मुक्त होकर चित्तौड़गढ़ आने के समाचार को सुनकर प्रसन्न हो उठी। उसके हृदय मे पति सुख, सौभाग्य तथा समादर की भावनाएँ भर गईं। जो कमलिनी जड़हीन होने के कारण मुरझा गई थी वह फिर अंकुरित हो उठी। सूर्यरूपी राजा के शुभागमन से पदमावती का हृदय-कमल अंकुरित हो उठा। कमललता ने अपना विस्तार किया, उसमे नए-नए पत्ते आ गए। परमात्मा ने उस कमलिनीरूपी पदमावती के सिर पर पुनः छत्र छा दिया। जिस प्रकार सूर्योदय होते ही रात्रि समाप्त हो जाती है और दिन प्रकाशमान हो जाता है, उसी प्रकार शुभागमन का समाचार पाकर पदमावती की निराशारूपी रात्रि समाप्त हो गई, हर्षोल्लासरूपी सूर्य प्रकाशित हो उठा। पदमावतीरूपी शशि ने राम-राम करते-करते किसी प्रकार अपनी विभूतिरूपी कला प्राप्त की। राजा की अगवानी को पदमावती आगे चली। शशि जैसी पद्‌मिनी रानी को विहँसता देखकर कुमुदिनी रूपी सखियाँ प्रफुल्लित हो उठीं।

रतनसेनरूपी सूर्य का ग्रहण छुट गया, पदमावतीरूपी शशि से उसका मिलन

हो गया। महल मे सिहासन सजाया गया और नगर मे बधाई के वाजे वजे।

टिप्पणी—अद्रा महि हुलास जिमि होई—डा० गुप्त तथा डा० अग्रवाल ने इसका पाठ 'अद्रा महँ हुलास जस होई' दिया है। मुझे शुक्ल जी का पाठ जो अवतरण मे ऊपर दिया गया अधिक समीचीन प्रतीत होता है। यहाँ पर उपमा अलंकार है।

तीसरी पंक्ति तथा चौथी पक्ति में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है। कवि ने साध्यवसाना, प्रयोजनवती गौणी लक्षणा के प्रयोग से अर्थ मे एक नवीन चमत्कार की प्रतिष्ठा की है। -

पाँचवी पक्ति के प्रथम भाग मे उपमा अलंकार है। द्वितीय भाग मे रूप-कातिशयोक्ति अलकार है।

अस्ति-अस्ति—यहाँ पर इसका प्रयोग एक मुहावरे के रूप मे किया गया है। जिस प्रकार राम-राम मुहावरा है उसी प्रकार अस्ति-अस्ति मुहावरा है जिसका अर्थ है बड़े प्रयत्न के फलस्वरूप। डा० गुप्त और डाक्टर अग्रवाल ने इस पक्ति का पाठ 'अस्तु-अस्तु सुनि भा किलकिला' दिया है, मुझे यह पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत नही होता। अस्ति और अस्तु सस्कृत के दोनो स्वतन्त्र तत्सम शब्द है। किलकिला शब्द का प्रयोग भी मनुष्यो की हर्षध्वनि के लिए अधिक औचित्यपूर्ण नही है।

सातवी पक्ति के प्रथम भाग मे उपमा अलकार है और द्वितीय भाग मे रूपक अलकार है।

दोहे के प्रथम और द्वितीय चरण मे रूपकातिशयोक्ति अलकार है।

दिनिअर राजा रतनसेन और शशि पदमावती के उपमान है। डा० गुप्त और अग्रवाल ने दिनिअर के स्थान पर दिनकर पाठ दिया है। हमे यह पाठ मान्य नही है। जायसी ने तद्भव रूप प्रयुक्त किया होगा तत्सम नही। वे अपनी प्रेम-कथा लोक-भाषा मे लिख रहे थे। लोक-भाषा मे शब्दो के तद्भव रूप ही मान्य रहते है।

दोहे के तृतीय और चतुर्थ चरण मे असगत अलंकार की ध्वनि है। सिंहासन महल मे सजाया गया और बधावा नगर मे बजा।

बिहसि चाँद देहि माँग सेंदूरू। आरति करै चली जहँ सूरू॥
औ गोहने सब सखी तराई। चितउर की रानी जहँ ताँई॥
जनु बसंत रितु फूली छूटी। कै सावन महँ बीर बहूटी॥
भा आनन्द बाजा पंच तूरा। जगत रात होइ चला सेंदूरा॥
राजा जानहुँ सूर परगासा। पदमावति मुख कँवल बिगासा॥
कँवल पाय सूरज के परा। सुरज कँवल आनि सिर धरा॥
दुँद मृदँग मुर ढोलक बाजे। इन्द सबद सो सबद सुनि लाजे॥
सेंदुर फूल तँबोर सिउँ सखी सहेली साथ।
धनि पूजै पिय पाय दुइ पिय पूजे धनि माथ॥२॥

[इस अवतरण में पदमावती वासक सज्जा नायिका के रूप में चित्रित की गई है। पति के शुभागमन का समाचार पाकर वह शृंगार कर रही है। इस अवतरण में कवि ने उसी शृंगार का वर्णन किया है।]

पदमावती रूपी शशि माँग मे सिंदूर लगा रही है। जहाँ पर रतनसेनरूपी सूर्य था वहाँ वह आरती करने चली। उसके साथ में उसी प्रकार सब सखियाँ चली जिस प्रकार शशि के साथ मे सब नक्षत्र उसके साथ शोभायमान होते है। उस समय पदमावती की शोभा ऐसी मालूम होती थी मानो फूलो से भरी बसन्त ऋतु चारों ओर पल्लवित हो रही हो अथवा सावन की 'वीर बहूटियाँ' चली जा रही हो। चारों ओर आनन्द छा रहा था और पाँच प्रकार के बाजे बज रहे थे। सारा संसार पदमावती के सौभाग्य-सिंदूर से अरुणिम हो चला। राजा उस प्रकार प्रकाशमान हो रहा था जैसे सूर्य प्रकाशमान हो। उसे देखकर पदमावती का मुख-कमल प्रफुल्लित हो उठा। पदमावती का मुख-कमल सूर्यरूपी राजा के चरण मे झुक गया। राजा रतनसेनरूपी सूर्य ने पदमावती के मुखकमल को सिर पर धारण किया अर्थात् उसे समादर दिया। महल में ढपली, मृदंग आदि बाजे बजने लगे। उन बाजो को सुनकर इन्द्र के अखाड़े की संगीत-ध्वनि भी लज्जित हो गई।

पदमावती ने सिंदूर, फूल और ताचूर से सखियो सहित पति के चरण पूजे, पति ने पत्नी के मस्तक का पूजन किया।

टिप्पणी—प्रथम पंक्ति के प्रथम चरण मे रूपकातिशयोक्ति अलंकार है और गौणी साध्यवसाना लक्षणा है। इसके दूसरे चरण मे भी 'सूरा पद' मे भी रूपकातिशयोक्ति अलंकार है क्योकि यह रतनसेन का उपमान है। दूसरी पंक्ति मे भी रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

जनु बसन्त ऋतु पलुही छूटी—यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलंकार है।

की सावन महा वीर बहुटी—यहाँ पर सन्देह से पुष्ट उत्प्रेक्षा अलंकार है।

जगत रात होई चला सेन्दूरू—यहाँ पर सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार है। यहाँ पर कवि ने रहस्य भावना का आरोप किया है। साधारण स्त्री के सिंदूर से संसार अरुणिम नही हो सकता अतएव यहाँ पर नायिका की विराट् मूर्ति का आक्षेप किया गया और उसका विश्वव्यापी प्रभाव दिखाया गया है। अतः यहाँ पर कवि प्रौढोक्ति सिद्ध अलंकार से वस्तु व्यग्य है।

कँवल पाँय सूरज के परा—सूरज कँवल आनि सिर धरा—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार है। इस पक्ति के द्वितीय चरण मे रूढ़ा लक्षणा है जिसका अर्थ है आदर सम्मान दिया।

पच तूरा, सम्भवतः यह एक प्रकार का बाजा था। डा० अग्रवाल ने इसका नाम पंचागेक तुरिय बताया है।

पूजा कौनि देउ तुम राजा । सबै तुम्हार, आव मोहि लाजा ॥
तन मन जोवन आरति करेऊँ । जीउ काढ़ि नेवछावरि देऊँ ॥
पंथ पूरि कै दिस्टि बिछावौ । तुम्ह पगु धरहु नैन हौ लावौ ॥
पाय बुहारत पलक न मारौ । बरूनिन्ह सेंति चरन रज झारौं ॥
हिदा सो मन्दिल तुम्हारै नाहाँ । नैनन्हि पंथ आवहु तेहि माहाँ ॥
बैठहु पाट छत्र नव फेरी । तुम्हरे गरब गरूइ हौं चेरी ॥
तुम्ह जिय हौ तन जौं अति मया । कहै जो जीउ करे सो कया ॥
जौ सूरुज सिर ऊपर आवा तब सो कँवल सुख छात ।
नाहि तौ भरे सरोवर सूखै पुरइनि पात ॥३॥

[इस अवतरण मे पति के प्रति पत्नी की पूर्ण समर्पण भाव की बड़ी मार्मिक अभिव्यक्ति की है ।]

पदमावती पति से कहती है हे राजन् ! मैं तुम्हारी पूजा किस प्रकार करूँ, सब कुछ तो तुम्हारा ही है फिर पूजा में तुम्हे क्या समर्पित करूँ, यह सोचकर संकोच लग रहा है । मै तन, मन और यौवन से आपकी आरती कर रही हूं और प्राणों को आप पर न्यौछावर कर रही हूँ । तुम्हारे शुभागमन की प्रतीक्षा मे मैंने आँखें बिछा रखी हैं । तुम मेरी बिछी हुई आँखो पर चरण रखकर पधारो, मेरी यही कामना है । चरणो को झाडती हुई मैं पलक भी नही मारूँगी और बरौनियो से तुम्हारे चरणो की रज साफ करूँगी । हे प्रियतम ! मेरा हृदय तुम्हारा मन्दिर है, नयनो के मार्ग से आप उस मे प्रवेश कीजिए, वहाँ नूतन सिंहासन पर बैठ कर छत्र का नूतन वितान धारण कीजिए । तुम्हारी महिमा से यह दासी भी महान् है । यदि आपका मेरे प्रति सच्चा स्नेह है तो मुझे शरीर और अपने को प्राण समझिए । जीव शरीर को जैसी प्रेरणा देता है शरीर वैसा ही कार्य करता है (अर्थात् आप जो आज्ञा देंगे मैं वही करूँगी) ।

जब सूर्य सिर के ऊपर प्रकाशित होता है तभी कँवल के ऊपर सुख का छत्र दिखाई पड़ता है । सूर्य के अभाव मे कमल की बेल और पत्ते मुरझाए रहते हैं ।

टिप्पणी—पंथ पूरि के दिस्टि बिछावों—पंथ पूरना और दिस्टि बिछाना ये दोनो मुहावरे है । रूढ़ा लक्षणा से पंथ पूरने का अर्थ है मार्ग प्रशस्त करना और दिस्टि बिछाने का अर्थ शुभागमन की प्रतीक्षा करना ।

छत्र नव फेरी—'छत्र नव फेरी' का यहाँ पर फिर चँवर डुलाने का भाव प्रकट होता है । पदमावती कहती है कि आप सिहासन पर बैठिए, मैं आपके ऊपर फिर चँवर डुलाऊँगी अर्थात् सेवा करूँगी । डा० अग्रवाल ने लिखा है—'मुक्ति कल्पतरु के अनुसार विशुद्ध सोने की मोतियो की बत्तीस झालरो से युक्त छत्र नव कनक छत्र कहलाता था । मैं इस अर्थ से सहमत नही हूँ क्योकि जायसी ने केवल नव छत्र प्रयोग

किया 'नव कनक छत्र' का प्रयोग नही किया है।

दोहे में रूपकातिशयोक्ति से समासोक्ति अलंकार है। दोहे की द्वितीय पंक्ति में विरोधाभास भी है। भरे सरोवर मे सूखे पुरई पातो का होना विरोधात्मक है।

कहं जो जीब करै सो काया—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलंकार से वस्तु व्यंग्य है।

परसि पायँ राजा के रानी। पुनि आरति बादल कहँ आनी॥
पूजे बादल के भुजदंडा। तुरिअ के पाउ दाबि कर खंडा॥
यह गज गवन गरब सिउँ मोरा। तुम्ह राखा बादल औ गोरा॥
सेंदुर तिलक जो आँकुस अहा। तुम्ह माँथें राखा तब रहा॥
काछ काछि तुम्ह जिउ पर खेला। तुम्ह जिउ आनि मँजूसा मेला॥
राखेउ छात चँवर औ ढारा। राखेउ छुद्रघंट झनकारा॥
तुम्ह हनिवँत होई धुजा बईठे। तव चितउर पिय आइ पईठे॥
पुनि गज हस्ति चढ़ावा नेत बिछावा बाट।
बाजत गाजत राजा आइ बैठ सुख पाट॥४॥

[इस अवतरग मे वीर पूजा की भावना की बड़ी मार्मिक अभिव्यक्ति की गई है।]

रानी ने राजा के चरणो का स्पर्श करने के पश्चात् वीर बादल की आरती उतारी, फिर बादल के भुजदण्डों की पूजा की, पुनश्च उसने अपने हाथो से बादल के घोड़े के पैर दबाए, फिर रानी उन वीरों से बोली—हे वीरो! तुमने अपनी वीरता से गर्वपूर्वक गज जैसी चाल की रक्षा की है। अर्थात् तुम लोगों के शौर्य ने ही हमारे पति की रक्षा की है। पति को प्राप्त करके आज मैं गर्वपूर्वक गज गमन करने मे समर्थ हुई हूँ। मेरे मस्तक पर अंकुश के समान जो सौभाग्य-सिन्दूर का तिलक है उसकी रक्षा तुम्ही लोगो ने की है। तुमने हमारे पति रतनसेन के लिए अपने प्राणो की बाजी लगा दी थी। तुम्हारे इसी प्रयास के परिणामस्वरूप शरीररूपी मजूषा से प्रियतमरूपी प्राणों का फिर से सुहाग स्थापित हुआ है। तुम्ही ने हम लोगों के छत्र की रक्षा की है और फिर वह स्थिति ला दी जिसमे राजा के ऊपर चँवर डुलाया जा रहा है। तुम्ही ने हमारे चरणो की पायल की घुँघरू के झंकार की रक्षा की है। अर्थात् तुमने ही मुझे शृंगार करके गर्व से थमक-थमक करके चलने योग्य रखा है। तुमने उसी प्रकार युद्ध मे आगे बढ़कर हमारे पति की रक्षा की है जिस प्रकार हनुमानजी ने अर्जुन की ध्वजा पर बैठकर उन्हे विजयी बनाया था।

तुम्हारी वीरता ने ही आज राजा को मत्त हाथी पर बैठने का सुअवसर दिया है। तुम्हारी वीरता ने ही आज रेशमी वस्त्र से आवरित सुख-शैय्या पर राजा को बैठने

योग्य बनाया है। आज तुम्हारी ही वीरता के परिणामस्वरूप राजा बाजे-गाजे सहित सुखपूर्वक सिंहासनारूढ़ हुआ है।

टिप्पणी—पूजै बादल के भुजदण्डा—इस पंक्ति मे वीर पूजा की भावना प्रकट हुई है। हमारे देश में विजयी वीरो के प्रति समादर प्रकट करने के लिए उनके भुजदण्ड पूजे जाते थे।

तुरय के पाँय दाव कर खँडा—इसका अर्थ हमारी समझ मे यह आया कि पदमावती ने घोडे के पैरो को उठा करके उनके जोडो को चटकाया। इस प्रकार घोड़े के प्रति सेवा का भाव प्रकट किया।

तुम जिउ आन मंजूषा मेला—अर्थात् तुमने हमारे प्रियतमरूपी प्राणो का मिलन शरीररूपी मंजूषा से कराया। यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलकार है।

राखा छात चँवर औधारा—यहाँ पर डा० अग्रवाल ने औधारा पाठ दिया है। किन्तु अर्थ मे कोई अन्तर नही है। दोनो का अर्थ है तुम्हारी वीरता ने चँवर डुलवाने की स्थिति फिर से उत्पन्न कर दी है।

नेत—एक प्रकार का रेशमी वस्त्र है।

निसि राजै रानी कँठ लाई। पिउ मरि जिया, नारि जनु पाई॥
रति रति राजै दुख उगसारा। जियत जीउ नहि होउँ निवारा॥
कठिन वदि तुरुकन्ह लेइ गहा। जो सँवरा जिउ पेट न रहा॥
घालि निगड ओवरी लेइ मेला। साँकरि औ अँधियार दुहेला॥
खन खन करहि सँड़ासन्ह आँका। औ निति डोम छुआवहिं बाँका॥
पाछे साँप रहहि चहुँ पासा। भोजन सोइ, रहै भर साँसा॥
राँध न तहँवा दूसर कोई। न जनौ पवन पानि कस होई॥
आस तुम्हारि मिलन कै, तब सो रहा जिउ पेट।
नाहि त होत निरास जौ, कित जीवन कित भेंट ?॥४॥

[इस अवतरण मे कवि ने बादशाह के कारागार से मुक्त हुए रतनसेन का पदमावती से मिलन वर्णित किया है।]

रात्रि को राजा ने रानी को कंठ लगाया। नारी को प्राप्त करते ही ऐसा लगा मानो प्रिय मरकर जी उठा हो। व्यंजना है कि वह जीवन्मुक्त योगी नाडी के रहस्य को जानकर आनन्दित हो उठा। भोग करते हुए राजा ने दुःख का वर्णन करना आरम्भ किया और बोला—प्रिय जीते जी तुम्हे अलग नही छोडूँगा। तुर्कों ने कठिन बन्दीखाने में डाल दिया। उसका स्मरण करते ही प्राण निकलने लगते है। बेडी-हथकड़ी डालकर मुझे काल कोठरी मे ले जाकर डाल दिया। वह बहुत ही तंग, अधेरी और दुःखदाई थी। क्षण-क्षण मे संडासियों से दागते थे और जल्लाद रोज बाँका दिखाते थे। पीछे चारो ओर साँप रहते थे। वहाँ इतना ही भोजन मिलता था

कि शरीर से प्राण न निकले। वहाँ पास में कोई न रहता था। यह भी पता नही चलता था कि पानी और पवन कैसा होता है। तुम्हारे मिलन की आशा ही पेट मे थी जिससे प्राण अटके रहे। यदि निराशा होती तो फिर जीवित ही नही रहता, फिर भेंट भी नहीं होती।

टिप्पणी—पीउ मरजिया नारि जनु पाई—यहाँ पर मरजिया और नारि मे श्लेष है। मरजिया का एक अर्थ है मरकर जिया और दूसरा अर्थ है जीवन्मुक्त योगी। इसी प्रकार नारी का एक अर्थ है स्त्री और दूसरा अर्थ है नाड़ी।

रति रति······उगसारा—डा० अग्रवाल ने इसका पाठान्तर दिया है।

'रंग कै राजै दुख उगसारा' अर्थ मे कोई बड़ा अन्तर नही है।

सो सावरा जिउ पेट न रहा—यहाँ पर जिउ पेट न रहा का उपादान लक्षणा से अर्थ हुआ कि शरीर से प्राण निकलने लगते थे। पूरे वाक्य मे विभावना अलंकार है। अकारण से कार्य का होना कहा गया है।

छुवावहि बाँका—छुवावहि का अर्थ है दिखाते है। यहाँ पदगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। जल्लादो का अत्याचार और कठोर व्यवहार ही यहाँ पर व्यंग्य है।

न जनौ पौनि पानि कस होई—यहाँ पर पौनि पानी मे उपादान लक्षणा है। अर्थ है वहाँ ससार की कोई भी वस्तु देखने को नही मिलती थी। अर्थान्तिर सक्रमित वाच्य ध्वनि से व्यग्यार्थ है कि उस काल कोठरी मे अत्यधिक एकाकीपन था।

आस······पेट—हेतूत्प्रेक्षा व्यंग्य है।

तुम्ह पिय भँवर परी अति बेरा। अब दुख सुनहु कँवल धनि केरा॥
छाँड़ि गएउ सरवर महँ मोही। सरवर सूखि गएऊ बिनु तोहीं॥
केलि जो करत हँस उड़ि गएऊ। दिनअर मति सो बैरी भयऊ॥
गई भीर तजि पुरइन पाता। मुइउँ धूप सिर रहा न छाता॥
भइउँ मीन तन तलफै लागा। बिरहा आइ बैठ होइ कागा॥
काग चोंच तस साल न नाहाँ। जसि बँदि तोरि साल हिय माँहा॥
कहेउँ काग अब लै तहँ जाही। जहँवाँ पिउ देखै मोहि खाही॥
काग निखिद्ध गीध अस का मारहि हौं मँदि।
एहि पछताएँ सुठि मुइउँ गइउँ न पिय सँग बँदि॥५॥

[इस अवतरण में रानी पदमावती राजा के बन्धन में पड जाने पर जिस विरह व्यथा से व्याकुल हुई थी, पुनर्मिलन के अवसर पर उसकी करुण कथा राजा से कह रही है।]

हे प्रियतम ! तुम्हारी नाव निश्चय ही भंवर मे फँस गई थी। अब तुम अपनी कमल जैसी सुन्दर और कोमलांगी स्त्री की दुःखगाथा सुन लो। आप मुझे मेरे शरीर

रूपी सरोवर में छोडकर चले गए थे। तुम्हारे विरह में वह शरीर रूपी सरोवर सूख गया है। चैतन्य रूपी हंस जो शरीर रूपी सरोवर मे क्रीड़ा करता रहता था वह उस समय उड गया था अर्थात् उस समय शिथिल हो गया था। जो सूर्य पहले मित्र था वही आपके अभाव में शत्रु रूप लगने लगा था। पुरइन के सदृश मेरी शरीरलतिका को सुखरूपी भ्रमरों की भीड त्यागकर चली गई थी। मैं मछली बनकर जलरूप तुम्हारे विरह मे तपड़ती रही। विरह कौआ बनकर मेरी मृत्यु की प्रतीक्षा में आ बैठा। हे प्रियतम ! उस विरहरूपी कौवे की चोच की चोट उतनी कष्टप्रद नही थी जितना तुम्हारा कारावास हृदय को सालता था। हे काग ! तुम मुझे वहाँ ले जाकर खाओ जहाँ मेरा प्रियतम खाते हुए देख सके।

हे काग ! तू मुझ मंदभागिनी को निषिद्ध माँस के लिए क्यो मार रहा है। मै तो स्वयं इस पश्चात्ताप मे मरी जा रही हूँ कि स्वयं बन्दी होकर अपने पति के साथ क्यो न चली गई।

टिप्पणी—दूसरी और तीसरी पंक्ति में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है। पाँचवी, छठी और सातवी पक्ति मे रूपक अलंकार है। दोहे मे उपमा अलंकार है।

गई भीर तजि पुरइन पाता—शुक्लजी मे इसका पाठान्तर निम्नलिखित प्रकार से दिया है—'गईं तजि लहरैं पुरइन पाता'। मुझे शुक्ल जी का पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। रूपकातिशयोक्तिमूलक अर्थ होगा कि आनन्द की लहरें मुझ पुरइन पात के सदृश कोमलागी को त्यागकर चली गई हैं। यदि हम 'भीर' पाठ स्वीकार करेगे तो उस अवस्था मे भी अर्थ होगा कि सुखरूपी भौंरो की भीड़ पुरइन पात के सदृशयुक्त कोमलांगी को त्यागकर चली गई है। मुझे वासुदेवशरण अग्रवाल का अर्थ मान्य नही है। उन्होने 'गई भीर' का अर्थ माना है विपत्ति किन्तु यह अर्थ उसी समय लिया जा सकता है जबकि भीड पडना मुहावरे का प्रयोग किया जाए।

तेहि ऊपर का कहौ जो मारी। बिखम पहार परा दुख भारी॥
दूति एक देवपाल पठाई। बाँमनि भेस छरैं मोहि आई॥
कहै तोरि हौ आदि सहेली। चलु लै जाउँ भँवर जहँ बेली॥
तब मैं ग्यान कीन्ह सतु बाँधा। ओहि के बोल लागु बिख साँधा॥
कहेउँ कँवल नहि करै अहेरा। जौ है भँवर करिहि मै फेरा॥
पाँच भूत आतमा नेवारेउँ। बारहि बार फिरत मत मारेउँ॥
औ समुझाएउँ आपन हियरा। कंत न दूरि अहै सुठि नियरा॥
बास फूल घिउ छीर जस निरमल नीर मँठाहँ।
तस कि घटै घट पुरुख ज्यों रे अगिनी कठाहँ॥६॥

[इस अवतरण मे पदमावती अपनी दुःख गाथा अपने प्रियतम से कह रही है।]

मेरे ऊपर जो विपत्ति पडी है उसका मै कैसे वर्णन करूँ। दु ख का विपम पहाड़ मेरे ऊपर टूट पड़ा था। देवपाल ने एक दूती भेजी जो ब्राह्मणी का वेश धारण करके मुझे छलना चाहती थी। उसने मुझ मे कहा कि मै तुम्हारी पुरानी सहेली हूँ। चल मै तुझे वहाँ ले चलूँ जहाँ तेरे रूप का लोभी भ्रमर बसता है। उसकी बाते सुनकर मैंने ज्ञान से काम लिया और सतीत्व की रक्षा पर दृढ रही। उसकी वोली मुझे विप के सदृश कटु प्रतीत हुई। मैने उसे उत्तर दिया कि कमल स्वयं कभी आखेट के लिए नही जाता है। यदि कोई भ्रमर के सदृश मेरा प्रेमी है तो सौ बार यही आयेगा। मैंने अपने पंचभूतों और आत्मा का निवारण किया। बार-बार चपल होते हुए मन को रोका और अपने हृदय को समझाया कि स्वामी कही दूर नही है, बिल्कुल समीप ही है अर्थात् हृदय मे है।

जिस प्रकार फूल मे सुगन्धि, दूध में घी और घड़े में निर्मल जल रहता है तथा जैसे काष्ठ के अन्दर अग्नि रहती है उसी प्रकार मेरे घर मे रहने वाला मेरा प्रियतम भी मुझसे दूर नही रहता।

टिप्पणी—कहा कहौं जो मारी—इसमे काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यग्य है। इसका अर्थ है मुझ पर जो विपत्ति पड़ी उसका वर्णन नही किया जा सकता।

बिखम पहार परा दुख भारी—इसमे रूढ़ा लक्षणा है। इसका अर्थ बहुत अधिक दु:ख पड़ जाना है।

बेली—जायसी ने इस शव्द का प्रयोग अनेक वार किया है। वेली यहाँ पर सुन्दरी के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। जायसी ने इस शब्द का प्रयोग प्राय: इसी अर्थ मे किया है।

पाँच भूत आत्मा निवारण—यहाँ पर भारतीय दर्शन और बौद्ध दर्शन दोनो के अलग-अलग अर्थ किये जा सकते है। डा० अग्रवाल ने इसका अर्थ भारतीय दर्शन के अनुकूल किया है। उसके अनुसार अर्थ हुआ शरीर के पाँचों भूतो और आत्मा का संयम किया है। वौद्ध दर्शन के अनुसार इसका अर्थ होगा पंच स्कन्धो की आत्मा का संयम किया। वौद्ध दर्शन मे भारतीय आत्मवाद स्वीकार नही किया गया है। उनके यहाँ आत्मा के स्थान पर पुदगल की मान्यता है। यह पुदगल पच भूतो से वना हुआ वताया गया है, जिन्हे पच स्कन्ध कहते है। जीव उनका सघात वताया गया है।

वास फूल छिउ इत्यादि—इस दोहे मे सांख्यो के सत्कार्यवाद के प्रति आस्था प्रकट की गई है।

रतनसेन देवपाल युद्ध खण्ड

सुनि देवपाल राय कर चालू । राजहिं कठिन परा हिय सालू ॥
दादुर कतहुँ कँवल कहँ पेखा । गादुर मुख न सूर कर देखा ॥
अपने रँग जस नाच मयूरू । तेहि सरि साध करै तमचूरू ॥
जों लगि आइ तुरुक गढ़ बाजा । तौ लगि धरि आनौं तौ राजा ॥
नींद न लीन्ह, रैनि सब जागा । होत विहान जाइ गढ़ नागा ॥
कुंभलनेर अगम गढ़ वाँका । विपम पथ चढ़ि जाइ न झाँका ॥
राजहि तहाँ गएउ लेइ कालू । होइ सामुँह रोपा देवपालू ॥
दुवौ अनी सनमुख भईं, लोहा भएउ असूझ ।
सत्रु जूझि तव नेवरै, एक दुवौ महँ जूझ ॥८॥

[इस अवतरण में कवि ने राजा देवपाल के आक्रमण से महाराजा रतनसेन के हृदय मे जो प्रतिक्रिया हुई है उसका संश्लिष्ट मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है ।]

राजा रतनसेन देवपाल की दुष्टता के समाचार से बड़ा विक्षुब्ध हुआ । (और सोचने लगा) वह दादुर है जिसने कँवल की ओर दृष्टि की है । वह चमगादड़ है जिसे सूर्य का कभी साक्षात्कार ही नही हुआ । जैसे मोर अपने रूप को देखकर नाच रहा हो और मुर्गा उसे देखकर उसी प्रकार का आचरण करे । ऐसी ही उसकी यह करतूत है । जब तक तुर्क लोग गढ तक आवें उससे पहले ही यदि मैं उसे पकड़ लाऊँ तो राजा रतनसेन हूँ । रात-भर उसे नींद नहीं पड़ी । सारी रात जागता रहा । प्रातः होते ही उसने कुम्भलनेर का गढ़ घेर लिया । कुम्भलनेर का गढ बड़ा अगम था । उसमे पहुँचने का मार्ग बड़ा टेढा था । उस पर चढकर झाँकते नही बनता था इतना वह ऊँचा था । राजा को वहाँ यमराज ले गया । उसने सामने आकर देवपाल को छेक लिया ।

दोनो मे आमने-सामने खूब युद्ध होने लगा । हथियारो से भयंकर युद्ध हुआ । शत्रु से युद्ध तभी समाप्त होता है जब दोनो मे से एक जूझ जाय ।

टिप्पणी—चालू—यहाँ पर विपरीत लक्षणा से चालू का अर्थ कुचाल या दुष्टता है ।

दादुर······देखा—इसमे काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य से उपमा अलंकार व्यंग्य है । कवि ने काकु से पहले तो यह व्यजित किया है कि दादुर कभी कमल को देखने का साहस नही कर सकता । इससे कवि ने यह व्यजित किया कि देवपाल दादुर के

समान है फिर उसने कमल के समान सुन्दरी मेरी रानी को कुदृष्टि से देखने का दुस्साहस कैसे किया। उपमा है कि जिस प्रकार दादुर का कमल देखना दुस्साहस है उसी प्रकार देवपाल का पदमावती के प्रति आसक्त होना दुस्साहस है।

दादुर मुख······देखा—वाच्यार्थ है कि चमगादड सूर्य की तरफ नही देख पाता। व्यंजना है कि जिस प्रकार चमगादड का सूर्य को देखना दुस्साहस है उसी प्रकार देवपाल का पदमावती की कामना करना दुस्साहस है। यहाँ पर उपमा अलकार व्यंग्य है।

अपने रंग······तमचूरू—यहाँ पर उपमा अलकार से वस्तु व्यंग्य है। व्यंजना है कि देवपाल ने अनधिकार चेष्टा की है।

लोहा भएउ असूझ—लोहा का अर्थ युद्ध है। असूझ का अर्थ है भयंकर। यह पदगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। लोहा का अर्थ यदि लोहे के हथियार लिया जाएगा तो फिर उपादान लक्षणा होगी।

चढ़ि देवपाल राउ रन गाजा। मोहि तोहि जूझि एकौझा राजा॥
मेलेसि साँगि आइ बिख भरी। मेटि न जाइ काल की घरी॥
आइ नाभि तर साँगि बईठी। नाभि बेधि निकसि जहँ पीठी॥
चला मारि तब राजै मारा। कँध टूट धर परा निनारा॥
सीस काटि कै पैरें बाँधा। पावा दाउँ बैर जस साँधा॥
जियत फिरा आइउँ बलु हरा। माँझ बाट होइ लोहें धरा॥
कारी धाउ जाइ नहि डोला। गही जीभ जम कहै को बोला॥
सुद्धि बुद्धि सब बिसरी बाट परी मँझ बाट।
हस्ति घोर को काकर घर आना कै खाट॥९॥

[इस अवतरण मे रतनसेन और देवपाल के द्वन्द्व-युद्ध का वर्णन किया गया है।]

राजा देवपाल युद्धक्षेत्र मे आकर गर्जा। राजा रतनसेन को ललकार कर वह बोला—हे राजा! आओ हम दोनो अकेले ही युद्ध मे निवट ले। यह कहकर उसने विष से वुझी हुई साँगी राजा रतनसेन पर फेंक कर मारी। मृत्यु की घडी टाली नही जा सकती। वह साँगी आकर राजा रतनसेन की नाभि के नीचे घुस गई और नाभि को चीरती हुई पीठ तक निकल गई। देवपाल जव राजा को साँगी मारकर चला तो राजा ने भी उस पर प्रहार किया जिसके फलस्वरूप देवपाल का कन्धा टूट गया और धड़ उससे अलग हो गया। राजा ने शत्रु का सिर काटकर उसे वाँध लिया। इस प्रकार उसने मनमाना वैर शोधन किया। वह लौटा तो जीवित ही किन्तु उसका आयुवल क्षीण हो चुका था। मार्ग मे ही उस लोहे के घाव ने उसे पराभूत कर दिया।

यम ने उसकी जीभ उसी प्रकार जडीभूत कर दी जैसे काले नाग के काटने पर वह जडीभूत हो जाती है, फिर राजा के बोलने का प्रश्न ही न रहा।

राजा की सुध-बुध खो गई और वह मध्यमार्ग मे ही आघात से पराभूत होकर गिर पड़ा। हाथी, घोडे, आदि वाहन किसके होते है। उसे लोग खाट पर डालकर लाए।

टिप्पणी—एकौझा—अर्थात् द्वन्द्व-युद्ध। जब दो वीर अकेले ही घात-प्रतिघात करते हुए लड़ते है तब उसे एकौझा कहते है।

मेटि न जाय काल की घरी—इस पक्ति के पाठ मे शुक्ल जी ने 'की' के स्थान पर 'कै' लिखा है। अवधी भाषा के अनुरूप होने से 'कै' पाठ अधिक उपयुक्त है। यहाँ पर इस्लामी नियतिवाद की छाया दिखाई पडती है। इस्लाम के अनुसार मृत्यु तिथि निश्चित है।

साँग बैठीं—यहाँ पर बैठी का लक्षणामूलक अर्थ लिया गया है। लक्षण लक्षणा से बैठी का अर्थ हुआ जमकर घुस जाना अर्थात् साँगी राजा के हृदय में जमकर घुस गई।

टूटै कंध धड़ भयऊ निनारा—इसमे असंगति अलंकार है क्योकि टूटा कन्धा है और अलग होना धड़ का बतलाया गया है।

जियरा फिरा आइउँ बलुहरा—शुक्ल जी ने इसका पाठ 'जियत फिरा आएउ बल भरा' दिया है। हमे यहाँ पर शुक्ल जी का पाठ मान्य नहीं है। अर्थ की दृष्टि से डा० गुप्त और डा० अग्रवाल का पाठ अधिक उपयुक्त है।

लोहै धरा—यहाँ शुद्धा साध्यावसाना उपादान मूला गूढा धर्मगता प्रयोजनवती लक्षणा है। लोहे मे यहाँ लोहास्त्र का अध्यवसान है। लौह मे अस्त्र का उपादान किया गया है। लौहास्त्र की कठिनता और कठोरता व्यंजित करना प्रयोजन है। अतः यहाँ अर्थान्तिर सक्रमित वाच्य ध्वनि है। इसलिए यहाँ पर उपर्युक्त कोटि की लक्षणा है।

कारी घाव जाइ नहिं डोला—यहाँ पर 'कारी घाव' मे उपादान लक्षणा है। अर्थ है काले नाग का घाव। यहाँ पर दृष्टान्त अलकार है।

हस्ति घोर की काकर—अर्थात् हाथी और घोड़ा मरे हुए व्यक्ति का साथ नही देते। यहाँ पर काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यग्य है।

काकर लोग कुटुम्ब घरबारू इत्यादि—इस पंक्ति मे काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य है। अर्थ है कि घर-बार, कुटुम्ब आदि किसी के नही होते।

राजा रतनसेन बैकुण्ठ खण्ड

तौ लहि साँस पेट महँ अहीं। जो लहि दसा जीउ कै रही॥
काल आइ देखराई साँटी। उठि जिउ चला छोडि कै माटी॥
काकर लोग, कुटुम्ब, घर बारू। काकर अरथ दरब संसारू॥
ओही घरी सब भएउ परावा। आपन सोइ जो परसा, खावा॥
अहे जे हितू साथ के नेगी। सबै लाग काढ़ै तेहि बेगी॥
हाथ झारि जस चलै जुवारी। तजा राज, होइ चला भिखारी॥
जब हुत जीउ, रतन सब कहा। भा बिनु जीउ, न कौड़ी लहा॥
गढ़ सौपा बादल कहँ गए टिकटि बसि देव।
छोड़ी राम अजोध्या, जो भावै सो लेव॥१॥

[इस अवतरण में कवि ने राजा के आहत होकर प्राण प्रयाण करने की अवस्था का मार्मिक एवं आध्यात्मिक चित्र खीचा है।]

जब तक राजा की साँस चलती रही तब तक उसकी जीवन की स्थिति रही। ज्योही मृत्यु ने आकर अपना दण्ड दिखाया त्योही शव को छोडकर चल दिया। लोग कुटुम्ब, घरबार किसका अपना है। अर्थ-द्रव्य भी ससार में अपना नही रहता। मृत्यु के आते ही मनुष्य की सारी लौकिक सम्पत्ति पराई हो जाती है। मनुष्य के भाग्य मे वही सम्पत्ति पडती है जिसका उपभोग वह कर चुकता है। मृत्यु हो जाने पर वे लोग जो उसके जीवनकाल मे उसके परम हितैषी बनते है, उसको शीघ्रता से घर से बाहर निकालने लगते है। राजा उसी प्रकार से राज-पाट त्यागकर चल दिया जिस प्रकार जुआरी जुआ हार जाने पर हाथ झाड़कर चल देता है। जब तक वह जीवित था तब उसे सब लोग रतन कहते थे। जब उसने प्राण त्याग दिए तो वह कौड़ी का भी नही समझा जाने लगा।

बादल को गढ़ सौपकर वह बसुदेव के सदृश राजा निकलकर बाहर हो गया। विभीषण ने लंका छोड दी जो चाहे सो ले ले।

टिप्पणी—काल आइ देखराई साँटी—यहाँ पर वाक्यगत अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। यहाँ पर वाच्यार्थ सर्वथा बाधित है। काल का आकर साटी दिखाना एक असम्भव व्यापार है। लक्ष्यार्थ है कालदण्ड का शिकार हो जाना। व्यंग्यार्थ है जीव सब प्रकार से शक्तिहीन होकर परवश हो गया है। जीवनकाल में जो उसकी शक्तियाँ थी वे सब शक्तियाँ समाप्त हो गई है और वह सर्वथा पराभूत हो गया है। इस अर्थ को ग्रहण करने से पंक्ति का अर्थ सर्वथा तिरस्कृत हो जाता है।

पदमावती नागमती सती खण्ड

पदमावती पुनि पहिरि पटोरी। चली साथ पिउ के होइ जोरी ॥
सूरुज छपा, रैनि होइ गई। पूनो ससि सो अमावस भई ॥
छोरे केस, मोति लर टूटी। जानहुँ रैनि नखत सब टूटी ॥
सेंदुर परा जो सीस उघारा। आगि लगि चह जग अँधियारा ॥
यही दिवस हौं चाहति, नाहा। चलौ साथ, पिउ देइ गलबाँहा ॥
सारस पाँखि न जियै निनारे। हौ तुम्ह बिनु का जिऔ पियारे ॥
नेवछावरि कै तन छहरावौ। छार होऊँ सँग, वहुरि न आवौ ॥
दीपक प्रीति पतँग जेउँ जनम निवाह करेउँ।
नेवछावरि चहुँ पास होइ कँठ लागि जिउ देउँ ॥१॥

[इस अवतरण मे कवि ने पदमावती के सती होने की अवस्था का करुण चित्र खीचा है।]

पदमावती फिर रेशमी साडी पहनकर पति की जोडी वनकर साथ चली। सूर्यास्त हो गया और रात्रि छा गई। पूर्णिमा का चाँद अमावस मे परिणत हो गया। उसके वाल खुले हुए थे, मोतियो की लड़े विखरी हुई थी। ऐसा लग रहा था मानो रात मे तारे टूट रहे हो। उघड़ी हुई माँग मे भरा हुआ सिंदूर ऐसा लग रहा था कि मानो जैसे अधकार की कालिमा से परिपूर्ण काले ससार मे आग लग गई हो। हे पतिदेव! मैं इसी दिन के लिए चाहती थी कि तुम्हारे गले मे भुजाएँ डालकर चलूँ। सारस पक्षी अपने जीवन साथी से विछुडकर प्राण खो देता है। हे पतिदेव! मैं भी तुम्हारे वियोग मे जीवित नही रह सकती। यह शरीर मैं तुम्हारे ऊपर न्यौछावर कर दूँगी और यह शरीर न्यौछावर करके विखरा दूगी। तुम्हारे साथ ही जलकर राख हो जाऊँगी ताकि फिर मेरा पुनर्जन्म न हो।

दीपक-प्रेम मे जिस प्रकार पतगा अपना जीवन भस्म कर देता है उसी प्रकार मैंने तुम्हारे साथ अपना जीवन व्यतीत किया है और अब अपने शरीर और जीवन को तुम्हारे ऊपर न्यौछावर करके और तुम्हारे कठ से लगकर अपने प्राण त्याग दूँगी।

टिप्पणी—इन पक्तियो मे कवि ने भारतीय सती के आदर्श की वडी मार्मिक, भावपूर्ण और श्रद्धापूर्ण झाँकी सजोई है।

सूरज छपा रैनि हुई गई—यहाँ पर रूपकातिशयोक्ति अलकार और साध्य-

वसाना गौणी लक्षणा है। यहाँ पर सूरज राजा के और रात्रि निराशा के आरोप्यमाण के रूप में प्रयुक्त है। इसलिए हमने रूपकातिशयोक्ति मानी है। यहाँ पर हेतु अलंकार है।

पूनिवँ ससि सो अमावस भई—यहाँ पर पूनिवँ ससि में रूपकातिशयोक्ति है क्योकि पदमावती के लिए केवल उपमान भाग का कथन किया गया है। इस पक्ति मे 'सो' शब्द मे संवृतिवक्रता है। सो से कवि ने यह व्यंजित किया है कि वह पदमावती जो राजा के सयोग मे साथ देती रही थी वही आज मृत्यु के समय भी साथ दे रही है। इतने व्यापक अर्थ का सवरण किए रखने के कारण ही सो मे सवृतिवक्रता है।

जनौ रैनि नखत सब टूटे—यहाँ वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है।

आगि लागि जनु अँधियारी—यहाँ भी वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है।

सारस पांखि न जियै निनारे—मे कवि समय है। कवियो मे परम्परा से प्रसिद्ध है कि सारस की जोड़ी मे एक के न रहने पर दूसरा भी अपने प्राण त्याग देता है।

दीपक प्रीति पतंग—इत्यादि मे श्रौती उपमा अलकार है।

नागमती पदुमावती रानीं। दुवौ महासत सती वखानी ॥
दुवौ आइ चढ़ खाट बईठी। औ सिव लोक परा तिन्ह पीठी ॥
बैठी कोइ राज औ पाटा। अन्त सबै बैठेहि एहि खाटा ॥
चंदन अगर काढ़ि सर साजा। औ गति देइ चले लैं राजा ॥
वाजन बाजहि होय अकूता। दुवौ कंत लै चाहहि सूता ॥
एक जो बाजा भएउ वियाहूं। अब दोसरे होय ओर निवाहू ॥
जियत जो जरहि कन की आसा। मुँए रहसि बैठहि एक पासा ॥
आजु सुर दिन अँथवा आजु रैनि ससि बूढ़ि।
आजु बाँचि जिय दीजिए आजु आगि हम जूड़ ॥

[इस अवतरण में कवि ने पदमावती और नागमती के सती होने की अवस्था का चित्र खीचा है। यह अवतरण शुक्लजी की पुस्तक मे नही है।]

नागमती और पदमावती रतनसेन की ये दो रानियाँ थी। ये दोनों ही अपने ऊँचे सतीत्व के लिए लोक-विश्रुत थी। दोनो सौते आकर (राजा के शव के पास) बैठ गई। उस समय उन्हे शिवलोक का साक्षात्कार होने लगा। प्रत्येक मनुष्य को, चाहे वह अपने जीवन मे राजसिंहासन पर ही क्यो न बैठता हो, मृत्यु के समय खाट पर लेटना पड़ता है। चन्दन, अगर तथा लकडी के योग से चिता बनाई गई और सब लोग राजा को अंत्येष्टि क्रिया के लिए ले गए। बाहरी रूप से बाजे बज रहे थे और आतरिक रूप से एक दि[illegible] ध्वनि गूँज[illegible]। राजा की दोनो पत्नियाँ उसके साथ सहगामिनी होना च[illegible]य बाजे बजे थे जब परिणय हुआ था और अब

दूसरी बार तब बज रहे हैं जब इहलीला समाप्त हो रही है। जो जीवन में प्रिय की कामना से जलती थीं आज वे सतीत्व की ज्वाला में प्रसन्नचित्त जल रही हैं। आज दिन में ही सूर्य डूब गया है। रात में ही चन्द्रमा विलीन हो गया है। आज हम प्रसन्नतापूर्वक अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देंगी। आज हमें अग्नि शीतल लग रही है।

टिप्पणी—अंत समय बैठे एहि खाटा—शुक्ल जी ने इसका पाठ दिया है—'अंत सबै बैठे पुनि खाटा' यहाँ पर 'पुनि' के स्थान पर 'एहि' अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है क्योंकि एहि से उक्ति में संवृतिवक्रता आ जाती है जिससे अर्थ-गौरव बढ़ जाता है।

बाँचि—शुक्ल जी ने इसके स्थान पर 'नाँचि' पाठ दिया है। मुझे 'नाँचि' पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है क्योंकि यह शब्द अधिक सरल और स्वाभाविक है। कोई आश्चर्य नहीं कि जायसी 'बाँचि' के अभिप्रायपरक अर्थ से परिचित भी न हों। इस शब्द का प्रयोग अवधि में बहुत कम मिलता है। प्राकृत और अपभ्रंश में ही पाया जाता है।

औ शिवलोक परा तिन्ह दीठी—यहाँ पर कवि का अभिप्राय सम्भवतः ब्रह्मरन्ध्र में समाधि लगाने से है। बहुत-सी सतियाँ चिता पर पद्मासन में बैठकर ब्रह्मरन्ध्र में समाधि लगा लेती थीं। समाधिस्थ हो जाने के कारण उन्हें अग्नि शीतल लगने लगती है।

अकूता—शुक्ल जी ने इसके स्थान पर अगूता पाठ दिया है। मुझे शुक्ल जी का पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। अगूता पाठ स्वीकार करने पर अर्धाली का अर्थ होगा (शव के) आगे-आगे बाजे बजते जा रहे हैं। भारतीय प्रथा के अनुसार वीरगति पाने वालों की अर्थी के साथ बाजों का विधान है। इस प्रथा से वीरगति पाने वालों के प्रति समादर का भाव प्रकट होता है। अकूता पाठ स्वीकार करने पर अर्थ बहुत स्पष्ट प्रतीत नहीं होता। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने इस पाठ को सही स्वीकार करते हुए अर्थ किया है 'बाजे बज रहे थे एवं अव्यक्त ध्वनि हो रही थी।' बाजों की ध्वनि अव्यक्त कैसे कही जायेगी। यह विरोधाभास समझ में नहीं आता। यदि हम अकूता का अर्थ 'दिव्य' भी स्वीकार करें तो भी बात बहुत तर्कसंगत प्रतीत नहीं होती क्योंकि मृत्यु के समय के बाजे क्यों और कैसे दिव्य कहे जाएँगे? अकूता का अर्थ यदि हम 'निराशाव्यंजक' लें तो उस पाठ को स्वीकार कर सकते हैं। किन्तु यह अर्थ बहुत दूरारूढ़ हो जायेगा।

दुवौ आइ······दीठी—यहाँ पर निर्णीयमाना सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार है। यह अलंकार वहाँ होता है जहाँ पर निश्चित रूप से असम्भव वर्णन किया जाता है। प्रस्तुत पंक्ति में 'खाट' पर बैठकर शिवलोक के दर्शन करना, यह वाच्यार्थ सर्वथा असम्भव है। इसीलिए यहाँ पर हमने निर्णीयमाना सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार माना है।

आज सूर दिन अँथवा—यहाँ पर साध्यवसाना गौणी लक्षणा और रूपकातिशयोक्ति अलकार है। सूर राजा के लिए और दिन उसके जीवन के लिए प्रयुक्त किया गया है। अर्थ है कि राजा का स्वर्गवास यौवन मे ही हो गया है। व्यंजना है कि अभी इन लोगो का समय भोग-विलास का ही था कि राजा कुसमय में ही वीरगति को प्राप्त हो गए। इस प्रकार हमारा भाग्य-सूर्य भी यौवन मे ही ढल गया है। यहाँ एक दूसरा व्यंग्यार्थ भी निकलता है। यहाँ पर प्रथम व्यंग्यार्थ वक्तृवैशिष्ट्योत्पन्न लक्ष्य सम्भवा व्यजना से ग्रहण किया गया है। दूसरे व्यग्यार्थ को हम वक्तृवैशिष्ट्योत्पन्न व्यंग्यसम्भवा मानेंगे।

सर रुचि दान पुन्नि बहु कीन्हा। सात बार फिरि भाँवरि लीन्हा ॥
एक जो भाँवरि भई वियाही। अब दूसरे होइ गोहन जाही ॥
जियत, कंत ! तुम हम्ह गर लाई। मुए कंठ नहिं छोड़हिं, साँई ॥
औ जो गाँठि ! कंत तुम्ह जोरी। आदि अंत लहि जाइ न छोरी ॥
यह जग काह जो अछहि न आथी। हम तुम, नाह ! दुहूँ जग साथी ॥
लेइ सर ऊपर खाट बिछाई। पौढ़ी दुवौ कत गर लाई ॥
लागीं कँठ आगि देइ होरी। छार भई जरि, अँग न मोरी ॥
राती पिउ के नेह गईं, सरग भएउ रतनार।
जो रे उवा, सो अथवा ; रहा न कोई संसार ॥२॥

[इस अवतरण मे पदमावती और नागमती के सती होने का चित्र खीचा गया है।]

चिता रचकर उन सतियों ने बहुत-सा दान-पुण्य किया, फिर सात बार पति के शरीर की भाँवर ली। एक बार भाँवर जब पडी थी जब विवाह हुआ था, अब दूसरी बार भाँवरें पड़ रही है, जब पति के साथ पतिलोक को जा रही है। वे मृत पति को सम्बोधित कर कहती हैं हे पतिदेव ! तुमने हमे जीवित अवस्था में कठ से लगाया था अब मरने पर हम तुम्हारा कंठ नही छोड़ेगी। हे पति ! तुमने जो गाँठ जोडी थी वह आदि से अन्त तक नही छूटेगी। इस ससार का क्या विश्वास जो अस्ति है वह भी नास्ति रूप हो जाता है। लेकिन हे पतिदेव ! हम तुम दोनो उस जगत् के साथी है। इस प्रकार कह कर उन्होंने पति का कण्ठालिगन किया और होली के सदृश अग्नि प्रज्वलित कर दी। वे जलकर खाक और भस्म हो गयी किन्तु उन्होंने अपने शरीर को जरा भी बचाने की कोशिश न की। पति के प्रेम मे अनुरक्त वे इस लोक से चली गयी। उनके प्रेम की अरुणिमा से स्वर्ग भी अरुणिम हो उठा। जिसका उदय होता है उसका अन्त भी होता है। इस ससार मे कोई रह नहीं जाता है।

टिप्पणी—इस अवतरण में कवि ने हिन्दुओ की सती प्रथा का बड़ा संश्लिष्ट और मार्मिक चित्र खीचा है। सती होते समय के संस्कारो का पूर्ण ज्ञान कवि को नहीं

मालूम होता है। चिता के ऊपर खाट रखने की प्रथा हिन्दुओ मे नही पाई जाती है किन्तु कवि ने इस प्रथा का उल्लेख किया है। यहाँ पर वह इस्लाम से प्रभावित प्रतीत होता है।

राती······रतनार—यहाँ पर तद्गुण और अतिशयोक्ति अलकार का संकर है। इन दोनो के संकर से कवि ने सतियो के एकनिष्ठ दिव्य प्रेम की व्यंजना की है।

वै सहगवन भई जव जाई। वादशाह गढ़ छेका आई।।
तौ लगि सो अवसर होइ बीता। भए अलोप राम औ सीता।।
आइ साह जौ सुना अखारा। होइगा राति दिवस उजियारा।।
छार उठाइ लीन्ह एक मूठी। दीन्ह उड़ाइ, पिरथिमी झूठी।।
सगरिउ कटक उठाई माटी। पुल बाँधा जहँ ज़हँ गढ़ घाटी।।
जौ लहि ऊपर छार न परै। तौ लहि यह तिस्ना नहि मरै।।
भा धावा भइ जूझ असूझा। वादल आइ पँवर पर जूझा।।
जौहर भईं सब इस्तिरी, पुरुष भए संग्राम।
बादसाह गढ़ चूरा, चितउर भा इसलाम।।४।।

[इस अवतरण मे चित्तौड़गढ के पतन का चित्र खीचा गया है।]

जब पदमावती और नागमती पति के साथ सती हो गयी तब बादशाह ने गढ़ घेर लिया किन्तु तब तक पदमावती की प्राप्ति का अवसर समाप्त हो चुका था। रतनसेन और पदमावती इस संसार से लुप्त हो चुके थे। सम्राट् ने आकर जब पदमावती के साहस और सती हो जाने की वात सुनी तो कहने लगा कि दिन का प्रकाश रात्रि मे परिणत हो गया। उसने एक मुट्ठी भस्म लेकर उड़ा दी और कहा पृथ्वी झूठी है। सारी सेना ने मिट्टी खोदी और जहाँ पर गढ़ की घाटी थी वहाँ पर पुल बना लिया। कवि कहता है जब तक मनुष्य के ऊपर भस्म नही पडती है या मनुष्य का शरीर भस्मसात् नही होता तब तक यह तृष्णा नही मरती है। गढ पर आक्रमण किया गया और भयकर युद्ध हुआ। बादल गढ के द्वार पर युद्ध करता हुआ काम आ गया। सभी स्त्रियाँ जौहर कर गयी और पुरुष युद्ध मे काम आ गये। बादशाह ने गढ़ तोड़ दिया और चित्तौड़ मे इस्लाम की प्रतिष्ठा हो गयी।

टिप्पणी—सो अवसर—सो मे अर्थान्तर सक्रमित वाच्य ध्वनि है। सौभाग्य का भाव व्यग्य है।

राम और सीता—यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से पति-पत्नी या रतनसेन और पदमावती का अर्थ लिया गया है।

विशेष—इस अवतरण मे शान्त और वीर रस की वडी मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है।

उपसंहार

मैं एहि अरथ पण्डितन्ह बूझा। कहा कि हम्ह किछु और न सूझा॥
चौदह भुवन जो तर उपराही। ते सब मानुष के घट माही॥
तन चितउर, मन राजा कीन्हा। हिय सिघल, बुधि पदमिनि चीन्हा॥
गुरु सुआ जेइ पंथ देखावा। विनु गुरु जगत को निरगुन पावा?॥
नागमती यह दुनिया धन्धा। बाँचा सोइ न एहि चित बन्धा॥
राघव दूत सोई सैतानू। माया अलाउदीन सुलतानू॥
प्रेम-कथा एहि भाँति विचारहु। बूझि लेहु जो बूझै पारहु॥
तुरकी, अरबी, हिंदुई, भाषा जेती आहि।
जेहि महँ मारग प्रेम कर, सबै सराहैं ताहि॥१॥

पाठ की प्रामाणिकता—इस अवतरण को डा० माताप्रसाद गुप्त ने प्रक्षिप्त माना है। इसके सम्वन्ध मे उन्होने लिखा है: "यह शुक्ल जी के सस्करण में प्राय: अन्त मे आता है और कथा के गूढ़ार्थ का निर्देश करता है। चित्तौड को तन, राजा को मन, सिहल को हृदय और पद्मिनी को बुद्धि आदि वताता है—यह छन्द शुक्ल जी को नवल किशोर प्रेस और कानपुर वाले सस्करणो मे मिला था। कदाचित् इसीलिए उन्होने इसे प्रामाणिक मानकर ग्रन्थ के मूल पाठ मे स्थान दिया है। मुझे केवल दो हस्तलिखित प्रतियो मे यह छन्द मिला है, प्रति एक तथा (तृतीय १)। ऊपर हम यह देख चुके है कि ये प्रतियाँ पाठ-परम्परा मे सबसे नीची पीढी मे आती है। इसलिए यह छन्द निश्चित रूप से प्रक्षिप्त है।" डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने भी डा० गुप्त के अनुकरण पर इसको प्रक्षिप्त माना है।

मैं डा० गुप्त और डा० अग्रवाल के मतो से विलकुल सहमत नही हूँ। पहला कारण यह है कि डा० गुप्त ने इसको प्रक्षिप्त मानने का कोई सवल तर्क नही दिया है। उनका यह तर्क है यह अवतरण उन प्रतियो मे मिलता है जो पाठ-परम्परा मे निम्न कोटि की है, इस वात का प्रमाण नही हो सकता कि यह अवतरण प्रक्षिप्त है। हम यह अवश्य मान सकते है कि पाठ-परम्परा में निम्न कोटि की प्रतियो मे पाए जाने के कारण इसके कुछ शव्द प्रक्षिप्त या अप्रामाणिक हो, पूरे अवतरण को अप्रामाणिक तभी मानेगे जवकि इसके समस्त अवतरणो को अप्रामाणिक सिद्ध कर दे। ऐसा सर्वथा

१ जायसी ग्रन्थावली—डा० माताप्रसाद गुप्त, पृ० ११४।

असम्भव है। गुप्त जी स्वय ऐसा नही मानते है। अतएव हम केवल इस आधार पर कि यह पद ऐसी प्रतियो मे उपलब्ध होता है जिसका पाठ अधिक प्रामाणिक नही है इसको प्रक्षिप्त या अप्रामाणिक स्वीकार नही कर सकते।

इसको प्रामाणिक मानने के पक्ष मे कई बडे सशक्त तर्क दिए जा सकते है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह अवतरण जायसी का लिखा हुआ ही प्रतीत होता है। जायसी जानते थे कि हिन्दू समाज में उसी व्यक्ति और रचना की प्रतिष्ठा हो सकती है जो पण्डितो मे सम्मान्य हो। पण्डितो की सहानुभूति और सद्भावना प्राप्त करने के लिए ही उन्होने ग्रन्थ के आरम्भ में अपने को 'पण्डितों का पिछलग्गा' कहा है। ग्रन्थ के अन्त मे भी पण्डितो की दुहाई देना स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक प्रतीत होता है। उन्होने अपने ग्रन्थ में निश्चित रूप से सूफी और योगशास्त्र के गम्भीर सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा की है। इसलिए उन्हे अन्योक्ति और समासोक्ति शैलियों का आश्रय लेना पडा है। अन्योक्ति को हिन्दू समाज मे प्रिय बनाने के लिए उसकी पण्डितसम्मत व्याख्या देना आवश्यक था। इस अवतरण मे वही व्याख्या दी गई है। इस प्रकार मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पदमावत मे इसका होना बडा अनिवार्य था। अतएव जायसी ने इस अवतरण को अवश्य प्रसारित किया होगा।

कुछ लोग यह कह सकते है कि जिन प्रतियों में यह अवतरण मिलता है उनमे वह उपसहार के रूप मे नही है वरन् बीच मे पाया जाता है। इसका सीधा-सादा उत्तर यह है कि जायसी ने पदमावत की रचना किसी पूर्ण व्यवस्थित ग्रन्थ के रूप में नहीं की होगी। वे तो किसी एक प्रसंग की रचना करके अपने शिष्यो को सुना देते होगे और शिष्य लोग बाद में उसे लिपिबद्ध कर लेते होंगे। यह भी सम्भव है कि शिष्य लोग जायसी से अपनी कुछ जिज्ञासाएँ भी प्रकट करते हों और उनका उत्तर देने का प्रयास जायसी ने किया हो। प्रस्तुत अवतरण भी एक जिज्ञासा का प्रत्युत्तर ही प्रतीत होता है। हो सकता है कि उनके किसी हिन्दू शिष्य ने उनसे पदमावत के आध्यात्मिक पक्ष को स्पष्ट करने का आग्रह किया हो। उस समय उनके द्वारा ब्राह्मण-सम्मत आध्यात्मिक अर्थ की व्यजना करना अनिवार्य हो गया होगा। इस अवतरण में यही औचित्य प्रतीत होता है।

भाषा और शैली की दृष्टि से भी यह अवतरण शुद्ध जायसीकृत प्रतीत होता है। इसकी भाषा मे जो प्रवाह और अभिव्यक्ति-सौष्ठव है वह जायसी जैसे वाक्सिद्ध कवि के मुख से मुखरित हुआ होगा।

इसकी प्रामाणिकता के विरोध में कुछ विद्वानों का कहना है कि इसमें निर्दिष्ट अन्योक्ति की व्याख्या पदमावत पर पूर्णरूपेण घटित नही होती है। इसके प्रत्युत्तर में हमारा यही निवेदन है कि जायसी की अन्योक्ति की व्याख्या त्रयो-मुखी है। इसका स्पष्टीकरण मै 'पदमावत : काव्य और दर्शन' नामक ग्रन्थ मे कर चुका हूँ। यदि यह मान भी ले कि अन्योक्ति पूर्ण रूपेण घटित नहीं होती है तो भी हम इस आधार पर प्रस्तुत अवतरण को अप्रामाणिक नही कह सकते क्योकि अपने सूफी सिद्धान्तो के अनु-

रूप लिखे गए ग्रन्थ की हिन्दू धर्म के अनुरूप व्याख्या करते समय यदि अन्योक्ति का निर्वाह कही-कही विघटित-सा प्रतीत हो तो हम जायसी जैसे सत कवि को इस अव्यवस्था के लिए न तो दोषी ठहरा सकते है और न उनके द्वारा लिखी गई पक्तियों को अप्रामाणिक ही कह सकते है। उपर्युक्त तर्को के आधार पर मै निश्चित रूप से प्रस्तुत अवतरण को जायसीकृत ही मानता हूँ।

व्याख्या—इस अवतरण मे जायसी ने पदमावत की अन्योक्ति की पंडितसम्मत व्याख्या देने की चेष्टा की है। मैने इस कथा के आध्यात्मिक अर्थ को पडितो से जानने की चेष्टा की है। उन्होने उत्तर दिया कि हमे तो इस कथा में निम्नलिखित आध्यात्मिक अर्थ के अतिरिक्त और कुछ समझ मे नही आया। इस ब्रह्माण्ड मे १४ भुवन है जिनमे से सात ऊपर है और सात नीचे है। ये चौदहो भुवन जिस प्रकार ब्रह्माण्ड मे हैं उसी प्रकार पिंड मे भी पाये जाते है। शरीर चित्तौड़-गढ़ है, मन उसका राजा रतनसेन है, हृदय सिंहलगढ है, बुद्धि पदमावती है, हीरामन तोता गुरु है जिसने प्रेम मार्ग का प्रदर्शन किया है। वास्तव मे बिना गुरु के कोई भी निर्गुण परमात्मा को प्राप्त नही कर पाता है। नागमती भवबध रूप है। जो नागमती रूपी भवबध मे नही फँसता है वही प्रपंच-जाल से बच जाता है। राघव चेतन शैतान रूप है, सुलतान अलाउद्दीन माया रूप है। इस प्रकार पदमावत की प्रेम-कथा के रूपक पर विचार करना चाहिए। यदि इस रूपक या अन्योक्ति का रहस्य समझ मे आ जाए तो इस ज्ञान को मन मे धारण कर लेना चाहिए। तुर्की, अरबी, हिन्दी आदि जितनी भाषाएँ है इनमे जहाँ कही प्रेम मार्ग का वर्णन किया गया है उस प्रेम मार्ग की सराहना लोग निष्पक्ष भाव से करते है।

आध्यात्मिक स्पष्टीकरण—प्रस्तुत अवतरण मे कवि ने अपनी प्रेम-कथा के अन्योक्ति पक्ष को समझाने की चेष्टा की है। प्रत्यक्ष रूप से उसने अन्योक्ति का स्पष्टीकरण पडितो के द्वारा दी गई प्रेम-कथा की व्याख्या के अनुसार किया है। अप्रत्यक्ष रूप से उसने अपने सूफी सिद्धान्त के पक्ष को भी व्यजित करने का प्रयास किया है। ये दोनो प्रकार के आध्यात्मिक अर्थ अन्योक्ति के प्रस्तुत पक्ष के अन्तर्गत आएँगे। अन्योक्ति का अप्रस्तुत पक्ष उसकी कथा है।

पंडितो के द्वारा बताई गई अन्योक्ति की व्याख्या—जायसी जानते थे कि उनकी प्रेम-कथा तभी हिन्दू समाज मे प्रतिष्ठा पा सकती है जबकि उसकी व्याख्या भारतीय पडितो या ब्राह्मणो की विचारधारा के आधार पर की जाए। वह यह भी जानते थे कि हिन्दू समाज मे इस्लामी और सूफी विचारो का प्रचार और प्रसार हिन्दू विचारधारा के आवरण मे ही किया जा सकता है। इसलिए उन्होने पदमावत मे सूफी और इस्लामी विचारों को प्रतिष्ठित करने के साथ-साथ उससे अधिक साम्य रखने वाली यौगिक और वेदान्ती पडितो की विचारधाराओ को भी साथ-साथ समेटने की चेष्टा की है। इस प्रकार जायसी की कथा में हमें अप्रत्यक्ष रूप से तीन विचारधाराओं की त्रिवेणी प्रवहमान दिखाई पड़ती है—एक यौगिक

साधना सम्बन्धी विचारधारा, दूसरी वेदान्ती विचारधारा, तीसरी सूफी विचारधारा। इन तीनो के अतिरिक्त इस्लामी विचारो की एक चौथी धारा की एक क्षीण छाया भी दिखाई पडती है।

हठयौगिक साधना के अनुरूप अन्योक्ति की व्याख्या—जायसी के समय में नाथपंथी यौगिक साधना का बडा प्रचार था। जायसी उससे अप्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते थे। अपनी विचारधारा को प्रचारित करने के लिए उन्हे उसकी आड लेना आवश्यक था, फिर भी वह सिद्धान्त रूप मे राजयोग के अनुयायी थे। अतएव उन्होने अपने पदमावत मे नाथपंथी हठयौगिक साधना के साथ-साथ राजयोग साधना का वर्णन किया है। नाथपंथी हठयोग साधना के प्रति उनकी आस्था बहुत कम थी। राजयोग के प्रति ही उनका विशेष लगाव था। यह बात पदमावत मे स्थान-स्थान पर प्रत्यक्ष दिखाई पडती है।

प्रस्तुत अवतरण मे उन्होने पंडितसम्मत अर्थ को समझाते हुए सर्वप्रथम यौगिक साधना की ओर संकेत किया है। योग का प्रसिद्ध अर्थ है। प्रवृत्त्यात्मक दुष्ट मनोविकार ही इस पक्ष में शैतान कहे जा सकते है। जायसी ने राघव चेतन को शैतान का प्रतीक कहा है। भवबंध और दुष्ट मनोविकारों के अतिरिक्त मन को समत्व बुद्धि की साधना से विरत करने वालो मे मायामय मोह भी है। सुलतान अलाउद्दीन को कवि ने इस मायामय मोह का प्रतीक कल्पित किया है। इस प्रकार जब साधक का शरीरस्थ मन इन अन्तरायो पर विजय प्राप्त करके चित्तवृत्तियो के निरोधरूपी सिंहलगढ मे पहुँच जाता है उसकी अध्यात्म बुद्धि के सहारे समता योग की प्राप्ति होती है। संक्षेप मे अन्योक्ति की वेदान्त-सम्मत व्याख्या यही है जो जायसी को संभवतः पण्डितो से प्राप्त हुई थी।

सूफी मत सम्मत अन्योक्ति की व्याख्या—हम बार-बार कह चुके है कि जायसी का लक्ष्य हिन्दू प्रेम कथा के सहारे हिन्दू विचारधाराओ के अवतरणों में सूफी सिद्धांतों का प्रचार करना था अतएव प्रत्यक्ष रूप से तो उन्होने अपनी अन्योक्ति की व्याख्या भारतीय सिद्धान्त और साधक के रूप मे की है जिनका स्पष्टीकरण ऊपर किया जा चुका है और अप्रत्यक्ष रूप से उन्होने अपनी कथा के आध्यात्मिक पक्ष को सूफी सिद्धान्त और साधना के साँचे मे ढालने का प्रयास किया है। यहाँ पर हम उसी के अनुरूप उनकी अन्योक्ति को स्पष्ट करने का प्रयास कर रहे है। सूफी मत मे भी बहुत से उपसम्प्रदाय है। इनमे जायसी का झुकाव दो सम्प्रदायो की ओर प्रतीत होता है। अतः उनकी अन्योक्ति की सूफीमत सम्मत व्याख्या भी दो प्रकार से की जा सकती है—

(१) बुद्धिमानी सूफी दार्शनिको के ढग पर।

(२) सौंदर्य और प्रेमवादी सूफियो के ढग पर।।

(१) बुद्धिवादी सूफी दार्शनिकों के ढंग पर अन्योक्ति की व्याख्या—सूफी साधना का लक्ष्य प्रेम और सौन्दर्यस्वरूपी परमात्मा की प्राप्ति माना गया है किन्तु कुछ ऐसे भी सूफी साधक रहे है जो सौन्दर्यवादी और प्रेमवादी न होकर शुद्ध बुद्धिवादी थे।

ऐसे सूफी दार्शनिको मे सूफी अल्ल याकूब का नाम बहुत ही प्रसिद्ध है। उनका कहना था कि परमात्म तत्त्व शुद्ध बुद्धिस्वरूपी, अभौतिक और अव्यय है। इसकी प्राप्ति करना ही साधक का लक्ष्य है। शेष साधना क्रम वही है जो सौदर्यवादी और प्रेमवादी सूफियों का है। आगे इसकी चर्चा करेगे।

सौंदर्य और प्रेमवादी सूफियो के ढंग पर अन्योक्ति की व्याख्या—सूफीमत में साधक को एक सालिक या यात्री माना गया है और सूफी साधना को एक यात्रा माना है। इस यात्रा के चार पड़ाव या स्तर बताए है। जायसी ने स्वयं लिखा है—

'चार बसेरे सौं चढ़ै सत सो उतरै पार।'

ये चार बसेरे क्या है इस सम्बन्ध मे सूफियो मे मतभेद है। कुछ के अनुसार चार सोपानो के नाम है—शरीयत, तरीकत, हकीकत और मारीफत। दूसरे सूफियो ने साधना के चार तत्त्व बताए है—नफ्स (इन्द्रिय), रूह (आत्मा), कल्ब (हृदय), अक्ल (बुद्धि)। कुछ तीसरे आचार्य साधना को चार जगतो मे विभाजित करते है। उनके नाम है—आलमेनासूत (भौतिक जगत्), आलमेमलकूत (चित्त जगत्), आलमेजबरूत (आनन्दमय जगत्), आलमेलाहूत (सत्य जगत्)। वास्तव मे सूफी साधना मे इन सबका त्रयोन्मुखी क्रम पाया जाता है। पहले साधक भौतिक जगत् मे इन्द्रिय या नफ्स को मारने के लिए शरीयत का पालन करता है। इसके बाद जब नफ्स पर विजय प्राप्त हो जाती है तो साधक आलमेमलकूत मे प्रवेश करता है और यहाँ पर वह रूह की तरीकत से साधना करता है। जब अपनी इस साधना मे सफल हो जाता है तब वह आलमेजबरूत मे प्रवेश करता है और कल्ब की साधना करके हकीकत का ज्ञान प्राप्त करता है। इसमे सफलता प्राप्त हो जाने पर वह आलमेलाहूत मे पहुँचता है, यहाँ पर वह अक्ल के सहारे मारीफत की प्राप्ति करके पूर्ण सच्चिदानन्द स्वरूपी हो जाता है। पदमावत मे जायसी ने आलमेनासूत शरीर को चित्तौड़गढ कह कर आलमेनासूत की नफ्स संबंधी साधना की ओर सकेत किया है। यह साधना शरीयत के पालन से सम्पन्न होती है। इसके बाद कवि ने मन को राजा कहा है। ऐसा कह कर उसने आलमेजबरूत की व्याख्या की है।

वेदान्त सिद्धान्तों के अनुरूप अन्योक्ति की व्याख्या—जायसी पर वेदान्त का भी पूरा प्रभाव दिखाई पडता है। उसका एक कारण यह है कि उनके युग मे सारे भारतवर्ष मे वेदान्त का शंखनाद गूँज रहा था। इसके अतिरिक्त दूसरा कारण यह था कि भारतीय दर्शनो मे एक वेदान्त दर्शन ही ऐसा है जो सूफी मत के सबसे अधिक समीप है। वेदान्त के प्रमुख आधार ग्रन्थो को प्रस्थानत्रयी कहते है। प्रस्थानत्रयी के अन्तर्गत वेदान्त सूत्र, उपनिषद् ग्रन्थ और भगवद् गीता नामक ग्रन्थ आते है। जायसी पर हमे उपनिषदो और भगवद् गीता का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पडता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि जन-साधारण मे वेदान्त के इन्ही ग्रन्थों का सर्वाधिक प्रचार था।

उपनिषदो मे अध्यात्म योग की प्रतिष्ठा पाई जाती है। कठोपनिषद् मे लिखा है—

'अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा हर्षशोकौ जहाति।'

तुलना कीजिए—

जा कह गुरु न पंथ दिखावा।
सो अन्धा चारिहु दिसि धावा।।

—उसमान चित्रावली

गुरु विन पंथ न पावै कोई।
केता कोई ज्ञानी ध्यानी होई।।

—नूर मुहम्मद, अनुराग बाँसुरी

विना गुरु कुछ काम न होई।
वैस अकारथ पूरी खोई।।
पहले प्रीत गुरु से कीजै।
प्रेम वाट में तब पग दीजै।।

—अली मुराद कृत, कुँवरावत से

मुहमद कवि यह जोरि सुनावा। सुना सो पीर प्रेम कर पावा।।
जोरी लाइ रकत कै लेई। गढ़ि प्रीति नयनन्ह जल भेई।।
औ मै जानि गीत अस कीन्हा। मकु यह रहै जगत महँ चीन्हा।।
कहाँ सो रतनसेन अब राजा। कहाँ सुआ अस वुधि उपराजा।।
कहाँ अलाउदीन सुलतानू ?। कहँ राघव जेइ कीन्ह बखानू ?।।
कहँ सुरूप पदमावति रानी ?। कोई न रहा, जग रही कहानी।।
धनि सोई जस कीरति जासू। फूल मरै, पै मरै न वासू।।
केइ न जगत जस बेंचा, केइ न लीन्ह जस मोल।
जो यह पढ़ै कहानी, हम्ह सँवरै दुइ बोल।।१।।

[इन पंक्तियो मे कवि ने कथा का उपसहार करते हुए अपने प्रवन्ध विधान के हेतुओ की ओर सकेत किया है।]

व्याख्या—मुहम्मद कवि ने समय-समय पर लिखे गए प्रसंगो को एक व्यवस्थित प्रवन्ध के रूप मे प्रस्तुत किया है। इस प्रवन्ध को जिसने सुना वह 'प्रेम की पीर' से पुलकायमान हो गया। इसके विविध प्रसंगों और घटनाओ को कवि ने रक्त की लेई से जोड़ा है। इसमे वर्णित प्रगाढ प्रेम सर्वथा नयनो की अश्रु धारा से सिंचित है अर्थात् कठिन विरह-प्रधान है। मैने जानवूझ कर यह संगीतमय प्रवन्ध रचा है क्योकि मेरी कामना है कि इस प्रवन्ध के रूप मे संसार मे मेरा स्मारक रह जाए। अब रतनसेन नामक वह राजा न मालूम कहाँ है और न मालूम वह तोता कहाँ है जिसने ऐसी वुद्धि दी थी। अलाउद्दीन नामक सुलतान का अस्तित्व भी नही है। राघव चेतन भी नही है। वह परम सुन्दरी पदमावती रानी भी ससार मे नही है। कथा का कोई पात्र और व्यक्ति आज जीवित नही है। पर उनकी कहानी शेप रह गई है। वास्तव में ससार में वही धन्य है जिसकी कीर्ति अमर है क्योकि मनुष्य दिवगत हो जाता है

केवल उसकी अक्षय कीर्ति ही संसार में शेष रह जाती है। जिस प्रकार फूल नष्ट हो जाता है और उसकी सुगन्धिमात्र शेष रह जाती है।

संसार में ऐसा सत पुरुष कौन है जिसने यश मोल लेने की या उसे बेचने की चेष्टा नही की। इसलिए मैंने भी यश-कामना से यह ग्रन्थ रचा है। जो यह कहानी पढेगा वही हमे स्मरण कर लेगा।

टिप्पणी—प्रेमपीर—सूफी साधना का सर्वस्व है। इस प्रेमपीर की वर्णना सूफी कवियो ने शत-शत प्रकार से की है। जब साधक किसी गुरु की कृपा से उस दिव्य सौदर्य स्वरूपी परमात्मा की झलक पा लेता है और उसके पश्चात् जब उसकी वृत्ति की संसार की ओर पुनः पुनरावृत्ति होती है तब उसका हृदय प्रेम की पीर या आध्या- त्मिक विरह वेदना से व्यथित हो उठता है। यह विरह वेदना या प्रेम की पीर ही साधक के कल्ब के कालुष्यों को धीरे-धीरे जलाती रहती है और जब कल्ब के कालुष्य नष्ट हो जाते हैं तब वह सरलता से भावना लोक में उस सौन्दर्य स्वरूपी परमात्मा के सतत दर्शन करने मे समर्थ रहता है। उसमान सूफी कवि ने लिखा भी है—

विरह अगिनि जरि कुदन होई।
निर्मल तन पावै पै सोई॥

कुतवन ने मृगावती मे इस प्रेम की पीर का वर्णन इस प्रकार किया है—

आगि कै औसध सब कोऊ जाना।
यह न कोरे औसध कह माना॥
और आगि जलि सींच बुझाई।
यह न बुझाय समुद लै जाई॥

मंझन ने भी लिखा है—

मंझन जो जग जन्म कै विरह न कीन्हा चाव।
सूनै घर का पाहुना ज्यो आवै त्यों जाव॥

जोरि······लेई—यहाँ पर कवि ने लेई के रूपक से यह बताने की चेष्टा की है कि उसने अपनी कथा के विविध प्रसंगो को किस प्रकार एक ही सूत्र मे बाँधा है। वह कहता है कि मैंने अपने रक्त की लेई बनाई है अर्थात् कठिन साधना की है। यह लेई या साधना प्रेमाश्रुओ से आप्लावित की गई है। यहाँ पर अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। कवि का व्यंग्यार्थ है कि इस कथा की रचना उसने कठोर सूफी साधना के फलस्वरूप की है और फिर इस कथा को उसने प्रेमाश्रुओ से विशिष्ट आध्या- त्मिक विरह से पुष्ट किया है। लौकिक कथा को इस प्रकार अलौकिक साधना और आध्यात्मिक विरह से परिपुष्ट करने का कारण भी जायसी ने लिखा है; उसकी व्याख्या आगे की जाती है।

औ मैं……चीन्हा—इस पंक्ति मे जायसी ने उस कारण का उल्लेख किया है जिससे प्रेरित होकर उन्होने लौकिक कथा को आध्यात्मिक विरह और कठोर सूफी साधना के सिद्धान्तो से परिपुष्ट किया है। इसका कारण उनकी लोकैंपणा है। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि संसार मे उनकी मृत्यु के बाद उनकी कीर्ति नष्ट न हो। अगर वह केवल लौकिक कथा मात्र लिखते तो उससे उनकी कीर्ति चिरस्थायी नही होती। अपनी कीर्ति को चिरस्थायी करने के लिए ही उन्होंने पदमावती की लौकिक कथा को सूफी साधना की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित किया है। लोकैंपणा भी मनुष्य की सबसे प्रमुख वृत्ति है और अग्रेजी कवि मिल्टन ने तो इसे श्रेष्ठ व्यक्ति की अन्तिम दुर्वलता कहा है।

कहाँ सो रतनसेन……सुलतानू—यहाँ पर प्रत्येक पंक्ति मे काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य है।

केहिन जगत जस बेचा केई न लीन्ह जस मोल—यहाँ पर भी काक्वाक्षिप्त गुणीभूत व्यंग्य है। साथ ही यश जैसी अमूर्त वस्तु के मोल लेने और बेचने की बात कह कर 'उपचार वक्रता' प्रतिष्ठित की है।

मुहमद विरिध बैस जो भई। जोवन हुत सो अवस्था गई॥
वल जो गएउ कै खीन सरीरू। दिस्टि गई नैनहि देइ नीरू॥
दसन गए कै पचा कपोला। वैन गए अनरुच देइ बोला॥
बुधि जो गई देइ हिय बोराई। गरब गएउ तरहुँत सिर नाई॥
सखन गए ऊँच जो सुना। स्याही गई, सीस भा धुना॥
भँवर गए केसहि देइ मूवा। जोवन गएउ जीति लेइ जूवा॥
जौ लहि जीवन जोवन-साथा। पुनि सो मीचु पराए हाथा॥
विरिध जो सीस डोलावै, सीस धुनै तेहिरीस।
बूढ़ि आऊ होहु तुम्ह, केइ यह दीन्ह असीस॥२॥

मुहम्मद कवि कहते है कि वृद्धावस्था हो गई है, यौवन की अवस्था चली गई है, वल शरीर को क्षीण करके चला गया है, दृष्टि मंद पड गई है और नेत्रों से पानी ढल आया है, दाँतो के जाने से कपोल पिचक गए है। मधुर वचन चले गए है। अब वोली किसी को अच्छी नही लगती। वुद्धि क्षीण हो जाने से हृदय वावला हो जाता है। अभिमान नष्ट हो गया है (और हमारा) सिर झुक गया है। कानों की शक्ति चली गई और अव ऊँचा सुनाई पड़ने लगा है। केशो की श्यामता चली गई है और वे धुनी हुई रुई के सदृश सफेद दिखाई पड़ने लगे है। वालो की भ्रमरो जैसी कालिमा दूर हो गई है और वे धुओं जैसे सफेद हो गए हैं। यौवन जीवन का जुआ जीत कर

चला गया है। वास्तव मे जीवन तभी तक है जब तक यौवन रहता है। यौवन के बाद वृद्धावस्था में दूसरे के आश्रित होना मृत्यु के सदृश है।

बूढे मनुष्य का सिर हिलना ऐसा लगता है कि मानो जैसे क्रोध से सिर धुन रहा हो। तुम्हारी बूढी आयु हो जाए यह आशीर्वाद न मालूम किसने दिया था जिसका दुष्परिणाम आज भुगतना पड़ रहा है।

टिप्पणी—डा० गुप्त और डा० अग्रवाल ने 'स्याही गई सीस भा धुना' के स्थान पर 'गारौ गयौ सीस भा धुना' पाठ दिया है जिसका अर्थ है गौरव चला गया और सिर धुनी हुई रुई सा दिखाई पड़ने लगा। यह पाठ मुझे मान्य नही है क्योकि वह अर्थ-सौन्दर्य नही है जो पहले पाठ मे है।

दूसरा उल्लेखनीय पाठभेद छठी पंक्ति की अन्तिम अर्द्धाली मे है। उन्होंने उसका पाठ दिया है 'जोवन गएऊ जियत जनु मुवा' अर्थात् यौवन चला गया, अब शरीर जीवित रहते हुए भी मृत के समान हो गया है।

शेष छोटे-छोटे पाठभेदो से अर्थ में कोई मौलिक अन्तर नही पडता है।

इस पंक्ति मे जायसी ने अपनी वृद्धावस्था का बडा मार्मिक चित्र खीचा है। इस चित्रण से दो बाते प्रकट होती है। पहली बात तो यह है कि पदमावती की समाप्ति जायसी ने अपनी वृद्धावस्था मे की थी। वृद्धावस्था के उपर्युक्त चित्र के आधार पर यह अनुमान सरलता से किया जा सकता है कि जायसी ने कम-से-कम ७० वर्ष से ऊपर की आयु पाई है।

दृष्टि गई नैनहि दै नीरू—इसमे और इस प्रकार की अन्योक्तियो मे द्वितीय पर्यायोक्ति अलंकार माना जाएगा। द्वितीय पर्यायोक्ति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए अलकार मंजरीकार ने लिखा है कि अनेक वस्तुओ की एक आधार मे क्रमशः स्वतः स्थिति हो अथवा दूसरे किसी के द्वारा कराई जाए वहाँ यह अलंकार माना जाता है। 'दृष्टि गई नैनहि दै नीरू' में नयन आधार हैं, उनमे पहले तो दृष्टि की स्थिति थी और दृष्टि के जाने के बाद वह दृष्टि ही नेत्र रूपी उसी आधार मे जल भर गई।

केहि यह दीन्ह असीस—यहाँ पर काकुवैशिष्ट्योत्पन्ना वाच्यसम्भवा व्यजना है। व्यग्यार्थ है कि वह वास्तव मे हमारा हितेच्छु नही था जिसने मुझे बूढे होने का आशीर्वाद दिया था। ऐसा आशीर्वाद देकर उसने हमारा उपकार नही अपकार किया था।

स्याही गई सीस भा धुना—यहाँ कालापन और सफेदी (अर्थात् धुनी हुई रुई) से केशरूपी अर्थ का बोध होने के कारण लक्षणा उपादान मूला है। गुण से गुणी का बोध कराने के कारण शुद्धा एवं रूढा है। 'स्याही' और धुना शब्द केश रूप अर्थ मे अध्यवसित हो जाने के कारण लक्षणा अध्यवसाना भी है। समष्टि रूप से यहाँ पर शुद्ध साध्यवसाना उपादान मूला रूढ़ि लक्षणा है।

भँवर गए केसहि देइ मुवा—यहाँ पर द्वितीय पर्यायोक्ति अलङ्कार है। यहाँ पर शुद्धा साध्यवसाना उपादान मूला गूढा धर्मगता प्रयोजनवती लक्षणा है।

जोवन गएउ जीति लेइ जूआ—यहाँ पर उपचारवक्रता है। अमूर्त यौवन के विषय में उपचार के कारण जुआ जीतने की बात कही गई है। इसके अतिरिक्त यहाँ पर जुआ जीत ले जाने का रूढ़ अर्थ है विजयी होना। यह रूढ़ार्थ है अतः यहाँ पर रूढा लक्षणा भी है। यहाँ पर 'ज' की वर्ण-विन्यास की वक्रता भी है।